तृतीयो भागः

श्रीकृष्णाय नमः

श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्

(द्वितीयाध्यायः)
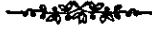
शुद्धाद्वैतब्रह्मवादनिर्गुणभक्तिमार्गप्रवर्तकाचार्य-
चक्रचूडामणिश्रीमद्वल्लभाचार्यचरणप्रणीतम्

दशदिगन्तविजयिश्रीमद्गोस्वामिश्रीपुरुषोत्तमचरणप्रणीत-
भाष्यप्रकाशसंपूर्णवेत्तृश्रीमद्गोस्वामिश्रीगोपेश्वर-
जिच्चरणप्रणीतभाष्यप्रकाशरश्मिपरिबृंहितम्

तृतीयो भागः

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

शुद्धाद्वैतवादी प्राचीन चिन्तन

'शुद्धाद्वैतवाद' की व्याख्या सद्वाद तथा द्वैताद्वैतवैलक्षण्यवाद के समुच्चयके रूपमें हमने अणुभाष्य-प्रथमाध्यायकी भूमिकामें प्रस्तावित की. वहां यह विवेचन भी किया गया था कि जगत्को पारमार्थिक सत् मानते हुए जगदुपादान-जगत्कर्ता ब्रह्मके साथ, द्वैत अद्वैत अथवा द्वैताद्वैत यों इन तीनोंमेंसे एक भी न मान कर, यदि द्वैताद्वैतविलक्षण तादात्म्य संबन्ध स्वीकारते हैं तो उसे शुद्धाद्वैत समझना चाहिये. साथ ही साथ वहां (१) सद्वाद-द्वैताद्वैतवाद (२) सदसद्वाद-द्वैताद्वैतवाद (३) सदसद्वाद-द्वैतवाद तथा (४) सदसद्विलक्षणवाद —अद्वैतवाद से इसका पार्थक्य भी सुविशदतया निरूपित किया गया. असद्वाद-द्वैतवाद, असद्वाद-अद्वैतवाद तथा सदसद्विलक्षणवाद- द्वैताद्वैतविलक्षणवाद के दावेदार कोई चिन्तक भारतमें नहीं हुए यह भी निरूपित किया था.

शुद्धाद्वैतवादकी उपादानभूत प्रमुख धारणाओंको तीन घटकोंमें परखा जा सकता है :

(१) सत्
(२) तादात्म्य
(३) ब्रह्म

(१) क्योंकि सद्वाद तीन घटकोंमेंसे प्रथम घटक है, अतएव, सत्कारणवाद, सत्कार्यवाद तथा आविर्भावतिरोभाववाद सद्वादके ही पोषक तथा अंगभूत वाद हैं.

(२) इसी तरह अविकृतपरिणामवाद तथा अंशांशितादात्म्यवाद—कार्यकारणतादात्म्यवाद द्वैताद्वैतविलक्षण तादात्म्यके उपोद्बलक वाद हैं.

(३) सर्वान्तिम किन्तु सर्वप्रमुख तत्त्व औपनिषद ब्रह्मके एक विशिष्ट स्वरूपकी स्वीकृति ही ब्रह्मवाद, विरुद्धधर्माश्रयतावाद, अभिन्ननिमित्तोपादानकारणतावाद तथा लीलावाद हैं.

प्रथमाध्यायकी भूमिकामें यह स्पष्टीकरण भी दिया गया था कि महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके चिन्तनमें अन्य भी अनेक धारणायें निरतिशय महत्त्वपूर्ण हैं, उदाहरणतया, श्रीकृष्णपरतत्त्वतावाद, अनुग्रहैकलभ्यतावाद, जीवात्मत्रैविध्यवाद आदि-आदि, किन्तु इन धारणाओंकी अनिवार्यता शुद्धाद्वैतवादमें नहीं हैं. जैसे विशिष्टाद्वैतवादी शैव भी हो सकते हैं और वैष्णव भी. अथवा निर्विशेषतावादी बौद्ध भी हो सकते हैं और शांकर भी. इसी तरह शुद्धाद्वैतवादी ज्ञानमार्गीय या भक्तिमार्गीय शैव भी हो सकते हैं अथवा ऐसे ही वैष्णव भी.

इस वैचारिक पृष्ठभूमिको सुस्पष्ट करनेपर महाप्रभुसे पूर्व भी शुद्धाद्वैतवादी चिन्तनकी खोज और परख हमारे लिये बहुत दुष्कर बात नहीं रह जाती.

यह तो हम इंगित कर ही चुके हैं कि महाप्रभुके दार्शनिक चिन्तनकी पुष्पमालामें विविध वादोपवादोंके जो पुष्प पिरोये गये हैं वे उनके निजनिर्मित नहीं हैं. प्रस्थानचतुष्टयी आदि आर्षशास्त्रोंके अति प्राचीन उपवनोंमेंसे इन पुष्पोंको केवल चुना ही गया है. वस्तुतः तो वे वहांके चिरप्रस्फुटित पुष्प हैं. संभव है कि कुछ कलिकाके रूपमें भी अवस्थित हों परन्तु हैं ये सभी पुष्प इन्हीं उपवनोंके, निजनिर्मित या कृत्रिम पुष्प नहीं. पुष्पमाला गूंथनेमें किन-किन पुष्पोंके गुच्छको छोटा या बडा बनाया गया उसके समायोजनमें तो नूतनता स्वीकारी जा सकती है, फिरभी इन्हीं पुष्पोंसे थोडे-बहुत हेर-फेरके साथ शुद्धाद्वैतवादी धारणाकी अन्य पुष्पमालायें पहले भी अनेक वेदान्ती गूंथ ही चुके हैं. कालक्रमवश वे पुष्पमालायें आज हमें अखण्डिततया उपलब्ध नहीं होती, किन्तु जिन उपवनोंसे पुष्पचयन किया गया था उनमें ये पुष्प अब भी महक रहे हैं. अतएव इन पुष्पोंके सौंदर्य तथा सौगन्ध्य ने महाप्रभुको अपने आराध्य श्रीकृष्णके श्रीकण्ठमें धरानेके हेतु पुनः उसे गूंथनेको समुत्सुक भर किया था. इसी तरह महाप्रभुके पश्चात्

भी वर्तमान चिन्तकोंमें महर्षि श्रीअरविन्दतकके चिन्तनमें यह शुद्धाद्वैतवाद उपलब्ध होता ही है. अस्तु.

वार्तिककार कात्यायन तथा महाभाष्यकार पतञ्जलि द्वारा व्यक्त शुद्धाद्वैती धारणा

पाणिनि (३।१।७) सूत्रके १६ वें वार्तिकमें कात्यायन कहते हैं—"सर्वस्य वा चेतनावत्त्वात्". यहां भाष्यमें पतञ्जलि कहते हैं—"अथवा सर्वं चेतनावत्". इस भाष्यांशकी व्याख्या करते हुए प्रदीपकार कहते हैं—"सर्वस्य वेति आत्माद्वैतदर्शनेन इति भावः. ऋषिरिति वेदः सर्वभावानां चैतन्यं प्रतिपादयति".

सर्वभावोंमें अनुस्यूत चैतन्याद्वैत या आत्माद्वैत सर्वभावोंके एक-अद्वितीय पारमार्थिक चेतनाधिष्ठानपर अपारमार्थिक विवर्ततया भी शक्य हो सकता है तथा एक-अद्वितीय पारमार्थिक उपादानकारणमें नाम-रूप-क्रियात्मक पारमार्थिक परिणामतया भी शक्य है. प्रथम स्थिति केवलाद्वैतपोषिका होगी जब कि द्वितीय स्थितिमें शुद्धाद्वैतवाद सिद्ध होगा.

इस सन्दर्भमें व्याकरणमहाभाष्यकार पतञ्जलिकी विचारधारामें शुद्धाद्वैतवाद कैसे तरंगायित हो रहा था इस तथ्यके निदर्शनार्थ अधोलिखित उद्धरणको हम पर्याप्त समझते हैं—

"तथा सुवर्णं कयाचिद् आकृत्या युक्तं पिण्डो भवति, पिण्डाकृतिम् उपमृद्य कटकाः क्रियन्ते, कटकाकृतिम् उपमृद्य स्वस्तिकाः क्रियन्ते. पुनः आवृत्तः सुवर्णपिण्डः पुनः अपरया आकृत्या युक्तः खदिरांगारसवर्णे कुण्डले भवतः. आकृतिः अन्या च अन्या च भवति, द्रव्यं पुनः तदेव. आकृत्युपमर्देन द्रव्यमेव अवशिष्यते....अथवा न इदमेव नित्यलक्षणं—'ध्रुवं कूटस्थं अविचाल्यनपायोपजन विकार्यनुत्पत्त्यवृद्ध्यव्यययोगि यत् तत् नित्यम्' इति. तदपि नित्यं यस्मिन् तत्त्वं न विहन्यते. किं पुनः तत्त्वम्? तद्भावः तत्त्वम्. आकृतावपि तत्त्वं न विहन्यते" (१।१।१).

इस प्रतिपादनमें हम देख सकते हैं कि कितने सुस्पष्ट शब्दोंमें महाभाष्यकार अविकृतपरिणामवादका निरूपण करते हैं. केवलाद्वैतवादको अभिमत ध्रुव कूटस्थ अविचालि अनपायि आदि होना ही केवल नित्य होनेका लक्षण नहीं

है. अविकृत-परिणामवादका समर्थन इससे अधिक स्पष्ट शब्दोंमें सोच पाना मुश्किल है. यद्यपि यह बात ब्रह्म और जगत् के संबन्धकी विवेचनामें नहीं कही गयी है, फिर भी उल्लिखित चैतन्याद्वैतकी आर्ष या वैदिक स्वीकृतिके साथ इसे समन्वित करनेपर बात सर्वथा बुद्धिग्राह्य बन जाती है. यहां महाप्रभुद्वारा प्रदत्त 'अविकृत परिणाम' जैसा केवल पारिभाषिक शब्द तो नहीं है अन्यथा तात्पर्य सम्पूर्णतया व्यक्त हो ही गया है.

निष्कर्षरूपेण वार्तिककार तथा महाभाष्यकारको शुद्धाद्वैतवादितया मान्य करना पड़ता है.

महाकवि कालिदासके ग्रन्थोमें शुद्धाद्वैतवादका स्वरूप

रघुवंशके दसवें सर्गमें रामावतारग्रहणके हेतु देवगणों द्वारा की गई श्रीहरिस्तुतिकी शब्दावलीका सावधानीसे विमर्श करनेपर यह स्पष्टतया झलक जाता है कि महाकवि कालिदासकी दार्शनिक धारणायें शुद्धाद्वैतवादसे अत्यन्त प्रभावित थी. अतएव शुद्धाद्वैतवादी कोई न कोई दार्शनिक सम्प्रदाय तब अवश्य विद्यमान होगा ही. कुछ श्लोक हम उदाहरणतया संकलित करते हैं :

नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनु बिभ्रते ।
अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधास्थितात्मने ॥ १६ ॥

रसान्तराण्येकरसं यथा दिव्यं पयोऽश्नुते ।
देशे देशे गुणेष्वेवमवस्थास्त्वमविक्रियः ॥ १७ ॥

अजितो जिष्णुरत्यन्तमव्यक्तो व्यक्तकारणम् ॥ १८ ॥

सर्वज्ञस्त्वमविज्ञातः सर्वयोनिस्त्वमात्मभूः ।
सर्वप्रभुरनीशस्त्वमेकस्त्वं सर्वरूपभाक् ॥ २० ॥

अभ्यासनिगृहीतेन मनसा हृदयाश्रयम् ।
ज्योतिर्मयं विचिन्वन्ति योगिनस्त्वां विमुक्तये ॥ २३ ॥

अजस्य गृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विषः ।
स्वपतो जागरुकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव ? ॥ २४ ॥

शब्दादीन् विषयान् भोक्तुं चरितुं दुश्चरं तपः ।
पर्याप्तोसि प्रजाः पातुमौदासीन्येन वर्तितुम् ॥ २५ ॥

बहुधाप्यागमैर्भिन्ना पन्थानः सिद्धिहेतवः ।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे ॥ २६ ॥

त्वय्यावेशितचित्तानां त्वत्समर्पितकर्मणाम् ।
गतिस्त्वं वीतरागाणामभूयः संनिवृत्तये ॥ २७ ॥

प्रत्यक्षोऽप्यपरिच्छेद्यो मह्यादिर्महिमा तव ॥ २८ ॥

अनवाप्तमवाप्तव्यं न ते किञ्चन विद्यते ।
लोकानुग्रहएवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः ॥ ३१ ॥

महिमानं यदुत्कीर्त्य तव संह्रियते वचः ।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया ॥ ३२ ॥

(रघु. १०।१६-३२)

जगत्कारण तो विवर्ताधिष्ठानको भी माना जा सकता है परन्तु उत्पत्ति-स्थितिलयात्मक तो जगत्कारणीभूत परमात्माको जगदुपादानकारण माननेपर ही सम्भव है जो सोलहवें श्लोकमें वर्णित हुआ है. सत्रहवेंमें यद्यपि भेदको गुणकृततया औपाधिक वर्णित किया गया है फिर भी बीसवेंमें जो 'सर्वरूपभाक्' कहा है वहां स्वविभाजनहेतुभूत गुणत्रयोपाधिरूपोंका भी धारणकर्ता तो एकमेव परमात्मा ही सिद्ध होता है. अतः केवलाद्वैतवाद तो दूरापास्त है. तेईसवें श्लोकमें हृदयस्थितिद्वारा अन्तर्यामिता ही वर्णित हुई है जो शुद्धाद्वैतवादाविरोधिनी है. निरीह-हतद्विष, अज-जन्मग्राही, सुप्रुप्त-जागरुक, विषयभोक्ता-तपस्वी, उदासीन-प्रजापालक आदि रूपोंमें विरुद्धधर्माश्रयता तो शुद्धाद्वैतवादको प्राणप्रद ब्रह्मगुण है. पृथिवी आदि प्रत्यक्षग्राह्य भौतिक पदार्थोंको अप्रत्यक्ष ब्रह्मके माहात्म्यतया स्वीकारना भी मायावादकी स्पष्ट निराकृतिपूर्वक तादात्म्यवादकी डिण्डिमघोषणा है. इसी तरह केवल ज्ञानमार्गैकगम्य न मान कर, छब्बीसवें श्लोकमें, जो सर्वमार्गगम्यता वर्णित हो रही है वह भी केवलाद्वैतवादमें संगत हो नहीं सकती. भगवदवतारको मायिक न मानकर लोकानुग्रहार्थमात्र स्वीकारना भी मायावादके सर्वथा प्रतिकूल तथा लीलावादके सर्वथा अनुकूल विधान कालिदास इकत्तीसवें श्लोकमें कर गये हैं. इसी तरह बत्तीसवें श्लोकमें केवलाद्वैतवादिओंकी तरह परमात्माको सर्वथा अवाच्य माने बिना, इयत्तया अवाच्य मानना भी शुद्धाद्वैतवादानुसरण ही है.

इसी तरह कुमारसंभवके भी द्वितीयसर्गमें जो देवताओंद्वारा कृत ब्रह्मस्तुति कालिदासने लिखी है उसकी शब्दावली भी कालिदासके शुद्धाद्वैतवादानुगामी होनेकी धारणाको पुष्ट करती है यथा—

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक् सृष्टेः केवलात्मने ।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद् भेदमुपेयुषे ॥ ४ ॥
तिसृभिस्त्वमवस्थाभिर्महिमानमुदीरयन् ।
प्रलयस्थितिसर्गाणामेकः कारणतां गतः ॥ ५ ॥
स्वकालपरिमाणेन व्यस्तरात्रिंदिवस्य ते ।
यौ तु स्वप्नावबोधौ तौ भूतानां प्रलयोदयौ ॥ ८ ॥
जगद्योनिरयोनिस्त्वं जगदन्तो निरन्तकः ।
जगदादिरनादिस्त्वं जगदीशो निरीश्वरः ॥ ९ ॥
आत्मानमात्मना वेत्सि सृजस्यात्मानमात्मना ।
आत्मना कृतिना च त्वमात्मन्येव प्रलीयसे ॥ १० ॥
द्रवः संघातकठिनः स्थूलः सूक्ष्मो लघुर्गुरुः ।
व्यक्तो व्यक्तेतरश्चासि प्राकाम्यं ते विभूतिषु ॥ ११ ॥

(कुमार २।४–११).

सृष्टिसे पूर्व कैवल्य अर्थात् अनादि-सान्त मायासे उपहित न होना. गुणत्रयभेदमूलक ब्रह्मा-विष्णु-शिवरूप राजससात्त्विकतामसमूर्तिभेद नहीं प्रत्युत ब्रह्माविष्णुशिव-रूपधारणवश गुणत्रयविभाग है. इन तीनों अवस्थाओंमें अवस्था-भेदका कारण एक अभिन्न तत्त्व है. वह स्वयमेव स्वयंका सृजन तथा स्वयंको स्वयंमें लीन भी करता है. वह द्रव-संघातकठिन स्थूल-सूक्ष्म, लघु-गुरु, व्यक्त-अव्यक्त आदि अनेक विरुद्ध रूप धारण करता है. वह केवला-द्वैताभिमत निर्गुण निराकार निर्धर्मक निर्विशेष शुद्ध चैतन्य मायिकद्वैताधिष्ठान कैसे हो सकता है ?

इसी तरह नाटकोंमें भी श्रीशिवके बारमें "अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो" (मालविकाग्निमित्र–मंगलाचरण) तथा "या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति....या स्थिता व्याप्य विश्वं यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति....प्रत्यक्षाभिः प्रसन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः" (अभिज्ञान–शाकुन्तल–मंगलाचरण) इन

सब वर्णनों द्वारा दृश्यमान जगतको सत् ब्रह्मोपादानक तथा ब्रह्मात्मक ही स्वीकार कर महाकवि कालिदासने अपने समयमें शुद्धाद्वैतवादी विचारधाराकी विद्यमानता निःसन्देह सिद्ध कर दी है.

इससे सिद्ध हुआ कि शुद्धाद्वैतवादकी तीन मुख्य शर्तें (१) जगत्को सत् मानना (२) ब्रह्मसे अभिन्न मानना तथा (३) ब्रह्मको अभिन्ननिमित्तोपादान-कारण मानना यों तीनों ही शर्तोंपर महाकवि कालिदास खरे शुद्धाद्वैती सिद्ध होते हैं.

श्रीशंकराचार्यके पूर्ववर्ती प्राचीन वेदान्तसम्प्रदायोंमें शुद्धाद्वैतवाद

अपनेसे पूर्ववर्ती तथा समकालिक अनेक वेदान्तिओंके मतों एवं व्याख्याओं का उल्लेख श्रीशंकराचार्य (आठवीं शताब्दी) यत्र-तत्र करते रहते हैं. यद्यपि वे प्रायः नामोल्लेख नहीं करते परन्तु आनन्दगिरी आदि टीकाओंकी सहायतासे कुछ-कुछ नामोंके स्पष्टीकरण प्राप्त हो जाते हैं. इनमें उपात्तसन्दर्भमें सर्वप्रथम ब्रह्मनन्दी (?) भर्तृप्रपञ्च (सातवीं शताब्दी) तथा ब्रह्मदत्त (सातवीं शताब्दी) विशेषतः उल्लेखनीय हैं.

यथोक्त रूपमें प्रायः ये सभी वेदान्ती द्वैताद्वैती ही माने गये हैं परन्तु एक स्वाभाविक हेतु इस तरहकी मान्यताके पीछे यह भी हो सकता है कि निषेधात्मक अद्वैतको ही केवलाद्वैती विद्वान् शुद्ध अद्वैत रूपमें मान्य करनेके वैचारिक पूर्वाग्रहसे ग्रस्त होंगे. अद्वैतको तादात्म्यके रूपमें, विधानात्मक तथा द्वैताद्वैतवैलक्षण्यात्मक भी, स्वीकार पाना अतएव केवलाद्वैतवादी पूर्वाग्रहके साथ शक्य न बन सका. 'शुद्धाद्वैत' का तात्पर्य, जैसा कि हम परिभाषित कर चुके हैं, सद्वाद तथा द्वैताद्वैतवैलक्षण्यवाद की स्वीकृतिमें निहित है. इस परिभाषाके सन्दर्भमें ही ब्रह्मनन्दी प्रभृति विचारकोंके शुद्धाद्वैती होनेकी धारणा यहाँ हम प्रस्तावित करना चाहते हैं.

शुद्धाद्वैतके अंगभूत पूर्वनिर्दिष्ट नौ उपवाद, नामतः ब्रह्मवाद आदिमें से, जो विचारक जितने अधिक वादोंको स्वीकारता है उतना अधिक शुद्धाद्वैतवादी उसे स्वीकारना चाहिये यह स्पष्टीकरण तो हमने प्रारंभमें ही दे दिया है. अतएव इन वादोंको अस्वीकार कर अद्वैतकी भाषा बोलनेपर केवलाद्वैतवाद

प्रतिपादित होता है. अतः प्राचीनकालमें प्रचलित 'शुद्धाद्वैत' तथा 'द्वैताद्वैत' अभिधानोंपर अवलम्बित हुए बिना यथापरिभाषित अर्थमें हमें यह विचारना पडेगा कि कौन शुद्धाद्वैतवादी था या कौन द्वैताद्वैतवादी अथवा कौन केवलाद्वैतवादी. उदाहरणतया "तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः" (ब्र. सू. २।१।१४) के भाष्यमें सुस्पष्ट शब्दोंमें—"अत एकत्वं नानात्वं च उभयमपि सत्यमेव....नैवं स्यात् 'मृत्तिकेत्येव सत्यम्' इति प्रकृतिमात्रस्य दृष्टान्ते सत्यत्वावधारणात्, 'वाचारंभण'शब्देन च विकारस्य अनृतत्वाभिधानात्" कह कर श्रीशंकराचार्य कार्यकारणके बीच तादात्म्यके बजाय कारणमात्रका एकत्व सिद्धान्तित करते हैं. परिणामस्वरूप नौमें से एक भी वाद उन्हें मान्य नहीं यह स्पष्ट हो जाता है. फिर भी प्राचीन शांकर विद्वान् अपने आपको शुद्धाद्वैती ही मानते चले आये हैं—

(१) **अभेद एव स्याद् इति पाठम् अनुरुध्य शुद्धाद्वैतमेव सिद्धयेद् इति तात्पर्यं वर्णितम्** (कल्पतरुपरिमल २।१।१४).

(२) **किञ्च आपाततः शिष्यस्य शुद्धाद्वैतबोधासंभवादपि परिणामो अभ्युपेयः** (संक्षेपशारीरकसुबोधिनी २।८१).

इसी तरह "कथञ्चित् एकत्व और कथञ्चित नानात्व" तथा "इदमित्थं एकका नानात्व" के बीच रहे हुए अन्तरकी अवगणना करके, यह सहज संभव है कि, केवलाद्वैतिओंने कुछ शुद्धाद्वैतिओंको द्वैताद्वैती घोषित कर दिया हो. प्रथमाध्यायकी भूमिकामें चित्रित वेदान्तिओंके अष्टदलमें हम देख सकते हैं कि द्वैताद्वैतवादिओंके भी दो प्रकार संभव हैं—(१) सद्वाद-द्वैताद्वैतवाद (२) सदसद्वाद-द्वैताद्वैतवाद. स्पष्ट है इनमें प्रथम प्रकारके द्वैताद्वैती सद्वादकी स्वीकृतिके कारण शुद्धाद्वैतिओंके निकटतम पड़ौसी हैं. क्योंकि सद्वाद स्वीकारते ही, पूर्वनिरूपणानुसार, सत्कारणवाद सत्कार्यवाद तथा आविर्भाव-तिरोभाववाद; एवं वेदान्त होनेके कारण ब्रह्मवाद अभिन्ननिमित्तोपादानकारणतावाद और लीलावाद तो सर्वथा अपरिहार्य रहते ही हैं ऐसी स्थितिमें विभाजक अन्तर का अति सूक्ष्म तथा अल्प रह जाना स्वाभाविक ही है.

जैसे शास्त्रोंमें अक्सर मायाके सदसदात्मिका होनेके उल्लेखको बहुतसे आधुनिक प्रवचनकार सदसद्विलक्षणताके अर्थमें घटा देते हैं, वैसी धांधली हमें

द्वैताद्वैत और द्वैताद्वैतवैलक्षण्य के बीच नहीं करनी चाहिये. महाप्रभु भी यह तो स्वीकारते हैं कि "इदं विश्वं भगवान्, विश्वम् अनूद्य भगवत्त्वं विधीयते. तथा सति सर्वत्र भगवद्दृष्टिः चेत् कृतार्थो भवतीति कार्यं भगवत्त्वेन निरूपितम्. 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म तज्जलान्' इति श्रुतिः 'हि' शब्देन सूचिता. उत्तममध्य-माधमाधिकारिभेदेन त्रेधा अत्र निरूपणं कर्तव्यम्. तत्र उत्तमे निरूपितं, मध्यमे तु एवम्—इदं विश्वं भगवान् इव नतु भगवान्....निकृष्टे तु इदं विश्वं—भगवान् इतरः-अस्माद् अन्यः....ननु एकस्य जगतः कथं त्रिरूपत्वम्? तत्र आह....जगतः स्थिति भगवत्येवेति भगवानेव जगतीति स्वाधारत्वाद् भगवानेव जगत्. मध्यमे तु भगवतः सकाशाद् जगदुद्भवः, तेन कार्यकारणयोः तादात्म्यात् कार्यात्मना भेदः कारणात्मना अभेदइति 'भेदसहिष्णुः अभेदः तादात्म्यम्' इति वचनाद् जगद् भगवान् इव. मूढे तु भगवतः प्रलयकर्तृत्वात् नाशप्रतियोगि जगत्, भगवांश्च सदातन इति इतरः" (सुबो. १।५।२०). इससे सिद्ध होता है कि मध्यम कल्पतया द्वैताद्वैतता (स्वरूपतः पारमार्थिक स्वाभाविक अद्वैत तथा अचिन्त्य सामर्थ्यतः पारमार्थिक ऐच्छिक द्वैत) के स्वीकार्य होनेपर भी स्वाभाविकाद्वैत+स्वाभाविकद्वैतको स्वीकार न करनेके कारण महाप्रभु कहते हैं "कार्य-कारणयोः भेदाभेदमतनिराकरणाय पिण्डमणिनखनिकृन्तनग्रहणम्" (अणुभा. १।४।८). इस सूक्ष्म अन्तरको यदि बुद्धिगत नहीं किया जाता है तो पारमार्थिक अद्वैत+मायिक द्वैत की स्वीकृतिके कारण केवलाद्वैतवादको भी 'द्वैताद्वैतवाद' कहा जा सकेगा. इसी तरह विशिष्ट अद्वैत+विशेषण-विशेष्यद्वैत की स्वीकृति के कारण विशिष्टाद्वैतवादको भी 'द्वैताद्वैत' कहा जा सकेगा.

द्वैताद्वैतवादकी स्वीकृतिपर जैनोंके अनेकान्तवादकी शरण लेनेका आरोप बहुधा लगाया जाता है.

उदाहरणतया–

अहो माहात्म्यं प्रज्ञायाः! नमोऽस्तु
ब्रह्मवादिभ्यः क्षपणकशिष्येभ्यः!!

(नै. सि. च. १।७८)

इदानीं दिगम्बरपादपातिनां सर्वत्र
भिन्नाभिन्नात्वम् इच्छतां मतं प्रत्याख्याति.

(इष्ट. सि. वि. ५।५८)

भेदाभेदोपपाद्यं सकलमिति मते सप्तभंगी न दूष्या.

(त. मु. क. ३।२८)

वास्तविकता जबकि यह है कि वेदान्तके सभी सम्प्रदायोंमें किन्हीं-किन्हीं विशेषणों के साथ द्वैत तथा अद्वैत दोनों ही स्वीकारने पडते हैं. कुछ श्रुति-वचनोंकी सार्थकता, केवलाद्वैतिओंके मतमें भी, 'द्वैत'के साथ 'व्यावहारिक' या 'प्रातिभासिक' विशेषण जोडकर द्वैतको स्थान दिये विना, सिद्ध नहीं हो पायेगी. इसी तरह केवलद्वैतवादिओंको भी कुछ श्रुतिवचनोंकी सार्थकता 'अद्वैत'के साथ 'औपचारिक' विशेषण जोडकर सिद्ध करनी पडती है. फलतः प्रश्न द्वैत या अद्वैत का नहीं रह जाता है किन्तु द्वैत या अद्वैत के साथ जोडे जानेवाले विशेषणोंका प्रश्न महत्त्वपूर्ण बन जाता है. स्पष्ट है कि तत्तद् वेदान्तसम्प्रदाय अपने सद्वादी सदसद्वादी अथवा सदसद्वैलक्षण्यवादी पूर्वाग्रहोंके अधीन हो कर ही द्वैत या अद्वैत के साथ जोडे जानेवाले स्वाभाविक औपाधिक पारमार्थिक मायिक ऐच्छिक या औपचारिक विशेषणोंके बारेमें विवादशील बनते हैं. अस्तु.

पूर्वकथित ब्रह्मनन्दी प्रभृति तथाकथित द्वैताद्वैतवादी वेदान्तिओंके, केवल श्रीभास्कराचार्यके अपवादको छोडकर, मूल ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं होते. जहां तक शांकर या रामानुज ग्रन्थोंमें इनके वचन या मत का उल्लेख स्वमतके उपोद्बलनार्थ अथवा इनके मतके खण्डनार्थ जो उपलब्ध होता है वह द्वैताद्वैतवादितया ही उपलब्ध होता है. अतः यथोपलब्ध स्वरूपमें स्वीकारकर चलनेके आग्रहके कारण सहसा इन्हें शुद्धाद्वैतवादी ही स्वीकार लेनेके बजाय शुद्धाद्वैतके अंगभूत नौ उपवादोंमेंसे कौनसा वाद किस वचनमें या स्थलपर उपलब्ध हो रहा है यह अध्येताओंके समक्ष पहले उपस्थापित कर देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं.

छान्दोग्यवाक्यकार ब्रह्मनन्दी विवर्तवादी थे या परिणामवादी ?

प्राचीन ग्रन्थोंमें आचार्य ब्रह्मनन्दीका उल्लेख अनेक नामोंद्वारा किया हुआ माना जाता है. यथा 'टंक', 'आत्रेय', 'वृत्तिकार', 'वाक्यकार' आदि.

कुछ विद्वान इन्हें ब्रह्मसूत्र—"स्वामिनः फलश्रुतेरित्यात्रेयः" (३।४।४८) में निर्दिष्ट आत्रेयसे अभिन्न मानकर ब्रह्मसूत्रकारके समकालिक भी मानते हैं. आचार्य ब्रह्मनन्दीने छान्दोग्योपनिषद्पर 'वाक्य' नामिका कोई व्याख्या लिखी थी, जो आज अविकल रूपमें उपलब्ध नहीं होती. फिर भी उसमेंके अनेक वचनों तथा अभिप्रायों के उल्लेख हमें श्रीशंकराचार्य, श्रीभास्कराचार्य, श्रीयामुनेयाचार्य, श्रीरामानुजाचार्य प्रभृति प्राचीन ग्रन्थकारोंकी रचनाओंमें उपलब्ध होते हैं. इनकी 'वाक्य' विवृतिपर किसी द्रमिडाचार्य नामक वेदान्तीने भाष्य या वृत्ति भी लिखी थी जो बहुधा इनके वचनोंके साथ-साथ ही उद्धृत होती हुई देखी जाती है. कहते हैं कि इन द्रमिडाचार्यका एक स्वतन्त्र भाष्य ब्रह्मसूत्रोंपर भी था. छान्दोग्योपनिषद्भाष्य (३।१०।१) और अन्यत्र भी श्रीशंकराचार्यने इनका भी उल्लेख किया है ऐसा तत्तत् स्थलकी आनन्दगिरि आदि व्याख्याओंके अवलोकनसे सिद्ध होता है.

शांकरभाष्य (ब्र. सू. १।४।२७) पर व्याख्या करते हुए कल्पतरुकार, जो श्रीभास्कराचार्यके मतके खण्डनार्थ सदैव सन्नद्धसे लगते हैं, ब्रह्मनन्दीको विवर्तवादी सिद्ध करना चाहते हैं. वे कहते हैं—"भास्करस्तु* इह बभ्राम 'योनिः' इति 'परिणामाद्' इति च सूत्रनिर्देशात्, छान्दोग्यवाक्यकारेण ब्रह्मनन्दिना 'परिणामस्तु स्याद्' इति अभिधानात् च, परिणामवादो वृद्धसंमतः इति....ब्रह्मनन्दिना हि—'न असतः अनिष्पाद्यत्वात् प्रवृत्त्यानर्थक्यं तु सत्त्वाविशेषाद्' इति सदसत्पक्षप्रतिक्षेपेण पूर्वपक्षम् आदर्श्य 'न संव्यवहारमात्रत्वाद्' इति अनिर्वचनीयता सिद्धान्तिता. अतः 'परिणामः' तु मिथ्यापरिणामाभिप्रायम्". इनके अनुसार, श्रीभास्कराचार्यका ब्रह्मनन्दीको उद्धृत करते हुए यह मानना कि ब्रह्मनन्दी भी तत्त्वपरिणामवादी थे, श्रीभास्कराचार्यकी भ्रान्ति है. क्योंकि असत्से कभी-कुछ भी सत् नहीं बन सकता और जो स्वयमेव सत् हो उसे

---

* "ननु 'न जायते', 'अजो नित्यः' इति अजत्वं श्रूयते. न दोषः परतो जन्मप्रतिषेधात् चतुर्मुखादिवत्. तदुक्तं—'न तस्य कश्चिद् जनिता न चाश्रयः' इति. तस्मात् स्वतन्त्रस्य शक्तिविशेषोपसंहारौ न विरुद्धौ. सूत्रकारः श्रुत्यनुकारी परिणामपक्षं सूत्रयांबभूव. अयमेव छान्दोग्ये वाक्यवृत्तिकाराभ्यां सम्प्रदायमतः समाश्रितः. तथाच वाक्यं—'परिणामस्तु स्याद् दध्यादिवद्' इति विगीतं विच्छिन्नमूलं माहायानिकबौद्धगाथितं मायावादं व्यावर्णयन्तो लोकान् व्यामोहयन्ति" (भास्क. भा. १।४।२५).

बनानेकी आवश्यकता ही सिद्ध नहीं होती. अतः जो कुछ पैदा होता है वह वस्तुतः तो सदसद्-विलक्षण अनिर्वचनीय मिथ्या ही होता है, जिसे व्यवहारमें सत् मान कर चल सकते हैं.

यहां सर्वप्रथम 'सदसत्पक्षप्रतिक्षेप' पदके प्रयोगके सन्दर्भमें सांख्यतत्त्व-कौमुदीगत सत्कार्यवादके समक्ष पूर्वपक्षतया उपस्थापित वचन तुलनार्ह हैं— "स्याद् एतद् आविर्भावः पटस्य कारणव्यापारात् प्राक् सन् असन् वा? असन् चेत् प्राप्तं तर्हि असदुत्पादम्. अथ सन्, कृतं तर्हि कारणव्यापारेण, नहि सति कार्ये कारणव्यापारप्रयोजनं पश्यामः....तस्माद् इयं पटोत्पत्तिः स्वकारणसमवायो वा स्वसत्तासमवायो वा उभयथापि न उत्पद्यते, अथच तदर्थानि कारणानि व्यापार्यन्ते, एवं सतएव पटादेः आविर्भावाय कारणापेक्षा इति उपपन्नम्" (कारिका ९ की टीका).

यहां सदसत्पक्षप्रतिक्षेप सत्कार्यवादिओंके समक्ष भी उपस्थापित होता रहा है यह सिद्ध करनेको पर्याप्त है. रही बात उत्तरपक्षमें कार्यकी उत्पत्तिको 'संव्यवहार' कहनेकी, तो इस सन्दर्भमें हम सांख्यसूत्रोंको उद्धृत करना चाहेंगे—"न असदुत्पादो नृश्रृंगवत्....न भावे भावयोगः चेत्, न अभिव्यक्ति-निबन्धनौ व्यवहाराव्यवहारौ" (सां. सू. १।१।११४–१२०).

इस तरह सत्कार्यवादिओंके समक्ष उपस्थापित पूर्वपक्ष तथा सत्कार्यवादिओं द्वारा प्रदत्त उनके उत्तर की शब्दावलीके धैर्यपूर्वक अवलोकन करनेपर सद-सत्पक्षप्रतिक्षेपपूर्वक कार्यकी संव्यवहारताका विधान नियततया विवर्तवाद अर्थात् मिथ्यापरिणामवादको ही सिद्ध करता है यह कहा नहीं जा सकता.

इसके अलावा भी कल्पतरुकारका तर्क सन्तोषजनक नहीं है क्योंकि आचार्य ब्रह्मनन्दीके विधानकी सम्पूर्ण शब्दावली श्रीभास्कराचार्य और कल्पतरुकार द्वारा खण्डशः उद्धृत वाक्योंको जोडकर देखनेपर यों बनती है—"न असतः अनिष्पाद्यत्वात्. प्रवृत्त्यानर्थक्यं तु सत्त्वाविशेषात्. न संव्यवहारमात्रत्वात्. परिणामस्तु स्याद् दध्यादिवत्". यहां उल्लेखनीय यह है कि यदि सदसत्पक्षप्रतिक्षेपपूर्वक सदसद्विलक्षण मिथ्या परिणाम अर्थात् विवर्त-परिणाम ब्रह्मनन्दीको अभीष्ट होता तो उदाहरणमें "शुक्तिरजतवत्" या "रज्जु सर्पवत्" कहना उचित होता. इसके विपरीत "दध्यादिवत्" कहना इस तथ्यका सुस्पष्ट प्रकाशन है कि तत्त्वपरिणाम ही उन्हें अभीष्ट है विवर्तपरिणाम

नहीं. स्वयं मायावादिओंको भी जगत्-ब्रह्मके बीच कार्यकारणभाव विवर्त-अधिष्ठानभावेन विवक्षित है तथा जगत्-मायाके बीच कार्य-कारणभाव परिणाम-उपादानकारणभावेन विवक्षित है. इस स्वाभ्युपगत प्रभेदको भुलाकर दुग्धका दधितया परिणत होना यदि विवर्ततया स्वीकारा जाता है तो, शुक्तिरजतादि विवर्तोदाहरणोंमें जैसे अधिष्ठानकी व्यावहारिकी सत्ता तथा विवर्तकी प्रातिभासिकी सत्ता मान्य की गई है, वैसे ही दुग्धकी व्यावहारिकी तथा दधिकी प्रातिभासिकी सत्ता स्वीकारनी पडेगी. और तब तो मायाको भी पारमार्थिक मानना पड़ेगा, व्यावहारिक जगत्के उपादान होनेके कारण.

जहां तक सदसत्पक्षोंके प्रतिक्षेपका प्रश्न है तो वहां यह अवधेय है कि असत्पक्षका प्रतिक्षेप "अनिष्पाद्यत्वात्" हेतुसे स्पष्ट है, परन्तु सत्पक्षके प्रतिक्षेपमें जो "प्रवृत्त्यानर्थक्यं सत्त्वाविशेषात्" बात कही वहां उत्तररूपेण प्रवृत्तिकी सार्थकता ही "संव्यवहारमात्रत्वात्" अंशसे सिद्ध करनी है. ऐसी स्थितिमें कारणव्यापारसे पूर्व दधिको असत् मानते हैं तो स्वनिराकृत असत्त्वका पुनरभ्युपगम होगा. अतः यदि सत् मानते हैं तो स्पष्ट है कि केवलाद्वैतवादके अनुरोधवश उसे अपारमार्थिक-व्यावहारिक सत् मानना पडेगा. ऐसी स्थितिमें कारणव्यापारसे पहले भी जो सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय व्यावहारिक सत् था और कारणव्यापारके बाद भी जो सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय व्यावहारिक सत् ही रहता है तो कारणव्यापारमें प्रवृत्ति–आनर्थक्य दोष तो अपरिहृत ही रहता है. अतः "भक्षितेपि लशुने न शान्तो व्याधिः" जैसी ही व्याख्या है "संव्यवहारमात्रत्वाद्" का सदसद्वैलक्षण्य अर्थ करना. उचित व्याख्या अतः "न भावे भावयोगः चेत्, न, अभिव्यक्तिनिबन्धनौ व्यवहाराव्यवहारौ" (सां. सू. १।१।११९—१२०) के द्वारा निर्दिष्ट दिशामें अग्रसर होकर ही खोजनी चाहिये. जो बात सांख्यशास्त्रमें अव्यक्त एवं जगत् के बीच सत्कार्यवादवश सुननी-कहनी पडती है, वही बात वेदान्तशास्त्रमें भी ब्रह्म एवं जगत् के संबन्धोंकी व्याख्या सत्कार्यवादावलम्बिनी बनानेपर सुनने-कहनेको समुद्यत रहना पडेगा.

श्रीमुरलीधर पाण्डेयने 'श्रीशंकरात् प्रागद्वैतवादः' नामक ग्रन्थ (पृष्ठ १३७) में आचार्य ब्रह्मनन्दीके पूर्वोदाहृत वचनका पाठान्तर दिया है. प्रतीत होता है मुद्रणाशुद्धिवश संक्षेपशारीरकसारसंग्रहके बजाय वह मूल संक्षेप-

शारीरक-ग्रन्थगततया मुद्रित हो गया है (द्रष्टव्य वहीं पृष्ठ १४९). बहरहाल वह पाठान्तर इस तरह है—"न असतः उत्पत्तिः अनिष्पाद्यत्वात् नापि सतः प्रवृत्त्यानर्थक्यात् सत्त्वाविशेषात्, अभिव्यक्त्यर्थम् इति चेत् न तस्या अपि सत्त्वात्, प्रवृत्तिनित्यत्वाच्च सदा अभिव्यक्ति प्रसंगः, न संव्यवहारमात्रत्वात्."

इस विषयमें यह कथनीय है कि आचार्य ब्रह्मनन्दि-विरचित ग्रन्थ छान्दोग्य-वाक्य तथा उसपर द्रमिडाचार्यकृत भाष्य, आनन्दगिरी (चोदहवीं शताब्दी) या श्रीअमलानन्द (तेरहवीं शताब्दी) के समय तक तो उपलब्ध थे परन्तु श्रीनृसिंहाश्रम (सोलहवीं शताब्दी) या श्रीमधुसूदन सरस्वती (सोलहवीं शताब्दी) के भी कालमें वे उपलब्ध थे कि नहीं यह तो गवेषणीय है. परन्तु यदि उपलब्ध थे तो यह भी स्वीकारना पडेगा कि इनसे पूर्वकालिक श्रीआनन्दगिरि तथा श्रीअमलानन्द को कमसे कम यह पाठान्तर तो उपलब्ध नहीं था. अन्यथा ब्रह्मनन्दी परिणामवादी थे या विवर्तवादी इस चर्चामें उन्हें युक्तिवादका सहारा लेनेके बजाय उनके वचनको केवल अविकलतया उद्धृत कर देना ही पर्याप्त होता. स्वयं श्रीमुरलीधर पाण्डेय द्वारा इस एक ही वाक्यको सप्तधा उद्धृत करना भी इस पाठान्तरकी सन्दिग्धताको ध्वनित करता है.

संक्षेपशारीरककार श्रीसर्वज्ञात्म (नौवीं/दशवीं शताब्दी) भी ब्रह्मनन्दीके मतका उल्लेख इस तरह करते हैं—

आत्रेयवाक्यमपि संव्यवहारमात्रं
कार्यं समस्तमिति नः कथयांबभूव।
सत्कार्यवादविषयो नहि दोषराशिः
मायामये भवितुमुत्सहते विरोधात्॥

काणाददर्शनसमाश्रयदोषराशिः
दूरान्निरस्त इह संव्यवहारमात्रे।
वेदान्तभूमिकुशलो मुनिरत्रिवंश्यः
तेनाह कार्यमिह संव्यवहारमात्रम्॥

षष्ठप्रपाठकनिबद्धमुदीरितं यत्
तत्सत्यमेव खलु सत्यसमाश्रयत्वात्
अत्रैव यत्पुनरुवाच समुद्रफेन
दृष्टान्तपूर्वकमदो व्यवहारदृष्ट्या॥

पूर्वं विकारमुपवर्ण्य शनैःशनैस्तद्-
दृष्टिं विसृज्य निकटं परिगृह्य तस्मात्।
सर्वं विकारमथ संव्यवहारमात्र-
मद्वैतमेव परिरक्षति वाक्यकारः॥

अन्तर्गुणा भगवती परदेवतेति
प्रत्यग्गुणेति भगवानपि भाष्यकारः
आह स्म यत्तदिह निर्गुणवस्तुवादे
संगच्छते न तु पुनः सगुणप्रवादे॥

(सं. शा. ३।२१७-२२१)

इस विवेचनाशैलिका सावधानीसे विमर्श करने पर यह सुस्पष्टतया झलक सकता है कि श्रीसर्वज्ञात्मको भी श्रीमधुसूदन या श्रीनृसिंहाश्रम द्वारा प्रदत्त पाठान्तर उपलब्ध नहीं था, क्योंकि सत्कार्यवाद या आरंभवाद में उठते दोष विवर्तवादमें नहीं लागू हो पाते यह बतानेके लिये आत्रेय ब्रह्मनन्दीने सद्-सत्पक्षका प्रतिक्षेप कर कार्यको संव्यवहारमात्र अर्थात् सदसद्विलक्षण अनि-र्वचनीय व्यावहारिक सत्य माना है, ऐसा श्रीसर्वज्ञात्म कहना चाहते हैं. परन्तु प्रस्तुत प्रतिपादनशैलिमें स्वयं संक्षेपशारीरककार दो तरहकी बाधाओंका आभास पा रहे हैं : एक तो संभवतः छान्दोग्योपनिषद (६।१।४-६।२।३) श्रुतिवचनोंकी व्याख्या करते हुए आत्रेय ब्रह्मनन्दी "परिणामस्तु स्याद् दध्या-दिवत्" भास्कराचार्योदाहृत विधान कर चुके हैं जो सदसत्पक्षोंके अन्तर्गत सत्कार्यवादका पोषक है. इसी तरह यहां शब्दशः अनुदाहृत किसी वचनमें ब्रह्मनन्दी श्रीशंकराचार्यद्वारा बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य (५।१।१) में प्रत्याख्यात (ननु ब्रह्मणो द्वैताद्वैतात्मकत्वे समुद्रादिदृष्टान्ताः विद्यन्ते, कथम् उच्यते भवता एकस्य द्वैताद्वैतत्वं विरुद्धम् इति. न अन्यविषयत्वात्....अस्याः कल्पनायाः वरम् उपनिषत्परित्यागः) समुद्रफेन दृष्टान्त भी देते हैं ऐसी परिस्थितिमें उन्हें विवर्तवादी मानना कथमपि संगत नहीं होगा. क्योंकि सत्कार्यवादस्वीकृतिमूलक परिणामवादी ही वे सिद्ध होंगे !

अपने बचावमें संक्षेपशारीरककारको कोई स्पष्ट ठोस वचन ब्रह्मनन्दीका, जैसा कि श्रीमधुसूदनोदाहृत पाठान्तरसे भासित हो रहा है, मिला होता तो उपदेशभूमिओंके भेदकी कल्पना न करनी पड़ती. प्रस्तुत सन्दर्भमें सर्वथा

अप्रासंगिक ऐसे "अन्तर्गुणा भगवती परदेवता" ब्रह्मनन्दीके वचनका भाष्यकार द्रमिडाचार्यने 'प्रत्यग्गुणा' अर्थ स्वीकारा है जो सगुणब्रह्मवादके बजाय निर्गुणब्रह्मवादसे संगत विधान है, अतः ब्रह्मनन्दीको परिणामवादी माननेके बजाय विवर्तवादी मान लेना चाहिये (?!) ऐसा कुशकाशावलम्बन करनेको भी बाधित न होना पडता. यदि श्रीनृसिंहाश्रम या श्रीमधुसूदन द्वारा प्रदत्त प्रकटतया सत्कार्यवादविरोधि विधान श्रीसर्वज्ञात्ममुनिके समक्ष उपलब्ध होता तो इतने लम्बे चक्कर लगानेकी उन्हें कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती. इससे सिद्ध होता है कि पाठान्तरकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है.

छान्दोग्यके जिस अंशका, संभवतया, यह वाक्य हो सकता है वहां विवर्तवाद प्रतिपिपादयिषित है या सत्कार्यवाद इस समस्याका समाधान स्वयं श्रीशंकराचार्यके—"अथवा अविवक्षितः इह सृष्टिक्रमः, सत्कार्यम् इदं सर्वम् अतः सद् एकमेव अद्वितीयम् इत्येतद् विवक्षितं, मृदादिदृष्टान्तात्" (छां. शां. भा. ६।२।३) वचनसे हो जाता है.

उपदेशभूमिभेदमूलक उपदेश्यवस्तुधर्मभेदकी कथा तो "नतु वस्तु एवं-नैवम्, अस्ति-नास्ति इति वा विकल्प्यते. विकल्पनास्तु पुरुषबुद्ध्यपेक्षा न वस्तुयाथात्म्यज्ञानं पुरुषबुद्ध्यपेक्षम्. किं तर्हि? वस्तुतन्त्रमेव तत्. नहि स्थाणौ एकस्मिन् स्थाणुः वा पुरुषो अन्यो वा इति तत्त्वज्ञानं भवति. तत्र पुरुषो अन्यो वा इति मिथ्याज्ञानम्. स्थाणुरेव इति तत्त्वज्ञानं वस्तुतन्त्रत्वात्. एवं भूतवस्तु विषयाणां प्रामाण्यं वस्तुतन्त्रम्. तत्रैवं सति ब्रह्मज्ञानमपि वस्तुतन्त्रमेव भूतवस्तु-विषयत्वात्" (ब्र. सू. शां. भा. १।१।२) स्वाभ्युपगत सिद्धान्तविरुद्ध होनेसे वदतोव्याघात रूपा ही है. प्रतिज्ञात ब्रह्मजिज्ञासाके अनन्तर उपदेशभूमिभेद-कल्पनामूलक कहीं ब्रह्मको परिणाम्युपादान तो कहीं विवर्ताधिष्ठान कहना वस्तुमें "एवं-नैवं" के विकल्प खडे करनेमें ही पर्यवसित होता है. मूलतः परिणामवादको अध्यारोप मानकर विवर्तवादको उसका अपवाद मानना भी प्रकारान्तरसे परिणामवादकी श्रौतताका ही उद्घोष है. क्योंकि ब्रह्म शास्त्रैक-गम्य-तर्कागम्य प्रमेय है और शास्त्रतः यदि ब्रह्म परिणाम्युपादान है तो परिणाम-वाद और विवर्तवाद के बीच जो भी तर्कमूलक अन्तर्विरोध भासित होते हों उनसे ब्रह्मकी परिणाम्युपादानता एवं विवर्ताधिष्ठानता रूप विरुद्धधर्माश्रयता ही सिद्ध होगी. अन्यथा लोकबुद्धिका अनुसरण करनेपर परिणाम्युपादानता दुग्धकी

जैसे लोकसिद्ध है वैसे ही विवर्तोपादानता भी शुक्तिके उदाहरणमें लोकसिद्ध धर्म ही है. फिर तो गौडपादोक्त अजातिवाद ही ठीक है. परिणामवाद और विवर्तवाद के बीच किसी एकका पक्षपात निरर्थक वागाडंबर ही केवल सिद्ध होता है.

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विसंगति इस तरहके विवेचनमें यह है कि यदि ब्रह्मनन्दीने व्यवहारभूमिपर स्थित होकर परिणामवादी भाषा या उदाहरण का प्रयोग किया है इस बातपर टिकते हैं तो "परिणामस्तु इति मिथ्यापरिणामाभिप्रायं सूत्रम्" (वेदा. कल्प. १।४।२७) इस बचावको दे पाना शक्य नहीं है. स्वयं संक्षेपशारीरककारका भी यह कहना कि "षष्ठप्रपाठकनिबद्धमुदीरितं यत् ....दृष्टान्तपूर्वकमदो व्यवहारदृष्ट्या" भी सुसंगत विधान रह नहीं जाता है. क्योंकि तब 'परिणाम' शब्दका अर्थ ही विवर्तपरिणाम या सदसद्विलक्षण व्यावहारिक सत्य परिणाम होता है. ऐसी स्थितिमें परिणामवादरूप अध्यारोपके विवर्तवादद्वारा अपवादकी बात फिर निरर्थक सिद्ध हो जायेगी. संक्षेपशारीरककार, जबकि, यह भी कहते हैं कि उपदेशभूमिभेदवशात् पहले परिणामवादका अर्थात् ब्रह्मके परिणाम्युपादान होनेका अध्यारोप किया जा रहा है और बादमें ब्रह्मके विवर्तोपादानताके निरूपण द्वारा उस अध्यारोपका अपवाद होना है—"पूर्वं विकारमुपवर्ण्य शनैःशनैः तद्दृष्टिं विसृज्य निकटं परिगृह्य तस्मात् सर्वं विकारमथ संव्यवहारमात्रमद्वैतमेव परिरक्षति वाक्यकारः" ऐसी स्थितिमें उपदेश भूमिभेदकल्पनया उपदेश्य ब्रह्मके धर्मभेदकी कल्पनामें अध्यारोपकालमें प्रयुक्त पदोंसे अपवादकालिक धर्मोंको विवक्षित माननेपर अध्यारोप ही अशक्य बन जायेगा; तथा अपवाद वदतोव्याघात.

यों संक्षेपशारीरककार तथा कल्पतरुकार की यह दुविधा ही उनके व्याख्यानकी निर्बलताका प्रमाण बन जाती है.

श्रीरामानुजाचार्य-विरचित वेदार्थसंग्रहके आलोचनात्मक संस्करणके सम्पादक-अनुवादक श्री जे. ए. बी. फान ब्यूटनेनने बड़े परिश्रमपूर्वक ब्रह्मनन्दीके यत्र-तत्र बिखरे हुए उद्धृत वचनोंका संकलन वेदार्थसंग्रहके परिशिष्टमें दिया है. इनमेंसे सम्बद्ध चर्चामें उपयोगी कुछ वचनोंपर दृष्टिपात उपकारक होगा. ब्यूटनेनने उनके सम्भावित श्रौत सन्दर्भ तथा द्रमिडभाष्य भी साथ दिये हैं, यहां उन वचनोंको हम साभार उद्धृत करना चाहेंगे.

(१)

श्रुति : अथ य एषोऽन्तरादित्यः हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते....(छान्दो. १।६।६).

वाक्य : हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते इति प्राज्ञः सर्वान्तरः स्यात् लोककामेशोपदेशात् तथोदयात्पाप्मनाम्....स्यात् तद्रूपं कृतकम् अनुग्रहार्थं तच्चेतसाम् ऐश्वर्यात्. रूपं वा अतीन्द्रियम् अन्तःकरणप्रत्यक्ष निर्देशात्.

भाष्य : अञ्जसैव विश्वसृजो रूपं तत्तु न चक्षुषा ग्राह्यं, मनसा तु अकलुषेण साधनान्तरवता गृह्यते. 'न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा मनसा तु विशुद्धेन' इति श्रुतेः. नहि अरूपायाः देवतायाः रूपम् उपदिश्यते. यथाभूतवादि हि शास्त्रम. 'माहारजतं वासः', 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् आदित्यवर्णं तमसः परस्ताद्' इति प्रकरणान्तरनिर्देशाच्च साक्षिणः इत्यादिना. हिरण्मयः इति रूपसामान्यात् चन्द्रमुखवत्. न मयड् अत्र विकारम् आदाय प्रयुज्यते अनारभ्यत्वाद् आत्मनः.

स्पष्टतया हम देख सकते हैं कि वाक्यकार ब्रह्मनन्दी और भाष्यकार द्रमिडाचार्य दोनों ही केवलाद्वैतवादिओंको प्राणप्रिय निर्गुणनिराकार ब्रह्मकी उपासनार्थ रूपकल्पनाके विपरीत परमात्माके अलौकिक अतीन्द्रिय रूपवान् होनेकी बात स्वीकार रहे हैं. यद्यपि पूर्वप्रतिज्ञात शुद्धाद्वैतवादांगभूत नौं वादोंमें से किसी भी वादका साक्षात् समर्थन यहां दृष्टिगत नहीं होता, तथापि क्योंकि संक्षेपशारीरककार "अन्तर्गुणा भगवती परदेवता" तथा तद्भाष्यरूप "प्रत्यग्गुणा" व्याख्यान के आधारपर उन्हें विवर्तवादी सिद्ध करना चाहते हैं, अतः इस सन्दर्भमें श्रीशंकराचार्यके (ब्र. सू. शां. भा. १।१।२०) अभिप्रायसे इन वचनोंकी तुलना आवश्यक हो जाती है.

यथा—

"यदुक्तं हिरण्यश्मश्रुत्वादिरूपश्रवणं परमेश्वरे नोपपद्यते इति, अत्र ब्रूमः—

स्यात् परमेश्वरस्यापि इच्छावशात् मायामयं रूपं साधकानुग्रहार्थं 'माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद सर्वभूतगुणैर्युक्तं मैवं मां ज्ञातुमर्हसि' इति स्मरणात्. अपि च यत्र तु निरस्तसर्वविशेषं पारमेश्वरं रूपम् उपदिश्यते भवति तत्र शास्त्रं—'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' इत्यादि. सर्वकारणत्वात्तु विकारधर्मैरपि कैश्चिद् विशिष्टः परमेश्वरः उपास्यत्वेन निर्दिश्यते—'सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः' इत्यादिना. तथा हिरण्यश्मश्रुत्वादिनिर्देशोपि भविष्यति. यदपि आधारश्रवणात् न परमेश्वरः इति अत्र उच्यते स्वमहिमप्रतिष्ठस्यापि आधारविशेषोपदेशः उपासनार्थो भविष्यति, सर्वगतत्वाद् ब्रह्मणः व्योमवत् सर्वान्तरत्वोपपत्तेः".

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीशंकराचार्यके अनुसार परदेवताके साधकानुग्रहार्थ प्रकट रूप-गुण मायिक विकाररूप हैं जबकि ब्रह्मनन्दी-द्रमिडाचार्य उन्हें अतीन्द्रिय अविकारी स्वयंकृत दिव्य रूप-गुण मान रहे हैं. शास्त्र यथाभूतवादी है अतः शास्त्रोक्त रूप-गुण, नीरूप-निर्गुणके उपासनार्थ उपदेशभूमिभेदमूलक साधनार्थ कल्पित या मिथ्या हैं ऐसी धारणा ब्रह्मनन्दी-द्रमिडाचार्यके वचनोंसे व्यक्त नहीं होती. फलतः रूप-रूपवान् एवं गुण-गुणवान् का सिद्ध होता तादात्म्य, निर्गुण-निराकार ब्रह्मके, आत्यन्तिक एकत्व या अद्वैतका निराकरण कर देता है.

रही बात परमात्माके सर्वप्रत्यगात्मा होनेकी तो वह भी श्रीशंकराचार्यके "यदपि आधारश्रवणात्....सर्वान्तरत्वोपपत्तेः" वाक्यांशसे अन्यान्य विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद या शुद्धाद्वैतवाद के अन्तर्गत भी प्रामाणिकतया तथा सर्वथा मान्यतया दी ही जा सकती है. अतः संक्षेपशारीरककारद्वारा "अन्तर्गुणा भगवती परदेवता" वचनका कुशकाशावलम्बन निष्फल ही सिद्ध होता है.

(२)

श्रुति : सर्वं खलु इदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत. अथ क्रतुमयः पुरुष यथा क्रतुरस्मिंल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत.

(छान्दो. ३।१४।१)

वाक्य : वेदनम् उपासनं स्यात् तद्विषये श्रवणात्....सकृत् प्रत्ययं कुर्यात्

शब्दार्थस्य कृतत्वात् प्रयाजादिवत्....उपासनं स्यात् ध्रुवानुस्मृतिः दर्शनात् निर्वचनात् च. सिद्धं तु उपासनशब्दात्....आत्मा इत्येव तु गृह्णीयात् सर्वस्य तन्निष्पत्तेः.

यह वचन भी नितान्त मननीय है. यद्यपि यहां द्रमिडाचार्यका भाष्य कहीं उद्धृत नहीं हुआ है फिर भी तात्पर्यनिर्णय दुष्कर नहीं है. श्रुतिवचनमें इदंकारसे निर्दिष्ट निखिल दृश्यमान जगत्की ब्रह्मात्मकताके प्रतिपादनपूर्वक उस ब्रह्मात्मकताकी भावनाको दृढ करनेके लिये जगत्की उत्पत्ति-स्थिति-लयहेतुके रूपमें ब्रह्मकी उपासना करनी चाहिये यह समझाया गया है. इस सन्दर्भमें वाक्यकार खुलासा देते हैं कि जगदुत्पत्तिस्थितिलयहेतुतया ब्रह्मकी उपासना करनेका मतलब है ब्रह्मको वैसे जानना. एक बार जान लेनेसे फलसिद्धि नहीं हो जाती है. फलसिद्धिके लिये निरन्तर वैसी उपासना चलती रहनी चाहिये. क्योंकि 'उपासना' का अर्थ होता है—ध्रुवा स्मृति (अविचलित ध्यान). उक्त ब्रह्मका आत्मत्वेन निरन्तर ध्यान करना चाहिये. क्योंकि आत्मा आदि सभी कुछ ब्रह्मसे ही प्रकट हुए हैं.

इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मनन्दीको कार्यकारणके बीच तादात्म्य सर्वथा अभीष्ट था ही, जो न तो केवलाद्वैतमें शक्य है न विशिष्टाद्वैतमें ही. केवलाद्वैतमें जड़ जगतकी ब्रह्मात्मकता बाधार्थसामान्यधिकरणको स्वीकारे बिना शक्य नहीं. सर्वान्तर्गत जड़ वस्तुकी ब्रह्मात्मकता बाधार्थ–सामानाधिकरण्यन्यायेन तथा जीवात्माकी ब्रह्मात्मकता अबाधित वस्त्वैक्येन स्वीकारनेपर तो अर्धजरतीयता दोष स्पष्ट है.

(२)

श्रुति : य इहात्मानमनुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान्कामांस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति (छान्दो. ८।१।६).

वाक्य : देवतासायुज्याद् अशरीरस्यापि देवतावत् सर्वसिद्धिः स्यात्.
सायुज्य मोक्षके बाद भी देवताओंकी तरह सर्वलोकमें अशरीरी

होकर विहरणकी धारणा ब्रह्मनन्दीके केवलाद्वैती होनेकी सम्भावनाको निःशेष कर देती है.

इस तरह हमने देखा कि कैसे ब्रह्मनन्दी, जिनका प्रामाण्य केवलाद्वैती श्रीशंकराचार्य तथा विशिष्टाद्वैती श्रीरामानुजाचार्य दोनो को मान्य है, स्वयं न तो केवलाद्वैती थे और न विशिष्टाद्वैती ही.

श्रीशंकराचार्यद्वारा उल्लिखित वेदान्तकी पञ्चविध विचारधाराके अन्तर्गत भर्तृप्रपञ्चका मत

आचार्य भर्तृप्रपञ्चने बृहदारण्यकोपनिषद्, कठोपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य लिखे थे ऐसा कहा जाता है.*

इनके मतका प्रत्याख्यान श्रीशंकराचार्यने तथा उनके साक्षात् शिष्य श्रीसुरेश्वराचार्यने अपने बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य, उस परके वार्तिक तथा नैष्कर्म्यसिद्धिमें भी अनेक स्थलोंपर किया है.

'श्रीशंकरात्प्रागद्वैतवादः' नामक ग्रन्थके लेखक श्रीमुरलीधर पाण्डेयका (पृष्ठ १७५) कहना है कि भर्तृप्रपञ्च निर्विशेषाद्वैतवादी थे क्योंकि ये विवर्तवाद, मोक्षावस्थामें जीवब्रह्मैक्य तथा लोकव्यवहारकारणतया अविद्याको मान्य करते थे. अतएव श्रीशंकराचार्यने स्वयंके नूतन भाष्यलेखनका औचित्य सिद्धान्तभेदपर आधृत नहीं किया प्रत्युत अन्यान्य गौण हेतुओंपर अवलम्बित किया है. साथही साथ श्रीपाण्डेयजी यह भी (पृष्ठ १७७) स्वीकारते हैं कि भर्तृप्रपञ्चका मत अनेकान्तवाद, नानात्वैकत्ववाद, द्वैताद्वैतवाद, भेदाभेदवाद आदि नामोंसे प्रसिद्ध है. तथा भर्तृप्रपञ्चके मतमें द्वैत अनेकत्व या भेद भी अद्वैत एकत्व या अभेद की तरह सत्य है. ऐसी स्थितिमें या तो निर्विशेषाद्वैतवाद अर्थात् शांकर

---

* द्रष्टव्य : "भर्तृप्रपञ्चभाष्याद् विशेषान्तरमाह" (बृहद्. शां. भा. आ. गि. १।१।१), "ननु भर्तृप्रपञ्चादिभिरेव व्याख्यातत्वाद्..." (कठ. शां. भा. गोपालयतीन्द्रटीका १।१।१), "अथ सत्सम्प्रदायप्रवर्तकं भाष्यकृतं नमति...एवकारेण भर्तृप्रपञ्च भास्करादीन् व्यवच्छिनत्ति" (संक्षे. शारि. सुबो. १।७).

मत में भी इन द्वैत अनेकत्व या भेदको पारमार्थिक स्वीकारना पडेगा अथवा वदतोव्याघात तो सुस्पष्ट है ही.

जहां तक स्वयं श्रीशंकराचार्यका प्रश्न है तो बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य (२।३।६) में भर्तृप्रपञ्चके लिये 'औपनिषदम्मन्या अपि केचित् प्रक्रियां रचयन्ति ....सर्वम् एतत् तार्किकैः सह सामञ्जस्यकल्पनया रमणीयं पश्यन्ति न उपनिषत्सिद्धान्तं सर्वन्यायविरोधं च पश्यन्ति." शब्दावलीके प्रयोगद्वारा भर्तृप्रपञ्चके मतके बारेमें उन्होंने अपना अभिप्राय तो स्पष्ट कर दिया है. कहीं भी नामोल्लेख तो श्रीशंकराचार्य करते नहीं हैं, क्योंकि यत्र-तत्र आलोच्य मत किसका है यह निर्धारण आनन्दगिरि आदि व्याख्याओंके बलपर ही होता है और आनन्दगिरि तो यहां "स्वपक्षम् उक्त्वा भर्तृप्रपञ्चपक्षम् उत्थापयति औपनिषदम्मन्या इति" स्पष्टीकरण देती है, अतः सन्देहका अवकाश नहीं है.

स्वयं श्रीशंकराचार्य इसी भाष्य (३।८।१२) में अपने समयके अनेकविध मतोंका उल्लेख इस तरह करते हैं :

(१) तत्र केचिद् आचक्षते परस्य महासमुद्रस्थानीयस्य ब्रह्मणः अक्षरस्य अप्रचलितस्वरूपस्य ईषत्प्रचलितावस्था अन्तर्यामी, अत्यन्तप्रचलितावस्था क्षेत्रज्ञो यः तं न वेद अन्तर्यामिणम्.

(२) तथा अन्ये पञ्चावस्था परिकल्पयन्ति.

(३) अष्टावस्था ब्रह्मणो भवन्ति इति वदन्ति.

(४) अक्षरस्य एताः शक्तयः इति वदन्ति अनन्तशक्तिमद् अक्षरम् इति.

(५) अन्ये तु अक्षरस्य विकारा इति वदन्ति.

इन पांच मान्यताओंमेंसे प्रथम और पञ्चम मान्यताओंका थोडा और भी विशद विवरण स्वयं श्रीशंकराचार्य इसी बृहदारण्यकभाष्यमें देते हैं. उन्हें भी एक बार दृष्टिगत करके फिर किसी भी विवेचनाके हेतु प्रवृत्त होना उपयुक्त रहेगा.

यथा

"अत्र एके वर्णयन्ति पूर्णात् कारणात् पूर्णं कार्यम् उद्रिच्यते. उद्रिक्तं कार्यं वर्तमानकालेपि पूर्णमेव परमार्थवस्तुभूतं द्वैतरूपेण. पुनः प्रलयकाले पूर्णस्य

कार्यस्य पूर्णताम् आदाय आत्मनि धित्वा पूर्णमेव अवशिष्यते कारणरूपम्. एवम् उत्पत्तिस्थितिप्रलयेषु त्रिष्वपि कालेषु कार्यकारणयोः पूर्णतैव. सा च एकैव पूर्णता कार्यकारणयोः भेदाभेदेन व्यपदिश्यते. एवञ्च द्वैताद्वैतात्मकम् एकं ब्रह्म. यथा किल समुद्रो जलतरंगफेनबुद्बुदाद्यात्मकः एक एव. यथाच जलं तदुद्भवाश्च तरंगफेनबुद्बुदादयः समुद्रभूताएव आविर्भावतिरोभावधर्मिणः परमार्थसत्याएव. सर्वमिदं द्वैतं परमार्थसत्यमेव जलतरंगस्थानीयं समुद्रजलस्थानीयतु परं ब्रह्म."

(बृहद्. शां. भा. ५।१।१)

यह प्रथम मतकी विशद विवेचना है इसी तरह पञ्चम मतकी भी विस्तृत विवेचना श्रीशंकराचार्यने दी है.

"अत्र केचित् परिहारम् आचक्षते—परमात्मा न साक्षाद् भूतेषु अनुप्रविष्टः स्वेन रूपेण किन्तर्हि विकारभावम् आपन्नः विज्ञानात्मत्वं प्रतिपेदे. सच विज्ञानात्मा परस्माद् अन्यो अनन्यः च. येन अन्यः तेन संसारित्वसम्बन्धी, येन अनन्यः तेन 'अहंब्रह्म' इति अवधारणार्हः एवं सर्वम् अविरुद्ध भविष्यति."

(बृहद्. शां. भा. २।१।१)

यद्यपि श्रीशंकराचार्यने इन चिन्तकोंका नामोल्लेख नहीं किया परन्तु भाष्य-व्याख्याकार आनन्दगिरिके अनुसार प्रथम मत भर्तृप्रपञ्चका है. लगता है कि उत्तरकालमें श्रीरामानुजाचार्यके समय श्रीयादवप्रकाश भी भर्तृप्रपञ्चकी परम्पराके समर्थक रहे होंगे. क्योंकि रामानुजमतीय ग्रन्थोंमें शब्दशः ऐसा ही मत भर्तृ-प्रपञ्चके बजाय यादवप्रकाशके नामसे ही वर्णित हुआ है. श्रीयादवप्रकाश श्रीरामानुजाचार्यके विद्यागुरु भी रह चुके थे. अतः उनकी मान्यताके बारेमें रामानुजीय स्रोतोंपर सन्देह अनावश्यक है.

श्रीभर्तृप्रपञ्चके मतको श्रीशंकराचार्य शब्दशः द्वैताद्वैतवादके रूपमें ही प्रस्तुत करते हैं, परन्तु हम स्पष्टीकरण दे चुके हैं कि इन शब्दोंपर न जाकर हमें शुद्धाद्वैतवादांग नौं उपवादोंकी स्वीकृति या अस्वीकृति को कसौटी मानकर चलना है. उसी गवेषणाके लिये अतः हम प्रवृत्त होते हैं.

एतदर्थ उपरिनिर्दिष्ट बृहदारण्यकभाष्यवचनोंके बीच-बीच कोष्ठकविन्यास-

पूर्वक किन-किन पंक्तिओंमे कौन-कौनसे वाद प्रतिपादित हुए हैं यह नामनिर्देश केवल पर्याप्त होगा.

"अत्र एके वर्णयन्ति—पूर्णात् कारणात् पूर्ण कार्यम् उद्रिच्यते (**सत्कारण-सत्कार्यवादः**) उद्रिक्तं कार्यं वर्तमानकालेपि पूर्णमेव (**कार्यकारणतादात्म्यवादः**) परमार्थवस्तुभूतं द्वैतरूपेण. पुनः प्रलयकाले पूर्णस्य कार्यस्य पूर्णताम् आदाय आत्मनि धित्वा पूर्णमेव अवशिष्यते कारणरूपम् (**अविकृतस्वरूपपरिणाम-वादः**) एवम् उत्पत्तिस्थितिप्रलयेषु त्रिष्वपि कालेषु कार्यकारणयोः पूर्णता. सा च एकैव पूर्णता कार्यकारणयोः (**शुद्धाद्वैतवादः**) भेदाभेदेन व्यपदिश्यते (**कार्य-कारणतादात्म्यवादः**). एवञ्च द्वैताद्वैतात्मकम् एकं ब्रह्म (**ब्रह्मवादः—विरुद्धधर्मा-श्रयतावादः**). यथा किल समुद्रो जलतरंगफेनबुद्बुदाद्यात्मकः एकएव. यथाच जलं सत्यं तदुद्भवाश्च तरंगफेनबुद्बुदादयः समुद्रभूताएव (**कार्यकारणतादा-त्म्यवादः**) आविर्भावतिरोभावधर्मिणः (**आविर्भावतिरोभाववादः**) परमार्थसत्या एकएव (**शुद्धाद्वैतवादः**) सर्वम् इदं द्वैतं परमार्थसत्यमेव जलतरंगस्थानीयं समुद्रजलस्थानीयं परं ब्रह्म."

शुद्धाद्वैतवादांगभूत जिन दो वादोंका उल्लेख यहां शब्दशः उपलब्ध नहीं हो रहा है वे हैं (१) अभिन्ननिमित्तोपादानकारणतावाद तथा (२) लीलार्थसृष्टि-वाद. इनकी कमी, इतना सब स्वीकार लेनेके बाद, अब कोई खटकनेवाली बात नहीं है. क्योंकि वेदान्ती होनेके कारण भर्तृप्रपञ्चने, जो ब्रह्मसूत्रोंपर भाष्य लिखा था वह आज उपलब्ध होता तो निश्चयेन **प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुप-रोधात** (१।४।२३) **भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत् स्याल्लोकवत्** (२।१।१३) **उप-संहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि** (२।१।२४) **तथा लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्** (२।१।३३) आदि सूत्रोंपर उनके भाष्यमें उक्त दोनों वाद उपलब्ध होते ही. कट्टर केवलाद्वैती होनेके बावजूद श्रीशंकराचार्यको भी इन सूत्रोंपर भाष्य लिखते समय अपनी भाषा बदलनी पडी है. यह सम्बद्ध स्थलोंके भाष्यांशोंके अवलो-कनसे आश्चर्यजनकतया स्फुट है. न केवल इतना ही अपितु अपने भाषापरि-वर्तनकी सफाई भी उन्हें देनी पडी है. इन शब्दोंमे—"सूत्रकारोपि परमार्था-भिप्रायेण 'तदनन्यत्वम्....' इति आह व्यवहाराभिप्रायेण तु 'स्याल्लोकवद्' इति महासमुद्रस्थानीयत्वं ब्रह्मणः अप्रत्याख्यायैव कार्यप्रपञ्चं परिणामप्रक्रियां च आश्रयति" (ब्र. सू. शां. भा. २।१।१४). तथा "यत् पुनः इदम् उक्तम् ईक्षा-

पूर्वकं कर्तृत्वं निमित्तकारणेष्वेव कुलालादिषु लोके दृष्टं, न उपादानेषु इत्यादि, तत् प्रत्युच्यते न लोकवद् इह भवितव्यम्. नहि अयम् अनुमानगम्यो अर्थः शब्दगम्यत्वात्तु अस्य अर्थस्य यथाशब्दम् इह भवितव्यम. शब्दश्च ईक्षतुः ईश्वरस्य प्रकृतित्वं प्रतिपादयति इति अवोचामः पुनश्च एतत् सर्वं विस्तरेण प्रतिवक्ष्यामः" (ब्र. सू. शां. भा. १।४।२७). इसके बाद पूर्वोल्लिखित (२।१।१४) सूत्रमें श्रीशंकराचार्य यह प्रतिविधान करते हैं "ब्रह्मप्रकरणे सर्वधर्मविशेषरहितब्रह्मदर्शनादेव फलसिद्धौ सत्यां यत् तत्र अफलं श्रूयते ब्रह्मणो जगदाकारपरिणामित्वादि तद् ब्रह्मदर्शनोपायत्वेनैव विनियुज्यते 'फलवत्संनिधौ अफलं तदंगम्' इतिवत्." स्पष्ट है कि शब्दैकगम्य ब्रह्मके स्वरूपके निर्धारणमें 'फलवत्संनिधौ अफलं तदंगम्' की आनुमानिक प्रक्रियाका अवलम्बन कर शब्दको स्वार्थमें अप्रमाण मान लिया गया है. लिहाजा श्रीवाचस्पति मिश्र भी किंकर्तव्यविमुग्ध होकर कह बैठे हैं "इयं च उपादानपरिणामादिभाषा न विकाराभिप्रायेण अपितु यथा सर्पस्य उपादानं रज्जुः एवं ब्रह्म जगदुपादानं द्रष्टव्यम....नहि वाक्यैकदेशस्य अर्थः अस्तीति" (भामती १।४।२७).

धैर्यपूर्वक यहां विचारणीय यही है कि यदि उपादानपरिणामादि शब्द विवर्तोपादान या मिथ्यापरिणाम के वाचकतया सूत्रकार एवं श्रीशंकराचार्य को विवक्षित हों तो "सूत्रकारोपि परमार्थाभिप्रायेण 'तदनन्यत्वम....' इति आह व्यवहाराभिप्रायेण....परिणामप्रक्रियां च आश्रयति" प्रभेदको दिखाना सर्वथा निरर्थक सिद्ध होता है. क्योंकि तब तो 'परिणाम' शब्द ही सफल मिथ्यापरिणामवाचक है.

अतएव इसी विसंगतिको दूर करनेके लिये कल्पतरुकार श्रीवाचस्पतिकी इन पंक्तिओंका इन्हें शांकरभाष्यका व्याख्यान न मानकर ब्रह्मनन्दी द्वारा प्रयुक्त "परिणामस्तु स्याद्" के व्याख्यानतया अन्ययानयन करते हैं. इसकी युक्तायुक्तताका विमर्श तो हम कर ही चुके हैं.

कुल मिलाकर विवर्तवादिओंके लिये कैसे दुःसमाधेय ये वचन हैं, इसका प्रमाणोदाहरण उपस्थापित करते हैं. ऐसी स्थितिमें भर्तृप्रपञ्च जो घोषित परिणामवादी थे उन्हें ब्रह्मसूत्रके ये अधिकरण कितने सुगमतापूर्वक शुद्धाद्वैतवादी व्याख्यान लिखनेके लिये अपरिहार्य होंगे उसका अनुमान सहज सम्भव है. जिन युक्तिओंद्वारा श्रीशंकराचार्य भर्तृप्रपञ्चके मतका निराकरण करते

हैं वे यदि प्रामाणिक हों तो व्यवहाराभिप्रायक सूत्रभाष्यके वचन भी निराकृत होंगे ही. ऐसी स्थितिमें उनकी ब्रह्मदर्शनोपायता सिद्ध नहीं होगी. वैसे किसी भी अप्रामाणिक प्रक्रिया द्वारा उपपादनारम्भको अनुमति देनेपर तो व्यवहाराभिप्रायसे वैशेषिकाभिमत प्रक्रियाद्वारा भी जगद् तथा ब्रह्म के सम्बन्धका निरूपण शक्य होना चाहिये था. यदि वैशेषिक प्रक्रियाकी तुलनामें सांख्यप्रक्रिया सदृशतर होनेसे उसे अपवादार्थ अध्यारोपतया उपादेयतर माना गया है⊕ ऐसा कहते हैं तो विज्ञानवादाभिमत जगत्की स्वप्नोपमता△ तथा शून्यवादाभिमत पारमार्थिक तत्त्वकी चतुष्कोटि-विनिर्मुक्तता# तो और भी सदृशतम एवं निकटतम सिद्धान्त होनसे उनके अध्यारोपपुरस्सर भी अपवाद शक्य था ही सो क्यों नहीं अपनाई गई यह प्रक्रिया?

प्रतीत होता है कि श्रीगोडपादके द्वारा उपदिष्ट केवलाद्वैतप्रक्रियापर उनके स्वयंके समयसे ही विद्वानोंने बौद्धसाम्यमूलक प्रच्छन्नबौद्धताका आरोप लगाना शुरु कर दिया होगा. अतएव श्रीगौडपादको भी कहना पडा कि "नैतद् बुद्धेन भाषितम्" (मा. कारि. ४।९९). स्वयं श्रीशंकराचार्यको भी स्वयं ऐसे आरोपोंका सामना करना पडा था यह उनके भी उद्गारोंके विमर्शपर सिद्ध होता है.

⊕ द्रष्टव्य : "आरम्भसंहतिविकारविवर्तवादानाश्रित्य वादिजनता खलु वावदीति, आरम्भसंहतिमते परिहृत्य वादौ द्वावत्र संग्रहपदं नयते मुनीन्द्रः... विवर्तवादस्य हि पूर्वभूमिः वेदान्तवादे परिणामवादः व्यवस्थितेऽस्मिन् परिणामवादे स्वयं समायाति विवर्तवादः, उपायमातिष्ठति पूर्वमुच्चैः, उपेयमाप्तुं जनता यथैव, श्रुतिर्मुनीन्द्रश्च विवर्तसिद्धये विकारवादं वदतस्तथैव" (सं. शा. २।५७-६२).

△ द्रष्टव्य : "ज्ञानज्ञेयज्ञातृभेदरहितं परमार्थतत्त्वम् अद्वयम् एतत् न बुद्धेन भाषितं यद्यपि बाह्यार्थनिराकरणं ज्ञानमात्रकल्पना च अद्वयवस्तुसामीप्यम्" (मां. कारि. भा. ४।९९)

द्रष्टव्य : "अस्ति नास्त्यस्ति नास्तीति नास्ति नास्तीति वा पुनः चलस्थिरोभयाभावैरावृणोत्येव बालिशः कोटयश्चतस्र एतास्तु ग्रहैर्यासां सदावृतः भगवानाभिरस्पृष्टो येन दृष्टः स सर्वदृक्" (मां. कारि. ४।२३-८४)

यथा

"शून्यमेव तर्हि तत्....परमार्थसद् अद्वयं ब्रह्म मन्दबुद्धीनाम् असद् इव प्रतिभाति" (छां. शां. भा. ८।१।१).

संक्षेपशारीरककार भी अतएव अतीव रमणीय श्लोकरचनाकौशल्यसे कहते हैं—

ननु शाक्यभिक्षुसमयेन समः प्रतिभात्ययं च भवतः समयः।
यदि बाह्यवस्तु वितथं नु कथं समयाविमौ न सदृशौ भवतः॥
यदि बोधएव परमार्थवपुः ननु बोध्यमित्यभिमतं भवति।
ननु चाश्रितं भवति बुद्धमुनेः मतमेव कृत्स्नमिह मस्करिभिः॥

(सं. शा. २।२५-२६)

यही बात अन्य भी कह रहे थे "ये तु बौद्धमतावलम्बिनो मायावादिनः" (ब्र. सू. भास्क. भा. २।२।२९) तथा "वेदोऽनृतो बुद्धकृतागमोऽनृतः प्रामाण्यमेतस्य च तस्य चानृतम्, बोद्धाऽनृतो बुद्धिफले तथाऽनृते यूयं च बौद्धाश्च समानसंसदः" (यादवप्रकाश).

इसमें लक्ष्यमें रखनेके लायक बात तो यह है कि केवलाद्वैतवादी भी द्वैताद्वैतवादपर जैनमतावलम्बी होनेका आरोप लगाते आये हैं.⊕ वैसे तो जैनमतकी सात भंगिमाओंमें से एक भंगिमा "स्याद् अद्वैतम्" अथवा "स्याद् अवक्तव्यम्" तो केवलाद्वैतिओंको भी मान्य होनी चाहिये और "स्याद् द्वैतम्" केवलद्वैतिओंको भी. ऐसी स्थितिमें "स्याद् द्वैतं च अद्वैतं च" श्रीभास्कराचार्य भी स्वीकारते हों तो कोई कारण नहीं बनता जैनमतावलम्बनका. फिर भी मान लिया जाये कि द्वैताद्वैतवाद यत्किञ्चित् सादृश्यवशात् जैनमतावलम्बन है. तो यत्किञ्चित् सादृश्यवशात् मायावाद भी बौद्धमतानुसरण क्यों नहीं? बावजूद इसके आरम्भसे केवलाद्वैती चिन्तक अपना यत्किञ्चित् वैसादृश्य दिखलाकर अबौद्धता सिद्ध करते रहे हैं जो श्रीभास्कराचार्य भी सुकरतया दिखला सकते थे.

⊕ अहो माहात्म्यं प्रज्ञायाः नमोऽस्तु ब्रह्मवादिभ्यः क्षपणकशिष्येभ्यः।

(नैष्क. सि. चं. १।७९)

यह तो एक स्पष्ट हकीकत है सभी दार्शनिक मतोंमें अपनेसे विरुद्ध मतके साथ भी कुछ न कुछ साम्य तो रह सकता ही है और सरलतासे खोजा भी जा सकता है. ऐसी स्थितिमें केवलाद्वैतवाद भी किन्हीं अंशोंमें बौद्ध मतके साथ साम्य रखता हो तो वह इतने उद्विग्न होनेकी कोई बात नहीं है. 'साम्य' का अर्थ होता है "तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयोधर्मवत्त्वम्" क्योंकि भेदके बिना साम्य संभव ही नहीं. अतः यत्किञ्चित् वैसादृश्य दिखलाकर अन्तमें जो भेद सिद्ध किया जाता है वह तो सिद्धसाधन है. अतएव श्रीशंकराचार्यका ये स्पष्टीकरण भी कि—

"न तावद् उभय(मूर्तामूर्त)प्रतिषेधः उपपद्यते शून्यवादप्रसंगात्. कञ्चिद् हि परमार्थम् आलम्ब्य अपरमार्थः प्रतिषिध्यते, यथा रज्ज्वादिषु सर्पादयः. तच्च परिशिष्यमाणे कस्मिंश्चिद् भावे अवकल्पते. उभयप्रतिषेधे तु को अन्यो भावः परिशिष्येत. अपरिशिष्यमाणे च अन्यस्मिन् य इतर प्रतिषेद्धुम् आरभ्यते प्रतिषेद्धुम् अशक्यत्वात् तस्य परमार्थत्वापत्तेः प्रतिषेधानुपपत्तिः" (ब्र. सू. शां. भा. ३।२।२२)

अथवा

"नहि अयं सर्वप्रमाणसिद्धो लोकव्यवहारः, अन्यत् तावत् अनधिगम्य, शक्यते अपह्नोतुम् अपवादाभावे उत्सर्गप्रसिद्धे" (ब्र. सू. शां. भा. २।२।३१)

—भी सिद्धसाधन है इसमें सन्देह नहीं है.

यह तो स्पष्ट है कि सत् तथा असत् उभयके प्रतिषेधके बावजूद न तो सदसद्विलक्षण मायाको शून्य माना जाता है और न माण्डूक्यकारिका (४।८३।८४) वर्णित चतुष्कोटीप्रतिषेधके बावजूद भी ब्रह्मको ही शून्य कहा जाता है.

वैसे तो माध्यमिक भी अपने शून्यतत्त्वके लिये "अभावावसानप्रतिषेध" (ब्र. सू. शां. भा. ३।२।२२) होना स्वीकारते नहीं हैं. यथा—

"न पुनः 'अभाव' शब्दस्य यो अर्थः स 'शून्यता' शब्दार्थः. 'अभाव' शब्दार्थं च शून्यतार्थम् इति अध्यारोप्य भवान् अस्मान् उपालभते. तस्मात्

'शून्यता' शब्दार्थमपि न जानाति." (मध्यमकशास्त्रप्रसन्नपदा २४।७).△

फिर भी किन्हीं अनवगत कारणवशात् स्वप्रकाश शान्त अवाच्य निर्विशेष अद्वैत औपनिषदिक ब्रह्मको "अपरप्रत्ययं शान्तं प्रपञ्चैरप्रपञ्चितं निर्विकल्पमनानार्थम् एतत् तत्त्वस्य लक्षणम्" (मध्यमकशास्त्र १८।९) वर्णित आनुमानिक शून्यसे भिन्न तो माना जा सकता है किन्तु सर्वथा विसदृश तो नहीं.

हाल ही में बौद्धोंपर 'प्रच्छन्न वेदान्ती' होनेका आरोप लगना प्रारम्भ हुआ है, अतः प्राचीन बौद्ध "नित्यज्ञानविवर्तोऽयं क्षितितेजोजलादिकः आत्मा तदात्मकश्चेति संगिरन्तेऽपरे पुनः तेषाम् अल्पापराधं तु दर्शनं नित्यतोक्तितः" (तत्त्वसं. ३२८–३३०) बेझिझक अपना साम्य कबूल कर लेते हैं. परन्तु 'प्रछन्नबौद्ध' होनेके आरोपसे बचनेके चक्करमें कई केवलाद्वैती विचारक अपना बौद्ध मतसे साम्य (अभेद नहीं !) स्वीकारनेमें भी कतराने लग गये थे और आज भी कतराते हैं (द्रष्टव्य : श्रीशंकरात्प्रागद्वैतवाद पृष्ठ १७-२२ तथा श्रीसंगमलाल पाण्डेय लिखित प्रीशांकर अद्वैत फिलॉसफी पृष्ठ ३१०-३२९). मूलमें यही कारण है कि अध्यारोपतया परिणामवाद स्वीकार कर अपवादतया विवर्तवाद प्रतिपिपादयिषित माना गया है.

यही कारण है कि स्पष्टाक्षर श्रुति-सूत्रका अन्यथानयन करनेके बाद कई प्राचीन या अर्वाचीन केवलाद्वैतवादी जगत्सत्यत्व द्वैतपारमार्थिकत्व, अद्वैतपारमार्थिकत्व आदि सर्वथा विपरीत धारणावाले भर्तृप्रपञ्चको भी मायावादी सिद्ध करनेकी धांधली करते हैं. वह भर्तृप्रपञ्च आदिके सम्प्रदायकी सर्वमान्यताके साथ स्पर्धा ही प्रतीत होती है.⊕

अतएव इससे सिद्ध होता है कि उस समय वेदान्ततया शुद्धाद्वैतवाद ही

△ इसकी विस्तृत विवेचना प्रस्तुत लेखक द्वारा लिखित 'श्रीवल्लभाचार्यके दर्शनका यथार्थ स्वरूप' ग्रन्थके पञ्चम अध्यायमें देखी जा सकती है.

⊕ द्रष्टव्य : "सम्प्रदायविदस्त्वत्र नानात्वैकत्ववादिनः भिन्नाभिन्नात्मकं ब्रह्म नामरूपादिवज्जगुः" (बृ. भा. वार्ति. १।६।४६) "भागभागिविभागेन...व्याचक्षते महात्मानः सम्प्रदायबलात् किल" (वहीं १।४।९५० तथा श्रीशंकरात्प्रागद्वैतवादः पृष्ठ १८८–१८९).

बहुमान्य सम्प्रदाय था. इस सम्प्रदायकी तुलनामें वाक्यपदीयकार भर्तृहरिका ⊕ अनुकरण कर श्रीगोडपादद्वारा प्रवर्तित वेदान्तकी नूतन व्याख्याशैली, उसके प्रशंसक तथा समालोचक सभीकी निगाहोंमें बौद्ध तथा औपनिषदिक धारणाओंके समन्वयका स्तुत्य अथवा निन्दनीय प्रयास थी. यह अधोलिखित उद्धरणावलीके अवलोकनसे सुस्पष्ट हो जाता है :

प्रशंसक

१) शान्तरक्षित तथा कमलशील

नित्यज्ञानविवर्तोऽयं क्षितितेजो जलादिकः आत्मा तदात्मकश्चेति संगिरन्तेऽपरे पुनः ग्राह्यलक्षण संयुक्तं न किञ्चिदिह विद्यते विज्ञानपरिणामोऽयं तस्मात्सर्वः समीक्ष्यते. तेषामल्पापराध तु दर्शनं नित्यतोक्तितः (शान्तरक्षित).

अपरे अद्वैतदर्शनावलम्बिनश्च औपनिषदिकाः .... नित्यैकज्ञान स्वभावम् आत्मानं कल्पयन्ति अतः तेषामेव मतम् उपदर्शयन् आह नित्येति. (कमलशील).

(तत्वसं. पञ्जि. ३२८-३३०)

समालोचक

१) आचार्य धर्मकीर्ति तथा कर्णगोमी

आगमभ्रंशकारिणाम् आहोपुरुषिकया तद्दर्शनविद्वेषेण वा तत्प्रतिपन्नखलीकरणाय धूर्तव्यसनेन अन्यतो वा कुतश्चित् कारणात् अन्यथारचनासम्भवात् (धर्मकीर्ति).

यथा महायानविद्विष्टानां महायानप्रतिरूपक-सूत्रान्तर-रचनं तत्प्रतिपन्नखलीकरणाय. तस्मिन् दर्शने यः प्रतिपन्नः पुरुषः तस्य खलीकरणाय अन्यथारचनासम्भवः. तत्प्रतिपन्नखलीकारएव कथं?....व्यसनम् इदं धूर्तानां यत् परः खलीकर्तव्यः.(कर्णगोमी).

(प्रमाणवार्तिक सव्याख्य ३।३२२).

⊕ द्रष्टव्य : "भर्तृहरि भारतवर्षके पांचों भागोंमें प्रसिद्ध था. आठों दिशाओंमें उसकी ख्याति फैली हुई थी. उसे बौद्धोंकी रत्नत्रयीमें पूर्ण निष्ठा थी तथा आत्मशून्यता एवं धर्मशून्यता का ध्यान लगाता था. बौद्ध धर्ममें दीक्षित होनेके लिये वह भिक्षु भी बना था किन्तु पुनः सांसारिक कामनाओंके वशीभूत होकर उसे सात बार भिक्षुवेश त्यागना पडा...उसके आत्मोपालंभका यह श्लोक प्रसिद्ध है..."
(इत्सिंग : बुद्धधर्मका वर्णन—जैसा भारत आदि देशोंमें अनुष्ठान होता है. परिच्छेद ३४।७)

२) स्वयं श्रीशंकराचार्य

ज्ञानज्ञेयज्ञातृभेदरहितं परमार्थतत्त्वम् अद्वयम्. एतद् न बुद्धेन भाषितं **यद्यपि बाह्यार्थनिराकरणं ज्ञानमात्रकल्पना च अद्वयवस्तुसामीप्यम् उक्तम्.**
(माण्डू. कारि. भा. ४।९९).

३) श्री सुरेश्वराचार्य तथा आनन्दगिरि

अनित्यदुःखशून्यत्वं पदार्थानां ब्रुवन् स्फुटं बुद्धोपि रागाद्युच्छित्तौ यतते **न आत्मनिह्नुतौ** (सुरेश्वराचार्य).

पदार्थानाम् अनित्यत्वाद्युक्त्या तद्वैराग्यद्वारा प्रत्यग्ज्ञाने वैनाशिकं दर्शनं पर्यवसितं....अतो न तद्दर्शनं नैरात्म्यसाधकम्.... (आनन्दगिरि).
(बृहद्. वार्ति. १।४।४१०-४११).

४) श्रीउदयनाचार्य

न ग्राह्यभेदमवधूय धियोस्ति वृत्तिस्तद्बाधके बलिनि वेदनये जयश्री, नोचेदनित्यमिदमीदृशमेव विश्वं तथ्यं तथागतमतस्य तु कोऽवकाशः.
(आत्मतत्त्वविवेक विज्ञानवादोपसंहार कारिका).

२) श्रीभास्कराचार्य

विगीतं विच्छिन्नमूलं महायानिकबौद्धगाथितं मायावादं व्यावर्णयन्तो लोकान् व्यामोहयन्ति.
(ब्र. सू. भास्क. भा. १।४।२५).

३) श्रीशालिकनाथमिश्र

अत एषोपि माहायानिकपक्षानुप्रवेशाद् ब्रह्मवादिनां मोहएव.
(प्रक. पञ्चि, प्रकरण ८).

४) श्रीयादवप्रकाश

वेदोऽनृतो बौद्धकृतागमोऽनृतः प्रामाण्यमेतस्य च तस्य चानृतं, बोद्धानृतो बुद्धिफले तथानृते, यूयं च बौद्धाश्च समानसंसदाः.
(४३ वाद शतदूषणीमें उद्धृत).

५) श्रीपार्थसारथिमिश्र

तद् वरम् अस्माद् मायावादाद् माहायानिकवादः
(शास्त्रदीपिका १।१।५).

६) श्रीरामानुजाचार्य

ज्ञानमात्रमेव परमार्थम् इति साधयतः सर्वलोकोपहासकारणं भवन्ति. वेदवादछद्मप्रच्छन्नबौद्धनिराकरणे निपुणतरं प्रपञ्चितम्.
(ब्र. सू. रा. भा. २।२।२७).

५) श्रीहर्ष

एवञ्च सौगतब्रह्मवादिनोः अयं विशेषः यद् आदिमः सर्वमेव अनिर्वचनीयं वर्णयति....विज्ञान-व्यतिरिक्तं पुनः इदं विश्वं सदसद्भ्यां विलक्षणं ब्रह्मवादिनः संगिरन्ते.

(खण्डनखण्डखाद्य परिच्छेद प्रथम).

६) चित्सुखमुनि तथा प्रत्यक्स्वरूप

एतेन इदम् अपास्तं यद् आहुः भट्टाचार्याः—

"संवृतेर्नतु सत्यत्वं सत्यभेदः कुतोन्वयं, सत्या चेत् संवृतिः केयं मृषा चेत् सत्यता कथं? सत्यत्वं नच सामान्यं मृषार्थ-परमार्थयोः विरोधान्नहि वृक्षत्वं सामान्यं वृक्ष-सिंहयोः."

वस्तुतः असत्यस्यैव यावद्बाधं देहात्मभाववत् लौकिकवैदिक व्यवहारांगतया सत्यत्वेन व्यवहारात् (चित्सुख).

व्यावहारिकसत्त्वं नाम न सत्वविशेषः अपितु एवंविधज्ञानविषयत्वमिति अनेनैव भट्टपादोक्त-दूषणमपि-अपास्तम् इति आह एतेन इदम् इति. 'संवृतिसत्यम्' इति यद् बौद्धैः उच्यते (प्रत्यक्स्वरूप).

(चित्सुखी ११८).

७) श्रीमध्वाचार्य

नच शून्यवादिनः सकाशाद् वैलक्षण्यं मायावादिनः व्यावहारिक-सत्यस्य तेनापि अंगीक्रियमाणत्वात्....नच मायावादिनो भावत्वं नाम धर्मः—नच शून्य-वादिनः शून्यत्वं नाम धर्मः.

(तत्त्वोद्यत).

८) श्रीकृष्णमिश्र

प्रत्यक्षादिप्रमासिद्ध-विरुद्धार्थाभिधायिनः वेदान्ताः यदि शास्त्राणि बौद्धैः किमपराध्यते?

(प्रबोधचन्द्रोदय २१४).

९) श्रीवेदान्तदेशिक

सांख्यसौगत - चार्वाकसंकराच्छंकरोदयः दूषणान्यपि तान्यत्र भूयस्तदधिकानि च.

(न्यायसिद्धाञ्जन).

१०) श्रीपतिभगवत्पादाचार्य

तस्माद् विज्ञानात्मकबुद्धमतवद् अद्वैतमपि अविचारितरमणीयम्. तदुभयोरपि जगज्जीवेश्वर-प्रपञ्च-मिथ्यात्वम् अद्वयवादं च अंगीकारात्, तद् उभयं तुल्यम् इति निश्चितम्.

(ब्र. सू. श्रीक. भा. २।२।२५).

७) **श्रीभारतीतीर्थ**

बाधाद् उर्ध्वं तु भवत्येव शून्यत्वम्.
(वि. व. प्र. सं. वर्ण. १).

८) **श्रीमधुसूदनसरस्वती**

इदम् उपलक्षणं वस्तुतः ब्रह्मभिन्ने शून्यवादिभिः अस्माकं साम्यम् इष्टम् इत्यपि ध्येयम्.

(अद्वैतसिद्धि–मिथ्यात्व प्रकरण).

११) **श्रीविज्ञानभिक्षु**

येतु रज्जुसर्पादिवत् प्रपञ्चस्य अत्यन्ततुच्छत्वम् इच्छन्ति तेतु बौद्धप्रभेदाएव "मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव" इत्यादि पुराणवाक्यात्.

(ब्र. सू. विज्ञा. भा. १।१।३).

आचार्य धर्मकीर्ति तथा उसके व्याख्याकार कर्णगोमी महायानकी अनुयायिजनताको महायानसे विमुख करनेवाले ग्रन्थोंकी रचनाकी जो चर्चा कर रहे उससे यह सहज संभाव्य है कि उनका तात्पर्य श्रीगौड़पादकी माण्डूक्य-कारिकाके बारेमें हो. यह एक ऐतिहासिक ही नहीं वर्तमानकालमें भी बहुधा दृष्टिगत होता तथ्य है कि जहां जब जिस देव, साधनाप्रणाली या सम्प्रदाय की बहुजनमान्यता होती है वहां उसकी प्रशंसाके द्वारा ही जनताको केवलाद्वैतवादी उपदेशक अपने सिद्धान्तकी ओर आकृष्ट करते देखे जाते हैं, "असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते" न्यायसे. अतः यह सहज संभव है कि तब भारतवर्षमें बौद्ध धर्मकी व्यापक जनप्रियताके प्रतीकार रूपेण विज्ञानवादसे जगन्मायिकत्व तथा शून्यवादसे निर्विशेष वस्तुके परमार्थ होनेकी धारणा स्वीकार ली गई. उपनिषद् जो जगत्परिणाम्युपादानतया ब्रह्मका वर्णन निःसन्दिग्ध शब्दोंमें कर रहे थे उसे निर्विशेषाधिष्ठानकी बलिवेदी-पर अध्यारोपतया अन्यथानयनद्वारा बलिदान चढा दिया गया. और हम देख सकते हैं कि इस तरह बौद्धोंकी विग्रहव्यावर्तनी नीतिका मुकाबला करनेको बौद्धोंको ही विवश कर दिया—"स्वसिद्धान्तव्यवस्थासु द्वैतिनो निश्चिता दृढम् परस्परं विरुध्यन्ते तैरियं न विरुध्यते" (माण्डू. कारि. ३।१७). मजेदार बात तो इसमें यही है कि यही बात शून्यवादकी ओरसे निर्विशेषब्रह्म-वादके बारेमें भी कही जा सकती है और निर्विशेषब्रह्मवाद द्वारा शून्यवादके बारेमें भी !

इस तरह हम देख सकते हैं ईश्वरास्तित्व तथा वेदप्रामाण्य को स्पष्ट शब्दोंमें अस्वीकार करनेके बजाय भूतकालमें जैसे बुद्धने भी उन्हें अव्याकृत प्रश्न कहकर अन्तमें, धर्मकीर्तिवचनानुसार, वेदमार्गप्रतिपन्नखलीकरणका चमत्कार आसेतु-आहिमाद्री कर दिखाया था, वही पुनः एकबार बौद्धमार्गप्रतिपन्नखली-करणार्थ श्रीगौडपाद तथा श्रीशंकराचार्यने भी कर दिखाया। कोई भी वेदमार्ग-प्रतिपन्न श्रीगौडपादादि मायावादिओंसे अतः उऋण नहीं हो सकता. प्रश्न श्रीगौडपाद-श्रीशंकराचार्यद्वारा की गई वैदिक मार्गकी पुनःप्रतिष्ठाके अमूल्यांकनका नहीं है, प्रश्न है उपनिषद्वचनोंके स्वारसिक अभिप्रायका. अस्तु.

भर्तृप्रपञ्चके मतकी विस्तृत जानकारीके हेतु श्रीसुरेश्वराचार्यकृत बृहदा-रण्यकभाष्यवार्तिकके अधोनिर्दिष्ट स्थल उपकारक हो सकते है :

यथा

१।१।१६९-१७३, १।४।६९३, १।४।११६८-११७५, १।४।१६६४-१६६९, १।४।१६९७-१७०७, १।६।४६-७७, २।१।५२४-५३९, २।३।४८-१२४, तथा २।५।६७-७३ इत्यादि स्थलोंके अवलोकनसे भर्तृ-प्रपञ्चकी शुद्धाद्वैतवादिता सिद्ध होती है.

शास्त्रदीपिका (१।१।५) गत "केचित्तु औपनिषदाः....जीवभेदात् च बन्धमुक्तिव्यवस्थापि उपपन्ना" ग्रन्थांशद्वारा जिस मतका प्रतिपादन उपलब्ध होता है वह भी भतृप्रपञ्चका ही मतसंकलन लगता है. महाप्रभुके सिद्धान्तका इस निरूपणसे नितान्त साम्य प्रकट ही है. तत्त्वसंग्रह (पुरुषपरीक्षाकारि. १५३-१७०) में भी शान्तरक्षित तथा कमलशील वेदवादीके मततया जिस विचार धाराका वर्णन कर रहे उससे शुद्धाद्वैतवेदान्तकी प्राचीनता सिद्ध होती है.

स्वसम्प्रदायबलाभिमानी आचार्य ब्रह्मदत्त

आचार्य ब्रह्मदत्तके बारेमें नैष्कर्म्यसिद्धिकार श्रीसुरेश्वराचार्य, जो आद्य श्रीशंकराचार्यके साक्षात् शिष्य हैं, एक मजेदार बात कहते हैं कि उसे अपने सम्प्रदायके सत्सम्प्रदाय होनेकी धारणाके कारण बहुत अभिमान है— "केचित् स्वसम्प्रदायबलावष्टम्भाद् आहुः यद् एतद्वेदान्तवाक्याद् 'अहं ब्रह्म' इति विज्ञानं समुत्पद्यते तत् नैव स्वोत्पत्तिमात्रेण अज्ञानं निरस्यति, किन्तर्हि

अहनि-अहनि द्राधीयसा कालेन उपासीनस्य सतो भावनोपचयात् निःशेषम् अज्ञानम् अपगच्छति, 'देवो भूत्वा देवानप्येति' इति श्रुतेः" (नैष्क. सि. १।६७).

इससे सिद्ध होता है कि श्रीशंकराचार्यके समय तक प्राचीन कालसे चले आ रहे ब्रह्मपरिणामाद्वैतवादी वेदान्ती अर्थात् ब्रह्मको एकमेवाद्वितीय माननेके साथ-साथ जगत्को ब्रह्मका स्वरूपपरिणाम माननेवालोंका सम्प्रदाय प्रबल रहा होगा. ब्रह्मविवर्ताद्वैतवादके आद्य प्रवर्तक चाहे शब्दब्रह्मके सन्दर्भमें भर्तृहरि हों अथवा गौड़पाद, इतना तो निश्चित है कि श्रीशंकराचार्यद्वारा बहुप्रतिष्ठित मायावादकी नूतन धारणाको तब तक सत्सम्प्रदायतया सम्पूर्ण मान्यता मिल नहीं पाई थी. अतएव तब सत्सम्प्रदायबलके बजाय सद्युक्तिबलकी दुहाई नैष्कर्म्यसिद्धिव्याख्याकारको देनी पड़ी है :

"केचिद् ब्रह्मदत्तादयः सम्प्रदायबलावष्टम्भात् नतु प्रमाणयुक्तिबलावष्टम्भात्. ननु कथं तर्हि प्रमाणाद्यभावे सम्प्रदायबलम्? न अयं दोषः यतः 'सम्प्रदाय-बलेन' सत्सम्प्रदाय उच्यते" (नैकर्म्यसिद्धिविद्यासौरभीका व्याख्यांश जो हिरयन्नालिखित नै. सि. की भूमिका पृष्ठ २३ की पादटिप्पणीतया उद्धृत है).

इससे सिद्ध होता है कि जगत्को ब्रह्मका तात्त्विक परिणाम माननेवालोंको अपने-आपके बारेमें सत्सम्प्रदाय होनेका गर्व था. यद्यपि उल्लिखित वाक्यांशमें स्वरूपपरिणामवादसम्बन्धी स्वीकृतिका कोई संकेत नहीं है, तथापि वेदान्त-देशिकरचित तत्त्वमुक्ताकलापकी स्वोपज्ञव्याख्या सर्वार्थसिद्धिके अवलोकन करनेपर ब्रह्मदत्तका स्वरूपपरिणामवादी होना निसंदिग्धतया सिद्ध होता है.

द्रष्टव्य :

"तर्हि 'सोऽकामयत तदात्मानं स्वयमकुरुत' इत्यादिकं स्वरूपरिणामवादि-ब्रह्मदत्तभास्करादिमतभेदैरव्यवहितमेव किं न निरूह्यते?" (सर्वा. ३।२६).

श्रीमहाप्रभु भी "आत्मकृतेः परिणामात्" सूत्रके भाष्यमें कहते हैं—

"'तदात्मानं स्वयमकुरुत' इति स्वस्यैव कर्मकर्तृभावात् सुकृतत्ववचनात् च अलौकिकत्वं तथापि ज्ञानार्थम् उपपत्तिम् आह 'परिणामात्'. परिणमते कार्याकारेणेति अविकृतमेव परिणमते सुवर्णं सर्वाणि च तैजसानि. वृद्धेश्च अलौकिक-कत्वात् ब्रह्मकारणत्वएव घटते. पूर्वावस्थान्यथाभावस्तु कार्यश्रुत्यनुरोधाद् अंगी कर्तव्यः. बक्ष्यति च श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वाद् इति" (अणुभा. १।४।२६).

मायावादिओंको अभिमत केवल "अहं ब्रह्मास्मि" आकारिका शब्दवृत्तिसे ही निखिलद्वैतावभासमूल ब्रह्माज्ञान निवृत्त होकर ब्रह्मसाक्षात्कार होनेकी धारणाकी ब्रह्मदत्तद्वारा अस्वीकृतिका जहां तक प्रश्न है तो महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यका यहां भी ब्रह्मदत्तके साथ पूर्ण मतैक्य है. वे भी कहते हैं :

"नच वैराग्यशमदमादिः पूर्वसिद्धः तेषामेव अभावात्. नच यदैव सम्भवः तदैव कर्तव्यम् इति वाच्यं तदसम्भवापत्तेः. तथाहि ब्रह्मणः परमपुरुषार्थत्वे ज्ञाते तज्ज्ञानस्यैव साधनत्वे अवगते तच्छेषत्वे च यागादीनाम अवगते तदर्थकर्मकरणे चित्तशुद्धौ सत्यां वैराग्यादि. इदञ्च वेदान्तविचारव्यतिरेकेण न भवतीति अन्योन्याश्रयः. निर्धारिते तु वेदान्ते विचारो व्यर्थएव. नच साक्षात्कारः तत्फलं तस्य शब्दशेषत्वेन तत्कल्पनायां प्रमाणाभावात्. 'दशमः त्वमसि' इत्यादौ प्रत्यक्षसामग्र्याः बलवत्त्वात् देहादेः प्रत्यक्षत्वात् स्वदेहमपि पश्यन् 'दशमो अहम्' इति मन्यते. न तथा प्रकृते मनननिदिध्यासनविधीनाम् आनर्थक्यप्रसंगात्" (अणुभा. १।१।१).

इन दोनोंके मतैक्यका मूल कारण जडजीवात्मक जगत्को ब्रह्मका स्वरूपपरिणाम मानना है. नाम-रूप-कर्मात्मक द्वैत मिथ्याभास नहीं है, अतएव ब्रह्माज्ञानप्रसूत न होनेके कारण ब्रह्मज्ञानसे बाधित भी नहीं होता. जबकि मायावादिओंके मतमें वह मिथ्याभास होनेके कारण ब्रह्मज्ञानसे बाधित हो जाता है पारिशेष्यात् ब्रह्मसाक्षात्कार भी फलित हो जाता है.

श्रीमुरलीधर पाण्डेयने श्रीशंकरात्प्रागद्वैतवादः नामक ग्रन्थ (पृष्ठ २९०-२९२) में ब्रह्मदत्तकी दार्शनिक धारणाके बारेमें कुछ अपने निष्कर्ष दिये हैं. इनमें कुछ विचारणीय हैं.

यथा

१) ब्रह्मदत्ताभिमत जीवका स्वरूप विज्ञानवादिओंको अभिमत जीवके स्वरूपसदृश है.

२) ब्रह्मदत्ताभिमत जीव चार्वाकाभिमत जीवकी तरह नश्वर है.

३) ब्रह्मदत्त नैयायिकोंकी तरह असत्कार्यवादी प्रतीत होते हैं.

४) ब्रह्मदत्त केवल ब्रह्मको ही नित्य मानते हैं अर्थात् ब्रह्मातिरिक्त सभी

कुछ अनित्य है. मायावादी होनेके कारण ब्रह्मदत्त जड-जीवात्मक जगत्का अन्तमें ब्रह्ममें लय स्वीकारते हैं तथा मोक्षावस्थामें जीवब्रह्मैक्य भी स्वीकारते होनेसे अद्वैतवादी हैं.

ऐसी स्थितिमें तो श्रीवेदान्तदेशिकद्वारा लगाया हुआ आरोप— "....सौगतचार्वाकसंकराच्छंकरोदयः" स्वयमेव पाण्डेयजी स्वीकारतेसे प्रतीत होते हैं. ब्रह्मदत्तको नैयायिकोंकी तरह एक ओर असत्कार्यवादी और दूसरी ओर मायावादी भी मानना तो मायावादके अन्तर्गत विवर्तवादकी तरह असत्कार्यवादकी स्वीकृतिको भी शक्य मानना है; अथवा 'मायावाद' का सदसद्विलक्षण-अनिर्वचनीयताके बजाय सर्वथा अनिर्वचनीय अर्थ बना देना है. "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः" की तीनमें से एक भी शर्त तोडनेपर कोई विचारधारा मायावाद-अद्वैतवाद (केवलाद्वैतवादके अर्थमें) रह पाती हो ऐसा हमें तो नहीं लगता. यदि ब्रह्मदत्ताभिमत जीव नश्वर है तो या ब्रह्मको भी नश्वर मानना पड़ेगा अथवा जीवब्रह्माद्वैतवादको अस्वीकारना पडेगा. ब्रह्मदत्तको जीवनाशवादी तथा जीवब्रह्माद्वैतवादी भी स्वीकार कर किस तरहका अद्वैतवादी उसे माना जा रहा है यह समझ नहीं आता. अन्तमें संक्षेप-शारीरककारके—"आत्रेयवाक्यमपि संव्यवहारमात्रम्...." (सं. शा. ३।२१७) की उत्थानिका "मायामात्रं सर्वम् इत्येतत् न साम्प्रदायिकम् इति चेत् न ब्रह्मदत्तादिभिः उक्तत्वाद् इति आह 'आत्रेयवाक्यम्' इति" (सं. शा. सुबोधिनी) वचनके आधारपर ब्रह्मदत्तको मायावादी माननेकी बात भी सुसंगत नहीं लगती क्योंकि एक सम्भावना तो यही है कि यहां 'ब्रह्मनन्दी' का ही प्रामादिक पाठान्तर ब्रह्मदत्त हो गया होना चाहिये, क्योंकि 'संव्यवहारमात्रत्वात्' ब्रह्मनन्दीके द्वारा किया गया विधान है यह संक्षेपशारीरकसुबोधिनीकारके अलावा सभीको मान्य है. स्वयं संक्षेपशारीरककार इसके बाद कारिकामें— "अद्वैतमेव परिरक्षति वाक्यकारः" कहते हैं. वाक्यकारतया ब्रह्मनन्दी ही प्रसिद्ध हैं.

जो ब्रह्मका स्वरूपपरिणाम जगत्को स्वीकारता हो वह जड या जीव को नश्वर कैसे मान पायेगा, ब्रह्मके स्वरूपको अनित्य–नश्वर माने बिना? "प्रति-क्षणपरिणामिनो हि भावाः" कहकर सभी प्राकृत भावोंको प्रतिक्षण परिणामी

माननेवालोंने ही, इदंप्रथमतया, सत्कारणवाद–सत्कार्यवादकी धारणा प्रस्तुत की, ऐसी स्थितिमें जगत्को ब्रह्मस्वरूपपरिणाम माननेवालेके मतमें परिणाम नश्वर या अनित्य या असत् कैसे हो सकता है? ऐसी स्थितिमें श्रीवेदान्तदेशिक द्वारा उल्लिखित जीवकी स्वरूपतः उत्पत्ति—"ब्रह्मदत्तादिभिः उक्तं जीवानां स्वरूपतः सृष्टिसंहृतिविषयत्वम् अनूद्य दूषयति 'एकम्....' इति. एकं ब्रह्मैव नित्यं तदितरदखिलं तत्र जन्मादिभागित्याम्नातं तेन जीवोऽप्यचिदिव जनिमानित्यनश्येतृचोद्यम्" (त. मु. क. सर्वा. २।१४) आविर्भावके अर्थमें ही लेनी चाहिये. प्रागभावनिवृत्तिके अर्थमें नहीं. इस विषयमें श्रीमहाप्रभुके मतका तुलनात्मक विमर्श उपकारक हो सकता है :

सच्चिदानन्द ब्रह्मके (१) सदंशभूत जड नाम-रूप-कर्म (२) चिदंशभूत जीवात्मा तथा (३) आनन्दांशभूत अन्तर्यामी या अन्य भी गुणावतार (ब्रह्मा-विष्णु-शिव) रूप अथवा लीलावतार (वाराहादि) रूपोंकी सृष्टि-संहृतिके तीन प्रकार होते हैं—(१) जनन-नाश (२) समागम-अपगम (३) प्राकट्य-अप्राकट्य. महाप्रभु कहते हैं—"अनित्ये जननं नित्ये परिच्छिन्ने समागमः नित्यापरिच्छिन्नतनौ प्राकट्यं चेति सा त्रिधा" (अणुभा. २।३।३ तथा सुबो. २।६।१).

यहां सत्कार्यवाद, सत्कारणवाद तथा कार्यकारण-अंशांशि-तादात्म्यवादकी प्राक्स्वीकृतिको देखते हुवे जिसे अनित्य या जनन-नाशवान् कहा जा रहा है वह प्रागभाव-प्रध्वंसाभावके अर्थमें नहीं प्रत्युत आप्रलयास्थायी अस्थिर नाम-रूप-कर्मोंकी आविर्भावतिरोभावशालिताके अर्थमें है.

इसी तरह जिसे नित्य-परिच्छिन्न या समागमापगमशील कहा जा रहा है वह परिच्छिन्न परिणामतया आप्रलय या आमोक्ष स्थायिताके अर्थमें है. इसी तरह परिच्छिन्नता भी अत्यन्ताभावप्रतियोगिता या अन्योन्याभावप्रतियोगिता के अर्थमे न होकर एकमेवाद्वितीय व्यापक ब्रह्मचैतन्यके आमोक्ष अंशात्मना आविर्भावके अर्थमें है.

जिसे नित्य-अपरिच्छिन्न अथवा प्राकट्य-अप्राकट्यशील कहा जा रहा है वह देशकालस्वरूपतः परिच्छेदजन्य असामर्थ्यके बिना किसी विशिष्ट देश-कालमें किसी विशिष्ट दिव्य रूपको धारण या प्रकट करने या अप्रकट करनेके अर्थमें है.

मूलतः आज 'जनन-नाश' का रूढार्थ उसके यौगिक अर्थसे बहुत दूर

खिंच गया है. अतएव 'उत्पत्ति-नाश' या 'जनन-नाश' पदोंके द्वारा अनित्यताका बोध होता है. अन्यथा "जनिःकर्तुः प्रकृतिः" (पाणि. सू. १।४।३०) के महाभाष्यकी ये पंक्तियां नितान्त मननीय हैं—"कथं गोमयाद् वृश्चिको जायते गोलोमाविलोमभ्यो दूर्वा जायन्ते इति? अपक्रामन्ति ताः तेभ्यः. यदि अपक्रामन्ति न अत्यन्ताय अपक्रामन्ति सन्ततत्वात्. अथवा अन्याश्च अन्याश्च प्रादुर्भवन्ति जनिःकर्तुः." इससे सिद्ध होता है कि उत्पत्ति उद्भव अपक्रान्ति समागति जनन आदि सभी प्रयोगोंमें प्राथमिक यौगिकार्थ कारणमें से बाहर व्युच्चरित होना ही है. पश्चाद् रूढार्थवशात प्रागभावध्वंस अथवा प्रागभावीया प्रतियोगिता आदि अर्थ चल पड़े हैं. अस्तु.

सर्वनिर्णयमें श्रीमहाप्रभु—"अभावः कारणं चात्र ध्वंसश्चापि तदुच्यते कार्यादिशब्दवत् तस्मिन् सापेक्षा वृत्तिरेतयोः अपृथग्विद्यमानत्वान्न धर्मैरधिको...." (स. नि. ११७) में अनुयोगिपदार्थके अनेक धर्मोंके अन्तर्गत एक अन्यतम सापेक्ष धर्मके अलावा प्रागभावादि और कुछ नहीं हैं, ऐसा स्पष्ट विधान करते हैं. ऐसी स्थितिमें सच्चिदानन्द ब्रह्मके सदंशभूत सच्चिदंशभूत या सच्चिदानन्दांशभूत काल कर्म स्वभाव सत्त्वादिगुणत्रयी प्रकृति पुरुष या अन्तर्यामी का, अर्थात् सम्पूर्ण जड़-जीव-ईश्वरात्मिकासृष्टिगत रूपोंके प्रादुर्भाव एवं तिरोभाव में, ब्रह्मका सदंश सच्चिदंश या सच्चिदानन्दांश धर्मीभूत पदार्थ है बाकी सभी कुछ धर्मभूत नाम-रूप-कर्म हैं. जिस देश-काल-स्वरूपकी उपाधिके विचारवश किसी सद्वस्तुका कहीं-कभी-किसी रूपमें अभाव प्रतीत होता है वे विशिष्ट देश-काल-स्वरूप भी अपने मूलतत्त्वदृष्ट्या न स्वपरिच्छेद्य वस्तुसे भिन्न हैं न इनके कारण परिछिन्नतया प्रतीत होती तत्तद्रूप वस्तु ही देश-काल-स्वरूपतः अपरिच्छिन्न मूलतत्त्वसे भिन्न हो सकती हैं. तत्तद् रूप एवं तत्तद् अर्थक्रिया के अर्थात् धर्मके प्राकट्य या अप्राकट्य के कारण सभी तरहके प्रत्यय एवं व्यवहार की उपपत्ति संभव होनेसे धर्मी पदार्थके भावाभावकी कल्पना अनावश्यक है.

अतः तत्त्वदृष्ट्या या धर्मिदृष्ट्या प्रमेय तो केवल सच्चिदानन्द ब्रह्म ही है, जो देश-काल-स्वरूपतः परिछिन्न इसलिये नहीं हो पाता क्योंकि देश-कालादि वस्तु स्वयं उस अपरिछिन्न ब्रह्मके तथा ब्रह्ममें स्वेच्छया प्रकट विभिन्न रूप हैं. जहां तक जागतिक नाम-रूप-कर्मोंका प्रश्न है तो उनमें धर्मदृष्ट्या देश-काल-स्वरूपकृत परिच्छेद प्रतीत होता है वह ऐच्छिक "सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवा-

द्वितीयं तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति" (छांदो, उ. ६।२।२-३) परिच्छेद है जो स्वयंमें स्वयंद्वारा स्वयंकृत स्वलीलार्थ प्रकट परिच्छेद है. इस तादात्म्यवादी दृष्टिके प्रति ग्रहणशीलताके अभाववश ही यह सहज सम्भव है कि श्रीवेदान्तदेशिक प्रभृति प्राचीन विद्वान् तथा श्रीमुरलीधर पाण्डेयसदृश आधुनिक विद्वान भी ब्रह्मदत्तको 'औपनिषदाभास' या 'चार्वाकसदृश' अथवा 'असत्कार्यवादी' कहते हैं तो आश्चर्यकी बात नहीं है.

श्रीमहाप्रभुके मतानुसार दिये जा सकते इन स्पष्टीकरणोंके सन्दर्भमें ब्रह्मदत्तद्वारा भी जड-जीवको अनित्य तथा ब्रह्मको नित्य स्वीकारनेकी उपपत्ति सद्वादपर अवलम्बित होकर दी जा सकती है. सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उल्लेख जगत्को स्वरूपपरिणामतया स्वीकारना है. इस एक कसोटीपर असत्कार्यवाद, जीवनाशवाद, मायावाद या केवलाद्वैतवाद आदि सभी वादोंसे ब्रह्मदत्त परे हो जाते हैं.

जहां तक ईश्वरकोटीका प्रश्न है इस विषयमें भी ब्रह्मदत्तके कुछ मतकी झांकी श्रीवेदान्तदेशिकके—"इह केचिद् ईश्वरस्वरूपेपि भोक्तृभोग्यन्यायेन समष्टिव्यष्टिभेदं वर्णयन्ति वदन्ति च मनोमय-प्राणमय-वाङ्मयाख्यं रूपं व्यूहत्रयम्" (सर्वा. ३।७३). इस अंशपर व्याख्या करते हुए सर्वार्थसिद्धिकी आनन्ददायिनी टीकामें कहा गया है कि ब्रह्मदत्तके अनुसार सर्वशक्ति स्वयंप्रकाश सन्मात्र ब्रह्मको सर्व तत्त्वोंकी समष्टिके रूपमें देखनेपर ईश्वर जीव तथा प्रकृति रूप तीन भाग उसमें नित्य दिखलायी पडेंगे. इन तीनों भागोंमें अनुवृत्त जो सन्मात्र रूप है वह इन विभिन्न रूपोंसे विलक्षण दिखलायी पड़ता है. जैसे फेन तरंग और बुद्बुदके अपेक्षया निस्तरंग शान्त समुद्र विलक्षण लगता है. इन उक्त तीनों रूपोंमें ईश्वरका स्वरूप ज्ञान आनन्द ऐश्वर्य आविर्भावहेतु ब्रह्मशक्तिसे सम्पन्न लगता है ब्रह्मांश होनेके कारण इस ईश्वरमें पुन: मनोमय वाङ्मय तथा प्राणमय यों तीन विभाग होते हैं. वह ईश्वर इन उपभेदोंसे आदित्य, अग्नि और चन्द्र के रूपोंमें मन वाणी और प्राणों का अधिष्ठाता बनता है.

यथाश्रुत रूपमें ऐसा कोई भी विधान श्रीमहाप्रभुका दृष्टिगोचर नहीं होता फिर भी जड वस्तुओंकी समष्टि प्रकृति है. जीवात्माओंकी समष्टि पुरुष है. इसी तरह प्रत्येक जीवात्माके साथ विद्यमान व्यष्टि अन्तर्यामिओंका एक

समष्टि अन्तर्यामी भी है. श्रीमहाप्रभुके अनुसार भी अक्षरब्रह्म, इन तीनोंमें अनुगत व्यापक निराकार सच्चिदानन्द है, सकलकारण–कारणभूत है. एतदर्थ अधोलिखित वचन द्रष्टव्य हैं :

अनन्तमूर्ति तद्ब्रह्म ह्यविभक्तं विभक्तिमत्।
बहुस्यां प्रजायेयेति वीक्षा तस्य ह्यभूत् सती॥
तदिच्छामात्रतस्तस्माद् ब्रह्मभूतांशचेतनाः।
सृष्ट्यादौ निर्गताः सर्वे निराकारास्तदिच्छया॥
विस्फुलिंगा इवाग्नेस्तु सदंशेन जडा अपि।
आनन्दांशस्वरूपेण सर्वान्तर्यामिरूपिणः॥
सच्चिदानन्दरूपेण पूर्वयोरन्यलीनताः।
जडो जीवोन्तरात्मेति व्यवहारस्त्रिधा मतः॥

(त. नि. शा. २६–३०)

इसकी व्याख्या करते हुए श्रीमहाप्रभु कहते हैं कि ब्रह्मके असंख्यमूर्ति होनेपर भी उन असंख्य आकारोंमें परस्पर भेद नहीं होता है, क्योंकि इन असंख्य आकारोंका भेद उन–उन आकारोंमें प्रकट होनेकी परमेश्वरकी केवल इच्छाके कारण घटित हुआ है. ऐसे ब्रह्ममेंसे जड़–जीव आकार भी प्रकट होते हों तो वे ब्रह्मका निरवधि माहात्म्य ही सिद्ध करते हैं, ब्रह्मके शुद्ध स्वरूपमें किसी तरहकी अशुद्धि विकृति या क्षति नहीं. उसकी इच्छा सर्वत्र कारण है. वह एक अनेक बन सकता है अपने एकत्वको त्यागे बिना. सारे उच्च-नीचभाव उस एकमें प्रकट हुए हैं, स्वयं उसकी केवल इच्छा या संकल्प के कारण. वह सत्य संकल्प है. अतः वह जो भी भावना या संकल्प करता है तदनुसार विषय प्रकट हो जाते हैं.

ऐसी ही दिव्य इच्छा संकल्प एवं सामर्थ्य के कारण सृष्टिके आरम्भमें सच्चिदानन्द ब्रह्ममेंसे अनेक ब्रह्मात्मक अंश व्युच्चरित हुए. उन अंशोंमेंसे जब किन्हीं अंशोंमेंसे उसकी इच्छाके कारण आनन्दांश तिरोहित हो गया अर्थात् स्वकार्याकारी हो गया तब वे अंश 'जीवात्मा' कहलाये. आनन्दांशके तिरोधान के कारण उन अंशोंमें वीर्य-ऐश्वर्य-यश-श्री-ज्ञान-वैराग्य आदि दिव्य गुण तथा आकार तिरोहित अर्थात् स्वकार्याकारी एवं अनुभवागोचर हो गये हैं. अतः

जीवात्मा निराकार होती है परन्तु परमात्मा साकार-निराकार उभयविध. जीवात्मा जो प्रकट होती हैं वे योगबलसे जैसे शून्यमेंसे कुछ प्रकट हो जाये उस प्रक्रियासे नहीं किन्तु निज स्वरूपमेंसे स्वरूपात्मक अंश स्वरूपमें ही प्रकट हुई हैं. इन अंशोंको, अवशिष्ट चैतन्यके प्राधान्यवश, 'चिदंश' कहा जाता है. अन्तर्यामीके भी सच्चिदानन्दांश होनेपर भी आनन्दधर्मके प्राधान्यवश उसे 'आनन्दांश' कहा जाता है. इसी तरह जड वस्तुके भी सच्चिदानन्दांश होनेपर भी केवल सत्ताके प्राधान्यवश उसे 'सदंश' कहा जाता है. क्योंकि जड वस्तुमें चैतन्य तथा आनन्द तिरोहित रहते हैं.

प्रकृतिपुरुषश्चोभौ परमात्माभवत्पुरा।
यद्रूपं समधिष्ठाय तदक्षरमुदीर्यते ॥
आनन्दांशतिरोभावः सत्त्वमात्रेण तत्रहि
मुख्यजीवस्ततः प्रोक्तः सृष्टीच्छावशगोहरिः
इच्छामात्रात् तिरोभावः तस्यायमुपचर्यते।
ब्रह्मकूटस्थाव्यक्तादिशब्दैर्वाच्यो निरन्तरम् ॥
सर्वावरणयुक्तानि तस्मिन्नण्डानि कोटिशः।
मूलाविच्छेदरूपेण तदाधारतया स्थितः ॥
प्रभुत्वेन हरेःस्फूर्तौ लोकत्वेन तदुद्भवः।
अन्तर्याम्यवतारादिरूपे पादत्वमस्य हि ॥
सच्चिदानन्दरूपेण देहजीवेशरूपिणः।
व्यष्टिःसमष्टिः पुरुषो जीवभेदास्त्रयो मताः ॥

(त. नि. स. ९८–१२०)

यहां इन श्लोकोंमें व्याख्या करते हुए श्रीमहाप्रभु कहते हैं कि जब ब्रह्ममें संकल्प उठता है कि मैं अनेक रूप धारण कर लूं तो आनन्दांश तिरोहितसा हो जाता है, वस्तुतः तिरोहित नहीं होता. अतः इस अवस्था या रूप को शास्त्रमें 'अक्षर ब्रह्म' 'सन्मात्र' 'कूटस्थ', 'अव्यक्त' आदि अनेक नामोंसे अभिहित किया जाता है. परन्तु यह परब्रह्म परमात्मा साकार भगवान् श्रीकृष्णसे अर्थात् पुरुषोत्तमसे भिन्नतया अथवा पृथक्तया अवस्थित नहीं होता प्रत्युत अविच्छिन्नतया ही रहता है. परब्रह्म-पुरुषोत्तमका कोई भी रूप ऐसा नहीं कि

जिसके साथ अविच्छिन्नतया अक्षररूप भी जुडा हुआ न हो. पुरुषोत्तमकी प्रभुत्वेन जब स्फूर्ति होती है तब अक्षरब्रह्मकी दिव्यधामतया स्फूर्ति होती है. पुरुषोत्तमकी वैकुण्ठनायकतया स्फूर्ति होनेपर अक्षरब्रह्मकी वैकुण्ठतया, पुरुषोत्तमकी हृदयगुहास्थित अन्तर्यामितया स्फूर्ति होनेपर अक्षरब्रह्मकी हृदयाकाशतया अथवा अन्तर्यामीके चरणतया. हर स्थितिमें उसकी स्फूर्ति अविच्छिन्नतया ही होती है. सच्चिदानन्द ब्रह्ममें से प्रकट हमारा यह देह सदंश है, जीवात्मा चिदंश तथा इन दोनोंका अन्तर्निगूढ नियामक अन्तर्यामी आनन्दांश है. यों सच्चिदानन्द ब्रह्म ही आधिभौतिक, आध्यात्मिक तथा आधिदैविक नाम-रूप-कर्मोंका एकमात्र अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है.

इन वचनोंका विमर्श करनेपर प्राचीन वेदान्तसम्प्रदायोंके आज उपलब्ध न होते अंशोंकी कल्पनामें वह सहायक हो सकता है कि कैसे परमात्माको प्रत्यगात्मा स्वीकारने मात्रसे कोई चिन्तक मायावादी या विवर्तवादी नहीं बन जाता है. इसी तरह केवल जीवब्रह्मैक्य स्वीकारनेसे ही कोई चिन्तक केवलाद्वैतवादी नहीं बन जाता.

एकके अलावा अन्य कुछ गुणी-धर्मी या गुण-धर्मका **न होना** केवलाद्वैतवाद है, जबकि एकमेवाद्वितीय गुणी-धर्मीका अनेकविध अप्रकट या प्रकट **अपने गुण-धर्म-रूपोंसे भिन्न न होना** भी अर्थात् इनसे तादात्म्य होना भी अद्वैतका एक विधिरूप प्रकार है. यह अद्वैत द्वित्वात्यन्ताभाव रूप नहीं और न इस विधिरूप अद्वैतमें अवभासित द्वित्व एकत्वात्यन्ताभावरूप होता है. द्वैतको केवल एकत्वात्यन्ताभावरूप तथा अद्वैतको केवल द्वैतात्यन्ताभावरूप स्वीकारनेकी मनोवृत्ति न केवल अनेक श्रुतिवचनों तथा स्मृति-पुराण-सूत्रवचनोंके साथ ही अपितु अनेक प्राचीन वेदान्तविदोंकी वचनावलीके साथ भी अन्यायका हेतु बनी है. यही ब्रह्मनन्दी भर्तृप्रपञ्च तथा ब्रह्मदत्तके उदाहरणोंमें भी घटित हुआ है.

उपसंहार

अतएव "ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि" (छांदो. उ. ६।७।७) तथा "वाचारम्भणं 'विकारो' नामधेयं 'मृत्तिका' इत्येव सत्यम्" (छांदो. उ. ६।१।४) वचनोंके केवलाद्वैतवादी व्याख्यानोंकी बहुप्रचारिततावश पनपी वैचारिक रूढि तथा उभयवचनोंके सर्वथा ऋजु एवं स्पष्टतम अर्थोंकी परस्पर विरोधिता वेदान्तशास्त्रके इतिहासका एक अत्यन्त विस्मयजनक विषय है.

प्रथम वचनमें इदंकारास्पद सर्वविषयोंकी एतदात्मकता-ब्रह्मात्मकताका व्यापक सिद्धान्त प्रतिपादित करके श्रुति उस व्यापक तथ्यका निगमन त्वंकारास्पदमें भी करनेके लिये "तत्(ऐतदात्म्यम्)+त्वम्+असि" अथवा "तत्त्वं (ऐतदात्म्यम्)+असि" कह रही है. क्योंकि "स आत्मा" का पूर्वपरामर्श यदि विवक्षित होता तो श्रुतिको "स त्वम् असि" कहना चाहिये था. किन्तु 'तत्' पदाभिमृश्य तो 'ऐतदात्म्यम्' पद ही हो सकता है. अतः स्पष्ट है कि जिस तरहका अद्वैत त्वंकारास्पद वस्तुको उद्देश्य बनाकर तत्कारास्पदताके विधानद्वारा विवक्षित है उसे द्वैतात्यन्ताभाववादिताके पूर्वाग्रहसे रहित होकर देखें तो 'तत्' एवं 'त्वम्' पदोंमें जहदजहल्लक्षणाकी अपेक्षा ही नहीं रह जाती है, अंशांशीका तादात्म्य ही विधेय होनेके कारण. जीवात्मा-परमात्माके बीच यह अंशांशिभाव आगममात्रसमधिगम्य विषय⊕ में प्रत्यक्षविरोधभीतिवश या युक्तिविरोधभीतिवश लक्षणया कल्पित नहीं है. "यथाग्नेःक्षुद्राः विस्फुलिंगाः व्युच्चरन्ति" (बृहद.उ. २।१।२०) "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः" (गीता. १५।७) "अंशो नानाव्यपदेशात्" (ब्र. सू. २।३।४३) "नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारात्" (ब्र. सू. २।३।२१) आदि श्रुति-स्मृति-सूत्रोक्त सिद्धान्त ही है. अतः अभिधया भी तात्पर्यगोचर माननेपर किसी प्रकारकी अनुपपत्ति उठ नहीं सकती. तात्पर्यानुपपत्ति अथवा अन्वयानुपपत्ति बिना भी लक्षणया ही अर्थ निकालना तो अकाण्डताण्डव है.

इसी तरह द्वितीय वचनमें भी 'सत्यं' पदसे मृत्तिकाका परामर्श हो ही नहीं

⊕ द्रष्टव्य : "न लोकवद् इह भवितव्यम्. नहि अयम् अनुमानगम्यो अर्थः शब्दगम्यत्वात्तु अस्य अर्थस्य यथाशब्दम् इह भवितव्यम्." (ब्र. सू. शां. भा. १।४।२७).

सकता लिंगभेदवशात्. पारिशेष्यात् 'सत्यं' पदसे 'नामधेयं' का ही परामर्श स्वीकारना पडेगा. फलतः यथाश्रुत ऋजु अर्थ श्रुतिका यही निकलता है कि मृत्तिकोपादानक घटको 'मृद्विकार' कहना वाचारम्भण है जबकि सत्य नामधेय तो 'मृत्तिका' ही है. "कूजन्तं राम रामेति" में जैसे 'इति' शब्द शब्दस्वरूप-द्योतक होता है. आजकल इसे उद्धरणार्थक चिन्ह "—" द्वारा व्यक्त किया जाता है. अतएव 'इति' शब्द प्रकारवाची हेतुवाची समाप्तिद्योतक होने की तरह उद्धरणार्थक भी हो सकता है. वही हम "नामधेयं 'मृत्तिका' इत्येव सत्यम्" वचनमें भी स्पष्टतया देख सकते हैं. उदाहरणमें जैसे घटका वास्तविक अभिधान 'मृत्तिका' है, वह 'घट' अभिधान बाधपुरस्सर नहीं किन्तु 'मृद्विकार' अभि-धानके द्वारा द्योतित होते मृद्भेदके निराकरणार्थ है. वैसे ही प्रकृत सन्दर्भमें ब्रह्मोपादानक जगत्की ब्रह्मसे अत्यन्त भिन्नता अर्थात् एकत्वात्यन्ताभावरूप भेदके निरसनार्थ है. ब्रह्ममेंसे जगत् आविर्भूत हुआ है ब्रह्ममें स्थित है तथा ब्रह्ममें ही पुनः लीन होता है. किञ्चित् धैर्यपूर्वक देखा जाये तो जगत्को ब्रह्मसे पैदा हुआ कहकर ब्रह्मेतर प्रकृति-परमाणु-माया-काल-स्वभाव आदि पदार्थोंका कारणतया व्यावर्तन मिलता है. परन्तु यहां यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि ब्रह्मसे उत्पन्न होनेवाला जगत् ब्रह्मसे भिन्न है कि अभिन्न. अतः भेदके निरसनार्थ अनेक श्रुतिवचनोंमें जगत्को ब्रह्ममें ही स्थित माना गया है. यह स्थिति, किन्तु, अधि-ष्ठानमें आरोपित विवर्तकी तरह भी सम्भव है और परिणामि-उपादानमें परिणाम-कार्यकी तरह भी. अतएव प्रथम स्थितिमें केवलाद्वैतवादाभिमत द्वैतात्यन्ताभाव सिद्ध होगा जबकि दूसरी स्थितिमें द्वित्वाविरोधी एकत्व सिद्ध होगा. स्थितिकी तरह जगत्का लय भी जब ब्रह्ममें ही होता है, यह श्रुति निरूपित कर देती है तो स्पष्ट हो जाता है आरोपित विवर्त कभी अधिष्ठानमें लीन नहीं होता. वह तो बाधित हो जाता है. अतः ब्रह्ममें जगत्का उत्पन्न स्थित तथा लीन होना इस बातका प्रमाण है कि जगत् ब्रह्मोपादानक ब्रह्मकर्तृक ब्रह्माधारक ब्रह्मात्मक ही है.

यही बात "सर्वं खलु इदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत" (छांदो. उ. ३।१४।१) में कही गयी है. इससे सिद्ध होता है कि श्रुतिमें कारण सत्य है कि कार्य इस बारेमें कोई विचारणीय विषय ही नहीं है. श्रुति तो यह विचार प्रस्तुत कर रही है कि कार्यको कारणका 'विकार' कहना वाचारम्भण है.

वास्तविक अभिधान तो कार्यद्रव्यका भी वही होता है जो कारणद्रव्यका होता है. भिन्नाभिधान कहीं भेदके पूर्वाग्रहका हेतु न बन जाये अतः घटको 'मृत्तिका' कहनेसे एक मृत्तिकाका ज्ञान सकल मृद्विकारोंके मृत्तिकात्वेन ज्ञानका हेतु बन सकता है—एकविज्ञानेन सर्वमिदं विज्ञातं भवति.

यह अर्थ निरतिशय स्फुट होनेपर भी भेदात्यन्ताभावरूप अद्वैतके पूर्वाग्रहके कारण श्रीशंकराचार्यको—"वागालम्बनमात्रं नामैव केवलं न विकारो नाम वस्तु अस्ति, परमार्थतो मृत्तिकेत्येव मृत्तिकैव तु सत्यं वस्तु अस्ति" (छांदो. शां. भा. ६।१।४) व्याख्यानमें 'मात्र' पद एवं 'वस्तु' पदका अध्याहार करना पडा है, अन्यथा जो उन्हें विवक्षित है वह श्रुतिविवक्षित बन नहीं पायेगा तथा जो ऋजु अर्थ, बिना अध्याहारादिके, श्रुत्यर्थतया सिद्ध हो रहा है वह उनके विवक्षितका निरासक ही है. न केवल इतना अपितु "मृत्पिण्ड (कारण)—सर्व-मृण्मय (मृद्विकार-मृत्कार्य)" की उदाहरणप्रक्रियासे भिन्न प्रक्रिया "नखनिकृंतन (कार्य)—सर्वकार्ष्णायस (कार्य)" उदाहरण एक कार्यके ज्ञानसे भी तदुपादानोपा-दानक इतर कार्योंका ज्ञान भी श्रुतिने प्रतिपादित कर दिया है. वह केवलाद्वैतवादपर सर्वथा अकल्पित वज्राघात है. जबकि शुद्धाद्वैतवादमें नखनिकृंतन-कृष्णायसमें तादात्म्यकी स्वीकृतिके कारण लेशमात्र आपत्ति नहीं आती, यही बात अग्रिम वचन—"वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्" (छांदो. उ. ६।४।२-४) के बारेमें भी स्पष्ट है. श्रुतिमें अधिष्ठान–आरोपितविवर्तकी कहीं साक्षात् या परम्परया भी ध्वनि निकल नहीं रही है. परिणामवाद तथा तादात्म्य-वाद मूलक उदाहरणोंका संकलन श्रौत अभिप्रायको करतलामलकवत् स्पष्ट करता है, यदि आत्यन्तिक भेदवाद या आत्यन्तिक अभेदवाद का पूर्वाग्रह न हो तो.

इस तरह जैसे ब्रह्म सत्य है वैसे ही जगत् भी सत्य है. जैसे जीव ब्रह्मा-त्मक है वैसे ही जगत् भी ब्रह्मात्मक है, यह सिद्ध हुआ. यह शुद्धाद्वैतवाद है, जिसका महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यने अपने अणुभाष्यादि ग्रन्थोंमें प्रतिपादन किया है. वैसे तो श्रीमहाप्रभुसे पूर्व भी ब्रह्मनन्दी भर्तृप्रपञ्च एवं ब्रह्मदत्त ही नहीं अपितु इनके बाद भी इस मतकी धरोहर अन्यान्य विचारकों तथा ग्रन्थकारों ने सम्हाल के रखी थी, परन्तु इसकी विस्तृत विवेचना हमारे "शुद्धाद्वैतवाद और उसकी रूपरेखा" के प्रकाशित होनेपर देखी जा सकेगी.

प्रस्तुत अणुभाष्यका आद्य संस्करण वि. सं. १९८६-८७ में श्रीमूलचन्द तेलीवालाके द्वारा स्थापित भाष्यसंशोधनमण्डलीने श्रीतेलीवालाके दिवंगत होनेके पश्चात संशोधित-प्रकाशित करवाया था. प्रस्तुत संस्करण उसीका ऑफसेट प्रॉसेस द्वारा पुनर्मुद्रित रूप है. महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणके केवल कृपाबलसे ही इस भागके प्रकाशनके साथ भाष्यप्रकाशरश्मि संस्करणके पुनः-प्रकाशनका कार्य पूर्ण होने जा रहा है. एतदर्थ हम श्रीतेलीवाला और उनके सभी सहयोगिमहानुभावोंका कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करते हैं. इस कार्यमें मूलके नेगेटिवसकी जांच करनेमें हमारी सहयोगी श्रीरसिकभाईके प्रति भी हम अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं. प्रेसकापी तैयार करनेमें हमारे सहयोगी चिरंजीवी गोस्वामी श्रीशरदकुमारके प्रति भी हम अपने कृतज्ञताभावका संगोपन नहीं कर सकते हैं. इसी तरह मौज प्रेसके श्रीमाधव भागवत आदि के प्रति भी अपनी कृतज्ञताके भावका हम संवरण नहीं कर पाते.

जयति श्रीवल्लभार्यो जयति च विट्ठलेश्वरः प्रभुः श्रीमान्
पुरुषोत्तमश्च तैश्च निर्दिष्टा पुष्टिपद्धतिर्जयति ॥

वि. सं. २०४५
राधाष्टमी
बम्बई

गोस्वामी श्याममनोहर

श्रीहरिः

ब्रह्मसूत्राणुभाष्ययोः प्रकाशरश्मिटीकोपेतयोः

विषयानुक्रमणिका

(द्वितीयाध्यायस्य)

विषयः | पृष्ठानि

विषयः पृष्ठानि

विषयः **पृष्ठानि**

विषयः **पृष्ठानि**

विषयः पृष्ठानि

इति प्रकाशरश्मिटीकोपेत –ब्रह्मसूत्राणुभाष्य—द्वितीयाध्यायानुक्रमणिका.

सकलान्तरात्मा श्रीहरिः प्रसन्नो भवतु

पकाश व्याख्याकार
गोस्वामी श्री पुरुषोत्तम चरणाः

रश्मिकार गोस्वामी
श्री योगी गोपेश्वर चरणाः

श्रीकृष्णाय नमः ।
श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ।
श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।

श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम् ।

भाष्यप्रकाश-रश्मि-परिबृंहितम् ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

प्रथमः पादः

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इतिचेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् ॥१॥(२-१-१)

प्रथमाध्याये वेदान्तवाक्यानां विवादास्पदानां ब्रह्मपरत्वेन समन्वयः प्रतिपादितः । अधुना श्रुतिस्मृत्यविरोधः प्रतिपाद्यते ।

भाष्यप्रकाशः ।

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इतिचेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् ॥ १ ॥ अथ द्वितीयाध्यायं व्याचिख्यासवोऽध्यायसङ्गतिं प्रदर्शयितुं पूर्वाध्यायार्थमनुवदन्तोऽस्यार्थमाहुः **प्रथमे**त्यादि । **अधुना** समन्वयप्रतिपादनादनन्तरं, **श्रुतिस्मृत्यविरोधः** श्रुतयश्च स्मृतयश्च तासामविरोधः **प्रतिपाद्यते** । तथा सति श्रुतीनां परस्परमविरोधः स्मृतीनां च श्रुत्यविरोध इत्यर्थात् सेत्स्यति सोत्र विचार्यते । तथा च पूर्वाध्यायार्थविचार उपोद्घातः सङ्गतिरित्यर्थः । ननु समन्वयानन्तरं श्रुतिविप्रतिषेधे निराकरणीये स्मृतिविरोधाविरोधविचारस्य किं

रश्मिः ।

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् ॥ १ ॥ 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यः' इति 'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा'इति श्वेताश्वतराच्छ्रवणानन्तरं द्वितीयाध्याये मननं प्राप्तं भक्तिमार्गीयत्वाद्भाष्यस्य । तच्च युक्तिभिरनुचिन्तनं मननं, तत्रापि युक्त्या वेदिवेदोपबृंहकत्वमितिहासादीनां न स्यात् । सांख्यादीनां शास्त्रान्तरत्वं न स्यात्, तदा सांख्यादिस्मृतयः उपबृंहिकाः स्युरिति तर्केण प्रथमसूत्रं प्रववृते । तेन सांख्यस्य शास्त्रान्तरत्वं वैदिकार्थाभावाच्छ्रीभागवते 'त्रय्या चोपनिषद्भिश्च'इति शास्त्रषट्के गणनाच्च । **बालबोधेपि** शास्त्रषट्कमुक्तम् । निर्वाहकसङ्गत्या द्वितीयं सूत्रम् । योगे शास्त्रत्वसमर्थनाय तृतीयं सूत्रमिति । भाष्यमवतारयन्ति स्म **अथे**ति । **एवं सती**ति श्रुतीनां कपिलादिमहर्षिकृतानां स्मृत्यविरोध इति न समासः वक्ष्यमाणविरोधादत एवं द्वन्द्वाभिप्राये सति । **उपोद्घात** इति । **श्रुतीनां परस्परमविरोधः स्मृतीनां च श्रुत्यविरोधः** तदा ज्ञातो भवति यदेमा ब्रह्मसमन्विताभ्यो विरुद्धा, इमा नेति विभागः स्यात् स च समन्वयाधीन इति समन्वये प्रकृतसिद्ध्यर्था चिन्ता अत **उपोद्घात**-

---

१. 'तथा सति' इति प्रकाशकारपाठः ।

भ्रान्तिमूलतया सर्वसमयानामयुक्तितः ।
न तद्विरोधाद् वचनं वैदिकं शङ्क्यतां व्रजेत् ॥

श्रुतिविप्रतिषेधस्त्ववश्यं प्रतिविधेयः । प्रथमचतुर्थपादे सर्वथानुपयोगे प्रतिपादिते, स्मृतिप्रतिपादिते स्मृतित्ववचनेन प्रामाण्ये च यावत् तदप्रामाण्यं न प्रतिपाद्यते तावत् तद्विरोधः परिहर्तुमशक्य इति तन्निराकरणार्थं प्रथमतः

भाष्यप्रकाशः ।

प्रयोजनमित्यतस्तद् गृह्णन्ति **भ्रान्ती**त्यादि **प्रतिविधेय** इत्यन्तम् । श्रुतिविरुद्धस्मृतीनां, **भ्रान्तिमूलतया** तदुक्तानां **सर्वेषां समयानां** युक्तिनियमानाम्, **अयुक्तितो**ऽयुक्ततायाम् । सप्तम्यर्थे तसिः । भावप्रधानो निर्देशः । **तद्विरोधात्** स्मृतिविरोधात् । **वैदिकं वचनं शङ्क्यता**मस्य वाक्यस्यायमर्थो भवति न वेति शङ्काविषयतां, **न व्रजेन्न** प्राप्नुयादित्येकं प्रयोजनम् । एतच्चाद्यसूत्रत्रयेण सिद्ध्यति । तु पुनः **श्रुतिविरोधः** श्रुतौ विरोधः श्रुतिविरोधोऽवश्यं सर्वथा **प्रतिविधेयः**, अन्यथा विवक्षितार्थबोधो न स्यादिति द्वितीयम् । एतदुभयप्रयोजनार्थमविरोधो विचार्यते । तथा च श्रुतीनां बलिष्ठत्वात् स्मृतीनां च नैर्बल्येन तया निराकार्यत्वाच्छ्रुतिविरोधे कासांचित् स्मृतीनां संकोचेन कासांचिद् दूषणेन लोकमात्रसिद्धानां च युक्तीनां दूषणेन विरोधपरिहारो न तु तद्विरोधेन श्रुतिसंकोचस्तदनुरोधेन वा श्रुत्यर्थविचार इत्यर्थः । एतदेव पादार्थकथनमुखेन विभजन्ते **प्रथमचतुर्थे**त्यादि । आनुमानिकाद्यधिकरणत्रयेण सांख्यमतस्यावैदिकत्वं समर्थयित्वा, कारणत्वेन चाकाशादिष्वित्याद्यधिकरणद्वयेन श्रौतशब्दविप्रतिषेधं जगद्वाचित्वाधिकरणेनार्थविरोधं च परिहृत्य, वाक्यान्वयाधिकरणे जीवब्रह्मवादोत्थापितप्रकृतिकारणवादं च परिहृत्य, प्रकृतिश्चेत्यधिकरणेन ब्रह्मण एवोपादानत्वनिमित्तत्वयोः साधनाज्जगत्कारणविचारणायां सांख्यमतस्य **सर्वथाऽनुपयोगे प्रतिपादिते,** प्रतिपादिते च 'स्मृतेश्च' इत्यादिसूत्रेषु स्मृतिप्रामाण्याङ्गीकाराच्छेषाभ्यनुज्ञया विविक्तात्मज्ञानवैराग्यादिषु तस्याः **स्मृतित्ववचनेन प्रामाण्ये,** पुनः स्मृतित्वेन प्रकृतिकारणत्वांशेपि प्रामाण्यप्रत्यवस्थाने **यावत् तदंशे** सर्ववेष्टनस्मृतिवत् स्मृतित्वप्रयुक्तमप्यप्रामाण्यं **न प्रतिपाद्यते तावत्** तस्याः स्मृतेर्**विरोधः परिहर्तुमशक्य** इति तदंशे स्मृतित्वप्रयुक्तप्रामाण्यनिरा-

रश्मिः ।

इत्यर्थः । अध्यायसमाप्तावुक्तां पादार्थसङ्गतिमाहुः **पादार्थे**ति । मूलपुस्तकानुरोधेन क्वचिदध्यायगतसमन्वयेनैव चारितार्थ्ये सामान्यविशेषभावश्चेत्यन्तो ग्रन्थो न पठ्यते । प्रसङ्गसङ्गतावन्तर्भावः । तेनोपोद्घातगर्भः ससङ्गतिरित्यर्थः । **युक्तिनियमाना**मिति युक्तिभिर्नियमितानाम् । **न प्राप्नुया**दिति वेदमूलत्वेन 'यन्न दृष्टं तु वेदेषु तदुक्तं स्मृतिभिः किल' इति बृहस्पतिस्मृत्या निषध्यकोटावनिवेशादुपष्टम्भकत्वेन तु निवेशादधिकरणे तर्कविषयसंशयविषयतां न प्राप्नुयात् । शङ्काशब्दस्तर्कयुक्तसंशये । यद्वा **शङ्क्यतां** तर्कविषयतां पूर्वपक्षविषयतामिति यावत् । **विवक्षिते**ति । युक्तिपूर्वकपरमार्थबोधो न स्यात् । **नैर्बल्येने**ति पौरुषेयत्वेन नैर्बल्यम् । **तदनुरोधेने**ति । सर्वथेति वक्तव्यम् । **शेषाभी**ति । **अनुज्ञा**ऽऽज्ञा । **सर्ववेष्टने**ति 'औदुम्बरीं स्पृष्ट्वोद्गायति'इति श्रुतौ औदुम्बरी सर्वा वेष्टयितव्येति सर्ववेष्टनस्मृतिवत् । **तदंश** इति प्रकृतिकारणत्वांशे ।

सूत्रत्रयमाह। तुल्यबलानां परस्परविरोधे न प्रकारान्तरस्थितिरिति ततो युक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारः। ततो द्वितीये पादे वेदबाधकत्वाभावेऽपि तैरपि स्वातन्त्र्येण कश्चन पुरुषार्थः सेत्स्यतीत्याशङ्क्य बाह्याबाह्यमतान्येकीकृत्य निराकरोति। भ्रान्तेस्तुल्यत्वात्। ततः सम्यग् वेदार्थविचारायैव वैदिकपदार्थानां ---रूपविचारः पादद्वयेन। अतः संपूर्णेनाप्यध्यायेनाविरोधः प्रतिपाद्यते। कपिलादिमहर्षिकृतस्मृतेर्न मन्वादिवदन्यत्रोपयोगः। मोक्षैकोपयोगित्वात्। तत्राप्यनवकाशो वैयर्थ्यापत्तेरितिचेन्न। कपिलव्यतिरिक्तशुद्धब्रह्मकारणवाचक-

---

भाष्यप्रकाशः।

करणार्थं सूत्रत्रयमाहेत्यर्थः। तत्र हेतुः तुल्येत्यादि। तथा च सांख्य ईश्वरस्य निराकृतत्वाद् योगे च वेदप्रवर्तकतयानुग्राहकतया च तदङ्गीकारात् तुल्यबलानां स्मृतीनां परस्परविरोधे एकतरप्रामाण्यस्य वक्तुमशक्यत्वान्न तदुक्तरीत्या प्रकारान्तरस्य सेश्वरत्वानीश्वरत्वादेः स्थितिनिर्णयः। इति अस्माद्धेतोः। तथा चैवमप्रामाण्यबोधनार्थं सूत्रत्रयमित्यर्थः। शिष्टानामर्थमाहुः ततो युक्त्येत्यादि। तत आद्यसूत्रत्रयोत्तरं, शिष्टेषु युक्त्या प्रत्यक्षस्य श्रुतेश्च श्रुत्योश्च परस्परविप्रतिषेधे प्रतिपादिते युक्त्या तत्परिहार इति प्रथमपादार्थः। द्वितीयपादार्थमाहुः ततो द्वितीय इत्यादि। वेदबाधकत्वाभाव इति सर्ववेष्टनस्मृतिवदप्रामाण्यात् तथात्वे। तैरिति बाह्याबाह्यस्मृत्युक्तसाधनैः। कश्चनेति यत्किंचिन्मुक्तिरूपः। फलेनुपयोगात् तन्निराकरणं द्वितीयपादार्थः। अग्रिमयोरर्थमाहुः ततः सम्यगित्यादि। तृतीये वियदादिपादे प्रथमं भूतानामुत्पत्तिः, स्वरूपम्, उत्पत्तिक्रमश्च विचार्यते। ततो जीवात्मस्वरूपं तद्धर्माश्च। चतुर्थे चेन्द्रियोत्पत्तिक्रमस्तत्स्वरूपादिकं च। तथा चैतद्द्वयं पादद्वयार्थः। सिद्धमाहुः अत इत्यादि। अत इति पादेषूक्तप्रकारकार्थप्रतिपादनात्। उपन्यस्तं सूत्रं व्याकुर्वन्ति कपिलेत्यादि। अयमर्थः। 'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्' इत्यादिश्रुत्युक्तमोक्षफलकज्ञानार्थं जगत्कारणविचार-

---

रश्मिः।

तत्र हेतुरिति प्रकृतिकारणत्वांशे प्रामाण्यनिराकरणे। योगे चेति 'एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति' इति वाक्यात् सेश्वरसांख्य इत्यर्थः। योगस्याग्रे प्रतिवक्तव्यत्वात्। वेदेति 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः' 'तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्' 'पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्' 'तस्य वाचकः प्रणवः' इति वेदप्रवर्तकता। 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' 'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च' इत्यनुग्राहकता। निर्णय इति। तेन न्यूनताख्यनिग्रहस्थानव्यावृत्त्यर्थम्, युक्त्येति भाष्यात् न्यायशास्त्रत्वाभावेऽपि श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारव्याख्यानाय तुल्यबलानां शास्त्रत्वेन सांख्ययोगस्मृतीनामिव पुराणानाम्, 'अहं सर्वस्य' इत्यादीतिहासानां छान्दोग्योक्तपञ्चमवेदानां वेदान्तानां च वेदत्वेन तुल्यानां परस्परं प्रथमाध्याये विषयत्वे विरोधेन प्रकारः प्रथमाध्यायोक्तवेदान्तप्रकारः, ततो अन्यप्रकारः उपबृंहणप्रकारः प्रकारान्तरं तेन पञ्चमवेदानां स्थितिरिति निर्णय इत्यप्युपलक्षणविधया तुल्येत्यादि भाष्यार्थः। तदा ततो युक्त्येति भाष्ये तत इत्यस्य न क्रमोर्थः, किं तु ततस्तदनन्तरं, युक्त्या सूत्रत्रयेऽपि श्रुतिविप्रतिषेधपरिहार इत्यर्थः। शिष्टानामिति सूत्राणामित्यर्थः। पुरुषाणां वा। ननु तर्हि सूत्रत्रये श्रुतिविप्रतिषेधपरिहाराभावात् पादार्थस्याव्याप्तिरिति चेन्न न्यायशास्त्रत्वाभावात्। ननु तथापि युक्त्येत्युक्त्या किंचिद्वक्तव्यमिति चेन्न, पूर्वं निर्णय इत्यादिग्रन्थेनोक्तत्वात्। फलितमाहुः फलेति।

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गः। 'अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा' इति॥ १॥

इति द्वितीयाध्याये प्रथमपादे प्रथमं स्मृत्यधिकरणम्॥ १॥

भाष्यप्रकाशः।

णायां सांख्यस्मृत्यनुपयोगे नित्यानुमेयश्रुतिविरोधो भवति न वेति संशये कापिलास्तावदेवं प्रत्यवतिष्ठन्ते। पूर्वाध्याये यद्यपि श्रुतिविचारेण ब्रह्मणो जगत्कर्तृत्वं जगदुपादानत्वं च प्रतिपादितं, तथापि कपिलप्रणीतसांख्यस्मृतिविरोधात् तदनादरणीयम्। न च श्रुतीनां स्वतःप्रामाण्यस्य तद्विरोधे स्मृतीनामप्रामाण्यस्य च पूर्वतन्त्रे, 'विरोधे त्वनपेक्षं स्यात्' इत्यत्र प्रतिपादितत्वात् स्मृतिविरोधोऽप्रयोजक इति शङ्क्यम्। 'औदुम्बरीं स्पृष्ट्वोद्गायति' इति श्रुत्युक्तस्य तत्स्पर्शरूपस्यार्थस्य प्रत्यक्षतो निश्चेतुं शक्यतया सर्ववेष्टनस्मृतौ तद्विरोधस्यापि प्रत्यक्षत एव भानेन तादृशीनां विरोधस्य तथात्वेपि जगत्कारणरूपस्य वेदान्तश्रुतिविषयस्याप्रत्यक्षत्वेन तादृशविषये पूर्वोक्तश्रुतिकपिलस्मृत्योर्विरोधे यदि प्रत्यक्षश्रुतिमालम्ब्य तस्या अप्रामाण्यमास्थीयते तदा तन्मूलभूता श्रुतिर्महर्षिप्रत्यक्षं चोपरुध्येत। न चेदं सर्ववेष्टनस्मृत्यनादरेपि तुल्यमिति वाच्यम्। तत्र हि 'असति ह्यनुमानम्' इति सूत्रांशेन स्मृतेर्मन्थरगामित्वबोधनात् प्रत्यक्षश्रुतौ स्वीकृतस्य प्रामाण्यस्य परित्याग आपततीति तदपेक्षया स्मृतेरेव प्रामाण्यत्यागो वरम्। स्वप्रत्यक्षापेक्षया परप्रत्यक्षस्य निर्बलत्वेन तुल्यत्वाभावात्। इह तु वेदान्तविषयस्य दुरवबोधत्वेन तादृशमहर्षिगोचरताया एवास्थेयत्वाद्, 'आनर्थक्ये प्रमाणानां विपरीतं बलाबलम्' इति न्यायाच्च कपिलस्मृत्यनुरोधेन श्रुतिरेव प्रधानविषये संकोच्या तदनुग्राहकस्य स्वप्रत्यक्षस्यात्राभावात्। किंच सर्वश्वेतो हयः, सर्वश्यामः पुरुष इत्यत्र यथा खुरनेत्रनखादिषु तद्वर्णाभावेपि श्वेतादिबाहुल्यात् सर्वपदप्रयोगस्तथा वेष्टनस्मृतावपि किंचिदंशपरित्यागेन बह्वंशवेष्टनेपि सर्वपदस्योपपत्तिरिति तस्याः संकोचसहिष्णुता तथा नात्र केवलयथार्थज्ञानभग्नावरणमोक्षोपयोगितया

रश्मिः।

भाष्ये। भ्रान्तेरिति बाह्याबाह्यमतप्रवक्तॄणाम्। पूर्वपक्षमाहुः **नित्यानुमेये**ति। तन्मूलभूतश्रुतिविरोधः। पूर्वपक्षमाहुः **कापिला** इति। 'विरोधे त्वनपेक्षम्'इति प्रथमस्य तृतीये चिन्तितम्। **औदुम्बरी**मिति औदुम्बरी शाखा सदोनाममण्डपस्य मध्ये ज्योतिष्टोमे निखन्यते। **तथात्व** इति प्रयोजकत्वेऽपि। **वेदान्ते**ति अर्थस्येत्यर्थः। **पूर्वोक्ते**ति आनुमानिकाद्यधिकरणोक्तेत्यर्थः। **तस्या** इति कपिलस्मृतेः। **महर्षी**ति उत्सन्नप्रच्छन्नशाखाप्रत्यक्षम् 'अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम्। विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक्पश्यन्ति योगिनः' इति वाक्योक्तं प्रत्यक्षम्। **इद**मिति तन्मूलभूतश्रुतिमहर्षिप्रत्यक्षयोरुपरोधनम्। **तत्र ही**ति स्मृतिपादस्थे 'विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्'इति सूत्रे हि। **मन्थरे**ति श्रुतिस्मृत्योर्विरोधे यथौदुम्बरी सर्वा वेष्टयितव्येत्यस्याः स्मृतेः 'औदुम्बरीं स्पृष्ट्वोद्गायति' इति श्रुत्या विरोधे तु स्मृतमनपेक्षं स्यात्, स्वतन्त्रं स्यात्। असति विरोधेऽनुमानं स्मृतेरुपष्टम्भकं स्यात्। तथा चैवं विचारसापेक्षत्वं मन्थरत्वम्। अत्रापि तौल्यमाशङ्क्य वारयन्ति स्म **स्वप्रत्यक्षे**ति। तथा सति प्रकृतेप्येवमित्याशङ्क्य वैपरीत्यमाहुः **इह त्वि**ति। **आनर्थक्य** इति। उदाहरणं तु। 'आहिताग्निमग्निभिर्दहन्ति यज्ञपात्रैश्च'इति श्रुतिं सावकाशां 'वैतानं प्रक्षिपेदप्सु आवसथ्यं चतुष्पथे। पात्राणि तु दहेदग्नौ यजमाने वृथा मृते' इति पतिताग्निहोत्रप्रतिपत्तिबोधिका स्मृतिः संकोचयति इति। **श्रुतिरेवे**ति कारणत्वप्रतिपादिका श्रुतिः। **नात्रे**ति कपिलस्मृतौ नेत्यर्थः। **केवले**ति केवलं यथयार्थज्ञानं तेन भग्नं यदावरणं स एव **मोक्षस्तदुपयोगितया**। सांख्यमतमिदम्।

भाष्यप्रकाशः ।

कस्मिन्नप्यंशे संकोचसहिष्णुत्वस्य वक्तुमशक्यत्वात् । किंच यथा, 'मानवी ऋचौ धाय्ये कुर्यात्' इति विधाय, 'यद्वै किंच मनुरवदत् तद् भेषजम्' इति श्रुतिर्धर्मे तदुपयोगं नियमितवतीति तस्यास्तत्र सावकाशत्वं तथास्याः क्वचन न वक्तुं शक्यते । तस्मादेतद्वैयर्थ्यमेवापततीति तन्मूलभूतनित्यानुमेयश्रुतिविरोधो महर्षिप्रत्यक्षविरोधश्चेति कापिलप्रत्यवस्थानात् प्राप्तं तदेतत् **स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेदिति** सूत्रांशेनानूद्य प्रतिबन्द्या प्रतिविधत्ते **नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गादिति**। तथा च, 'वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्' इति सर्ववेदवेत्रा वेदान्तकर्त्रा भगवता गीतास्मृतौ 'अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा' इति, 'अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते, इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः' इत्यादिकथनादुक्तज्ञानवतां स्वभजनकथनेन बहूनां चेतनकारणत्वास्थितिबोधनाच्च बहूनामनुग्रहो न्याय्य इति ताभिरेव वेदान्तवाक्यनिर्णय उचितः, अन्यथा तासां सर्वासामेवानवकाशप्रसङ्गात् तथा च वेदान्तोक्तविषयस्याप्रत्यक्षत्वेप्येतदनुरोधेन कपिलस्मृतिरेव जघन्याधिकारिविषयत्वेन संकोच्या । ये

रश्मिः ।

धाय्य इति । **यत्किंचेति** यत्किमपि स्मृत्यादि । **धर्म** इति मनुस्मृतिर्धर्मप्रतिपादिका तट्टीकायामस्याः श्रुतेरुल्लेखा**न्नियमितवती** । मन्वादिः स्मृतिरिति पुराणादिर्प्रसिद्ध्या मुख्यो धर्मः । **तदुपयोगं** मन्वादिस्मृत्युपयोगम् । **अस्या** इति कपिलस्मृतेः । **शक्यत** इति समवायित्वबोधकश्रुत्या शक्यते । **कापिलप्रत्यवेति** 'ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति ज्ञायमानं च पश्येत्'इति श्रुत्या पूर्वपक्षमाहुः **तदेतदिति** । **प्रतिबन्द्या** इति प्रतिबन्दिम् । कर्मणः संबन्धसामान्यविवक्षया षष्ठी, तुल्योदोषः प्रतिबन्दिः । **प्रतीति** सूत्रकार उत्तरयतीत्यर्थः । **नान्यस्मृत्यनवेति** तेन **भाष्ये कपिलेत्याद्यन्ते** तस्मादिति पूरणीयमिति बोधितम् । ननु भाष्यान्तरेषु सर्वाः स्मृतयः संगृहीताः यथा शक्त्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चेति कथ्यत इति ता विहाय भाष्यान्तरोक्तगीतामात्रग्रहणं कुत इत्यतस्तदुपपादयन्ति **तथा चेति** । **उक्तज्ञानेति** इति मत्वेत्यनेनोक्तजगत्कर्तृत्वज्ञानवताम् । **बुधा** इति बहुवचनस्याभिप्रायमाहुः **बहूनामिति** । ननु प्रकृतिश्चेत्यधिकरणे 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्'इति सन्मात्रस्य विषयत्वे मामिति चेतनविषयस्मृत्युपन्यासः कथमित्यत आहुः **चेतनेति** । तथा च सदित्युपलक्षणमिति भावः । **बहूनामिति** नात्र सर्वभाष्योक्तबहूनां स्मृतिवाक्यानामनुग्रहोर्थः । स्मृतिपुराणमतसांकर्यप्रसङ्गात् किंतु बहूनां बुधानां भ्रान्तिरहितानां वाक्यानामित्यर्थः । **ताभिः** शुद्धब्रह्मवादोपयोगिनीभिर्जिज्ञासासूत्रप्रतिज्ञाताभिः । **एवकारेणान्यस्मृतिव्युदासः** । 'नानुध्यायाद् बहून्'इति श्रुते**रुचित** इति । अत एव जिज्ञासासूत्रे ब्रह्मशब्देन पञ्चमवेदानामपि प्रतिज्ञा वक्तुं शक्यते न संकोचः । तदुक्तम् 'वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि । समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्' इति **निबन्धे** । **अन्यथेति** गीतातिरिक्तश्रीमद्भागवतवाक्यातिरिक्तस्मृतीनामुपष्टम्भकत्वे । **अनवेति** परस्परविरुद्धतया नैकस्मिन्नर्थे पर्यवसानादनवकाशप्रसङ्गात् । अतः 'तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम् । धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः' इत्यधिकारानुसारेण फलति । **एतदिति** गीतानुरोधेन । ननु भाष्ये 'अरूपवदेव हि तत् प्रधानत्वात्' इत्येकदेशि मतं, **सुबोधिन्यां** पञ्चविंशाध्याये तृतीयस्कन्धे सिद्धान्तान्तरनिरूपणाच्छास्त्रत्वाच्च तासां कोऽभिप्राय इत्यतस्तत्संगृह्णन्तः सिद्धमाहुः **तथा चेति** । **संकोच्येति** । तथा चर्षिं प्रसूतं

१. वाराहपुराणशङ्करभाष्यन्यायमालाविस्तरादि ।

भाष्यप्रकाशः।

मुमुक्षवः परप्राप्त्यनर्हास्तेनया स्वात्मानं प्रकृतिप्राकृतेभ्यो विविच्य स्वस्वरूपावस्थिता भविष्यन्तीति तादृशामर्थे परब्रह्मकारणतांशं परित्यज्य देवामरन्यायेन प्रकृतेरनादित्वं बोधयित्वा तथोक्तमित्येवं संकोचसहिष्णुत्वात्। न च तन्मूलभूतश्रुतेर्महर्षिप्रत्यक्षस्य वा विरोधः, महर्षेराशयस्य तन्मूलश्रुतेश्च प्रत्यक्षश्रुत्यविरुद्ध एवार्थे तात्पर्यात्। अन्यथा देवहूतिं स्वमातरं प्रति सर्वतत्त्वयाथात्म्यमुक्त्वाऽग्रे 'ज्ञानमेकं पराचीनैरिन्द्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम्, अवभात्यर्थरूपेण भ्रान्त्या शब्दादिधर्मिणा' इत्यादि न वदेत्। एतदेवाभिप्रेत्य मोक्षधर्मे, 'सांख्ययोगः पञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा, ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नानामतानि वै' इति पञ्चसिद्धान्तांस्तद्वक्तॄंश्चोक्त्वा, 'सर्वेषु च नृपश्रेष्ठ ज्ञानेष्वेतेषु दृश्यते, यथागतं तथा ज्ञानं निष्ठा नारायणः प्रभुः,' 'न चैनमेव जानन्ति तमोभूता विशाम्पते, तमेव शास्त्रकर्तारः प्रवदन्ति मनीषिणः, निष्ठां नारायणमृषिं नान्योऽस्तीति वचो मम' इत्युक्तम्। यथागतमिति श्रुत्यविरुद्धम्। तथा चाज्ञानामर्थे संकोच इत्यर्थः। अथवा पाद्मोत्तरखण्डे भगवच्छिवसंवादे, 'त्वं च रुद्र महाबाहो मोहनार्थम्' इति मोहनं प्रक्रम्य, 'मयि भक्ताश्च ये विप्रा भविष्यन्ति महर्षयः। त्वच्छक्त्या तान् समाविश्य कथयस्व च तापसान्। कणादं गौतमं शक्तिमुपमन्युं च जैमिनिम्। कपिलं चैव दुर्वासं मृकण्डं च बृहस्पतिम्। भार्गवं जामदग्न्यं च दशैतांस्तापसानृषीन्। तव शक्त्या समाविश्य कुर्वतो जगतोहितम्। त्वच्छक्त्या सन्निविष्टास्ते

रश्मिः।

कपिलेत्यस्या अपि न विरोधः। सिद्धान्तान्तरत्वात्। **प्रत्यक्षश्रुत्यविरुद्ध** इति न चैकदेशिमतं विरुद्धमिति वाच्यम्, स्वगृहीतमतत्वेन विरुद्धत्वेऽपि स्वगृहीतत्वेन रूपेणाविरुद्धत्वात्। **तात्पर्या**दिति जानातीच्छति यतत इति तात्पर्ये ज्ञानं कारणं ज्ञानं तु मुख्यैकदेशिसिद्धान्तयोः प्रणयनादस्त्येव। **अन्यथे**ति प्रत्यक्षश्रुत्यर्थे तदविरुद्धैकदेशिमते च तात्पर्याभावे। इदानीं सर्वविधसांख्यस्यानादरणीयता प्राप्नोति तथापि 'सांख्यो बहुविधः प्रोक्तस्तत्रैकः सत्प्रमाणकः। अष्टाविंशतितत्त्वानां स्वरूपं यत्र वै हरिः। अन्ये सूत्रे निषिध्यन्ते' इति शास्त्रार्थात् 'अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चितम्'इति प्रतिज्ञाय 'आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थः' इत्यादिनैकादशे भगवत्तत्कृततत्प्रस्तावाच्चाष्टाविंशतितत्त्वानां स्वरूपं यत्र नवकं भवति। 'पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमहंकारो नभोऽनिलः। ज्योतिरापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव'इत्युक्तं भागवतं भवति तदतिरिक्तसांख्यस्य 'केचित् षड्विंशतिं प्राहुरितरे पञ्चविंशतिः। सप्तैके नव षट्केचिच्चत्वार्येकादशापरे। केचित्सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश'इत्युक्तस्य सूत्रेषु प्रत्याख्यानान्न त्रैलोक्यं सांख्यं प्रत्याख्यातमित्याशयेन सिद्धान्तान्तरकापिलं सांख्यमाहुः **सर्वतत्त्वे**ति। **पराचीनै**रिति प्राकृतैः। 'पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्'इति श्रुतेः। **निर्गुण**मिति एकदेशिमतत्वान्निर्गुणपदम्। शून्याभावतुच्छादृश्यनिर्गुणादिपदानां सामानाधिकरण्यात्। **महोपनिषदि** 'एष ह्येव शून्य एष ह्येव तुच्छ एष ह्येवाभाव एष ह्येवाव्यक्तोऽदृश्यो निर्गुणश्च'इति **माध्वभाष्ये** उक्तम्। **अर्थरूपेणे**ति घटपटादिरूपेण शब्दार्थधर्मिणा भ्रान्त्यावभातीत्यर्थः ख्यातिबोधकम्। **इत्यादी**ति ख्यातिबोधकं न वदेदित्यर्थः। **एवं जानन्ती**ति मुख्यगौणसिद्धान्तेन न जानन्ति। **तमेवे**ति सिद्धान्तद्वयप्रतिपाद्यमेव। **ऋषि**मिति ब्रह्माग्निः सप्तर्षयः समिधः तेषु 'नारायणपरा वेदा' इति तस्य ग्रहणम्। **श्रुत्य-**

१. शब्दादीति श्रीप्रकाशकाराः।

इतरेषां चानुपलब्धेः ॥ २ ॥ (२-१-२)

प्रकृतिव्यतिरिक्तानां महदादीनां लोके वेदे चानुपलब्धेः ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्याये प्रथमपादे द्वितीयमितरेषामित्यधिकरणम् ॥ २ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

तमसोद्रिक्तया भृशम् । तामसास्ते भविष्यन्ति क्षणादेव न संशयः । कथयन्ति च ते विप्रास्तामसानि जगत्त्रये । पुराणानि च शास्त्राणि त्वं चासत्त्वेन बृंहितः । कपालचर्मभस्मास्थिचिह्नान्यमरपूजित । त्वमेव धृत्वा ताँल्लोकान् मोहयस्व जगत्त्रये । तथा पाशुपतं शास्त्रं त्वमेव कुरु सत्तम । कङ्कालशैवपाखण्डमहाशैवादिभेदतः' इति कथनात् कपिलाचार्यैस्तामसशक्तिप्रवेशोत्तरं तथा कथितमिति देवहूत्यादिकं प्रति च तदावेशाभावदशायां कथितमिति विषयभेदान्न मोक्षधर्मवाक्यानां सूत्राणां च विरोध इति दिक् । अत एव हेमाद्रौ श्राद्धखण्डे स्नानार्हप्रकरणे षट्त्रिंशन्मते, 'शैवान् पाशुपतान् दृष्ट्वा लोकायतिककापिलान् । विकर्मस्थान् द्विजान् शूद्रान् सवासा जलमाविशेत्' इत्युक्तम् ॥ १ ॥ **इति प्रथमं स्मृत्यधिकरणम् ॥ १ ॥**

इतरेषां चानुपलब्धेः ॥ २ ॥ एवं प्रतिबन्द्या कपिलस्मृतेर्निरङ्कुशप्रधानकारणत्वांशे संकोचसहिष्णुत्वमुक्त्वा महदाद्यंशेपि तथात्वमाहेत्याशयेन सूत्रं पठित्वा व्याचक्षते **इतरेषां चानुपलब्धेरि**त्यादि । लोके गीतापुराणादिस्मृतौ प्रश्नोपनिषदादिश्रुतौ चोपलभ्यमानत्वेपि कपिलोक्तप्रकारेणानुपलभ्यमानत्वात् तथाहि प्रवचनसूत्रेषु तावत् 'स्थूलात् पञ्चतन्मात्रस्य' 'बाह्याभ्यन्तराभ्यां तैश्चाहङ्कारस्य' 'तेनान्तःकरणस्य' 'ततः प्रकृतेः' इति सूत्रयता पञ्चभूतव्यतिरिक्तानां कार्यलिङ्गकानुमानगम्यत्वमाहत्याग्रे, 'मूले मूलाभावादमूलं मूलम्' इति कथनात्

रश्मिः ।

विरुद्धमिति श्रुतयः स्पष्टाः । एतस्यैव परम्पराप्राप्तत्वादिति भावः । **मोक्षेति** । तेनैकादशोक्तानां भगवद्वाक्यानामप्यविरोधो बोध्यः । **सूत्राणां चेति** । 'दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्'इत्यारम्भे वैराग्यं भगवद्धर्मो भगवान् 'असङ्गोयं पुरुष इति'इति 'प्रधानाज्जगज्जायत इति'इति च सूत्रद्वयं च । पञ्चस्वध्यायेषु इति श्रीकापिलसांख्यप्रवचनसूत्रवृत्ताविति वृत्तिशब्दः । षष्ठेऽध्याये 'अस्त्यात्मा नास्तित्वसाधनाभावात्' स्पष्टमित्यारम्भः । इति श्रीकपिलसांख्यप्रवचनसूत्र इति न वृत्तिशब्दः । एषां सूत्राणां न विरोधः । **अत एवेति** स्वतन्त्रकापिलकमतस्यैव दूषणादेव । अस्मिन्पादे सर्वेष्वप्यधिकरणेषु पूर्वाध्यायोक्तसमन्वयो विषयः, तत्रास्मिन्नधिकरणे वैदिकस्य समन्वयस्य सांख्यस्मृत्या संकोचोऽस्ति न वेति संशयः, संकोचोऽस्तीति तावत्प्राप्तम् । कुतः । सांख्यस्मृतेर्निरवकाशत्वेन प्रबलत्वाद्वेदस्योपबृंहणत्वं युक्तमिति प्राप्तेऽभिधीयते । सांख्यस्मृतीनां वेदोपबृंहणत्वं न युक्तम् । मोक्षैकप्रयोजनानामन्यासाम् 'अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः' इत्यादिगीताश्रीभागवतीयकपिलर्षिस्मृत्यनवकाशप्रसङ्गात्तासामुपबृंहणत्वमिति राद्धान्तः ॥ १ ॥ **इति प्रथमं स्मृत्यधिकरणम् ॥ १ ॥**

इतरेषां चानुपलब्धेः ॥ २ ॥ प्रतिबन्द्या इति । प्रतिबन्दिस्तुल्यदोषः । 'लोकस्तु भुवने जने' इति जननशीलः कुयुक्त्यादिनेति लोकपदेन जने युक्त्यादिभिरनुपलब्धिमाहुः **प्रवचनेति** । **पञ्चभूतेति** सूत्रस्थस्थूलादित्यस्यार्थः । **बाह्याभ्यन्तराभ्यां** सूक्ष्मस्थूलदेहाभ्याम् । **कार्यलिङ्गकेति** स्थूलानां सावयवानां भूतानां कार्यत्वात्तैस्तत्कारणानि तन्मात्राणि शब्दादीन्यनुमीयन्ते द्विविधेन्द्रियैः तन्मात्रैः कार्यैरहंकारोऽनुमीयते । तेन बुद्ध्यात्मकं महत्तत्त्वं, तेन कार्येण प्रकृतिरिति । एवं **कार्यलिङ्गकानुमानगम्यत्वम्** । तेनानुमानमित्यादत्य योजनीयानि सूत्राणीत्युक्तम् । **मूल** इति मूलं

भाष्यप्रकाशः ।

तस्यामेव मूलकारणता निर्णीता । तदिदमनुमानान्न सिद्ध्यति । स्थूलेषु पृथिव्यादिचतुर्षु गन्धादिगुणाविनाभावस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वेन शब्दे च द्रव्यजन्यत्वस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वेन पूर्ववर्तित्वस्य प्रत्यक्षबाधितत्वाद् गुणनाशेपि द्रव्यदर्शनेन व्यतिरेकव्यभिचाराद् गुणातिरिक्तानां मात्राणां लोकाप्रसिद्धत्वाच्च न स्थूलैस्ता अनुमातुं शक्यन्ते प्रत्युत पृथिव्यादिचतुष्टये तत्परमाण्वनुमानमेव सुकरम् । आकाशो नित्य इत्येव च युक्तम् । एवं मात्राणां स्थूलकारणत्वेन मात्रात्मकस्वरूपेण चासिद्धौ तत्साधितानामहंकारमहत्तत्त्वप्रकृतीनामप्यसिद्धिरेव । नापि द्विविधेन्द्रियाभ्यामहंकारसिद्धिः । शब्दातिरिक्ताया वाचो, गोलकातिरिक्तानामन्येषामपि कर्मेन्द्रियाणां चाप्रसिद्धत्वात् । गोलकैरपि भूतानामेव सिद्धेश्च । तेषां स्वविलक्षणोपादानासाधकत्वात् ।

रश्मिः ।

कारणम् । **तस्यामिति** मूलप्रकृतौ । **पृथिव्यादीति** । अत्र भूतत्वमाकाशादिपञ्चान्यतमत्वं सविशेषशब्दादिमत्त्वं वा **सिद्धान्ते** । बहिरिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणवत्त्वं तदिति केचित् । तदालंकारिका न सहन्ते । 'योग्यताघटितमपि प्रमाणविरहितम्'इत्युक्तं **प्रस्थानरत्नाकरे** । शिरोमणिस्तु स्पन्दसमवायिकारणतावच्छेदको जातिविशेषो भूतत्वम्, समवेतेन्द्रियग्राह्यगुणवद्वृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वं तदिति केचिदित्याह पदार्थतत्त्वविवेचने । **द्रव्यजन्येति** आकाशजन्यत्वस्य । **पूर्ववर्तीति** अनन्यथासिद्धत्वे सति कार्यनियतपूर्ववृत्तित्वं कारणत्वमिति कारणलक्षणघटकस्य पूर्ववर्तित्वस्य **बाधितत्वे**ति । तथा च कार्यकारणभावाभावान्नानुमानमिति भावः । **गुणनाश** इति आमघटादौ तेजःसंयोगेन तथा । **व्यतीति** अश्मा गन्धवान् पृथिवीत्वाद् इत्यत्र यत्र यत्र पृथिवीत्वं तत्र तत्र गन्धवत्त्वमित्यन्वयव्याप्तिः । व्यतिरेकस्तु यत्र यत्र गन्धवत्त्वाभावस्तत्र तत्र पृथिवीत्वाभावः, तस्य **व्यभिचारात्** । ननु न गुणास्तन्मात्राः किंतु भूतसूक्ष्मावस्थास्ता इत्याकाङ्क्षायामाहुः **गुणातीति** । **लोकेति** पुराणादिस्मृत्यप्रसिद्धत्वाच्च । **न स्थूलैरिति** स्थूलानां कार्यत्वाभावान्नानुमातुं शक्यन्ते । **प्रत्युतेति** अत्र प्रत्युत पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलानामनुमानमिति नोक्तम् । पृथिवी गन्धवत्त्वाद्घटवदित्यादौ साध्यहेतुतावच्छेदकैक्यात् । यदि च गन्धसमानाधिकरणद्रव्यत्वापरजातिमत्त्वं पृथिवीत्वमिति न तयोरैक्यमिति विभाव्येत तदापि गन्धवत्त्वं पृथिवीत्वमिति पक्षे तयोरैक्यं स्यात् । अतोऽश्मा परमाणुमान् स्थूलत्वाद् इत्याद्यनुमानमेव सुकरम् । **एवकारेणो**क्तानुमानव्यवच्छेदः । पञ्चमभूतं वदन्त एवमाकाशे प्राप्तमनित्यत्वमनुमन्यन्ते **आकाश** इति । 'न वियत्'इत्यधिकरणे स्पष्टम् । **असिद्धिरिति** न हि धूमसिद्ध्यभावे वह्निसिद्धिरित्येवं स्थूलात्पञ्चतन्मात्रस्यासिद्धौ तैरहंकारादीनामप्यसिद्धिः । लोकाप्रसिद्धत्वादेवकारः । बहूनामनुग्रहस्य न्याय्यत्वात् । **महत्तत्त्वम**न्तःकरणम् । तैरहंकारस्येति सूत्रांशं दूषयन्ति **नापीति** । **बाह्यं** स्थूलम् । **आन्तरः** शब्दः, ताभ्यां **बाह्याभ्यन्तराभ्यां** तानीन्द्रियाण्यनुमेयानि तैरहंकारस्यानुमानमेकोऽर्थः । यद्वा **अभ्यान्तरा** रूपरसादयः तैरिति द्वितीयोऽर्थः । तत्र प्रथमार्थमाहुः **द्विविधेति** । तत्र **मीमांसकाः** यत्संप्रयुक्तेऽर्थे विशदावभासं ज्ञानं जनयति तदिन्द्रियम् । **नैयायिकास्तु** शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयत्वं तत्त्वमिति । **सिद्धान्ते** तु देहसंयुक्तत्वे सति स्वफलेनात्मज्ञापकत्वम् । **अन्येषामिति** पाण्यादिचतुर्णां श्रोत्रादीनां चेत्यर्थः । एतच्चतुर्थपादे स्फुटिष्यति । तर्हि गोलकानामनुमानमस्त्विति चेत्तत्राहुः **गोलकैरिति** । अनुमितैर्गोलकैर्भूतरूपगोलकानां सिद्धिर्नाहंकारस्य सिद्धिः । नन्विदं तु लोकेऽपि तैजसाहंकारकार्याणीन्द्रियाणीति प्रसिद्धमितिचेत्तत्राहुः **तेषामिति** । **असाधकेति**

भाष्यप्रकाशः ।

किंच 'अभिमानोऽहंकारः' इत्यहंकारस्य स्वरूपलक्षणम् । स च देहादिष्वहमित्याकारकान्यथाज्ञानरूपो वा, अधिष्ठातृत्वेनात्मज्ञानरूपो वा । उभयथापि गुणरूप इति द्विविधेन्द्रियविलक्षण इति न तदुपादानतायोग्यः । एवम्, 'अध्यवसायो बुद्धिः' इति महतः स्वरूपलक्षणम् । स चेदमेवमेवेति निश्चयात्मा । तस्य चाभिमानजनकत्वं प्रत्यक्षबाधितम् । अहमिदं निश्चिनोम्यध्यवस्यामीति विपरीतप्रत्ययाद् आत्मधर्मत्वेन प्रत्ययाच्च । ततो जडप्रकृत्यनुमानमपि दुर्घटमेव । अतो यादृशं स्वरूपं महदादीनां सांख्याभिमतं, न तादृशं लोक उपलभ्यते । नापि गीतादिस्मृतिषु 'महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च । इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः' इति चतुर्विंशतीनामुक्तत्वेऽपि तेषां स्वप्रभवत्वस्यैव बोधनेन मूलप्रकृत्युपादेयताया अनुक्तत्वात् ।

रश्मिः ।

पञ्चावयववाक्यस्थानामत्र शाब्दसत्त्वेऽपि अनुमानोपजीव्यप्रत्यक्षाभावेन कारणविघटनादसाधकत्वं तस्मात् । **अन्यथाज्ञानेति** देहाभिन्नात्मावगाहित्वात्तथा । ननु न पुरुषविधब्राह्मणेऽव्यवहितकार्यमहंकारः 'ततोऽहंनामाभवत्'इति श्रुतेरन्यथाज्ञानमहंकारः, किंतु यथार्थज्ञानमिति चेत्तत्राहुः **अधिष्ठातृत्वेनेति** पुरुषविधाधिष्ठातृत्वेन । 'स यत्पूर्वोऽस्मात्सर्वस्मात् सर्वान्पाप्मन औषत्तस्मात्पुरुषः' इत्युक्त्वा 'सोऽबिभेत् तस्मादेकाकी बिभेति' इत्येकाकित्वविधानात् । अयं तु देहभिन्नात्मावगाही भवति । पुराणे तु तन्मात्रेन्द्रियमनोजनकतमआदिगुणवानहंकारः । 'ततो विकुर्वतो जातो योऽहंकारो विमोहनः' इत्युपक्रम्य 'तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणम्'इति वाक्यात् । **गुणरूप इति** नैयायिकानां चतुर्विंशतिगुणेषु बुद्धेः पाठात् । **तदुपादानतेति** द्विविधेन्द्रियोपादानतायोग्यः । **स्वरूपेति** । **प्रत्यक्षबाधितमिति** । न हि निश्चयेनान्यथाज्ञानमात्मज्ञानं वा जन्यते । **विपरीतेति** भ्रमात्मज्ञानाभ्यां विपरीतः इदमेवमेवेति निश्चयानुव्यवसायात् । नन्वनुव्यवसायो जन्यः तत्राभिमाननिवेशादभिमानजनकत्वं प्रत्यक्षसाधितमिति चेत्तत्र हेत्वन्तरमाहुः **आत्मधर्मेति** आत्मधर्मः 'यः सर्वज्ञ' इति श्रुत्युक्तो ज्ञानं तत्त्वेन प्रत्ययात्, न त्वभिमानत्वेन । तत्रापि निश्चयसामानाधिकरण्यात् । ननु निश्चयसामानाधिकरण्येऽपीदमेवमेवेति निश्चयानन्तरं शुक्तौ दोषवशाद्रजतं निश्चिनोम्यवस्यामीत्यनुव्यवसाये सत्यभिमानजनकत्वं प्रत्यक्षसाधितमितिचेन्न । सोऽहमस्मीति व्याहरन्ततोऽहंनामाभवदिति पक्षेऽभावात् । पाक्षिकोऽपि दोषः परिहरणीय इति । **सिद्धान्ते** तु कूटस्थत्वे सति स्वाधारविश्वव्यञ्जकत्वं 'विश्वमात्मगतं व्यञ्जन्'इति वाक्यात् । ब्रह्माण्डवारणाय सत्यन्तम् । प्रकृतिवारणाय विशेष्यम् । तेन सांख्यमते बुद्धिचित्तयोः पर्यायता । **सिद्धान्ते** तु तयोर्भेदः । निरीश्वरसांख्या इदमेव कार्येश्वरत्वेनोपासते । **तत** इति ज्ञानात्मकान्महतः । **जडेति** तल्लक्षणं तु 'सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः' । **सिद्धान्ते** तु उद्गतास्त्वंशतोऽपि गुणा अपि भवन्ति तेन स्वरूपत्वेऽपि धर्मधर्मिभावोऽपीति कापिलाद्विशेषः । **दुर्घटमिति** पञ्चावयवत्वाद्युक्तप्रकारेण दुर्घटम् । सांख्याप्रसिद्धत्वेवकारः । **अत** इति सलक्षणोपपादनात् । एवं लोकपदेन जनं लक्षणनिरूपणेन निरूप्य लोकपदेन स्मृतीर्निरूपयन्ति **नापि गीतेति** त्रयोदशाध्यायेऽस्ति । **लोकेऽनुपलब्धेरिति** भाष्यान्वयादुपलब्धिस्थानत्वात् । अत्र 'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि' इति स्मारणात् । अत्रोपलब्धिः । अनुपलब्धेः स्वप्रतियोग्युपलब्धिज्ञानसापेक्षत्वात् । **स्वप्रभवेति** प्रकृतिमिति वाक्ये प्रकृतिः स्वरूपमिति स्वप्रभवत्वम् । 'प्रकृतिश्च' इत्यधिकरणे 'सूक्ष्मं तु तदर्हत्वात्' इति सूत्रेऽव्यक्तं भगवत्कृपैवेति भाष्ये चैवं प्रतिपादनादव्यक्तस्यार्थान्तरत्वाच्चैवकारः । **मूलप्रकृतीति** मूलप्रकृतिसमवेततायाः 'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।

भाष्यप्रकाशः।

एवमेव पराशरमन्वाद्युक्तावपि द्रष्टव्यम्। तथैव श्रुतावपि बोध्यम्। तथाहि मैत्रायणीयोपनिषदि सृष्टिकथने 'तमो वा इदमग्र आसीदेकं तत् परे स्यात् तत् परेणेरितं विषमत्वं

रश्मिः।

विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसंभवान्' इत्यत्रापि तथात्वादिति। 'कृष्णवाक्यानुसारेण शास्त्रार्थं ये वदन्ति हि। ते हि भागवताः प्रोक्ताः शुद्धास्ते ब्रह्मवादिन' इति बोधाय विभूतियोगाध्यायस्मृतिमात्रं पूर्वाधिकरण उपात्तम्। इह तु प्रतियोगिज्ञानार्थं क्षेत्रक्षेत्रज्ञनिर्देशयोगाध्यायोक्तं वाक्यमुक्तम्। इदं सविकारक्षेत्रनिरूपणेऽस्ति। तत्र प्रकृतिपुरुषस्वरूपमुक्तं सांख्यभेदेन। अतः क्षेत्रनिरूपणात्तत्र च क्षेत्रज्ञनिरूपणं 'प्रकृतिं पुरुषं चैव'इत्यादिना। अत्र'अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः। शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते' इति शून्यादिसमुदायघटितनिर्गुणत्वोक्त्या योगविशेषेण शून्यादिपदवत्प्रतिपाद्ये कर्तृत्वनिषेधो लेपसमभिव्याहारात्कर्मकर्तृत्वनिषेधः। लोकसंग्रहाय कर्मकर्तृत्वं वर्तत एव। 'सर्वतः पाणिपादान्तम्'इत्याद्युक्त्वा 'असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च'इति मुख्यमतमुक्त्वैकदेशिमते अरूपवत्सूत्रोक्ते आह। प्रकृतिमिति वाक्यस्याग्रे 'कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते। पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते' इति वाक्ये। कर्तृत्वे हेतुः स्वरूपं कुलालवत्, न त्वभिन्ननिमित्तोपादाने उपादानोपयोगिनी। पुरुषस्तु जीवरूपेण भोक्तृत्वे हेतुः। 'अनश्नन्नन्यः' इति श्रुतेः। पुरुषः प्रकृतिस्थ इति विराड्जीवः प्रकृतिस्थः। अग्रे प्रकृत्यैव च कर्माणीति वाक्यं तत्र प्रकृत्या कुलालदेहवत् क्रियमाणानि कर्माणि यः पश्यति आत्मानं निर्गुणत्वादकर्तारं यः पश्यतीत्येकदेशिमतम्। विरुद्धधर्माश्रये सगुणं परित्यज्य निर्गुणमात्रग्रहणात्। अतः 'कर्ता शास्त्रवत्त्वात्' इत्यधिकरणस्य न विरोधः। त्रयोदशेऽध्याये 'ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः' इत्युक्त्यात्रेदमुक्तम्। सांख्ययोगाध्याये द्वितीये तु न प्रकृतिवार्ता अत आहुः **एवमेवेति**। निर्गुणपदवत्प्रायश्चित्ततमःपदसत्त्वात्। प्रायश्चित्तं पापनाशकमित्यहतपाप्म ब्रह्म। **पराशरे** ब्रह्मानिरूपणेऽपि। **मनुस्मृतिषु** तमोनिरूपणं तदवान्तरप्रलयविषयं समाधिकरणोक्तं चादिपदेन 'ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय प्रयतस्त्वात्मवान्क्षणी'इति **विष्णुस्मृत्युक्तात्मा**। **याज्ञवल्क्यस्मृतौ** 'तपस्तप्त्वासृजद्ब्रह्मा ब्राह्मणान्वेदगुप्तये' इति। श्रुतौ विकल्पप्रसङ्गवारणायोपष्टम्भकादतिदिशन्ति **तथैव श्रुतावपीति**। **श्रुत्यर्थस्तु** तमः समाधिकरणोक्तरीत्याऽनभिव्यक्तं गृह्यते। अग्रपदसमभिव्याहारात्। **तत्परे स्यादिति** सूर्यादौ छायासंबन्धक्रीडागुणारम्भकगुणस्य परे विवक्षणात्तत्परेऽधीष्टम्। अतः स्यादित्यर्धीष्टे लिङ्। 'प्रवर्तेते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्त्वं च मिश्रं न च कालविक्रमः' इति सिद्धान्तवाक्यस्य न विरोधः। **तत्परेणेरितम्**। 'रजसा तु तमो हन्यात्' इति कम्पितम्। ईर गतिकम्पनयोः अ० आ० से०। तथाऽसत्। **विषमत्वं** स्वस्वरूपे प्रमादालस्यनिद्राजनके क्षमवृत्त्या वर्तमानं विषमं भवति, क्षुब्धं भवति, तमु काङ्क्षायाम्। तदाकाङ्क्षायुक्तं क्षुब्धम्, तृष्णासङ्गयुक्तं भवति। ततस्तत्समुद्भवं रज इति तमो रजोरूपेण परिणमते रागात्मकं भवति। कर्मसङ्गं करोति। तदुक्तं गीतायां 'रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्। तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्'इति तदुक्तं **विषमत्वं प्रयात्येतद्वै रजसो रूपमिति**। विषमत्वं स्वस्वरूपे कर्मसङ्गजनके समवृत्त्या वर्तमानं विषमं भवति क्षुब्धं भवति। रञ्ज रागे भ्वा० उ० अ०। तद् रागयुक्तं क्षुब्धम्। सत्त्वजनकरजोनिष्ठसत्त्वसत्तया प्रकृष्टयुक्तं भवति। ततस्तत्समुद्भवं सत्त्वमिति रजः सत्त्वरूपेण परिणमते, प्रकाशकं भवति, सुखसङ्गं करोति, ज्ञानसङ्गं च। तदुक्तम्। 'तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्। सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ' इति। तदुक्तम्। **विषमत्वं प्रयात्येतद्वै सत्त्वस्य**

१. गुणभोक्तृधर्मम्।

भाष्यप्रकाशः ।

प्रयात्येतद्वै रजसो रूपं तद्रजः खल्वीरितं विषमत्वं प्रयात्येतद्वै सत्त्वस्य रूपं तत् सत्त्वमेवेरितं रसः संप्रास्रवत् तत् सोंऽशोऽयं यश्चेतामात्रः प्रतिपुरुषः क्षेत्रज्ञः सङ्कल्पाध्यवसायाभिमानलिङ्गः प्रजापतिः' इत्युक्त्वा तस्यांशा ब्रह्मविष्णुरुद्रा इति स एवापरिमितधा उद्भूत इति चोक्त्वा, उद्भूतत्वाद् भूतेषु चरति प्रविष्टः स भूतानामधिपतिर्बभूव इत्यसावात्मान्तर्बहिश्चेत्युक्तम् । तत्र तमो वा इदमग्र आसीदित्यनेन परिदृश्यमानजगतः पूर्वरूपं तम इत्युक्त्वा एकं तत् परे स्यादित्यनेन तदानीं तस्य पराभेदं चोक्त्वा ततः क्रमिकवैषम्येण रजःसत्त्वयोः स्वरूपप्राप्तिं ततः सत्त्वसारस्य मुख्यजीवत्वं तस्यानेकधोद्भूतत्वेन सर्वक्षेत्रज्ञत्वं सर्वाधिपतित्वं चोक्त्वा इति हेतोरात्मान्तर्बहिश्चेति निगमनाच्चेतनाचेतनरूपता परस्यैव बोध्यत इति तत्रापि महदादीनां सांख्योक्तरीतिकस्वरूपानुपलम्भात् । 'तमो वा इदमेकमास तत् परे स्यात्' इति पाठेपि तत्पदेन एकस्य परामर्शात् स एवार्थः । न चात्र सप्तम्या आधाराधेयभावस्फोरणादविभाग एव बोध्यत इति शङ्क्यम् । सुबालोपनिषदि प्रलयप्रकरणे, 'पृथिव्यप्सु प्रलीयते आपस्तेजसि विलीयन्ते तेजो वायौ प्रलीयते वायुराकाशे विलीयते आकाशमिन्द्रियेष्विन्द्रियाणि तन्मात्रेषु तन्मात्राणि भूतादौ विलीयन्ते भूतादिर्महति लीयते महानव्यक्ते लीयते अव्यक्तमक्षरे विलीयते अक्षरं तमसि विलीयते तम एकीभवति परस्मिन् परस्तान्न सन्नासन्न सदसदित्येतन्निर्वाणमनुशासनमिति वेदानुशासनम्' इत्यत्र शब्दान्तरेण लयव्यतिरिक्तैकीभावस्वरूपबोधनादविभागरूपस्यैकीभावस्य वक्तुमशक्यत्वात् । न च स्वरूपैक्यं लयः, एकीभावस्त्वविभाग इति वक्तुं शक्यम् । लिङ्श्लेषण इति धात्वर्थस्य, 'एके मुख्यान्यकेवलाः' इति

रश्मिः ।

रूपमिति । **सत्त्वमेवेरित**मनभिव्यक्तेनेरितं गतं सत्त्वमेव न तु रजस्तमसी । ज्ञानं भक्त्यात्मकमपि जनयित्वा रसो भवति । रस आस्वादने । आस्वादनकर्ता भवति । छान्दोग्यादष्टमः । स **रसः संप्रास्रवत्** । संशब्देन वायुशब्दात्मकः प्रशब्देन पूर्णः अस्रवत् आमघटवदन्यत्राप्यधिकारिषु स्वधर्मसंबन्धं कृतवान् । **क्षेत्रज्ञो** जीवः विराडभिमानी । लिङ्गदेहमाह **संकल्पेति** । **तस्यांशा** इति । तेन 'कदाचित्पुरुषद्वारा'इति सृष्टिरुक्ता । **स** प्रसिद्धः कृष्णः भूतानामधिपतिर्यः स बभूव । अन्तर्बहिराकाशशरीरत्वादिति । **पराभेद**मिति । पर अभेदो हि प्रकाशाश्रयन्यायेन । **सर्वाधिपतित्व**मिति । ननु व्याख्याने कृष्णावतार उक्त इति चेन्न 'नैश्चिन्त्यं वाचि पूर्ववत्'इति **सुबोधिन्या**माचार्योक्तेरविशेषादवतारावतारिणोः । **अन्तरि**ति अन्तश्चेतनम् । **बहि**रचेतनम् । **सांख्योक्तरीति**केति श्रुतौ संकल्पाध्यवसायाभिमानलिङ्ग इति मनोमहदहंकाराणां लिङ्गशरीरत्वमिति सांख्याभिमतोर्थः । 'कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव'इति श्रुत्याध्यवसायाभिमानधर्मावच्छिन्नमनोलिङ्ग इत्यर्थः **सिद्धान्ते** । इति **स्वरूपानुपलम्भात्** । पराभेदं स्वयमुक्तं तदुपपादयन्ति **न चेति** । **अविभाग** इति अनभिव्यक्तस्य स्वरूपेऽविभागेन प्रतीतिः प्रसिद्धैव । **एकीभवतीति** **केवली**भवति । **निर्वाणं** मोक्षः । **शब्दान्तरेणेति** तम एकीभवति परस्मिन्निति विलीयत इत्यतो भिन्नशब्देन । **अशक्यत्वादि**ति । तथा च लयोऽविभाग इति सिद्धम् । **लिङ्श्लेषण** इति अत्रानुस्वारो लेखकप्रमादात् इस्रश्च 'हलि च' इत्यस्याप्रसक्तौ दीर्घो दुर्घट इति लीङ् ।

भाष्यप्रकाशः ।

कैवल्यरूपस्यैकशब्दार्थस्य च बोधेनोभयत्र लक्षणाप्रसङ्गात् । एकपदस्य मुख्यार्थग्रहणे तमसोऽप्यविभागेन सत्तायां, परस्तान्न सन्नासन्न सदसदिति परेतरयावन्निषेधानर्थक्यप्रसङ्गाच्च । उपक्रमे च 'किं तदानीत्तस्मै स होवाच न सन्नासन्न सदसदिति तस्मात् तमः संजायते तमसि भूतादिर्भूतादेराकाशम्, आकाशाद् वायुर्वायोरग्निरग्नेराप अद्भ्यः पृथिवी तदण्डं समभवत्' इति सृष्टिप्राक्कालेपि तथा श्रावणात् तमस उत्पत्तिश्रवणाच्चाविभागस्य सांख्यप्रक्रियायाश्च ग्रहीतुमशक्यत्वात् । श्वेताश्वतरेपि, 'यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्न चासन् शिव एव केवलः' इत्यत्र तमोङ्कितकालेपि शिवकैवल्यश्रावणेन तमसि शिवाभेदस्यैव बोधनाच्च । तथा 'स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयेत नाहास्योद्ग्रहणायेव स्याद् यतो यतस्त्वाददीत लवणमेव' इति बृहदारण्यके लवणरसबोधनेनाविभागस्यैव लयपदार्थत्वेन निर्धाराच्च । एवं च गर्भोपनिषद्यपि यदुक्तम्, 'अष्टौ प्रकृतयः षोडश विकाराः शरीरम्' इति । तदपि न सांख्यरीतिकतत्त्वसंग्राहकम् । किंतु श्रौतानां ब्रह्मजन्यानामेव संग्राहकम् । तथा चूलिकोपनिषद्यपि 'विकारजननीं मायामष्टरूपामजां ध्रुवाम्' इत्यादिना प्रकृतिं परमात्मानं च प्रकृत्य यदुक्तं, तदप्यग्रे, 'तमेकमेव पश्यन्ति परिशुद्धं विभुं द्विजाः । यस्मिन् सर्वमिदं प्रोतं ब्रह्म स्थावरजङ्गमम् । यस्मिन्नेव लयं याति बुद्बुदाः सागरे यथा' इति, अग्रे च, जायन्ते बुद्बुदा इवेति च दृष्टान्तकथनात् स्वरूपैक्य एव पर्यवस्यति, न त्वविभागे । अतः प्रश्नोपनिषद्यपि सुषुप्तावस्थां प्रस्तुत्य, 'पृथिवी च पृथिवीमात्रा च' इत्यादिना, 'प्राणश्च धारयितव्यं च' इत्यन्तेन यानि तत्त्वान्युक्तानि तान्यपि न सांख्यरीतिकानीति बोद्धव्यम् । तदेतदुक्तं लोके वेदे चानुपलब्धेरिति । एवं चेदमधिकरणान्तरत्वेन सिद्ध्यति । पूर्वोक्तज्ञानार्थं महदादिविचारणायां सांख्यस्मृत्यनुपयोगे पूर्वोक्तश्रुतिविरोधो भवति न वेति संशये, महर्षिप्रत्यक्षान्न भवतीति पूर्वपक्षप्राप्तौ महर्षेस्तेषां तथोपपादने तात्पर्याभावात् तदंशेपि सांख्यस्मृतेर्नित्यानुमेयश्रुतिमूलकत्वाभाव इति सिद्धान्तसिद्धेरिति बोध्यम् ।

रश्मिः ।

लक्षणेति तात्पर्यवृत्तिप्रसङ्गात् । इदमुपपादितं जिज्ञासाधिकरणे स्यात्तदानीं तत्पदवाच्यसत्ता । 'ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः' इति स्मृतेः । तथा च तस्मादित्यस्य तत्पदवाच्याद्ब्रह्मण इत्यर्थः । तथेति परेतरयावन्निषेधश्रावणात् । अशक्यत्वादिति न ह्यविभक्तस्योत्पत्तिः संभवति न वा प्रकृतिपुरुषयोरन्यत्सर्वमनित्यमिति वदतां सांख्यानां मते तमोरूपप्रकृतेरित्यशक्यत्वात् । तमोङ्कितेति । श्रुतौ यदाशब्देन कालोक्तेः कालरूपार्थोक्तिः । तमसीति तमसि वक्तव्ये शिवाभेदः । 'ब्रह्मा विष्णुः शिवो भूत्वा पुनः कृष्ण एव जात' इति सुबोधिन्याः । 'सत्त्वं रजस्तम' इति श्रीमागवतादेवकारः । अष्टौ प्रकृतयो गीतायां षोडशविकारा एकादशेन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्राणि । श्रौतानामिति । तत्पूर्वमुक्तम् । तमेकमेवेति प्रकृतिरूपस्वरूपकं तम् । पूर्वोक्तेति 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि'इति श्रुतेरौपनिषदस्य तत्त्वरूपकार्यद्वारा ज्ञानं तानि चौपनिषदानि इत्यौपनिषदत्वज्ञानार्थम् । पूर्वोक्तश्रुतीति तन्मूलभूतनित्यानुमेयश्रुतिविरोधः । महर्षीति । उत्सन्नप्रच्छन्नानां मूलानां श्रुतीनां महर्षिप्रत्यक्षान्न भवति किंतु विकल्पः । महर्षेस्तेषां महर्षिसंबन्धिनां तेषां तथा स्वतन्त्र-

१. हस्ताक्षरपुस्तके 'तदानीत्' इतिपाठः । आधुनिकमुद्रितेषु 'तदासीत्' इतिपाठः ।

एतेन योगः प्रत्युक्तः ॥ ३ ॥ (२-१-३)

सांख्यस्मृतिनिराकरणेन योगस्मृतिरपि निराकृता द्रष्टव्या । योगस्य वैदिकत्वशङ्कया भेदेन निराकरणम् ॥ ३ ॥

इति द्वितीयाध्याये प्रथमपादे तृतीयं योगप्रत्युक्त्यधिकरणम् ॥ ३ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

रामानुजाचार्यास्तु, इतरेषामतिप्रामाणिकानां मन्वादीनां कपिलदृष्टप्रकारेण तत्त्वानुपलब्धेः श्रुतिविरुद्धा कपिलोपलब्धिर्भ्रान्तिमूलेति व्याकुर्वन्ति । तन्मयाऽनुपदमेव **पाद्मवचनोपदर्शनेन** व्युत्पादितम् ॥ २ ॥ इति **द्वितीयमितरेषामित्यधिकरणम्** ॥ २ ॥

एतेन योगः प्रत्युक्तः ॥ ३ ॥ एतेनेतिपदोक्तमतिदेशं व्याकुर्वन्ति **सांख्येत्यादि**। **योगस्मृतिः** पातञ्जलदर्शनं, हिरण्यगर्भस्मृतिश्च, सापि प्रकृतिस्वातन्त्र्याद्यंशे भेदांशे सोपाधि-

रश्मिः ।

सांख्योपपादने **तात्पर्याभावात्** । 'यद्वा तद्वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थस्तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः' इति सूत्रेण तदुच्छित्तौ तात्पर्यात् । तदुच्छित्तिः स्वस्वामिभावस्योच्छित्तिः । 'द्वयोरेकतरस्य वा औदासीन्यमपवर्गः'इति सूत्रान्तरात् । **तदंश** इति । सांख्यरीतिकमहदादिस्वरूपे । **नित्यानुमेयेति** तथा च न श्रुतिविरोधो नापि विकल्प इति भावः । मन्वादिषु नित्यानुमेयश्रुतिमूलकत्वम् । अत्र तु शिवाविष्टकपिलस्यातथ्यवितथ्यकरणाज्ञामूलम् । **व्युत्पादित**मिति व्यवस्थाया इत्यर्थः । अन्याचार्यमते तूक्तभाष्योक्तार्थः । **माध्वास्तु** इतरेषां तासु स्मृतिषूक्तानां फलानां प्रत्यक्षतोनुपलब्धेरप्रामाण्यं तासामुक्तम् । **चशब्देन** भागोपलब्धिरङ्गीकृतेति भाष्येण फलार्थकमितरपदमाहुः । फलानामुपलब्धत्वे तु नेयमन्यथा । सांख्ययुक्तिभिः संकोचोऽस्ति न वेति संशयः । युक्त्या श्रुतिविधिनिषेधपरिहारादत्र पादे इति पृथग्विचारः । संकोचोऽस्तीति तावत्प्राप्तं सांख्ययुक्तीनां निरवकाशत्वेन प्रबलत्वात् । अत्र **सिद्धान्तो**ऽभिधीयते । तदुक्तयुक्तीनामप्रयोजकत्वम् । प्रकृतिव्यतिरिक्तानां महदादीनां लोके वेदे चानुपलम्भादिति अत्रापि समन्वयो विषयः । सांख्यस्मृत्या संकोचाभावेऽपि युक्त्या, **युक्त्येति** भाष्यादत्र श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारः । सांख्यप्रकृतिप्रसङ्गादन्येषामनुपलब्धिरुक्ता इति विषयवाक्यप्रतिषेधकपुराणाद्योक्षेपकसांख्यस्मृतिप्रसङ्गसङ्गत्यात्मकसंबन्धेन श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारः, अतो नाव्याप्तिः ॥ २ ॥

इति द्वितीयमितरेषामित्यधिकरणम् ॥ २ ॥

एतेन योगः प्रत्युक्तः ॥ ३ ॥ **एतेने**त्यस्य सांख्योक्तदूषणनिचयेनेत्यर्थो न संभवति योगे करणत्वानुपपत्तेः । यत्तु 'एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति' इति तत्त्वतिदेशकं वाक्यम् । अत **एतेने**त्यस्यातिदेशकवाक्यादतिदेशेनेत्यर्थः । तथा चातिदिष्टेन सांख्यदूषणनिराकरणेन **योगः प्रत्युक्त इति** सूत्रार्थः । **अतिदेश**मिति असादृश्याशङ्काविषये योगे सांख्यसादृश्यप्रतिपादनरूपम् । न तु 'अन्यत्रैव प्रतीतायाः कृत्स्नाया धर्मसंततेः । अन्यत्र कार्यतः प्राप्तावतिदेशः स कथ्यते' इति पूर्वतन्त्रीयातिदेशस्य विकृतिविषयत्वात् । योगस्य सांख्यविकृतित्वाभावात् । योगस्मृतिनिराकरणं संकोचयन्ति **योगस्मृति**रिति । 'अथ योगानुशासनम्' इत्यादिर्योगस्मृतिः पातञ्जलदर्शनम् । तत्रैव 'पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्' इति सूत्रे गुरुर्ब्रह्मा च तस्य स्मृतिः वैखानसमतप्रसिद्धा । **प्रकृतीति** । **आदिपदेन** प्रकृतिः समवायिनी पुरुषो निमित्तमित्यंशः । **भेदांश** इति ध्यानं योगः, ध्येयौ वात्मेश्वराविति भेदो **रामानुजभाष्ये**स्ति । **सोपाधिकेति** । 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः

भाष्यप्रकाशः ।

केश्वरस्वरूपांशे च निराकृतेत्यर्थः । पृथक्तया निराकरणप्रयोजनमाहुः **वैदिकत्वशङ्कये-ति** श्वेताश्वतरोपनिषदि, 'त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य' इति 'पृथ्व्यप्तेजोनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते, न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्' इत्यादिमन्त्रार्थसंवादाद् वैदिकत्वशङ्कया । **इदं** चातिदेश-सूत्रम् । अतिदेशश्चात्रासादृश्याशङ्कायां सादृश्यप्रतिपादनरूपः । **तेनात्रैवं** संशयादिकं बोध्यम् । योगस्मृतावीश्वरतत्त्वाभ्युपगमान्मोक्षसाधनतया वेदान्तविहितयोगस्याभिधानाद् वक्तुर्हिरण्य-गर्भस्य वेदवेदान्तप्रवर्तनेधिकृतत्वात् तद्वाक्यस्य सर्वेषां पूज्यत्वात् पतञ्जलेरपि तथात्वात् तद्दर्शनभाष्यस्य व्यासचरणैः कृतत्वात् सांख्यतौल्याभावे योगेन समन्वयसंकोचो भवति न वेति

रश्मिः ।

पुरुषविशेष ईश्वरः' । 'तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्' इति सूत्रद्वयेन । सांख्ये तु 'उपाधिभेदेप्येकस्य नानायोग आकाशस्येव घटादिभिः' इति सूत्रं स्पष्टम् । **पृथगिति** सांख्यात्पृथक्तया । **इत्यादीति** आदिपदेन योगशिखायोगतत्त्वोपनिषत्संग्रहः । **वैदिकत्वशङ्कयेति** । तथा चेमाः श्रुतयः सदादृते निवेशनीयाः । अत एवोपनिषदुक्तः षडङ्गयोगः, स्मृतौ त्वष्टाङ्गो योग इति भेदः संगच्छते । 'मानसी सा परा मता' इत्यत्र 'ता नाविदन्मय्यनुषङ्गबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तथेदम् । यथा समाधौ मुनयो-ब्धितोये' इति **सिद्धान्तमुक्तावली**टीकोक्तो योगः संगच्छते । 'परो हि योगो मनसः समाधिः' इति । **गोपालतापिनीये** च 'भक्तिरहस्यभजनं तदिहामुत्र फलभोगनैराश्येनामुष्मिन्मनःकल्पनमेतदेव च नैष्कर्म्यम्' इति । 'भक्त्या प्रसन्ने तु हरौ तं योगेनैव योजयेत्' इति तृतीय**सुबोधिनी**कारिका च संगच्छते । तथा च योगस्मृत्यादौ योगः वैदिकः योगशिखाद्युक्तः शास्त्रत्वात् पाशुपतमतवत् अत्र साध्यमथर्वशिखाद्युक्तम् । यन्नैवं तन्नैवम् । मोक्षप्रतिपादकस्मृतिवत् । तासां पुराणमूलत्वात् । इति वैदिकत्वाशङ्का । अवैदिके योगे वैदिकत्वप्रकारकज्ञानसत्त्वात् । निराकरणं तु योगस्मृत्यादौ योगः अवैदिकः शास्त्रान्तरत्वात् पञ्चरात्रवत् । यन्नैवं तन्नैवं मोक्षेतरधर्मादिप्रतिपादकस्मृतिवत् । शास्त्रा-न्तरत्वादेव । **भाष्ये** प्रत्युक्तपदस्य निराकरणार्थत्वमेव न तु प्रतिनिधिरुक्त इत्यर्थः । एकदेशिमतत्वेन प्रतिनिधित्वाभावात् । विकल्पविषय एव प्रतिनिधित्वात् । तेनैकादशचतुर्दशाध्यायोक्तयोगोप्या-दृतः । अत्र योगस्यान्यथाकृतस्यापि योगशिखादिसमुक्तार्थप्रपञ्चत्वेन योगस्मृतिषु वैदिकत्वशङ्का तत्कृतसमन्वयसंकोच इत्याशङ्का सापि न । योगस्य परमेष्ठिपरत्वापत्तेः । योगशिखायां परमेष्ठिप्रति-पादनात् । योगस्य विष्णुपरत्वापत्तेश्च योगतत्त्वोपनिषदि विष्णूक्तेः । अतः शास्त्रत्वान्न श्रुतिरूपशास्त्रा-न्तरस्यार्थस्य स्पर्शः । भाष्यान्तरसंमत्याहुः **इदं चेति** । भास्करभाष्यीयलक्षणमाहुः **अतिदेशश्चेति** सांख्यं योगः इति समाख्यायाः पूर्वतन्त्रे भेदकत्वमिति भिन्नयोर्घटपटवदसादृश्याशङ्कायां निराकृतत्व-शास्त्रत्वानुपष्टम्भकत्वैः सादृश्यप्रतिपादनरूपः । अधिकरणत्वं स्फोरयन्ति **तेनात्रैवमिति** । **ईश्वर-तत्त्वेति** । सूत्रमुक्तं पूर्वम् । **मोक्षेति** 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेवस्थानम्' इति च । अत्र वेदान्तविहितत्वं स्फोरयन्ति **वक्तुरिति** । तथा च सूत्राणि । 'सर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छे-दात्' । 'तस्य वाचकः प्रणवः' । 'तज्जपस्तदर्थभावनम्' 'ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोप्यन्तरायाभावश्च' । वेदान्तार्थभावनात्प्रत्यक्चेतनाधिगमः । **पतञ्जलेरिति** । इति श्रीपातञ्जले सांख्यप्रवचने योगशास्त्रे

भाष्यप्रकाशः ।

सन्देहे, उक्तहेतूनां सांख्ये अभावात् तया संकोचाभावेपि योगे सत्त्वात् श्वेताश्वतरात्मक-प्रत्यक्षश्रुतिमूलत्वाच्च तेन संकोचो न्याय्य इति पूर्वः पक्षः ।

सिद्धान्तस्तु । अब्रह्मात्मकप्रधानकारणवादादीश्वरस्य निमित्ततामात्राभ्युपगमाद् ध्येय-स्येश्वरस्योपादानताविरहेण तदीयनिखिलगुणज्ञानाभावेन ध्यानस्याप्यपूर्णविषयत्वाद्धिरण्य-गर्भस्य सृष्टिवैयग्र्येण हंसगीतायामिव तदंशे बोधाभावस्यापि शक्यवचनत्वाज्ज्ञानेपि जघन्या-धिकार्यर्थे तावन्मात्रकथनस्य युक्तत्वेन तस्याः संकोचार्हत्वान्मनोनिग्रहसाधनांशे तस्या अवि-रुद्धत्वेन तदीयभाष्यकरणेपि शेषस्य विरुद्धत्वाच्च तया वेदान्तोपबृंहणस्यायुक्तत्वाच्च तया समन्वयसंकोचः संभवतीति ॥ ३ ॥ **इति तृतीयं योगप्रत्युक्त्यधिकरणम्** ॥ ३ ॥

रश्मिः ।

समाधिपादः प्रथम इति कथनात् । **उक्तेति** ईश्वरतत्त्वेत्याद्युक्तानाम् । **सत्त्वादिति** हेतूना-मित्यर्थः । 'एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति' इति गीताया अतिदेशाच्चाहुर**ब्रह्मेति** । प्रधानादित्यादिसूत्रद्वयमुक्तं प्राक् । अतिदेशात्सांख्यसूत्रोक्तिर्योगे । **ईश्वरस्येति** । 'प्रकृतिश्च'इति सूत्रे-र्धजरतीयेनेश्वरः कर्ता, प्रकृतिः समवायिनी । मोक्षेत्याद्युक्तवेदान्तविहितयोगस्याभिधानं नास्तीत्याहुः **ध्येयस्येति** । **तदीयेति** निखिलान्तर्गतसमवायित्वादि**गुणज्ञानाभावेन** । **ध्यानस्येति** । ननु गुणादित्रयं योगशास्त्रे तृतीयपादे उक्तं तद्विहाय ध्यानमात्रं कुतो गृहीतमिति चेत्सत्यम् । योगशिखा-रूपवेदान्तविहितयोगादरे परमेष्ठिपरत्वं योगतत्त्वोक्तयोगादरे विष्णुपरत्वमतोत्र **ध्यानबिन्दूपनिषदि** ध्यानोक्तेस्तत्साधारणं ध्यानं योगपदेन गृहीतम् । तस्यासङ्गपुरुषविषयत्वादीश्वरविषयत्वाद्वा पूर्णं सगुणनिर्गुणादिरूपं ब्रह्मत्वेन प्रसिद्धं तद्भिन्नैकदेशासङ्गादिविषयत्वेन पूर्णविषयत्वाभावात् । 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्' इति श्रुत्या पूर्णत्वं बृहदारण्यकोक्तस्त्रीधनपुत्रकर्मविशिष्टत्वं द्वितीयस्कन्धनवमोक्तम् । तादृशाविषयत्वेनापूर्णविषयत्वात् । योगशिखायाः परमेष्ठिदेवताकत्वेनातो योगशास्त्रे हिरण्यगर्भो गुर्वादिपदैर्व्याख्यातः । पुराणाद्येकवाक्यतया योग ईश्वरोपि सः । ननु तर्हि योगतत्त्वोपनिषदा विष्णुः कुतो नेति चेन्न प्रथमत्यागे मानाभावात् । विष्णोरसङ्गपुरुषत्वाद्वा । अतो योगे हिरण्यगर्भमाहुः **हिरण्येति** । **हंसेति** 'एवं पृष्टो महादेवः स्वयंभूर्भूतभावनः । ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः। स मामचिन्तयद्देवः प्रश्नपारतितीर्षया । तस्याहं हंसरूपेण सकाशमगमं तदा'इति **हंस**गीतायाम् । **तदंश** इति तादृशाभिन्ननिमित्तोपादानांशे । **ज्ञान** इति बोधेपि । **तावन्मात्रेति** निर्गुण-सोपाधिजीवप्रकृतिसमवायिनीमात्रेण शास्त्रमात्रकथनस्य । **मन** इति । सूत्रमुक्तम् । अत एव 'तस्मा-त्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्' 'यथा भक्त्येश्वरे मनः', 'भक्तिमार्गप्रचारैकहृदयो बादरायणः' इति वाक्यैरेतद्युक्तम् । अत एव च समाधिभाषेति संज्ञा, तस्यां च 'अपश्यत्पुरुषं पूर्णं मायां च तद-पाश्रयाम्, यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम्, परोपि मनुतेनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते । अनर्थो-पशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे' इति चोक्तम् । 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' इति जघन्याधिकारौचिती । **समन्वयेति** समवायित्वस्य प्रकृतिगतत्वेनाभिन्ननिमित्तोपादानत्वस्य निमित्तत्वमात्रे **संकोचः** । **इतीति** तेन 'योगोप्येकः सदादृतः, यस्मिन्ध्यानं भगवतो निर्बीजेप्यात्मबोधकः' इति शास्त्रार्थः सुष्ठु संगच्छते । अत्र निर्बीज इति निर्बीजत्वसबीजत्वाभ्यां योगो द्विविधः । स एव संप्रज्ञातासंप्र-ज्ञातपदवाच्यः । येन तु भाव्यस्वरूपं सम्यक् संशयविपर्ययनिरासेन प्रकर्षेण विशेषरूपेण ज्ञायते स

न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात् ॥ ४ ॥ (२-१-४)

बाधकोऽयं तर्कः । अस्य जगतो विलक्षणत्वादचेतनत्वाचेतनं न कारणम् । विलक्षणत्वं च शब्दात् विज्ञातं चाविज्ञातं चेति । प्रत्यक्षस्य भ्रान्तित्वं मन्यमानस्येदं वचनम् ॥ ४ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात् ॥ ४ ॥ एवं तुल्यबलविरोधेऽपि

रश्मिः ।

संप्रज्ञातः समाधिर्भावनाविशेषः । योगसूत्रेषु तु 'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा' 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्' 'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः' इति लक्षणानि । 'त्रयमेकत्र संयमः' इत्यग्रे सूत्रम् । भाव्यस्य विषयान्तरपरित्यागेन पौनःपुन्येन मनसि निवेशनं भावना । तत्र भाव्यो भगवान् यत्र स उपादेयः । यत्र तु भगवतो रूपस्य न भानं 'यन्नेति नेति'इति वाक्यसंवादि सोऽसंप्रज्ञातः इति । तेन च सर्वे शिष्टाः परिगृहीता इत्यर्थः संपद्यते सूत्रे । सोयं नानाबीजन्यायेन ज्ञानभक्तिकर्मोपासनासूपयुज्यते इति ज्ञेयम् । गीतायां 'योगः कर्मसु कौशलम्' इत्यादिकं तत्रतत्रोपयोगि ज्ञेयम् । 'एवं च सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः । एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् । यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते । एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति' इत्यत्रापि फलमैक्यं न स्वरूपत इत्यदोषः । श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारस्तु प्रसङ्गाद् भोगेतिदेशाद्विषयवाक्यप्रतिषेधकपुराणाद्याक्षेपकयोगस्मृतिरतोऽनेन संबन्धेन श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारः । अतो नाव्याप्तिः । अत्रान्ये सांख्ययोगौ द्वैतिनामिति निराकरणम् । **रामानुजभाष्येपि** वक्तुर्हिरण्यगर्भस्यापि क्षेत्रज्ञभूतस्य कदाचिद्रजस्तमोभिभवसंभवाच्च योगस्मृतिरपि तत्प्रणीतरजस्तमोमूलपुराणवद्भ्रान्तिमूलेति न तया वेदान्तोपबृंहणं न्याय्यमित्याहुः । **माध्वास्तु** योगफलं प्रत्यक्षत उपलभ्यमिति न मन्तव्यम्, उत्ताभ्यासे तत्काल एव फलादृष्टेरित्याहुः । उत्ताभ्यासे स्मृत्यनवकाशसूत्रोक्तविष्ण्वादिस्मृत्यभ्यासे । **भास्करभाष्ये** तु कः पुनर्वेदे योगोपदेशः **श्वेताश्वतरो**पनिषदि 'त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरम्'इत्यादिपूर्वोक्तश्रुतीः समादिश्य भवतु श्रुतिसंवादात्सम्यग्दर्शनोपायोपदेशांशस्य तथात्वं विप्रतिपन्नांशस्य तु मिथ्यात्वं पुरुषाणामन्यथार्थदर्शितत्वसंभवादिति । तदविरुद्धम् । ब्रह्मविल्प्रपाठके आनन्दमयान्ते निरूपिते अथातोनुप्रश्नाः । तेन प्रश्नाः पूर्वाध्याये उत्तरिताः । अनुप्रश्नाः 'उताविद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चन गच्छति । आहो विद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चित्समश्नुता उ' 'सोऽकामयत'इत्यादिनोक्ता विज्ञानं चाविज्ञानं चेत्यस्या अग्रे वक्ष्यमाणत्वादत्रोच्यन्ते ॥ ३ ॥

इति तृतीयं योगप्रत्युक्त्यधिकरणम् ॥ ३ ॥

न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात् ॥ ४ ॥ अत्रापि समन्वयो विषयः । स योगस्मृत्या संकोच्यो न वेति संशयः । संकोच्यः योगस्य पातञ्जलस्य प्रत्यक्षवेदेपि श्वेताश्वतरादौ दर्शनात् । किंचायं योगस्तत्त्वज्ञानोपयोगी 'दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः' इति प्राप्तेऽभिधीयते । सांख्यस्मृतिनिराकरणेन योगस्मृतिरपि निराकृता 'एकं सांख्यं च योगं च'इति वाक्यात् । 'सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः' इति वाक्याच्च । एवं तुल्येत्यादि

---

१. प्रपञ्चितत्वात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

स्वविवक्षितस्मृतेः समूलत्वबोधनेन तत्स्मृतिप्रामाण्ये निराकृते श्रुतिविप्रतिषेधं युक्त्या प्रदर्श्य प्रत्यवतिष्ठन्तं युक्त्या निराकर्तुमधिकरणान्तरमारभते । तत्र मास्तु सांख्यादिस्मृत्या समन्वयस्य बाधस्तथापि तदीयेन तर्केण बाधो भविष्यतीति पूर्वपक्षमाह सूत्रद्वयेन । तद् व्याकुर्वन्ति बाधक इत्यादि । सांख्यस्मृत्या समन्वयबाधाभावेपि तदीयतर्केण बाधो भवति न वेति संशये समन्वयबाधकोयं तर्क इत्यर्थः । तर्कस्वरूपं तु, स्वोत्प्रेक्षिता युक्तिस्तर्क इति तर्काप्रतिष्ठानसूत्रे वक्तव्यम् । ननु पूर्वतन्त्रे वेदस्य परानपेक्षं प्रामाण्यं व्यासमतानुसारेण जैमिनिना औत्पत्तिकसूत्रे स्थापितमिति तर्कनिमित्तकस्याक्षेपस्य कोत्रावकाश इति चेदित्थम्, तत्र हि'अव्यतिरेकश्चार्थेनुपलब्धे' इत्यनेन साध्यविषय एव तथात्वमिति प्रतीतेः । सिद्धविषये वेदान्ते, मन्तव्य इति द्रष्टव्यवाक्यैकदेशदर्शनाद् युक्तिभिरनुचिन्तनस्य च मननपदार्थत्वादत्र तर्कस्यापेक्षितत्वादस्त्यवकाश इति । सूत्रं व्याचक्षते अस्येत्यादि । अचेतनत्वमन्येषामपि विलक्षणधर्माणामुपलक्षकम् । कारणपदं चांशित्वस्य । अत्र च, नेति साध्यनिर्देशः । तथा च पूर्वोक्तं चेतनं निर्दोषं ब्रह्म न जगदुपादानम् । जगद्विलक्षणत्वात् । यद् यद्विलक्षणं तन्न तदुपादानम् । घटविलक्षणतन्तुवदिति । तथा, ब्रह्म न जीवानामंशिभूतम् । जीवविलक्षणत्वात् । यद् यद्विलक्षणं तन्न तदंशिभूतम् । रूप्यखण्डविलक्षणसुवर्णवदिति । वैलक्षण्यं च, ब्रह्मणश्चेतनस्य ज्ञानात्मकस्य शुद्धस्य शब्दात् प्रमितस्य, जाड्यमोहात्मकत्वतुच्छत्वादिविशिष्टाज्जगतः

रश्मिः ।

स्मृतित्वेन तुल्यबलम् । स्वविवक्षितेति कृष्णवाक्यानुसारेण शास्त्रार्थत्वस्य शुद्धब्रह्मवादत्वात्स्वविवक्षितस्मृतिर्गीतास्मृतिः तस्याः स्मृतेर्व्याससूत्रमूलत्वबोधनेन । तेषां सांख्यानां सांख्यादिस्मृतीनां प्रामाण्ये मुख्यशास्त्रे निराकृते । श्रुतीति । नन्वस्तु गीतास्मृत्या 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' इत्यादौ 'यतो वा इमानि'इत्यादौ चोक्तत्रिसूत्र्याऽभिन्ननिमित्तोपादानत्वम् । गीतेतरस्मृतीनां मुख्ये वेदान्तशास्त्रेऽप्रामाण्यात् । परं तु अभिन्ननिमित्तोपादानत्वं कार्यापेक्षं कार्यं तु जडमिति न तद्विलक्षणेभिन्ननिमित्तोपादनत्वापेक्षाऽतस्तदर्थं स्मृतिप्रामाण्यखण्डनं मुख्यशास्त्रेऽपि नेति उक्तश्रुत्योरभिन्ननिमित्तोपादानांशे श्रुतिविप्रतिषेधस्तम् । समन्वयस्येति ब्रह्मण्यभिन्ननिमित्तोपादानप्रतिपादकत्वेन समन्वयस्य । तर्क इति पूर्वपक्षरूपः । उपोद्घातोध्यायसङ्गतिः । सामान्यविशेषभावः । अधिकरणानां प्रसङ्गः । सांख्येन योगस्मरणात् तदनु तद्युक्तिस्मरणात् । 'स्मृतस्योपेक्षानर्हत्वं प्रसङ्गः' । औत्पत्तिकेति 'औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन संबन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेनुपलब्धे तत्प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात्' इति सूत्रं पूर्वमीमांसायां व्याकृतम् । तर्कनिमित्तेति परो यस्तर्कस्तन्निमित्तस्य, परसापेक्ष्यसंपादकस्येत्यर्थः । अनुपलब्ध इति भूते भाविनि चार्थे इति तर्कपादपक्षेर्थः तयोः साध्यत्वम् । विधिपादपक्षे तु सत्संप्रयोगेऽग्निहोत्रादिरूपेनुपलब्धेऽनधिगतार्थगन्तृत्वरूपे प्रमाणप्रमित इत्यर्थः । तत्रापि तयोः साध्यत्वम् । एवं च साध्यविषये । एवकारस्तु न हि सिद्धमनुपलब्धं भवतीति । तथात्वमिति परानपेक्षं प्रामाण्यम् । द्रष्टव्यवाक्येति 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इति श्रुतिवाक्यैकदेशदर्शनात् । विलक्षणेति तान् स्वयमेवाग्रे वक्ष्यन्ति । सूत्रार्थमाहुः अत्र चेति । भाष्ये चेतनं जिज्ञासासूत्रादनुवृत्तं ब्रह्मेत्याहुः चेतनमिति । चेतनमित्यस्य व्याख्यानं निर्दोषं ब्रह्मेति । अयं पक्षः, नेति जगदुपादानत्वाभाववत्, इदं साध्यम् । उपलक्षितधर्मानाहुः जाड्येति । आदिपदेन मन्दत्वादि

१ ब्र० सू० २०

भाष्यप्रकाशः ।

प्रत्यक्षसिद्धाच्छब्दप्रत्यक्षाभ्यामेव सिद्धम् । एवं दुःखित्वाज्ञत्वादिविशिष्टाज्जीवादपि नित्यनिरवध्यानन्दात्मकस्य तस्य वैलक्षण्यं सिद्धम् । तथा च ब्रह्म यदि जगदुपादानं जीवस्यांशि वा स्यात् तदुभयविलक्षणं न स्यात् । यतो नैवमतो नैवमित्येवं बाधकस्तर्को बोध्यः ।

भास्कराचार्यास्तु, देहेन्द्रियान्तःकरणप्राणात्मवादिमतेन तेषु कादाचित्कं चैतन्यमुपगम्य, जगद् ब्रह्मसलक्षणं ब्रह्मोपादेयत्वाद् यदेवं तदेवमिति सामान्यव्याप्तिमतानुमानेन जगतो ब्रह्मसलक्षणत्वेनुमिते पूर्वोक्तहेतोः स्वरूपासिद्धत्वमाशङ्क्य यदि देहेन्द्रियादीनामिवाकाशादीनां पाषाणान्तानां चैतन्यमनुद्भूतं स्यात् तद्वत् कदाचिदुपलभ्येत न चैवमुपलभ्यते हिताहितप्रवृत्तिनिवृत्त्यर्थक्रियायाः कदाप्यदर्शनाच्चैतन्यस्य च तदनुमेयत्वादतस्तेषु चैतन्यस्य प्रत्यक्षानुमानाभ्यां बाधितत्वेन स्वरूपासिद्धिं निरस्य, विलक्षणत्वादिति हेतुं साधितवन्तः । तेन शरीरादिष्वपि चैतन्यसाधकहेतूनां साधारणत्वं व्यतिरेकव्यभिचारादिकं चोक्त्वीय तेष्वप्यचेतनत्वमेव साधनीयमिति तदीयः पूर्वपक्ष्याशयः । शेषं विवृण्वन्ति **विलक्षणत्वमित्यादि** ।

रश्मिः ।

'मन्दाः सुमन्दमतयः' इति वाक्यात् । **शब्देति** 'अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्' इत्यत्र ब्रह्म प्रत्यक्षं वक्ष्यति । ऐश्वर्यादिविलक्षणधर्मानाहुः **एवं दुःखित्वेति** । हेतुं शोधयितुं **भास्कराचार्य**मतमाहुः **भास्करेति** । ननु पूर्वपक्षे हेतुशोधनस्य किं प्रयोजनमिति चेन्न । **सिद्धान्ते** वैरूप्याङ्गीकारेण तदुपयोगात् । **देहेन्द्रियादी**ति । नानर्षिमतानि प्रवृत्तानि तत्र सांख्यैकदेशी तार्किकऋषिर्गृह्यते । न च भास्कराचार्यमतप्रवेशः एतत्सूत्रे इत आरभ्यापादसमाप्तेस्तर्कावष्टम्भेन सांख्यादीनां य आक्षेपस्तत्समाधानं क्रियत इति वाच्यम् । ततो युक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधपरिहार इत्युक्तभाष्याच्छ्रुतिविषयत्वात् । श्रुतिस्तु ब्रह्मवित्प्रपाठकस्था तस्याः विप्रतिषेधः विज्ञानं चेतनं अविज्ञानमचेतनमुभयोरेकतरोर्थः प्रमाणमेकतरो नेति तस्य परिहारः । 'दृश्यते तु'इत्यत्र कार्यकारणयोर्वैरूप्यमिति सिद्धान्तात् । वैरूप्यं 'विज्ञानं चाविज्ञानं च'इत्युक्तम् । अविज्ञानं प्रकृतिसमवायिकत्वे संभवतीति सांख्यैकदेशितर्कः । देहेन्द्रियाद्यात्मवादिनोग्रेतनसूत्रे स्फुटाः । जगत्पक्षः । ब्रह्मसलक्षणं साध्यम् । ब्रह्मोपादेयत्वादिति हेतुः । **सामान्येति** सामान्यव्याप्तिर्विद्यते यस्य परामर्शस्य कारणतासंबन्धेन तादृशानुमानेन परामर्शनम् । स च ब्रह्मसलक्षणव्याप्यब्रह्मोपादेयत्ववज्जगदिति । 'व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः' । **पूर्वोक्तेति** विलक्षणत्व**हेतोः** । **स्वरूपेति** पक्षे हेत्वभावः स्वरूपासिद्धिः । ह्रदो द्रव्यं धूमादितिवत् । **तदनुमेयत्वादिति** । चेतनः हिताहितप्रवृत्तिनिवृत्त्यर्थक्रियावत्त्वात् । **अत** इत्यनुमापकहेतोरभावात् । **तेष्विति** उपगतकादाचित्कचैतन्येषु देहेन्द्रियादिषु । **बाधितत्वेने**ति पक्षे देहेन्द्रियादिषु साध्यस्य चैतन्यस्याभावाद्बाधः । **बाधस्तु** पक्षे साध्याभावः इति **मुक्तावल्याम्** । **चैतन्यसाधके**ति हिताहितादिरूपः ब्रह्मोपादेयत्वरूपः सामान्यव्याप्त्या स्मारितविशेषव्याप्तौ हेतुः विष्णुमित्रोत्पन्नत्वादिः । देवदत्तश्चेतनः विष्णुमित्रोत्पन्नत्वात् तद्भ्रातृवत् । एतेषां **साधारणत्वं** शरीरादिषु साध्यवदन्यवृत्तित्वादि । साध्यवदन्यत् शरीरादि तद्वृत्तित्वं हिताहितादिरूपादिहेतुत्रयाणामिति । **व्यतिरेकव्यभिचारः** शरीरादिषु ब्रह्मसलक्षणत्वाभावेपि ब्रह्मोपादेयत्वाभावाभावात् । यत्र ब्रह्मसलक्षणत्वाभावस्तत्र ब्रह्मोपादेयत्वाभाव इति व्यतिरेकव्याप्तिस्तस्या व्यभिचारः । **आदिपदेन** व्यतिरेकव्याप्तिशोधकस्तर्कः । यदि ब्रह्म सलक्षणत्वाभाववत्स्यात् ब्रह्मोपादेयत्वाभाववत्स्यादिति । **तेष्विति** देहेन्द्रियादिषु । देहेन्द्रियादयः अचेतनाः कादाचित्कचेतनवत्त्वात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

सूत्रे अस्येतिपदं देहलीदीपवदग्रेऽपि संबद्ध्यते । तथात्वं च विलक्षणत्वम् । ननु विलक्षणत्वस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात् तेन हेतुना ब्रह्मणो जगत्कारणत्वे जगतश्च तत्कार्यत्वे दूषिते किमिति शब्देन विलक्षणत्वसाधनमित्याकाङ्क्षायामाहुः प्रत्यक्षस्येत्यादि । प्रत्यक्षस्य भ्रान्तीत्वं मन्यमानस्य सांख्यैकदेशिनस्तादृशं वेदान्तिनं प्रति स्वमतोपष्टम्भकमिदं विलक्षणत्वस्य श्रौतत्वबोधकं वचनं चेतनाचेतनविभागस्य श्रुतावपि दर्शितत्वादित्यर्थकम् । तथा चायं तर्कादिरप्रामाणिकः, श्रुतिविरुद्धत्वाद्, बाह्यतर्कादिवदित्यप्रामाण्यसाधने, प्रामाणिकः श्रुतितात्पर्यगोचरत्वात् सत्तर्कादिवदिति प्रतिसाधनेन तस्याभासीकरणार्थमेतत्कथनमिति भावः ।

रामानुजाचार्यास्तु जीवे ब्रह्मवैलक्षण्यबोधनायापि श्रुतिमाहुः 'समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः', 'अनीशश्चात्मा बद्ध्यते भोक्तृभावात्' इति । तथा च पादादिवदंशत्वमपि न युक्तमिति तदाशयः । तथा चानन्यापेक्षस्यातीन्द्रियार्थगोचरस्यापि शास्त्रस्यावश्यं तर्कसापेक्षता । सर्वेषां प्रमाणानां क्वचिद्विषये तर्कानुगृहीतानामेवार्थनिश्चायकत्वम् । तर्को नाम अर्थस्वभावविषयेण सामान्यविषयेण वा निरूपणेन प्रामाण्यव्यवस्थापकं तदितिकर्तव्यतारूपमूहापरपर्यायं ज्ञानम् । शास्त्रस्य त्वाकाङ्क्षायोग्यतासन्निधिज्ञानाधीनप्रामाण्यस्य सुतरां तदपेक्षा । अन्यथा तद्रहितमपि वाक्यं प्रमितिमुत्पादयेत् । अत एव मनुनापि 'यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः' इत्युक्तम् । आत्मविषये, मन्तव्य इति वेदान्त-

रश्मिः ।

नास्तिकचेतनवद्देहादिवत् । तथात्वं चेति । 'तथात्वं च शब्दात्' इत्यस्य भाष्यस्यार्थः । तथा चास्य तथात्वं शब्दात् । इदं विलक्षणं 'विज्ञानं चाविज्ञानं च' इतिशब्दात् घटवत् इति सिद्धे विलक्षणत्वे । इदं चेतनाकारणकं विलक्षणत्वात् घटवदिति सूत्रपरिष्कारः । हेत्वन्तरेति विलक्षणत्वसाधकहेत्वन्तरकथनम् । प्रत्यक्षस्येति । सांख्यानां जगन्नित्यं तत्रैकदेशी पञ्चशिखादिः । 'अविवेकनिमित्तको वा पञ्चशिखः' इति कपिलसांख्यप्रवचनसूत्रात्, अत्र प्रकृतेः स्वस्वामिभावो यो वर्तते सोऽविवेकनिमित्तक इत्युक्त्या 'अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या' इति योगसूत्रम् । 'आधेयशक्तियोग इति पञ्चशिखः' इति सूत्रं सांख्यम् । 'सदसत्ख्यातिः बाध्यबाधात्'इति च तस्मादेतदन्तः किंचित्प्रकल्प्य जगतो विलक्षणत्वप्रत्यक्षस्य भ्रान्तित्वं पञ्चशिखादेर्मन्यमानस्यानुमानेन श्रौतत्वबोधकं वचनम् । यद्वा सांख्यं निवृत्तं 'तस्मात्समानाः प्रजाः प्रजायन्ते' इति संहिताया वैलक्षण्यप्रत्यक्षस्य भ्रान्तित्वं मन्यमानस्य सायणीयादेर्वेदभाष्यकर्तुरिदं वचनमित्यर्थः । तेन मायावादिमतमौडुलोमिमतं च प्रतीयमानमपि सांख्यर्षिमतेनाप्राप्तावसरमिति । 'एतेन शिष्टापरिग्रहाः' इति सूत्रे मायावादस्य वक्तव्यत्वान्नात्र व्याख्यातः । श्रुताविति 'विज्ञानं चाविज्ञानं च' इति श्रुतौ । अयमिति सूत्राद्युक्तः । तर्कादिरिति आदिशब्देन विलक्षणत्वसाधकः शब्दः श्रुतिरूपः 'तथात्वं च शब्दात्'इति सौत्रः । श्रुतितात्पर्येति विज्ञानत्वविशिष्टमविज्ञानत्वविशिष्टमित्यभिधेयार्थः । विलक्षणकारणकत्वविशिष्टे तात्पर्यम् । तस्येति श्रुतिविरुद्धत्वस्य हेतोः । एतदिति । हेत्वन्तरस्य सूत्रे कथनं तर्कस्य भाष्ये । अपीति अनेन ब्रह्मणि जीववैलक्षण्यम् । श्रुतौ अनीशत्वं मोहः भोक्तृभावः बन्धश्च जीवे ब्रह्मवैलक्षण्यम् । पादादीति 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' इति श्रुतिः । तर्को नामेति तर्काप्रतिष्ठानसूत्रेऽभिप्रायवर्णनं कर्तव्यम् ।

अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम् ॥ ५ ॥

'मृदब्रवीत्', 'आपोब्रुवन्', 'तत् तेज ऐक्षत', 'ते ह वाचमूचुस्त्वं न उद्गाय' इति । एवमादिश्रुतिभिर्भूतेन्द्रियाणां चेतनत्वं प्रतिपाद्यत इत्याशङ्क्य तुशब्देन निराकरोति, तत्तदभिमानिन्य एव देवतास्तथा वदन्ति । कुतः । वेद एव 'विज्ञातं चाविज्ञातं च'[1] इति चेतनाचेतनविशेषोक्तेः । अनुगतत्वाच्च । 'अग्निर्वाग्

भाष्यप्रकाशः ।

श्रुत्याप्युक्तम् । किंच । वेदान्तैर्जगतो ब्रह्मोपादानताप्रतिपादननिश्चये घटादीनां चैतन्यशक्तेश्चैतन्यस्य च तेष्वनुद्भूतसत्ताया निश्चयस्तन्निश्चये च सति वेदान्तैर्जगतो ब्रह्मोपादानताप्रतिपादननिश्चय इत्यन्योन्याश्रयः, तस्मान्न विलक्षणयोः कार्यकारणभाव इत्यप्याहुः ॥ ४ ॥

अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम् ॥ ५ ॥ ननु किं सालक्षण्यं प्रकृतिविकारयोरभिप्रेतं यदभावाज्जगतो ब्रह्मोपादानत्वासंभवं ब्रूषे । न तावद्धर्मसालक्षण्यम् । मृत्पिण्डघटयोः पिण्डत्वाद्यभावस्य प्रत्यक्षतो निश्चयात् । अथ यत्किंचिद्धर्मसालक्षण्यं तदा तु सत्तया सालक्षण्यं वर्तत एवेति । यदि च येन धर्मेण कारणभूतं वस्तु वस्त्वन्तराद् व्यावृत्तं तेन धर्मेण सालक्षण्यमभिप्रेतम् । तादृशं चात्र चेतनत्वम् । तदभावान्न जगतः कार्यत्वमिति ब्रूषे, तदा तु, 'मृदब्रवीत्,' 'आपोऽब्रुवन्,' 'ते ह प्राणा वाचमूचुः', 'ते ह प्राणा अहंश्रेयसे विवदमाना ब्रह्माणं जग्मुः' इत्यादिषु मृदादीनां चेतनक्रियाश्रावणात् पुराणेषु नदीसमुद्रादीनामपि चेतनत्वस्मरणाच्च तेष्वपि सालक्षण्यमाश्रयणीयम् । तर्के श्रुत्यनुग्रहस्य त्वयाप्यङ्गीकारादित्याशङ्कायामुत्तरं पठतीत्याशयेन व्याकुर्वन्ति मृदित्यादि । निराकरोतीति पूर्वपक्षी निराकरोति । कुत इति अभिमानिन्यो देवता एवात्राभिप्रेता इति कुतोवगम्यते । विशेषपदं व्याचक्षते वेद एवेत्यादि । तथा च यदि चेतनत्वं सर्वस्याभिप्रेयात्, यदि चोक्तवाक्येष्वभिमानिन्यो देवता अभिप्रेता न स्युस्तदा उक्तश्रुतौ विभागं विशेषरूपं न ब्रूयात् । 'अग्निर्वाग्'इत्यादिनानुप्रवेश-

रश्मिः ।

अन्योन्याश्रयः स्पष्टः । तस्मादित्यन्योन्याश्रयात् ॥ ४ ॥

अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम् ॥ ५ ॥ सांख्यसनन्दनाचार्योऽत्र प्रतिभाति 'लिङ्गशरीरनिमित्तक इति सनन्दनाचार्यः' इति सांख्यप्रवचनसूत्रात् । प्रकृतेः स्वस्वामिभावादिः लिङ्गशरीरनिमित्तक इति प्रवचनकर्तृत्वात् । **श्रीभागवते** च श्रुतिगीतायां सनन्दनाचार्यः । सूत्रे च तुना पूर्वसूत्रोक्तनिराकरणाच्च । तदेतदभिसंधायाहुः **नन्विति** । **वर्तत इति** ब्रह्मणोपि वर्तते । **वस्त्वन्तरादिति** मृत्पिण्डत्वेन रूपेण वस्त्वन्तरं तन्तुरूपं तस्माद्व्यावृत्तम् । **अत्रेति** पादे । तेन श्रुतिविप्रतिषेधपरिहार इति न स्वरूपलक्षणलक्षितत्वं किंतु **चेतनत्वम्** । **स्मरणादिति** 'एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनन्दनम् । उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप', 'यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपातसंभ्रान्तनक्रमकरो भयगीर्णघोषः । सिन्धुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी पादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत्' । 'तरवोभिनेदुः' इति । **त्वयेति** पञ्चशिखादिना । 'निर्गुणत्वमात्मनोसङ्गादिश्रुतेः' इत्यादिसूत्रैरङ्गीकारात् । इति पूर्वसूत्रार्थाशङ्कायां सनन्दनाचार्य उत्तरं पठतीति व्यासाशयेनाचार्या व्याकुर्वन्तीत्यर्थः । **पूर्वपक्षीति** सिद्धान्तिनः पूर्वपक्षी । तुना सौत्रेण पञ्चशिखादिसिद्धान्ती । **विभागमिति** विज्ञानत्वाविज्ञानत्वाभ्यां विभागम् । **अनुगतत्वाच्चेत्यादि**भाष्यं विवृण्वन्ति **'अग्निर्वाग्**

१. रश्मौ प्रकाशे चासकृत् विज्ञानं चाविज्ञानं चेति पाठः ।

भूत्वा मुखं प्राविशत्'इत्येवमादिविशेषानुगतिभ्यामभिमानित्वमित्यर्थः । देवतापदं च श्रुत्यन्तरे ॥ ५ ॥

दृश्यते तु ॥ ६ ॥

परिहरति । तुशब्दः पक्षं व्यावर्तयति । दृश्यते हि कार्यकारणयोर्वैरूप्यम्,

---

भाष्यप्रकाशः ।

रूपामनुगतिं च न ब्रूयादतस्तथेत्यर्थ इति । विशेषपदस्यार्थान्तरमाहुः देवतापदमित्यादि । 'हन्ताहमिमास्तिस्रो देवताः' इति देवतापदं तेजोबन्नानां विशेषणं छान्दोग्ये । 'एता ह वै देवता अहंश्रेयसे विवदमानाः' इति कौषीतकिब्राह्मणे च प्राणानां विशेषणमित्यर्थः ॥ ५ ॥

तथा च जगतोऽचेतनत्वेन विलक्षणत्वाद् ब्रह्मोपादेयत्वानुपपत्तेस्तर्कानुगृहीतस्मृत्यनुरोधेन जगतः प्रधानोपादेयत्वं प्रतिपाद्यते । एवं जीवेपि भेद एव प्रतिपाद्यते । नित्यत्वादिकथनात् । ततश्च ईक्षत्यादय उपादानत्वप्रतिपादकाः, पादत्वादयोंशत्वप्रतिपादकाश्च सत्प्रतिपक्षत्वादाभासाः । तस्मात्, 'कारणत्वेन चाकाशादिषु'इति सूत्रे यद् यथाव्यपदिष्टस्य कारणत्वमुक्तं, तत् प्रत्यक्षविरोधादसंगतमित्येवं प्राप्ते सिद्धान्तसूत्रं पठन्ति ।

दृश्यते तु ॥ ६ ॥ तद् व्याचक्षते तुशब्द इत्यादि । वैरूप्यमिति वैलक्षण्यम् । अत्रायमर्थः । विलक्षणत्वेन ब्रह्मणो जगत्कारणत्वं दूषयतो भवतः, किं कार्यकारणयोः सर्वधर्मैः सारूप्यं विवक्षितम्, उत केनचिद् धर्मेण, अथवा येन धर्मेण कारणं वस्त्वन्तराद् व्यावर्तते तेन धर्मेण । नाद्यः । लोकविरुद्धत्वात्, सर्वांशसारूप्ये कार्यकारणभावहानिप्रसङ्गात्, प्रकृतिगतानां गुणसाम्यत्वसर्वमूलत्वादीनां विकृतिष्वभावेन विलक्षणतया प्रकृतेरपि कारणताभङ्गप्रसङ्गात्, तत एव ब्रह्मणः कारणत्वसिद्ध्या हेतोरर्थान्तरसाधकत्वापत्तेश्च । न द्वितीयः । अतिप्रसङ्गापत्तेः, सच्चिदानन्दरूपाद् ब्रह्मणः सदंशाज्जडानां चिदंशाज्जीवानामानन्दांशादन्तर्यामिणां व्युच्चरणमिति तत्तत्सारूप्यस्य तत्र तत्र विद्यमानत्वाद् भवदुक्तहेतोः स्वरूपासिद्ध-

रश्मिः ।

इत्यादिना' इति । **विशेषण**मिति 'तेजोबन्नात्मिका देवताः' इति । **इत्यर्थ** इति तथा च देवतापदं विशेष इत्यर्थः ॥ ५ ॥

सिद्धान्तसूत्रमवतारयन्ति **तथा च जगत** इति । रामानुजाचार्योक्तजीवब्रह्मवैलक्षण्यमाहुः **एवं जीवेपी**ति । **भेद एव** विशिष्टाद्वैतत्वात् । सांख्यैकदेशिनां तु उपाधिर्भिद्यते न तद्वानित्युक्तमेव । **उपादाने**ति हेतव इत्यर्थः । ब्रह्म उपादानम्, ईक्षतेः सत्तया सालक्षण्यादिति जीवा अंशाः पादत्वादिति च । **सत्प्रतिपक्षा** इति नोपादानं विलक्षणत्वात्, ब्रह्म विलक्षणम् विज्ञानमित्यादिशब्दात्, ब्रह्म नोपादानं क्षीरवच्चेष्टितरूपेक्षतेरभावाद्धेत्वा**भासाः** ।

दृश्यते तु ॥ ६ ॥ **तेने**ति देहादीनां येन धर्मेण वस्त्वन्तराद्व्यावृत्तिस्तेन । किंच चेतनत्वेन । **लोके**ति सारूप्यस्य भेदनिबन्धनत्वेन घटयोः संभवविषययोरपि वक्तुमशक्यस्य तथात्वात् । 'सागरः सागरोपमः' इत्यादौ सर्वांशसारूप्यमभेदेपि वर्तत इति दूषणान्तरमाहुः **सर्वांशे**ति । **तत एवे**ति विलक्षणत्वादेव । **हेतोः** विलक्षणत्वस्य । **अर्थे**ति पूर्वसूत्रेर्थः कारणत्वाभावः । **अर्थान्तरं** कारणत्वम् । **अती**ति द्रव्यत्वपृथ्वीत्वादिभिर्घटपटयोरपि तदापत्तेरिति । **भवदुक्ते**ति ब्रह्म न

केशगोमयवृश्चिकादौ । चेतनादचेतनोत्पत्तिनिषेधे तदंशस्यैव निषेधः । तुल्यांशसंपत्तिश्चेत् प्रकृतेऽपि सदंशः ॥ ६ ॥

इति द्वितीयाध्याये प्रथमपादे चतुर्थं न विलक्षणत्वादधिकरणम् ॥ ४ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

त्वाच्च । न तृतीयः । देहादीनां येन धर्मेण वस्त्वन्तराद् व्यावृत्तिस्तेषां धर्माणां देहत्वगोमयत्वादीनां केशवृश्चिकादिष्वभावेन तेषामप्यकारणत्वप्रसङ्गात् । चेतनाद्देहादचेतनस्य केशनखदन्तादेः, अचेतनाद् गोमयाचेतनस्य वृश्चिकादेरुत्पत्तिदर्शनेन हेतोः साधारणत्वाच्च । यदि च देहाज्जडात् केशादीनां तादृशाम्, गोमयाज्जडानां वृश्चिकदेहानामेवोत्पत्तिरित्युच्यते तदा तूक्तमेव स्वरूपासिद्धत्वम् । तस्मान्नानेन ब्रह्मकारणत्वदूषणं न वा मृदादीनां ब्रह्मकार्यत्वदूषणमिति । इदं च तदुक्तं हेतुं तस्य श्रुतिसिद्धत्वं चोपगम्य दूषितम् । माध्वव्यतिरिक्तानां सर्वेषामप्येतदेव मतम् । तृतीयसुबोधिन्यां तु वैलक्षण्यस्य भ्रान्तप्रतीतत्वं 'न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं भवति' इति श्रुतिबलादङ्गीकृत्य वैलक्षण्यानुपगमेन दूषितम् । वैलक्षण्यमन्यस्मादन्तरा दृश्यते, न तु वैलक्षण्यमस्तीति तदेतदत्रापि सूचयन्ति चेतनादित्यादि । तदंशस्येति अचेतनांशस्य । तथा च भ्रान्तप्रत्यक्षालम्बेन श्रुतिप्रत्यवस्थानं न युक्तमित्यर्थः । सलक्षणात् सलक्षणोत्पत्तेर्बहुशो दर्शनादुक्तदूषणममन्वानं प्रति समाध्यन्तरमाहुः तुल्येत्यादि । चेदिति ।

रश्मिः ।

कारणं विलक्षणत्वात् । प्रधानं कारणं सारूप्यादित्यत्र पक्षे प्रधाने हेत्वभावः स्वरूपासिद्धिः । ब्रह्मणि सारूप्यात्समवायित्वे संभवत्यन्यत्रान्याय्यत्वात् । साधारणत्वं च साध्यं समवायित्वं तद्वत्प्रधानं तदन्यद्ब्रह्म तद्वृत्तित्वात्सारूप्यस्य । साधारणत्वादिति चेतनाचेतनयोः कार्यकारणयोः कारणं वस्त्वन्तराद्व्यावर्तते तेन चेतनत्वेन उत्तरत्राचेतनत्वेन समवायित्वप्रयोजकसारूप्याभावात्साध्यं समवायित्वं तद्वचेत् चेतनमचेतनं च तत्र सारूप्यरूपहेतोरभावात्साधारणत्वम् । चेतनाचेतने कारणे वैलक्षण्याद्देहगोमयवत् इत्यत्र । ननु नोक्तस्थले साधारणत्वं कार्यसारूप्यादित्याहुः यदि चेति । दोषमाहुः तदा त्विति । स्वरूपेति पूर्वं व्याख्यातम् । तादृशामिति जडानाम् । सात्त्विकज्ञानानाम् 'नेह नानास्ति किंचन'इति श्रुतिशरणानाम् । 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्' इत्याद्यनुसंधानादित्याशयेन भाष्यमवतारयन्तिस्म इदं चेति । तदुक्तमिति पूर्वपक्षिणोक्तम्, सारूप्यरूपम् । 'विज्ञानं चाविज्ञानं च'इति श्रुतिसिद्धत्वम् । न तमिति यः इमा इमानि जजान तं न विद विदुः । अथेति भिन्नमायाप्रक्रमेण । युष्माकं सृष्टानामन्तरं भ्रमप्रतिपन्नमान्तरालिकसृष्टिरूपम् । अन्यत् मायिकम् । भवाति लिङर्थे लेट् । लेटो डाटावित्याट् । अन्यदिति श्रुत्यंशस्याभिप्रायं संभवाभिप्रायेण वर्णयन्तः सुबोधिन्युक्तदूषणमाहुः वैलक्षण्यमिति । दृश्यत इत्यस्याभिधेयार्थं उक्तः अधुना कार्यकारणयोर्वैरूप्यं केशगोमयवृश्चिकादौ भाष्यप्रकाशोक्तरीत्या निषेधे तु न विलक्षणसूत्रान्नत्रमनुवृत्य सुबोधिन्युक्तोर्थः सूचितस्तं सूचयन्ति तदेतदाहुः तदेतदत्रापीति । अचेतनांशस्येति जनिताचेतनांशस्य । तेन भाष्येत्र वैलक्षण्यपक्षः । परं त्वान्तरालिकसृष्टिकृतं तत् । तथा चेति भाष्ये सुबोधिन्यवलम्बनत्वे प्रकारे च । श्रुतीति 'विज्ञानं चाविज्ञानं च'इति श्रुतीत्यर्थः । सलक्षणादिति । तथा च संहितायां 'तस्मात् समानाः प्रजाः प्रजायन्ते' इति । उक्तदूषणमिति कार्यकारणभावे वैलक्षण्यं बाधकमुक्तं तत्कतिपयैस्तादृशैः कार्यैः कारणैश्च दृग्विषयैरपास्तं

भाष्यप्रकाशः ।

विवक्षिता चेत् । तथा च 'यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि तथाऽक्षरात् संभवतीह विश्वम्' इति मुण्डकश्रुतौ सतः सदुत्पत्तिश्रावणेन दर्शनानुग्रहेपि नास्माकं दोष इत्यर्थः । अस्मिन् पक्षेभिमानिव्यपदेशसूत्रमपि सिद्धान्तसूत्रम् । तदर्थस्तु, 'विज्ञानं चाविज्ञानं च' इत्यत्र विज्ञानशब्दोभिमानिव्यपदेशोभिमन्तव्याद् वैलक्षण्यबोधनार्थो न तु कारणवचनः । कुतः । विशेषानुगतिभ्याम् । 'सच्च त्यच्चाभवत्'इत्यादिना कार्यस्यैवेतरेतरविशेषात् । 'सत्यमभवत्'इति कारणरूपस्यानुगतेश्चेति । प्रत्यक्षविरोधपरिहाराय द्वितीयं सूत्रम् । एवमत्र व्याख्यानद्वयेन श्रुतौ युक्तिविरोधः परिहृतः । तेन यथाव्यपदिष्टस्य कारणत्वं निष्प्रत्यूहम् । एतच्च नृसिंहतापनीयादपि सिद्ध्यति । तथाहि नवमखण्डे आत्मनां परमात्मना शुद्धाभेदं जिज्ञासुभिर्देवैः प्रजा-

रश्मिः ।

तदत्रोक्तदूषणपदेन प्रत्याख्यते । दोष इति कार्ये इत्यर्थः । विवक्षितेति वैलक्षण्येन्तरालिके सति संहितया विवक्षिता चेत् । पूर्वपक्षसूत्रे तु ग्रहणसूचितमर्थमाहुः अस्मिन्पक्ष इति । अभिमन्तेति 'अभिमन्ता जीवो नियन्तेश्वरः' इति श्रुतेरभिमन्तव्यादीश्वरात् । 'सच्च त्यच्च'इति त्यदित्यस्य तच्छब्दार्थो यः स एव । तथा च सच्च चिच्चाभवदित्यर्थः । कार्यस्यैवेति 'इद१ंसर्वमसृजत यदिदं किंच तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्'इति कार्यप्रवेशानन्तरं तद्भावस्फोरणादित्यर्थः । एवकारेण कारणव्यवच्छेदः । प्रविष्टस्य भानावश्यंभावः । धातावग्नेरिवेत्यतः सूत्रशेषं व्याकुर्वन्ति सत्यमिति । 'निरुक्तं चानिरुक्तं च निलयनं चानिलयनं च विज्ञानं चाविज्ञानं च सत्यं चानृतं च सत्यमभवत् यदिदं किंच तत्सत्यमित्याचक्षते' इति सत्यरूपेण भानम् । निरुक्तमित्यस्य निष्कृष्य समानासमानजातीयेभ्यो देशकालविशिष्टतया इदं तदित्युक्तमिति शंकराचार्यकृतव्याख्या । अनृतं संसारश्च । सदिव सत्यं सति साधु सत्यं ब्रह्माभवदित्यर्थः । प्रत्यक्षेति घटपटादीनां विनाशदर्शनेन प्रत्यक्षविरोधः प्राप्तस्तन्निरस्यन्ति 'दृश्यते तु' इति । तदग्र एव 'तदात्मान१ंस्वयमकुरुत'इत्यात्मसृष्टिर्दृश्यते । तु पूर्वपक्षव्यावर्तकः । घटनाशे कपालरूपता तन्नाशे तच्छकलरूपता तन्नाशेपि मृद्रूपतेत्येवं नामरूपनाशेपि द्रव्यस्यानाशो दृश्यत इति वा एवं परिहाराय द्वितीयं सूत्रम् । अस्मिन्पक्षे पादार्थसंगतिमाहुः एवमत्रेति । युक्तीति युक्तिः 'विज्ञानं चाविज्ञानं च'इत्यत्र कारणग्रहणमन्तरा विज्ञानाविज्ञानविरोधः परिहृतः । भाष्ये यत्सूचितं तदेतावता विशदीकृतं ज्ञेयम् । तेन भाष्यान्तराद्वैलक्षण्यमपि दर्शितम् । श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारः । इत्थं । वैलक्षण्यप्रत्यक्षस्य भ्रान्तित्वं मन्यमानस्य सांख्यपञ्चशिखर्ष्यादेर्वचनमिदमतो वेदान्ते सांख्यमतादनन्तरमिदमधिकरणम् । अथवा सायणीयादेर्वेदव्याख्यातुर्वचनमिदम् । 'तस्मात्समानाः प्रजाः प्रजायन्ते' इति संहितायां वैलक्षण्यानङ्गीकारात् समानपदेन । अतस्तस्मात् समाना इति । विज्ञानं चाविज्ञानं चेति श्रुत्योर्विप्रतिषेधः तस्य परिहारस्तु 'दृश्यते' इति सूत्रेण । दृश्यते वैलक्षण्यमङ्गुल्यादिसम्पर्काभावेपि । अतो यदा 'यदेव विद्यया'इति श्रुत्योपनिषदा कर्माणि कुरुते तदाक्षरज्ञानं जनयित्वोपक्षीणा वेदान्ता इति कर्मणि समानप्रजानुसंधानम् । अत्र तु 'तमेतं वेदानुवचनेन'इति श्रुत्या कर्मणा चित्तशुद्ध्या ज्ञानमिति विलक्षणाविलक्षणप्रजानुसंधानं ज्ञान इति मार्गभेदादिति । शास्त्रान्तरत्वे वेदाद्वेदान्तवैलक्षण्यकादेव । अविरोधोयमेव । अत्र तु सूत्रत्रयातिरिक्ते व्याप्तिर्न । नवमखण्ड इति । एतत्पूर्वग्रन्थाशयो दीपिकायां स्फुटः । ननु तापिनीयत्वेपि ब्रह्मनिरूपणं भिन्नं न भवतीति तापिनीयनिरूपणं युक्तं तथापि

भाष्यप्रकाशः ।

पतिर्विज्ञापितस्तान् प्रति ब्रह्मवादमुपदिदेश । तत्र 'उपद्रष्टाऽनुमन्तैषः' इत्यनेनाहंप्रत्ययगम्यमात्मानमनूद्य 'सिंहश्चिद्रूप एव' इति तस्य परामेदं विधाय कथमेवमित्याकाङ्क्षायामेतस्य परमेदेन स्वस्योपद्रष्टृत्वाभिमानो वृथेति बोधनाय 'अविकारो ह्युपलब्धा सर्वत्र' इति परमात्मन एवोपद्रष्टृत्वम् । अनेन भ्रमात् स्वस्मिन्नभिमन्यते इति बोधयित्वा, 'न ह्यस्ति द्वैतसिद्धिरात्मैव सिद्धोऽद्वितीयः'

रश्मिः ।

गोपालतापिनीयं वक्तव्यम्, साधनाध्याये फलाध्याये च तस्योक्तेरिति चेन्न । विरोधनिराकरणेध्याये चिद्रूपव्यापकनृसिंहपदवाच्ययोगरहितस्यात्रोक्तेः । पादार्थविचारे योगादरे ना देहः सिंहो मुखे निरूपणीय इति न पूर्णः तत्तापिन्युक्तमपि न पूर्णमतो वेदान्ते तत्तदुपास्यरूपे नृसिंहरूपं श्रेष्ठमवतारविचारे न गोपालादीति सर्वविप्लवः इति चेन्न । प्रतिषेधमात्रत्वात् । तर्हीदृशं नृसिंहतापिनीयेस्ति । पुराणादौ तु पौराणमपि संभवति । नैतावता योगमात्रेण कादाचित्करूपपरेण सर्वश्रुत्यादिविप्लवोतो रूपप्रतिषेधमात्रत्वे न पूर्णत्वं वेदान्ते तत्तदुपास्ये रूपे नृसिंहरूपं श्रेष्ठं गोपालाद्यक्षराच्छ्रेष्ठं कादाचित्कान्नृसिंहरूपाद्भवत्येवेति सकलशास्त्रैकार्थ्यात् । कर्मणि वेदान्ते योगप्रधाने स्वयं योगोक्तिरस्त्येव । यद्वा नृसिंहतापिनीये पूर्वोक्तं ब्रह्मविदां दृश्यते तु । 'अतीन्द्रियं विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगिनः' इति वाक्यात् । पूर्वोक्तपूर्वपक्षो वेत्थम् । न विलक्षणसूत्रे नृसिंहतापिनीये न नृसिंहोस्य जगतः कारणम् । विलक्षणत्वात् चेतनत्वादस्य च विलक्षणत्वादचेतनत्वात् । विलक्षणत्वं चेत्यादिपूर्ववत् । द्वितीयसूत्रे तु विशेषशब्दव्याख्याने विशेषनृसिंहदेहोपि द्रष्टव्यः । एवं च विशषानुगतिभ्यां पुराणोक्तविशेषः चिद्रूपेणानुगतिः ताभ्यामिति । अतस्तापिनीयत्वेपि नृसिंहप्रतिपादकत्वेन विशेषभूमजनकत्वेपि सामान्ये उपन्यासः । **प्रजापतिरिति** संवत्सरः कालः । संहितामते 'स सर्वानसृजत' इति तृतीयाष्टकश्रुतेः संकर्षणात्मा अर्थो विज्ञेयः । 'कालात्मा भगवान् जातः' इति **सुबोधिन्याम्** । प्रजापतिर्ब्रह्मा 'शब्दब्रह्मेति यं विदुः' स वेदान्ते । **उपद्रष्टेति** उपद्रष्टानुमन्तैष आत्मेत्यनेन अहमित्यहंप्रत्ययगितिप्रत्ययवेद्यं शब्दगम्यं पूर्वखण्डोक्तं नवमखण्डेऽनूद्येत्यर्थः । नृसिंहोपासकस्य तापिनीयानां भक्तानां ज्ञानिनां चाभेदमाहुः **सिंहश्चिद्रूप एवेति** । उपासनया भग्नावरणस्तथा भवति । परंतु सोहमित्यभेदभाने प्रतिबन्धकप्रतियोगिभेदस्य विद्यमानत्वादभेदः कुत इत्यपेक्षायामाहुः एवेति । 'चिद्रूपस्य शक्तिर्माया व्यामोहिका' तस्या आवरणरूपाया भङ्गस्योक्तत्वान्मायैवकारव्यावर्त्या । माया भेदरूपा । माया च तमोरूपेत्यत्रैव श्रुतिः 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' इति छान्दोग्ये । तापिनीयानां यथाचारम् । भक्तानां भक्तिरसे संचारिभावः यथा पुष्टौ सर्वात्मभावे 'कृष्णोहं पश्यत गतिम्' इति फलप्रकरणे । माया तु नास्ति । 'न यत्र माया' इति वाक्यात् । एवं मर्यादाभक्तौ सर्वात्मभावे दत्ते भवति । अत्र भजनेनाविद्यानाशः । ज्ञानिनां तु 'जले निमग्नस्य जलपानवत्' अभेदे गणितानन्दानुभवोक्षरात्मता । 'विद्ययाविद्यानाशे तु जीवो मुक्तो भविष्यति' इति । **वृथेति** विधिवर्जितः । विधिस्तु भगवत्सेवोपयोगिसंसाररूपेहंकारे । पराभेदसमानाधिकरणस्याभिमानस्य 'अन्योसावन्योहमस्मि इति न स वेद' इति अज्ञानत्वश्रावणात् । अविकारस्तु पराभिन्न एवेत्यविकारपदेनाभेदबोधनाय । **सर्वत्रेति** जीवेष्वपीत्यर्थः । **भ्रमादिति** यथा पश्याम्यहं स्थूलोहमिति परत्र परावभासो भ्रमः । ननूपद्रष्टेत्यत्र विषयतया विश्वतैजसप्राज्ञेषु वक्तव्येषु सर्वजगतो मायाया आनन्दस्य च विषयत्वेन स्वगतद्वैतापत्तिरिति चेत्तत्राहुः **न हीति** । **सिद्ध इति**

भाष्यप्रकाशः ।

इत्यभेदं निगमयामास । तत्र भेदः प्रत्यक्षसिद्ध इति नाद्वैतसिद्धिरित्याशङ्कायां प्रत्यक्षस्य भ्रमत्वाय 'मायया ह्यन्यदिव' इति मायारूपं दोषं तत्र हेतुत्वेनाह 'अन्यदिव' प्रतीयते, न त्वन्यदित्यर्थः । ततो, नन्वस्तु मायाया दोषत्वम्, तथाप्यन्यस्याभावे तया किं प्रत्याय्यम् । न हि खपुष्पमिवात्यन्तासत् प्रत्याययितुं शक्यते । अतः प्रतीतिबलात् सिद्धेन्यस्मिन्नयं जीवो भिन्न एव मन्तव्य इति कथमस्य परमात्माद्वैतसिद्धिरित्याकाङ्क्षायां तत्साधनाय पुनराह 'स वा एष आत्मा पर एवैषैव सर्वम्' इति । ततो, ननु प्रतीतस्य बाधं विना वाक्यमात्रेण मायिकत्वं न प्रतिपत्तुं शक्यत इत्याकाङ्क्षायां तत्साधनाय पुनराह 'तथाहि प्राज्ञे' इति । यथा तैजसे प्रतीयमानं सर्वं प्राज्ञे बाध्यत इति मायिकं तथा विश्वस्मिन् प्रतीतमपि तुरीये बाध्यत इति मायिकं मन्तव्यम् । तेन भेदोपि मायिक इत्यर्थः । तदेतद् व्याकरोति 'सैषाऽविद्या जगत्सर्वमात्मा परमात्मैव' इति । ततो, ननु तत्र निद्रावशादज्ञानसत्त्वास्तीति तत्रत्यस्य सर्वस्य भेदस्य चाविद्यकत्वं युक्तं जाग्रति सा नास्तीति कथं सर्वस्य मायिकत्वं प्रतिपत्तव्यमित्याकाङ्क्षायां

रश्मिः ।

'मनसैवानुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किंचन' 'मनसैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवम्' इति श्रुतिभ्यां सिद्धः । **प्रत्यक्षसिद्ध** इति । यथाहुर्नैयायिकाः 'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यो भेदानुगमादृते' इति । विषयगतदोषमात्रं न भवत्यतो दोषत्वेन दोषग्रहणम् । करणगतमपि दोष इति दोषत्वेन दोषग्रहणम् । **तत्रेति** प्रत्यक्षे भ्रमे । **आहेति** अन्तरासृष्टिमङ्गीकृत्याहेत्यर्थः । **अन्यदिति** अन्तरमन्यदित्यादिशब्दैर्मायिकी सृष्टिरत्र व्यवह्रियते । **भिन्न** इति खपुष्पादीतरभेदरूपमायावगाहित्वेन । **मन्तव्य** इति । ज्ञानस्य निर्विषयत्वाभावेन भ्रमस्य निर्विषयत्वाभावाद्भेदरूपमायाया जीवेष्वेवोपाधित्वेन संबन्धस्य वक्तव्यत्वाच्चैवकारः । **पुनरिति** न ह्यस्तीत्यनयोक्तं पुनराह । **स वा** इति । एष विश्वादिपादरूपविषयः । एवं सृष्टिमुक्त्वान्तरालिकसृष्टिमाहुः **एषैव सर्वमिति** । **एषा** माया । **बाधं विनेति** विशेषदर्शनोत्तरं भ्रमस्य बाधदर्शनेन भ्रमत्वमत्र, प्रपञ्चे तु तददर्शनाद्बाधं विनेत्यर्थः । **तैजस** इति स्वप्नसाक्षिणि । **प्राज्ञ** इति सुषुप्तिसाक्षिणीत्यर्थः । यत्तदोर्नित्यसंबन्धाद्यथेत्यादिग्रन्थः । **तुरीय** इति । 'प्रवर्तते यत्र रजस्तमः' इति द्वितीयस्कन्धे । 'न यत्र माया' इति च । अङ्गुल्यादिसंपर्काच्चन्द्रादिद्वैताभासस्तदभावे तदभाववत् । **तेनेति** उक्तोपपादनेनोत्तरकालीनबाधेन च । **सैषेति** एषैव सर्वमितिवदान्तरालिकविषया । व्याकरणे विशेषसृष्ट्यनूदिता न सामान्या । आत्मा तुरीयः स परमात्मैव न मायाशबलितः न स्वानन्दभुक् किंतु जगद्व्यापारवर्जम् । न च 'स आत्मा स च विज्ञेयः' इत्यतः प्राक् 'शिवं शान्तमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते' इति श्रावणात्तुरीयः शिव इति वाच्यम् । मन्यन्त इति कर्तृविशेषानुक्तेर्यथाधिकारं शास्त्रार्थात् । शैवमते स्पष्टः । स्वमते 'वेदः शिवः' इति शब्दात्मा । शब्दार्थयोर्नित्यसंबन्धात्कृष्णोपि । तमस्तु तत्र नास्ति । 'प्रवर्तते यत्र रजः' इति वाक्यात् । अत एव शान्तमिति विशेषणम् । कोशे उग्र इति शिवनाम्नः शिवस्तमोधिष्ठात्री । अन्यद्धिन्दिपालाख्यवादे स्पष्टम् । किंच 'ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं नृकेसरिविग्रहं कृष्णपिङ्गलमूर्ध्वरेतं विरूपाक्षं शंकरं नीललोहितमुमापतिं पिनाकिनं ह्यमितद्युतिमीशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्यो वै यजुर्वेदवाच्यस्तं साम जानीयाद्यो जानीते सोऽमृतत्वं गच्छति' इति षष्ठखण्डोक्तेः कृष्णादयः शंकरादयो ब्रह्मादयश्च खलेकपोतन्यायेन साकारं ब्रह्म मुख्यया वृत्त्या वदन्तस्तत्प्रतीकानेकैकशो वदन्तीति सिद्धान्तात् । **तत्रेति** स्वप्ने । **सर्वस्येति** भिदो 'मायामात्रमनूद्यान्ते' इति भग-

भाष्यप्रकाशः।

जाग्रत्यपि मायाकृतं पराभवं मायासत्तां चानुभावयति 'स्वप्रकाशोप्यविषयज्ञानत्वाज्ञानन्नेव ह्यत्र न विजानात्यनुभूतेर्माया च तमोरूपानुभूतेः' इति। अत्र अविषयज्ञानरूपत्वं जीवस्वरूपस्य स्वप्रकाशत्वे जानत्त्वे च हेतुः। तथा च अहमज्ञ इति जाग्रति विशिष्टानुभवबलात् तत्कृतः पराभवस्तस्याः स्वरूपं सत्ता च बोध्या। तथा च दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्दोषतौल्यात् तस्य च मायाख्यदोषस्य निद्राचिन्ताद्यवस्थाभेदेनानुवर्तमानत्वाज्जाग्रत्यपि सर्वस्य स्वस्मिन् परमात्मभेदस्य च मायिकत्वं मन्तव्यमित्यर्थः। ननु तत्कृतपराभवस्य मायायाश्चानुभवादस्तु भेदस्य मायिकत्वम्, परंतु सर्वस्य जगतः कथं मायिकत्वमित्याकाङ्क्षायां जगतस्तथात्वे हेतुबोधनाय तत्स्वरूपमनुभावयन् हेतुस्वरूपमनुमापयति 'तदेतज्जडं मोहात्मकमनन्तं तुच्छं रूपमस्याः' इति।

रश्मिः।

यद्वाक्याद्भेदस्य मायिकत्वमस्तु सर्वस्य कथमिति प्रश्नः। स्वरूपातिरिक्तविषयाभावादाहुर**विषयेति**। सविषयकमेव ज्ञानमित्यत्र विषये मायाशाबल्यमत्र तु कैवल्यरूपत्वमात्मैकरूपत्वं चेति भेदः। तथा च सूत्रे 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' 'आत्मा प्रकरणात्' इति फलाध्याये। **जानन्निति** 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' इति धर्मात्मकज्ञानेन जानन्। स्वयं तु भक्तैः सह निगूढभावकरणं करोति। **अत्र नेति** जीवद्वारा कर्मफलभोगादत्र प्रपञ्चे सुषुप्तौ वा न। 'द्वा सुपर्णा' इति श्रुतेराहानु**भूतेरिति** श्रुत्यनुभवः। मायायास्तमोरूपत्वे हेतु**रनुभूतेरिति** श्रुत्यनुभूतेः। जीवस्वरूपे आभासोक्तं विशदयन्ति स्म **अत्रेति**। **जीवेति** प्रापञ्चिकस्य **जीवस्वरूपस्य**। **स्वप्रकाशेति** न हि ज्ञातं घटं पश्यामीत्यत्र विषयरूपं ज्ञानं स्वप्रकाशं भवति। संयुक्तविषयतासंसर्गजन्यत्वात्। ज्ञातो घटः चक्षुःसंयुक्तः। ज्ञातं जीवं पश्यामीति तु धीरचक्षुःकर्तृविषयम्। 'कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुः' इति श्रुतेः। अविषयस्य द्वितीयज्ञानस्य च प्रादुर्भूतत्वमिति ज्ञानत्वमित्यर्थः। भावे घञ्। अनुभावयतीति यदुक्तं तद्विशदयन्ति, **तथा चेत्यादि** अविषयज्ञानत्वे। अनुभूतिपदार्थमाहुः **अहमज्ञ इतीति**। ज्ञानानुकूलव्यापाराभाववानहमिति। माया च तमोरूपानुभूतेरित्यत्र ज्ञानावरणतमोरूपमायावानित्यनुभूतेः। **विशिष्टानुभवेति** अज्ञत्वविशिष्टानुभवबलात्। **तत्कृत** इति मायाकृतः पराभवः, ज्ञानावरणम्, न विजानातीतीत्यस्यार्थः। **स्वरूपमिति** तमो**रूपेति**। **सत्ता चेति** तमोनुभूतेस्तत्सत्ता। **दृष्टान्तः** स्वप्नः, **दार्ष्टान्तिकं** जाग्रत्। श्रुतावत्रेत्यस्य सुषुप्तावित्यर्थे वा। **जाग्रतीति** श्रुतिस्थात्रपदार्थः। दोषमाहुः **मायाख्येति**। **सर्वस्येति** अन्तरासृष्टस्य। इत्यर्थ इति। दीपिकायामेतत्कृतायां तु सुषुप्तौ प्राज्ञपरिष्वङ्गेण तदभेद एक एवावतिष्ठत इत्यविषयज्ञानात्मकत्वात्तां स्वं च जानन्नपि एवं जाग्रद्भेदेनात्र सुषुप्तौ न विजानातीति न किंचिदवेदिषमिति स्मरणान्यथानुपपत्त्या तज्जनकोज्ञत्वानुभवो हि स्वप्रकाशात्मा भिन्नो निश्चीयते। बाह्यस्य तमसस्तत्राभावेन स्वप्रकाशस्याज्ञत्वापादिका माया च तेनैवानुभवेनावसीयते। 'सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमोभिभूतः सुखरूपमेति' इति श्रुत्यन्तरादिति। एवकारस्थले एवंकारमुपन्यस्यात्रशब्दः सुषुप्तिपरत्वेन व्याख्यातः। **तत्स्वरूपमिति** मायास्वरूपम्। **हेत्विति**। वाशीवत्करणभूतायाः सृष्टिविशेषे कदाचित्कर्त्र्याश्च स्वरूपं जडादि। **तदेतदिति** तत्प्रसिद्धं एतत्समीपतरवर्ति। **जडं** विषयमप्रकाशं वा। **मोहात्मकं** स्वकार्यं मोह आत्मा स्वरूपं यस्य रूपस्य। अत्र यद्यज्जनकं तत्तद्गुणकं यद्यद्गुणकं तत्तदात्मकमिति सांख्यव्याप्तिरनुसंधेया। **अनन्तं** आनन्दवत्। **तुच्छमित्यात्मसृष्टि**सूचनपूर्वकमस्या रूपमुक्तम्। 'तोदनात्तुच्छमुच्यते' इति पुराणे 'आत्मा तुच्छमुच्यते' इत्यात्मविशेषणात्।

भाष्यप्रकाशः ।

तथा च स्वप्रकाशपरमात्मस्वरूपधर्मविरुद्धैर्जडत्वमोहत्वप्रमाणसंबन्धानर्हत्वैरस्य परमात्मस्वरूपताया अशक्यवचनत्वादस्य मायिकत्वम्, तेनैव तस्याः स्वरूपं तादृशमनुमातव्यमित्यर्थः । ततो नन्वनुभवे तस्याः स्वरूपमावरकमेवानुभूतं तमोरूपत्वान्न तु विक्षेपकमिति कथमयं भ्रम इत्याकाङ्क्षायां तस्यास्तथात्वमप्यनुभूतमेवेत्याह 'व्यञ्जिका नित्यनिवृत्ताऽपि मूढैरात्मैव दृष्टाऽस्य सत्त्वमसत्त्वं च दर्शयति सिद्धत्वासिद्धत्वाभ्यां स्वतन्त्रास्वतन्त्रत्वेन' इति । तथा च परमात्मनः

रश्मिः ।

अन्यथा ब्रह्मैवेदं सर्वं सच्चिदानन्दरूपं सच्चिदानन्दरूपम्' इदं सर्वमिति पूर्वश्रुतेः सर्वपदेनाकारमायिकतां विरुन्धता सह वर्तमानाया व्याकोपस्य वज्रलेपायितत्वात्, अस्या रूपमनुमातव्यमित्यर्थः । भवतीति न क्रियापदम् । ऐश्वर्यादिविपरीतधर्मवज्जीवास्तद्वज्जगत्स्वरूपलक्षणोक्तधर्मविपरीतधर्मवदिति श्रुतिविशेषणैराहुः **तथा** चेति । स्वप्रकाशत्वं जडविरुद्धो धर्मः । परमात्मत्वं शब्दार्थोभयनिष्ठं द्वयमपि मोहात्मकत्वमनन्तत्वं चेत्युभयविरुद्धो धर्मः । अयं सत्यधर्मः 'सत्यं परं धीमहि' इति वाक्यात् । एतेभ्यः स्वरूपेभ्यः विशिष्टे शक्त्या स्वरूपलक्षणोदितेभ्यो **विरुद्धैः** । **जडत्वे**त्यादि । मोहोऽस्यास्तीति मोहस्तस्य भावो **मोहत्वम्** । उक्ता व्याप्तिर्वात्र ज्ञेया । **प्रमाणे**ति । एवमुभयत्रानन्तपदार्थौ भवति । सेवाप्रमाणैः प्रत्यक्षादिभिः ये **संबन्धाः** संयोगः स्वजन्यानुमितिविषयत्वं प्रतिपाद्यप्रतिपादकत्वं च तेषाम**नर्हत्वं** तैः । नन्वनन्तत्वं परममहत्परिमाणवत्त्वमिति चेत्तत्राहु**रस्ये**ति जगतः । तथा चानन्तपदाज्जगत्त्वावच्छेदेनोक्तमनन्तत्वमिति भावः । परममहत्परिमाणं तु नास्ति प्रत्यक्षविरोधात् । **मायिकत्व**मिति । जगत् परमात्मास्वरूपं जडत्वमोहत्वप्रमाणसंबन्धानर्हत्वेभ्यः, यन्नैवं तन्नैवं ब्रह्मवत् । जगत् मायिकं परमात्मास्वरूपत्वात्, आन्तरालिकवत् । इति मायिकत्वम् । तुच्छत्वं तु न व्याकृतम् । अविरुद्धत्वात् । **तेनैवे**ति मायिकत्वेनैव । मायास्वरूपं जडमोहात्मकानन्ततुच्छम् । मायिकत्वात् । आन्तरालिकवत् । तस्याः स्वरूपं पक्षः, श्रुतौ रूपं पक्षः । **तादृशं** साध्यम् । **अनुमातव्य**मिति श्रुतौ क्रियापदबोधकम् । अधुना माया च तमोरूपेत्युक्तं तदत्रैव । अथवात्रापि सत्त्वरजसी तापिनीये भिन्नरूपे स्त इत्याकाङ्क्षायां स्त इत्याहेत्याहुः **ततो नन्वि**त्यादिग्रन्थेन । **अनुभव** इति अनुभूतेरित्युक्ते । **आवरक**मिति अहमज्ञ इत्येवं जीवरूपतत्त्वानुसंधानावरकमित्यर्थः । **नतु विक्षेपक**मिति आत्मभेदात्मकविक्षेपजनकम् । 'जीवस्यानुस्मृतिः सती'इत्युत्तरार्द्धोक्तसोहमिति प्रतीत्यनन्तरं मायासंबन्धेहमज्ञ इत्यज्ञत्वकृतात्मभेदात्मकविक्षेपः । **कथ**मिति जगद्रूपेपि भ्रमः कथमिति प्रश्नः । जगति रजःकार्यात्मकभेददर्शनात् सत्त्वकार्यज्ञानदर्शनाच्च । **तथात्व**मिति विक्षेपकत्वम्, सात्त्विकज्ञानजनकत्वं च । **अनुभूत**मिति मूढैः । 'व्यञ्जिका'इत्यादिश्रुतेरर्थमाहुः **तथा** चेति । सत्त्वरजःकार्यविशिष्टजगद्रूपत्वे च । अत्र चितः व्यामोहिका मायोच्यते । **परमात्मन** इति । एतेन नित्यनिवृत्तेत्यत्र नित्यात्परमात्मनो निवृत्तेति पञ्चमीसमास उक्तः । 'अजामेकाम्'इति श्रुतेः । 'असक्तं सर्वभृच्चैव'इति गीता । तेन मायिकसृष्टिकर्त्रीयं न तु करणभूतात्र । मुह वैचित्ये । विगतस्मरणैः ध्रुवस्मृतिरहितैः तदाहुरज्ञानिभिरिति । अन्यदपि ज्ञानं ग्राह्यम् । **दृष्टे**ति 'ज्ञानकाशया'इति श्रीभागवते । अत्रात्मा विशेषणविशेष्यसंबन्धावगाहिज्ञानं तत्र परमात्मातिरिक्तसंबन्ध उत्पादितो वक्तव्यः स च भेदात्मकः । अभेदस्य मायानाद्यत्वात् । एवकारस्येत्थं नमतीत्यर्थोपि । श्रुतिप्रामाण्याद्दृष्टेत्यपि तदाहुः

भाष्यप्रकाशः ।

सकाशान्निवृत्तापि सा मूढैरज्ञानिभिरात्मैव दृष्टा आत्मभेदात्मकं विक्षेपमुत्पादयन्त्येवेयं दृष्टा । अतो भेदस्येवास्यापि जडत्वादिविशिष्टस्य व्यञ्जिका सती, अस्य जगतः साङ्ख्यरीतिकसिद्धत्वनैयायिकादिरीतिकासिद्धत्वाभ्यां मीमांसकप्रतिपन्नस्वतन्त्रत्वमायावादिप्रतिपन्नास्वतन्त्रत्वेन च

रश्मिः ।

आत्मभेदात्मकमित्यादि । एतेन सत्त्वतमोभ्यामनपहतं रजो विक्षेपशक्तिः स विक्षेपो न विवक्षितः । आत्मनोऽभिन्नाक्षरस्य जीवजडभेदानां व्युच्चरितानां संबन्धरूपभेदानामपि आत्मानः स्वरूपाणि येन कालकृतमायाधर्मक्षोभरूपविक्षेपेण स आत्मभेदात्मकस्तम् । एवकारतात्पर्यार्थपूर्वकमाहुः **उत्पादयन्तीत्या**दिना । ज्ञानकाशा एव । इत्थं वमतीत्येवकारः यौगिकार्थः । रूढार्थकमाहुः **एवे**ति । अवधारणं रूढार्थः । दृष्टपदालब्धमाहुः **इय**मिति । दर्शनं प्रत्यक्षम् । इदमस्तु प्रत्यक्षभेदरूपमिति । **अस्ये**ति जगतः, आत्मसृष्टिव्यतिरिक्तस्य । **व्यञ्जिके**ति सर्वरूपभगवत्संबन्धात्सर्वप्रतिकृतिरूपेत्यर्थः । मूलरूपोपरि संचायकरूपेति यावत् । तदेतत् 'सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः' इत्यस्य सुबोधिन्यां स्फुटम्, तत्रापि 'अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः' इति मतमत्र सिद्धं भविष्यतीत्युक्त्वोक्तम् । **अस्ये**ति श्रौतमिदं व्याख्येयं पदम् । **सत्त्वमसत्त्वं च दर्शयती**त्यनयोपनिषदन्तरोक्ता सदसती माया स्मारिता । सती सात्त्विकी । असती तामसी । पदार्थसत्त्वदर्शिका सती । उत्तरकालिकबाधेनासती । राजसी त्वग्रे वक्तव्या । हेतुपूर्वकं व्याकुर्वन्ति । अत्रान्यख्यातिर्न । ज्ञानकाशा यतो माया न तु स्वरूपलक्षणलक्षिता । अतो यां कांचित् ख्यातिमाहुः **साङ्ख्यरीतिके**ति । साङ्ख्यरीतिरिव रीतिर्यस्य सिद्धत्वस्य । अयमर्थः । तमोरूपा मायेत्युक्तं तमःकार्यं भ्रमः स च ब्रह्मत्वप्रकारकब्रह्मविशेष्यकज्ञाने ब्रह्मविदामपि घटत्वादिप्रकारकं ज्ञानं जायते तच्च तदभाववति तत्प्रकारकत्वाद्भ्रमः । इयमन्यख्यातिर्न । बुद्धेः ख्यातिः सा, माया तु करणमिति । अतो ग्रहस्मरणात्मिका ख्यातिः । अतः शुक्तौ रजतत्ववत् ब्रह्मणि संचायकजगद्रूपो भ्रमः । स च ब्रह्मग्रहः घटत्वादिस्मरणमिति सांख्यरीतिकं सिद्धत्वम् । अनेन सत्त्वम् । अन्यथा खपुष्पमपि स्मरेत् । ननु तर्हि घटादिज्ञानवद्ब्रह्मविदामपि भ्रमो न निवर्तेत तत्तद्विशेषदर्शनेपीत्यत आहुः **नैयायिके**ति । नैयायिकादिरीतिरिव रीतिर्यस्यासिद्धत्वस्य । आदिपदेन मायावादी । अयमर्थः । विशेषदर्शनेन ब्रह्मविदां घटत्वादिस्मरणनिवृत्तिः विद्ययाऽविद्यानाशात् । ब्रह्मत्वप्रकारकब्रह्मविशेष्यकज्ञानात् । 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'इति श्रुतेः । तथा चासिद्धत्वं घटत्वादीनामन्यथाख्यातेः । अन्यप्रकारस्तु न तिष्ठति बहुकालम् । अनिर्वचनीयान्यथाख्यातेरसिद्धत्वं सुज्ञेयम् । अतो विशेषदर्शनेन निवर्ततामित्यर्थः । अनेनासत्त्वम् । अन्यथा न निवर्तेत । कार्यविषय उक्त्वा मायाविषय आहुः **मीमांसके**ति । **स्वसिद्धान्ते** माया स्वतन्त्रा कर्तृरूपा, अस्वतन्त्रा कार्यरूपा बहिः क्षिप्ता बुद्धिः, तयोर्भ्रमे समाहारः । यथाहुः ख्यातिवादे पुरुषोत्तमाः । 'यन्मायया बहिः क्षिप्ता ख्यायते बुद्धिरर्थवत्' इति । 'स्वतन्त्रः कर्ता'इति पाणिनीयसूत्रात्कर्त्री । माययेत्युक्त्या स्वतन्त्रा । बुद्धिस्त्वस्वतन्त्रा, कर्मत्वात् । भ्रमे उभयोः समाहारः । अयं भ्रमो मूलरूपे संभवति मूलरूपोपरि संचायकरूपे भ्रमेपि स्वतन्त्रास्वतन्त्रत्वेनेत्येव । तथाहि **मीमांसका** हि जीवानां भेदं वदन्त एकमीश्वरं न मन्यन्ते । कर्मातिरिक्तस्य तस्याभावं च । तत्तु वेदान्तेऽविद्यावता कृतमवीर्यवत्तरं भवति । अतोत्र स्वतन्त्रं कर्म । प्रवाहानादित्वात् । अविद्यावत्कृतत्वान्माया । 'धर्मः प्रोज्झितकैतवोत्र' इत्यत्र सुबोधिन्यां द्रष्टव्यम् । एतदुक्तं **मीमांसकप्रतिपन्नस्वतन्त्रत्वे**त्यनेन ग्रन्थेन । **मायावादी**ति ।

भाष्यप्रकाशः ।

सत्त्वमसत्त्वं च दर्शयतीति तथैवायं भेदवादादिप्रतिपन्नजगद्रूपोऽपि भ्रम इत्यर्थः । ततो ननु तस्याः कथमेवं जगद्रूपो भेदरूपश्च परिणाम इत्याकाङ्क्षायामुभयं दृष्टान्तेनाह 'सैषा वटबीजसामान्यवदनेकवटशक्तिरेकैव' इति । तथा च सामर्थ्येनैकस्या अनेकविधः परिणाम इत्यर्थः । अत्रापि कश्चिदर्थोऽतिगोप्य इति विशेषबोधनाय दृष्टान्तं व्याकृत्य दार्ष्टान्तिके केनचिदंशेन योजयति 'तद्यथा वटबीजसामान्यमेकमनेकान् स्वाव्यतिरिक्तान् वटान् स्वबीजानुत्पाद्य तत्र तत्र पूर्णं संतिष्ठत्येवमेवैषा माया स्वाव्यतिरिक्तानि परिपूर्णानि क्षेत्राणि दर्शयित्वा

रश्मिः ।

सोपाधिके कर्तृत्वात्साऽस्वतन्त्रा । एतादृशस्वतन्त्रास्वतन्त्रत्वसमाहारः मूलरूपोपरि संचायकरूपेति । **सत्त्व**मित्यादि कार्यरूपेऽसिद्धत्वेन मायारूपे स्वतन्त्रास्वतन्त्रत्वेन सत्त्वं दर्शयति । कार्यरूपेऽसिद्धत्वेन मायारूपे स्वतन्त्रास्वतन्त्रत्वेनासत्त्वं दर्शयतीत्यर्थः । करणत्वं मत्वाहुः **तथैवे**ति । स्पष्टतो मायाभेदो वारितः । मायान्तरव्यवच्छेदक एवकार इति । **भेदवादो** नैयायिकादीनाम् । **आदि**पदेन संसारः । तदादि**प्रतिपन्नः जग**त्प्रतिनिश्चितया प्राप्तः । प्रसिद्ध**जगति रूपमस्य** भेदसंसारादिज्ञानरूपभ्रमस्य । **अपि**शब्देन मूलरूपोपरि संचायकभ्रमस्य समुच्चयः । अस्याः शक्तित्वेनोपस्थितौ सदानन्दस्य जगत्कर्त्री शक्तिर्द्वितीयस्कन्धनवमाध्याये उक्ता तद्व्यावृत्त्यर्थमग्रिमग्रन्थमवतारयन्ति **ततो नन्वि**ति । **वटबीजे**ति । तेन चिदंशशक्तिर्व्यामोहिका मायेत्युक्तम् । वटः शस्तः शिवः चित्, 'वेदः शिवः शिवो वेदः' इति वाक्यात् । 'नाम चिद्विवक्तन' इत्यृग्वेदे । **वटबीजयोः सामान्यम्** । 'वटान् स्वबीजान्' इति वक्ष्यमाणश्रुतेः, तद्वत् । 'नित्यमेकमनेकानुगतं सामान्यम्' इति सामान्यलक्षणादनेकवटशक्तिरेकैव । व्यामोहिका चिदंशस्य शक्तिरिति वटरूपरुद्रश्चिद्रूप उक्तः । **सामर्थ्येने**ति दृष्टान्तसामर्थ्येन । **अत्रापी**ति व्यञ्जिकेतिश्रुतिवदत्रापि । **अतिगोप्य इ**ति 'भक्तिरहस्यभजनं तदिहामुत्र फलभोगनैरास्येन....मनःकल्पनमेतदेव च नैःकर्म्यम्' इति पाठे न तु भक्तिरस्य भजनमिति पाठे तदैव 'उत्कर्षश्चापि वैराग्ये हरेरपि हरिर्यदि' इत्युक्तः । ननु शृङ्गारो भगवान् सृष्टिकर्तेति चेन्न । इच्छासृष्टिः शृङ्गारः प्राज्ञ इति न किंचिदेतत् । अयमपि गोप्यः । तद्विद एव जानन्ति यतः । तदुक्तं 'स्वरूपलाभान्न परं विद्यते' इति 'सोऽश्नुते सर्वान्कामान्' इति च । सायुज्यमोक्षरूपत्वाद्भगवतः । जीवानामात्मनां चाक्षरात्मकत्वात् । पुरुषोत्तमस्यान्यत्वात् । अदृश्यत्वाधिकरणोक्तः 'कैमाः स्त्रियोऽवनचरीः' इत्यत्र निरूपितमित्यलम् । वटबीजसामान्येति योजयति **तद्यथे**ति । **पूर्ण**मिति वटत्वं बीजत्वमेकं नित्यमनेकानुगतमिति पूर्णम् । वतिप्रत्ययार्थं योजयति **एवमेवे**ति । **अनेकवटे**त्यस्या अर्थे **एषा माये**ति । यथा सामान्यमात्मा वैयाकरणमत एवं मायात्मरूपा ज्ञानकाशा यतः । **परिपूर्णानी**ति **परी**ति मूलरूपम् । **पूर्णानी**ति सामान्यस्थानापन्नमायाविशिष्टानि । **क्षेत्राणि** शरीराणि । **दर्शयित्वे**त्याधुनिकमायाविवत् । ईशदेहे ईशं तमोरूपा तमोधिष्ठातारं करोति । जीवं स्वस्या उपाधित्वनिर्वाहायाणुबहुरूपमप्येकं व्यापकं बृहदारण्यकोक्तं क्रोधमयं करोति । तमोरूपत्वादेव । क्रोधमयोऽक्रोधमय इति बृहदारण्यके शान्तोपि जीवः 'शान्तं शिवं चतुर्थं मन्यन्ते' इति शान्तः

भाष्यप्रकाशः।

जीवेशावाभासेन करोति माया चाविद्या च स्वयमेव भवति' इति । अत्र च वटस्थानापन्नानि क्षेत्राण्यनेकत्वस्थानापन्नं परिपूर्णत्वं स्वाव्यतिरिक्तत्वं तूभयत्रापि समानम् । उत्पादनस्थाने परस्मै प्रदर्शनम् । तत्र पूर्णसंस्थितिस्थाने द्वयोराभासेन करणं स्वस्य द्विधाभवनं चेति विशेषः। तथा सति जगद्रूपेषु क्षेत्रेषु जडत्वं मोहात्मकत्वमनन्तत्वं तुच्छत्वं च यद् भासते तत् तेषामेतदव्यतिरिक्तत्वादेतदीयम् । किं च क्षेत्रप्रदर्शनोत्तरं द्वयोराभासेन करणोक्त्या आभासभूतयोर्जीवेशयोर्न द्रष्टृत्वं किं तु परमात्मन एवोभयद्रष्टृत्वम् । स्वद्वैधीभावोक्त्या च द्विविधाभासाधारत्वं बोधितम् । इयं च परमात्मनः सकाशान्नित्यनिवृत्तेति न तदुपाधिः, किं तु जले चन्द्रकिरणवदविभक्त एव योंऽशोऽस्यां प्रविशति तदुपाधिर्भूत्वा अंशानां परस्परं परमात्मनः सकाशाच्च भेदं मौढ्यादिधर्मवैशिष्ट्यं च दर्शयति । तेन भेदरूपोऽपि तस्याः परिणाम इत्यर्थः । ततस्तस्याः कथमेवंरूपतेत्याकाङ्क्षायां तस्याः स्वरूपमाह 'सैषा चित्रा सुदृढा बह्वङ्कुरा स्वयं गुणभिन्ना अङ्कुरेष्वपि गुणभिन्ना सर्वत्र ब्रह्मविष्णुशिवरूपिणी

रश्मिः।

शिवस्तयोर्गतिमाह **आभासेने**ति । शान्तवदाभासमानयोरशान्तयोराभासेन करणं न मूलेन । 'प्रकाशकं तच्चैतन्यं तेजोवत्तेन भासते । न प्राकृतेन्द्रियैर्ग्राह्यं न प्रकाश्यं च केनचित् । योगेन भगवद्दृष्ट्या दिव्यया वा प्रकाशते । आभासप्रतिबिम्बत्वमेवं तस्य न चान्यथा' इति शास्त्रार्थे । 'छिद्रा व्योम्नीव चेतनाः' इत्यत्रापि या छिद्राणीव प्रतीतिश्चैतन्यानां साभासेन कृता । एवमीशे तेजोबिन्दूपनिषदुक्तस्य दुःप्रेक्ष्यत्वस्य सुप्रेक्ष्यत्वं माययाभासेन कृतम् । तर्हीशस्य जीवतुल्यतापत्त्येश्वरत्वहानिरत आह **मायेति**। विभुभूषोर्मायाख्या शक्तिः काचित् भागवते प्रसिद्धा । चकारेण विद्या । 'विद्याविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम् । बन्धमोक्षकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते' इति भगवद्वाक्यात् । एतास्तिस्रः शक्तयः क्वचित्तिष्ठन्ति । मायारूपतमोधिष्ठातेश्वरः । अविद्यावलिप्तबुद्धयो जीवा इति मायिकपक्षे विशेषाभावेपि बोधितम् । मूलसृष्टिसाम्यात् । दार्ष्टान्तिके योजयन्ति **अत्र चेति** योजकश्रुतौ । **वटस्थाने**ति । इदं पूर्वश्रुतिदार्ष्टान्तिकस्थम् । सामान्यस्य मायायाश्चाश्रयत्वात् । अनेकशब्दार्थमाह **अनेकत्वेति** विशेषणत्वसाम्याद्व्याख्यानाच्च । **उभयत्रे**ति दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोः । **परस्मा** इति जननिकुरुम्बायाविदुषे । **प्रदर्शनमि**ति । उत्पाद्य दर्शयित्वेति क्त्वाप्रत्ययसाम्यात् । क्त्वो ल्यप् । **करणमिति** अधिकम् । ज्ञानकाशत्वेन सामान्यस्थानीयत्वात् । **द्विधेति** विद्याविद्येति द्विधा । **एतदीयमि**ति । ननु 'सद्रूपेण जडा अपि'इति निबन्धाज्जडा नैतदीया इति चेन्न । जगद्रूपेष्वित्यस्य मायिकजगद्रूपेष्वित्यर्थात् । **परमात्मन** इति सुबोधिन्युक्तमूलरूपस्य । द्विचन्द्राद्याभासस्य न द्रष्टृत्वमित्येवकारः। **स्वद्वैधीति** मायाया **द्वैधीभावोक्त्या द्विविधाभासस्य** जीवस्योक्तः, ईशस्यापि **तेजोबिन्दूपनिषदुक्तस्य** दुःप्रेक्ष्यस्य सुप्रेक्ष्यत्वं माययाभासेन कृतमित्युक्तमेव । **तदाधारत्वं** ज्ञानकाशत्वात् । ईश्वरवत् । 'विद्याविद्ये मम' इत्यत्र 'विद्याविद्ये हरेः शक्ती मायया मे विनिर्मिते । ते जीवस्यैव नान्यस्य दुःखित्वं चाप्यनीशता' इत्यनुसारेणाहुः **इयं चेति**। 'अविभक्तं च भूतेषु'इति गीतावाक्यादाहुर**विभक्त एवेति**। **यो** जीवो भवितुमहन्तामगतादिरूपाविद्यायां **प्रविशति**। **दर्शयतीति** उत्पादयतीत्यर्थः । पर्यायतोक्ता क्षेत्राणि दर्शयित्वेत्यत्र । **तेनेति** वैशिष्ट्यस्य नैयायिकोक्तपदार्थान्तरत्वेन । **एवंरूपतेति** । अत्राप्यतिगोप्यांशस्योक्तत्वादसङ्गे भक्तैकलभ्ये

१. आभासप्रयोजनकथनायाग्रे इदं वक्ष्यन्ति स्वयम् ।

भाष्यप्रकाशः ।

चैतन्यदीप्ता' इति । अत्र चित्रेत्यादिभिश्चतुर्भिः क्रमेण जगतो विचित्राकारे जडत्वे मोहात्मकत्वे संख्याकृते आनन्त्ये तुच्छत्वे च तत्स्वभावो हेतुत्वेनोक्तः । अङ्कुरेष्वपि गुणभिन्नेत्यनेन तदङ्कुरभूतानां गुणानामपि प्रत्येकं संघातत्वं नानाप्रकारकव्यष्टिप्रस्तारप्रयोजकत्वायोक्तम् । एतावदुपादानतानिर्वाहकं सर्वत्र ब्रह्मविष्णुशिवरूपिणीति सृष्ट्यादित्रिविधकर्तृत्वनिर्वाहकम् । तच्च रूपत्रयं नास्याः, किं त्वेतद्रूपत्रयमस्यां ब्रह्मण इति बोधनाय चैतन्यदीप्तेत्युक्तम् । तदेतन्निगमयति 'तस्मादात्मन एव त्रैविध्यं योनित्वमपि' इति । यस्मादियमाभासाधारभूता माया चैतन्यदीप्त्यैव ब्रह्मादित्रिरूपवती तस्मादात्मन एव त्रैविध्यम् । आभासाभास्ययोः समानाकारत्वस्यैवानुभवात् । अत्र त्रैरूप्यमिति वक्तव्ये त्रैविध्यमिति यदुक्तं तेनाविद्यायामपि देवमनुष्यासुरभेदभिन्नत्रिविधजीवप्रयोजकं रूपमप्यात्मन एवेति बोधितम् । यस्माच्च चैतन्यदीप्त्या दर्शयित्र्येव, न तु कर्त्री, तस्माद् योनित्वं निमित्तकारणत्वमप्यात्मन एवेति । तथा चाभासनिमित्तत्वं जगन्निर्मातृत्वं च शुद्धस्यैव साकारस्येति बोधितम् ।

रश्मिः ।

जीवतुल्यतापादकत्वात्पूर्वोक्तमायावृत्तान्तः कथमिति प्रश्नः । **चतुर्भि**रिति विशेषणैः । **विचित्रे**ति सदसती, तमोरूपा, योगमाया चेति माया त्रिधा, तास्वाधिदैविकी यदा तदा चित्रा योगमाया, चित्रापदस्य सुभद्रावाचकत्वात् विचित्रा चैतन्यदीप्तत्वात् । **विचित्राकारे** विरुद्धधर्मातिरिक्तविरुद्धधर्मैर्विचित्राकारेऽतिगोप्येऽर्थे आधिदैविकविशिष्टाकारे । **संख्ये**ति बहुत्व**संख्याकृते** । बह्वङ्कुरेति श्रुतेः न परममहत्परिमाणकृते । **जडत्व** इति । **स्वभाव** इति तस्याः परिणामो जगत् यतः स्वभावः । **स्वभावः** परिणामहेतुः । **उक्त** इति चित्रादिपदेनोक्तः । यदि चित्रस्वभावो न स्यात् । विचित्राकारं जगन्न स्यात् । **सुदृढे**ति क्षेत्रस्थास्थीनि जडानि न भवेयुर्यदि सुदृढस्वभावो न भवेदिति जडत्वे सुदृढपदेन स्वभाव उक्तः, अतिगोप्यार्थे शोभना दृढा । सेवोपयोगो दृढसंहननाङ्गस्य सांख्य उक्तः । न च 'न यत्र माया' इति मायानिषेधः । चैतन्यदीप्तत्वान्निषेधो न भविष्यति । कृष्णावतारसमये वा योज्या । **बह्वङ्कुरे**ति क्षेत्रेषु जगद्रूपेष्वित्युक्तत्वाद्बहवोऽङ्कुरा मोहादिरूपा नवोद्भिदो यस्याः । अतिगोप्यार्थे नवीनभावा ज्ञेयाः । यदि बह्वङ्कुरस्वभावो न स्यात् मोहादिविशिष्टं न स्यात् जगत् इति मोहात्मकत्वे बह्वङ्कुरापदेन स्वभाव उक्तः । **स्वयं गुणभिन्ने**ति क्षेत्रेषु गुणा भिन्नाः बह्वङ्कुरात्वात् । अन्यथा मायायाः कृत्स्नप्रसक्तिः स्यात् । यदि स्वयं गुणभिन्नस्वभावो न स्यात् । मायोच्छेदभिया जगद्गुणवन्न स्यात् । अत आनन्त्ये स्वयं गुणभिन्नपदेन स्वभाव उक्तः । तुच्छत्वं पञ्चमं पूर्वमुक्तप्रयोजनम् । यदि तुच्छस्वभावो न स्यात् जगत्तुच्छं न स्यादिति तुच्छत्वे पूर्वश्रुत्युक्ततुच्छपदेन स्वभाव उक्तः । जगद्गुणवन्न स्यादित्युक्तयुक्त्या जगद्गुणवदिति सिद्धं तत् । मायाङ्कुरजगत्सु अङ्कुरावशिष्टस्तेषु चाहेत्याशयेनाहुः **अङ्कुरेष्वि**ति । **तदङ्कुरे**ति मायाया जगतश्च नवोद्भिद्भूतानाम् । **प्रत्येक**मिति सत्त्वादीनां प्रत्येकं विष्ण्वादिसंघातत्वम् । **नाने**ति सात्त्विकासात्त्विकादिभेदेन नानाप्रकारका **व्यष्टि**देह**प्रस्तारा**स्तेषां प्रयोजकत्वायोक्तम्, कारणत्वाय तु मूलरूपसृष्टपञ्चमहाभूतादि । **चैतन्यदीप्ते**ति ब्रह्मगुणेन चैतन्येन दीप्तेति ब्रह्मादिरूपवतीत्यर्थः । **तस्मादि**ति सदाभासाधारत्वात् । एवकारस्तु 'सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते । स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञा' इति वाक्यात् । **अनुभवा**दिति । चन्द्रादिद्वैताभासः तिर्यग्दृष्टेः समदृष्टिविषयः । **न तु कर्त्री**ति । इदं ब्रह्मविष्णुशिवविष्णुविषयम् । तेनोत्पाद्येत्यस्य दर्शयित्वेति व्याख्यानमविरुद्धम् । **बोधित**मिति । तेन माया च

भाष्यप्रकाशः ।

तदेतद् व्युत्पादयन् पूर्वमाभासयोर्वैलक्षण्यमाह 'अभिमन्ता जीवो नियन्तेश्वरः' इति । तत्रोभयोराभासत्वे तुल्यत्वे कथमेवं वैलक्षण्यमित्याकाङ्क्षायां तत्प्रयोजकं रूपमाह 'सर्वाहंमानी हिरण्यगर्भस्त्रिरूप ईश्वरवद् व्यक्तचैतन्यः सर्वगो हि' इति । हिर्हेतौ । यस्मादयं सर्वाहंमानी सर्वगः समष्टिस्तस्मादविद्या व्यष्ट्युपाधयो जीवास्तत्तदभिमन्तारः । यस्मादीश्वरवद् व्यक्तचैतन्यस्तस्मात् ते नियन्तारः । यस्मात् त्रिरूपस्ततस्तदङ्कुरोपाधयो ब्रह्मादयोऽपि प्रत्येकं तादृशाः । दृष्टान्तीभूत ईश्वरः को वेत्यत आह 'एष ईश्वरः क्रियाज्ञानात्मा' इति । एष इति प्रक्रान्तः परमात्मा । तथा च तस्य क्रियात्मत्वात् तत्प्रतिरूपोऽयं सर्वाऽहंमानी, तस्य ज्ञानात्मत्वादयं व्यक्तचैतन्य इत्यर्थः । एवं योनित्वं समर्थयित्वा कार्यकारणयोः सालक्षण्यं वैलक्षण्यं चाह 'सर्वे सर्वमयं मर्वे जीवाः सर्वमयाः सर्वावस्थासु तथाप्यल्पाः' इति । तेन यन्मूले तदेव कार्येषु

रश्मिः ।

तमोरूपेतिप्रभृतिश्रुतिर्जगतो मायामयत्वे मायायाश्च योनित्वे तात्पर्यमिति दशप्रकरण्याश्चित्रदीपे ब्रुवन् कश्चिदपास्त इति ज्ञेयम् । **आभासयो**रिति ईशजीवयोः । **तुल्यत्व** इति तुल्यत्वं चेत्यर्थः । तृतीयान्तं वा नकारः पतित इति । **तत्प्रयोजक**मिति । वैलक्षण्यप्रयोजकमीशे व्यक्तचैतन्यं जीवेष्वव्यक्तचैतन्यमर्थं विहाय चिद्रूपशब्दे ब्रह्माणमाह **सर्वाह**मिति । चितो व्यामोहिका शक्तिः या चिद्रूपहिरण्यगर्भस्यैतद्गुणाहंतासंबन्धः । ईश्वरशब्दार्थोऽग्रे वक्तव्यः । **समष्टिरिति** शब्दस्य व्यापकत्वात् । 'शब्द इति चेत्' इति सूत्रे शब्दात्सृष्टेरुक्तत्वात् । **अविद्ये**ति अविद्या व्यष्ट्यावृतचैतन्याः । छिद्राणीव प्रतीताः । **तत्तदि**ति कर्तृत्वाद्य**भिमन्तारः** । **तस्मा**दिति व्यक्तचैतन्यत्वात् । **ते** ईशादयः । **त्रिरूप** इति ब्रह्मविष्णुशिवरूपः । **तत** इति क्रमवाचकं तत इति पदम् । रजोधिष्ठात्र**ङ्कुराः** कर्मादयः तै**रुपाधयः** मायावृतचैतन्याः **ब्रह्मादयो** ब्रह्मविष्णुशिवाः । **तादृशाः** आभासीभूताः । तेन हिरण्यगर्भकर्मार्जिता ब्रह्मविष्णुशिवाः । त्रिरूप इति विशेषणात्तुरीयो हिरण्यगर्भः । एवं शिवस्तुरीयः । विष्णुस्तु त्रिरूपः । 'विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि' इति वाक्यात् । तुरीयौ ईश्वररूपभवनउपयुक्तौ । ब्रह्मा विष्णुः शिवो भूत्वा पुनः कृष्ण एव जात इति फलप्रकरणे सुबोधिन्याम् । तुरीयो ब्रह्मा शब्द इति चिन्मात्रः । सच्चिदानन्दस्तुरीयः । तत्र स्वरूपांश उपयुक्तः । तुरीयः शिवोपि 'त्वमस्य पुंसः परमस्य मायया दुरत्ययास्पृष्टमतिः समस्तदृक्' इति वाक्यादुपयुक्तः । **दृष्टान्ती**ति ईश्वरवदित्युक्तो दृष्टान्तीभूतः । **क्रियेति** काण्डद्वयार्थः । ननु व्यक्तचैतन्ये दृष्टान्त ईश्वरः तत्त्वं च ज्ञानात्मेत्यनेनैव सिद्धं क्रियेत्यस्य किं प्रयोजनमतो विवृण्वन्ति **प्रक्रान्त** इति शुद्धाभेदार्थं ब्रह्मवादविषयः । **क्रियेति** क्रियाशक्तिरात्मनि यस्य तत्त्वात् । **तत्प्रतिरूपः** रजोवैशिष्ट्येपि 'विशिष्टं शुद्धान्नातिरिच्यते' इति प्रतिनिधिरूपः । कर्ममार्गेण ब्रह्मैवमुच्यत इति कर्मठत्वात्क्रियाग्रहणं चैतन्यस्याविद्यावच्छिन्नत्वाद्व्यक्तताहेतुः क्रियेति प्रयोजनं व्यक्तता । तर्हीश्वरस्य किं श्रैष्ठ्यमत आहुः **सर्वाहंमानी**ति । हिरण्यगर्भस्य व्यामोहिका शक्तिः । ईश्वरस्य जगत्कर्त्रीति श्रैष्ठ्यमिति भावः । नन्वहंमानित्वे सति व्यक्तचैतन्यता कथमित्यत आहुः **तस्ये**ति । ज्ञानमात्मनि यस्य तत्त्वाज्ज्ञाननाश्याहंमान इति क्रियया शुद्धे चित्ते ज्ञानोत्पत्त्याहंमाननाश इति **व्यक्तचैतन्यः** । **योनित्व**मिति आभासे निमित्तत्वं जगतोऽभिन्ननिमित्तोपादानत्वम् । 'संसारमहीरुहस्य बीजाय' इत्यत्र बीजाय निमित्तकारणायेति व्याख्यानाद्योनिरपि निमित्तम् । **सालक्षण्य**मिति साधर्म्यं वैधर्म्यं च । **सर्वमया** इत्यत्र जीवेषु सर्वशब्दाद्विकारे मयड्भाषितः इति सर्वमयमित्यत्रापि प्राचुर्ये मयट् ।

भाष्यप्रकाशः ।

स्वल्पमिति बोधितम् । एवं कार्यमाभासश्च व्युत्पादितः । तेन कारणत्वमाभासत्वं च दृढीकृतम् । अतः परं जीवात्मनां मुख्यवृत्त्या प्रणवप्रतिपाद्यत्वं निगमयितुं परमात्मन एवावस्थाभेदं क्रियाभेदं चाह 'स वा एष भूतानीन्द्रियाणि विराजं देवताः कोशांश्च सृष्ट्वा प्रविश्याऽमूढो मूढ इव व्यवहरन्नास्ते माययैव तस्मादद्वय एवात्मा' इति । तथा च यः स्रष्टा स एवांशेन प्रविश्य द्विधा व्यवहरति मायया, न तु द्विधा भवतीति मूलविचारे स एवायं स्वस्य रूपं प्रणवप्रतिपाद्यतां च नानुसंधत्ते, किं त्वस्ति तदभिन्न इत्यर्थः । एतदेवाद्वयत्वं दृढीकर्तुं द्वादशस्वरूपलक्षणान्यस्याह 'सन्मात्रो नित्यः शुद्धो बुद्धः सत्यो मुक्तो निरञ्जनो विभुरद्वय आनन्दः परः प्रत्यगेकरसः प्रमाणैरेतैरवगतः' इति । अत्राभासस्यापि प्रत्यक्त्वात् तद्व्यवच्छेदायैकरसपदम् । अयमेव च मुख्यो हेतुः । एतेन परत्वे सिद्धे

रश्मिः ।

तर्ह्यन्यख्यातित्यागोऽख्यातिश्चापद्येतेति चेत् । 'द्व्यचश्छन्दसि' इति विकारे मयड् भवतु । तेन शुक्त्युपादानत्वं रजते शुक्ताविदं रजतमित्यत्र क्वचित्सुबोधिन्युक्तं सिद्धम् । ईश्वरोणुव्यापकत्वविशिष्टः जीवास्त्वणव इत्यल्पा इति नार्थो मायादिवैशिष्ट्याज्जीवानामित्याहुः तेनेति । स्वल्पमिति व्याख्यानास्तुः । तथा च सुतरामल्पं सर्वधर्मजातम् । एवमिति कार्यं भगवत्कृतम् । आभासो मायाकृतः । दृढीति प्रक्रान्ते दृढीकृतम् । जीवात्मनामिति सर्वे जीवा इत्यनेन स्मृतानामुपेक्षानर्हत्वात्प्रसङ्गसङ्गत्या जीवनिरूपणप्राप्तजीवात्मनाम् । परमात्मन इति । मण्डूकोपनिषदि 'ओमित्येकाक्षरं इदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्' इत्युपोपसर्गार्थाय एवकारः । अवस्थाभेदः कार्यावस्थया भेदः क्रियाभेदः प्रवेशभेदः तावाह स वा इति । ब्रह्मणस्तुरीयं रूपमुक्तम् । शिवस्य तुरीयत्वं शैवाचार्यमते । विष्णोराह श्रुतिः । स महतः स्रष्टा । वै निश्चयेन । चरणादिरूपः । अन्यथाक्षरात्सृष्टिनिरूपकमुण्डकविरोधः । एवमपादस्तुरीयः । 'विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि' इति वाक्यात् । तत्समानयोगक्षेमत्वात्तुरीयः परः पुरुषः । भूतानि पञ्चमहाभूतानि स्थूलदेहस्थानापन्नानि । इन्द्रियाणि सूक्ष्मदेहस्थानापन्नानि । तदुभयरूपं विराजम् । देवताः स्वराडपि इन्द्रियदेवताः । कोशा आनन्दमयाधिकरणे उपपादिताः । अमूढ इति । जगत्कर्त्री शक्तिः सदानन्दस्य न व्यामोहिका तस्याश्चिच्छक्तित्वात् । व्यवहरन्निति कृष्णभजनातिरिक्तं कुर्वाणः । मूढपदेन 'अयमेव महामोहो हीदमेव प्रतारणम् । यत्कृष्णं न भजेत्प्राज्ञः शास्त्राभ्यासपरः कृती' । तदर्थं घटो भिन्नः पटो भिन्नः ब्रह्म भिन्नं प्रतिमा भिन्ना जगद्भिन्नं ईश्वरो भिन्न इति व्यवहरन् । उभयत्र हेतुः माययेति । मोहिका भेदजनिका मायेति भजनश्रुत्या 'भक्तीरहस्यभजनम्' इत्याद्यया । 'यथा भक्त्येश्वरे मनः' इति भागवतेन च विरोधाद् द्वैतविरोधाच्च । तस्मादिति मोहभेदादीनां मायिकत्वात्ततश्च 'कार्यकारणयोरैक्यमर्षणं पटतन्तुवत्' तस्मात् । द्विधेति 'द्वौ सुपर्णौ' स्रष्टृसृज्यरूपे वा महत्स्रष्टृब्रह्माण्डरूपौ विष्णू वा । मायया भेदकया तमोरूपया । अमूढो मूढ इति मोहादिरूपमायासंबन्धः । द्विधेति अंशी द्विधा न भवति । स एवायमिति परमात्मैवायं जीवः । ननु तस्य त्वमिति विग्रहे 'तत्त्वमसि' इत्यत्र कृते कथमभेद इति चेन्न । कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्शनादभेद इति । अस्येति जीवस्य । निरञ्जनान्तं जीवस्वरूपम् । विभुत्वं परममहत्परिमाणवत्त्वं तच्च साधनैर्मुक्तस्य रूपम् । अद्वयो ज्ञानमार्गे । आनन्दो भक्तिमार्गे जीवन्मुक्तौ च । परः पुष्टिमार्गे । प्रत्यगेकरसः सर्वात्मभावे । प्रति प्रतिनिधिमञ्चतीति प्रत्यक् । भगवद्रूपो भगवन्तं गच्छति पूजयति च । एकरसः प्रभुरसः । प्रभुभजनानन्दानुभावुकः । एतैरिति शब्दैः । एकरसपदमिति । तेन लक्षणेषु द्वादशत्वं

भाष्यप्रकाशः।

तत आनन्दत्व इत्येवं द्वादशलक्षणकत्वसिद्धौ निष्प्रत्यूहं परमात्माभेदसिद्ध्या प्रणवप्रतिपाद्यत्वं निगमितं भवतीति। एवं सजातीयद्वैते निराकृतेऽपि जगतोऽविद्यायाश्च विद्यमानत्वाद् विजातीयद्वैतापत्त्या शुद्धाद्वयासिद्धौ जीवोऽपि नित्यभिन्न एवाङ्गीकार्यः स्यादित्याशङ्कां निवारयितुं जगतोऽविद्यायाश्च सद्रूपत्वेन ब्रह्माभेदमाह 'सत्तामात्रं हीदं सर्वं सदेव पुरस्तात् सिद्धं हि ब्रह्म न ह्यत्र किंचनानुभूयते नाविद्यानुभवात्मनि स्वप्रकाशे सर्वसाक्षिण्यविक्रियेऽद्वये' इति। हि यतो हेतोः सत्तामात्रमिदं सर्वं सृष्टिपूर्वकाले सदेव। यथा पृथुबुध्नोदराद्याकारा वस्तुतो मृद्धर्मा इति घटादयो मृन्मात्रत्वान्मृदेव, तथा सति हि निश्चयेन विकारस्य व्यवहारार्थतया वस्तुतः सदात्मकत्वाद् ब्रह्मत्वं सिद्धम्। हि यतो हेतोर्यत् सविक्रियं तदादावन्ते चाविक्रियम्। अत एतस्य सत आद्यन्तावस्थाविचारे यत् किमपि कार्यमविद्या च तत् सत्त्वेनैवानुभूयते, न तु प्रतिनियतेन तेन तेन रूपेणातो विजातीयद्वैतस्याप्यभावाच्छुद्धाद्वयसिद्धिरित्यर्थः। तदेतत् स्वयमनुभवँस्तानप्युपदिशति 'पश्यतेहापि

रश्मिः।

व्यवस्थापितम्। प्रत्यक् चासावेकरस इति। अन्यथा स्वरूपलक्षणेषु प्रत्यक्पदं पठितं स्यात्। **अयमेवे**ति प्रत्यगेकरस एव। एकरसस्य ब्रह्मत्वं प्रसिद्धम्। हेतुरिति विशेष्यस्य हेतुगर्भत्वात्। हेतुर्मुख्यवृत्त्या प्रणवप्रतिपाद्यत्वे। विपरीतक्रमेणाहुः **एतेने**ति। प्रयोजनं तु पाठक्रमोक्त एव। **आनन्दत्व** इति **सिद्ध** इति पूर्वेणान्वयः। **एवं सजातीये**ति मुख्यया वृत्त्या प्रणवप्रतिपाद्यत्वेन साजात्यं तेनाभेदेऽद्वैतं विवक्षितम्। **अविद्याया** इति विद्याविरुद्धा संपत्। अतो जगतोविद्यायाश्चासत्त्वं भावनामात्रतो विद्यया नाशाच्च निरूपणीयमतः **सद्रूपत्वं** तेनेत्यर्थः। **सत्तामात्र**मिति। चिदानन्दावग्रे वक्तव्यौ। चिदानन्दयोः प्रच्छन्नत्वात्। अत उक्तम्, **इद**मिति। इदमस्तु प्रत्यक्षगे रूपमिति युक्तम्। **सदेवे**त्येवकारेण प्रच्छन्नव्यवच्छेदः। **वस्तुतो मृद्धर्मा** इति। ननु तन्तुकपालादिधर्मा न तु मृद्धर्माः। **मृदि**त्युपलक्षणं ज्ञेयम्। घटादय इत्यग्रे उक्तेः मृदादिधर्मा इति चेन्न। तन्तुकपालादिधर्मत्वे 'यदेकमव्यक्तमनन्तरूपम्' इत्युक्तब्रह्मरूपत्वत्यागापत्तेः। एवं तु तन्तुकपालाद्याकारा घटाद्याकाराश्चेश्वरस्येति 'मृत्तिकेत्येव सत्यम्' इति श्रुतेः सत्यधर्मा इत्यर्थः। घटाद्यभेदोपादानाय मृत्त्वेनोपादानमतो वस्तुप्राप्य प्रत्यक्षाच्च मृद्धर्माः। **सिद्धं हि** इत्यादिश्रुतिं विवृण्वन्ति **तथा सति** इति। **वस्तुत** इति भेदत्यागेन। **न ह्यत्र** इत्यादिश्रुतिं विवृण्वन्ति **हि यत** इति। **सविक्रिय**मिति जगत्। **अविक्रिय**मिति अव्यक्तरूपम्। 'अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत। अव्यक्तनिधनानि' इति वाक्यात्। **आद्यन्तावस्थे**ति। तेनाविचारदशायामेतद्वतस्यासत्त्वेन प्रतीतावपि न क्षतिरिति बोधितम्। **अविद्या चे**ति। मायाविद्ययोस्तु मायाचिदंशस्य शक्तिरिति जगत्प्रभावकात् विद्यायाश्चासत्त्वाभावान्न सत्त्वेनानुभवनिरूपणं प्राप्तमित्यविद्यामात्रग्रहणम्। **सत्त्वेनैवे**ति। प्रच्छन्नचिदानन्दव्यवच्छेदक एवकारः। 'मनसैवानुद्रष्टव्यम्' इति श्रुत्याहुः **न तु प्रती**ति। **तेन तेने**ति घटत्वादिरूपेण। स्वगतद्वैतस्यानन्दचिद्घनमन्तरासंभवाद्ब्रह्मवादमुपदिदेशेत्याहुः **तदेत**दिति। **स्वयं** ब्रह्म। **तान्** शुद्धाभेदजिज्ञासून् देवान् **उपदिशती**ति वेदान्तव्याख्यानत्वाद्योगमात्रं दिश अतिसर्जने अतिसर्जनं दानम्, उपददाति। **पश्यत**

भाष्यप्रकाशः ।

सन्मात्रमसदन्यत्' इति । इहापि जडमोहात्मके जगत्यपि अन्यत्वेन प्रतीयमानं यज्जडादिरूपत्वं तदसत् । अतस्तदनादृत्य सर्वं सन्मात्रं पश्यतेत्यर्थः । ननु जडादिरूपताप्याकारादिवदस्मिन्नौत्पत्तिकी प्रतीयत इति कथं सन्मात्रत्वमवधारणीयमित्याकाङ्क्षायां तदवधारणप्रकारमाह 'सत्यं हीत्थं पुरस्तादयोनि स्वात्मस्थमानन्दचिद्घनं सिद्धं ह्यसिद्धं तत्' इति । हि यतो हेतोः सत्यं सद्वस्तु, पुरस्तात् सृष्टिपूर्वकाले, इत्थं सर्वाकारम्, अयोनि अजन्यं, स्वात्मस्थं स्वप्रतिष्ठम्, आनन्दचिद्घनम् आनन्दचिदाकारमेव सिद्धम् । हि अतो हेतोर्निश्चयेन वा तज्जडमोहात्मकत्वमसिद्धम् । तथा चेदानीं जडादिरूपताया औत्पत्तिकत्वेन प्रतीयमानत्वेऽप्यविद्याभिभवविरहदशायामप्रतीतेरान्तरालिकमेव तदित्यर्थः । एवं तस्यान्तरालिकत्वं निगमयित्वा सर्वस्य ब्रह्मात्मकत्वमुपसंहरति 'विष्णुरीशानो ब्रह्माऽन्यदपि सर्वं सर्वगम्' इति । यत् सर्वगं कारणभूतं ब्रह्म तदेव विष्ण्वादिरूपं घटादिरूपं चेतनाचेतनात्मकमित्यर्थः । एवं परमात्मनः सर्वरूपत्वं निगमयित्वा तदात्मकत्वेनात्मन ओतत्वाय सर्वस्यात्मरूपतामात्मनो ब्रह्मधर्मवत्तां चाह 'सर्वमत एव शुद्धोऽबाध्यस्वरूपो बुद्धः सुखरूप आत्मा' इति । अत एव ब्रह्मात्मकत्वादेव सर्वं शुद्ध आत्मा एवंरूपश्चेत्यर्थः । एतदग्रे अनुज्ञात्रनुज्ञाऽविकल्परूपत्वमात्मनो

रश्मिः ।

इत्यादिर्मन्त्रो वा । अन्यत्त्वेनेति अन्तरास्रष्टृत्वेन । सत्यं हीत्थमिति । 'सतां सत्' इत्यत्र सत्यपदप्रयोगः सत्तेत्यत्र वर्णविकारं सदित्यत्र यकारलोपं ज्ञापयति । इत्थम् उद्देश्यत्वप्रकारेण । सत्यमुद्दिश्यानन्दचिद्घनत्वे विधीयेते इति । तदाहुः हि यत इति । सर्वाकारमिति सत्ताकारं, सदाकारमिति विधेयाकारमिति चातः सर्वाकारम् । अनादीत्याहुः अयोनीति । अदृश्यत्वधिकरणोक्तम् । एव सिद्धमिति स्वरूपलक्षणनिरूपणे उद्देश्यविधेयभावाप्रतीतिः । 'सत्तामात्रम्' इति श्रीभागवते । 'आनन्दरूपम्' इति मुण्डके 'चिन्मात्रम्' इति च । छान्दोग्येऽमृतमर्त्यदात् सत्यं सिद्धम् । सत्यं जलनामसु निरुक्ते पठितम् । 'ज्ञानं नारायणः' इत्यत्र वर्त्यन्यपदार्थः । अनन्तः शेषः । इति यत्र योर्थः एवं सप्तार्थाः । अत्रैवकारः कस्यार्थस्य व्यवच्छेदकः न कस्यापि । आधिदैविकादिभेदात् व्यष्टिसमष्टिभावाच्च । एवं चैवकारोप्यर्थे । ननु स्वगतं द्वैतं न निवारितमत आहुः जडमोहेति । असिद्धमिति तथा चोक्तत्रयातिरिक्तं जडमोहात्मकत्वमसिद्धं तत्राखिलसाधनानामुपयोगे कृते स्वगतं द्वैतं नश्यतीति, 'मनसैवानुद्रष्टव्यम्' 'नेह नानास्ति किंचन' इति श्रुतिभ्याम् । गीतायां सात्त्विकज्ञाने एकोव्ययो भावो विषयः । इयं श्रुतिः सिद्धपदरहिता उपनिषदि । भाष्यप्रकाशमूलपुस्तके तु ह्यसिद्धमिति द्वयं नास्ति । सर्वथाप्ययमेवार्थः । अविद्याभिभवेति विद्याविद्ययोरुपमर्द्योपमर्दकभावः । तदिति जडमोहात्मकत्वम् । आन्तरालिकत्वमिति तदेतदान्तरालिकत्वं 'न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधनादनुमितमन्तरा त्वयि विभाति मृषैकरसे । अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथैर्वितथमनोविलासमृतमित्यवयन्त्यबुधाः' इत्यत्रोक्तम् । आत्मन इति चराचरं जगदिति जीवस्यात्मनः ओतत्वाय जडस्य प्रोतत्वाय 'ओतप्रोतमिदं विश्वम्' इति वाक्यात् । एवं सर्वस्यात्मरूपतोक्ता । आत्मनो ब्रह्मधर्मवत्तामाहुः एतदग्र इति । 'न ह्येतन्निरात्मकमपि नात्मा पुरतो हि सिद्धो न हीदं सर्वं कदाचिदात्मा हि महिमस्थो निरपेक्ष एक एव साक्षी स्वप्रकाशः' इत्यादिग्रन्थेनानुज्ञातृ ओतं जीवमोतेन जडेन प्रोतेन ओतेन चिदंशेन जीवाभिन्नेन जानीयात् । अनुज्ञातारं आन्तरं जानीयात् । अनुज्ञामद्वयं जानीयात् ।

असदितिचेन्न प्रतिषेधमात्रत्वात् ॥ ७ ॥ (२-१-५)

श्रुतौ कारणत्वेनासदुक्तमितिचेन्न प्रतिषेधार्थमेव वचनम्। कथमसतः सज्जा-

---

भाष्यप्रकाशः।

ब्रह्माभेदाय प्रतिपादितम्। अविद्याया अनुज्ञायामन्तर्भावश्च प्रतिपादितः। तत् सर्वं मत्कृत-नृसिंहतापिनीयदीपिकातोऽवगन्तव्यम्। अत्र प्रयोजनाभावान्नोच्यते। इदमत्र प्रसङ्गादुक्तम्।

माध्वास्तु, 'न विलक्षणत्वात्' इति सूत्रं पठित्वा ततो, 'दृश्यते तु' इति सूत्रं पठन्ति। द्विसूत्रमधिकरणं चाहुः। श्रुतेस्तदनुसारिस्मृतेश्च न पाशुपतादिस्मृतिवदप्रामाण्यम्। कुतः विलक्षणत्वात्। नित्यत्वेन पुरुषाजन्यतया तद्वैलक्षण्यात्। अस्य वेदस्य तथात्वं नित्यत्वं च शब्दात् 'वाचा विरूपनित्यया' इत्यादिरूपात् स्वतःप्रामाण्याच्च। अन्यथाऽनवस्थितेरिति चार्थमाहुः। ततोऽभिमानिव्यपदेशसूत्रं पठित्वा, 'दृश्यते च' इत्यधिकं सूत्रं पठन्ति। तदपि सूत्र-द्वयात्मकमधिकरणान्तरमित्याहुः। तत्रापि, वेदः प्रमाणं न, मृदब्रवीदित्यादौ प्रत्यक्षविरुद्ध-वादित्वादिति पूर्वपक्षनिरासं तुना कृत्वा, मृदब्रवीदित्यादिषु तदभिमानिव्यपदेशस्तासां वि-शेषानुगतिभ्यां सामर्थ्यव्यापकत्वाभ्यामङ्गीक्रियतेऽतो न प्रत्यक्षविरोधः। तासां सामर्थ्यं च महद्भिर्दृश्यतेऽतः प्रत्यक्षविरोधाभावान्न श्रुतिप्रामाण्यभङ्ग इत्यर्थं चाहुः॥ ६ ॥

इति चतुर्थं विलक्षणत्वाधिकरणम् ॥ ४ ॥

असदिति चेन्न प्रतिषेधमात्रत्वात् ॥ ७ ॥ पूर्वाधिकरणेन श्रुतौ युक्तिविरोधं परिहृत्य समाकर्षसूत्रोक्तस्यार्थस्योपष्टम्भार्थं श्रुत्यन्तरे पुनर्विप्रतिषेधान्तरमाशङ्क्य समाधत्ते अस-दित्यादि। तद् व्याकुर्वन्ति श्रुतावित्यादि। 'असद्वा इदमग्र आसीत्' इति श्रुतावसतः सकाशात् सृष्टिरुच्यते। असच्च सद्भिन्नम्, अभावो वा अलीकं वा। अतस्तदेव कारण-

रश्मिः।

एतयोरन्यतररूपं विकल्परूपम्। तद्भिन्नं रूपमविकल्परूपं तस्य भावस्तत्त्वम्। अविद्यापि पूर्व-मुक्तेति चेत्तत्राहुः **अविद्याया** इति। **अनुज्ञायामद्वयेऽन्तर्भावः** सत्त्वेनैवानुभवादित्यर्थः। असङ्गतत्वं वारयन्ति स्म **इदमत्र प्रसङ्गादिति**। **उक्तमिति**। एवमत्र जगन्नित्यत्वानित्यत्वप्रति-पादकयोः श्रुत्योः स्मृत्योश्च मिथो विरोधाभाव उक्तः भ्रान्तसत्यत्वाभावाय। सूत्रांशं व्याकुर्वन्ति **अस्य वेदस्येति**। **अनवेति** प्रमाणानामिति शेषः। तेन दृश्यते च इत्यपि व्याख्यातम्। अत्रापि समन्वयो विषयः। तत्र सच्चिदानन्दानां कारणत्वोक्त्या चेतनं कारणं न वेति संशयः। चेतनं ब्रह्म जगदुपादानं न जगतो जडत्वेन ब्रह्मणस्तद्विलक्षणत्वादिति प्राप्तेऽभिधीयते कार्य-कारणयोर्वैलक्षण्यस्य गोमयवृश्चिकादौ दर्शनात् सदंशस्य कार्यकारणयोस्तुल्यत्वेन सालक्षण्याच्च न ब्रह्मणोकारणत्वमिति। द्वितीयसूत्रार्थमाहुः **तासामिति**। **आहुरिति**। वेदप्रामाण्यं स्वमते प्रतितन्त्रसिद्धं नात्र विषयः॥ ६ ॥ **इति चतुर्थं विलक्षणत्वाधिकरणम् ॥ ४ ॥**

असदिति चेन्न प्रतिषेधमात्रत्वात् ॥ ७ ॥ **समाधत्त** इति। तेन प्रसङ्गः सङ्गतिः पादार्थलक्षणाव्याप्तिश्च परिहृता। विषयोऽसद्वेत्यादिश्रुतिः। असतः कारणत्वमुत सत इति संशयः। सद्भिन्नमिति सत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्। **अभावो**ऽत्यन्ताभावः। **अलीकं** मिथ्या खपुष्पादि।

भाष्यप्रकाशः ।

मितिचेन्न । कुतः । प्रतिषेधमात्रत्वात् प्रतिषेधस्य मात्रमवधारणं येन तत् तादृक्त्वात् । वाक्यान्तरस्य तन्निषेधावधारकत्वात् । छान्दोग्ये, 'तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीत्' इत्यनेन मतान्तरीयमसदनूद्य, 'कुतस्तु खलु सोम्यैवं स्यात्' इत्यादिना निषिध्यते । एवं नानाविधं जगत् कुतो हेतोरेकस्मादभावात् स्यात् । न ह्येकस्मादभावान्नानाविधं कार्यं क्वापि दृष्टं येन तथा कल्प्येत । येऽप्यभावस्य कारणत्वं वदन्ति तेऽपि प्रागभावस्य नानात्वं वदन्तीति । अथालीकं दूषयति असतोऽलीकात् कथं सज्जायेतेति । न हि खपुष्पात् किंचिज्जायते । किंच । यद्यसतः सतश्च विकल्पेन कादाचित्कं कारणत्वमभिप्रेयान्नातिरात्रमितिवद् वदेत् न तु युक्तिपुरःसरं दूषयेत् । अतस्तत्र नासतः कारणत्वमुच्यत इति न विप्रतिषेधः । अतस्तत्र यदसत्पदं तद् भावविकारात्मकसत्ताराहित्यबोधनार्थमित्यर्थः । एवं च, 'नासदासीन्नो सदासीत्' इति भाववृत्तसूक्तेऽप्यसत्पदेन भावविकारभूतसत्तारहिततया सांख्याद्यभिमतं प्रधानाद्यभिप्रेत्य तन्निषिध्यते । सत्पदेन च भावविकारभूतसत्तायुक्तं कार्यमभिप्रेत्य तन्निषिध्यते । 'न सन्नासन्न सदसत्' इति सौबालश्रुतावपि सदसत्पदेन व्यक्ताव्यक्तात्मकं शब्दब्रह्म निषिध्यते । 'शब्दब्रह्मात्मनस्तस्य व्यक्ताव्यक्तात्मनः परः' इति तृतीयस्कन्धे शब्दब्रह्मणस्तथात्वोक्तेः । अतोऽसद्वेति वाक्ये असतः कारणत्वं नोच्यते । नापि, नासदासीदित्यादौ मूलसतः कारणत्वं निषिध्यते, येन श्रुतिविप्रतिषेधः स्यात् । अतः शब्दसाम्यादेव भ्रम इत्यर्थः । यद्यपि समाकर्षसूत्रेऽप्ययमर्थः सिद्धस्तथापि समाकर्षे हेतुः स्पष्टता तत्र

रश्मिः ।

सूत्रोपन्यासेनैव प्रतिषेधार्थमित्यादिभाष्यं व्याकुर्वन्ति प्रतिषेधेति । मतान्तरीयमिति नैयायिकैकदेशिमतम् । तेन त्रिषु भावोऽसदर्थः । श्रुतिं व्याकुर्वन्ति एवं नानेति । येऽपीति नैयायिकैकदेशिनः । नानात्वमिति । तस्यैकत्वे तु पटमुत्पाद्यानपहृतेः पुनर्घटान्तररूपकार्यापत्तेः । अत आत्मनामनेकत्वापत्त्या तेषां वैसंमत्या कार्यानुत्पादापत्तिः । अत्र नव्यैः प्रागभावः खण्डितः प्रस्थानरत्नाकरेऽपि समवाय्यवस्थाविशेषत्वं प्रागभावस्योररीकृत्य प्रत्यक्षखण्डे विघटनादत्यन्ताभावादेरात्मगुणाष्टकवैशिष्ट्यादभावाच्च । अथेतिभिन्नप्रक्रमः युक्तिर्गताधुना श्रौतभाष्येण श्रुतिं व्याकुर्वतः कथमित्यादिभाष्यं व्याकुर्वन्ति अथेत्यादि । अलीकमिति । पूर्वं विकल्पोदितम् । न हीति । तथा च सज्जननदर्शनान्नासत् पूर्वमासीत् किं तु सदेवेत्येवं प्रतिषेधार्थमेकवचनमिति भावः । ननु नैवं वक्तुं शक्यं श्रुत्योर्विरोधे विकल्पस्मरणात् कुतो विप्रतिषेधः प्राप्त इति चेत्तत्राहुः किंचेत्यादि । नातिरात्रमिति षोडशिग्रहणाग्रहणवद्वदेत् । अतिरात्रं ज्योतिष्टोमसंस्थोक्तासु सप्तसंस्थासु । अतस्तत्रेति दूषणात् वेदान्ते । अत इति विप्रतिषेधपरिहारात् । भावविकारेति इदं परिदृश्यमानं सदसदेवेति सत्ताभावः प्राप्तः स च सति लयान्नास्त्यतो भावविकारेत्यादि । युक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधे समाधिकरणोक्त्या व्याकृतमासीदिति ह्यसत्पक्षेण तुल्यमिति द्वितीयः पक्षः । तेनाव्याकृतमसदिति नोक्तम् । अस्यैवाव्याकृतत्वात् । प्रपञ्चवैलक्षण्यं च तत्रोक्तं नार्थः । युक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारात् । सांख्याद्यीति । आदिपदेन माया सदसतीत्युपनिषदि । नासदासीदिति मनस्तदपि ब्रह्मेति भाष्यं सोऽर्थोऽपि युक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारे न युक्तः । भ्रम इति असत्पदस्य कारणत्वे । इदानीं भाष्यस्वारस्यं विवेचयन्ति यद्यपीति । हेतुरिति प्रतिषेधेत्यादिः सौत्रो

येतेति । कार्यस्य वा पूर्वप्रतिषेधो ब्रह्मकारणत्वाय ॥ ७ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

नोक्तः । अत्र त्वसन्निषेधे हेतुरुक्तः सोन्यत्राप्युन्नेयः । तत्तत्प्रतिषेधावधारकाणां वाक्यानां तत्रैवोदाहृतत्वादिति । एवं स्वमतेन व्याख्याय प्रस्थानान्तरीयव्याख्यानसंग्रहायाहुः कार्यस्येत्यादि । वाशब्दोऽनादरबोधनाय । एतस्यार्थस्य असद्व्यपदेशसूत्रे प्रपञ्चनीयत्वादिति । उक्तश्रुतौ, इदं कार्यमुत्पत्तेः पूर्वमसदासीदित्युच्यते । तथा च कार्यस्योत्पत्तेः पूर्वकाले सत्ताप्रतिषेधो ब्रह्मकारणत्वबोधनायेति सत्कार्यवादः श्रुतिविप्रतिषिद्ध इति चेन्न । कुतः, प्रतिषेधमात्रत्वात् । असद्वेति वाक्यस्य कार्यावस्थानिषेधावधारकत्वात् । न ह्ययं निषेधः प्रागुत्पत्तेः कार्यसत्तां निषेद्धुं शक्नोति । इदानीमपि कार्यस्य कारणात्मनैवात्मलाभात् प्रागप्युत्पत्तेस्तदात्मत्वस्य बाधाभावेन कार्यत्वे परिदृश्यमानं यदागन्तुकं स्थूलं रूपं तन्निषेधावधारकत्वात् । तथा च न सत्कार्यवादः श्रुतिविप्रतिषिद्ध इत्यर्थः । न च कार्यगतस्य व्यवहार्यरूपस्यागन्तुकत्वे तस्य पूर्वमसत्त्वात् तद्दृष्टान्तेनासत्कार्यवादः पुनः प्रसज्यत इति वाच्यम् । कारणे तस्यापि सत्त्वात् । न च तादृशव्यवहारापत्तिस्तर्हीति वाच्यम् । तादृशभगवदिच्छाभावादुपपत्तेः । न च तादृशेच्छाभावे मानाभावः । इच्छायाः कार्यैकोन्नेयत्वेन कार्याभावानुभवस्यैव तत्र मानत्वात् । इदं यथा तथा **विद्वन्मण्डनीयाविर्भावतिरोभाववादविवरणे** निपुणतरमुपपादितमिति नात्र प्रपञ्च्यते । इदं चात्र वैषम्यनैर्घृण्यसूत्रवत् 'परप्रसिद्ध्या परो बोधनीयः'

रश्मिः ।

हेतुः । **अन्यत्रे**ति 'समाकर्षात्' 'असद्व्यपदेशात्' इत्यधिकरणयोः । **तत्रैवे**ति सूत्रभाष्य एव । **उदाहृतत्वा**दिति । यथा समाधिकरणे सर्वशब्दवाच्यत्वात्, तथा च भाष्यम् 'सर्वशब्दवाच्यत्वं तु सिद्धं ब्रह्मणः' इति । असद्व्यपदेशाधिकरणे 'असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुः' इति तदग्रे 'असद्वा इदमग्र आसीत्' इति तैत्तिरीये इत्युदाहृतम् । **प्रस्थाने**ति प्रस्थानान्तरं शंकरभाष्यप्रमेयं विद्वन्मण्डनप्रमेयं चेत्युभयं तदीयेत्यर्थः । **व्याख्याने**ति स्वोदितशंकराचार्योदितव्याख्यानस्य वैषम्यनैर्घृण्यसूत्रभाष्यवत् **सङ्ग्रहाय** । तत्रापि यो विशेषस्तं वक्तुं सूत्रार्थं प्रस्थानान्तरीयपक्ष आहुः **उक्तश्रुता**विति । **ब्रह्मकारणत्वे**ति कारणस्य कार्यनियतपूर्ववर्तित्वात् । **सत्कार्यवाद** इति सत्त्वं द्विविधं व्यावहारिकं पारमार्थं च तत्र व्यावहारिकं सोपाधि जन्यजगन्निष्ठम् । **श्रुती**ति तृतीयासमासः । **कार्यावस्थे**ति यथा घटे ध्वस्ते मृदः कार्यावस्था नास्तीति, तथा चायं विशेषस्तैर्विवर्तत्वस्वीकारात् । **अयमि**ति प्रतियोगिज्ञानरहितः । **निषेद्धु**मिति निषेधस्य प्रतियोगिज्ञानसापेक्षत्वादिति भावः । **कारणात्मने**ति यथा कटकं सुवर्णमिति सुवर्णात्मना **कार्यस्यात्मलाभः**। कारणानन्यत्वात्कार्यस्य । एवकारः स्वातन्त्र्यव्यवच्छेदकः। **स्थूल**मिति व्यवहार्यम् । **तद्दृष्टान्तेने**ति । सोपाधिकसमवायिकं जगत् असत् कृतकत्वात् आगन्तुकस्थूलकार्यवदित्यनुमानम् । **सत्त्वा**दिति । एतावत्पर्यन्तं शंकरभाष्योक्तं स्ववचोभिरुपनिबद्धम् । परंतु **परप्रसिद्ध्या परो बोधनीय** इत्यत्र बोधनीयांशस्य स्वकीयत्वात्स्वकीयविद्वन्मण्डनोक्तं किंचिदाहुः **न च तादृशे**ति । पूर्वस्मिन्पक्षे 'समाकर्षात्' इत्यधिकरणाद्धेतूक्तविशेषपीतरप्रयोजनाभावाद् द्वितीयस्यानुपादेयत्वात् । 'वैषम्यनैर्घृण्य' सूत्रे वस्तुतस्तु आत्मसृष्टेर्वैषम्यनैर्घृण्यसंभावनैव नास्तीत्यादिना पूर्वग्रन्थस्य वादिबोधनार्थत्वोक्तेरत्रापि तथात्वाय पक्षान्तरं वक्तुमाहुः **इदं चे**ति । **परे**ति । यथा सुखिनो दुःखिनश्च कुर्वन् विषमो निर्घृणश्च भवेदिति शङ्कमानं बोधयितुं तादृशकर्मानुरोधेन सुखदुःखे प्रयच्छतीत्युक्तम् । तथात्रासदित्यादिश्रुत्या सत्कारणतां शङ्कमानं प्रति प्रतिषेधार्थमेव

भाष्यप्रकाशः ।

इति न्यायेनोक्तम् । वस्तुतस्तु तत्र पूर्वानुवाके 'सोऽकामयत' इत्यादिना या सृष्टिरुक्ता तस्या असाधुत्वमत्र प्रतिपाद्यते । 'सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत् प्रयुज्यते' इति गीतावाक्येन सत्पदस्य साधुवाचकत्वे असत्पदस्यासाधुवाचकताया अपि युक्तत्वात् । अत एवात्र सुकृतत्वं ब्रह्मण उच्यते रसत्वं च । रसस्यानन्दरूपत्वं चेति सर्वं युज्यते । पूर्वोक्तायां तथात्वोक्त्यभावादिति दिक् । इदं च पुष्टिप्रवाहमर्यादायां फलाध्यायचतुर्थपादे च विवृतमिति

रश्मिः ।

वचनम् । एतावता 'असद्वा इदमग्र आसीत्' 'सदेव सौम्येदम्' इत्येवं भिन्नप्रस्थाने आम्नायते तत्र संशयः । यत्र लीनं तदसत्सदेति । तत्रासच्छ्रुतेः सर्वथानुपयोगाच्छ्रुतौ कारणत्वेनासदुक्तमिति पूर्वपक्षः । प्रतिषेधार्थमेव वचनमित्युत्तरमिति सिद्ध्यति । वस्तुतस्त्विति । अत्रैवं ज्ञेयम् । 'असदेव' इति । 'स आत्मान॰स्वयमकुरुत' इति श्रुत्योर्युक्तया विप्रतिषेधपरिहारोत्र हेतूक्त्यासत्पदस्यासमाकर्षात् तदर्थम् । तथा हि तैत्तिरीये 'सोकामयत बहु स्यां प्रजायेय' इति 'स तपोतप्यत स तपस्तप्त्वा इद॰सर्वमसृजत' इतीच्छालोचनपूर्विकां सृष्टिमुक्त्वा 'तदात्मान॰स्वयमकुरुत' इत्यात्मसृष्टिराम्नायते । मध्ये च 'असद्वा इदमग्र आसीत्' इति । अत्र संशयः । असदित्यनेन पूर्वसृष्टेरसत्त्वं प्रतिपाद्यते आहोस्विदसाधुत्वम् । तत्र 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत् सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्' इत्यनृतवचनादसत्त्वं प्रतिपाद्यत इति प्राप्तं तत् 'असदिति चेत्' इति सूत्रांशेनोक्तम् । इतः परं समाधीयते 'न प्रतिषेधमात्रत्वात्' इति । नात्रासत्त्वमुच्यतेपि तु 'सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते' इति गीतास्मृतेः सत्पदस्य साधुवाचकताया अपि युक्तत्वाद्वक्ष्यमाणात्मसृष्ट्यपेक्षया पूर्वानुवाकोदितायाः सृष्टेरसाधुत्वप्रतिषेधमात्रत्वादिति । एवं चात्रासत्पदस्य स्वार्थाःप्रच्यावनव्यतिरेकान्न समाकर्षसूत्रेण गतार्थतेति । न चैवं पूर्वसृष्टेरसत्त्वाभावः सिद्धान्तविरुद्ध इति शङ्क्यम् । 'नास्ति श्रुतिषु तद्वार्ता' इति निबन्धान्मायिकसृष्टिर्नास्त्येवेत्यत्र तात्पर्यात् । एवं चासती आत्मसृष्टेरसाध्वीति फलितम् । तदेतदुक्तं वस्तुतस्त्वित्यारभ्य युक्तत्वादित्यन्तेन । अत्रानृतमित्यान्तरालिकसृष्टिवार्ता नृसिंहतापिनीये च । सा तु न मायाद्वारा सृष्टिवार्ता । किं तु भेदस्याद्वैतविरुद्धत्वात् स मायाजन्य इति वार्ता । श्रुतावपि तारतम्यं प्रतीयत इत्याहुः अत एवेति । अत्र आत्मसृष्टौ । 'यद्वै तत् सुकृतम् । रसो वै सः रस॰ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति । को ह्येवान्यात्कः प्राण्याद्यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्' इत्यादिषु सुकृतत्वं रसत्वं तस्यानन्दत्वं चोच्यते तत्सर्वं युज्यते । सुकृतत्वं कार्यत्वम् । तथात्वोक्तीति किं तु 'सत्यमित्याचक्षते' इति ब्रह्मप्रवेशानन्तरं सत्यतामात्रोक्तिरिति भावः । दिगिति । तेन भाष्योक्ताविरुद्धयुक्तयोऽन्या अप्यनुसंधेयाः । इदानीं स्वोक्तेनादरणीयतामपनुदन्तः पूर्वोक्तस्याचार्याशयगोचरतां वदन्ति स्म इदं चेत्यादि वस्तुतस्त्वित्यादिनोक्तम् । पुष्टिप्रवाहेत्यादि 'इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान् हरिः । वचसा वेदमार्गं हि पुष्टिं कायेन निश्चयः' इति श्लोक उक्तम् । अर्थस्त्वेवम् । इच्छामात्रेणेति 'बहु स्यां प्रजायेय' इत्यादिश्रौतेनालोचनेनेत्यर्थः । तद्रूपोपि भगवानेव । स्वयं निमित्तीभूय मनआदिभिः समवायिभिः प्रवाहं ससर्ज । 'असतोधिमनोसृजत तद्वा इदं मनस्येव परमं प्रतिष्ठितम्' इति श्रुतेः मायाप्यत्र सहकारिणी 'मायेत्यसुराः' इति श्रुतेः 'स्वाव्यतिरिक्तानि' इति नृसिंहतापिनीयश्रुतेः । माया कदाचिद्भगवदिच्छया कर्त्र्यपि भवतीति 'सत्त्वं रजः' इत्यस्य सुबोधिन्यामुक्तम् । तथापि मूलकर्तृत्वं न हीयते ब्रह्मणः । अनुमानं च विमतः प्रपञ्चः

अपीतौ तद्वत्प्रसङ्गादसमञ्जसम् ॥ ८ ॥

पूर्वपक्षमाह। अपीतिर्लयः। कार्यस्य कारणलये तद्वत् प्रसङ्गः। स्थौल्यसावयवत्वपरिच्छिन्नत्वाशुद्धत्वादिधर्मसंबन्धावश्यकत्वादसमञ्जसं ब्रह्मकारणवचनम् ॥ ८ ॥

भाष्यप्रकाशः।

नात्र मत्कल्पनेति बोध्यम्। तथा सत्यस्मिन् पक्षे प्रतिषेधमात्रत्वादित्यस्य साधुत्वप्रतिषेधमात्रत्वादित्यर्थः संगृहीतो बोध्यः। तथा चासच्छब्दस्य स्वार्थाव्ययवनं यदि नेष्यते तदापि छान्दोग्ये असत्पदस्य निषेध्यपरत्वम्। तैत्तिरीये तु प्रपञ्चस्थूलावस्थाभावबोधनपरम्। प्रपञ्चविशेषस्यासाधुताबोधनपरत्वं वा। अतः समाकर्षाङ्गीकारेऽपि न ब्रह्मकारणताविरोध इत्यर्थः।

रामानुजाचार्यास्तु, न विलक्षणेति सूत्रोक्तयुक्त्या जगतो ब्रह्मवैलक्षण्ये ब्रह्मणोपि जगद्विलक्षणत्वात् तत उत्पन्नस्य जगतो द्रव्यान्तरत्वादसत एवोत्पत्तिः प्रसज्यत इत्येवमस्मिन् सूत्रे असदिति चेदिति भागेनाशङ्क्य, न प्रतिषेधमात्रत्वादिति भागेन परिहरति। 'दृश्यते तु' इत्यस्य पूर्वसूत्रस्य कार्यकारणयोः सालक्षण्यनियमनिषेधमात्रपरत्वाच्च कार्यस्य कारणाद् द्रव्यान्तरत्वम्। कृमिमक्षिकयोरिव वैलक्षण्याभावात् कुण्डलहिरण्ययोरिव द्रव्यैक्यसत्त्वादित्यर्थमाहुः ॥ ७ ॥

अपीतौ तद्वत्प्रसङ्गादसमञ्जसम् ॥ ८ ॥ पूर्वसूत्रेणासत्कारणवादं परिहृत्य श्रुत्यविरोधस्थापनाद् ब्रह्मकारणवादे स्थिरीकृते पुनस्तत्र युक्त्या प्रत्यवतिष्ठत इत्याशयेन सूत्रमवतारयन्ति पूर्वपक्षमाहेति। तथा च नेदमसद्वादनिरासकं सिद्धान्तसूत्रमित्यर्थः। व्याकुर्वन्ति अपीतिरित्यादि। असमञ्जसमिति सर्वज्ञत्वशुद्धत्वादिविघटत्वेनायुक्तम् ॥ ८ ॥

रश्मिः।

सत्यसृष्ट्युत्तरकालीनः मायामनोमयत्वात् स्वाप्निकैन्द्रजालिकवत्। वचसेत्यादि इदमुक्तं 'शब्द इति चेन्नातः प्रभवात्प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्' इत्यत्र। पुष्टिमित्यादि 'तदात्मान१स्वयमकुरुत' इति। फलाध्यायेति। 'जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसंनिहितत्वाच्च' इति सूत्रे 'लीलायाः कालमायाद्यतीतत्वेन प्राकृतं जगद्दूरतरम्' इति भाष्येण ब्राह्मत्वप्राकृतत्वाभ्यां जगद्भेद उक्त इत्यर्थः। आहुरिति। अस्माकं समन्वयसूत्रसिद्धम्। माध्वास्तु श्रौतमसन्मतमत्र निषिध्यते इत्याहुः। तत्र 'प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्' इति दोषः। भास्करभाष्ये तु शब्दस्पर्शादिहीनाद्ब्रह्मणः शब्दस्पर्शादिमत्कार्यं जायत इत्यादि रामानुजाचार्यवदाहुः। इदं सूत्रमिति वक्ष्यन्ति। 'रश्मौ' त्वधिकरणं रचितम्। अन्येप्यत्राधिकरणं रचयन्ति। 'असद्वा इदमग्र आसीत्' इत्यादिश्रुत्या समन्वयो बाध्यते न वेति संशये असतः कारणत्वोक्त्या सतो ब्रह्मणः कारणत्वासंभवात् ब्रह्मकारणताबोधकश्रुतीनां ब्रह्मणि समन्वयो बाध्यत इति पूर्वपक्षे 'कथमसतः सज्जायेत' इत्यादिश्रुत्या पूर्वोक्तवचनस्य निषेधार्थत्वात्समन्वयो न बाध्यत इति सिद्धमिति। अन्ये पुनर्न विलक्षणत्वाधिकरणं 'एतेन शिष्टापरिग्रह' सूत्रं मर्यादीकृत्याङ्गीकुर्वन्ति ॥ ७ ॥

अपीतौ तद्वत्प्रसङ्गादसमञ्जसम् ॥८॥ पूर्वसूत्रेणेति सूत्रेणासूत्रात्मकाधिकरणेन वा। सूत्रमिति सूत्रमधिकरणाङ्गं सूत्रं वा। असद्वादेति। असत्कारणवादो निराकृतोपि तदा स्थिरो भवेद्यदा ब्रह्मकारणवादः समञ्जसः स्यान्न त्वेवमित्येवं ब्रह्मकारणप्रतिपादकश्रुतिषु ब्रह्मकारणवचनं समञ्जसमाहोस्विदसमञ्जसमिति संशये पूर्वपक्षसूत्रं न तु सिद्धान्तसूत्रमित्यर्थः ॥ ८ ॥

१. निर्भयरामभट्टाः। २. शांकराः।

न तु दृष्टान्तभावात् ॥ ९ ॥

नैवास्मदीये दर्शने किंचिदसामञ्जस्यमस्तीति तुशब्देन परिहरति । स्वपक्षस्थापनपरपक्षनिराकरणयोर्विद्यमानत्वान्न तु वचनम् । तत उत्पन्नस्य तत्र लये न कार्यावस्थाधर्मसंबन्धः शरावरुचकादिषु प्रसिद्धः । भवतां परं न दृष्टान्तोऽस्ति ॥ ९ ॥

स्वपक्षदोषाच्च ॥ १० ॥

स्वपक्षे चैते प्रतिवादिनः साधारणा दोषाः । निर्विशेषात् प्रधानात्

भाष्यप्रकाशः ।

न तु दृष्टान्तभावात् ॥ ९ ॥ परिहारसूत्रमिदम् । व्याकुर्वन्ति नैवेत्यादि । न तु वचनमिति न तु इति पदद्वयकथनम् । लये नेत्यत्र, लये इति पदच्छेदः । अयमर्थः । ब्रह्मकारणवादे ये दोषाः कार्यप्रलयावस्थामादाय भवता प्रदर्शितास्ते कस्य कार्यस्य कस्मिन् कारणे लये दृष्टा अत्रापाद्यन्ते । लौकिक इति त्वसङ्गतम् । शरावादीनां मृदि लये परमाणुभावापत्तौ स्थौल्यसावयवत्वाद्यदर्शनात् । महापृथिवीरूपत्वे च परिच्छिन्नत्वाशुद्धत्वाद्यदर्शनात् । रुचककटकादीनां च सुवर्णे लये तददर्शनात् । प्रत्युत तैजसानां भाण्डानां मद्यादिसंबन्धेन दुष्टत्वेग्निसंबन्धात् तस्याकारस्य नाशनेन पुनः पूर्वभावसंपत्तौ निर्दोषता स्मर्यते । 'तैजसानां रेतोविण्मूत्रासृक्कुणपादिभिश्चाण्डालसूतिकोदक्यापतितादिभिश्चिरमुपहतानामावर्तनम्' इति । एवं मार्तिकानामपि मृद्भावे । 'वातोद्धूतं रजः शुचि' इति । अतो लोकविचारेऽस्माकं दृष्टान्ताः सन्ति, न भवतामिति ॥ ९ ॥

स्वपक्षदोषाच्च ॥ १० ॥ अथ शास्त्रीये कारणे दृष्टा इत्युच्यते तर्हि स्वगृहमन्वेषयित्वा ततो वक्तव्यम् । तत्रापि निर्विशेषात् प्रधानात् सविशेषस्य शब्दादिमत उत्पत्तेः कार्य-

रश्मिः ।

न तु दृष्टान्तभावात् ॥ ९ ॥ पदद्वयेति । स्वपक्षस्थापनं नञर्थः । ननु पूर्वपक्षत्वावच्छिन्नप्रतियोगिकाभावो नञर्थः । न तु पूर्वपक्षत्वावच्छिन्नतादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताको भेदोपि । स स्वपक्षस्थापनेपीति स्वपक्षस्थापनं भेदः तमोवन्न भावप्रतीतिर्बाधिका । भाष्ये स्वपक्षस्थापनं पूर्वपक्षभेदरूपं क्रियते इति । द्वितीयार्थः स्पष्टः । तथा च युक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारे सिद्धान्तनिरूपणम् । स्वपक्षस्थापनपूर्वकपरपक्षनिराकरणस्य निरूपणत्वात् गदाधर्याम् । अन्यत्र तु नकारमात्रप्रयोगे स्वपक्षस्थापनमात्रम् । पदद्वयमित्यत्र शक्तं पदम्, न तु सुप्तिङन्तं पदम्, सुपां सुलुका लुसत्वेन तन्निमित्ताङ्ककार्यस्याभावात् । रुचकेति रुचकं कण्ठभूषणम् । आदिपदेन कुण्डलम् । चकारेण दारवीयाणां तक्षणाद्यावर्तनम् । कुणपः शवः । आदिशब्देन मेदः । उदक्या रजस्वला स्त्री । पतितः अतिनिषिद्धकर्मकर्ता । आदिशब्देन महापराधिनो गुरुनिन्दकादयः अपराधनिरूपणे प्रसिद्धाः । शुचीति तदावर्तितानां शुचित्वम् । दृष्टान्ता इति तैजसदारवीयमार्तिकाः । भवतामिति असत्कारणवादिनाम् ॥ ९ ॥

स्वपक्षदोषाच्च ॥ १० ॥ एवं लौकिककारणे लये दृष्टान् दोषान्निवार्याथेति भिन्नप्रक्रमेण शास्त्रीये दृष्टान् वितण्डया वारयन्ति स्म अथेति । दृष्टा इति दोषा दृष्टा अत्रापाद्यन्ते । निर्विशेषादित्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति तत्रापीति प्रतिवादिनोपि । तस्योत्पत्तिरिति भाष्यं विवृण्वन्ति

सविशेषस्य कार्यता । तस्योत्पत्तिः । लये तद्धर्मसंबन्धः असत्कार्यवादप्रसङ्गः । तथैव कार्योत्पत्तौ कारणाभावेन नियमाभावः । भावे वा मुक्तानामपि पुनर्बन्धप्रसङ्गः ॥ १० ॥

भाष्यप्रकाशः ।

कारणयोर्विलक्षणत्वम्, कार्यस्योत्पत्तिर्न कारणस्येत्यपि । एवं विलक्षणकार्योत्पत्तावुत्पत्तेः पूर्वं तस्य वैलक्षण्यस्याभावादसत्कार्यवादप्रसङ्गः । सद्भावे च लयेऽपि कार्यधर्मसंबन्ध इति तद्वत्त्वप्रसङ्गः । किंच, सर्वेषामन्तिमकार्यपर्यन्तानां कार्याणां कारणे सत्त्वेन, एतदनन्तरमेतदुत्पत्स्यत इति तथैव कार्योत्पत्तौ तत्क्रमनियामककारणाभावेन क्रमनियमाभावः । अथ नियामककारणमन्तरेणैव नियमोऽभ्युपगम्यते तदा आकस्मिकवादप्रसङ्गः । अथ तत्रापि कारणसत्ताऽभ्युपगम्यते तदोत्पादनियामककारणसद्भावे तेनोत्पत्तिः कार्यैवेति मुक्तानामपि पुनर्बन्धप्रसङ्गः । कारणस्य साधारणत्वादिति । तदेतदुक्तं स्वपक्षे चैत इत्यादिना । तथा च दोषसाम्यान्न पर्यनुयोग उचित इत्यर्थः । यद्यपि प्रतिबन्देरनुत्तरत्वादिदं नोत्तरं तथापि पूर्वसूत्रेण निरस्तत्वाद् वादिनो बर्बरत्वनिवृत्तये उक्तं ज्ञेयम् ।

रश्मिः ।

कार्यस्येति । इत्यपीति सांख्यानां यथा प्रकृतिपुरुषयोरन्यत्सर्वमनित्यमिति तद्वत् । **किंच** लये धर्मसंबन्धाभावोपि दोषः इति, भाष्यार्थसमुच्चयेपिः । **असत्कार्ये**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति **एवं विलक्षणे**ति । **लय** इत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति **सद्भाव** इति । **तद्वत्त्वे**ति असतस्तद्धर्मवत्त्वप्रसङ्गः । **तथैवे**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति **किंचे**त्यादिना । भाष्ये दोषा विवृता **इति** स्वयमप्येकदोषमाहुः **अथ नियामके**ति । **आकस्मिके**ति चक्रचीवराद्यनन्तरं घटादिः तत्तद्बीजावापानन्तरं तत्तद्वृक्षाद्युत्पत्तिरिति क्रमनियमाभावेनाकस्मादेव दृष्टकार्योत्पत्तिः । तत्र युक्तिर्वटबीजादश्वत्थः स्यादिति कुतो न दृष्ट इति । अस्माकं तु 'नासतो विद्यते भावः' इति वाक्यम् । **भावे** वेत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अथ तत्रापी**ति । कार्येष्वपीत्यर्थः । **कारणानां** तत्त्वानां **सत्ता** 'नासतः' इति वाक्यादभ्युपगम्यते । **बन्धे**ति । तत्र हेतुः **कारणस्ये**ति । उत्पत्तिकारणस्य मुक्तामुक्तसाधारणत्वात् । न च मायानाशरूपोत्पत्तिप्रतिबन्धकसत्त्वान्न तत्प्रसङ्ग इति वाच्यम् । औडुलोमिमतेपि चिति लयान्मायासत्त्वात् । चिच्छक्तिर्मायेति द्वितीयनवमाध्यायसुबोधिन्याम् । न च सापि नष्टेति वाच्यम् । शक्तित्वविरोधात् । न च मोक्षे निःशक्तिः सेति वाच्यम् । 'न विप्रणाशः सर्वेषां कर्मणामिति निश्चयः । कर्मजानि शरीराणि तथैवाकृतयो नृप' इति सात्त्विकादिकर्मद्वारा मायासत्त्वात् । मम तु क्रीडावशगेच्छाभावान्न बन्धः । चिक्रीडिषायां तु जयविजयवद्बन्धो भवत्येव । **प्रतिबन्देरि**ति शंकरमिश्रकृतखण्डने । तुल्यो दोषः प्रतिबन्दिः । बन्दमते सर्वधातुभ्य इन्निति इन्, तस्येत्यर्थः । तर्हि अस्माकमपीमे दृष्टान्ताः सन्तु इति स्वीकुर्वन्तं प्रति तदभिप्रायमाहुः **यद्यपी**ति । 'स्वमतदोषवतापि' इति सूत्रेण परमते दोषेषु दत्तेषु 'न तु' इति सूत्रेणोद्धृतेषु नोत्तरत्वम् । 'यत्रोभयोः समो दोषः परिहारश्च तत्समः । नैकः पर्यनुयोक्तव्यस्तादृगर्थविचारणे' इति 'तर्काप्रतिष्ठान'सूत्रेण ज्ञातम् । अतः 'स्वपक्षदोषाच्च'इत्यनेनोभयपक्षदोषस्फुरणेन 'न तु' इति सूत्रवैयर्थ्यापातादिदं सूत्रं नोत्तरम् । **तथापि** व्यासप्रामाण्यं सूत्रं न पर्यनुयोगार्हमिति **पूर्वसूत्रेण निरस्तत्वात्** । **बर्बरत्वं** प्राकृतत्वम् । 'बर्बरः प्राकृतो जनः' इति उणादिद्वितीयपादे उक्तत्वात्तन्निवृत्तये । युक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारे व्याससूत्रादधिकव्याहारे

भाष्यप्रकाशः ।

रामानुजाचार्यास्तु ब्रह्मणश्चिदचिच्छरीरमङ्गीकृत्य भोगायतनत्वादीनि च शरीरलक्षणानि दूषयित्वा यस्य चेतनस्य यद् द्रव्यं सर्वात्मना स्वार्थे नियन्तुं धारयितुं च शक्यं तच्छेषतैकस्वभावं च तत् तस्य शरीरमिति लक्षयित्वा, 'अपीति'सूत्रोक्तस्य तद्वत्प्रसङ्गरूपस्य दूषणस्य चिदचिद्रूपे परब्रह्मशरीर एव संबन्धान्न ब्रह्मणि दोषसंबन्धः । ब्रह्मगतगुणानां च न शरीरे संबन्धः । यथा देवमनुष्यादीनां सशरीराणां क्षेत्रज्ञानां शरीरगता बालत्वयुवत्वस्थविरत्वादयो नात्मनि संबध्यन्ते, आत्मगताश्च ज्ञानसुखादयो न शरीरे तद्वदिति दृष्टान्तसूत्रे व्याकुर्वन्ति स्म । तच्चिन्त्यम् । 'सदेव सौम्येदमग्रे', 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' इत्यादिषु केवलं ब्रह्मैव प्रकृत्य सृष्टिकथनात्, 'तमः परे देव एकीभवति' इति शब्दान्तरेण प्रलयेऽपि तमसः स्वीयरूपत्यागेन ब्रह्मरूपताया एवोक्तत्वाच्च तेनैव रूपेण परिहारसंभवेऽस्यानुपयोगादिति । तच्चौरोऽप्येतेनैव प्रत्युक्तो ज्ञेयः ।

शंकराचार्यास्तु विवर्तवादमाश्रित्य कार्यस्यासत्त्वव्यवस्थापनेन दोषपरिहारं सिद्धान्तयन्ति । तदपि तदनन्यत्वाधिकरणे दूष्यम् ।

रश्मिः ।

प्राकृतत्वम् । 'बर्बरः पामरे केशविन्यासे' इति विश्वः । तथा च समदोषपरिहारौ यत्र, तत्र 'यत्रोभयोः समः' इति वाक्यानुसंधातुर्न बर्बरत्वमिति भावः । **चिदचिदि**ति अन्तर्यामिब्राह्मणेन । **दूषयित्वे**ति । इत्थमेतत् । भोगाधीनत्वं यदिच्छाधीनस्वरूपस्थितिप्रवृत्ति यत्तत् । यद्यदेकनियाम्यं यदेकधार्यं यस्यैव शेषभूतं तत् इत्येवं त्रिविधं शरीरलक्षणम् । ईश्वरशरीरेषु पृथिव्यादिषु 'स एकधा भवति' इत्याद्युक्तेषु मुक्तात्मशरीरेषु चाव्याप्तम् । कर्मफलभोगनिमित्तत्वाभावात्तेषामित्येवं दूषयित्वा । **लक्षयित्वे**ति । **सर्वात्मने**ति । मैत्रेयिब्राह्मणोक्तरीत्या स्वार्थं स्वकर्मफलभोगार्थं स्वार्थे 'पृथिवीमन्तरो यमयति' इति **नियन्तुम्** । 'यः पृथिव्यामन्तरः' इति **धारयितुम्** । 'यं पृथिवी न वेद' इति तच्छेषतैकस्वरूपम् । **शरीर**मिति । 'यस्य पृथिवी शरीरम्' इति श्रुतेः । **तद्वदि**ति कार्यधर्मवत्प्र**सङ्गरूपस्य** । **स्मे**ति । स्वपक्षदोषसूत्रे नोक्तम् । ननु 'सदेव' इति श्रुतावेवकारेणाहङ्कारनिवृत्तिरपि सा च द्वितीयस्कन्धनवमाध्यायोक्तेन 'वृतश्चतुःषोडश' इति श्लोकविरुद्धेति चेत्तत्राहुः **आत्मा वा** इति । **आत्मा** पुरुषविधब्राह्मणोक्तस्तत्र 'ततोहंनामाभवत्' इत्यहङ्कारसहित **एक** इति न श्लोकविरोधः । **केवलं** शरीररहितम् । ननु **विद्वन्मण्डने** कुलालदृष्टान्तेनेश्वरे शरीरसाधनान्नैवमिति शङ्क्यम् । वादिबोधार्थं तदुक्तेः । **तमः पर** इति । **तमोहङ्कारः** । अन्यथा 'प्रवर्तते यत्र रजस्तमः' इति वाक्यविरोधः । न च श्रुत्या पुराणबाधः । कृतस्थितिमतश्लोकत्वेनाबाधात् । वेदवेदान्तसारत्वाच्छ्रीभागवतस्य । छान्दोग्ये तु पुराणस्य वेदत्वमतः सुष्ठु । **शब्दान्तरेणे**ति । विलीयत इति शब्दादितरेणैकीभवतीत्यनेनेति व्याख्यातं पुरस्तात् । **तेनैवे**ति । पुरुषविधब्राह्मणोक्तेनैव श्रीभागवतोपष्टम्भाद् एवकारः । **परिहारे**ति तद्वत्प्रसङ्गस्य **परिहारसंभवे** । **अस्ये**ति असत्सूत्रे कार्याद् ब्रह्म कारणं विलक्षणं तर्हि ब्रह्मणि जगदभावादसदुत्पत्तिः । मैवम् । कार्यकारणयोः सालक्षण्यनियमप्रतिषेधमात्रत्वादिति व्याख्याय 'अपीति'सूत्रे वेदान्तासामञ्जस्यमुक्त्वा 'न तु' इति सूत्रे चिदचिज्जगतः शरीरत्वं स्थापितमस्यानुपयोगात् । **तच्चौर** इति भगवाञ्छैवाचार्यः । **प्रत्युक्त** इति अस्मदुक्तार्थेनैव तद्वत्प्रसङ्गस्य परिहारसंभवस्यानुपयोगात् । **विवर्ते**ति । तथा च भाष्यं यदि चेतनं शुद्धं

भाष्यप्रकाशः ।

माध्वास्तु तद्वत्पदे मतुपमङ्गीकृत्य, 'अपीति'सूत्रमप्यसद्वादनिरासकमिच्छन्ति । **यद्य-सदेव कारणं स्यादपीतिस्तद्वान् स्यात्** । असतः सकाशाज्जगदुत्पत्तावुपेतायां प्रलये असन्मात्रा-वशेषः प्रसज्येत । कार्यनाशे कारणमात्रावशेषनियमात् । अतोऽसमञ्जसमसन्मतमिति । दृष्टान्त-सूत्रे च, विप्रतिपन्ना उत्पत्तिः सतो भवितुमर्हति, उत्पत्तित्वात्, घटोत्पत्तिवदिति, विमतो विनाशः सदवशेषः, विनाशत्वात्, घटविनाशवदिति लोके दर्शनादसत्कारणवादस्यासमञ्जसत्व-

रश्मिः ।

शब्दादिहीनं च ब्रह्म तद्विपरीतस्याचेतनस्याशुद्धस्य शब्दादिमतश्च कार्यस्य कारणमिष्येत असत्तर्हि कार्यं प्रागुत्पत्तेरिति प्रसज्येत, अनिष्टं चैतत्सत्कार्यवादिनस्तवेत्याद्युक्त्वा यथैव हीदानीमिदं कार्यं कारणात्मनात्मवदेवं प्रागुत्पत्तेरपीति गम्यते । अग्रे न तु शब्दादिहीनं ब्रह्म जगतः कारण-मित्यादि 'अपीति'सूत्रे दोषाः । 'न तु' इत्यत्र सूत्रे सिद्धान्तयन्ति । स्वसिद्धान्तरीत्या व्याख्याय त्वत्पक्षस्य न कश्चिद्दृष्टान्तोस्तीत्यत्र सत्कार्यवादिनस्तव पक्षस्य न कश्चिद्दृष्टान्तोस्तीत्यर्थः । स्वपक्षसूत्र-व्याख्यानमप्यसद्भाष्यवत् । **माध्वमते** पूर्वसूत्रार्थो रश्मावुक्तः । **मतुपमिति** । तथा च भाष्यम् । **असत उत्पत्तौ** प्रलयेपि सर्वासत्त्वमेव स्यादिति । तथा च 'तद्वत्प्रसङ्गात्' इत्यस्यासत्त्ववत्प्रसङ्गादित्यर्थः । **अपीतिः** क्तिन्प्रत्ययान्तः । तत आहुः **तद्वानिति** । **आहुरिति** । अत्रापि **भाष्यम्** । सत उत्पत्तिः सशेषनाशश्च हि लोके दृष्ट इति । लोके दृष्टस्य दृष्टान्तत्वादनुमानम् । स्वपक्षसूत्रस्य तु दृष्टान्ताभावादित्येतावदेव भाष्यम् । अनुपयुक्तं नोक्तम् । **नानुमानत्वमिति** अनुमीयते साध्यपक्षावनुमितिविषयीक्रियेते येन हेतुनेति । यद्यपि व्याप्तिज्ञानं परामर्शश्चानुमाने । हेतुदर्शना-नन्तरं तयोर्जायमानत्वात्तथाप्यनुमानशक्यतावच्छेदकलाघवात्प्रौढिमात्रम् । यद्वा हेतुनिष्ठा व्याप्ति-रनुमानं तदज्ञातमप्रयोजकमिति व्याप्तिज्ञानमनुमानत्वम् । ज्ञायमाना व्याप्तिरनुमितिजनिकेति ज्ञानं विषयतासंबन्धेन विशेषणम् । यद्वा । **सदवशेषः विनाशत्वात्** । इत्यत्र परमाणुसंबन्धाभावात् । विनाशत्ववान् । सदवशेषात् इत्यत्र परमाणुसंबन्धसत्त्वात् । विनाशस्य व्यापकत्वेन परमाण्वधिकरणत्वेन परमाणुविशेष्यत्वं परमाणुमान् विनाश इति प्रतीतेस्तत्र विनाशत्वसत्त्वेन विशेषणत्वात् परमाणुविशेष्यविशेषणत्वं संबन्धः । अनौपाधिकत्वं व्याप्तिः । अनौपाधिकत्वं हेतुमात्रसापेक्षम् । न च साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमुपाधिः स च साध्यसापेक्ष इति वाच्यम् । घटत्वादावतिव्याप्तिवारणाय विशेषणदानात्तस्य साध्यधर्मत्वाभावेन हेतुमात्र-धर्मत्वात् । न च **प्रस्थानरत्नाकरे** सांख्यलक्षणमादृत्य नैतदुक्तमिति नैतल्लक्षणमिति वाच्यम् । अनु-मानखण्ड एव 'एवं प्रत्यक्षबोधाय प्रत्यक्षं सुनिरूपितम् । अनुमाने त्वितरवन्न विशेषोस्ति कश्चन' इति । 'तथापि बालबोधाय प्रक्रान्तस्यापि पूर्तये । प्रक्रियां कांचिदाश्रित्य तत्स्वरूपं निरूप्यते' इति अनास्थापूर्वकबालबोधार्थत्वोक्तेरस्य लक्षणस्य प्रौढिबोधनात् । तथा च विनाशत्ववान् सदवशेष-त्वात् इत्यत्र साध्यं विनाशत्वं तेन सह परमाणुविशेष्यविशेषणाभावः संबन्धः । धूमवान्वह्ने-रित्यत्र यथार्द्रेन्धनसंयोगः । ततश्च यत्र यत्र परमाणुसंबन्धस्तत्र तत्र विनाशत्वमिति साध्यव्या-पकत्वम् । साध्यसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वलक्षणसाध्यव्यापकता । तथाहि । साध्यं विनाशत्वं तदधिकरणं जगत्प्रतियोगिको विनाशः तत्र वृत्तियो भावः परमाणुसंबन्धातिरिक्त-स्वभावः । आर्द्रेन्धनसंयोगे सति धूमः । एवं परमाणुसंबन्धे सति विनाशत्वं यतः अतो घटाद्य-

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यविमोक्षप्रसङ्गः ॥ ११ ॥

वेदोक्तेऽर्थे शुष्कतर्केण प्रत्यवस्थानमयुक्तम् । तर्कस्याप्रतिष्ठानात् । तर्को नाम स्वोत्प्रेक्षिता युक्तिः । सा एकोक्ता नान्यैरङ्गीक्रियते । स्वतन्त्राणामृषीणां मति-

---

भाष्यप्रकाशः ।

माहुः । तत्रापि विनाशत्वस्य नानुमानत्वम् । न सदवशेषः । जलविनाशवदिति दृष्टान्तेन हेतोः साधारणत्वादिति ।

भिक्षुस्तु यथा असतः सदुत्पत्तिर्न संभवति तथा सतोऽपि सदुत्पत्तिर्न संभवति । कुतः । अपीतौ कारणवत् कार्यस्यापि विद्यमानत्वप्रसङ्गादिति पूर्वपक्षम्, 'अपीति'सूत्रे व्याख्याय, 'न तु' इति सूत्रे सतः सदुत्पत्तौ मृद्घटादेर्दृष्टान्तस्य विद्यमानत्वादिति सिद्धान्तं व्याचख्यौ । तदपि शिथिलम् । सतो मृदादेरविद्यमानस्यैव घटादेरुत्पत्तिदर्शनेन सतः सदुत्पत्तेरुपपादन-सापेक्षत्वादिति ॥ १० ॥

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यविमोक्षप्रसङ्गः ॥ ११ ॥ सूत्राक्षरैरेव सांख्योक्त्या किंचिदाशङ्क्य परिहरतीत्याशयेन सूत्रं पठित्वा व्याचक्षते **वेदोक्त** इत्यादि वेदोक्तेऽर्थे शुष्कतर्कैः कार्यवैलक्षण्यकार्यधर्मवत्त्वप्रसङ्गादिभिः **प्रत्यवस्थानमयुक्तम्** । कुतः **तर्कस्याप्रतिष्ठानात्** । **तर्को नाम स्वोत्प्रेक्षिता युक्तिः** । **सा एकोक्ता नान्यैरङ्गीक्रियते** । वक्तृभिश्चार्यां तत्तदुक्तास्तर्काः परस्परमाभासीक्रियन्ते । **स्वतन्त्राणामृषीणां**

रश्मिः ।

भावस्तत्प्रतियोगिघटादिरप्रतियोगिपरमाणुसंबन्ध इति । साधनवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं साधनाव्यापकत्वम् । तदित्थम् । साधनं सदवशेषत्वं तद्वती प्रकृतिः तन्निष्ठो योत्यन्ताभावः परमाणुसंबन्धाभावस्तत्प्रतियोगित्वं परमाणुसंबन्ध इति । **न सदवशेष** इति । न सदवशेषः विनाशत्वात् **जलविनाशवदि**त्येव । **हेतो**रिति साधारणत्वं साध्यासाधकत्वम् । अप्रयोजकत्वं विरुद्धत्वमिति यावत् । 'साध्याभावव्याप्तो हेतुर्विरुद्धः' इति तल्लक्षणात् । **भिक्षुस्त्वि**ति भगवान्भिक्षुः । **अविद्यमानस्यैवे**ति । 'नासतो विद्यते भावः' इत्युक्तयुक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारेऽप्रवृत्तिरिति । न हि दृष्टेनुपपन्नं नाम व्याघातादेचकारः । **भास्कराचार्या**स्तु भेदाभेदार्थमुक्तप्रकारेणाहुः पुस्तकमशुद्धमित्युपरम्यतेस्माभिः ॥ १० ॥

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यविमोक्षप्रसङ्गः ॥ ११ ॥ सांख्योक्त्येति वक्ष्यमाणश्वेताश्वतरश्रुत्यनुगृहीततर्काद्यक्षरैः सांख्योक्तिः । **पठित्वे**ति सर्वभाष्यसंमत्या कण्ठस्थत्वेपि पठित्वा । चिकीर्षितस्य मुख्यत्वादन्यथा तर्कनिरूपणे 'तर्क'सूत्रे प्रतीकमात्रं लिपिकृतं स्यात् । **वेदोक्तेर्थ** इति ब्रह्मणः समवायित्वे । **प्रत्यवे**ति प्रतिकूलम**वस्थानम्** । **स्वोत्प्रेक्षिते**ति । ननु वेदान्ते स्वोत्प्रेक्षायाः किं प्रयोजनमिति चेन्न । 'तर्को मीमांसया युतः' इति श्रीमदाचार्योक्तेः प्रथमाध्यायमीमांसानन्तरं तर्कस्य स्वोत्प्रेक्षितयुक्त्यात्मकस्य युक्तत्वात् । न चामीमांसात्वप्रसङ्गोस्येति वाच्यम् । वक्ष्यमाण 'मत्वा' इत्यनेन 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यः' इति श्रुत्या च युक्तिभिरनुचिन्तनरूपमननस्य विधानादस्यार्थस्य मीमांसात्वात् । **वक्तृभि**रित्याचार्यैर्ऋषिभिश्च ।

भेदाद् वस्तुनो द्वैरूप्यासंभवान्नियामकाभावाच्च । अतो न तर्कस्य प्रतिष्ठा । पूर्वपक्षिणः परिहारः । अप्यन्यथाऽनुमेयमितिचेत् । एवमपि अन्यथा वयमनुमास्यामहे । यथा नाप्रतिष्ठादोषो भविष्यति । न हि कोऽपि तर्कः प्रतिष्ठितो नास्तीति वक्तुं शक्यते । व्यवहारोच्छेदप्रसङ्गात् ।

'आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना ।
यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः' ॥ इति स्मृतेः ॥

सावद्यतर्कपरिहारेण निरवद्यस्तर्कः प्रतिपत्तव्यो भवतीतिचेद्, एवमप्यविमोक्षप्रसङ्गः । ब्रह्मवादिनो निरवद्यतर्कसद्भावेऽपि प्रकृतिवादिनस्तर्कस्य दोषाविमोक्षप्रसङ्गः । मूलनियमाभावाद् वैमत्यस्य विद्यमानत्वात् ॥ ११ ॥

इति द्वितीयाध्याये प्रथमपादे पञ्चममसत्प्रतिषेधाधिकरणम् ॥ ५ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

मतिभेदात् । विवादविषयस्यैकस्य वस्तुनो युक्तिमात्रेण द्वैरूप्यस्यासंभवात् । लोकस्य वैचित्र्येणोभयोर्वादिनोर्दृष्टान्तसौलभ्ये एकतरयुक्तिनियामकस्य हेतोरभावाच्च । अतो महर्ष्युक्तत्वाद्धेतोर्न तर्कस्य प्रतिष्ठा । पूर्वपक्षिणः परिहारस्तस्मादित्यस्मान् प्रतिब्रवीषि तदा अप्यन्यथानुमेयमितिचेद् एवमपि वयमन्यथानुमास्यामहे, यथा तर्काप्रतिष्ठादोषो न भवति । तत्र हेतुः न हीत्यादि । तत्रापि हेतुद्वयं व्यवहारेत्यादि स्मृतेरित्यन्तम् । तेन सिद्धं तु, सावद्येत्यादि चेदित्यन्तम् । तथा च, प्रधानं जगदुपादानकारणम् । तत्सलक्षणत्वात् पटसलक्षणतन्तुवदित्यनुमानं निरवद्यम् । 'प्रधानाज्जगज्जायत' इति सांख्यसूत्रोक्तश्रुत्या, 'यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतः' इति श्वेताश्वतरश्रुत्या चानुगृहीतत्वादिति चेदेवं सांख्योक्तमनूद्य परिहरन्ति एवमपीत्यादिना । तथा च त्वया या श्वेताश्वतरश्रुतिस्तर्कानुग्राहकतयोक्ता सा प्रकरणावरुद्धा । तत्र हि प्रथमेऽध्याये, 'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्' इति भोक्तृभोग्ययोरपि ब्रह्मत्वश्रावणेन भोग्यस्य प्रधानस्य ब्रह्मरूपत्वेनैव सिद्धत्वात् । पञ्चमाध्याये च, 'तद् वेदगुह्योपनिषत्सु गूढं तद् ब्रह्मा वेदते ब्रह्मयोनिम्' इति ब्रह्मण एव योनित्वश्रावणात् । एवं, 'प्रधानाज्जगज्जायते' इत्यत्रापि प्रधानं ब्रह्मकार्यमेव बोध्यम् । संदिग्धस्य वाक्यस्याप्यसंदिग्धेनैव निर्णयस्य युक्तत्वात् । इदं च, 'योनिश्च हि

रश्मिः ।

वस्तुन इत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति विवादेति । वस्तुन इति धर्मादेर्ब्रह्मणश्च । नियामकेत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म लोकस्येति । अत इत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति अत इति, प्रतिष्ठेति प्रतिष्ठानम्, तस्मात्पूर्वपक्षिणः परिहारः पूर्वसूत्रोक्ततुल्यदोषरूपः इत्यस्मान्प्रति ब्रवीषीत्यर्थः । यद्वा । तर्काप्रतिष्ठानं अतति व्याप्नोतीति तर्काप्रतिष्ठानात् । कोऽततीत्यत्राहुः पूर्वपक्षिणः परिहार इति भाष्ये । अप्यन्यथानुमेयमिति सूत्रांशविवरणभाष्यं विवृण्वन्ति स्म तदाप्यन्यथेति अस्माभिः । तदापीत्यादेर्विवरणं क्रियते एवमपीति । वयमिति प्रतिवादिनः । गुह्योपनिषत्स्विति कृष्णोपनिषदादिषु । 'गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये' इति वाक्याद् गूढमिति कृष्णाख्यम् । वेदत इति छान्दसं वेत्तीत्यर्थः । संदिग्धस्येति 'तदात्मानꣴस्वयमकुरुत' इति श्रुत्या संदिग्धस्य प्रधानकारण-

एतेन शिष्टापरिग्रहा अपि व्याख्याताः ॥ १२ ॥ (२-१-६)

सांख्यमतकेस्य वैदिकप्रत्यासन्नत्वात् केषाञ्चिच्छिष्टानां परिग्रहोप्यस्ति । अणुमायाकारणवादास्तु सर्वथा न शिष्टैः परिगृह्यन्त इति तेषां तर्काः पूर्वोक्त-

भाष्यप्रकाशः ।

गीयते' इति प्रथमाध्याय एव दत्तोत्तरम् । अतः प्रकृतिवादिनो मूलनियमाद्यभावात् तत्तर्कस्याप्रतिष्ठादोषादविमोक्षस्यैव प्रसङ्ग इत्यर्थः ।

रामानुजाचार्यास्तु, 'तर्काप्रतिष्ठानादपि'इति सूत्रं भिन्नं कुर्वन्ति । तदा लापनसौकर्यं गुणः । हेतोः सिद्धान्तकोटिप्रवेशात् । तथापि पूर्वसूत्रस्थचकारवैयर्थ्यं दोषः । चकारार्थस्यात्रत्य 'अपि'शब्देन संग्रहादिति ॥ ११ ॥ **इति पञ्चममसत्प्रतिषेधाधिकरणम् ॥ ५ ॥**

एतेन शिष्टापरिग्रहा अपि व्याख्याताः ॥ १२ ॥ तर्काप्रतिष्ठानदोषमन्येष्वपि बोधयँस्तत्रापि परिहारमतिदिशति एतेनेत्यादि । तद् व्याचक्षते सांख्येत्यादि । पूर्वोक्त-

रश्मिः ।

बोधकस्य 'प्रधानाज्जगज्जायते' इति श्रुतिवाक्यस्य 'भोक्ता भोग्यम्' इति 'तद्वेद' इति वाक्याभ्यां निर्णययोग्यत्वादित्यर्थः । **चकारेति** । अयमर्थः । 'मात्रालाघवे वैयाकरणाः पुत्रोत्सवं मन्यन्ते' इति चकारोन्यार्थसमुच्चायकोपि न वक्तव्योपिशब्देन चारितार्थ्यादिति । अन्यानि तु भाष्याणि नातिविरुद्धानीति नोक्तानि । **शांकरभाष्ये** चेतनं ब्रह्म जगतः कारणं प्रकृतिश्चेति सिद्धम् । तत्र प्रकृतिः ओंकार इति शब्दार्थाभेदः । माया न प्रकृतिर्नापि तत्र प्रतिबिम्बः । न चैवं जगत्कर्त्री शक्तिः सदानन्दस्य न सच्चिदानन्दस्येति वाच्यम् । नवीनभावजनकत्वादिकथनात्प्रेक्षश्रितायाः ग्रहणात् । अतः शुद्धा चित् कारणम् । **रामानुजमतमुक्तम्** । **माध्वमते** तु 'तर्काप्रतिष्ठाने' मोक्षतर्काप्रतिष्ठाने मोक्षाभावप्रसङ्गः । स्वमते तु विशब्दात्प्रकृतिवादिन इत्यादिग्रन्थोधिकः । **भास्कराचार्यमते** प्रधानकारणत्वमाशङ्क्य एवमपि प्रधानकारणत्वेप्यनवस्थादोषादनिर्मोक्षस्तर्काणामतः श्रुतिमूलमेव जगद्धि जीवधारणमिति स्थितमित्याहुः । तत्र तर्कमोचने मननश्रुतिविरोधः । तत्रैव 'यस्मिन् पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः । तमेवमन्य आत्मानं विद्वान्ब्रह्मामृतोमृतम्' इति श्रूयते । अत्र पञ्चमहाभूतानां ब्रह्माहं प्रपद्ये इत्युक्तोर्थः प्रतीयते । पञ्च ब्रह्माणि एकं स्वरूपलक्षणे लक्षितमिति श्रुतिविप्रतिषेधस्तस्य परिहारः शिष्टापरिग्रहात् पञ्चत्वस्य । शिष्टापरिग्रहस्तु 'तं एवं अन्ये इति पदच्छेदस्यापि संभवात् । अत एव 'न संख्योपसंग्रह'सूत्रे भाष्ये सांख्यमतसंख्यावारकत्वेनैव व्याख्याता श्रुतिः । न च शारीरकमीमांसायां शारीरब्राह्मणोक्तं शिष्टापरिगृहीतमिति प्रवक्तुं शक्यमिति वाच्यम् । **गीता**त्रयोदशाध्याये 'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि' इत्युक्तं ज्ञेयमप्युक्तम् । तत्र क्षेत्रज्ञं चापीति पक्षः शिष्टापरिगृहीत इति गीतोपबृंहणात्तदपढौकनेन ब्रह्मवादौचित्यात् । अत्र समन्वयो विषयः सदसतोः कारणतोक्त्या विसंवादात्कार्यप्रतिपादकानां समन्वयोस्ति न वेति संशयः नास्तीति पूर्वपक्षेभिधीयते । **अस्तीति** सिद्धान्तः । श्रुतिविरोधपरिहारात् ॥ ११ ॥

इति पञ्चममसत्प्रतिषेधाधिकरणम् ॥ ५ ॥

एतेन शिष्टापरिग्रहा अपि व्याख्याताः ॥ १२ ॥ बोधयन्निति सूत्रकृत् । **अतिदिशतीति** निरस्ता इत्यनुक्त्वा व्याख्याता इत्युक्त्यातिदिशति । व्याख्यानाभावे सर्ववादानवसरत्वं न तु नानावादानुरोधित्वं स्यात् । भाष्येनिरस्तपरिग्रहशब्दाभ्यां सिद्धार्थमाहुः यद्यपीति । **औलूक** इति

न्यायेन सुतरामेव निरस्ता वेदितव्याः ॥ १२ ॥

इति द्वितीयाध्याये प्रथमपादे षष्ठं शिष्टापरिग्रहाधिकरणम् ॥ ६ ॥

भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत् स्याल्लोकवत् ॥ १३ ॥ (२-१-७)

कारणदोषं परिहृत्य कार्यदोषपरिहारार्थमारम्भः । भोग्यस्य भोक्त्रापत्तिः ।

भाष्यप्रकाशः ।

न्यायेनेति मूलनियमाभावपरस्परवैसंमत्यप्रयुक्तेन तर्काप्रतिष्ठानरूपेण न्यायेन । यद्यपि, 'अक्षपाद-प्रणीते च काणादे सांख्ययोगयोः । त्याज्यः श्रुतिविरुद्धोंऽशः श्रुत्येकशरणैर्नृभिः । जैमिनीये च वैयासे न विरोधोऽस्ति कश्चन' इति पराशरोपपुराणवाक्याज्जैमिनीयान्तेषु किंचिदंशविरोधस्तु-ल्यस्तथापि गौतमीये, औलूके, मायिके च दर्शने शिष्टाऽपरिग्रहोऽधिक इत्यनास्थातः पश्चात् तद्दूषणमित्यर्थः । इदं च केवलं सूत्रमेव, नाधिकरणम् । विषयादेरस्फुटत्वाद्विचाराभावाच्च । एवं च पूर्वाधिकरणेनैतत्सूत्रेण च समाकर्षसूत्रोक्तप्रतिकूलानां तर्काणां पराहत्या ब्रह्मणः कारणत्वं दृढीकृतम् ॥ १२ ॥ इति षष्ठं शिष्टापरिग्रहाधिकरणम् ॥ ६ ॥

भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत् स्याल्लोकवत् ॥ १३ ॥ पूर्वोक्तयुक्तिभिः परिहृते श्रुतिवि-प्रतिषेधे, अस्य सूत्रस्य किं प्रयोजनमित्याकाङ्क्षायां तदाहुः कारणेत्यादि । 'दृश्यते तु' इत्यनेन वैलक्षण्यम्, प्रतिषेधमात्रत्वादित्यनेनासत्कारणवादापत्तिम्, दृष्टान्तसद्भावादसामञ्जस्यम्, 'तर्का-प्रतिष्ठानाद्' अन्यानप्युत्प्रेक्षिष्यमाणान् कारणदोषान् परिहृत्य उत्प्रेक्ष्यमाणस्य कार्यदोषस्य परिहारार्थं सूत्रारम्भ इत्यर्थः । एवमग्रिमाधिकरणत्रयेऽपि बोध्यम् । सूत्रं व्याकुर्वन्ति भोग्यस्ये-

रश्मिः ।

उलूकरूपिणः काणादेर्भवः 'तत्र भव' इत्यण् शास्त्रस्य विचारदशायां कर्तुरधिकरणत्वम् । हेमचन्द्रो नाममालायां 'वैशेषिकः स्यादौलूकः' इति । 'उलूकादयश्च' इत्युणादिसूत्रेण वलेः संप्रसारणमूकश्च । **अधिक** इति । यथा सांख्ये 'असङ्गः पुरुषः' । 'प्रधानाज्जगज्जायते' इति । **अणुवाद** आत्माष्टगुणः कर्ता । **परमाणवः** प्रधानस्थानापन्नाः रूपादिकं प्रति घटादयः । मायावादे प्रधानस्थाने माया तत्र प्रतिबिम्ब ईश्वरे सङ्गस्य **अणुशब्देन** बृहदारण्यकोक्तं काठकोक्तं च ब्रह्मापि । शिष्टापरिग्रहादियदवधि । शारी-रब्राह्मणे जीवानां शरीरेभ्य उद्गमानन्तरं श्रूयते 'स वा अयमात्मा ब्रह्म' इति श्रावणात् 'आनन्दादयः प्रधानस्य' इत्यत्र व्यापकत्वाङ्गीकारात् श्रुतिविप्रतिषेधः । परिहारस्तु शिष्टापरिग्रहात्तस्य । शिष्टापरिग्रहस्तु अर्धप्रपाठके उक्तत्वेन तस्य वादस्य परिच्छेदात् । याज्ञवल्क्यमात्रविदितत्वाच्च वित्तोमयैवेति श्रुतेः एते उक्तेभ्योन्ये सकलत्याज्या न तु श्रुतिविरुद्धांशत्याजकाः । **पाद्मे** गुणत्रयविवरणाध्याये तथोक्तेरिति शिष्टापरिग्रहोधिक इत्यर्थः । **पश्चादिति** सांख्यमतदूषणात्पश्चात् । एवकारव्यावर्त्यमाहुः **नाधि-करणमिति** । एतेनास्मत्पूर्वतन्त्रे सायणीये च उपस्थेयोमिर्नोपस्थेय इत्यादिप्रकारेण संशयत्रिकोक्तिरपि न सार्वत्रिकीति ज्ञापितम् । अत एव भाष्ये पूर्वाध्यायेधिकरणशब्दो नात्र । **चेति** अनुक्तसमुच्चये । यद्वा पूर्वाधिकरणस्य शेषमिदम् । शांकरैरधिकरणत्वाङ्गीकारात् । तथाहि । ते ब्रह्मकारणबोधको वेदान्त-समन्वयस्तावद्ब्रह्म न जगदुपादानं विशुद्धत्वाद्व्योमवदित्यनेन गौतमीयानुमानेन विरुध्यते न वेति संशये-नुमानस्याशिथिलत्वाद्विरुध्यत इति पूर्वपक्षे तर्कस्य श्रुतिविरुद्धत्वादणुकारणवादा निरस्ता इत्याहुः । स्वयमेव वक्ष्यन्ति चोत्तरत्र सूत्रत्वमुक्त्वाधिकरणत्वम् ॥१२॥ **इति षष्ठं शिष्टापरिग्रहाधिकरणम्** ॥६॥

भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत् स्याल्लोकवत् ॥ १३ ॥ **सूत्रारम्भ** इति अधिकरणात्मकः सूत्रारम्भः । **आरम्भशब्दो** ह्यधिकरणशब्देन समं पूर्वाध्याये भूयोत्रोपादीयत इति । **भाष्य**

ब्रह्मणो निर्विशेषस्य कारणत्वाद् भोक्तुर्भोग्यत्वम्, भोग्यस्य च भोक्तृत्वमापद्यते । अतो न विभाग इतिचेत् स्याल्लोकवत् ।

भाष्यप्रकाशः ।

त्यादि । भोक्त्रापत्तेरिति भावप्रधानो निर्देशः । भोक्तृत्वापत्तेरित्यर्थः । अत्रैवं बोध्यम् । तैत्तिरीये 'सोऽकामयत' इति चेतनं ब्रह्म प्रकृत्य ततः सृष्टिमुक्त्वा तन्तुन्यायेन तदनुप्रवेशाद् 'विज्ञानं चाविज्ञानं च' इति कार्यविभागो दर्शितः । स युज्यते न वेति संदेहे, स न युज्यते । यतः 'अशब्दमस्पर्शम्' इति 'अस्थूलमनणु' इत्यादिश्रुतिभ्यो लौकिकविशेषरहितस्य ब्रह्मणः कारणत्वात् कार्यस्य लयदशायां भोक्तृभोग्यभावकृतपरस्परविभागस्य निवृत्तिपूर्वकं कारणात्मकतासंपत्तौ सर्वथा तथात्वे जाते ततः पुनरुत्पत्तौ स्थितिदशायां भोक्तुश्चेतनस्य भोग्यत्वं स्रक्चन्दनादिरूपत्वं भोग्यस्य तस्य भोक्तृत्वं चेतनत्वमापद्येत,

रश्मिः ।

आरम्भशब्दस्य सूत्राधिकरणोभयसापेक्षत्वात्सूत्रारम्भ इत्युक्त्वावश्यवक्तव्यत्वादधिकरणत्वं विशदयन्ति **अत्रैवं बोध्यमिति** । **चेतनमिति** 'ॐसोऽकामयत' इति ह्युक्त्योङ्कारेण वेदविधानं स्यादत 'ॐसोऽकामयत' इत्युक्त्या चेतनमित्यर्थः । **तन्तुन्यायेनेति** पटे तन्तुन्यायेन । ननु तर्हि 'असत्' अधिकरणव्यवधानमिति चेन्न, तस्याः कार्यप्रतिपादिकात्वेन कार्यनिरूपक 'भोक्त्रा पत्ति'सूत्रविषयत्वात् कारणं निर्वाहकसङ्गत्याऽसदधिकरणेनोक्तावसरसङ्गत्यात्र संशय्यत इति । नन्वत्र शांकरोक्तः जगत्सर्गादि ब्रुवन्वेदान्तसमन्वयो विषयः, स प्रत्यक्षादिना विरुद्धो न वेति संदेहः कुतो नेति चेन्न श्रुत्योर्विप्रतिषेधाभावेन तत्परिहाराभावात् । न च वेदान्ताः श्रुतिः प्रत्यक्षादिश्रुतिर्बृहदारण्यके 'यदिदानीं द्वौ विवदमानावेयातामहमद्राक्षमहमश्रौषमिति य एवं ब्रूयादहमद्राक्षमिति तस्मा एव श्रद्ध्यामः' इत्येवं तयोर्विप्रतिषेधस्तस्य प्रतिषेधमङ्गीकृत्य श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारोऽस्त्विति वाच्यम् । उभयोः प्रत्यक्षत्वेन विप्रतिषेधाभावेन परिहाराविषयत्वात् । **अस्थूलमनण्वित्यादीति** । **आदिशब्देन** शारीरब्राह्मणे 'अणुः पन्था विततः पुराणो मां स्पृष्टोऽनु वित्तो मयैव । तेन धीरा अपियन्ति ब्रह्मविद उत्क्रम्य स्वर्गं लोकमितो विमुक्ताः' इत्याद्युक्त्वाग्रे उच्यते । 'यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्मा अस्मिन्संदेहे गहने प्रविष्टः । स विश्वकृत्स हि सर्वस्य कर्ता तस्य लोकः स उ लोक एव' इति । अणुः **काठकोक्तब्रह्म** यथा ऊसः सुः । अणोः पन्थाः यथा भगवन्मार्गः । मां याज्ञवल्क्यम् । येन वित्तो ज्ञातोनु गुरूपसत्तिमनु । प्रतिनिधिरणुः अणुत्वेन साक्षात्कृतः । संदेहे सम्यग् देहे गहने आध्यात्मिकाद्यनेकार्थसङ्कीर्णत्वाद्देहे । स प्रविष्टः तस्येति प्रविष्टस्य लोको जीवः स जीवः लोक एव अक्षरत्वात् । याज्ञवल्क्यमतं गृह्यतेऽग्रे 'यस्मिन् पञ्च पञ्चजना' इति श्रुतिः सा भाष्ये व्याकृता । पञ्च भूतानि पञ्चजना यस्मिन्, यस्मिन् भूते पञ्च प्रजा जनयन्ति ते हृदाकाशश्च प्रतिष्ठित इत्याद्यृषिमतं याज्ञवल्क्यं वा । 'ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्' इति **गीतायाः** । तदग्रे 'यस्मादर्वाक् संवत्सरो अहोभिः परिवर्तते तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम्' इति देवानामृषिमतम् । यस्मादग्नेरर्वाक् संवत्सरः आधिभौतिकः । 'अग्निः संवत्सरः प्रजापतिः' इति संहितामतं **श्रीमदाचार्याणाम्** । 'कालात्मा भगवान् जातः' इति कारिकायाः आयुष्ट्वेनान्नत्वेनोपासनमृषिमतम् । 'प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो ये मनो विदुः ते निचिक्युर्ब्रह्म पुराणमग्र्यम्' इत्यृषिमतम् । 'मनसैवानुद्रष्टव्यं नेह नानास्ति किंचन' अर्धप्रपाठकः । **लौकिकेति** प्रक्षालनपङ्कन्यायविरोधेन लौकिकेति विशेषणम् । आदिपदार्थः श्रुत्यन्तरमतानि यदि तदा न विशेषणं लौकिकेति । तदा भाष्यं निर्विशेषस्य कारणत्वाद् इति यथा श्रुतम् । **तथात्व** इति अशब्दादिरूपत्वे ।

यथा लोके कटककुण्डलादीनां सुवर्णकारणत्वेन सुवर्णानन्यत्वेऽपि न कटकस्य कुण्डलत्वमेवं न भोग्यस्य भोक्तृत्वम् ॥ १३ ॥

इति द्वितीयाध्याये प्रथमपादे सप्तमं भोक्त्रापत्तेरित्यधिकरणम् ॥ ७ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

यथा लोके कटककुण्डलादेरुपमर्देन सुवर्णरूपतापत्तौ पुनःकरणदशायां कटकभागस्य कुण्डलत्वं कुण्डलभागस्य कटकत्वं तद्वत् । अतो**ऽविभागो** विज्ञानाऽविज्ञानविभागाभावः । ततश्च, 'ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य' इत्यत्र चेतने भोक्तृत्वं सुकृते भोग्यत्वं यदुच्यते, तद् विप्रतिषेध इत्येवं- चेदित्यन्तेनाशङ्क्य तत्र समाधत्ते स्याल्लोकवदिति । तथा चैवमापादनेऽपि उत्पत्तिदशायां चेतनस्य भोक्तृत्वमचेतनस्य भोग्यत्वमेव । यथा लोके कटकभागस्य कुण्डलत्वेनोत्पत्तौ कुण्डलत्वमेव, कुण्डलभागस्य कटकत्वेनोत्पत्तौ कटकत्वमेवं विपर्ययापत्त्यभावाद्, भोक्तृभोग्यविभाग- सौकर्यं तद्वदित्यर्थः । अत्र लोकवदिति दृष्टान्तेनेदं बोध्यते । तदुक्तमभ्युपगम्य तदुक्त्या समाधीयते । अस्माकं तु, 'बहु स्यां प्रजायेय' इतीच्छया बहुभवनस्य प्रकर्षस्य च सिद्धत्वात् पूर्वमेव चेतनाचेतनविभागं कृत्वा तेन तेन रूपेण तत्र तत्र प्रवेश इति न दोषलेश इति । एवमत्र युक्त्या, 'विज्ञानं चाविज्ञानं च' इत्यादिश्रुतौ विभागाभावरूपः कार्यदोषः परिहृतः । प्रलये तु विभागाभावेप्यदोषः । व्यवहाराभावेन तद्भङ्गाभावादिति ।

भास्कराचार्यास्तु युक्त्या ब्रह्मवादः सांख्यैः पुनराक्षिप्यते तद्दूषणायेदं सूत्रमितीच्छन्ति । यथा फेनतरङ्गादीनां परस्परं विभागः समुद्रादनन्यत्वं चेति दृष्टान्तं चाहुः ।

शंकराचार्या अप्येवमेवोक्त्वा यद्यपि भोक्ता न ब्रह्मणो विकारः 'तत् सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्' इति स्रष्टुरविकृतस्यैव कार्यानुप्रवेशे भोक्तृत्वश्रावणात् । तथापि कार्यमनुप्रविष्टस्योपाधिनिमित्तो विभागः संभवति । यथा घटाद्युपाधिनिमित्त आकाशस्येत्येतदाशयेन सूत्रमित्येतावदधिकमाहुः ।

रश्मिः ।

एतद्दृष्टान्तेन स्फुटीकुर्वन्तो **यथा लोक** इति भाष्यं विवृण्वन्ति **यथा लोक** इति । **समाधत्त** इति । भगवानाचार्यः सूत्रकृत् । इत्याहुर्भाष्ये स्याल्लोकवदितीत्यर्थः । **कटकभागस्य । समाधीयत**इति । इतीति शेषः । तृतीयाध्यायेऽरूपवत्सूत्रेस्यैकदेशिमतीयत्वेन वक्ष्यमाणत्वात्तदनुकूलयितुमस्मिन्नपि पूर्वसिद्धं सिद्धान्तमाहुः **अस्माकमिति** । **प्रकर्षस्ये**ति उच्चनीचरूपेण पूर्वपक्षापेक्षया च । **न दोषे**ति । दोषस्त्वेकदेशिमतीयत्वम् । **व्यवहारे**ति प्रलये विभागव्यवहाराभावेन भोक्तृभोग्ययोर्भोक्तृत्वभोग्यत्वभङ्गाभावात् । बहुष्वनियम इति भास्कराचार्यमतमाहुः **भास्करेति** । **आक्षिप्यत** इति ब्रह्मणोनन्यत्वाद्भोक्तृभोग्ययोरविभागः कथम् । भोक्तुर्जीवस्य भोग्यापत्तेर्भोग्यस्य स्वशरीरेन्द्रियविषयलक्षणभोक्त्रापत्तेरापत्तिरेकीभाव इत्याक्षिप्यते ततश्च भेदाभेदयोर्हि सर्वप्रमाणसिद्धवत्कृत्वा विभागोऽविभागो विस्मृतोऽथेदानीमनन्यत्वमसिद्धमिति साध्यते । **यथा फेने**ति षष्ठ्या भेदः । अनन्यत्वमित्यभेद इति भेदाभेदः ।

एवमेवेति भेदाभेदवादित्वेप्याक्षेपस्याभेदमात्राश्रयत्वादेवमेव । **उपाधिनिमित्ते**ति उपाधिरविद्या ।

भाष्यप्रकाशः।

रामानुजाचार्यास्तु तद् दूषयन्ति । अन्तर्भावितशक्त्यविद्योपाधिकाद् ब्रह्मणः सृष्टिमभ्युपगच्छतामेवमाक्षेपपरिहारयोरसङ्गतत्वात् । तथाहि । कारणान्तर्गतशक्त्यविद्योपहितस्य भोक्तृत्वादुपाधेश्च भोग्यत्वाद्विलक्षणयोस्तयोः परस्परभावापत्त्यदर्शनेनाक्षेपस्यैवानुदये परिहारस्याप्रयोजनत्वेन सूत्रस्यैव वैयर्थ्यात् । स्वरूपपरिणामस्तु न तैरभ्युपेयते । 'न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वात्' इत्यागामिसूत्रे क्षेत्रज्ञानां तत्कर्मणां चानादित्वप्रतिपादनात् । तदनभ्युपगमे च भोक्तृभोग्याविभागशङ्काया एवानुदयात् । स्वरूपपरिणामे च ब्रह्मणो भोक्तृभोग्यभावापत्त्या पुनरसामञ्जस्यादिति । स्वमतं त्वेवमाहुः । स्थूलसूक्ष्मचिदचिच्छरीरस्य ब्रह्मणः कारणरूपत्वाज्जीवब्रह्मणोः स्वभावविभागो य उक्तः सोऽनुपपन्नः । सशरीरत्वे जीववद्भोक्तृत्वस्यावर्जनीयत्वात् । न च, संभोगप्राप्तिसूत्रेऽस्य दोषस्य प्रागेव परिहृतत्वान्न शङ्कोदय इति वाच्यम् । तत्रोपास्यतया हृदयान्तःस्थस्य शरीरान्तर्वर्तित्वमात्रेण न भोगसंबन्ध इत्युक्तत्वात् । इह तु जीववद् ब्रह्मणोऽपि सशरीरत्वे तद्वदेव सुखदुःखभोगापत्तिरित्युच्यते । लोके तथा दर्शनात् 'न ह वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति, अशरीरं वा व सन्तं प्रियाप्रिये न स्पृशतः' इति श्रुतेश्च । अतः सशरीरब्रह्मकारणवादे जीवेश्वरस्वभावविभागाभावात्, केवलब्रह्मकारणवादे मृत्सुवर्णादिवज्जगद्रूतापुरुषार्थादिसर्वविशेषाश्रयत्वप्रसङ्गाच्च प्रधानकारणवाद एव ज्यायानिति चेत् । स्याल्लोकवत् । स्यादेव सशरीरत्वेऽपि जीवेश्वरस्वभावविभागः । जीवेऽपि सुखदुःखभोगस्य पापपुण्यकृतत्वेन शरीरनिमित्तकत्वाभावात् । न च, 'न ह वै सशरीरस्य' इति श्रुतिविरोधः । तस्य कर्मारब्धदेहविषयत्वेन कर्मण्येव तत्पर्यवसानात् । अन्यथा, 'स एकधा भवति त्रिधा भवति, स यदि पितृलोककामो भवति स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन् रममाण' इति कर्मसंबन्धनिर्मुक्तस्य सशरीरस्यैव जीवस्यापुरुषार्थगन्धाभावश्रावणविरोधापत्तेः । अपहतपाप्मनः परमात्मनस्तु तदभावः कैमुतिकादेव सिद्ध्यति । यथा राजाज्ञानुवर्तिनां तदतिवर्तिनां राजानुग्रहनिग्रहकृतसुखदुःखयोगेऽपि सशरीरत्वमात्रेण तच्छासके राज्ञि न शासनानुवृत्त्यतिवृत्तिनिमित्तकः सुखदुःखभोगस्तद्वदिति लोकेऽपि सिद्धमिति । तन्मतचौरोऽप्येवमाह । 'ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ' इति स्वातन्त्र्यास्वातन्त्र्याभ्यां कृतं स्वभावविभागं वदतीत्येतावान् भेदः । तत्र सशरीरस्य परिणामः प्रागेव निरस्त इति न शङ्का नापि चोत्तरम् । स्वरूपपरिणामवादिनां ब्रह्मणो भोक्तृभोग्यभावस्त्विष्ट एव । प्रमाणबला-

रश्मिः।

अन्तर्भावितेति। अन्तर्भाविता निर्गुणत्वनिष्क्रियत्वाशब्दत्वशक्तिर्येन **अविद्योपाधिर्यस्यै**तादृशाद्ब्रह्मण इत्यर्थः। **कारणान्तरेति** सगुणं ब्रह्म **कारणं** तदन्तर्गता **शक्तिरविद्या तदुपहितस्य**। **तदनभ्युपगम** इति परिणामानभ्युपगमे। भोक्तृभोग्ययोः परिणामजविभागापेक्षाविभाग**शङ्कायाः**। **भोक्तिति** अनङ्गीकृतभोक्तृभोग्यभावापत्त्या। **कर्मसंबन्धेति स** एकधेति छान्दोग्ये कर्मसंबन्धरहितस्याविर्भूतस्वरूपस्य। **तन्मतेति** भगवान् शैवाचार्यः। (**पुरुषार्थेति** 'न पश्यो मृत्युं पश्यति' इति श्रुतेः।) **प्रागेवेति**। पूर्वं स्वमतपरिणामं स्मारयन्ति **स्वरूपेति**। **प्रमाणेति**। मण्डूकोपनिषदि ऋग्वेदे।

'प्रज्ञानांशुप्रतानैः स्थिरचरनिकरव्यापिभिर्व्याप्य लोकान्
भुक्त्वा भोगान् स्थविष्ठान् पुनरपि धिषणोद्भासितान् कामजन्यान्।
पीत्वा सर्वान्विशेषान्स्वपिति मधुरभुक् मायया मोदयन्नो
मायासंख्यातुरीयं परममृतमजं ब्रह्म यत्तं नतोस्मि ॥

भाष्यप्रकाशः ।

च्छुद्धाद्वैतस्यैवाभ्युपगतत्वेनादोषात् । न च स्वभावाविभागापत्तिः । सृष्टिदशायां शक्तिविश्लेषेण स्वभावविभागस्य लोकेपि दर्शनात् । एकबीजके तरौ पत्रपुष्पफलमूलवल्कलनिर्यासानामन्योन्य-स्वभावस्य तेषां च स्वभावानां बीज ऐक्यस्य पुनर्बीजे तथात्वस्य सर्वजनीनत्वादिति ।

भिक्षुस्तु ननु परमेश्वरस्य जगत्कारणश्रुत्यर्थत्वे, 'बहु स्यां प्रजायेय', 'रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव', 'स एष इह प्रविष्ट आनखग्रेभ्यः' इत्यादिश्रुतिभिर्जगत्कारणस्यैव जीवभावश्रावणेन सुखदुःखभोक्तृजीवरूपतापत्त्या, 'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति' इत्यादिश्रुत्युक्तो विभागो नोपपद्यत इतिचेल्लोकवदयं विभागः स्यात् । यथा लोके पितृप्रकृतिके पुत्रे पित्रात्मकत्वे सत्यपि गर्भवासादयः पुत्रस्यैव न पितुरिति विभागस्तथैव परमेश्वरजीवयो-रपि । एवं समुद्रमत्स्यपृथिव्योषध्यादयो दृष्टान्ता बोध्या इत्याह ।

मध्वाचार्यास्तु 'कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति' इति मुक्त-जीवस्य परापत्तिरुच्यते । अतस्तयोरविभागात्स पूर्वमपि तदभिन्न एव । अन्यथा एकीभावा-

रश्मिः ।

यो विश्वात्मा विविधविषयान्प्राप्य भोगान्स्थविष्ठान्
पश्चात्स्वान्यान् स्वमतिविभवान् ज्योतिषा स्वेन सूक्ष्मान् ।
सर्वानेतान्पुनरपि शनैः स्वात्मनि स्थापयित्वा
हित्वा सर्वान्विशेषान्विगतगुणगणः पात्वसौ नस्तुरीयः ॥' इति ।

जाग्रदवस्थाभोगमुक्त्वा स्वप्नावस्थाभोगमाह धिषणेति । स्वमायया बहिःक्षिप्ता धिषणा शुक्तिकारजतवत्ख्यायते । स्वप्नस्योत्तरकालीनबाधदर्शनात् सुषुप्तिमाह पीत्वेति । मधुरभुक् आनन्दभुक् । चराचरभुग्वा । जगद्विनाशमाशङ्क्याह माययेति । मायासंख्या मायायाः सम्यक् (अ)प्रकथनं यत्र । सोऽर्थः । स्वमतिर्धिषणास्थानीया । पूर्ववत् । ज्योतिषा 'अत्रात्मा स्वयंज्योतिर्भवति' इति श्रुतेः । अत्र स्वप्ने । स्थापयित्वेति सुषुप्तिः । हित्वेत्यादिप्रतिपाद्यस्तुरीयः । अत्ता चराचराधिकरणे 'यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनं मृत्युर्यस्योपसेचनम्' इति प्रमाणम् । संभोगसूत्रं च । 'पत्रं पुष्पं फलं तोयम्' । 'निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कार्यम्' । 'संसारावेशदुष्टानाम्' इत्येवं प्रमाण-बलात् । नन्वेवं क्वचिन्महाभोगयुक्तान्क्वचिद्दरिद्रान्क्वचिद्दुःखिनः कुर्वन् भुञ्जानोपि विषमो निर्घृणस्तु स्यादित्याशङ्क्याहुः शुद्धाद्वैतस्येति । दोषो वैषम्यं नैर्घृण्यं च । एवं स्वमते भोक्त्रापत्तेरविभागे सेव्यसेवकभावहानिः । आशङ्कापूर्वकं लोकवदिति व्याकुर्वन्तः परिहरन्ति स्म न च स्वभावेति । एकनिष्ठ एकः स्वभाव इति । शक्तीति 'एकोहं बहु स्याम्'इति श्रुत्युक्तेच्छाशक्तेर्विश्लेषो बहुविषयत्वं तच्छक्त्यधीनस्वभावशक्तिः । पुराणे तु सत्त्वरजस्तमांसि कालकर्मस्वभावांश्च बुभूषुर्भगवानुपादत्ते । तथात्वस्येति पत्रादिजननस्वभावस्य ।

भगवान् भिक्षुस्तु नोपपद्यत इति अविभागाद्वैते 'यथा सौम्य मधु मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति' इति श्रुतेर्मधुवन्नोपपद्यते । पित्रात्मकत्व इति 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इति श्रुतेः । एवं समुद्रेति । यथा समुद्रप्रकृतिके लवणे समुद्रात्मकत्वे सत्यपि महानसवासादयो लवणस्यैव । एवं जलप्रकृतिके मत्स्ये जलवासादयो गर्भवासादयो न जले । मत्स्यकूर्मादिरूपिणीति यमुनाविशेषणं यमुनामाहात्म्ये । पृथिवीप्रकृतिके घटादौ पृथुबुध्नोदराकारादयो न पृथिव्याम्, औषधिप्रकृतिके फलादौ रसादयो नौषधौ । बीजप्रकृतिके औषध्यादौ फलपाकादयो न बीज इति । परापत्तिः परैक्यम् । स इति जीवः ।

१. ब्रह्मण एव ।

भाष्यप्रकाशः ।

योगादिति चेत्, स्याल्लोकवत् । यथा लोके उदक उदकान्तरस्यैकीभावव्यवहारेप्यन्तर्भेदोस्त्येव, तथात्रापि स्यादिति । अत एव, 'यथोदके शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति' इत्युक्तम् । न च स्वभावाविभागः । 'न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति', 'न ते विष्णो जायमानो न जातः' इत्यादिश्रुतौ तस्य सिद्धत्वादित्याहुः ।

अत्राधिकरणविभागस्त्वव्यवस्थितः । कैश्चित् क्वचिदन्यैरन्यत्र तत्समाप्त्यङ्गीकारात् । आचार्यैस्त्वेषां सूत्रत्वमेव केवलमङ्गीक्रियते, नाधिकरणत्वम् । क्वचिदप्यधिकरणत्वावचनात् । सूत्रत्रयमाहेति सूत्रत्वस्यैव कथनाच्च । तथापि बोधसौकर्याय किंचिद् विषयैक्यमादाय, असत्-

रश्मिः ।

उदक इति समुद्रे । अन्तर्भेद इति समुद्रत्वलवणयमुनात्वमिष्टरसगङ्गात्वमिष्टकरसकृतावान्तरभेदः । अलौकिके त्वाहुः शुद्धे शुद्धमिति । ब्रह्मजीवयोः शुद्धत्वात् । न च स्वेति । मुक्तजीवस्य परापत्तौ य ऐक्यस्वभावस्तेनाविभागो लोकेपि । ते तव महित्वं स्वभावव्यापकत्वापहतपाप्मत्वादि । अनु मुक्तिमनु परापत्तिमनु नाश्नुवन्ति लोकेपि । मुक्तजीवजीवादयः भविष्यत्कालिकाः । हे विष्णो ते तव संबन्धी जायमानोवतारजीवादिर्वर्तमानकालिकः । न जातः भूतकालिकः । तस्येति स्वभावविभागस्य । ससंबोधमोक्षवादिनामस्माकं संमतमिति न दूषितम् । भाष्ये सूत्रपदं बोधसौकर्यायाधुनिकाधिकरणरचनं श्रीमदाचार्याज्ञाऽविरुद्धम् । यतो भगवच्चिकीर्षितं कर्तव्यमिति सुबोधिन्यामस्ति । अतः शांकराधिकरणमालाया अत्राधिकरणरचना रश्मावपि । एतदभिप्रेत्याहुः अत्राधीति । कैश्चिदिति शंकराचार्यैः, 'एतेन शिष्टापरिग्रहा' इत्यत्र न विलक्षणत्वाधिकरणं समाप्यते । अन्यैरिति तदीयाधिकरणमालाकारैर्न विलक्षणत्वाधिकरणस्य तर्काप्रतिष्ठानसूत्रे समाप्त्यङ्गीकारात् । यदि च भोक्त्रापत्तेरित्यत्रान्यथा पुनर्ब्रह्मकारणवादस्तर्कबलेनैवाक्षिप्यत इति भाष्यवत् । 'एतेन' इति सूत्रे 'इदानीमण्वादिवादव्यपाश्रयेणापि कैश्चिन्मन्दमतिभिर्वेदान्तवाक्येषु पुनस्तर्कनिमित्त आक्षेपः आशङ्क्येत' इति पुनःशब्दादधिकरणान्तरत्वमिति विभाव्येत तदा 'एतेन योगः' इत्यधिकरणे पुनःपदाभावादधिकरणत्वं न स्यात् । अतोन्यथा पुनरित्येवं भाष्यमधिकरणभेदकम् । यद्वान्यैरित्यस्य भाष्यान्तरेषु व्याख्यानकारैरित्यर्थः । किंचिद्विषयेति । किंचिदिति लुप्ततृतीयाकम् । अनुषङ्गेण न विषयैक्यम् । अग्रे स्पष्टम् । ननु भोक्त्रापत्तिसूत्रे कार्यदोषपरिहारार्थमारम्भ इति भाष्ये सूत्राधिकरणयोरन्यतरन्न दृश्यते इति कथं क्वचिदपीति शब्दौ इति चेत्तत्राहुः सूत्रत्रयमिति । न चाहत्याधिकरणत्वं वक्तुं शक्यमिति भावः । प्रायपाठादेवकारः । सुबोधिन्यां चिकीर्षितकरणाज्ञाया आहुः तथापीति । ऐकाधिकरण्यमिति भाष्यमतेन । भाष्यप्रकाशे तु बोधसौकर्याय सप्तमाधिकरणमिति भावः । ऐकाधिकरण्यमेवं प्रथमाधिकरणे संहितायां 'समानाः प्रजाः प्रजायन्ते' इति वेदान्तेपि समानाः प्रजा इति चेतनं न कारणमिति बाधकस्तर्कः तथा चाभिन्ननिमित्तोपादानं चेतनं विलक्षणमित्यकारणमतश्चिज्जडरूपौ प्रकृतिपुरुषौ कारणमिति सांख्यस्मृतयः श्रुत्योर्विप्रतिषेधपरिहारिका इति पूर्वपक्षान्तर्गतशङ्कापि 'दृश्यत' इति सिद्धान्तेनापाकृता । तुल्यांशसंपत्तिरित्यादिभाष्येण सदंशमादाय सांख्यप्रकृतिर्निराकृतप्राया । तेन वेदवैलक्षण्यं वेदान्त उक्तम् । तस्माच्छास्त्रान्तरत्वम् । सांख्ययोगशास्त्रवत् । पुनरसदधिकरणे तैत्तिरीयं विषयवाक्यम् । तत् कियदित्याकाङ्क्षायामन्ते अनुषङ्गयुक्तमिति 'यतो वाचो निवर्तन्त' इति प्रपाठकपर्यन्तम् । यतोनुषङ्गो वाक्यपरिसमाप्तिः । अन्यत्र वाक्यसमाप्तावपि

भाष्यप्रकाशः ।

सूत्रादारभ्यैतदवध्यैकाधिकरण्यमङ्गीक्रियत इत्यदोषः । तथासत्येतस्यापि तच्छेषत्वम् ॥ १३ ॥

इति सप्तमं भोक्त्रापत्तेरित्यधिकरणम् ॥ ७ ॥

रश्मिः ।

परितस्तत्रैव । तत्किंचिद्विषयैक्यं तावत् । तदित्थम् । असत्सूत्रे विषयवाक्यम् । अपीतिसूत्रे पूर्वपक्षः तत्रासमञ्जसं ब्रह्मकारणवचनमित्यत्र प्राथम्यादानन्दमयाधिकरणादानन्दरूपं ब्रह्म व्याख्येयम् । आनन्दमयाधिकरणभङ्गकरणेन तत्साधनेन च स्वमते तस्य संशयास्पदत्वेन युक्त्यर्हत्वात् । 'न तु' इति सूत्रे सिद्धान्तः । भवतामित्यस्यानन्दमयत्वमनङ्गीकुर्वताम् । स्वपक्षसूत्रे प्रमेयं स्पष्टम् । तर्काप्रतिष्ठानसूत्रे ब्रह्मवादिनो ह्यानन्दमयत्ववादिनोपि । 'आनन्दावाण्डौ' 'कस्तस्य मेढ्रम्' इत्यादिष्वश्लीलभानमब्रह्मविदामतो निर्दुष्टतर्कसद्भावः । एतेनेति सूत्रे अणुमायाकारणवादेषु नानन्दमयवादः । वेदेषु श्रीकृष्णवाक्येषु व्याससूत्रेषु समाधिभाषायां च पूर्णत्वेऽयं वादः । एतावता 'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा' इति श्रुत्युक्तः प्रेरिता विचारितः आनन्दोपि प्रेरिता ब्रह्मत्वाद्दर्शनाच्च । कार्ये भोग्यभोक्तृत्वविचारो भोक्त्रापत्तिसूत्रे आनन्दमयकार्येपि समान इति । अतो ब्रह्मवित्प्रपाठके 'यतो वाचो निवर्तन्ते' इत्यन्तं किंचिद्विषयैक्यम्, तदादाय विषयवाक्यं संशयपूर्वपक्षसिद्धान्ता उक्ताः । युक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारे शास्त्रान्तरत्वस्य वेदान्ते पूर्वाधिकरणप्रतिपाद्यस्य सूचीकटाहन्यायेन प्रतिबन्धकत्वेन पूर्वाधिकरणे तन्निरूपणेन तन्निवृत्तौ सत्यामवश्यवक्तव्यस्य युक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधस्य तत्त्वमित्यवसरः सङ्गतिः । यद्यपि श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारः पूर्वाधिकरणेप्यस्ति परंतु विशेषेण शास्त्रान्तरत्वप्रतिपादनस्फूर्तिरतः सामान्यतः श्रुतिविप्रतिषेधपरिहाराद्विशेषो वेदान्तस्य शास्त्रत्वप्रतिपादनं स बलीयानित्यत्र श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारो मुख्यतया 'अत' इत्यत्रोक्तः । **अदोष** इति । तदुक्ते दुर्बोधत्वं दोषः स न । अत्रेदं बोध्यम् । शांकरा असदधिकरणं नाङ्गीकुर्वन्ति । किंतु न विलक्षणत्वाधिकरणमेव तर्काप्रतिष्ठानसूत्रे परिसमापयन्ति । एकसूत्रात्मकं चाधिकरणद्वयं वर्णयन्ति । तेषां भाष्ये विषयाद्यनुपलब्धिरेव दूषणम् । 'दृश्यते तु' इत्यत्र तोः पूर्वपक्षनिरासरूपार्थत्यागापत्तेश्च । वेदान्तानां शास्त्रान्तरकत्वाविचारेण न्यूनतापत्तेश्च । पञ्चरात्रशास्त्रमग्रे विचार्यम् । पाशुपतशास्त्रमपि द्रष्टव्यम् । अतो न विलक्षणत्वाधिकरणं त्रिसूत्रं पृथगेव मन्तव्यम् । अतः 'असत्' सूत्रादारभ्याङ्गीक्रियते आचार्यैः । ननु श्रैमतवृत्त्यधिकरणमालयोरेकसूत्रात्मकमधिकरणद्वयं दृश्यते । किंच ब्रह्म जगदुपादानमिति ब्रुवन् वेदान्तसमयो विषयः । तत्र संशयः । यद्विभु तन्नोपादानमिति वैशेषिकन्यायेन स विरुद्धो न वा । तर्कमतीनां न्यायस्यादुष्टत्वाद्विरुद्ध इति पूर्वपक्षे, एतेनेत्यादिसिद्धान्तः । जगत्सर्गादि ब्रुवन् वेदान्तसमन्वयो विषयः स प्रत्यक्षादिना विरुद्धो न वेति संदेहे ब्रह्मणि तर्कस्याप्रतिष्ठितत्वेपि जगद्भेदे प्रतिष्ठितत्वाद्विरुध्यत इति पूर्वपक्षे भोक्त्रापत्तेरित्यादिना प्राप्ते स्याल्लोकवदिति सिद्धान्तः इति । कथमेवमङ्गीक्रियत इति चेन्न । वृत्तावधिकरणगमकाभावात् । अधिकरणमालायां तु एतेनेति सूत्रस्य भोक्त्रापत्तिसूत्रस्य च सूत्रपञ्चाङ्गान्तर्गतत्वाभावेपि प्रासङ्गिकसूत्रस्याधिकरणान्तर्गतत्वं नो चेदधिकरणत्वम् । भोक्त्रापत्तेरित्यत्रारम्भपदं भाष्य इत्यधिकरणाध्याहारे भाष्यानुगुणमधिकरणं तदुक्तिश्च सूत्राध्याहारेपि । भाष्यप्रकाशे सूत्रमेकं द्वैयं वाधिकं प्रविष्टं रभसात् । भवदुक्तानां विषयादीनां पूर्वं विचारितत्वात् ॥ १३ ॥

इति सप्तमं भोक्त्रापत्तेरित्यधिकरणम् ॥ ७ ॥

१. षष्ठसप्तमरूपम् । २. पञ्चमे आह । ३. षष्ठसप्तमाधिकरणरूपम् ।

तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ॥ १४ ॥ (२-१-८)

श्रुतिविरोधं परिहरति । 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्'इति । तत्र विकारो वाङ्मात्रेणैवारभ्यते, न वस्तुत इत्यर्थः प्रतिभाति । तथा च सति कस्य ब्रह्म कारणं भवेत् । अतः श्रुतिवाक्यस्यार्थमाह । आरम्भणशब्दादिभ्यस्तदनन्यत्वं प्रतीयते । कार्यस्य कारणानन्यत्वं न मिथ्यात्वम् ।

भाष्यप्रकाशः ।

तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ॥ १४ ॥ एवं कार्यबोधकश्रुतौ युक्तिविरोधं परिहृत्य कार्यबोधकवाक्यान्तरे श्रुतिविरोधं परिहरतीत्याशयेन सूत्रमवतारयन्ति **श्रुतीत्यादि । प्रतिभातीति** वाचारम्भणमनूद्य तस्य विकारत्वं विधाय ततस्तस्यैव नामधेयत्वनिगमनात् प्रतिभाति । **तथा च सतीति** कार्यस्य खपुष्पवद् वाङ्मात्रत्वेन अवस्तुत्वे सति । 'उत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवति'इत्यादि, 'यथा सौम्यैकेन' इत्यादिप्रतिज्ञादृष्टान्तश्रुतिबलेन प्रपञ्चसमवायित्वं ब्रह्मणः प्रतिपादितं दृष्टान्तवाक्यशेषे च वाचारम्भणमित्यादि श्रूयते तस्य चैवमर्थः प्रतिभातीति । येनैव कारणत्वं प्रतिपाद्यते तच्छेषेणैव तद् विघटितं भवतीति विप्रतिषेधाद् ब्रह्मवादे पुनरसामञ्जस्यमिति शङ्कायां तस्यार्थमाहेत्यर्थः । तेन विप्रतिषेधो विषयः । अस्ति वा न वेति संशयः । पूर्वपक्षसिद्धान्तौ तु स्फुटावेवेतीदमधिकरणम् । तच्च सप्तसूत्रम् । यदि च विषयस्य पूर्वं विचारितत्वात् संशयानुदयेऽपि प्रतिवादिना स्वाग्रहमात्रेण इदमाक्षिप्यत इत्यङ्गीक्रियते, तदा तु सूत्रमात्रत्वमेव । एवमेव पूर्वत्रापि बोध्यम् । अर्थमाहुः **आरम्भणेत्यादि ।**

रश्मिः ।

तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ॥ १४ ॥ **कार्यबोधकेति** 'स आत्मानꣳस्वयमकुरुत' इति कार्यबोधकवाक्यान्तरे । प्रतिभातिपदपूर्वपक्षगतत्वेन स्वारस्याय भाष्यविरुद्धमुद्देश्यविधेयभावेनाहुः **वाचारम्भणमनूद्येति** । भाष्ये तु विकारो वाचारम्भणमित्युद्देश्यविधेयभावः शङ्काग्रन्थत्वात् । श्रुतौ वाचारम्भणमुद्देश्यं तद्भाष्यापेक्षयोत्तमम् । वाचारम्भणं वैदिकी सृष्टिः सापि विकारोऽविकृतत्वे प्राप्ते दर्शनादिना च विकारः । तस्मान्नामैव नामधेयमिति निगमनम् । इति न्यायशास्त्रीयम् । दृष्टान्तग्रन्थत्वान्मृत्तिका । श्रुतिविप्रतिषेधपरिहाराय श्रुतिविप्रतिषेधार्थम् । **प्रतिभातीति** भाष्यमित्याहुः **उत तमेति** । **अत** इत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति **येनैवेति** । विप्रतिषेधादित्यतः फलितोतःशब्दार्थः । ब्रह्मकारणत्ववादेऽसामञ्जस्यं ब्रह्म दार्ष्टान्तिकं कस्य कारणं भवेदिति प्रश्नरूप इति प्रकारे प्रश्नगर्भायां शङ्कायां तर्के । तेनात इति भाष्ये सार्वविभक्तिकस्तसिः । प्रश्नगर्भे तर्के इत्यतःशब्दवाच्यार्थः । **तेनेति** श्रुतिवाक्यस्य प्रतिभातार्थकत्वेन नतु सैद्धांतिकार्थकत्वेन श्रुतिवाक्ये विप्रतिषेधो विषय इत्यर्थः । **स्फुटाविति । पूर्वपक्षो** गतो ग्रन्थः **सिद्धान्तो** वक्ष्यमाणो ग्रन्थः । **सप्तेति** । तेनाधिकरणमालायां त्रिसूत्रमिदमधिकरणं चतुःसूत्रमपरमिति चिन्त्यम् । ननु **'असद्वा इदमग्र आसीत्'** इत्यपि विप्रतिषेधः 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इत्युपक्रमात् । स गतासदधिकरणे विषय इति तेन न्यायेनायमपि विप्रतिषेधो विचारितप्राय इत्याशङ्क्याहुः **यदि चेति** । यथाश्रुतभाष्यस्वारस्यायातिदिशन्ति **स एवमेवेति** । तेनोक्तसूत्रद्वयस्यैकस्य वा गताधिकरणेऽप्रवेशो-

भाष्यप्रकाशः ।

अत्रादिपदेन, इतिशब्दो, नामधेयपदं, सदेव सौम्येत्यादीनि वाक्यानि च संगृह्यन्ते। तथा च यदि विकारे वाङ्मात्रतामभिप्रेयाद् वाचारम्भणं विकारो मृत्तिकैव सत्यमित्येव वदेत्। तावतैव कार्यस्य मिथ्यात्वसिद्धेः। वदति त्वेवम्। तथा च यो विकारस्तद् वाचारम्भणम्। यद् आरभ्यते तद् आरम्भणम्। 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति कर्मणि ल्युट्। वागारब्धं कारणस्यैव नामधेयम्। कारणमेवहि तत्तदर्थक्रियासिद्ध्यर्थं तेन तेन नाम्ना व्यवह्रियत इति कारणादभिन्नमेव कार्यं न तु स्वेन रूपेण कारणाद् भिन्नम्। तदाह मृत्तिकेत्येव सत्यमिति। कारणरूपेणैव सत्यम्। अतः कारण-

रश्मिः ।

प्यसूचि। सदेवेति। आदिपदेन 'आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादिसंग्रहः। विकार इति दधि यथा दुग्धस्य विकारः। तावतैवेति 'इति'शब्दो नामधेयपदशून्येन सकलेनैव वाक्येन। सिद्धान्ते श्रुतिं यथाभाष्यं विवृण्वन्ति स्म तथा च य इति। ननु श्रुतिक्रमविरोध इति चेन्न। क्रियाशब्दस्य प्राथम्येपि क्रियावत्पाश्चात्यान्वयस्य विशेष्यतायै सर्वैरङ्गीकारात्। न च विकारोपि क्रियाशब्द इति शङ्क्यम्। व्याख्यानात्। आरभ्यत इति। रभि शब्दे भ्वा. आ. से.। रभ राभस्ये भ्वा. आ. अनि.। तत्तदर्थेति यथा घटाद्यर्थस्य जलाद्याहरणादिक्रियासिध्यर्थम्। अभिन्नमिति अभिन्नमेव कार्यं प्रतीयत इति भाष्यस्थमन्वेति द्रव्यस्वरूपमात्रत्वमिति मतस्मरणे द्रव्याभावप्रसङ्गात्। श्रुतितो द्रव्यसिद्धिरिति चेन्न युक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारात्। दृश्यते त्विति सिद्धान्तसूत्रात्। स्वेन रूपेणेति घटत्वादिरूपेण मृदादेर्भिन्नम्। कारणरूपेणेति। यतो घटादिः सत्तारूपेण मृदि वर्तत इति। एवकारेण घटादिनाम्नां व्यवच्छेदः। किंचिन्निश्चयितुं पुनराहुरित्याशयेन कार्यस्येत्यादि भाष्यं विवरीतुं प्रक्रमन्ते अतः कारणरूपेणेति। कारणानन्यत्वात्। कारणस्योपक्रान्तस्य सतः रूपेण छान्दोग्योक्तकृष्णरूपेण न तु घटत्वादिरूपेणेत्येवकारः। सत्यं घटादि न तु मिथ्या। ननु ब्रह्मत्वेन रूपेणेति कुतो नार्थः। इत्थम्। घटादौ ब्रह्म तद्रूपं तत्र च स्थितं साकारव्यापकं च तत्र तद्रूपं घटः तत्र स्थितं सामान्यवादिवद्रूपं कृष्णादि। न तु साकारव्यापकं छान्दोग्ये तथोक्तेः। तेन घटत्वादिसामान्यानां घटादिद्रव्यरूपत्वमेकविज्ञानेन सर्वविज्ञानार्थमुक्तम्। ननु नैवं सामान्यमपह्नोतुं शक्यम्। द्वितीयसुबोधिन्यां विशिष्टे शक्तेर्नैयायिकदूषणग्रासाच्चेति चेन्न। सुबोधिन्याः प्रकरणावरुद्धत्वात्। नैयायिकादिदूषणानि तु प्रस्थानरत्नाकरे एवं परिह्रियन्ते। सामान्यं हि नित्यमेकमनेकानुगतम्। नित्यत्वं त्रैकालिकत्वं तथा च घटज्ञानेन पटज्ञानापत्त्या नित्यत्वं नाङ्गीकरणीयम्। 'अपागादग्नेरग्नित्वम्' इति ब्रह्म तर्हि अग्निः इति श्रुतेर्ब्रह्मत्वेपि सत्यज्ञानानन्तानन्दत्वं सत्यज्ञानानन्तानन्दरूपम्। न च 'अविनाशी वा अरेऽयमात्मानुच्छित्तिधर्मा' इति श्रुतेर्नित्यधर्मरूपं सामान्यं ब्रह्मज्ञानविषयमिति वाच्यम्। नित्यत्वे घटज्ञानेन घटज्ञानात्पटज्ञानापत्तिरस्त्येवेति। न च सन्निधानाद्ब्रह्मव्यतिरिक्तज्ञानमपि सुवचम्। सदेवेत्येवकारात्। अतोत्र प्रस्थानाकरयुक्तयो लिख्यन्ते। 'तस्मान्नाकृतिमात्रे संबन्धः किंतु व्यक्तावेव'। 'ननु व्यक्तीनामानन्त्यादेकत्र गृहीतसंबन्धस्य घटादिपदैर्घटान्तरबोधानुपपत्तिर्दुर्वारेति विशिष्टे संबन्धो वाच्य इति चेन्न। ब्रह्मवादे पदार्थानां सर्वेषां भगवदभिन्नत्वेन नित्यत्वात्कारणत्वेनाभिमतैरभिव्यक्तिमात्राङ्गीकारादेकस्यैवानेकधाभवनेनाविर्भवनेन तिरोभवनेन चैकस्यैव सर्वत्र सत्त्वादानन्त्येप्यदोषादेकत्रैव गृहीतायां शक्तौ निर्वाहाद्द्रव्यूहवदनुगताकारप्रतीतिसिद्धेश्च वैशिष्ट्यगौरवस्य वैयर्थ्यादिति। इदानीमपि हि जातिव्यक्तिमजानतो बालस्य पामराणां च शब्दाद् व्युत्पत्तिदर्शनाच्च। प्रलये सर्वव्यक्तिनाशे

भाष्यप्रकाशः ।

रूपेणैव सत्यं न तु मिथ्या । तथा सति कार्याभावेन ब्रह्म कस्य कारणं भवेत् । तदभावे सति पूर्वोपन्यस्ता 'यतो वा इमानि'इत्यादयः सर्वा एव श्रुतयः कुप्येरन् । न च शुक्त्यादीनां रजतादीन् प्रतीव ब्रह्मणोऽपि जगत् प्रति कारणत्वस्य शक्यवचनत्वान्न तत्कोप इति वाच्यम् । पुरुषबुद्धिदोषवशेन शुक्त्यादिषु रजतादिबुद्धिमात्रजनकतया रजतादिकारणत्वस्याभिमानमात्रत्वेनापौरुषेयायांमीश्वरनिःश्वासरूपायां श्रुतौ तादृशाभिमानिवाक्यत्वस्याशक्यवचनतया त्वदभिमतकारणताया

रश्मिः ।

जातिसमवाययोः स्थितिकल्पनस्यात्यन्ताप्रामाणिकत्वात् । नित्यद्रव्येषु तत्स्थितेरप्यभ्युपगमैकशरणत्वात् । 'जातिव्यक्तिविभागोयं यथा वस्तुनि कल्पितः' इति षष्ठस्कन्धवाक्याज्जातेरपि 'कल्पनैकशरणत्वाच्च' इति समवायाभ्युपगमसूत्रे नित्यसंबन्धस्याप्यनङ्गीकारादत्र समवायोपि दूषितः । तेन ब्रह्म ब्रह्मत्वं ब्रह्मत्वत्वसमवायस्थले तादात्म्यम् । प्रकृतमनुसरामः । ननु मिथ्यात्वेप्यद्वैतसिद्धेः कारणानन्यत्वे क आग्रह इत्यतो 'यतो वा इमानि भूतानि' इत्यादिश्रुतिविरोधं श्रौतपदविरोधं चाहुः **तथा सती**ति मिथ्यात्वे सति । **तदभावे सती**ति कारणत्वाभावे सति । **पूर्वे**ति जन्माद्यधिकरणोपन्यस्ताः । **शुक्त्यादीना**मिति सुबोधिन्यनुसारी कार्यकारणभावः । अन्यत्र त्वविद्यैव समवायिकारणं तेन तव शुक्त्यादीनां न चोत्तरकालिकाबाधप्रसङ्गः । शुक्त्याः सत्त्वेन तत्कार्यस्यापि सत्त्वादिति वाच्यम् । अविद्यायां शुक्त्यादिषु रजतादिबुद्धिमात्रजनकतया रजतादिकारणत्वस्याभिमानमात्रत्वादित्याहुः **पुरुषबुद्धी**ति । अयमर्थः । इयं सुबोधिनीद्वितीयनवमाध्यायस्था तृतीयसुबोधिन्यैकवाक्यतया तत्र करणदोषाः पित्तकामलादयः विषयदोषाश्चाकचिक्यादयः । बुद्धिदोषा अप्रसिद्धा इति चेन्न । बुद्ध्या पदार्थाज्ञानातीतिकरणत्वेनोल्लेखात्करणदोषा गीतोक्तास्तमआदयः इति करणदोषत्वेन प्रसिद्धत्वात् । **शुक्त्यादिष्वि**ति शुक्तौ रजतमित्यादौ वैषयिकाधारत्वेन शुक्त्यादिग्रहणाच्छुक्त्या रजतमिति कारणत्वेनाग्रहणादाधारत्वेन निर्देशः । शुक्त्यादिसत्त्वे रजतादिबुद्धिसत्त्वं शुक्त्याद्यसत्त्वे रजतादिबुद्ध्यसत्त्वमित्यन्वयव्यतिरेकौ कारणताग्राहकौ । ननु शुक्त्यादिसत्त्वे रजतादिसत्त्वं तदभावे तदभाव इति सुबोधिन्या सिध्यतीति चेन्न । 'सर्वं सर्वमयम्' इति श्रुतेर्योगिनः पूर्णज्ञानिनश्च प्रत्येव तदाविर्भावात् । अन्यान्प्रति तु कारणान्तरनियताविर्भावः । अतः पुरुषबुद्धिदोषरूपकारणेन शुक्त्यादिषु शुक्त्यादिकारणकरजतादिवृत्तिजनकबुद्धिमात्रं मायया बुद्धिबहिःक्षेपकया जन्यते बुद्धिमात्रं जन्यते न तु रजतमित्याक्षेपः । तर्हि स्वप्नवदुत्तरत्र नाशान्न शुक्त्यादि रजतकारणं किंतु मायेति चेन्न । उक्तश्रुत्या सिद्धे शुक्तिकारणत्वे बुद्धेरपि तामसत्वरूपगुणसाहित्ये भ्रमकरणत्वेन तादृशरजतविषयकवृत्त्यात्मकज्ञानजनकबुद्धिक्षेपकमायायां रजतादिकारणत्वस्य प्रयोजिकायां मायायामभिमानमात्रत्वं तेन कुलालपितृवदन्यथासिद्धत्वात् । न च शुक्त्यादिनिष्ठाऽविद्या रजतादिजनिकेति वाच्यम् । उक्तश्रुत्या शुक्त्यादीनां कारणत्वात् । तथा च रजतं कीदृशं शुक्तिकाकारणकं तामसमायाक्षिप्तबुद्धिजन्यवृत्तिरूपज्ञानविषयम् । बुद्धेर्ज्ञानं विषयं ज्ञानस्य वृत्तिरूपस्य रजतं विषयम् । निर्विषयकज्ञानानङ्गीकारान्नैयायिकानां रजतस्थानीयश्रुतिषु मायास्थानीयेश्वरे चैतन्न संभवतीत्याहुः **अपौरुषेये**ति । जातित्वाभावान्न जातिलक्षणो ङीष् । विशेषणद्वयं विवर्तत्ववारणाय । अपौरुषेयायामित्युक्ते मायिकत्वेन विवर्तत्वमत उक्तमीश्वरेति । **तादृशे**ति मायावत्कर्तृत्वाभिमानिवाक्यत्वस्य । सांख्यादीनां निराकरणात्तन्मतेर**शक्यवचनतया त्वदभिमतकारणता** विवर्तकारणता तस्याः । ननु तर्काप्रतिष्ठानादुक्तं शक्यत्वमित्याशङ्क्याहुः

१. 'अपौरुषेय्याम्' इति पाठः ।

भाष्यप्रकाशः ।

वक्तुमशक्यत्वात् । शक्यत्वाभ्युपगमे तर्कवदप्रतिष्ठया सर्वसन्मार्गविप्लवप्रसङ्गात् । किंचात्रेदं वाक्यमुपक्रम उक्त्वाग्रे 'कथमसतः सज्जायेत इति सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीत्'इति सत्पदेन इदमा च सतः कार्यत्वं श्राव्यते । यदि शुक्तिरजतवत् कार्यं स्यात्, सज्जायेतेति सत्पदमिदंकारश्च कुप्येताम् । किंचाग्रे, 'तदैक्षत, बहु स्यां प्रजायेय'इतीक्षणपूर्विका स्वस्यैव बहुभवनरूपा नानाविधजननहेतुका च सृष्टिः श्राव्यते । यदि चोक्तविधं कार्यं स्यात् तदा तस्य मिथ्यात्वेन स्वप्रतियोगित्वबोधकउत्तमपुरुषप्रयोगश्च कुप्येत । किंचाग्रे,

रश्मिः ।

शक्यत्वेति । **सर्वेति** सर्वमार्गतर्काप्रतिष्ठया **सर्वे**त्यादिः । एवं श्रुतिविरोधं परिहृत्य श्रौतपदविरोधं परिहरन्ति स्म **किंचात्रेदमि**त्यादि । **इदं वाक्यं** वाचारम्भणवाक्यम् । **स्वप्रतियोगीति** स्वमात्मा तत्तादात्म्यसंबन्धबोधकः । **उत्तमेति** स्वनिष्ठसत्तानुकूलव्यापारवानहं बहुसत्ताघटितः स्यामित्युत्तमपुरुषः । **किंचाग्र** इति । 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' इति । तत्तेजोऽसृजत तत्तेज ऐक्षत बहुस्यां प्रजायेय' इति । अत्र सच्छब्दार्थः यथाकथंचिज्ज्ञापयितुम् 'आकाशस्तल्लिङ्गात्' इत्यधिकरणन्यायेन ईक्षतिलिङ्गेन तेजःपदवाच्यं ब्रह्म तेन सत्पदार्थो वैश्वानराधिकरणोक्तोग्निः । 'समानाः प्रजाः प्रजायन्ते' इति । तथा च सुबोधिनी । ब्रह्म तर्हि अग्निरिति । अग्रे 'ता आप ऐक्षन्त बह्व्यः स्याम प्रजायेमहि'इति । तासामीक्षतिसंबन्धः स्पष्टः । **आरणे**ऽत उक्तेः । अत्रेक्षत्यनुक्तिर्बृहदारण्यके 'अन्नं ब्रह्म इत्येके' इत्यत्रैकपदमन्यार्थकमिति । अग्रे 'तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्याण्डजं जीवजमुद्भिज्जम्' इति । अत्र व्याख्याकृदथेत्याहृत्य पूर्वाध्यायोक्तभूतान्याह । सुगमं तत् । अथेत्यनध्याहारे तु तृतीयस्कन्धषष्ठपञ्चमाध्यायमनुसंधेयम् । तदा त्वत्रिवृत्कृतदेवतारूपास्तेजआदयः । एषां भूतानां तेजआदीनां निमित्तकारणकासमवाय्यपेक्ष्यमाणानाम् । सतो महतः स्रष्टुः । तेज ईक्षितृत्वगुणविशिष्टं जातं तदण्डस्थितं 'द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम्' इति वाक्यात् । न चैकस्य जन्यजनकभावो विरुद्ध इति वाच्यम् । अण्डजं सत्त्वरजआदिरूपेऽण्डे महत्स्रष्टुरानन्दमयात्पक्षिरूपान्निमित्तमात्राज्जाते यत् 'वीर्यमाधत्त वीर्यवान्' इतिवाक्योक्तं वीर्यं तदण्डजं समवायिकारणं जनकम्, जन्यं तु तेजोम्यादि । अष्टमासनिपीततोयस्य वर्षाकाले मोकस्मरणात् । 'सूर्योग्निरग्निः सूर्यः' इति ब्राह्मणादुभयोरेकस्योक्तिर्न विरुद्धा । संहितातृतीयाष्टकोक्ता वयःसृष्टिरुक्ता । सर्पसृष्टिस्तु 'शब्द इति चेत्' इति सूत्रे । दीक्षितवादसृष्टिः । (सूर्यस्य प्रकाश इति प्रयोगात्तेजः कार्यरूपमपीति वक्तव्यम् । नन्वेवं तेजः प्रकाश इत्यभेदभानमपीति चेन्न । ईक्षितृत्ववैशिष्ट्येनालौकिकत्वात् ।) 'एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम्' इति वाक्याद्बीजपदम् । अस्य पुंसो वीर्यं जलम् । नारिकेलफलवदण्डमिति । आप ईक्षितृत्वगुणविशिष्टा जाताः । ताः सर्वप्राणरूपा जीवाः । 'आपोमयः प्राणः' इति वक्ष्यमाणत्वात् । 'तृतीयं सर्वभूतस्थम्' इति वाक्यात् । वक्ष्यति च 'अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्यो मध्येभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्योग्रेभ्याहन्याज्जीवन् स्रवेत्स एष जीवेनात्मनानुप्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठत्यस्य यदेका[१]शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति'इत्यन्वयव्यतिरेकावुक्तौ । इदं जीवजम् । 'वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्' इति श्रुतेर्बीजमन्यासामपां तेजोनिमित्तम् । अन्नं नेक्षितृत्वविशिष्टम् । विष्णुरूपत्रयानन्तरम् । 'पृथिवी वा अन्नम्' इति श्रुतिः । 'पृथिव्या ओषधयः ओषधिभ्योन्नम्' इति श्रुतिश्चैकार्थेत्युद्भिज्जम्

१. स्रवेदिति सर्वत्र पाठः ।

भाष्यप्रकाशः ।

'सेय देवतैक्षत'इत्यादिनोक्ते त्रिवृत्करणेक्षणे, 'इमास्तिस्रो देवता' इति बोधिता देवतानां या ब्रह्मप्रत्यक्षगोचरता सापि ब्रह्मणो भ्रमराहित्यात् कुप्येत । न च 'अपागादग्नेरग्नित्वम्'इति निगमनवाक्यविरोधः । शिष्यस्यार्वाचीनतया अग्नित्वादीन् स्वाभाविकत्वेनावधारयतस्तादृशा-वधारणनिवृत्त्यर्थं तस्य वाक्यस्य तत्राभिमन्यमानस्वाभाविकताऽपगतिबोधकतया विरोधाभावात् । अत एतैः शब्दैः 'इदं सर्वं यदयमात्मा', 'सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद'इत्यादिभिश्च कार्यस्य कारणाभिन्नत्वमेव वाक्यार्थो, न मिथ्यात्वमित्यर्थः ।

रश्मिः ।

'सर्वमत्तुमध्रियत' इति बृहदारण्यकाद्योगार्थम् । अत्र निमित्तकारणन्यायः । समवाय्यौषधिजं बीजं ब्रीह्यादि । नात्र 'सदेव सोम्य' इत्यत्र चिदानन्दयोरुपलक्षणम् । युक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधे 'कथं नु खलु सोम्यैवं स्यादसतः सज्जायेत' इति युक्त्योक्तैवकारेण च द्वितीयाध्यायविषयत्वावगमात् । 'वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः' इति । 'आत्मैवेदमग्र आसीत्पुरुषविधः' इति च श्रुत्योर्विरोधः । तस्य परिहारः । 'भावे चोपलब्धेः' इति सूत्रे श्रुतिप्रामाण्यात्संहितायां गीतोपष्टब्धायां बृहदारण्यके च श्रावणा-च्छाखाभेदेन विकल्पोपि प्रामाणिकः । श्रुत्यविरुद्धप्रत्यक्षविषयघटादिविद्यमानत्ववत् । उभयविधप्रपञ्चस्य सदैव सत्यत्वात्कारणानन्यत्वम् । 'सत्त्वाच्चावरस्य' इत्यत्र सूत्रे । एतदग्र इत्यर्थः । **सेयमिति** । अव्याकृता नामरूपाभ्याम् । **उक्ते** इति त्रिवृत्करणं चेक्षणं च त्रिवृत्करणेक्षणे द्वन्द्वः द्विवचनान्तं पदम् । उक्त-त्रिवृत्करणस्य श्रुतिमाहुः **इमास्तिस्र** इति । 'हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि इति तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीति सेयं देवतेमास्तिस्रो देवता अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत्तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोद्यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवतीति तन्मे विजानीहि' इति । देवतास्तेजोबन्नात्मिकाः । अनेन जीवेनेति विराड्जीवेन । परिदृश्यमानसूर्यरूपाग्निनात्मना । 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' इति श्रुतेः । जीवेना-प्सु 'अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य' इत्युक्तश्रुतेः । आत्मना विष्णुनान्नेषु । तासामिति देवतानाम् । त्रिवृतं त्रिरूपा। **बोधितेति** इदंपदेन बोधिता। **निगमनेति** त्रिवृत्करणनिगमनेत्यर्थः। न च सामान्य-खण्डकं वाक्यमिति वाच्यम् । कारणसत्यत्वेन जगत्सत्यत्वाङ्गीकारात् । **शिष्यस्येति** श्वेतकेतोः । अस्य पितोद्दालक आरुणिर्गुरुः । **स्वाभाविकेति** कारणरूपातिरिक्तरूपेण सामान्येन । **तादृशेति** अग्नित्वेनादित्यत्वेन विद्युत्त्वेन चावधारणेत्यर्थः । निवृत्तिस्तु भवतु तर्हि अग्निरित्याचार्यमतेपि ब्रह्मत्वं सामान्यं नाग्नित्वम् । व्यक्तेरभेदस्य जातिबाधकेषु गणनात् । 'स्मृतिप्रत्यक्षैतिह्यानुमानैरादित्यमण्डलं विधास्यते' तत्रादित्यत्वमग्नित्वम् । श्रुत्या स्मृत्यादिबाधात् । विद्युत्त्वं तु 'विद्युद्ब्रह्मेत्याहुः' इति बृहदा-रण्यकादनियतकर्तृकवाक्यप्रयुक्तं संदिग्धम् । चन्द्रमस्त्वं नात्र विचारितम् । तैत्तिरीये तु 'महा-चमस्यः प्रवेदयते' इति प्रसिद्धं च । तदपि न सामान्यम् । व्यक्तेरभेदात् । इति प्रकारेण भवति । व्यक्तौ शक्तिः प्रस्थानरत्नाकरे उपपादितैव । अग्निस्त्रिवृत्कृत इति टीकायाम् । 'सदेव सोम्येदम्' इत्यत्र सच्छब्दार्थेनुमितोग्निरत्रिवृत्कृतः । यो यज्जनकः स तद्गुणकः यस्तद्गुणकः स तदात्मक इति सांख्यव्याप्तेः, इयं न दुष्टा । 'समानाः प्रजाः प्रजायन्ते' इति संहितायाः । स्मृत्यादिप्रधानानामादित्योनुमितः । न्यासिनामारणप्रधानानामापोनुमिता इति । अधुना भाष्यं विवृण्वन्ति **अत एतैरिति** इतिनामधेय-सदादिशब्दैः । इत्थं च विकारो वाङ्मात्रेणैवारभ्यते । यथा दधि विकारो दुग्धस्य, स कार्यदशायां दधीति वाङ्मात्रेण भण्यते, वस्तुतो दुग्धत्वम् पदार्थान्तराभावात् । आतञ्चनमिति चेन्न । एकदेश-

ये पुनर्मिथ्यात्वं तामसबुद्धयः प्रतिपादयन्ति तैर्ब्रह्मवादाः सूत्रश्रुति-

भाष्यप्रकाशः।

अत्र शंकराचार्या मायावादमवतारयन्ति। मृत्तिकेत्येव सत्यमित्यवधारणात् कारणमेव सत्यं कार्यं त्वनृतं नामधेयमात्रत्वात्। दार्ष्टान्तिकवाक्येपि 'अपागादग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्' इति ब्रह्मव्यतिरेकेणाभावकथनाच्च। न च सूत्रेऽनन्यत्वपदाम्नास्यायमर्थः। किंतु यथैको वृक्षो नानाशाख एवं ब्रह्मापि स्वात्मनैकं कार्यात्मना नानेति मृदादिदृष्टान्तमालोच्यार्थो वाच्य इति वाच्यम्। पूर्वोक्तावधारणादिविरोधेन दार्ष्टान्तिकवाक्येऽपि 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्यम्' इति परमकारणस्यैवैकस्य सत्यत्वावधारणेन च तथा वक्तुमशक्यत्वात्। किंच समाप्तौ पुरुषं सौम्योत हस्तगृहीतमिति नवमे पर्याये तस्करदृष्टान्तेनानृताभिसंधस्य बन्धनं सत्याभिसंधस्य मोक्षं च दर्शयता एकत्वस्यैव पारमार्थिकत्वं नानात्वस्य च मिथ्यात्वमेव स्फुटीक्रियते। यदि ह्येकत्वनानात्वयोरुभयोरपि सत्यत्वं स्यात् तदा व्यवहारगोचरत्वसामान्येऽप्येकस्यैवानृताभिसन्धत्वं नोच्येत। किंच। 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इति भेददृष्ट्यपवादेनैतदेव प्रदर्श्यते। यद्युभयसत्यता स्यान्नानात्वं नापोद्येत। अतोऽनादिकालप्रवृत्ताऽविद्यावशादयं भेदः प्रतिभासते, न तु परमार्थतोस्ति। न चैवं सति प्रत्यक्षादिप्रमाणानर्थक्यं विधिनिषेधशास्त्राणां चानर्थक्यम्, मोक्षशास्त्रेणानृतेन ब्रह्मज्ञानानुत्पत्तिप्रसङ्गो वा शङ्कनीयः। मिथ्याभूतस्याप्यस्य व्यवहारस्य बाधकप्रत्ययाभावेन प्रवृत्तेः संभवात्। प्रत्यक्षादीनां प्रमाणानां विधिनिषेधशास्त्राणां चाप्यविद्यावद्विषयत्वेन बाधकप्रत्ययाभावादेव प्रवृत्तिसंभवेनानर्थक्याभावात्। मोक्षशास्त्रस्यापि ब्रह्मज्ञानात् प्रागसत्यत्वाप्रतिपत्त्या तस्याप्यप्रतिघातात्। अनृतादपि तस्मात् सत्यब्रह्मज्ञानावाप्तिस्तु यथा स्वप्नात् शुभाशुभसूचनं, लिप्यक्षरेभ्यश्च पारमार्थिकवर्णप्रतिपत्तिस्तथा भविष्यतीति मायामात्रमेवेदं सर्वमिति तन्मतं संग्रहेणानूद्य दूषयन्ति ये पुनरित्यादि। तामसबुद्धय इति।

रश्मिः।

विकृतन्यायात्। रभि शब्दे, रभ राभस्ये वा। दिधीति विकारे रभसाद्वा नामधेयं प्रयोगः क्रियते इत्यारभ्यत इत्यस्यार्थः। दृष्टान्तत्वान्मृत्तिकेत्येव सत्यमित्युक्तम्।

ये पुनरिति भाष्यमवतारयन्ति अत्र शंकराचार्या इति। ब्रह्मव्यतिरेकेणेति रूपत्रयस्योपाधिरूपस्य 'अजामेकाम्' इति श्रुत्युक्तस्य सत्यत्वविधानात्सगुणब्रह्मव्यतिरेकेणेत्यर्थः। पूर्वोक्तेति। आदिपदेन वागारम्भणोक्तिः संगृह्यते। दार्ष्टान्तिकेति 'एवꣳसौम्य स आदेशो भवति' इति श्रुतेर्दार्ष्टान्तिके। वाक्यं नवकृत्वउपदेशवाक्यम्। तथेति कार्यात्मना नानेति वक्तुम्। समाप्ताविति छान्दोग्ये प्रपाठकसमाप्तौ। एकत्वस्येति कश्चित्कंचित्तस्करबुद्ध्या गृह्णाति स यद्यनृतवादी तप्तं परशुं गृह्णाति तर्हि दहन्तं तं बध्नाति। तथा नानात्ववादी बध्यते। सत्यवादी यदि तर्हि न दहति मुच्यते च। तथा 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' इत्येकत्वदशायां मुच्यते इत्येकत्वस्यैवेत्यादिः। व्यवहारेति एकत्वनानात्वव्यवहारविषयत्वसामान्ये। प्रत्यक्षादीति। निर्विषयत्वादिति भावः। आनर्थक्यमिति भेदापेक्षत्वात्तथेत्यर्थः। बाधकेति नेदं रजतमितिवद्बाधकप्रत्ययाभावेन। संभवादिति। तथा च प्राग्बोधात्स्वप्नव्यवहारस्य सत्यत्वोपपत्तिरिव नानात्वस्य सत्यत्वोपपत्तिरिति भावः। स्वप्नादिति 'यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति। समृद्धिं तत्र जानीयात्त-

भाष्यप्रकाशः ।

'माया च तमोरूपा' इति श्रुतेर्मायाकृतबुद्धयः । अयमर्थः । कारणत्वबोधकश्रुतीनां सर्वस्यात्मत्व-ब्रह्मत्वबोधकश्रुतीनां चानुरोधेन कार्यस्य कारणानन्यत्वे सिद्धेऽग्नित्वाद्यपगमबोधकवाक्यस्य व्याख्यातरीत्यार्थे बुद्धे, 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्यम्' इत्यत्राप्यणिमपरिचायनार्थस्य सर्वस्यैव सन्निहिततया 'तत्' पदेन परामर्शात् तस्यैव सत्यत्वं विधीयते, सर्वगतमेव चैकत्वमनूद्यत

रश्मिः ।

स्मिन्स्वप्ननिदर्शने' इति श्रुतेः स्वप्नाध्यायाच्च । मायाकृतेति विवर्तविषयिणी यतः । कारणत्वेति 'यतो वा इमानि' इत्यादीनाम् । सर्वस्येति 'इदं सर्वम्' इत्याद्युक्तानां 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादीनां च । अनुरोधेनेति कारणत्वस्याभिन्ननिमित्तोपादानत्वस्य कार्यमात्र उभयविधकारणदर्शनाच्छ्रुतावपि वक्तव्यत्वेन तादृशकारणत्वबोधकानां श्रुतीनामनुरोधः मुक्तिपूर्वकशक्यार्थादरणम् । तथा खपुष्पादौ ब्रह्मत्वात्मत्वविधानसंभवेप्युत्तरकालीनबाधाभावेन वैधर्म्यात्तादृशशक्यार्थादरणं तेनेत्यर्थः । सिद्ध इति न तु नामधेयमात्रत्वात्कार्यमनृतमित्यर्थः । छान्दोग्यीयं विचारयन्ति अग्नित्वेत्यादि । पूर्वश्रुतयः 'तन्मे विजानीहि' इत्यन्ता व्याख्याताः । अधुनेयं व्याक्रियते । अग्नित्वादीनित्यादिना व्याख्याता । सच्छब्दार्थेऽग्नौ रूपत्रयं निमित्तकारणरूपमसमवायिकारणमिति प्रसिद्धम् । तेजसस्तद्रूपं न तु सगुणत्वापादकं मायारूपम् । अजायाः सदानन्दशक्तेर्जगज्जन्मादिकर्त्र्या रूपं वा । 'पतिश्च पत्नी चाभवताम्' इति श्रुतौ श्रावणं पत्नीरूपाजासत्तामन्तरा न संभवति । तदुक्तं 'सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणाश्रयः' इति । एवमग्रेपि । 'अपागादग्नेरग्नित्वम्' इति पूर्वं व्याख्यातम् । विकारोऽत्र प्रपञ्चः स वाचारम्भणम् । ततश्च विकारे नामधेयंप्रयोगो रभसात् । त्रीणि रूपाण्येव सत्यम् । व्यवहारदशायां रूपेष्वेव प्रयोगो नामधेयमिति । द्रव्याणि रूपमात्राणीति नास्तिकमतं तद्वारणाय 'यदेकमव्यक्तमनन्तरूपम्' इति श्रुतिरनुसंधेया । यथाकथंचित्सदसती मायेति तस्याः सद्रूपमुक्तम् । अग्रे स्पष्टम् । एवमग्नित्वादीनित्यादिना व्याख्यातरीत्या स्वीयार्थे बुद्ध इत्यर्थः । यदपि स्वात्मनैकं कार्यात्मना नानेत्यर्थे दूषणं पूर्वोक्तावधारणेत्यादिनोक्तं तत्परिहरन्ति ऐतदात्म्यमिति । अणिमेत्यादि । 'य एषोणिमा' इति पूर्वश्रुत्युक्तस्य अणोः । अण शब्दे भ्वा. प. से औणादिकः उप्रत्ययः शब्दकर्ता भावे इमनिच् शब्दकर्तृभावः शब्दोणिमा ऊँकारः । एतदात्मनो भावः । इदं सर्वं तन्न शब्दमात्रं किंतु सत्यं सदानन्दरूपम् । अत्र विद्युद्ब्रह्मेत्याहुरिति बृहदारण्यकमतं सेत्स्यति । आरणे 'कोऽन्तरिक्षे शब्दं करोतीति वासिष्ठो रौहिणो मीमाꣳसांचक्रे तस्यैषा भवति वाश्रेव विद्युत् इति । ब्रह्मण उदरणमसि ब्रह्मणः उदीरणमसि ब्रह्मण आस्तरणमसि ब्रह्मण उपस्तरणमसि' इति । वासिष्ठो गोत्रतः रोहिणस्यापत्यम् । वाश्रेव विद्युदिति । वा च श्रा च वाश्रे । वा गतिगन्धनयोः, श्रा पाके । पाकोऽग्निसंयोगः । वकार इवार्थे । गतिगन्धनकर्त्री वाक्षरमिव अग्निसंयोगवती च विद्युत् । वातीति विः । द्योततेऽग्निसंयोगं कुरुते इति द्युत् । द्युत दीप्तौ । कर्त्रनिर्देशादाह ब्रह्मण इति । उत् अधिकं अरणं गृहं रक्षितृ । 'यज्जञ्म्यते तद् विद्योतते' इति संहितासमाप्तौ । जभु गात्रविनामे. भ्वा. आ. से । उदीरणमिति विदीरणमुख्यासि । 'यद्विद्योतते तद्विजृम्भते' इति बृहदारण्यकात् । आस्तरणमिति । 'जृम्भतो ददृशे त्विदम्' इति श्रीभागवते जम्भारूपास्तरणे इदं विश्वात्मकं ब्रह्म ददृश इति । उपस्तरणमिति आच्छादनम् । 'आकाशशरीरं ब्रह्म' इति सुबोधिन्यां तदुक्तम् । तस्याणिम्नः परिचायनं विधेयत्वं अर्थः प्रयोजनं यस्य सर्वस्योद्देश्यस्य तदणिमपरिचायनार्थं तस्य । तस्यैवेति ससंघातस्य जीवस्य । प्रपाठकोक्तानेकपदार्थेषु कथं तदित्येकवचनं तत्राहुः सर्वगतमिति । 'यथा तु खलु सौम्येमास्तिस्रो देवताः

भाष्यप्रकाशः।

इति मन्तव्यम्। अन्यथा, स आत्मा स सत्यमित्येवं पठेत्। न च तस्करदृष्टान्तस्यानृताभिसंधत्वोक्त्या नानात्वस्य मिथ्यात्वसिद्धिः। अत्र तत्तत्कार्यार्थं विलक्षणतत्तत्सृष्टिकथनात्। 'बहु स्याम्' इतीच्छयैकत्वविरुद्धनानात्ववत्, 'प्रजायेय' इतीच्छया सूनृतवाणीरूपर्तविरुद्धातथ्यवाणीरूपानृतात्मकत्वेनाप्यधर्मार्थं भवनाद् व्यवहारगोचरतायां विशेषेणानृताभिसंधबन्धनस्याप्यधर्ममूलकतया नानात्वमिथ्याभावासाधकत्वात्। अन्यथानृतस्य मिथ्यात्वे तेनात्मान्तर्धानं नोच्येत तस्य वस्तुकार्यत्वात्। न च तस्य मिथ्यात्वेनानन्तर्धानादेव दाह इति वाच्यम्। श्रुतावनृतकृतान्तर्धानस्यैव दाहहेतुत्वकथनेन तद्विरोधापत्तेः। न च नानात्वदर्शननिन्दया तस्य मिथ्यात्वसिद्धिः। तस्याश्चक्षुश्चक्षुरित्यादिना ब्रह्मस्वरूपमुपक्रम्य पठितत्वेन ब्रह्मस्वरूप इन्द्रियादिमत्तया जीवदेहवन्नानात्वस्यैव मिथ्यात्वं सिद्ध्यति, न कार्यनानात्वस्येति तस्यात्र वाक्याभासत्वात् न चानादिकालप्रवृत्ताविद्यावशाद् भेदप्रतिभास इत्यपि युक्तम्। अस्य भेदस्य

रश्मिः।

पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरस्तादेव भवति अस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम्। स य एषोणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो' इति श्रुतेः। श्रुतौ पुरुषं करपादादिलक्षणम्। **अन्यथे**ति संनिहितसर्वपरामर्शकत्वाभावेन परदेवतामात्रपरत्वे। **स आत्मे**ति परदेवता आत्मा। ननु स इति पुल्लिङ्गनिर्देश इति चेन्न। विधेयलिङ्गत्वात्। **स सत्य**मित्यत्र स इत्यात्मा उद्देश्यलिङ्गमत्रोक्तम्। **तस्करे**ति नवमपर्याये 'पुरुषꣳसोम्योत हस्तगृहीतमानयन्त्यपहार्षीत्स्तेयमकार्षीत्परशुमस्मै तपतेति स यदि तस्य कर्ता भवति तत एवानृतमात्मानं कुरुते सोनृताभिसंध्यनृतेनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स दह्यतेथ हन्यते' इति तस्करदृष्टान्तस्यानृताभिसंधत्वोक्तिः। **अत्रे**ति विलक्षणक्रीडायाम्। **तत्तत्कार्यार्थं** स्तेयानयनादिकार्यार्थम्। **विलक्षणा** तस्करत्वराजकीयत्वादिभिः पुरुषादिसृष्टिः तस्याः कथनात्। अत्र प्रमाणमाहुः **बहु स्या**मितीति। **नानात्वे**ति नानात्वस्य मिथ्याभावो मिथ्यात्वं तस्यासाधकत्वात्। किं त्वधर्मरूपादृष्टसाधकत्वम्। अष्टादशे **गीतायां** 'पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे। सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्। अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्। विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्। शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः। न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः' इति। त एते सांख्ये प्रोक्ता अत्रापि व्यवहारगोचरतायां विरुद्धसर्वधर्माधारत्वे युज्यन्ते। **अन्यथे**ति एवमनङ्गीकारे। **नोच्येते**ति 'अनृतेनात्मानमन्तर्धाय' इति श्रुत्या नोच्येत। **तस्ये**ति अन्तर्धानस्य। **तस्ये**ति अनृतस्य। आत्मा**नन्तर्धानादेव**। **श्रुतावि**ति। 'अनृतेनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स दह्यते' इत्युक्तश्रुतौ। दृष्टान्तद्वारानृतस्य मिथ्यात्वं साधयित्वा निषेधन्ति **न चे**ति। तस्यानृतस्य मिथ्यात्वे दृष्टान्तो 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इत्यत्र श्रुत्यन्तरे नानात्वं तस्य निन्दया दार्ष्टान्तिकेपि तद्वदनृतस्य निन्दास्थानीयं मिथ्यात्वं तस्य सिद्धिः। **तस्ये**ति वाक्यस्य। अधुना कर्तृभेदाद्दृष्टान्ते तेनानृतस्य मिथ्यात्वसिद्धिमाशङ्क्य निषेधन्ति **न चानादी**ति। **भेदो** नानात्वम्। तद्वदनृतस्य सूनृतवाणीरूपर्तविरुद्धातथ्यवाणीरूपस्य नञर्थविरोधसूच्यार्थभेदस्य मायामात्रस्य प्रकृते प्रतिभास इत्यनृतमात्रस्य मिथ्यात्वमित्यर्थः। अस्तु भेदस्य मायामात्रत्वम्। भिदां 'मायामात्रमनूद्याऽन्ते' इति वाक्यात्। बहुभवनेच्छाविषयस्य बहुत्वसंख्यारूपस्येवशब्दार्थस्य भेदस्य विभागसंकाशस्य विरुद्धधर्मार्थमाविर्भावितस्य नाविद्यावशात्प्रतिभासः 'अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्' इति गीतावाक्यादित्याहुः **अस्य भेदस्ये**ति।

नाशनेन तिलापःकृता वेदितव्याः । अन्तःप्रविष्टचोरवधार्थमेवैष आरम्भः । अलौकिकप्रमेये सूत्रानुसारेणैव निर्णय उचितः । न स्वतन्त्रतया किञ्चित् परिकल्पनम् ।

भाष्यप्रकाशः ।

ब्रह्मेच्छयोक्तत्वात् तस्य च ब्रह्मणः प्रतिभास इति त्रिवृत्करणेक्षण एव प्रसाधितत्वेनास्याविद्याकृतत्वाभावात् । तत्कृतत्वे ब्रह्मणोऽपि जीवतौल्यापत्तेः । अत एवं प्रतिपादनं सूत्रश्रुत्योर्नाशनायैवेति स्वस्याहल्लिकतुल्यतया ब्रह्मवादा अप्येवं स्वार्थत्वेन तिलापःकृता वेद्या इति ।

रश्मिः ।

ब्रह्मेति 'एकोहं बहु स्याम्' इति श्रुतेः । न चात्रापि पूर्वोक्तप्रकार इति शङ्क्यम् । श्रुतावेकत्वबहुत्वरूपविरुद्धधर्मदर्शनेन कर्तृभेदे विरोधाभावप्रसङ्गात् । **त्रिवृदिति** 'सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवताः' इति विषये भेदस्य निविष्टत्वादविद्याकृतत्वे ब्रह्मणो भ्रमवत्ताप्रसङ्गात्प्रसाधितत्वेन । **अस्येति** संख्यारूपभेदस्य संख्याप्रयोजकेवशब्दार्थस्य भेदस्येति सारम् । **जीवतौल्येति** भ्रमवत्तापत्त्या तथेत्यर्थः । अविद्यासंबन्धाद्वा । **सूत्रेति** यदि सूत्राणि न स्युः श्रुतयः पुष्टार्था न स्युः । श्रुतयः पुष्टार्था न स्युरिति युक्तिनिरूपणे सूत्राणामभ्यर्हितत्वात्पूर्वनिपातः । धर्मादित्वाद्वा । **भाष्ये नाशनेन** सतः प्रत्यदर्शनप्रापणेन । नहि सन्त इममर्थमुत्तरकालबाधितमुत्तरकालीनाबाध्यत्वेन पश्यन्ति, अतः सूत्रश्रुतयो नष्टाः । 'योऽन्यथासन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते । किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा' इति । सूत्रश्रुतिरूपवेदरूपशरीरेभ्य आत्मापहरणात् । 'सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि तत्' इतीच्छया वेदान्तेभ्यो ब्रह्मणे च ब्रह्मवादा दत्ताः **तिलापःकृताः** इत्यर्थकप्रतिपादनं श्रुत्युक्तान्यथोपपादनं **सूत्रश्रुत्योर्नाशनाय** वेदशरीरयोरस्पृश्यत्वाय । यथार्थस्य जीवस्थानीयस्य त्याजनात् । नन्वाचार्यादत्ता ब्रह्मवादा नास्पृश्या इत्याशङ्क्याहुः **स्वस्याहल्लिकेति** । स्वेन त्यक्तयथार्थब्रह्मणा स्वीकृतान्यथाप्रतिपादनेन स्वस्याहल्लिकतुल्यता कृता । अहनि लीयत इति व्युत्पत्त्या मिथ्याशरीरतुल्यतया । अयं शब्दः शाकल्यब्राह्मणे 'कस्मिन्नु हृदयं प्रतिष्ठितं भवति' इति शाकल्यप्रश्ने याज्ञवल्क्योऽहल्लिकेति होवाचेति तत्रास्ति । **एवं स्वार्थेति** स्वमहल्लिकातुल्यस्तदीयार्थोऽन्यथाऽऽत्मविशिष्टवेदरूपशरीररूपः निर्गतात्मा तत्त्वेन । यद्यप्यन्तःप्रविष्टेत्यादिभाष्यं पूर्वभाष्येन्वेति । यतस्तिलापःकृता वेदितव्या अतो**न्तःप्रविष्टे**त्यादिः । अर्थस्तु । पद्मपुराणोत्तरखण्डे उमामहेश्वरसंवादे पाखण्डोत्पत्तिकथनैकचत्वारिंशाध्याये पाखण्डमोहनासुरलीलाऽमङ्गलं मन्यमानाय तारकषडक्षरमन्त्रोपदेशः कृतः । 'श्रीरामाय नमः' इति मन्त्रः । तद्वत् प्रकृतेपि पाशुपतशास्त्रवन्मीमांसायां कृतायां 'राम'मन्त्रोपदेशवत् किंचिदभीप्सितं तत्स्थानीयं सूत्रमिति तदभिमतमर्थं तदप्रकाशितमनाज्ञसत्वात् । स्वयं तु भक्तिमार्गप्रचारार्थमाविर्भूताः प्रकाशयांचक्रुः **अन्तःप्रविष्टेत्यादि** । न चाश्लीलभाषणमिति वाच्यम् । ब्रह्मविदां न कुत्रापि कुत्सितत्वभानमिति । 'सोन्तरादन्तरं प्राविशत्' इति श्रुतेरन्तःप्रवेशस्वभावः शिवस्य । **चोर** आत्मापहारी । 'त्वं च रुद्र महाबाहो मोहनार्थं सुरद्विषाम् । पाखण्डाचरणं धर्मं कुरुष्व सुरसत्तम' इत्याज्ञावत्त्वात् । तद्वधः शब्दसृष्टिगतशब्दात्मकाद्ब्रह्मवादेन । 'तच्छ्रुत्वाहं यथोक्तं तु वासुदेवेन भामिनि । समुद्विग्नमना दीनो भूत्वा' इति वाक्यात्तदुद्वेगादप्राप्तं तन्निवर्तकेन तद्गतब्रह्मनिराकरणाद्वधः । वध संयमने । चु. प. स. । 'भक्त्या त्वाद्यो द्वितीयस्तु तदभावाद्धरौ सदा' इति वाक्यात् । आद्य आविर्भावः । द्वितीयस्तिरोभावः । न च तस्यान्तःप्रविष्टस्य भक्त्याद्य आविर्भाव इति वाच्यम् । प्रपञ्चस्थितभगवदाकारद्वेषादिना तदभावात् । न चाभिमानिकजीवदर्शनमिति वाच्यम् । संयमनार्थकवधेः प्रयोगात् । **आरम्भः** सूत्रारम्भः । एतदादि परिकल्पनान्तं

भाष्यप्रकाशः।

रामानुजाचार्या भास्कराचार्याश्चेदं सूत्रं भेदवादनिराकरणाय, मायावादनिराकरणं तु प्रासङ्गिकमिति तं स्वयं दूषयन्ति तत्राहुः **अन्तरित्यादि**। तत्र प्रकारमाहुः **अलौकिकेत्यादि**। तथा च मायावादिभिः स्वस्य वेदान्तित्वाभिमानाद् वाक्याभासान्युपन्यस्य श्रुतिसूत्रन्यक्कारेण या कल्पनैतैः शब्दैः क्रियते सैवात्रानन्यत्वसूत्रेण मुख्यतया निवार्यते । अतो भेदवादनिराकृतिरेव प्रासङ्गिकीत्यर्थः । नन्वत्र किं मानमत आहुः **तर्केत्यादि** । काणादैर्हि भेदवादोज्जीवनं विलक्षणबुद्धिबोध्यत्वशब्दभेदकार्यभेदकालभेदाकारभेदोत्पत्तिनाशप्रतीतिसंख्याभेदैः

रश्मिः।

च भाष्यं स्पष्टम् । तथापि युक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारे नैयायिकभेदवादनिराकरणमन्तरा तदनन्यत्वरूपसूत्रांशार्थास्थैर्यात् प्रासङ्गिकमायावादनिराकरणं न युक्तं किंतु भेदवादनिराकरणं प्राप्तम्। **निराकर्तव्यमि**ति भाष्यं भूतपूर्वं न संगतं भेदानिराकरणात् । तथा चायं सूत्रार्थः। तस्मात्कारणादन्यत् भेदवत् कार्यम् । कार्यं जगत् कारणात् भिद्यते । प्रागभावप्रतियोगित्वात् । प्रागभावखण्डने तु तन्मते नास्ति । तदनन्यत्वं तु तदधीनत्वनिषन्धनलक्षणया । अभावस्य प्रतियोगिनिरूपणाधीननिरूपणत्वात् । भेदे युक्तिविश्रामे तात्पर्यानुपपत्तिरूपलक्षणाबीजसत्त्वात् (अत उक्तं भेदवादे) ननु के हेतवोऽभेदस्य लाक्षणिकत्व इत्यत आहुः **आरम्भणशब्दादिभ्य** इति। श्रुतावारम्भणशब्द आदिर्येषां विकाराणां कार्यरूपाणां ते आरम्भणशब्दादयः तेभ्यः। नहि कार्यं कारणं भवति । परमाणव एव सत्यमिति मृत्तिकेत्येव सत्यमित्यस्यार्थः । एवं शङ्काया अनिराकरणाल्लाघवेन भेददूषकमतयोर्मायावादनिराकरणं प्रथमं भेदवादनिराकरणं प्रासङ्गिकमिति वक्तु**मन्तःप्रविष्टेत्यादि**भाष्यमित्याशयेनावतारयांचक्रुः **रामानुजेत्यादि** । **भेदवादे**ति नैयायिकभेदवादेत्यर्थः । **स्वयमि**ति रामानुजभास्कराचार्याः । **तत्राहुरि**ति भेदनिराकारकमतयोस्तस्य क्रमस्य सत्त्वेप्यत्राभावमाहुरित्यर्थः । **वाक्याभासानी**ति मायावादे 'सत इदमुत्थितं सदिति चेन्नतु तर्कहतम्' इति । विशिष्टाद्वैते 'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्' इत्यादि। यदि भेदवादः स्यात्तदा 'कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्षणं पटतन्तुवत्' इति वाक्यं न स्यादित्येवं भेदाभेदवादे **वाक्याभासानि** । वाक्यानीव भासन्ते यानि तानि वाक्यान्याभासानि । घञ् प्रत्ययान्तं पदमतो न घञन्तं पुंसीत्यस्य प्राप्तिः । **सैवे**ति कल्पनैव । **एवकारेण** भेदवादव्यवच्छेदः। **भेदवादे**ति तदनन्यत्वपदेनोपस्थितत्वादिति भावः । एवकारेण मायावादिकल्पनाव्यवच्छेदः। अत्र पादार्थाव्याप्तिः साग्रे निराकरिष्यन्ति। **अन्तरि**त्यादिपरिकल्पनमित्यन्तभाष्यार्थस्तु । अन्तः प्रविष्टः सिद्धान्तक्रमः विपरीतक्रमरूपचोरः । सिद्धान्तक्रमापहारित्वात् । तद्वैपरीत्ये तद्वधः । अन्यत्पूर्ववत् । **सूत्रानुसारेणे**ति । न हि तदनन्यत्वपदान्तर्गतान्यत्वमादाय भेदवादनिराकृतिर्मुख्येति वक्तुं शक्यम् । वृत्तित्वात् । विचारभरचातुर्यप्रासङ्गिकीति तु युक्तम्। **वृत्तित्वेपि। न स्वतन्त्रतये**ति । नन्वन्तर्यामिब्राह्मणे चिदचिच्छरीरविशिष्टं प्रसिद्धम्। **अनन्या**देर्युक्तिप्राधान्ये कुतः स्वतन्त्रतेति चेन्न । वृत्तेरेव स्वातन्त्र्यादिति । **नन्वत्रे**ति भेदवाद निराकृतिः प्रासङ्गिकीत्यत्र शब्दरूपं मानं किमिति **प्रश्नः** । **विलक्षणे**ति । न खलु तन्तुपटमृत्पिण्डघटादिषु कार्यकारणविषया बुद्धिरेकरूपा भवतीति भेदः । नहि तन्तवः पट इत्युच्यन्ते पटो वा तन्तव इति शब्दभेदः । नहि मृत्पिण्डेनोदकमानीयते घटेन वा कुड्यं निर्मीयते इति कार्यभेदः । पूर्वकालं कारणं अपरकालं च कार्यमिति कालभेदः । पिण्डाकारं कारणं कार्यं च

भाष्यप्रकाशः ।

कारकव्यापारवैयर्थ्यापादनेन च केवलैस्तर्कैः क्रियते तच्च विलक्षणबुद्धिबोध्यत्वादीनां पञ्चानामेकस्मिन्नपि पुरुषे बालयुवस्थविरादिदशादर्शनेनाभेदसाधकतया साधारणीकरणादुत्पत्तिविनाशयोश्च बुद्ध्यादिवद्भावावस्थान्तरत्वाभ्युपगमेन बहवस्तन्तव एकः पट इति संख्याभेदस्यापि समुदायस्य कारणत्वाङ्गीकारात् तदभावेन तदनङ्गीकारे च कारणगुणानां कार्यगुणारम्भकत्वात् कार्ये बहुत्वापत्त्या द्रव्यगतावस्थानां कारकव्यापारजन्यतया कारकव्यापारवैयर्थ्यनिरासेन च तर्कैरेव

रश्मिः ।

पृथुबुध्नोदराकारमित्याकारभेदः । मृदा घट उत्पन्नस्तथा सत्यामेव मृदि घटो नष्ट इति व्यवह्रियते । इत्युत्पत्तिनाशप्रतीतिः । बहवस्तन्तव एकः पट इति संख्याभेदस्तैः । **कारके**ति । कारणमेव चेत्कार्यं किं कारकव्यापारसाध्यं स्यादिति । विशेषस्तु रामानुजाचार्यभाष्ये द्रष्टव्यः । नन्विमे केवलास्तर्काः किं कारणताग्राहका उत व्याप्तिशोधकाः । पूर्वाभावाद्व्याप्तिशोधका इत्याशयेनाहुः **तच्च विलक्षणे**ति । **अभेदसाधके**ति । तदित्थम् । घटादिः कारणाद्भिन्नः विलक्षणबुद्धिबोध्यत्वात् । शब्दभेदात्-कार्यभेदात्-कालभेदात्-आकारभेदात् । पटादिवत् । इत्यनुमानानि । भवन्ति च पटादिषु विलक्षणा बुद्धिबोध्यत्वादयस्तन्तुभ्योन्तःकारणेभ्यस्तन्त्वादिभ्यो भिन्नत्वमेवं घटादिषु कारणाद् भेदः । तत्र तर्काः यदि कारणभिन्नो न स्याद्विलक्षणबुद्धिबोध्यो न स्यादित्यादयः । एतेषामभेदसाधकत्वं । घटादिः कारणानन्यः विलक्षणबुद्धिबोध्यत्वादिभ्यः बाल-युव-स्थविर-देहवत् । भवन्ति हि बाल-युव-स्थविरदेहे विलक्षणबुद्धिबोध्यत्वादयः शरीरात् । अथ शरीरानन्यत्वं । बालादिदेहसंपृक्ते बालोयं-युवायं-स्थविरोयं देह इति सामानाधिकरण्यात् । एवं घटादयः कारणानन्या इत्यभेदसाधकतया हेतूनां साधारणीकरणादित्यर्थः । साधारणीकरणं पूर्ववत् । तेन विरुद्धा हेतव इत्यर्थः । तर्काणां वा साधारणीकरणात् । यदि कारणाभिन्नो न स्याद्विलक्षणबुद्धिबोध्यो न स्यादित्यादयः । **भावावस्थे**ति । जायते-अस्ति-विपरिणमति-वर्धते-अपक्षीयते-नश्यतीति षड्भावविकाराः । कारणभूतद्रव्यरूपभावस्यावस्थाविशेषा इति तत्तदवस्थस्य तस्यैव द्रव्यस्य ते ते शब्दास्तानि तानि च कार्याणीति युक्तं द्रव्यस्य तत्तदवस्थत्वमित्यभेदसिद्धिः । **संख्याभेदस्ये**ति प्रतीतस्य । **समुदायस्ये**त्येकस्य । **तदभावेन** भेदसाधकत्वाभावेन । **तदनङ्गीकार** इति । एकस्तन्तुसमुदायः कारणमेकः पटः कार्यमित्येवं समुदायानङ्गीकारे । **कारणे**ति । इदं साधारणं रूपादौ संख्याविषयेपि । **सिद्धान्तमुक्तावल्यां** कारणगुणेन कार्यगुणा उत्पद्यन्ते । तेन कारणगुणपूर्वका रूपादयो वक्ष्यन्ते । बुद्ध्यादयस्तु न तादृशाः । आत्मादेः कारणाभावात् । बुद्ध्यादयस्तु बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मभावनाशब्दाः । 'अपाकजास्तु स्पर्शान्ता द्रवत्वं च तथाविधम्' इति । पाकजगुणरूपादीनां कारणगुणपूर्वकत्वाभावात् अपाकजा इत्युक्तम् । तथाविधं अपाकजम् । एवमकारणगुणोद्भवानुक्त्वा 'स्नेहवेगौ गुरुत्वैकपृथक्त्वपरिमाणकम् । स्थितिस्थापकमित्येते स्युः कारणगुणोद्भवाः' इति कारणगुणोद्भवानाह । अत्रैकमैक्यं तस्यासमवायिनिमित्तं च कारणे समवायि नास्ति । द्वित्वैककारणत्वं स्यादिति भाषापरिच्छेदे । अतो **बहुत्वापत्त्ये**त्यर्थः । निमित्तं त्वात्मा । 'आत्मनः स्वान्निमित्तत्वम्' इति भाषापरिच्छेदात् । **द्रव्यगते**ति । उदकाहरणादिव्यवहारसिद्ध्यर्थं मृद्द्रव्यमेव संस्थानान्तरनामधेयभाग्भवतीति तद्रूपावस्थानाम् । **तर्कै**रिति । तर्काः पूर्ववदुन्नेयाः ।

तर्काप्रतिष्ठानादिति निराकृतमेव। न वास्मिन्नपि सूत्रे मिथ्यात्वार्थः सम्भवति।

भाष्यप्रकाशः।

तद् दूष्यते। अतस्तत्र केवलतर्कमूलत्वम्। तच्च सूत्रकृता तर्काप्रतिष्ठानकथनादेव निराकृतमिति तदेव मानमतो न तन्निरासे तदाशयः। किंतु मिथ्यावादनिरास एवाशय इत्यर्थः। ननु सूत्रे तदनन्यत्वमुक्तं, तच्चाभेदपर्यन्तत्वाभावेऽपि भेदव्यासेधमात्रादुपपद्यते। स च कार्यस्य मिथ्यात्वादतः कथं मिथ्यावादनिरासार्थमस्यारम्भ इत्युच्यते इत्याशङ्कायामाहुः न वेत्यादि। इदं हि सूत्रं प्रकृतिश्च प्रतिज्ञेति सूत्रोक्तार्थदृढीकरणाय प्रणीतम्। श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारार्थत्वाद् भेदवादपरिहारार्थत्वाद्वा। उभयथापि प्रतिज्ञादृष्टान्तश्रुती एवास्योपजीव्ये। तद्यदि सर्वमेव न स्यात्, किमेकविज्ञानेन विज्ञायेत। किंच। विज्ञानं हि भगवतैकादशस्कन्ध एवं लक्षितम्। 'एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत्। स्थित्युत्पत्त्यप्ययान् पश्येद् भावानां त्रिगुणात्मनाम्। आदावन्ते च मध्ये च सृज्यात् सृज्यं यदन्वियात्। पुनस्तत्प्रतिसंक्रामे यच्छिष्येत तदेव सत्' इति। तत्र पूर्वलक्षणं सांख्यानुसारि, द्वितीयं ब्रह्मवादानुसारि, उभयथापि विशिष्टज्ञानात्मकं

रश्मिः।

तदेव मानमिति शब्दात्मकं तर्काप्रतिष्ठानसूत्रमेव मानम्। **तन्निरासे** भेदवादनिरासे। **एवे**ति। एवकारेण भेदवादव्यवच्छेदः। अतो भेदवादो भाष्ये न निराकृतः। भेदवादनिराकृतिरेव प्रासङ्गिकी तु भवत्येव यत्र कुत्रचित्। यथोक्तं नृसिंहतापनीये सा अग्रेपि अभेदपर्यन्तेति। वृत्त्यन्तर्गतत्वादिति भावः। नन्वस्त्वेवं वृत्तौ तथापि कारणस्यान्यत्वाभावरूपेऽर्थे भेदव्यासेधावधारणादुपपद्यते। **स चे**ति भेदव्यासेधः। विशेषदर्शनेन रजतत्ववत् भिन्नकार्यस्य मिथ्यात्वात्। **अत** इति। मिथ्यार्थस्य वृत्त्यन्तर्गतत्वेन पृथक्त्वाभावप्रयुक्ता वक्तव्यत्वात्। **प्रकृतिश्चे**ति। गताध्यायसमाप्ताविदम्। को हेतुरत्रेत्यत आहुः **श्रुतिविप्रती**ति। अन्यथा पादार्थाव्याप्तिः। प्रसंगमाहुः **भेदवादे**ति। वृत्त्यन्तर्गतत्वेपि शिष्टादतत्वात्प्रसंगः। निराकृतिश्च प्रासंगिकी। **प्रतिज्ञे**ति। एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानबोधिका प्रतिज्ञाश्रुतिः। मृत्पिण्डादिप्रतिपादिका दृष्टान्तश्रुतिस्ते एव विषयावित्यर्थः। तथाच प्रकृतिसूत्रात्प्रतिज्ञादृष्टान्तावनुवृत्त्यादिपदार्थे निवेश्य तदन्यत्वे हेतू इति वक्तव्यं। पादार्थाव्याप्तिपरिहाराय उपजीव्ये कारणे। श्रुतिविप्रतिषेधस्तु प्रतिज्ञावाक्ये सर्वविज्ञानं। दृष्टान्तवाक्ये सर्वमिथ्येति। तस्य परिहारमाहुः **तद्यदी**ति। **विज्ञायेते**ति। अतो न मिथ्यात्वार्थः संभवतीति भाष्येणान्वयः। अतः सर्वं न मिथ्येति 'एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानम्' इति तस्य यदि परिहारः। एकविज्ञानेनेति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **किंचे**त्यादिना। एकविज्ञानेत्यत्र ग्राह्यविज्ञानं हि। **एकादश** इति। एकोनविंशे। **एतदेव ही**ति। अत्रार्धेन विज्ञानमिति श्रीधरस्वामी। भावानां त्रिगुणात्मकत्वकथनाच्छ्लोकेन सांख्यानुसारिलक्षणं। तथैकेन येन ब्रह्मणा भावानां स्थित्यादीन्न पश्येदिति यत् एतदेव हि विज्ञानं। कुतस्तर्हि स्थित्यादीत्यत आह **त्रिगुणात्मना**मिति। प्रकृत्यात्मकत्वात्प्रकृत्या तथा पश्येत्। ब्रह्मवादानुसारिलक्षणमाह **आदा**विति। आदिमध्यावसाने कार्यात्कार्यान्तरम्। अस्ति-भाति-प्रियत्वेनान्वियात्। तत्प्रतिसंक्रामे कार्यलये यच्छिष्येत तदेव सदिति। **सांख्यानुसारी**ति। प्रधानाज्जगज्जायत इतीति सांख्यप्रवचनसूत्रात्। **ब्रह्मवादे**ति। समन्वयाधिकरणसिद्धत्वात्। **विशिष्टे**ति। जगत्प्रकृतिः। जगद्ब्रह्मेति विशिष्टं ज्ञानम्।

एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानोपक्रमबाधात् प्रकरणविरोधश्च । त्रयाविरोधभयपरित्यागे-नैकमिदं सूत्रमन्यथा योजयन्नतिधृष्ट इत्यलं विस्तरेण ॥ १४ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

विज्ञानमिति सिद्ध्यति । तच्च विशेषणसत्तायामेव घटते । अतो विज्ञानश्रुतिबाधेन तादृशोप-क्रमबाधात् सूत्रे तथार्थो न संभवति । किंच । प्रकरणमिदं ब्रह्मणः । तत्र सृष्टिद्वारा तत्कारणीभूतं ब्रह्म ज्ञाप्यते बीजाङ्कुरभावेन, तत्र 'एतच्छुङ्गमुत्पतितं नेदममूलं भविष्यतीति क्व तस्य मूलꣳ स्यादन्यत्रान्नादेवमेव खलु सोम्यान्नेन शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छाद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजो-मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः' इत्यादिना । तद् यदि सर्वं मिथ्या स्याच्छुङ्गमूलभावो विरुद्ध्येत । रजतशुक्त्योः शुङ्गमूलभावस्याप्रसिद्धत्वात् । प्रजानां सदायतनत्वसत्प्रतिष्ठत्वे च विरुद्ध्येताम् । शुक्तिरजते तथात्वा-भावात् । एकस्य भ्रमकालेऽन्येन शुक्तिमात्रस्यैव तत्र दर्शनात् । अतः प्रकरणविरोधाच्च सूत्रस्थोऽन-न्यशब्दो न मिथ्यात्वफलक इत्यर्थः । सिद्धमाहुः त्रयेत्यादि । तथा चैवं वेदान्तित्वाभिमानिनो दूषणाय श्रुतिसूत्रविरोध एव प्रदर्शनीयो नाधिकः प्रयासः कर्तव्य इत्यस्माभिरुपेक्षित इत्यर्थः ।

भास्कराचार्यास्तु पूर्वमस्माभिरनूदिता एव मायावादावतारणयुक्तीरुपन्यस्यैवं दूषयन्ति । तथाहि । यन्मृत्तिकेत्येव सत्यमित्यवधारणात् कारणमेव सत्यं कार्यमसत्यमिति व्याख्यातम् । तत्राऽयं सत्यासत्यविभागः कथमवगतः । न तावत् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् । ताभ्यां हीदं सत्य-त्वेनैव परिच्छिन्नम् । न च कारणदोषबाधकप्रत्ययौ स्तः । पृथिव्यादिज्ञानस्यासंसारं सर्वेषां

रश्मिः ।

अत इति । जगद्रूपविशेषणस्य मिथ्यात्वात् । **तादृशे**ति । 'उत तमादेशमप्राक्ष्यं येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्' इत्युपक्रमबाधात्सूत्रे । **तथार्थ** इति । मिथ्यात्वार्थः । **प्रकरणे**ति भाष्यं विवृण्वन्ति **किंचे**ति । **ब्रह्मण** इति । 'ऐतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो' इत्युपदेशेनोपसंहारात् । उत तमादेशमित्याद्युक्त्वा 'एवꣳ सोम्य स आदेशो भवती'ति श्रुतेश्च । आदेश उपदेशः । तदेवाहुः । तत्रैतदित्यादिना । शुङ्गं कार्यं बीजं उत्पतितं अङ्कुरं । अत्र 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' इत्यादिश्रुतिरनुसंधेया । शुङ्गं कार्यं । मूलं कारणं । रजत-शुक्तिवत्कार्यकारणभाव उपपत्स्यते तत्राहुः **रजते**ति । **अप्रसिद्धे**ति अस्माकं प्रसिद्धत्वेपि तवाऽप्र-सिद्धत्वात् । **श्रुतिसूत्रे**ति । अत्र भाष्ये त्रपा पद्मपुराणात् । 'मायावादमसच्छास्त्रम्' इति पद्मपुराणम् । 'लज्जा सापत्रपान्यतः' इति कोशः । अथशब्दत्यागः पुराणमतत्वेनाप्युपपत्तेः । प्रतिज्ञाविरोधः श्रुतिविरोधा-न्तर्गतः । सूत्रविरोधः अनन्यत्वानुपपत्त्या । अन्याभावात् । **अतिधृष्ट** इति 'भावे चोपलब्धेः' इत्यत्र 'सत्त्वाच्चावरस्य' इत्यत्र च व्यावहारिकसत्त्वं व्याकुर्वन्नतिधृष्टः । त्रपात्यागाद्धृष्टः । **विस्तरेणे**ति । विस्तरस्तु वादग्रन्थसाध्यः स कुत उपयुज्यते । यथा प्रपञ्चवादस्तत्र समासौ । 'ब्रह्मरूपे प्रपञ्चेऽस्मिन् वादिना परि-कल्पिता । स्वभ्रमात्कियती शङ्का यथामति निवारिता' इति वाक्यात् । **दूषयन्ती**ति भेदाभेदवादाद्भेद-सिद्धये दूषयन्ति । **व्याख्यात**मिति शंकराचार्यैः । **ताभ्या**मिति । इदं पृथिव्यादीनि प्रत्यक्षम् । भावाः सदभिन्नाः । आद्यन्तमध्येषु सदनुगतत्वात् । यदेव यदनुगतं तत्तदभिन्नं सौवर्णकटक-कुण्डलादिवदित्यनुमानं ताभ्याम् । **कारणे**ति । इदं रजतमित्यत्र पित्तकामलादिवत्सगुणमायादोषः । नेदं रजतमितिवन्न पृथिव्यादीति बाधकप्रत्ययः । सगुणनिर्गुणभेदाभावात् । 'वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्' इति सूत्राच्च । इत्युभयहेतू । एकहेतुत्वेनाहुः **पृथिव्यादी**ति । अतः पारमार्थिक एवायं

भाष्यप्रकाशः ।

प्राणिनामनुवृत्तिदर्शनात् । यदत्राविद्या कारणदोषत्वेनोच्यते, तत्तु तवं सिद्धान्तमपि बाधते । यो हि श्रोता मन्ता स प्रागवस्थायामविद्यावानेवेति यथा अविद्यावतां प्रमातॄणामुत्पन्नं भेद-दर्शनं मिथ्या तथा अद्वैतब्रह्मज्ञानमपीत्यापत्तेः । अतोऽसत्यपि बाधकज्ञाने यदविद्याख्यकारण-दोषजन्यत्वाच्छुक्तिरजतज्ञानवदनुमानेन भेदज्ञानस्य मिथ्यात्वं साध्यते तद् ब्रह्मज्ञानेऽपि तुल्यम् । ब्रह्मज्ञानं मिथ्या, अविद्याख्यकारणदोषजन्यत्वाद् अविद्यावच्छिन्नत्वाज्जन्यज्ञानत्वाच्च प्रपञ्च-ज्ञानवत् । इत्यनुमानस्य तत्रापि संभवात् । किंचासत्यात् सत्यप्रतिपत्तौ, स्वप्नो, लिप्यक्षराणि च दृष्टान्तत्वेन यदुक्तानि तदप्ययुक्तम् । अदृष्टस्य स्वप्नस्य शुभाशुभासूचकत्वात् । दृष्टस्य तु ज्ञानविषयत्वेन तद्विषयकात् सत्याज्ज्ञानादेव सूचनसिद्धेः सत्यादेव सत्यप्रतिपत्तिर्नासत्यात् । अत एव, 'यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति । सिद्धिं तत्र विजानीयात् तस्मिन् स्वप्न-निदर्शने' इति श्रुतिरपि दर्शनस्यैव सिद्धिहेतुत्वमाह । एवं लिप्यक्षराण्यपि वस्तुभूतानि सत्यानि । विन्यासविशेषावस्थस्य चक्षुर्ग्राह्यस्य मष्यादिद्रव्यस्यैव लिप्यक्षरत्वात् । संकेतवशेन तस्यैव श्रोत्र-ग्राह्यवर्णगमकत्वादिति । यदपि शङ्कायां विषमरणहेतुत्वं दृष्टान्तितम्, तदप्यसत् । शङ्काया अपि ज्ञानविशेषत्वेन वस्तुत्वाच्छङ्कया तद्विषयस्मरणस्यापि वस्तुत्वात् तेनैव मरणसिद्धेरिति । अथागमात् प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वावगतिरिष्यते, तदप्ययुक्तम् । श्रोत्रप्रभवस्य ज्ञानस्य मिथ्यात्वेन वर्णात्मकस्य तत्त्वमस्यादिवाक्यस्याभावात् तेन मिथ्यात्वप्रतिपत्तेरशक्यवचनत्वात् । व्याव-हारिकसत्यत्वेऽपि तत्र मिथ्यात्वाऽनुक्तेः । न च, 'नेह नानाऽस्ति' इत्यनेन, तत्र 'इह'पदेन तस्य स्वरूपनानात्वनिषेधपरत्वात् । नापि, 'स एष नेति नेति' इत्यनेन, तस्याप्यात्मनि शरीराद्यनात्म-

रश्मिः ।

भेदस्तन्निबन्धनश्च व्यवहारस्तथैवेति भास्करभाष्यम् । मास्तु मायाकारणदोषो जीवाविद्या तु स्यादित्यत आहुः **यदत्रेति** । **भेददर्शनमिति** तदनन्यत्वमित्यत्रान्यपदेनोक्तो भेदस्तद्दर्शनम् । **अनुमानेनेति** । अनुमानं वक्ष्यमाणं एकमेव भेदज्ञानं पक्षे ब्रह्मज्ञानं पक्ष इति भेदः । **तत्रापीति** । भेदज्ञानपक्षकेनुमाने । **सत्यादिति** । 'अत्रात्मा स्वयं ज्योतिर्भवति' इतिश्रुतेः । अत्र स्वप्ने । **दर्शनस्येति** । पश्यतीति पदोक्तस्य । पदजन्यपदार्थोपस्थितिः कारणमिति लिप्यक्षराणां वर्णस्मारकत्व-माहुः **संकेतेति** । ईश्वरेच्छावशेन लिप्यक्षरस्यैव स्वस्मार्यतादृशवर्णस्मारकत्वात् वर्णसंघस्य पदत्वं । पदानां स्वज्ञानद्वारार्थबोधकत्वम् । **शङ्कायामिति** । सर्पेणादष्टस्यादष्टत्वशङ्कया सत्यविषमरण-मूर्च्छादिदर्शनादस्यामेतद्धेतुत्वमसत्येन वेदान्तवाक्येन सत्यस्य ब्रह्मात्मत्वस्य प्रतिपत्तौ दृष्टान्तितं ज्ञानविशेषेपि अन्यथा ज्ञानरूपत्वेन, तद्विषयेति शङ्काविषयस्यादष्टत्वस्य स्मरणं तस्य । **तेनेति** वस्तुनैव न तु विवर्तेन । **अथेति** युक्तिभिन्नप्रक्रमेऽथशब्दः । आरोपापवादसंगतिकागमात् । **श्रोत्रप्रभवेति** । यतः श्रोतृग्रहणकमतो न चक्षुरादिवद्ग्रहः । अतो मिथ्यात्वं । **तेन** । मिथ्या-त्वेनेति प्रापञ्चिकत्वादिति भावः । **अभावादिति** शाङ्करमतेनोक्तम्, भावादिति पाठे शब्दत्वात्सत्त्वं न तु अभावः सत्वान्न मिथ्योत्पत्तिरिति भावः । **तत्रेति** श्रुतिषु । **स्वरूपेति** । तथाच भास्कर-भाष्यं । कारणस्वरूपे **नानात्वं नास्तीति** । स्थित्यवस्थायां तु कार्यमस्तीत्यविरोध इति । **नापीति** । स आत्मा एव शरीरादिर्न शरीरभिन्नशरीरसदृशः । **इत्यनेन** पर्युदासेन ।

भाष्यप्रकाशः।

पर्युदासेनात्मस्वरूपोपदेशपरत्वात् । नापि, यत्र हि द्वैतमिव भवतीत्यनेन, तत्र हीवेति शब्दो-नर्थको वा, यथा विनतमिवेत्यवधारणार्थो वा, यथा अण्व्य इवेमा धाना इति सादृश्यार्थो वा । यथार्द्रैधाग्नेरित्यत्र धूमविस्फुलिङ्गा इवेति । एवं त्रिष्वप्यर्थेषु यस्यामवस्थायां विविधं विकारजातं भवति तत्रेतर इतरं पश्यति। यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तदा केवलेन कं विषयं पश्येदिति कारणप्राप्तौ विशेषज्ञानस्यैव निषेधादिति । किंच । का चेयमविद्या । तत्त्वातत्त्वा-भ्यामनिर्वाच्येति चेन्न।

यस्याः कार्यमिदं कृत्स्नं व्यवहाराय कल्पते ।
निर्वक्तुं सा न शक्येति वचनं वञ्चनार्थकम् ॥

यदि ह्यनिर्वचनीया, कथमाचार्यः शिष्येभ्यः प्रतिपादयेत् । अप्रतिपन्नया च तया कथं व्यवहारः सिद्ध्येदित्यादि । यच्चोक्तं, कथं परिणामो निरवयवस्याकाशकल्पस्य ब्रह्मण इति । तत्र ब्रूमः । स्वाभाव्यात् क्षीरवदिति । सर्वज्ञत्वात् सर्वशक्तित्वात् स्वेच्छयैव परिणामयेदात्मानम् । ननु विरुद्धो दृष्टान्तः । क्षीरस्य सावयवत्वादिति चेन्न सावयवत्वस्य तदप्रयोजकत्वात् । अन्यथाऽम्बुनोऽपि दधिभावेन परिणामापत्तेः । एवमन्यान्यपि बहूनि दूषणान्याहुः । सूत्रे तु, तयोर-नन्यत्वं तदनन्यत्वमिति व्याख्याय हेतुबोधिकां वाचारम्भणश्रुतिं त्वेवं व्याकुर्वन्ति । वाचो वागि-

रश्मिः।

यथार्द्रैधाग्नेरिति । इयं बृहदारण्यके मैत्रेयीब्राह्मणेऽस्ति । 'यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितात् पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदेवेदम्' इत्यादि । तत्र धूमपदं विस्फुलिङ्गलक्षकं वदतो व्याख्या । आर्द्रैरेधैः काष्ठैरिद्धोग्निस्तस्मादभ्याहितादभितः प्रज्वलितात् पृथग्धूमविस्फुलिङ्गा इव विनिर्यान्ति । एवं महतो भूतस्य परमार्थवस्तुन ऋग्वेदादीति श्वसितमिति । **कारणे**ति पटतन्तुवत् ब्रह्मात्मत्वविमर्शे विशेषस्य कार्यत्वस्य यज्ज्ञानं तस्यैव न तु भेदस्य **निषेधादितीति** तस्माद्भेददर्शनं नाविद्या । नापि मिथ्या । परमात्मनोवस्थाविशेषः प्रपञ्चोऽत्थमत एव वस्तुत्वम् । सत्त्वाद्यात्मकत्त्वादाकाशादिषु सत्ता । अमूर्तत्वादिधर्मा निवृत्तेरिति प्रोक्तमित्यन्तम् । **इत्यादी**ति । अग्रेऽविद्यानिर्वचने अविप्रतीति न विशेषेण प्रतिपन्ना ज्ञाता तया न मायायास्तेन सदसती मायेति श्रुत्युक्तमायास्वरूपानिषेधः । मायाविद्ययोर्जन्यजनकभावात् । तत्त्वातत्त्वाभ्यामित्यस्य श्रुत्युक्तसत्त्वासत्त्वाभ्यामिति नार्थः। अग्रे अथ सत्यसती अविद्या । तदसद्भावाभावरूपत्वानुपपत्तेः । नहि युगपदेकत्र विरुद्धज्ञानसंभवः इति भाष्येण कथनात् । तथा चादिसती सा नादिरितिवक्तव्यमिति परार्थानूदकभाष्यादादिमत्त्वानादित्वाभ्यामित्यर्थः । **यच्चोक्त**मिति शांकरैः । **तदप्रे**ति । परिणामाप्रयोजकत्वात् । किंतु स्वभावस्यैव । **अम्बुन** इति । स्वाभाव्यसहकृतसावयवत्वं तथेति चेन्न स्वभावेन गतार्थत्वेन सावयवत्वस्यान्यथासिद्धत्वात् । **अन्यान्यपी**ति । पयः स्वाभाव्यादेव हि पयः परिणमते तदापीदं चिन्त्यं किमवयविनः परिणामे शक्तिराहोस्विदवयवानामिति । नहि तस्मिन्द्रवद्रव्येऽवयवीनामातिरिक्तोभ्युपगम्यते मायावादिना । ततः पारिशेष्यादवयवानां शक्तिस्ते च निरवयवाः । नह्यवयवानामवयवाः सन्ति येन सावयवस्य परिणामोवतार्येत इत्यादि भाष्येणोत्तरसूत्रपर्यन्तेनान्यान्यपीत्यादिः । **तयोरि**ति कार्यकारणयोः । ब्रह्माप्यभिधेयमित्यभिधेयोत्पत्ति-

भाष्यप्रकाशः ।

न्द्रियस्योभयमारम्भणमालम्बनं विकारो नामधेयं च । विकारोऽभिधेयोत्पत्तिस्तदभिधानं नामधेयम्, उभयमालंब्य वाग्व्यवहारः प्रवर्त्यते। घटेन जलमाहरेति, मृण्मयमित्येतस्येदं व्याख्यानम् । ननु यदि कार्यं व्यवहारहेतुर्न, तर्हि कार्यकारणयोरनन्यत्वमित्याशङ्क्याह मृत्तिकेत्येव सत्यमिति । कारणमेव हि कार्यात्मना नटवदवतिष्ठते । मृत्समन्वितं हि त्रिष्वपि कालेषु कार्यं, नाश्वमहिषवद्देशतः कालतो वा व्यतिरिक्तमुपलभ्यते। कारणस्यावस्थामात्रं व्यतिरिक्ताव्यतिरिक्तं शुक्तिरजतवदागमापायधर्मत्वादनृतमनित्यमिति च व्यपदिश्यते । तदर्थमेव मृत्तिकेत्येव सत्यमित्युक्तम् । प्रत्यक्षमेव हि सत्यत्वमत्रानूद्यते, न तु विधीयते । दृष्टान्तत्वेनोपादानात् । तथाच न्यायसूत्रम् । 'लौकिकपरीक्षकाणां यत्र बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्तः'इति । अपागादग्नेरग्नित्वमिति तु कारणात्मना निरीक्ष्यमाणं कार्यमतिरिक्तं नोपलभ्यते, कारणात्मन्येव च तिरोहितं भवतीत्यभिप्रायेणोक्तम् । आदिपदेनैतदात्म्यमिदं सर्वमित्येवंजातीयकं वचनं गृह्यते । तथा च श्रुत्यन्तरमात्मव्यतिरिक्तस्य प्रपञ्चस्य सत्यतां दर्शयति । अथ नामधेयं 'सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम्' इति । यदि चानृतत्वमभिप्रेयात् प्राणा असत्यमिति ब्रूयादिति ।

रामानुजाचार्यास्तु तस्मात् परमकारणादनन्यत्वं जगतस्तदनन्यत्वम्, आरम्भणशब्दादिभ्यः पूर्वोक्ताभ्यः श्रुतिभ्योऽवगम्यत इत्येवं सूत्रं व्याख्याय वाचारम्भणवाक्यमेवं व्याकुर्वन्ति आरभ्यते आलभ्यते स्पृश्यत इत्यारम्भणम् । 'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति कर्मणि ल्युट् । वाचा वाक्पूर्वकेण व्यवहारेण हेतुनेत्यर्थः । घटेनोदकमाहरेत्यादिवाक्पूर्वको ह्युदकाहरणादिव्यवहारस्तत्सिद्धये तेनैव मृद्द्रव्येण पृथुबुध्नोदराकारत्वादिलक्षणो विकारः संस्थानविशेषस्तत्प्रयुक्तं च घट

रश्मिः ।

रित्याहुः **अभिधेयोत्पत्तिरि**ति । **मृण्मय**मिति । ते हि 'यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारः' इत्यादि दृष्टान्तवाक्यमुपाददुः । तद्घटकं मृण्मयमिति । **व्यवहारहेतुने**ति । कार्यं तु व्यवहारहेतुरित्युक्तमिति भावः । तथाच कथमनन्यत्वमिति प्रश्नः । भेदाभेदावाहुः **कारणमेव ही**ति । **अश्वमहिषव**दिति कार्यकारणभावरहिताश्वमहिषवदिति । **देशो** राजकीयप्रासादादिः । आभीरपल्ल्यादिश्चोभयोः । **कालश्चै**ककालव्यतिरिक्तोत्पत्तिकालः । ननु पिण्डावस्थायां कार्याभावात् कारणं कार्याद्व्यतिरिक्तं कार्यजननोत्तरमेवा**व्यतिरिक्तमि**ति चेत्तत्राहुः **कारणस्ये**ति । ननु घटादि कार्यं चेन्नित्यं भवेन्मृत्तिकेत्येव सत्यमित्यत्रैवकारव्यावृत्तं किं स्यादित्यत आहुः **शुक्तिरजते**ति । **व्यपदिश्यत** इति विकारशब्देन व्यपदिश्यते । **तदर्थ**मिति । तादृशधर्मत्वसूचनार्थमेव । **प्रत्यक्षमेवे**ति दार्ष्टान्तिकप्रत्यक्षमेव । एवकारेणान्यप्रत्यक्षव्यवच्छेदः । **बुद्धिसाम्य**मिति दार्ष्टान्तिकबुद्धिसाम्यम् । तच्च तदा यदा दार्ष्टान्तिकादौ विहितं दृष्टान्तादौ साम्यार्थं स्यादिति दृष्टान्तेऽनूद्यत एव । **कारणात्मने**ति । ननु कथं तर्हि दृष्टान्तोऽपागादिति विधिर्लोके लुङ् तत्राहुः **अपागा**दिति । कारणात्मनेति त्रीणि रूपाण्येव सत्यमिति रूपत्रयरूपकारणात्मना । **इत्यभिप्रायेणे**ति । तथा चोदाहरणमिदं विवक्षितं दृष्टान्तेनुवादे । **आदी**ति । आरम्भणशब्दादिभ्य इत्यत्रादिपदेन । एष **सत्य**मिति । एष समीपतरवर्ती । **पूर्वोक्ताभ्य** इति । 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं' 'नेह नानास्ति किंचन' 'मृत्योः स मृत्यु-

भाष्यप्रकाशः ।

इत्यादिनामधेयं स्पृश्यते । उदकाऽऽहरणादिव्यवहारसिद्ध्यर्थं द्रव्यमेव संस्थानान्तरनामान्तर-भाग् भवति । अतो घटादपि मृत्तिकेत्येव सत्यं मृत्तिकाद्रव्यमित्येव सत्यं प्रमाणेनोपलभ्यते, न तु द्रव्यान्तरत्वेनेत्यर्थ इति । ये पुनः कार्यकारणयोरनन्यत्वं कार्यस्य मिथ्यात्वाश्रयणेन वर्ण-यन्ति तेषां कार्यकारणयोरनन्यत्वं न सिद्ध्यति । सत्यमिथ्यार्थयोरैक्यानुपपत्तेः । तथा सति ब्रह्मणो मिथ्यात्वं जगतः सत्यत्वमिति वैपरीत्यापत्तेश्चेत्याहुः । काणादमतदूषणं तु प्रागेवोक्तम् । मायावादिमतोपरि दूषणान्तराणि बहूनि वदन्ति तानि विस्तरभयान्नानूद्यन्ते ।

तन्मतचौरस्तु विकारो नामधेयं च वाचाया अभिलापार्थव्यवहारस्य आरम्भणं निष्पाद-कं भवति । मृद्द्रव्यस्यैव घटाद्यवस्था घटादिनामधेयं चार्थक्रियाया अभिलापस्य च निष्पत्तये

रश्मिः ।

माप्नोति' 'य इह नानेव पश्यति' इत्यादिभ्यः । **द्रव्यमिति** मृत्पिण्डादि । **प्रमाणेनेति** प्रत्यक्षेण । **तथा सतीति** । सत्यमिथ्यार्थयोरैक्ये सति । **प्रागेवेति** तदनन्यत्वसूत्रात्प्रागेव । तथाच भाष्यं । न तु दृष्टान्तभावादिति सूत्रस्थं । पुनरप्यसामञ्जस्यमेव तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः असदिति चेन्न प्रतिषेधमात्रत्वादित्यादिषु कारणभूताद्ब्रह्मणः कार्यभूतस्य जगतोनन्यत्वमभ्युपगम्य ब्रह्मणो जगत्कारणत्वमुपपादितम् । इदानीं तदेवानन्यत्वमाक्षिप्य समाधीयते । तत्र काणादाः प्राहुः । न कारणात्कार्यस्यानन्यत्वं संभवति विलक्षणबुद्धिबोध्यत्वात् । न खलु तन्तुपटमृत्पिण्ड-घटादिषु कार्यकारणविषया बुद्धिरेकरूपेत्यादि पूर्वं भाष्यप्रकाशे काणादैर्हि भेदवादो जीवन-मित्यादिनोक्तं भाष्यम् । अन्यदप्युक्त्वा भाष्यं । अत्राहुः कारणादनन्यत्वं कार्यस्य न हि परमार्थतः कारणव्यतिरिक्तकार्यतद्व्यवहारयोः यथा कारणभूतात् मृद्व्यादि घटादिषु विकारेषूपलभ्यमानाद् व्यतिरिक्तं घटशरावादि कार्यं व्यवहारमात्रालम्बनं मिथ्याकारणभूतं मृद्व्यमेव सत्यं तथा निर्विशेष-सन्मात्रकारणभूताद्ब्रह्मणोन्योहंकारादिव्यवहारलम्बनः कृत्स्नः प्रपञ्चो मिथ्याकारणभूतं सन्मात्रं ब्रह्मैव सत्यम् । तस्मात्कारणव्यतिरिक्तं कार्यं नास्तीति कारणादनन्यत्कार्यम् । नच वाच्यं शुक्तिका-रजतादीनामिव घटादिकार्याणामसत्यत्वाप्रसिद्धेर्दृष्टान्तानुपपत्तिरिति । यतस्तत्रापि युक्त्या मृद्व्यमेव सत्यतया व्यवस्थाप्यते तदतिरिक्तं तु बाध्यते इत्यादि तन्मतमनूद्य सिद्धकथनम् । तस्मादेकमेव नित्यमुक्तस्वप्रकाशस्वभावमविद्यावशाज्जगदाकारेण विवर्तत इति परमार्थतो ब्रह्मव्यतिरिक्ता-भावात्तदनन्यत्वं जगत इति भाष्येणोक्तम् । अग्रे तानि तु ये पुनरित्यादिनोक्तदूषणाभ्यामन्यानि अत्रोच्यते इत्यादिभाष्योक्तादिति । तथाहि । अत्रोच्यते । निर्विशेषप्रकाशमात्रं ब्रह्मानाद्यविद्या-तिरोहितस्वस्वरूपं स्वगतनानात्वं पश्यतीत्येतत्प्रकाशस्वरूपस्य निरंशस्य प्रकाशनिवृत्तिरूप-तिरोधाने स्वरूपनाशप्रसङ्गेन तिरोधानासंभवादित्यादिभ्यः सकलप्रमाणविरुद्धं स्ववचनविरुद्धं चेति पूर्वमेवोक्तमित्यादीनि । आतदनन्यत्वसूत्रं । **तन्मतचौरो** भगवाञ्छैवाचार्यः । **वाचाया** इत्यस्य व्याख्यानं **अभिलापेत्यादि** । अभिलापोऽयं घटोऽयं पट इत्यादि तदर्थं व्यवहारोहं देवदत्तः ममायं घटो ममायं पट इत्याद्या मतिः । व्यवहारः सन्निपात इत्यादि वाक्यम् । अनेन घटादिना जल-माहरेत्यादि अभिलापार्थो व्यवहारः । अर्थक्रिया जलाहरणादिः । **अभिलापः** अनेन घटेनेत्यादिः ।

भाष्यप्रकाशः ।

भवतीति यावत्। वस्तुतो घटाद्यपि मृत्तिकेत्येव सत्यं प्रामाणिकं मृद्व्यतिरेकेण घटाभावदर्शनात्। अथवा । विकारो घटो वाचारम्भणं घटोऽयमिति वाचारम्भविषयमात्रम् मृद्द्रव्यमेव व्यवहारसिद्ध्यर्थमवस्थान्तरमापन्नं न तु मृदो द्रव्यान्तरम् । मृत्तिकेत्येव नामधेयं सत्यम्। घटादिकं मृत्तिकेति कृत्वैव तत्र सर्वं मृत्पिण्डादिनामधेयं सत्यं, सति प्रामाणिकेर्थे साधु, न तु द्रव्यान्तरमिति कृत्वा यतो घटो मृदेवातः कारणादनन्यदेव कार्यम् । अर्थक्रियादिव्यवहारभेदस्त्ववस्थाभेदात् । एवमेव ब्रह्मप्रपञ्चयोरपि व्याप्यव्यापकभावादनन्यत्वं द्रष्टव्यम् । तथा च पुराणवाणी 'शक्त्यादि च पृथिव्यन्तं शिवतत्त्वसमुद्भवम् । तेनैकेन तु तद्व्याप्तं मृदा कुम्भादिकं यथा' इति । ननु मृदयं घट इत्यत्र यथा मृद्व्याप्तिर्घटे दृश्यते तथा ब्रह्मेदं जगदिति व्याप्तिर्न दृश्यते इति चेन्न । सन् घटः सन् पट इति सर्वत्र सद्रूपस्य ब्रह्मणो व्याप्तिदर्शनात् । यदि हि सद्रूपेण व्याप्तं जगन्न स्यात् सत्तास्फूर्तिभ्यां विना कृतम्, अस्तीति स्फुरतीति न भासेत । तथा सत्यवस्त्वेव भवेत् । अतो मृदा घटादिकमिव कारणेन शिवेन सर्वं जगद् व्याप्तं तदनन्यभूतं चेत्याह ।

विज्ञानभिक्षुस्तु, लोकवदिति पूर्वसूत्रादनुकृष्येदं सूत्रमेवं व्याचख्यौ । तस्य भोक्तुः सोपकरणस्य प्रकृतब्रह्मानन्यत्वं, नदीनां समुद्र इव कारणे ब्रह्मण्यविभागो मन्तव्यो, न तु भोक्तुरत्यन्तं ब्रह्मत्वं, न वा प्रलयादावभावः । कुतः आरम्भणशब्दादिभ्यः । आरम्भणश्रुत्यादिभ्यः । सा श्रुतिस्तु 'तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च' इति । अस्यां श्रुतौ पूर्वसर्गीयविद्याकर्मप्रज्ञानां जीवारम्भकत्वश्रावणात् प्रलयेपि ब्रह्मभेदेन जीवस्य सत्त्वं सिद्ध्यति । ब्रह्मणः कर्माद्यसंभवात् । प्रलये जीवविनाशे च, तं पूर्वप्रज्ञा समन्वारभत इत्यस्यानुपपत्तेः । तच्च प्रलये जीवावस्थानं ब्रह्माविभागेनैव संभवति । अन्यथा, 'सदेव सोम्येदमग्र आसीद्' इत्यादीनामादिशब्दगृहीतानामद्वैतश्रुतीनामनुपपत्तेरिति । अतः पूर्वसूत्रीयदृष्टान्तस्यात्रत्यदार्ष्टान्तिकस्य च नेतरेतरवैषम्यमिति भाव इति । तदसङ्गतम् । उक्तश्रुतेरुपसर्गद्वयघटितत्वेन तस्या विषयवाक्यत्वस्यायुक्ततया सर्वप्रसिद्धस्यारम्भणवाक्यस्य त्यागायोगात् । शुद्धाद्वैतानङ्गीकारोप्ययुक्तः । अविभागाद्वैतस्यावान्तरप्रलये सत्त्वेपि प्राकृतिके केवलाद्वैतस्यैव वक्तव्यत्वात् । अन्यथा, 'शत९ शुक्राणि यत्रैकं भवन्ति सर्वे वेदा यत्रैकं भवन्ति सर्वे होतारो यत्रैकं भवन्ति' इति, 'यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्न चासन् शिव एव केवलः' इत्यादिश्रुतीनां विरोधापत्तेः । ब्रह्मणः कर्माद्यभावोपि तथा । सृष्टिकरणस्य श्रुत्यैवोक्तत्वात् । पूर्वप्रज्ञाया जीवाविनाशसाधकत्वमप्यसङ्गतम् । 'प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी' इति श्रुत्युक्ताया ब्रह्मप्रज्ञाया अपि

रश्मिः ।

नन्वयं घट इत्यादिः प्रमा सापि तद्ग्राहकेण प्रमाणेन गृह्यते इति प्रामाणिकमेवेत्यन्तं पक्षान्तरमाह । **अथवेति** । **घटादिकमिति** । आदिना मृत्पिण्डकपालग्रहणम् । **तत्रेति** घटादिके । **सतीत्यस्य** विवरणं प्रामाणिकेर्थ इत्यादि । तत्र साधुरिति यत् । **द्रव्यान्तरमिति** । कारणाद्घटादिकं द्रव्यान्तरम् । **व्याप्येति** । कार्यं व्याप्यं कारणं व्यापकम् । **शक्त्यादिकमिति** । व्यामोहकशक्त्यादिकम् । **नेति** । कार्यात्मना भेदादिति भावः । **इत्याहेति** तन्मतं 'त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणमि'ति गीतायाः सच्चिदानन्दरूपस्य चिदंशप्राधान्येन वर्णनं युक्तमिति न किंचिदुक्तं दूषणम् । **अविभाग इति** । मधुकृद्भक्षितानां नानावृक्षरसानां मधुन्यविभागो यथा । **जीवाविनाश इति** ।

भाष्यप्रकाशः ।

तत्र ग्रहीतुं शक्यत्वेन जीवप्रज्ञाया एव ग्रहणे नियामकाभावात् । 'न जायते न म्रियते' इति श्रुतेस्तद्विनाशशङ्काया एवानुदयाच्च । न च नास्तिकनिरासाय तत्साधनमिति वाच्यम् । तदर्थे श्रुतेरवक्तव्यत्वात् । 'सदेव' इति श्रुतेरविभागाद्वैतसाधकत्वमपि तथा । तथासत्यद्वितीयपदकोपस्य प्रागेव दर्शितत्वात् । न च, 'न तु द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तम्' इति, 'पृथग्विभक्ता प्रलये च गोप्ता' इति, 'अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्' इत्यादिश्रुतिस्मृतिभिः समन्वयसूत्र एवाद्वितीयपदस्याऽविभागपरताया विचारितत्वान्न तत्कोप इति वाच्यम् । आद्यश्रुतेः सृष्टिदशायां विभागे सत्यपि मूलविचारेण दर्शनादर्शनयोरुपपादकतयोपन्यासस्य प्रकरणादेवावगमेन सृष्टि-

रश्मिः ।

ब्रह्मणात्यन्तैक्ये तु तथा । **अनुपपत्ते**रिति । ब्रह्मण आरम्भासंभवात्तथा । **सदेवे**ति इदं जगत्सदेव ब्रह्मैव आरम्भणशब्दादिभ्य इत्यत्रादिशब्दगृहीतानाम् । **पूर्वे**ति । लोकवदिति दृष्टान्तः । ब्रह्मानन्यत्वं दार्ष्टान्तिकम् । **वैषम्य**मिति । स्याल्लोकवत्तदनन्यत्वमित्यत्र । **उपसर्गे**ति सूत्रस्य शब्दतोतिरिक्त-समनूपसर्गद्वयघटितत्वेन । **अवान्तरे**ति दैनंदिनप्रलये । **यदा तम** इति तमःशिवपदेऽनभिव्यक्ते कल्याणे च रूढे समाकर्षात् । न च न विरोधापत्तिरविभागाद्वैतेप्यर्थसङ्गतेरिति वाच्यम् । अवान्तरस्फुरण-विषयत्वात् । ननु 'यथा मधु मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति' इत्याद्युपदेश इति चेन्न । नानावादानुरोधित्वात् । 'आचार्यवान्पुरुषो वेद' इति श्रुतिविरोधोप्यत एव न । अधिकारभेदाच्च । तथा च स्वमतप्रति-पिपादयिषिताद्वैतस्य 'शतᳬशुक्राणि' इत्यत्राभावात् स्वमते श्रुतीनां विरोधापत्तेरित्यर्थः । किंचादिपदेन 'मनसैवावाप्तव्यम्' 'नेह नानास्ति किंचन' इत्युक्त्वा तदेकवाक्यतया 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' 'मनसैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवम्' इत्यद्वैतम् । **सृष्टी**ति । न चेच्छामात्रेण सृष्टिकरणम् । इच्छाया अपि क्रियावाचिभ्वादिनिष्पन्नत्वेन क्रियात्वात् । **तद्विनाशे**ति जीवा-विनाशशङ्कायाः । **तत्साधन**मिति विनाशसाधनम् । **तदर्थ**मिति प्रतियोगिज्ञानार्थं पूर्वोक्तायाः श्रुतेः प्रामाणिकत्वार्थमेवकारो बाह्यमतव्यवच्छेदकः । **सदेवे**ति श्रुतेरिति षष्ठ्यन्तं पदम् । **तथा सती**ति नानावृक्षरसेषु कारणाभेदप्रयुक्तनानात्वे सति । **प्रागेवे**ति समन्वयसूत्रे । सृष्टिभेदवादोक्तरीत्याहुः **आद्यश्रुते**रिति । यथा नैयायिकैः कपालद्वयादिसंयोगाद्घटादिसृष्टिस्तद्वद्विभागात्सृष्टिवादे साधिता तादृशविभागे सत्यपि । **मूले**ति द्वितीयनिषेधत्वेन मूलविचारत्वेन कार्यकारणभावः । दर्शनविभागस्यादर्शनं च । पूर्वश्रुतौ विभागाविभागोपपादकतयोपन्यासस्य । न तु द्वितीयमस्ती-त्यविभागः । अन्यद्विभक्तमिति विभागः । **प्रकरणादी**ति । प्रकरणं सुषुप्तेः । बृहदारण्यके ज्योति-र्ब्राह्मणे 'यद्वै तन्न पश्यति पश्यन्वै तद् (द्रष्टव्यं) न पश्यति । नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविना-शित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोन्यद्विभक्तं यत्पश्येत्' इति श्रूयते । सुषुप्तौ तद्ब्रह्म न वै नैव पश्यतीति यज्ञानासि तत्पश्यन्नेव द्रष्टव्यं न पश्यति यतो जीवस्य द्रष्टुर्दृष्टेर्ज्ञानस्य विपरिलोपोऽदर्शनं न विद्यते-ऽविनाशित्वात् । पश्यन्नेव न पश्यतीत्यत्र हेतुः न त्विति । जीवाद्द्वितीयं प्रमातृस्वरूपम् । अन्यच्च-क्षुरादिकं विभक्तं स्वरूपान्नास्तीति सुषुप्तिविचारात् । न च प्रकरणमविभागमात्रस्येति कुतो विभागस्यावगम इति वाच्यम् । तर्हि प्रकरणादेव नावगमे सति किंतु ह्यविभागमात्रस्यावगमे इत्यर्थः । **सृष्टी**ति । सृष्टेः प्राक्काले ययोर्विभागाविभागयोः तौ सृष्टिप्राक्कालौ तयोर्वृत्तान्ताबोधकतायाः ।

भाष्यप्रकाशः ।

प्राक्कालवृत्तान्तबोधकतायाः स्फुटत्वेन तदानींतनाविभागासाधकत्वात् । द्वितीयस्यास्त्ववान्तर-प्रलयवृत्तान्तबोधकत्वम् । स्मृतेस्तु सृष्टिकालविषयत्वमिति तदसाधकत्वात् । अन्यथा, 'सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्यत्', 'विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रम्' इत्यादिश्रुतिस्मृतिविरोधस्य दुर्वारत्वादिति । यत् पुनः समन्वयसूत्रे वाचारम्भणश्रुतिरेवं व्याख्याता विकारो वाचारम्भणं नामकार्यः पश्चाच्च नाममात्रावशेषो भवति । 'वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे' 'नामैवैनं न जहाति' इति स्मृतिश्रुतिभ्याम् । अतो विकारो मृत्तिकेत्येव कारणरूपेणैव सत्यं नित्यम् । न तु विकारत्वेनेति । तथा चानेनानित्यत्वमात्रबोधनान्न विवर्तवादः सिद्ध्यति, किंतु परिणामवाद एवेति । तत्र फलं त्वनुमन्यामहे । व्याख्याने तु नाममात्रावशेषत्वमवान्तरप्रलयविषयम् । सर्वप्रलये तेनापि प्रकृतिपुरुषमात्रावशेषताङ्गीकारान्नामशेषतायास्तन्मतेऽपि वक्तुमशक्यत्वात् । यत् पुनः प्रस्तुतसूत्रे विवर्तवाददूषणायोक्तम् । उक्तवाक्यैः प्रपञ्चस्यात्यन्तासत्त्वं यदुच्यते तद् वाक्यं सन्न वा । आद्ये बाधः । प्रपञ्चात्मकस्य तस्यैव सत्त्वात् । अन्त्ये हेत्वसिद्धिः । अत्यन्तासत्त्वसाधकप्र-माणाभावात् । अतः सदसत्त्वविकल्पपराहतैरारम्भणशब्दादिभिः प्रमाणैरनुन्मत्तेन सूत्रकारेण प्रपञ्चात्यन्तासत्त्वं साधयितुं न युज्यते इति । अन्यदपि बहूक्तम् । तत्रोदासीना वयम् ।

माध्वास्तु—भगवतः कर्तृत्वं साधनान्तरसापेक्षं न वेति शङ्कायां तदनपेक्षत्वमत्र साध्यते । तथा च तस्य हरेर्जगत्स्रष्टावनन्यत्वं साधनान्तरानपेक्षत्वम् । तत्र हेतुरारम्भण-शब्दादिभ्यः । 'किंस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं, कतमत्स्वित् कमासीदि'ति । न चायं प्रश्नः । अधिष्ठानाद्युत्तरस्यानुक्तत्वात् । तदभावे केवलप्रश्नस्यार्धपथस्थत्वेनाबोधकताप्रसङ्गात् ।

रश्मिः ।

तदानीमिति तदानीं ततोऽविभागो विद्याकर्मपूर्वप्रज्ञायुक्तजीवविभागप्रतियोगिकः । तस्यासाधकत्वात् । **अवान्तरे**ति पृथक् ब्रह्मणः सकाशात् सृष्टिकाले विभक्तविभागः समवायिसंयोगादिस्थानापन्नस्तस्य कर्ता । प्रलये दैनंदिने चकारेण स्थितिकालः । तस्मिन्काले गोप्ता । **सृष्टिकाले**ति भूतेत्विति कथनात् । भूतानां तु सृष्टिकाले सत्त्वात् । **तदसाधकत्वा**दिति विभागाद्वैतासाधकत्वात् । **नान्य**दिति । नचैवं विशिष्टं शुद्धान्नातिरिच्यत इति वाच्यम् । अतिरेकपक्षे सति विरोधात् । कार्यनाशात्पश्चाद् घटो नष्टः पटो नष्ट इति नामधेयमवशिष्यत इत्याह **पश्चाच्चे**ति । शब्दनित्यत्वं प्रमाणयति **वेदे**ति । **नामैवे**ति । एवकारेण व्यवच्छेदः । **विवर्ते**ति । अतात्त्विकोऽन्यथाभावो विवर्तः । शुक्तौ रजतमिव । तात्त्विकोऽन्यथाभावः परिणामः । क्षीरस्य दधीव । **फल**मिति । परिणामवादः कार्यत्वात् । **व्याख्याने**त्विति । तुः प्रश्ने पुनरर्थे वा । प्रश्न एवोत्तरसमासेः । 'तुः प्रश्ने च विकल्पार्थेऽप्यतीतपुनरर्थयोः' इति विश्वः । **उक्तवाक्यै**रिति । प्रपञ्चः अत्य-न्तासत् । वाचारम्भणशब्दादिभ्यः । शुक्तिरजतवदिति सिद्धम् । **बाध** इति पक्षे साध्याभावो बाधः सत्प्रतिपादकवाक्यप्रतिपाद्यत्वात् । **अत्यन्ते**ति । प्रमाणानामनित्यत्वमात्रबोधकत्वात् । **उदा-सीना** इति । विवर्तवाददूषणे उपयोगादस्माकमिति भावः । **तत्र हेतु**रिति । हरिः साधना-न्तरानपेक्षः आरम्भणशब्दादिभ्यः । चिन्तामणिवत् । **प्रश्न** इति किंस्विदिति प्रश्नार्थकाव्ययात् किमः प्रश्नार्थकत्वम् । **अर्धपथे**ति । **अबोधकते**ति विवक्षितार्थाबोधकताप्रसङ्गात् ।

भावे चोपलब्धेः ॥ १५ ॥

भाव एव विद्यमान एव घटे घटोपलब्धिः । नाभावे । चकारान्मृत्तिकेत्येव श्रुतिः परिगृहीता । वाङ्मात्रेण चोपलम्भे मिथ्यैवात्र घटोऽप्यस्तीत्युक्ते उपलभ्येत ।

भाष्यप्रकाशः ।

किं तर्हि । अयमाक्षेपः । स चाधिष्ठानाद्याक्षिपन् भगवतस्तन्निरपेक्षत्वे पर्यवस्यति । आदिशब्दाद् युक्तयः ।

परतन्त्रो ह्यपेक्षेत स्वतन्त्रः किमपेक्षते ।
साधनानां साधनत्वं यतः किं तस्य साधनैः ॥

इत्याद्यास्ताभ्य इत्यर्थः । सोयं न सूत्रकारानुशयगोचरो हेतुरिति प्रतिभाति । यदि स्यात्तदाधिष्ठानशब्दादिभ्य इति वदेत् । तत्त्यागे बीजाभावात् । अथ त्यक्तस्तथासत्यधिष्ठानसापेक्षत्वात् साध्यासिद्धिः । किंचैवमनन्यत्वसाधनं भेदसिद्धान्तभञ्जकम् । अधिष्ठानानपेक्षावदुपादानानपेक्षाया अप्यस्मादेव वाक्यात् सिद्धेः । आरम्भणशब्दस्य कर्मार्थकल्युटापि सिद्धेः । व्युत्पत्त्यन्तराङ्गीकारेऽनपेक्षत्वहानेश्च । अतस्तन्मतं चिन्त्यमेव । वाचारम्भणवाक्यं तु न विचारितम् । तत्र बीजं च न पश्यामः ॥ १४ ॥

भावे चोपलब्धेः ॥ १५ ॥ एवमेकेन श्रुतिविप्रतिषेधं परिहृत्य कार्यस्य कारणादनन्यत्वे सत्त्वे च युक्तिमाह भावे चेति सूत्रेण । तद् व्याकुर्वन्ति भाव एवेत्यादि । तथा च

रश्मिः ।

किं तर्हीति प्रश्नः । उत्तरयन्ति स्म **अय**मिति । किंस्विदित्यादेराक्षेपेपि प्रयोगात् । **अधिष्ठानादी**ति अधिष्ठानं किंस्विदासीन्न किमपि कतमदारम्भणं किंस्विदासीन्न किमपीत्याक्षिपन् भगवतोऽधिष्ठानादिनिरपेक्षत्वे पर्यवस्यतीत्यर्थः । **इत्याद्या** इति । आद्यपदेन यदि कालो न स्यात्तर्हि 'कालोस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धः' इति न वदेदिति । **अनुशये**ति । 'भवेदनुशयो द्वेषे पश्चात्तापानुबन्धयोः' इति विश्वात्सूत्रकारानुबन्धविषय इत्यर्थः । **अथ त्यक्त** इति । अधिष्ठानशब्दस्त्यक्तः सूत्रकृता । स्वतन्त्रेच्छत्वात् । नन्वारम्भणशब्दस्योक्तश्रुतिनिष्ठस्यादिरधिष्ठानं तदारम्भणशब्दादि तेभ्यः पदेभ्य इति व्याख्यानं तत्त्यागे बीजमिति चेत्तत्राहुः **किं चैव**मिति । **वाक्यादेवे**ति । तथा च स्वयमुपादानमित्युपादानस्य कार्याभेदाद्भेदसिद्धान्तभङ्गः । ननु नोपादानानपेक्षारभ्यतेऽस्मिन्नित्यारम्भणमिति व्युत्पत्तेरिति चेत्तत्राहुः **आरम्भणे**ति । व्युत्पत्त्यन्तरमुक्तम् । **चिन्त्यमेवे**त्येवकारः प्रसिद्धश्रुतित्यागात् । **न पश्याम** इति तथा चारम्भणशब्दघटितत्वेन प्रसिद्धं वाक्यं विचारणीयमेवेति भावः ॥ १४ ॥

भावे चोपलब्धेः ॥ १५ ॥ श्रुतिविप्रतीति श्रुत्योः कारणान्यत्वकारणानन्यत्वप्रतिपादकयोः प्रतिज्ञादृष्टान्तप्रतिपादकयोर्विप्रतिषेधम् । **एवे**ति कारणादन्याभावरूपानन्यत्वस्याभेदरूपानन्यत्वस्य वा स्वस्वमतप्रतिपन्नानन्यत्वस्य व्यवच्छेदक एवकारः । यथा माध्वानां कारणान्तरानपेक्षत्वरूपं तदनन्यत्वम् । **भाव एवे**त्यादीति । **भाष्ये** विद् सत्तायां । दि. आत्म. अ. शानचि मुकि रूपं **विद्यमान** इति । **घटोपलब्धि**रिति । अन्यथा खपुष्पोपलब्धिः स्यात् । विवर्तत्वे तु घटोपलब्धिर्न स्यात्ततश्च योग्यानुपलब्धिरूपस्य सत्त्वाभावाभावादिरूपशक्यतावच्छेदक-

इदं सूत्रं मिथ्यावादिना न ज्ञातमेव। अत एव पाठान्तरकल्पनम्॥ १५॥

सत्त्वाच्चावरस्य॥ १६॥

अवरस्य प्रपञ्चस्य सत्त्वात् त्रैकालिकत्वाद् ब्रह्मत्वम्। 'सदेव सौम्येदमग्र

भाष्यप्रकाशः।

श्रुत्यनुगृहीतस्य प्रत्यक्षस्य प्रमाणत्वात् ततोऽपि मिथ्यात्वबाध इत्यनन्यत्वं कारणादभिन्नत्वमेवेत्यर्थः। साधकयुक्तिं व्याख्याय परमतबाधिकां तामाहुः **वागित्यादि**। तथा च युक्तिद्वयबाधितो वाङ्मात्रत्ववाद इत्यर्थः। सूत्रविरोधमप्याहुः **इदमित्यादि**। न **ज्ञातमिति** एवमर्थकतया न ज्ञातम्। नन्वस्मिन् सूत्रे कार्यस्य कारणादनन्यत्वाय कारणसद्भावे कार्योपलम्भः प्रतिपाद्यत इति व्याख्यायत एवेति कथं न ज्ञातमित्युच्यत इत्याशङ्कायां तदज्ञाने हेतुं स्फुटीकुर्वन्ति **अत एवेत्यादि**। **पाठान्तरकल्पनमिति** भावाच्चोपलब्धेरिति पाठकल्पनम्। तथा च पाठान्तरं कल्पयित्वा, न केवलं शब्दादेव कार्यकारणयोरनन्यत्वं प्रत्यक्षोपलब्धिभावाच्च तयोरनन्यत्वमिति व्याख्याय तन्त्वव्यतिरिक्तपटोपलब्ध्या कार्यस्य परंपरया ब्रह्मानन्यत्वबोधनेन अस्मदुक्तरीत्यैव तदनन्यत्वसिद्धेरित्यतो न ज्ञातमित्युच्यते। तथा च घट्टकुटीप्रभातन्यायादुक्तसूत्रेऽभेदरूपानन्यत्वस्य स्वयमपि साधनाच्च तत्कृतं पूर्वसूत्रव्याख्यानमयुक्तमित्यर्थः॥ १५॥

सत्त्वाच्चावरस्य॥ १६॥ भाष्यमत्र स्फुटार्थम्। प्रत्यक्षविरोधमाशङ्क्य तत्र मानमाहुः

रश्मिः।

ग्राहकस्याऽभावाद्विशेषणज्ञानाभावप्रयुक्तो विशिष्टज्ञानाभावः। ततश्च 'सत्यं ज्ञानम्' इति स्वरूपलक्षणस्याबोधकताप्रसङ्गः। योग्यस्य प्रतियोगिनोनुपलब्धिरुपलब्ध्यभावो योग्यानुपलब्धिः। स्वरूपसतीति कारणमित्यादि**प्रस्थानरत्नाकरे** प्रत्यक्षनिरूपणेऽभाववादे निरूपितम्। न च सिद्धान्ते इन्द्रियैस्तत्तत्प्रतियोगिग्राहकैरेवाभावप्रत्यक्षकारणत्वेन योग्यानुपलब्धेरभावात्सुखेन स्वरूपलक्षणस्याबोधकताप्रसङ्गवारणसंभवेनान्यत्वार्थं कार्यभावनिरूपणेनोपष्टम्भस्य किं प्रयोजनमिति वाच्यम्। प्राचां मते सप्रयोजनत्वेपि नव्यमतेपि प्रयोजनसत्त्वादित्याहुर्**भाष्ये नाभाव** इति। अभावे विवर्तत्वे सत्यनुपलब्धिवन्नव्यमतेप्यैन्द्रियकप्रत्यक्षविषयत्वं नेत्यर्थः। अविवर्तत्वे चोपलब्धेरित्यनुक्त्वाभावे चोपलब्धेरित्युक्तेः प्रयोजकमाहुर्**भाष्ये चकारादिति**। विवर्तत्वे सति मृण्मयसत्तावती मृत्तिका दृष्टान्तत्वेन नोक्ता स्यात्। किंतु **शुक्तिकेत्येव** सत्यमिति श्रुतिः स्यात्। न च मृत्तिकेत्येवेत्यत्र मरुमरीचिकेत्येवेत्यर्थाच्छुक्तिकेत्येवेत्यर्थोपलब्धेरन्यश्रुतिपरिग्रह उचित इति शङ्क्यम्। तथा सति वाङ्मात्रेणोपलम्भः स्यादित्याशयेन भाष्यमवतारयन्ति **प्रकाशे साधकेति**। **परमतेति** परमतं वाङ्मात्रत्ववादः। **वागित्यादीति**। **भाष्ये घटोपीति** पटसत्त्वे **घटोप्यस्तीत्युक्ते** न च सहकारिकारणाभावान्न वाङ्मात्रेण उपलम्भ इति वाच्यम्। बीजाक्षराणां निरपेक्षाणामिव घटोप्यस्तीति वाचो निरपेक्षत्वात्। **भावाच्चेति** प्रत्यक्षोपलब्धेर्भावाच्च तयोरनन्यत्वमिति सूत्रार्थः। **अभेदरूपेति**। तथा च व्यावहारिकसत्यत्वेऽपि भेदाभावस्य वक्तुं शक्यत्वेपि वस्तुतः सत्त्वाभावात्पूर्वसूत्रव्याख्यानमयुक्तं स्यादतो न ज्ञातमित्यर्थः। व्याख्यानमुक्तम्॥ १५॥

आसीत् । यदिदं किंच तत् सत्यमित्याचक्षते' इति श्रुतेः ॥ १६ ॥

इति द्वितीयाध्याये प्रथमपादे अष्टमं तदनन्यत्वाधिकरणम् ॥ ८ ॥

असद्व्यपदेशान्नेति चेन्न धर्मान्तरेण वाक्यशेषात् ॥ १७ ॥ (२-१-९)

'असद्वा इदमग्र आसीत्' इति श्रुत्या प्रागुत्पत्तेः कार्यस्यासत्त्वं बोध्यते

भाष्यप्रकाशः ।

सदेवेत्यादि । श्रुतौ तु प्रपञ्चसत्त्वबोधकमिदं पदम् । सूत्रे चकारस्तु, 'विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया । यथेदानीं तथा चाग्रे पश्चादप्येतदीदृशम्' इति । 'तदेतदक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलम् । आविर्भावतिरोभावजन्मनाशविकल्पवत्' इत्यादिश्रीभागवतविष्णुपुराणादिवाक्यसंग्राहकः । एवं चास्मिन्नधिकरणे छान्दोग्यस्थप्रतिज्ञावाक्यस्य दृष्टान्तवाक्येन सह यो विरोधः स परिहृतः । कार्योपलब्ध्या कार्यसत्तासाधनेन तत्सत्तया कार्यस्य ब्रह्मत्वसाधनेन कार्यस्य कारणाभिन्नत्वं दृढीकृतम् ॥ १६ ॥ **इति अष्टमं तदनन्यत्वाधिकरणम् ॥ ८ ॥**

एवमनेनाधिकरणेन कार्यमिथ्यात्ववादं निराकृत्य असत्कार्यवादं निराकर्तुं 'असद्वा' इति श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारायाधिकरणमारभत इत्याशयेन सूत्रं पठन्ति ।

असद्व्यपदेशान्नेति चेन्न धर्मान्तरेण वाक्यशेषात् ॥ १७ ॥ व्याकुर्वन्ति असद्वा

रश्मिः ।

सत्त्वाच्चावरस्य ॥ १६ ॥ **सिद्धमाहुः एवं चेति** । द्वितीयसूत्रार्थमाहुः । **कार्योपलब्ध्येति** । तृतीयसूत्रार्थमाहुः **कार्यस्येति** । शंकराचार्यास्तु उक्तार्थमाहुः । कारणसत्त्वं भावपदार्थमाहुर्द्वितीयसूत्रे । रामानुजानां प्रथमसूत्रार्थ उक्तः, द्वितीयस्तु कार्यसत्त्वमाहुः । तथा च **भाष्यम्** । कुण्डलादिकार्यसद्भावे च कारणभूतस्य हिरण्यस्योपलब्धेः । इदं कुण्डलं हिरण्यमिति हिरण्यत्वेन प्रत्यभिज्ञानादित्यर्थ इति । तृतीये कारणे कार्यसत्त्वमाहुः । अग्रे 'पटवच्च' इति सूत्रेऽधिकरणं समापयन्ति । माध्वानां पूर्वसूत्रार्थ उक्तः तत्रान्यनिरपेक्षकारणत्वमुक्तम् । तत् स्वतन्त्रसाधनभावे प्रमाणैरुपलभ्येतेति द्वितीयसूत्रार्थः । तृतीयस्य तु 'अद्भ्यः संभूतः पृथिव्यै रसाच्च' इत्यादिना साधनान्तरप्रतीतेः कथमुपलब्धिरित्यत आह **सत्त्वाच्चेति** । **अवरस्य** तदधीनसाधनस्य सत्त्वादित्यर्थः । 'काल आसीत्पुरुष आसीत्परम आसीत्तद्यदासीत्तदधीनमासीदिति काठ्यायनश्रुतिः ।

भास्कराचार्यास्तु कारणभावे कार्यस्योपलब्धेः । तन्तुषु पटो मृत्पिण्डे घटो न देशान्तरे कालान्तरे चोपलभ्यत इति द्वितीयसूत्रे । तृतीयसूत्रेऽवरस्यावरकालीनस्य कार्यस्य कारणे सत्त्वादनन्यत्वं कथं गम्यते । सामानाधिकरण्यात् । तदेतेऽर्थाः स्वस्वमतानुसारेण द्वैतादिप्रतिपादकप्रतिपाद्याः, सूत्राणां सर्वतोमुखत्वात् । अत्र समन्वयो विषयः । तत्र मिथ्याकार्यकर्तृत्वसमन्वयः उत कारणभिन्नकार्यसमन्वय इति संशयः । तत्र मिथ्याकार्यकर्तृत्वसमन्वयः । 'नेह नानास्ति किञ्चन' इति श्रुतेः । युक्तिश्च परस्परोपमर्दात्मकयोर्भेदाभेदयोरेकत्रासंभवादिति पूर्वपक्षेऽभिधीयते । एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानोपक्रमबाधात् प्रकरणविरोधाच्च कारणाभिन्नकार्यसमन्वयः । एतावतापि न 'नेह नानास्ति' इति श्रुतिविरोधः । कारणभेदात्कार्यस्य । तेनैव युक्त्यभावो ज्ञेयः ॥ १६ ॥

इति अष्टमं तदनन्यत्वाधिकरणम् ॥ ८ ॥

असद्व्यपदेशान्नेति चेन्न धर्मान्तरेण वाक्यशेषात् ॥ १७ ॥ असत्कार्येति ।

इति चेन्न। अव्याकृतत्वेन धर्मान्तरेण तथा व्यपदेशः । कुतः । वाक्यशेषात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

इत्यादि । अयमर्थः । पूर्वपादे समाकर्षसूत्रे, 'असद्वा इदमग्र आसीत्' इति श्रुतिस्थस्यासच्छब्दस्य ब्रह्मवाचकत्वं समाकर्षादुक्तम् । परंतु समाकर्षहेतुर्नोक्त इति तस्य ब्रह्मवाचकत्वं न युक्तिसहम् । अथासदिति चेन्नेति पूर्वसूत्रे तद्विषयश्रुतौ चासतः कारणता निवारितेति सैव ब्रह्मकारणत्वे युक्तिरिति तया समाकर्षणमुच्यते । तदापि मुख्ये संभवति गौण्या अयुक्तत्वादस्यासत्पदस्या-सत्कार्यवादसाधकत्वम् । इदं परिदृश्यमानं जगद् वै निश्चयेन, अग्रे प्रागुत्पत्तेरसदासीत्, ततो ब्रह्मणः सकाशात् सदजायतेति प्रागुत्पत्तेः कार्यस्यासत्त्वं बोध्यते । तथा चासद्व्यप-देशाद्धेतोः 'आद्यन्तयोर्यदसतोऽस्ति तदेव मध्ये' इतीदानीमपि सन्नेति पूर्वसूत्रोक्तः सत्त्वादिति हेतुराश्रयासिद्धः । तदसिद्धौ चोपलब्धिरप्यन्यथासिद्धा । तस्मात्तथात्वे चानन्यत्वमपि दूरा-पास्तमिति तदाक्षेपं सूत्रांशेनाशङ्क्य दूषयति नेति । एवंच प्रागुत्पत्तेः कार्यं सन्न वेति संदेहः । असदिति पूर्वः पक्षः । सिद्धान्तं व्याकुर्वन्ति । सन्नेति यदुक्तं तन्न । कुतः धर्मान्तरेण तथा व्यपदेशात् । येन धर्मेणेदानीं वर्तते व्याकृतनामरूपत्वेन, तेन धर्मेण तदानीं नास्तीति तथा व्यपदेशो, न त्वत्यन्तासत्त्वेन । कुतः । वाक्यशेषात् । वाक्यशेषोऽवशिष्टो भागस्तस्मात् । तमेव

रश्मिः ।

कार्यमिथ्यात्वेति । मिथ्यात्वं खपुष्पसमत्वम् । असत्त्वं ध्वंसप्रतियोगित्वम् । **असद्वेति** । इदं तैत्तिरीयम् । असदिति सूत्रे पूर्वं छान्दोग्यस्थमुक्तम् । तस्य पूर्वोक्तसत्यत्वबोधकश्रुतिविप्रतिषेधः तस्य परिहाराय । **पूर्वपाद** इति समन्वयस्य चतुर्थपादे । **तस्य** इत्यसच्छब्दस्य । **तये**ति समाकर्षहेतुभूतया युक्त्या । **आश्रयासिद्ध** इति पक्षासिद्धः । असत्प्रपञ्चो ब्रह्म सत्त्वादित्यत्र गौरवेणासत्प्रपञ्चत्वस्या-पक्षतावच्छेदकत्वात् । असत्प्रपञ्चो नास्त्येव । यथा गगनारविन्दं सुरभि अरविन्दत्वात् । सरोजारविन्द-वदित्यत्र गगनारविन्दमाश्रयः स च नास्त्येव । **अन्यथासिद्धे**ति चतुर्थ्यन्यथासिद्धिः कुलालो-पलब्धित्वेनान्यथासिद्धा । घटकार्यजनकं प्रति पूर्ववृत्तितां गृहीत्वैव यस्या उपलब्धेर्घटं प्रति पूर्ववृत्तित्वं गृह्यते इति तस्यास्तत्कार्यं प्रत्यन्यथासिद्धत्वम् । न च भावे उपलब्धिरुपलब्धौ सत्त्वमित्यन्यो-न्याश्रय इति वाच्यम् । घटादिकार्यरूपोपलब्धेरग्रहणात् । घटादीनां तत्र विषयविधया कारणत्वात् । कार्यत्वं तु घटादीनां कुलालस्य दण्डाद्युपलब्धेः सात्र गृह्यते । न च भाष्ये कार्यरूपोपलब्धिर्गृहीतेति तस्य विरोधः शङ्क्यः । तर्ह्यन्यथासिद्धेत्यस्य मिथ्यात्वेनान्यप्रकारेण यो विषयस्तद्विषयिणी सिद्धे-त्यर्थात् । **तथात्वे** मिथ्यार्थविषयत्वे । **दूरापास्त**मिति अन्यरूपप्रतियोग्यभावाद्**दूरापास्तम्** । **तदा-क्षेप**मनन्यत्वाक्षेपम् । **दूषयती**ति भगवान्सूत्रकारः । **तदानी**मिति उत्पत्तेः प्राक्काले । **अवशिष्ट** इति । 'सन्दिग्धेषु वाक्यशेषात्' इति जैमिनिसूत्रात् 'तेजो वै घृतम्' इतिवदवशिष्टः । घृततैलवसास्व-भ्यञ्जनसाधनत्वे संदिग्धे 'तेजो वै घृतम्'इत्यवशिष्टो भागः । प्रकृतेऽव्याकृतत्वरूपधर्मान्तरेण व्यपदेशात् सत्त्वेन सत्त्वे ब्रह्मत्वेन सत्त्वे आत्मत्वेन सत्त्वे कृष्णाजिनत्वेन सत्त्वे त्रित्वेन सत्त्वे प्राप्ते सृष्टिसाधनत्वे संदिग्धे वाक्यशेषात्स्तुतमव्याकृतत्वरूपधर्मेण शब्दान्तररूपहेतूक्तार्थसहकारे तुः ह्यव्याकृतत्व-रूपात्मत्वेन धर्मेण सत्त्वं प्राप्तं तत्सृष्टिकर्त्रीति सिद्धम् । **वाक्यशेष** आत्मपदात् । न च ब्रह्मत्वेन सत्त्वानिर्वचने को हेतुरिति शङ्क्यम् । अक्षरब्रह्मत्वात् । न च जिज्ञासासूत्रीयप्रतिज्ञाहानिरिति वाच्यम् । 'अक्षरं ब्रह्म परमं वेदानां स्थानमुत्तमम्' इति वाक्येन वन्दिस्तुते इदमित्थतया

'तदात्मान स्वयमकुरुत' इति स्वस्यैव क्रियमाणत्वात् । इदमासीत्पदप्रयोगाच्च ॥ १७ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

स्फुटीकुर्वन्ति **तदात्मानमित्यादि** । तथा चासदेवेति वाक्यस्य शेषे आत्मपदात् तेनैव रूपेण सत्त्वम्, न तु व्याकृतेनेति बोध्यते । अतो नास्यासत्कार्यवादसाधकत्वम् । इदं चासदिति सूत्रस्य प्रस्थानान्तरीयव्याख्यानशेषत्वेन प्रागेव मया व्युत्पादितमिति नात्रोच्यते । एवं निवृत्ते तस्मिन् श्रुत्यभिप्रेतत्वाद्गौण्यपि न दोषाय । तथासति समाकर्षेऽपीदमेव बीजमतः पूर्वोक्तं सर्वं सुस्थम् । वस्तुतस्तु नात्र गौणी । सर्वेषां शब्दानां भगवद्वाचकतायाः स्वारसिकत्वस्य प्रागेव साधितत्वात् । समाकर्षसूत्रस्य वादिबुद्ध्यनुसारित्वादिति । एवं चात्रेदंशब्दोऽपि न परिदृश्यमानत्व-

रश्मिः ।

विचाराप्रसक्तेस्तादृशब्रह्मजिज्ञासायाः प्रतिज्ञातत्वात् । क्रियमाणत्वादित्यन्तभाष्यस्य भावमाहुः **तथा-चेति** । **आत्मपदादिति** नञ्घटितादात्मपदान्नात्मत्वेनापि तु तेनैवाव्याकृतत्वेनैव रूपेण सत्त्वं नञ्घटितत्वादित्यर्थः । **न तु व्याकृतेनेति** । इदमुपलक्षणं सत्त्वब्रह्मत्वादीनामुक्तानाम् । **असत्कार्येति** । अयमर्थः असदेवेति वाक्यस्य शेषस्तत्सदासीदिति शंकरभाष्ये पूर्वव्याख्याने तद्वत्तैत्तिरीयेपि 'तदात्मान स्वयम्' इत्यत्र न तु पूर्वव्याख्याने दोष उक्तः । भास्करभाष्ये तु पूर्वव्याख्यानमुक्तम् । तत्तु असदिति चेन्नेत्यनेनैव सिद्धम् । भाष्ययोरत्यन्तासत्कार्यवादो निराकृतः । परंतु 'सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतम्' इत्यत्र 'ऐन्द्रजालिकपक्षेऽपि तत्कर्तृत्वं नटे यथा' इति **निबन्धे** चासत्कार्यमुक्तम् । तत्र भाष्यद्वयोक्तातिक्रमे बीजाभावमाशङ्क्य स्वभाष्ये 'स्वस्यैव क्रियमाणत्वात्' इत्यनेनात्मनः कर्मकर्तृव्यपदेशः कृतः । तेनासत्कारणवादो निराकृतः । तेनाविर्भावतिरोभावावत्रात्यन्तासत्त्वाभावे तथा चोभयवाक्यशेषासंभवादनेन वाक्यशेषेण सत्कार्यवादः सिद्धः किं त्वव्याकृतात्मवादसाधकत्वम् । सत्त्वं ज्ञानमित्येकदेशः । ब्रह्माक्षरम् । कृष्णाजिनमाधिभौतिकम् । ब्रह्मेति बाह्यात्मा । अग्निराधिदैविक आत्मा इति । कृष्णाजिने सर्पीकृते आध्यात्मिकः । सर्पे जाठराग्निसत्त्वात् । अत आत्मवादसाधकत्वं अव्याकृतत्वरूपेण । **इदं चेति** । **प्रागेवेति** तस्मिन्नेव सूत्रे । इदं चासत्पदशब्दयोरुभयत्र दर्शनेन रभसात् । छान्दोग्यतैत्तिरीयवाक्यरूपविषयभेदात् । संज्ञाभेदात् । वाक्यशेषतदभावकृतनिर्णयभेदाद्भिन्ने एवाधिकरणे इति । **तस्मि-न्निति** असद्व्यपदेशादिति चेदिति सौत्राक्षेपे । **श्रुत्यभिप्रेतत्वादिति** वाक्यशेषश्रुत्यभिप्रेतत्वात् । **गौण्यपीति** असत्पदस्य मृत्यौ शक्तिर्बृहदारण्यके । तैत्तिरीयेऽसद्ब्रह्मेति वेत्तरि शक्तिः । गीतायामश्रद्धया कृतयागादौ शक्तिः । तद्गुणयोगादव्याकृतात्मनि गौणी । **इदमेवेति** अनन्यत्वाक्षेपणम् । वाक्यशेषश्रुत्यभिप्रेतत्वं वा । **पूर्वोक्तमिति** । सन्नेति यदुक्तं तन्नेत्यादिनोक्तम् । **प्रागेवेति** तल्लिङ्गाद्यधिकरणेषु । ननु कथमेवं यावता ह्यसत्पदमन्यवाचकं ब्रह्मबोधाय स्वार्थादाकृष्टं 'आकृष्यते स्वस्थानाच्चाव्यते इत्याकर्षः' इति भाष्यात्तत्राहुः **समाकर्षेति** । **वादिबुद्धीति** । 'संभवति चैकवाक्यत्वेऽज्ञानान्निराकरणं चायुक्तम्' इति भाष्ये तथा सूचनात् । इदमासीदिति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **एवं चात्रेति** । **अत्रेति** श्रुतौ । नन्विदमस्तु प्रत्यक्षगे रूपमिति व्यावहारिकसत्त्वेऽपीदमित्युपपन्नम् । शंकरभाष्ये स्मृत्यात्मकत्वं जगत इतीत्याशङ्क्याहुः **न परीति** । स्मृत्यात्मकज्ञानविषयत्वमात्रपरः । मात्रशब्देनात्मसृष्टिव्यवच्छेदः । आन्तरालिकसृष्टिसंग्रहायोक्तम् । अन्यथा तु परिदृश्यमानत्वं नेति ब्रूयुः । ननु 'वीक्षेत विभ्रममिद'मित्यादिवाक्येभ्यो भ्रमविषयस्य शिष्यवैराग्याय वक्तव्यत्वात् कथमेवमिति चेत्तत्राहुः

युक्तेः शब्दान्तराच्च ॥ १८ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

मात्रपरः । बोध्यस्य शिष्यस्यात्राभावात् । किंतु स्वबुद्धिस्थपरः । केवलश्रुतिवाक्यत्वात् । अत इदं पदमासीदिति पदं च सत्कार्यवादस्यैवोपोद्बलकमित्यर्थः ॥ १७ ॥

युक्तेः शब्दान्तराच्च ॥ १८ ॥ पूर्वसूत्रस्यैव शेषोऽयमौलूकादिनिग्रहार्थः । शुष्कतर्का-

रश्मिः ।

बोध्यस्येति । न च प्रपाठकद्वयेपि भृग्वादीनां शिष्यत्वेन कुतोत्राभाव इति शङ्क्यम् । आनन्दो ब्रह्मेति विज्ञानानन्तरं शिष्यत्वाभाव इत्यभिप्रायात् । **स्वबुद्धिस्थेति** यथा 'सिद्धान्तकौमुदीयम्' इत्यत्र । **केवलेति** । केवलस्य ब्रह्मणः श्रुतीत्यादिः । **अत इति** अव्याकृतरूपेण बुद्धिस्थं परिदृश्यमानमत इत्यर्थः । **इत्यर्थ** इति । ताभ्यामपि हेतुभ्यामसद्व्यपदेशेन नासत्कार्यवाद इति भावः । इदमासीदिति पदयोः प्रयोगस्य हेतुत्वोक्त्या बृहदारण्यकेपि ह्यश्व उपक्रमान्निर्णीतोर्थः । तत्राप्ययं न्यायः । असद्व्यपदेशादिति चेन्न । धर्मान्तरेणाभावत्वेनाश्रयत्वेन कालत्वेनात्मत्वेन तथा व्यपदेशात् । कुतः वाक्यशेषात् । 'नैवेह किंचनाग्र आसीत्' । 'मृत्युनैवेदमावृतमासीत्' अस्मात् । नञर्थोऽभावः । इहेत्याश्रयः । अग्र इति कालः । मृत्युरात्मा । तथा चायं सूत्रार्थः । सूत्रेऽसदिति जगतोऽव्याकृतत्वेन व्यपदेशः । वाक्यशेषे नञ्घटितात्मपदव्यतिरिक्तेन स्वयमकुरुतेत्यंशेन स्वस्यैव क्रियमाणत्वात् । आत्मानमिति तु शब्दान्तराच्चेत्युत्तरसूत्रविषयः । एवं च वाक्ये इदं परिदृश्यमानं जगद्भूतकालिकसत्ताश्रयमित्यापाततः प्रतीयते इदमासीत्पदप्रयोगात् । तस्य शेषे स्वस्याव्याकृतस्य 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' इति श्रुतौ नामरूपव्याकरणस्य भावित्वोक्तेः । तदव्याकृतत्वं जीवनिष्ठमपि ब्रह्मनिष्ठम् । अनया श्रुत्या सत्ताश्रयमप्यव्याकृतं तत् कर्मसंबद्धं क्रियमाणं कृतिविषयम् । अतोऽव्याकृतत्वादिरूपेष्वन्यव्यावृत्त्याऽव्याकृतत्वं ग्राह्यम् । स्तुतत्वात्तेजस्त्वेन घृतमिव वाक्यतच्छेषयोरव्याकृतत्वेन ब्रह्मसिद्धेः ।

रामानुजाचार्यास्तु सूत्रद्वयमेकमङ्गीकुर्वन्ति 'असदेवेदमग्रे' इत्यत्रासद्व्यपदेशः । धर्मान्तरं सत्त्वादन्यासद्रूपा सूक्ष्मावस्था । वाक्यशेषात् । युक्तेः शब्दान्तराच्चेदमवगम्यते । वाक्यशेषस्तावत् । 'इदं वा अग्रे नैव किञ्चनासीत्' इत्यत्र 'तदसदेव तन्मनोकुरुत स्याम्' इत्यनेन वाक्यशेषान्तर्गतेन मनस्कारलिङ्गेनासच्छब्दार्थे निश्चिते सति तदैकार्थ्यादसदेवेदमित्यादिष्वप्यसच्छब्दस्यायमेवार्थ इति निश्चीयते । युक्तेश्चासत्त्वस्य धर्मान्तरत्वमवगम्यते । युक्तिर्हि सत्त्वासत्त्वे पदार्थधर्माववगमयति । मृद्द्रव्यस्य पृथुबुध्नोदराकारयोगो घटोस्तीति व्यवहारहेतुः । तस्यैव तद्विरोधावस्थान्तरयोगो घटो नास्तीति व्यवहारहेतुः । न च तद्व्यतिरिक्तो घटाभावो नाम कश्चिदुपलभ्यते । न च कल्प्यते तावतैवाभावव्यवहारोपपत्तेः । तथा शब्दान्तराच्च पूर्वकाले धर्मान्तरयोग एवावगम्यते । शब्दान्तरञ्च पूर्वोदाहृतं 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' इत्यादिकम् । तत्र हि कुतस्तु खलु सौम्य वेदं स्यादिति तुच्छत्वमाक्षिप्य 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इति स्थापितम् । 'तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्तन्नामरूपाभ्यां व्याक्रियते' इति तु स्पष्टमुक्तमित्याहुः ।

माध्वास्तु । नासदासीन्नो सदासीदिति सर्वस्यासत्त्वव्यपदेशान्नेति चेन्न । अव्यक्तत्वपारतन्त्र्यादिधर्मान्तरेण हि तदुच्यते । तम आसीदिति वाक्यशेषात् इत्याहुः । तदेतदुभयमतप्रमेयं स्वमतसिद्धमेवेति प्रकाशेनानूदितम् ॥ १७ ॥

युक्तेः शब्दान्तराच्च ॥१८॥ **पूर्वसूत्रस्यैव शेष** इति । समाकर्षे धर्मान्तरं हेतुरुक्तः युक्तिशब्दान्तरे हेतू उच्येतेऽतःपूर्वसूत्रशेषः । एवकारेण रामानुजाचार्यसंमत्यान्यप्रकारव्यवच्छेदः । न चैवमेकसूत्रत्वापत्तिः । अन्यैरप्यनङ्गीकारात्सूत्रैकस्य । **औलूकेति** । व्याख्यातमेतेन शिष्टापरिग्रहसूत्रे । **पूर्वं** तर्का-

भाष्यप्रकाशः ।

णामप्रतिष्ठानस्य पूर्वमुक्तत्वात् तादृशीभिर्युक्तिभिः सत्कार्यवादप्रत्यवस्थानमयुक्तम् । श्रुत्य-विरुद्धयुक्तीनां सत्कार्यवादेऽपि विद्यमानत्वात् । ताश्च सांख्य एवमुच्यन्ते 'असदकरणा-दुपादानग्रहणात् सर्वसंभवाभावात् । शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्यम्' इति । अर्थस्तु—यदसत् तन्न क्रियागोचरः । शशविषाणादिवत् । यदि प्रागुत्पत्तेः कार्यमसत् स्यात् शशविषाणवत् स्यात् ततश्च तदपि न क्रियागोचरः स्यात् । अस्ति तु तद्विपरीतमतः प्रागप्युत्पत्तेः सदेव । अथ यदा असत् तदेदमपि न क्रियागोचरः, उत्पत्स्यमानावस्थायामेव तु तत् तथेति विभाव्यते तदप्यसङ्गतम् । उपादानग्रहणात् । यदि प्रागुत्पत्तेः कार्यमसत् स्याद् दध्यर्थिभिः क्षीरं, घटार्थिभिर्मृत्, पटार्थिभिस्तन्तवश्च नोपादीयेरन् । असत्त्वस्य सर्वत्र तुल्यत्वात् । अतोऽवधिनियमार्थं कार्यस्य कारणे सत्त्वमभ्युपगन्तव्यम् । अथ यत्र कारणे यस्य कार्यस्य प्राग-भावस्तदेव तदर्थं तदर्थिभिरुपादीयत इति विभाव्यते, तदप्यसङ्गतम् । सर्वसंभवाभावात् । यद्येवं तदा प्रागभावस्वरूपं वक्तव्यम् । स किं प्रतियोगिस्वरूपनिरूप्यो न वा । अन्ते सर्वत्र तुल्यत्वात् सर्वतः सर्वं भवेत् । भेदस्य निर्वक्तुमशक्यत्वात् । आद्ये तु तदानीमपि प्रति-योगिसत्तासापेक्षत्वात् तदानीमपि कार्यसिद्ध्या असत्कार्यवादस्यैव भङ्ग इति तदापि सदेव कार्यस्वरूपमास्थेयम् । अथ यदि मीमांसकप्रतिपन्नया शक्त्या निर्वाहो विचार्यते तदाप्यसङ्गतम् । शक्तस्य शक्यकरणात् । यद्धि यत्र शक्तं तत् तदेव करोति, न सर्वम् । यदि केवलया शक्त्या-

रश्मिः ।

प्रतिष्ठानसूत्रे । **तादृशीभिरि**ति शुष्काभिः । **ताश्चे**ति शुष्काः । सांख्यस्य श्रुत्यमूलत्वोपपादनात् । **उच्यन्त** इति पूर्वाध्याये । **न क्रिये**ति सूत्रेऽकरणादिति डुकृञ्करण इत्यस्य रूपात् । पक्षसाध्य-योरुक्तत्वादत्यन्तासत्त्वादिति हेतुर्ज्ञेयः । दृष्टान्त **आदि**पदेन खपुष्पम् । **तत**श्चेति असदुत्पत्तिदर्शनात् । **तदपि** शशविषाणमपि । **तद्वि**ति शशविषाणादि नोत्पद्यतेऽन्यदुत्पद्यत इति । **इदमपी**ति घराद्यपि । **तत्तथे**ति घटाद्यसत्त्वे नास्तीति । **उपादाने**ति । व्याख्येयमिदम् । **सर्वत्रे**ति शुक्तिरजतादावपि । **सर्वे**ति व्याख्येयम् । **कारण** इति इह घटो भविष्यतीति प्रागभावविषयिण्याः प्रतीतेः । **इहे**ति सम-वायिनि, प्रागभावाङ्गीकर्तृमते । **प्रतियोगी**ति यस्याभावः स तस्य प्रतियोगी घटादिः । **सर्व-त्रे**ति मृद्यपि पटकुण्डलादिप्रतियोगिस्वरूपानिरूप्यप्रागभावस्य घटप्रागभावतुल्यत्वान्मृदोपि पटकुण्ड-लादि भवेत् । तर्हि यस्य यः प्रागभावः सोऽन्यस्मात्तत्संबन्धेन भिद्यत इति चेत्तत्राह **भेदस्ये**ति घटपटादीनामसत्त्वेन घटीयपटीयत्वादिना प्रागभावभेदस्य । **तदे**ति उत्पत्तेः प्राक् । **मीमांसके**ति । यथाहुः कुण्डोद्योतनाम्नि ग्रन्थे । 'देवर्षिऋक्षसंघानामवाङ्मनसगोचरम् । प्रत्यक्षमपि तद्धाम सर्वदा समुपास्महे' इति । भाट्टदीपिकानवमाध्याये फलदेवतयोश्चेत्याद्यधिकरणविषयवाक्योक्तोर्थः शब्दमात्रं देवता । अर्थस्तु प्रातिपदिकानुरोधाच्चेतनो वा कश्चित् स्वीक्रियते न तु विग्रहादिमान्, अर्थवादत्वात् 'स एवैनं भूतिं गमयति' 'तृप्त एवैनमिन्द्रः प्रजया पशुभिश्च तर्पयति' इत्यादीनामुपासनादौ परं ध्यानमात्र-माराध्यं तस्येति जैमिनिमतनिष्कर्षः । अत्र कर्मरूपशब्दमात्रं देवता तस्याः शक्तिर्ज्ञानशक्तिवत्प्रकृतिः सा सदुत्पादयति । अस्मन्मते तु 'विष्णोः कर्माणि पश्यत' इति श्रुतेर्विष्णुसंबन्धित्वेन कर्मणि विष्णुशक्तिः 'एकं रूपं रसात्पृथक्' इत्यत्रैकत्वपृथक्त्वयो रूपे एकसमवेतत्वेन सामानाधिकरण्येन संबन्धेन वा वृत्तिर्वर्तते ।

युक्तिस्तावत् समवेतमेव कार्यं सदुत्पाद्यत इति संबन्धस्य द्विनिष्ठत्वा-

भाष्यप्रकाशः ।

ऽसदपि कार्यं स्यात् सर्वतः सर्वं स्यात् । शक्तेर्विद्यमानत्वात् । अतस्तदभावाय शक्तेरपि कार्यवैशिष्ट्येन नानात्वमवश्यमङ्गीकर्तव्यम् । ततश्च सिद्धं सत्कार्यवादेनेति । ननु कारणेऽवयविनि किं व्यासज्य कार्यं तिष्ठत्युत तदवयवेषु प्रत्येकम् । आद्ये कारणप्रतीतिरेव न स्यात् । कार्येण व्यवहितत्वात् । उत्पत्त्यनन्तरं च कारणं नश्येत । दध्ना दुग्धवत् । उत्पत्तिरपि न स्यात् । सर्वस्यापरिणामात् । द्वितीये तु दध्यवस्थायामपि दुग्धं प्रतीयेत । तत्तु न प्रतीयते । अत उभयथापि वक्तुमशक्यत्वादसदेव कार्यमास्थेयमत आह कारणभावादिति । इदं तदा शङ्क्येत यदि कारणातिरिक्तं तस्य रूपं स्यात् । कारणमेव तु कार्याकारेण परिणमत्यतः पूर्वावस्थायां कारणरूपमेव तदिति सुस्थिरः सत्कार्यवाद इति । न च सांख्यसिद्धत्वादस्या अप्रतिष्ठानं शङ्क्यम् । प्रधानस्य कारणतात्यागे एतासामपि, 'सत्त्वेव सज्जायते' इति श्रुतिमूलत्वात् । अतः साप्यादरणीयैव । सांख्यप्रसिद्धत्वादेता भाष्ये पुनर्नोक्ताः । अथोत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्यासत्त्वेऽपि समवायस्य विद्यमानत्वात् ततस्ततस्तत्तदुत्पत्तिरिति चेत् तत्राहुः **युक्तिस्तावत् समवेतमेवे**त्यादि । अयमर्थः । समवायो यदि साधारणस्तदाऽवधिनियमभङ्गापत्तिरतोऽसाधारणो वक्तव्यः । असाधारण्यं च कार्यवैशिष्ट्यनियतमतः सदेवोत्पाद्यत इत्येव सिद्ध्यति । किंच संबन्धत्वेन स उपगम्यते । संबन्धस्तु संबन्धिद्वयनिर्वर्त्यः । स कार्यरूपस्य संबन्धिनोऽभावे कथं सिद्ध्येत् । असिद्धश्च कथमुत्पत्तिं ततस्ततो नियमयेत् । किंच । स्वकारणे केनचित् संबन्धेन तस्य वृत्तिर्वक्तव्या । तथा सति तस्यापि संबन्धान्तरापेक्षेत्यनवस्था ।

रश्मिः ।

'कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते' इति वाक्यात् । **तदभावाये**ति सर्वतः सर्वानुत्पत्तये । **कार्यवैशिष्ट्येने**ति घटोत्पादिका शक्तिः पटोत्पादिकाशक्तिरित्यादिरीत्या कार्यवैशिष्ट्येन । **तत** इति वैशिष्ट्यार्थं कार्यसत्त्वात् । कारणरूपातिरिक्तं कार्यरूपमास्थाय शङ्कते **ननु कारण** इति । **व्यासज्ये**ति समवायसंबन्धेनात्यन्तं संबध्य । **प्रत्येक**मिति व्यासज्यैत्येव । **अपरी**ति यथा न मृदः किंतु मृत्पिण्डमात्रस्य घटः परिणामः । **प्रतीयेते**ति अवयवेषु कार्यस्य विद्यमानत्वात् प्रतीयेत । इदं च सर्वं परिणमति । **कारणरूप**मिति तेन कारणभावादित्यस्य कारणत्वादित्यर्थः । **अस्या** इति युक्तेः । **सज्जायेते**ति छान्दोग्ये 'कथमसतः सज्जायेत' इति श्रुतिः । **ततस्तत** इति घटसमवायविशिष्टाद्घटस्योत्पत्तिर्न पटादेः । समवेतपदेन समवायसंबन्धेन संबद्धमुच्यतेऽतः समवायं विचारयन्ति **समवाय** इति । **साधारण** इति नित्यसंबन्धः समवाय इति नित्यत्वात्साधारणः । अयुतसिद्धवृत्तित्वे सति युतसिद्धवृत्तिरिति तर्कः । अवधिः । अवयवावयविनौ गुणगुणिनौ क्रियाक्रियावन्तौ जातिव्यक्ती नित्यद्रव्ये चेत्युक्ता अर्थाः । असाधारणेऽयुतसिद्धवृत्तिः । **कार्यवैशिष्ट्ये**ति अवयवावयविवद्ब्रह्मसमानेश्वरप्रपञ्चयोः संबन्धस्तन्नियतम् । समवायदूषणस्य वक्ष्यमाणत्वाच्छब्दान्तरैर्भाष्यं व्याकृतम् । भाष्ये समवायस्तादात्म्यम् । ऐतदात्म्यमिदं सर्वमिति श्रुतेः सत्तारूपेण कारणे वर्तमानत्वम् । एतदेव कार्यवैशिष्ट्यम् । **संबन्धस्ये**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **किंच स**मिति । **नियमये**दिति । अतः कार्यं नित्यमभ्युपेयमिति भावः । **नित्यत्वाचे**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **किंच स्वे**ति । **कारण** इति समवायिकारणे संबन्धिनि । **तस्ये**ति समवायस्य । **तस्ये**ति येन संबन्धेन समवायस्तस्य संबन्धस्य ।

नित्यत्वाच्च कारणान्तरेणापि परंपरया संबन्धः। असंबद्धोत्पत्तौ तु मिथ्यात्वमेव। प्रवृत्तिस्त्वभिव्यक्त्यर्थमिति।

भाष्यप्रकाशः ।

अथ यथान्येषां सत्तासंबन्धात् सत्त्वम् । सत्ता तु स्वत एव सती। तथाऽन्येषां कार्याणां समवायेन संबन्धित्वम् । समवायस्य तु स्वत एव संबन्धित्वमिति विभाव्यते, तदा स नित्य इति तस्यापि साधारण्यापत्त्या सर्वतः सर्वोत्पत्तिप्रसङ्गः । किंच। निमित्तासमवायिनोरपि तस्य सत्त्वात् तत्समवेतत्वेनापि पटाद्युत्पत्तिप्रसङ्गः। अथ विद्यमानेऽपि निमित्तासमवायिनोः समवाये तदसंबद्धमेवोत्पद्यत इत्युच्यते, तर्हि समवायिनाप्यसंबद्ध एवोत्पद्यताम् । नियामकाभावात्। ततश्च मिथ्यात्वमेव कार्यस्यापद्येत। शुक्तिकारजतवत् । नियामकाङ्गीकारे तु कार्यातिरिक्तस्य नियामकत्वाभावादसत्कार्यवादस्य भङ्ग एवेति। ननु सत्यमेवं तथापि कार्यस्य सत्त्वे कर्तृप्रवृत्तिवैयर्थ्यप्रसङ्गो नित्यानित्यविभागानुपपत्तिश्चेति तदभावाय तथाद्रियत इति चेत् तत्राहुः **प्रवृत्तिरित्यादि**, तथा च सदेव कार्यं पूर्वमनभिव्यक्तं कर्त्रा कारकव्यापारेणाभिव्यज्यतेऽतो न प्रवृत्तिवैयर्थ्यम्। नापि नित्यानित्यविभागानुपपत्तिरित्यर्थः।

रामानुजाचार्यास्तु अभिव्यक्तिर्नित्या अनित्या वा । अन्त्ये तस्या अभिव्यक्त्यन्तरसापेक्षत्वादनवस्था। आद्ये तु कार्यस्य सदैवोपलम्भापत्तिः। किंचैवं कारकव्यापारस्याभिव्यञ्जकत्वं वक्तव्यम्। तच्चाभिव्यञ्जकेषु दीपादिषु प्रकाशकत्वरूपं साधारणमेव दृष्टमिति

रश्मिः ।

नित्यत्वाच्चेति भाष्यं विवृण्वन्ति **अथे**ति। **स** इति समवायः । **साधारण्ये**ति कार्यावैशिष्ट्यापत्त्या। **प्रसङ्ग** इति। अतोपि कार्यं नित्यमभ्युपेयमिति भावः। ननु समवायस्य साधारण्येन घटसमवायस्य वायौ सत्त्वेपि घटाभावान्न वायोर्घटोत्पत्तिरिति न सर्वतः सर्वोत्पत्तिरिति शङ्कामपनुदन्तः **कारणे**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **किं च निमित्ते**त्यादि। निमित्तासमवायिनोरिति सप्तम्यन्तम्। **तस्य** समवायस्य। **सत्त्वात्** परंपरासंबन्धेन सत्त्वात्। **प्रसङ्ग** इति। अतोऽपि पटादिकार्यं समवायिन्येवेति कारणान्तरेण निमित्तासमवायिरूपेण समवायिकारणभिन्नकारणेन परंपरया संबन्धोभ्युपेय इति भाष्यार्थः । पूर्वोक्ताक्षेपेण सिद्धान्तयन्तोऽ**संबद्धे**त्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति **अथ विद्यमान** इति। **तदसंबद्धं** कार्यं समवायेन तदसंबद्धम् । **असंबद्धः** पटादिः । ननु समवायिनेत्युक्तया समवायसिद्ध्या कथमसंबद्धमुच्यत इति चेन्न । शङ्कमानस्य अधीष्टत्वात् । उत्पद्यतामिति लिङा तथा निश्चयात् । **ततश्चे**ति असंबन्धोत्पत्तेश्च **असत्कार्ये**ति घटो मृद्येवेति नातः पटाद्युत्पत्तिरित्येवमादिप्रकारेण कार्यनियामकतायां तथेत्यर्थः । **एवे**ति स्वमतेप्यान्तरालिकसृष्टेः, पुराणमते मायाकरणिका सृष्टिः, अतोऽत्यन्तायोगव्यवच्छेद एवकारार्थः । नीलं सरोजं भवत्येवेतिवत् । न चाचिन्त्यशक्त्योपपत्तिः। तस्या अगतिकगतित्वात्। **कर्तृप्रवृत्ती**ति प्रपञ्चकरणार्थं भगवतः प्रवृत्तिवैयर्थ्यप्रसङ्गः। नैयायिक आह **नित्यानित्ये**ति यथाहुः पृथिवी द्विविधा । नित्याऽनित्या च। नित्या परमाणुरूपा। अनित्या कार्यरूपेति । **तदभावाये**ति प्रवृत्तिवैयर्थ्याद्यभावाय। कार्यमसत्त्वेनाद्रियते । **प्रवृत्तिरित्यादी**ति प्रपञ्चकरणार्थं भगवतः प्रवृत्तिः । प्रकारान्तरं निषेद्धुमभिव्यक्तिं समर्थयितुं चाहू रामानुजमतं **रामे**ति । आविर्भावतिरोभाववादेऽभिव्यक्तिराविर्भावरूपा विचारितेति नानवस्था नापि सदैवोपलम्भापत्तिरित्याशयेन तदीयान्यदपि भाष्यमाहुः **किंचैव**मिति।

भाष्यप्रकाशः।

घटार्थेन कारकव्यापारेण करकादेरप्यभिव्यक्तिप्रसङ्ग इत्यसत्कार्यवादिन आक्षेपे, उत्पत्तेरपि नित्यत्वे सदैवोत्पद्यमानतया सत्कार्यवादप्रसङ्गादसत्कार्यसिद्धान्तहानिरनित्यत्वे चानवस्थेति तं प्रति दोषं प्रदर्श्योत्पत्तिविनाशादीनां कारणावस्थाविशेषत्वमुपगम्य तत्तदवस्थस्यैव द्रव्यस्य ते ते शब्दास्तानि तानि कार्याणीति द्रव्यस्य तत्तदवस्थापादनेन कारकव्यापारस्य सार्थक्यमाहुः। परमेता युक्तयः प्रतिबन्दित्वादनुत्तरभूता एव। अवस्थास्वपि नित्यानित्यविकल्पस्य शक्यक्रियत्वात्। अतः श्रुतिरेव शरणीकरणीया। अत एव व्यासचरणैरपि, शब्दान्तरादिति हेतुरेतत्समभिव्याहारेणोक्तः। एतावान् परं विशेषः। असत्कार्यवादिनां कार्यस्य नियतावधिकत्वाय प्रागभावसमवायादिकल्पनमधिकम्। श्रुतिविरोधादप्रामाणिकं च। अस्माकं तु न ते दोषाः। श्रुतौ 'पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्' इति, 'स वै सर्वमिदं जगत्' 'स भूतं स भव्यम्' इति भूतभव्यव्यवहारविशिष्टस्यैव जगतो ब्रह्मत्वमुच्यते इति वर्तमानत्वाविरोधेनैव भूतत्वादिस्थितिः। सा चैवं बोध्या। यथा सर्वस्य ब्रह्मात्मकत्वाविशेषेऽपि पृथिव्यामेव गन्धसत्ता, न जलादौ। पृथिव्यां सर्वविधगन्धसत्त्वेऽपि तत्तद्देशकालावच्छेदेन तत्तद्गन्धोद्भवनिवृत्त्यनुद्भवनियम इच्छाहेतुकस्तथा भूतादित्रयस्य वर्तमानत्वेऽपीच्छयेदानीमिह भावित्वमेवमुद्भवत्वेवं निवर्ततामेवं वर्तमानत्वमुद्भवत्वेवं निवर्ततामेवं भूतत्वमुद्भवत्वेवं निवर्तताम्।

रश्मिः।

कारकादेरिति दृष्टान्तसाम्यात्तथेत्यर्थः। असत्कार्यवासनावासितान्तःकरणत्वेनोत्पादकव्यापारेऽपि प्रकाशकव्यापारदृष्टान्तीकरणम्। 'दृढभावनया त्यक्तपूर्वापरविचारणम्। यदादानं पदार्थस्य वासनेति प्रकीर्तितम्' इति वाक्यात्। **आक्षेप** इति सत्कार्यवादिनं प्रत्याक्षेपे। **तं प्रती**ति सत्कार्यवादिनाऽसत्कार्यवादिनं प्रति। **कारणावस्थे**ति घटादयः कपालाद्यवस्थाविशिष्टा उत्पन्नाः। भग्नास्तु कपालाद्यवस्थारूपा इति। **प्रतिबन्दी**ति तुल्यो दोषः प्रतिबन्दिरिति शंकरकृतखण्डने। निग्रहस्थानत्वादित्यर्थः। 'स्वपक्षदोषाच्च' इति सूत्रे व्याकृतमिदं पदम्। एवं सत्कार्यवाद्यसत्कार्यवादिनोर्दोषतौल्यं तर्काप्रतिष्ठानादुक्तं रामानुजमत आहुः **अवस्थास्वपी**ति। **शक्यक्रिये**ति। तथा चात्राप्युत्पत्तेरपीत्यादि वाच्यम्। तथा च युक्त्यपेक्षतया निग्रहस्थानमिति भावः। श्रुतिः 'स आत्मानꣳ स्वयमकुरुत' इत्यत्र 'अकुरुत' इति क्रियायाः। **अतः** समासान्तर्गतक्रियाशब्दः। **श्रुतिरे**वेति स आत्मानमिति श्रुतिः। **अत एवे**ति युक्तीनामप्रतिष्ठानादेव। **एतत्समभिव्याहारेण** युक्तिसमभिव्याहारेण। **उक्त** इति सत्त्वदाढ्र्योयोक्तः। तेन प्रथमहेतुशैथिल्ये द्वितीयो हेतुरुपन्यसनीय इति बोधितम्। युक्तावप्यसत्कार्यवादिनः स्वमते विशेषमाहुः **एतावा**निति। **ब्रह्मत्वं** पुरुषत्वम्। **सा चे**ति वर्तमानत्वाविरोधेनैव भूतत्वादीनां स्थितिः। **तत्तद्गन्धे**ति कमलेषु पुष्पप्रदेशे परागविकासादिकाले कमलगन्धोद्भवः सुरभिगन्धनिवृत्तिः चम्पकगन्धानुद्भव एषां नियमः। **इहे**ति घटादौ। **एवमि**ति कारकव्यापारेण चक्रचीवरादिसंपादनकाले इह कपालादौ घटो भविष्यतीति प्रतीतिकाले भावित्वमेव समुद्भवतु। **एवमि**ति कारकव्यापारेण चक्रचीवरादिसंपादनोत्तरं भावित्वं निवर्तताम्। **एवमि**ति चक्रचीवरादिसंपादनोत्तरं जातो घट इति प्रतीतिकालावच्छेदेन भावित्वनाशक्षणः घटवर्तमानत्वोत्पत्तिक्षणः घटोस्तीतिप्रतीतिकालावच्छेदेन वर्तमानत्वस्थितिक्षणः। एवं वर्तमानत्वमुद्भवतु। **एवमि**ति दण्डोद्यमननिपतनजाघातसंयोगेन वर्तमानत्वं निवर्तताम्। विभागद्वारेति केचित्। सर्वं विभागद्वारोत्पद्यते, स्वर्गादि यथा यूपकाष्ठाद्विभागेन

शब्दान्तरं सच्छब्दादात्मशब्दः । 'आत्मान९ स्वयमकुरुत' इति ॥ १८ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

अत्र सर्वदा वर्तमानत्वमेवोद्भूतं तिष्ठत्विति नियमात् । यत्र च नायं नियमो यथा गीतायां, 'केचिद् विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः' इति, श्रीभागवते च, 'मयेमा रंस्यथ क्षपाः' इति, तस्य तस्य तेषु तेषु तत्तद्धर्मानुभवादप्यविरोधेनेति न कोऽपि क्वापि दोषोऽप्रामाणिकत्वं वा । इदं यथा तथा विद्वन्मण्डने प्रभुचरणैर्निपुणतयोपपादितं मया च तद्विवृतमिति ततोऽवगन्तव्यम् । एवंच सर्वस्य ब्रह्मकार्यत्वेऽपि इदं नित्यत्वेन लोके व्यवह्रियतामिदमनित्यत्वेनेति तदिच्छयैव विभागोऽपि बोध्यः । तथा साधुत्वासाधुत्वादिव्यवहारोऽपि । प्रजायेयेतीच्छाशरीरे प्रविष्टस्य प्रकर्षस्यातिपिचण्डिलत्वेन सर्वसमाधानसमर्थत्वात् । एवमन्या अप्यनुपपत्तयो भगवदिच्छास्वरूपविचारेणैव परिहरणीया इति दिक् ।

एवं युक्तिर्व्याख्याता । शब्दान्तरं व्याकुर्वन्ति शब्दान्तरमित्यादि । तथा च तेनाविकृतत्वं युक्त्यगोचरत्वं च श्रुत्यैव बोध्यत इति न कोऽप्यसत्कार्यवादशङ्कावकाश इत्यर्थः ॥ १८ ॥

रश्मिः ।

पटो यत्राद्विभागेनेत्येवं घटोपि मृद्विभागेन । संयोगेनेति केचित् । न च मृद्विभागोऽन्यथासिद्ध इति वाच्यम् । शरावादौ संयोगनिरपेक्षे तदभावात् । मृद्विभागस्य सत्त्वात् । 'यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्ति' इति श्रुतौ विभागेन सृष्टिः । प्रलये संयोगेन नाश इति सार्वजनीनम् । **एव**मिति वर्तमानध्वंसप्रतियोगित्वं दण्डादिनोद्भवत्वितीच्छाकारः । ध्वंसस्य ध्वंसाभावादेवं निवर्ततामित्यत्र नास्ति । एष आगच्छामीत्यादौ तु वर्तमानप्रयोगो न भूतत्वनाशः । 'अनागतमतीतं च' इत्यत्र भूतत्वनाश इति चेत् । लोकदृष्ट्यैवमित्यादि सर्वत्र बोध्यम् । 'अनागतमतीतं च वर्तमानम्' इत्यादौ शास्त्रदृष्टेः । एवमनित्यव्यवस्थामुक्त्वा नित्यविषय आहुः **अत्र सर्वदे**ति ब्रह्मत्वादौ । 'अविनाशी वा अरेऽयमात्मानुच्छित्तिधर्मा' इति श्रुतौ धर्माणां नित्यत्वोक्तेः । एवं निवर्ततामित्यत्रापि नास्ति । नित्येषु वर्तमानत्वानिवृत्तेः । **अय**मिति भावित्वमेवेत्युक्तैकधर्मनियमः । **केचिद्विलग्ना** इति विश्वरूपप्रदर्शने 'सन्दृश्यन्ते' इति वर्तमाने लट् । **चूर्णितै**रिति भूते क्त इति वर्तमानत्वं भूतत्वं च धृतराष्ट्रपुत्रेषु सावनिपालेषु भीष्मादिषु च केषाञ्चित् । तथे**मा** इति वर्तमानाः । **रंस्यथे**ति भविष्यत्काले लट् । अत्र भावित्ववर्तमानत्वयोर्न नियमः । भाविन्यः क्षपा इमा इति वर्तमानाः कृता इति । **तस्य तस्ये**ति अर्जुनस्य भगवतो व्रजजनस्य धृतराष्ट्रपुत्रादिषु रात्रिरूपवस्तुषु भूतत्ववर्तमानत्वयोर्भावित्ववर्तमानत्वयोर्न नियमः । **अनुभावा**दिति अनुभावः प्रथमसुबोधिन्यामस्ति । 'द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गम्' इत्यत्र विप्लुष्टमिति भूते क्तः । इदमिति वर्तमानम् । इदमस्तु प्रत्यक्षगे रूपात् । **उपपादित**मिति आविर्भावतिरोभाववादे उपपादितम् । **इद**मिति घटादि, आविर्भावतिरोभावाभ्याम् । **ब्रह्मत्वा**दिकं वा । इदमिति शुक्तौ रजतम् । जगद्वा । नाम प्रपञ्चेप्याहुः **तथे**ति । **साधुत्वे**त्यादि गवादिपदेषु साधुत्वं गोणी गोपोतलिकेत्यादिपदेष्वसाधुत्वम् । **इच्छे**ति इच्छायाः शरीर आकारे । **पिचण्डि**लेति । 'बृहत्कुक्षिः पिचण्डिलः' इत्यमरः । **अन्या** इति बीभत्सत्वादिप्रतीतिरूपाः । **इच्छास्वरू**पेति दृष्टमनुरुध्यैवमेव भवत्वितीच्छास्वरूपं सविषयम् । यथेदं ब्रह्मत्वेपि बीभत्सं भवतु दशरसत्वाद्भगवत इत्युदाहरणम् । **शङ्का वे**ति । न च पूर्वसूत्रे वाक्यशेषनिरूपण आत्मानमित्यस्य व्याकृतत्वा ।

---

१. अनुभावादिति रश्मौ पाठः ।

पटवच्च ॥ १९ ॥

यथा संवेष्टितः पटो न व्यक्तं गृह्यते, विस्तृतस्तु गृह्यते, तथाऽविर्भावाना-विर्भावेन जगतोऽपि ॥ १९ ॥

यथा च प्राणादिः ॥ २० ॥

यथा प्राणापानानां नियमने जीवनमात्रम्, अनियमने आकुञ्चनादि । नैतावता प्राणभेदः । पूर्वमसत्त्वं वा । तथा जगतोऽपि । ज्ञानक्रियाभेदात् सूत्रद्वयम् ॥ २० ॥

इति द्वितीयाध्याये प्रथमपादे नवममसद्व्यपदेशाधिकरणम् ॥ ९ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

पटवच्च ॥ १९ ॥ ननु कारणे कार्यसत्ता तदा वक्तुं शक्या यदि कथंचिदपि कार्यं प्रतीयेत । अन्यथा तु कारणमेव स्यान्न कार्यमित्यत आह पटवदिति । तद् व्याकुर्वन्ति यथेत्यादि । **आविर्भावानाविर्भावेनेति** । सर्वोऽपि द्वन्द्वो विभाषैकवद्भवतीत्येकवद्भावः । तथा चाग्रहणेऽपि यथा पटसत्ता तथा कार्यसत्तापीत्यदर्शनं न कार्याऽसत्तासाधकमित्यर्थः ॥ १९ ॥

यथा च प्राणादिः ॥ २० ॥ ननु कार्यसत्त्वे तेनार्थक्रिया तु काचित् क्रियेत । यथा अदृश्येनापि भूतेन परदुःखोत्पादनम् । अत्र तु तदभावात् कथं तत्सत्त्वेत्यत इदं सूत्रं प्रवृत्तम् । तद् व्याकुर्वन्ति यथा प्राणेत्यादि । अवतारणिकाया अनुक्तत्वात् सूत्रप्रयोजनं स्फुटीकुर्वन्ति ज्ञानेत्यादि । तन्मयैतत्सूत्रद्वयावतारणिकायां विवृतमेव । एवमनेनाधिकरणेन सत्कार्यवादे श्रुते-

रश्मिः ।

द्धेत्वन्तरे व्याख्यानं कुत इति वाच्यम् । वाक्यशेषादित्यत्र वाक्यस्यासदेवेत्यस्य धर्मान्तरात्मत्वादघटितस्य शेष इत्यर्थे आत्मानमित्यस्याव्याकृतत्वेन हेत्वन्तरेत्र व्याख्यानात् । **शांकररामानुजभास्कराचार्याः शब्दान्तरम्**, असतः सदिति चक्रुः । तत्तु 'असदिति चेन्न' इति सूत्रविषयम् । **माध्वास्तु** तम आसीदिति पूर्वमुक्त्वा ऐश्वर्यद्वारा सृष्टिं युक्त्या नाम, 'साधनानां साधनत्वं यदात्माधीनमिष्यते, तदा साधनसंपत्तिरैश्वर्यद्योतिका भवेत्' इत्यादेः साधनान्तरेण सृष्टिर्युक्तेत्याहुः । अब्द्वारा शब्दान्तराच्चेत्यत्र 'अद्भ्यः सभूतो हिरण्यगर्भ इत्यष्टौ' इति श्रुतौ शब्दान्तराच्चेत्याहुः । तमोऽपामवान्तरप्रलयविषयत्वं समाकर्षो वेत्यन्यदेतत् । ऐश्वर्यद्वारा सृष्टिनिर्बन्धे 'कचिदन्यथा' इत्युक्तेति स्पष्टा ॥ १८ ॥

पटवच्च ॥ १९ ॥ वाक्यशेषस्याव्याकृतत्वप्रयोजकत्वाक्षेपेण समाधायकं भाष्यमित्याशयेनावतारयन्ति **ननु कारण** इति । तथा चाव्याकृतत्वं न जीव इति । वाक्यस्य शेषत्वं नेति भावः । **इत्यर्थ** इति । तथा च सत्तात्मकाव्याकृतत्वसत्त्वान्नाव्याकृतत्वप्रयोजकत्वाभाव इति भावः ॥ १९ ॥

यथा च प्राणादिः ॥ २० ॥ पुनः प्रकारान्तरेणाव्याकृतत्वाक्षेपेण समाधायकं भाष्यमित्याशयेनावतारयन्ति **ननु कार्येति** । तथा चाव्याकृतत्वं न जीव इति वाक्यस्य शेषत्वं नेति भावः । **यथा प्राणेत्यादीति** भाष्ये **नियमन** इति । प्राणापानादिवायुर्यथा नाभिनासिकादिस्थानेषु प्राणायामेन निरुद्धः रन्ध्ररूपेण स्वकारणाकाशकार्यरूपेण वर्तते स्वकारणे लयात् । तस्मिन्सति जीवनमात्रं 'न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन । इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ' इति श्रुतेः । लोक

इतरव्यपदेशाद्धिताकरणादिदोषप्रसक्तिः ॥ २१ ॥ (२-१-१०)

ब्रह्मणो जगत्कारणत्वे इतरस्य जीवस्यापि ब्रह्मत्वात् तद्धितं कर्तव्यम् ।

भाष्यप्रकाशः ।

युक्तेश्च विरोधः परिहृतः । युक्त्या कार्यस्य कारणाद् भेदश्च निराकृतः ॥ २० ॥

इति नवममसद्व्यपदेशाधिकरणम् ॥ ९ ॥

इतरव्यपदेशाद्धिताकरणादिदोषप्रसक्तिः ॥ २१ ॥ चेतनकारणत्वे प्राप्तदोष-परिहारायाधिकरणान्तरमारभते । संशयस्तद्बीजं च पूर्वपक्षादेव स्फुटति । इदं पूर्वपक्ष-

रश्मिः ।

थाहुर**नियमन** इति । **आदि**पदेन प्रसारणगमने । उत्क्षेपणापक्षेपणे तु नोक्ते प्राणापानोत्क्षेपणाप-क्षेपणयोरुपासनाविषयत्वेनालौकिकत्वात् । **नैतावते**ति अर्थक्रियाकारित्वेन भेदेपि न प्राणत्वेन भेदो न वा प्राणादीनां पूर्वमसत्त्वमित्यर्थः । **तथे**ति । तथोत्पत्तेः पूर्वं जगतोर्थक्रियाकारित्वराहित्येपि न सत्त्वरूपत्वाभाव इत्यर्थः । **प्रकाशो** पादार्थं संगमयन्ति **एवमि**ति । **श्रुतेः** असद्वेत्यस्याः । **युक्तेः** समवेतमेव कार्यं सदुत्पद्यत इत्यस्याः । **विरोधः** सदसद्विरोधः । असदर्थस्याव्याकृतस्य सत्त्वात्परि-हृतः । ननु कथं व्याकृताभावस्याव्याकृतस्य सत्त्वं सत्ताया द्रव्यगुणकर्मवृत्तित्वादिति चेन्न । नाम-रूपैर्व्याकृतत्वाभावस्य ब्रह्मधर्मत्वेन सत्तासामानाधिकरण्येन प्रकारेण सत्त्वात् । 'एकं रूपं रसात्पृथक्' इतिवत् । तेन पूर्वाधिकरणेन निर्वाहकसङ्गतिरिति सूचितम् । प्रसंगसंगतिः स्वमतप्रतिपन्ना स्पष्टैव । **युक्त्ये**ति उक्तयैव । **शंकरभास्कराचार्य**मतेऽर्थः समानकः ।

रामानुजाचार्यास्तु यथा तन्तव एव व्यतिषङ्गविशेषभाजः पट इति नामरूपकार्यान्तरादिकं भजन्ते तद्वद्ब्रह्मापि । द्वितीयसूत्रे । यथा वायुरेवैक एव शरीरे वृत्तिविशेषं भजमानः प्राणापानादि-रूपकार्यान्तराणि भजते तद्वद्ब्रह्मैकमेव विचित्रस्थिरचररूपं जगद्भवतीति परमकारणात्परस्माद्ब्रह्मणो-नन्यत्वं जगतः सिद्धमित्याहुः ।

माध्वास्तु–साधनान्तरेण पटादिसृष्टिर्दृष्टा । द्वितीयसूत्रे 'तच्च साधनजातं तेनानुप्रविष्टमेव यथा शरीरेन्द्रियादिः' । 'प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्य पुरुषोत्तमः । क्षोभयामास भगवान्सृष्ट्यर्थे जगतः प्रभुः' इति कौर्मे इत्याहुः । तत्स्वमतानुसारेण युक्तमेव । सूत्राणां सारवद्विश्वतोमुखत्वात् । अत्र समन्वयो विषयः । स च 'असद्वा इदमग्र आसीत्' इत्यत्र प्रागुत्पत्तेः कार्यस्यासत्त्वमङ्गीकृत्योत रूपान्तरमङ्गी-कृत्येति संशयः । श्रुत्यैवासत्त्वं बोध्यते तेन रूपेण न रूपान्तरेणेति पूर्वपक्षेऽभिधीयते । अव्याकृतत्वेन धर्मान्तरेण कार्यस्यासत्त्वम् । 'असद्वा' इति श्रुतेः 'तदात्मानम्' इति श्रुतिविरोधात् धर्मान्तर-बोधकासच्छब्दघटितत्वादिति सिद्धान्तः ॥ २० ॥

इति नवममसद्व्यपदेशाधिकरणम् ॥ ९ ॥

इतरव्यपदेशाद्धिताकरणादिदोषप्रसक्तिः ॥ २१ ॥ भक्तिमार्गे भोगैरात्मानमात्म-नीत्येकोनविंशाध्याये परमं भक्तिसाधनमात्मयागः स्मर्यते । 'मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च' इत्यपि । तत्रैव तत्रात्मयागे भोगसुखसाधनत्यागो गौण इति शङ्कापाकरणाय सुखभोगत्यागप्राधान्यमपि प्रतिपादितं भविष्यति । **चेतने**ति सच्चिदानन्दसृष्टौ चेतनकारणत्वे । **पूर्वपक्षादि**ति । **सूत्रे** संशय-

तन्न करोतीति तदकरणादिदोषप्रसक्तिः। 'तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' इति तस्यैव जीवव्यपदेशात्॥ २१॥

अधिकं तु भेदनिर्देशात्॥ २२॥

तुशब्दः पक्षं व्यावर्तयति। यदि ब्रह्म तावन्मात्रं भवेत् तदायं दोषः। तत् पुनर्जीवाज्जगतश्चाधिकम्। कुतः। भेदनिर्देशात्। द्रष्टव्यादिवाक्येषु कर्मकर्तृ-

---

भाष्यप्रकाशः

सूत्रम्। तत्र पूर्वाधिकरणे सर्वस्य जगतो ब्रह्मानन्यत्वे जीवस्यापि तदनन्यत्वं जगद्विलक्षणत्वं च सिद्धम्। तत्र किंचिदाशङ्कत इत्याहुः ब्रह्मण इत्यादि। इतरव्यपदेशात्। तत् सृष्ट्वेति श्रुतौ सृष्टावनुप्रवेशः श्राव्यते। स च, अनेनेति श्रुत्या जीवे निश्चाय्यते। तस्मात्मत्वेन कार्य-विलक्षणतया ब्रह्मत्वं च बोध्यते। अत इतरस्यात्मत्वेन व्यपदेशात् सिद्धे तस्य शुद्धब्रह्मत्वे तद्धितं कर्तव्यम्। सर्वोऽपि स्वहितं करोतीति। तच्च सर्वानर्थदुःखनिकरहेतुभूतायां सृष्टौ तस्यानुप्रवेशनान्न करोतीति हिताकरणस्याहितकरणस्य च प्रसक्तिः। सा च प्रत्यक्षसिद्धा न निह्नोतुं शक्यते। अतः सर्वज्ञस्य सर्वशक्तेः स्वाहितादिकरणादसङ्गता ब्रह्मणः कारणतेति जीवानां नित्यभिन्नत्वमेवाङ्गीकार्यं न तु ब्रह्मत्वम्। अथ ब्रह्मत्वमङ्गीकार्यं तदोक्तदोषप्रसक्तिः। तस्मा-ज्जगद्वाचित्वाधिकरणे यद् ब्रह्मणो जडजीवकर्तृत्वमङ्गीकृतं तदसङ्गतमित्यर्थः॥ २१॥

अधिकं तु भेदनिर्देशात्॥ २२॥ परिहरतीत्याहुः तुशब्द इत्यादि। 'स्वयमेवा-त्मनात्मानं वेत्सि' इत्यादावेकस्यापि कर्मकर्तृव्यपदेशदर्शनाद्धेतोः साधारणत्वमित्यरुच्या व्याख्या-नान्तरमाहुः विज्ञानेत्यादि। तथा च यथैक्यं बोध्यते तथा ज्ञेयत्वेनानन्दरूपत्वेन च भेदोऽपि बोध्यतेऽतोऽयं भेदो ब्रह्मण आधिक्ये पर्यवस्यति। आधिक्यं चांशित्वाद् भूमविद्यायां निरवध्या-

रश्मिः।

स्तावत् तत्सृष्ट्वा तदेवेत्यादिश्रुत्योर्जीवेनात्मनेति सामानाधिकरण्याज्जीव एवात्मा तेनेत्यर्थो वात्मनांशेन जीवेनेति संशयः। उभयथार्थः संशयबीजं तस्यैव जीवव्यपदेशाद्धिताकरणमादिनात्मयागपरिच्छेदः। एतदादिदोषप्रसक्तिः इति पूर्वपक्षादित्यर्थः। तदाहुः **पूर्वपक्षे**ति। हिते नञन्वयं मत्वाहुः **अहिते**ति। तथा च छन्दोवत्सूत्राणि भवन्तीति हिता इति नञ्विशिष्टाः। तस्य हितः हितस्य करणं तस्येत्यप्यर्थः। प्रयोजनं तु 'त्वं च रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय' इत्यादिभिः सृष्टिरेषोत्तरोत्तरेति। अयं **माध्व**-भाष्येऽपि 'जीवकर्तृत्वपक्षे हिताकरणमहितकरणं च न स्यात्' इतीतरव्यपदेशसूत्रस्य॥ २१॥

अधिकं तु भेदनिर्देशात्॥ २२॥ इत्यादीति। आदिपदेन 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' इत्यादिः स्पष्टत्वात्स्मृतिनिर्देशः। **हेतो**रिति ब्रह्म अधिकमतिरिच्यते कर्मकर्तृव्यपदेशात्। पटं देवदत्तः करोतीत्यत्र यथा। अत्र कर्मकर्तृव्यपदेशो ब्रह्मवत्, साध्याभाववति जीवेपीति साधारण्यम्। **ऐक्य**-मिति कर्मकर्त्रोरैक्यं स्मृत्या बोध्यते। **ज्ञेयत्वेने**ति 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इत्यत्र 'यो वेद निहितं गुहाया-म्' इति वेदनविषयत्वेनाक्षरमुक्तम्। तथा च योग्यार्थकप्रत्ययान्ते पदे विषयत्वयोग्यं ज्ञेयम्। आनन्द-रूपत्वेन परः। **अयमि**ति कर्मकर्तृभेदः। **आधिक्य** इति आनन्दत्वेनैक्येपि गणितानन्दे पर्यवस्यति। कथमित्यत आहुः **आधिक्यं चे**ति पूर्णानन्दत्वे सतीत्यर्थः। **नहीत्यादि** भाष्यं विवृण्वन्ति स

व्यपदेशात् विज्ञानानन्दव्यपदेशाद्वा । न हि संपूर्णांशस्य हितं नियमेन करोति । सर्वेन्द्रियव्यापाराभावप्रसङ्गात् । स्वलीलयैकं तु करोत्येव ॥ २२ ॥

अश्मादिवच्च तदनुपपत्तिः ॥ २३ ॥

पार्थिवत्वाविशेषेऽपि हीरमाणिक्यपाषाणानां पलाशचम्पकचन्दनानामुच्चनीचत्वमेवं जीवस्यांशत्वाविशेषेऽपि ब्रह्मादिस्थावरान्तानामुच्चनीचत्वम् । कार्यवैलक्षण्यं तदननुरोधश्च दर्शितः ॥ २३ ॥

इति द्वितीयाध्याये प्रथमपादे दशममितरव्यपदेशाधिकरणम् ॥ १० ॥

भाष्यप्रकाशः ।

नन्दे ज्ञेयत्वस्य पर्यवसानाच्च पूर्णत्वे । पूर्णश्चांशस्य हितं न नियमेन करोति । स्वदेहेऽपि नखनिकृन्तनकेशप्रसाधनादेर्दर्शनात् । अन्यथा सर्वेन्द्रियव्यापाराभावप्रसङ्गात् । किं तु स्वलीलया हिताहितयोरेकं तु करोत्येवेति लोके दृश्यते । तथाचांशांशिभावेनोक्तश्रुतिविरोधाभावादात्मत्वेऽपि हिताकरणादेरदोषत्वादसङ्गतेयमाशङ्केत्यर्थः ॥ २२ ॥

अश्मादिवच्च तदनुपपत्तिः ॥ २३ ॥ दृष्टान्तं व्याकुर्वन्ति पार्थिवेत्यादि । आदिपदस्यार्थः पलाशेत्यादि । त्रयाणां दृष्टान्तानामुक्तिः 'त्रयाः प्राजापत्याः' 'उत्पन्नास्त्रिविधा जीवाः' इति श्रुतिस्मृत्युक्तत्रैविध्यस्मारणाय । तथा चैकजातीयेष्वपि स्वभावभेदेनैवमुच्चनीचभावस्य लोके दृष्टत्वाज्जीवेष्वपि स्वभावभेदस्य विद्यमानतया तत एव समाधिः संभवतीति लोकन्यायेन प्रत्यवस्थयात्र यो दोष उद्भाव्यते तस्य तन्न्यायेनैवानुपपत्तिरित्यर्थः । ननु पूर्वसूत्रेणैव सिद्धे समाधानस्य सूत्रस्य किं प्रयोजनमत आहुः कार्येत्यादि । ब्रह्मणश्चेतनाचेतन-

रश्मिः ।

पूर्णश्चेति । **नखे**ति यत्किंचित्क्लेशजनकत्वेनाहितस्य । आनन्दस्य क्लेशाभावमाशङ्क्येदमुक्तम् । अन्यथेर्ष्याद्यभाववति सुखं केन हेतुना दुःखं भवेत् । **वाराहे** चातुर्मास्यमाहात्म्ये सुखमीर्ष्यासूयादिवशाद्दुःखं भवतीत्युक्तत्वात् । **सर्वेन्द्रिये**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति **अन्यथे**ति । स्वहिताकरणे यत्किंचित्क्लेशसंभवात्तथेत्यर्थः । तथा च 'सर्वेन्द्रियगुणाभासम्' इति वाक्यं विरुध्येत । **स्वलीलये**त्यादि विवृण्वन्ति **किं त्वि**ति । **एकं त्वि**ति यत्र यथा लीला तत्र तद्वशेनैकं हितं वाऽहितं वा करोतीत्यर्थः । **लोक** इति । 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' इति सूत्रात्तथात्रापीति बोध्यम् । **इयमि**ति पूर्वसूत्रोक्ता । **शांकरभास्कराचार्या**स्त्वाधिक्यं जगत्स्रष्टृत्वमाहुः । **रामानुजा**स्तु जीवाधिकमर्थान्तरभूतं ब्रह्मेत्याहुः । **माध्वा**स्तु ब्रह्माधिकमधिकशक्तीत्याहुः । सर्वथापि **पूर्णा**नन्दत्वे पर्यवसानम् । आनन्दार्थं भजनात् । **शांकराचार्य**मतं तु विद्वन्मण्डने 'अभेदादनुपाधित्वात्' इति कारिकाव्याख्याने निरस्तम् ॥ २२ ॥

अश्मादिवच्च तदनुपपत्तिः ॥ २३ ॥ श्रुतिस्मृतीति श्रुतिर्बृहदारण्यके । स्मृतिस्तु भाष्यपाठक्रमेणाधिभौतिकादिभावः । **लोकन्यायेने**ति हिताहितकरणन्यायेन । उक्तभाष्यप्रकाशात् । **तन्न्यायेने**ति हीरकेत्याद्युक्तसौत्रलोकन्यायेन । तेन तदनुपपत्तिरिति सौत्रपदं दोषानुपपत्तिवाचकमित्युक्तम् । तेषां दोषाणामनुपपत्तिस्तदनुपपत्तिः । **शांकरभास्कररामानुजाचार्या** एवमेव व्याकुर्वन्ति स्वपक्षं तु समर्थयन्ति । सूत्राणां सारवद्विश्वतोमुखत्वादुपपन्नम् । क्रीडावैचित्र्यात् । **माध्वास्तु** अधिकसूत्रे 'न च ब्रह्मणः श्रमचिन्तादिदोषप्रसक्तिः । अधिकशक्तित्वात्' । अश्मसूत्रे

उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि ॥ २४ ॥ (२-१-११)

ब्रह्मैकमेव जगत्कारणमित्युक्तम् । तन्नोपपद्यते । कुलालादेश्चक्रादिसाधनान्तरस्योपसंहारदर्शनात् सम्पादनदर्शनादिति चेन्न । क्षीरवद्धि । यथा क्षीरं कर्तारमनपेक्ष्य दधिभवनसमये दधि भवति । एवमेव ब्रह्मापि कार्यसमये स्वयमेव सर्वं भवति ॥ २४ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

रूपात् कार्यात् प्रपञ्चाद् वैलक्षण्यं, कार्याननुरोधश्चानेन सूत्रेण दर्शितः । अनुरोधस्तदधीनत्वम् । तथा च ब्रह्मणो न कार्यानुरोध इतीदमप्याधिक्यबोधनायोक्तमित्यर्थः । अनुरोध इति पाठे तु अनुरोधः कार्यस्वभावानुसारित्वम् । तथा सति तस्मादेव ब्रह्मणि न दोषगन्ध इति जगद्वाचित्वाधिकरणोक्तं कर्तृत्वं सूपपन्नमित्यर्थः ॥ २३ ॥

इति दशममितरव्यपदेशाधिकरणम् ॥ १० ॥

उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि ॥ २४ ॥ एवमधिकरणत्रयेण कार्यस्यांशस्य च कारणानन्यत्वेऽप्यनन्यत्वे च ये दोषास्ते परिहृताः । अतः परं ब्रह्मण एकस्यैवान्यनिरपेक्षस्य कारणत्वे पुनरन्यदाशङ्क्य समाधत्ते तदाहुः ब्रह्मेत्यादि एकस्यान्यानपेक्षस्य ब्रह्मणो जगदुपादानकारणत्वं यत् पूर्वं साधितं तन्नोपपद्यते । लोके हि मृदादीनामुपादानानां कुलालादेः कर्तुश्चक्रचीवरादेर्निमित्तान्तरस्य संपादनदर्शनात् । न हि बाधितमर्थं वेदोऽपि ब्रूते । सर्वत्र वेदे युक्तीनामादरदर्शनात् । यथा, न्यग्रोधफलमाहरेत्यादावित्येवं सूत्रांशेनाशङ्क्य समाधत्ते न क्षीरवद्धीति । इयमाशङ्का न कर्तव्या । हि यतो हेतोर्ब्रह्म न मृत्सूत्रादिवत् परिणमते, येनोक्तरीत्या शङ्क्येत । किं तु क्षीरवत् । तदेतद् विवृतं यथा क्षीरमित्यादिना । तथा च लोकेऽपि कर्तृसापेक्षत्वस्य क्काचित्कत्वदर्शनान्न बाधितोपदेश इत्यर्थः । एतेन वाक्यान्वयाधिकरणविषयवाक्ये ब्रह्मज्ञानेन सर्वज्ञानार्थं दुन्दुभिदुन्दुभ्याघातादीनामुभयेषां कथनेन, आर्द्रैधाग्नेरित्यत्रैधो-

रश्मिः ।

'चेतनत्वेप्यस्मादिवदस्वतन्त्रत्वात् स्वतः कर्तृत्वानुपपत्तिर्जीवस्य' इत्याहुः । इदं सर्वासंमतमपि क्रीडामतत्वादुपपन्नम् । अत्र समन्वयो विषयः । स च चेतनकारणत्वेस्ति हिताकरणादिदोषप्रसक्त्या नास्ति वेति संशयः । हिताकरणादिदोषप्रसक्त्या नास्तीति पूर्वपक्षेभिधीयते । अस्तीति सिद्धान्तः । जीवदोषेपि चेतनकारणेऽदोषात् । जीवात्मन आधिक्याद्ब्रह्मणः ॥ २३ ॥

इति दशममितरव्यपदेशाधिकरणम् ॥ १० ॥

उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि ॥ २४ ॥ अंश्यनन्यत्व इति जीवस्यांशत्वाविशेषेपीत्यव्यवहितपूर्वोक्तभाष्यात् । **अन्यदिति** वक्ष्यमाणम् । **पूर्वमिति** जन्मादिसूत्रे । **कुलालादे**रित्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति **लोक** इति । **वेद** इति 'तदात्मान१ स्वयमकुरुत' इति वेदः । **न्यग्रोधेति** श्वेतकेतूपाख्यानेऽस्ति । **परिणमत** इति । 'कर्तरि कर्मव्यतिहारे'इति सूत्रेणात्मनेपदम् । तथा च यथा जलाहरणादियोग्यं परिणामं करोति । तथा ब्रह्मापि जडवच्चितोपि यथाकथंचित् भोग्यत्वाद्ब्रह्म परिणमत इति कर्मव्यतिहार आत्मनेपदम् । न च परस्परकरणस्य कर्मव्यतिहारत्वेपि चिज्जडौ परिणमेते इति प्रयोगापत्तिः । ब्रह्मणश्चित्सत्त्वादुपपत्तेः । **बाधितेति** ब्रह्मैकं जगत्कारणम् । उपसंहारदर्शना-

देवादिवदपि लोके ॥ २५ ॥

स्वतोऽभिन्नकरणे दृष्टान्तः। यथा देवर्षिपितरो बाह्यनिरपेक्षा एव स्वयोगबलेन सर्वं कुर्वन्ति। एवं ब्रह्माप्यनपेक्ष्य तत्समवायं स्वत एव सर्वं करोति॥ २५॥

कृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा ॥ २६ ॥

यद्येकमेव ब्रह्म स्वात्मानमेव जगत् कुर्यात् तदा कृत्स्नं ब्रह्मैकमेव कार्यं भवेत्। अथांशभेदेन व्यवस्था, तथा सति निरवयवत्वश्रुतिविरोधः। निष्कलं निष्क्रियं शान्तमिति ॥ २६ ॥

भाष्यप्रकाशः।

ऽन्ययोर्द्वयोः कथनेन च यदन्यसंसृष्टस्य कार्यजनकत्वं प्रतीयते, तद्, विज्ञानं चाविज्ञानं चेत्येकस्य सत्यस्य ब्रह्मणः सृष्टावुभयरूपताश्रावणात् सृष्ट्यनन्तरभावीति सूच्यते। तस्मात् क्षीरवत् परिणामान्न स दोष इति बोधितम् ॥ २४ ॥

देवादिवदपि लोके ॥ २५ ॥ ननु भवत्वेवं परिणामे कर्तुरनपेक्षा, तथापि क्षीरस्य दधिभावेऽधिश्रयणाऽऽतञ्चनाद्यपेक्षा तु दृश्यत इति निमित्तानपेक्षा कथं समाधेया। किंच, लोकेऽपि दधिसमवायस्य क्षीरे विद्यमानत्वात् क्षीरं दधिरूपेण परिणमति। समवायस्तु न भवदभिमत इति व्यधिकरणो दृष्टान्तः। किंच क्षीरस्यैकविध एव परिणामः, ब्रह्मणस्तु विज्ञानाविज्ञानभेदेन कथमुभयविध इति द्वयं समाधातुमाह सूत्रकारः देवादीत्यादि। ननु किमनेन दृष्टान्तेनेत्यत आहुः स्वत इत्यादि। तथा च यथा कर्दमो 'विमानं कामगं क्षत्तस्तर्ह्येवाविरचीकरत्' इति निमित्तानि समवायादि चानपेक्ष्य विमानं च कृतवानेवं ब्रह्मापि सर्वानपेक्षं स्वसामर्थ्येनैव सर्वं करोत्युभयरूपं च भवतीत्यत्रापि न लोकविरोध इत्यर्थः। इदं च सूत्रद्वयं यथासंभवं यथासंख्यं वा सांख्यान् प्रत्यौलूकान् प्रति चोत्तरमित्यपि ज्ञेयम् ॥ २५ ॥

कृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा ॥ २६ ॥ एवं लोकविरोधे परिहृतेऽत्रैव श्रुतिविरोधमाशङ्कते कृत्स्नेत्यादि ॥ २६ ॥

रश्मिः।

दित्यत्र पक्षे साध्याभावो बाधो दृष्टान्ताभावोपि इति ब्रह्मैकमेव जगत्कारणमिति बाधितोपदेशः स न क्षीरवद्धीति दृष्टान्तसत्त्वादित्यर्थः ॥ २४ ॥

देवादिवदपि लोके ॥ २५॥ परिणमतीति। कर्मव्यतिहाराविवक्षया स्वाभाविकं परस्मैपदम्। भवदभीति। अग्रे सूत्रे दूषणात्। किंतु तादात्म्यम्। व्यधिकरण इति। विरुद्धाधिकरणे उपसंहारकर्तृब्रह्मणि पक्षे सति दृष्टान्त इत्यर्थः। आहेति दृष्टान्तान्तरमाह। पितरः सामवेदोक्ताः भूतादिरूपैर्वर्तन्ते। इति देवर्षिमुदाजह्रुः तथा चेति। सांख्यानिति 'क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य' इति वदतः सांख्यान्। तथा च सूत्रद्वयमुभयमतदृष्टान्तार्थमित्युक्तम्। तद्दृष्टान्तानुसारेण तां लक्ष्यीकृत्योत्तरं सिद्धान्तस्याग्रे श्रुतेस्त्विति वक्ष्यमाणत्वेऽपि तत्राविरुद्धत्वादित्यर्थः ॥ २५ ॥

कृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा ॥ २६ ॥ अत्रैवेति ब्रह्मणो जगत्कारणत्व एव। लोकविरोधपरिहारविषयादन्यव्यवच्छेदायैवकारः ॥ २६ ॥

श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् ॥ २७ ॥

तुशब्दः पक्षं व्यावर्तयति । श्रुतेः श्रूयत एव द्वयमपि । न च श्रुतं युक्त्या बाधनीयम् । शब्दमूलत्वात् । शब्दैकसमधिगम्यत्वात् । 'अचिन्त्याः खलु ये

भाष्यप्रकाशः ।

परिहरति ।

श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् ॥ २७ ॥ अत्र प्रथमसूत्रे प्रतिवादिनोः संभूय समुत्थानेनाक्षेपः । द्वितीये तूभयोः प्रति साधारण्येन समाधानम् । शुष्कतर्काप्रतिष्ठानस्य प्रागेवोपपादितत्वात् ताभ्यामप्यनुकूलतर्कविधया स्वतन्त्रप्रमाणत्वेन च श्रुतेराश्रयणादिति । तथा च श्रुतिमालम्ब्यापि तदर्थमजानन्तौ द्वावपि भ्रान्तावित्यर्थः । भाष्यं तु निगदव्याख्यातम् । 'अचिन्त्याः खलु ये भावा न ताँस्तर्केण योजयेत् । प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम्' इति संपूर्णवाक्यम् । अत्र मात्स्ये क्वचित्, 'ताँस्तर्केण प्रसाधयेत्' इति पाठः । तथा सति मात्स्ये तर्काभ्यनुज्ञानाद् भ्रमः स्यादिति तन्निवारणाय श्रीभागवतवाक्योपन्यासः । तेन मात्स्यवाक्ये प्रकृतिभ्य इति बहुत्वनिर्देशात् पुरुषपर्यन्त एव तद्विषयो न तु ब्रह्मपर्यन्तो विषय इत्यदोषः ।

अत्र शंकराचार्याः पूर्वमेवमेव श्रुतिबलाद् विरुद्धधर्माश्रयत्वेन परिहारं व्याख्याय पुनरपि, ननु शब्देनापि विरुद्धोऽर्थो न प्रत्याययितुं शक्यते, निरवयवं ब्रह्म परिणमति, कृत्स्नं च न परिणमतीति । निरवयवत्वे सर्वं परिणमेत न परिणमेद्वा । यदि केनचिद् रूपेण परिणमेत्

रश्मिः ।

श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् ॥ २७ ॥ ननु किं कृत आक्षेपो यो दूष्यते तत्राहुः **अत्र प्रथमेति** । **प्रतिवादिनोः** सांख्यगौतमयोः । **संभूयेति** मिलित्वा । **आक्षेप** इति । ननु पूर्वसूत्रे सांख्यान्प्रत्यौलूक्यान्प्रति चोत्तरमित्युक्तमिति चेन्न । उत्तरमित्यस्याक्षेप इत्यर्थात् । यद्वा । यथासंख्यं वेत्यन्तो ग्रन्थः पूर्वसूत्रे सांख्यान्प्रत्यौलूक्यान्प्रति चोत्तरं वक्तुं पूर्वपक्षमाहेति सशेषा योजना । एतदेवाहुः **द्वितीये त्विति** प्रकृतसूत्रे तु । ननु तर्कोपजीविनौ तौ कथं श्रुतिसमाधानं मन्येते इत्यत आहुः **शुष्केति** । **प्रागेव** तर्काप्रतिष्ठानसूत्र एव । **ताभ्यां** प्रतिवादिभ्याम् **आश्रयणादिति** यथाहुः 'असज्ञादिश्रुतिविरोधश्चेति' । 'प्रधानाज्जगज्जायते' इति सूत्रे तयोः सांख्यैराश्रयणात् । नैयायिकैस्तु । 'आनन्दं ब्रह्म' इति श्रुतावशं आद्यचं स्वीकृत्यानन्दवत्त्वमात्मनो नानन्दत्वमित्युक्तम् । भेदवादे च 'नानेव पश्यति' इत्यत्र नाना इव पश्यति तस्य मृत्युर्भवति । इति श्रुतेराश्रयणात् । **निगदेति** । द्वयविषयकश्रुतेरित्याशयेनाहुः **श्रूयत** इति । द्वयं विरुद्धधर्माश्रयत्वात्कृत्स्नप्रसक्तिरकृत्स्नप्रसक्तिः निरवयवत्वं सावयवत्वम् । तदात्मानमिति निष्कलं निष्क्रियमिति, कर्तृत्वमकर्तृत्वं च श्रुतेरित्यस्यानुवादः । **श्रुतमिति** । **शब्देति** । शब्दो मूलं प्रतिपादने कारणं यस्य ब्रह्मणः । शब्दैकेत्यत्रैकशब्दो मुख्यार्थकः । 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' इति श्रुतेः । **समधिगम्य**मानन्दरूपमधि अधिकं गन्तुं शब्दैर्ज्ञातुं योग्यं तत्त्वात् । एवं निगदव्याख्यातप्रायम् । **अचिन्त्या** इत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अचिन्त्या** इति । **तथा सतीति** पाठान्तरत्वे सति । **तद्विषया** इति तर्कस्य विषयस्तर्कनिवर्तनीयशङ्क इत्यर्थः । **अदोष** इति युक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारे युक्तिबोधकवाक्येन युक्त्यप्रतिपादनलक्षणो

भावा न तांस्तर्केण योजयेत्' अर्वाचीनविकल्पवितर्कविचारकुतर्कप्रमाणाभासशास्त्रकलिलान्तःकरणदुरवग्रहवादिनां वादानवसरे सर्वभवनसमर्थे ब्रह्मणि विरोधाभावाच्च'।

एवं परिहृतेऽपि दोषे स्वमत्याऽनुपपत्तिमुद्भाव्य सर्वसंप्लवं वदन् मन्दमतिः सद्भिरुपेक्ष्यः ॥ २७ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

केनचिन्न ततः सावयवं स्यात् । न च षोडशिग्रहणाग्रहणवद् विकल्पोऽत्राश्रयितुं शक्यते । अक्रियारूपत्वेनापुरुषतन्त्रत्वादतो दुर्घटमेतदित्याशङ्क्य, अविद्याकल्पितरूपभेदाभ्युपगमात् सुघटः परिहारः । न ह्यविद्याकल्पितरूपभेदेन वस्तुनः सावयवत्वं भवति । न हि तिमिरोपहतनयनेन अनेक इव चन्द्रमा दृश्यमानोऽनेक एव भवतीति रूपभेदस्याविद्यकत्वान्न निरवयवत्वशब्दकोपः । न च परिणामश्रुतिः परिणामप्रतिपादनार्था । तत्प्रतिपत्तौ फलानवगमात् । सर्वव्यवहारहीनब्रह्मात्मभावप्रतिपादनार्था त्वेषा । तत्प्रतिपत्तौ, स एष नेति नेत्यात्मेत्युपक्रम्याभयं वै जनक प्राप्तोऽसीति फलावगमादित्येवं व्याख्यानान्तरमाहुः । तद् दूषयन्त उपहसन्ति एवं परिहृतेऽपीत्यादि । यदिदमविद्याश्रितरूपभेदाभ्युपगमेनेदानीं व्याख्यातं, तत् किं पूर्वत्रासामञ्जस्यदर्शनाद्वा, स्वबुद्धिकौशलख्यापनाय वा, श्रुतिस्वारस्याद्वा, सूत्रस्वारस्याद्वा । नान्त्यः । आचार्येण लौकिकयुक्तिनिरासपूर्वकं केवलायाः श्रुतेरेवाश्रयणात् । न तृतीयः । वदद्व्याघातात् । फलानवगमं प्रदर्श्य ब्रह्मात्मभावप्रतिपादनरूपस्य फलस्य स्वयमेव कथनात् । न च मुख्यफलानवगम

रश्मिः ।

दोषः स न । तदुक्ततर्काणामब्रह्मविषयत्वोक्तेरत्र ब्रह्मविषये न स दोषः स्यादिति । निरवयवत्वे उपाधिव्यतिरेकेण रूपाभावादिति भावः । **षोडशीति** अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति । षोडशिग्रहणाग्रहणे षष्ठ्यन्ताद्वतिः । **एतदिति** विरुद्धधर्माश्रयत्वम् । **सुघट** इति । रूपभेदे धर्मान्तरोपसंहारे घटे पटत्वोपसंहारापत्तिः । **परिणामेति** 'तदात्मानꣳ स्वयमकुरुत' इति श्रुतिः । **तत्प्रतिपत्तौ** परिणामज्ञाने । **फलेति** सगुणपरत्वापत्त्या स इत्यर्थः । **एषेति** । अयमर्थः । 'तदात्मानꣳस्वयमकुरुत' इत्येषा न सृष्टिप्रतिपादिकाऽपि तु निःशेषब्रह्मबुद्धिशेषतया जगदनूद्यते विवर्तोपादानत्वं च ब्रह्मणो द्रढयति । अयमेव ब्रह्मात्मभावः । एवंप्रकारेण श्रुत्यर्थज्ञाने फलमाहुः **तत्प्रतिपत्ताविति** । बहुष्वनियम इति गौणमुख्यव्यत्यासेन विकल्प्यैकैकग्रहणे मुख्यक्रमेणाहुः । 'छन्दोवत्सूत्राणि भवन्ति' इति श्रुतेः पूर्वं सूत्रोक्तमनुसंदधते स्म **नान्त्य** इति । **आश्रयणादिति** सूत्र आश्रयणात् । **वददिति** श्रुतिस्वारस्यं वदतोऽस्वारसिकार्थाङ्गीकारात् । स्वयमुपपादयाञ्चक्रुः **फलानवेति** । **ब्रह्मात्मेति** विवर्तप्रकारेण ब्रह्म आत्मानमकुरुतेति । नेदं मिथ्यात्वात् । ब्रह्मैव सर्वमिति ब्रह्मात्मभावः । वदद्व्याघातं परिहरति **न चेति** । **मुख्येति** अविद्यानिवृत्तितोऽभयप्राप्तिर्मुख्यं फलं तस्यानवगमं तं प्रदर्श्य ब्रह्मात्मभावप्रतिपादनरूपगौणफलस्य स्वयमेव कथनादिति युक्तमित्यर्थः । अस्मिन्नर्थे न वदद्व्याघात इति भावः । इदं न च । अत्र हेतुः 'परिणामबोधकश्रुतावपि' इति वक्ष्यमाणग्रन्थे पदार्थसंभावनार्थकापिशब्देनोक्तः । स च बृहदारण्यकस्थायाः 'स एष नेति नेति' इत्युपक्रम्य 'अभयं वै जनक प्राप्तोसि' इत्यस्या अत्राप्रसङ्गादिति । ननु कुतो नो प्रसङ्गः यावता परिणामबोधकश्रुतावभयरूपमुख्यफलश्रावणात्तस्याश्चात्रत्यत्वेन बृहदारण्यकस्थाया अपि स्मृतया अत्र प्रसङ्गादिति चेत्तत्राहुः

आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि ॥ २८ ॥

सृष्टौ देशकालापेक्षापि नास्ति । आत्मन्येव सृष्टत्वात् । देशकालसृष्टाव-

भाष्यप्रकाशः ।

इति युक्तम् । परिणामबोधकश्रुतावपि, 'तदात्मानᳪ स्वयमकुरुत' इत्युपक्रम्य, 'रसᳪ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति', 'यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते अथ सोऽभयं गतो भवति' इति फलवाक्ये, एतस्मिन्निति पदेन तस्यैव परामृष्टत्वात् । अनिरुक्तपदेन तस्यैव विरुद्धधर्माधारत्वबोधनाच्च । उपनिषदुपक्रमेऽपि परप्राप्तिरूपफलबोधनाद् ऋचि तद्विवरणाच्च । तदभिमताविद्यायाः सदसदादिविकल्पेन साधनादिविकल्पेन च सर्वैरेव दूषितत्वाच्च । अत एव न द्वितीयः । बुद्धिकौशलस्याविद्यायामेव पर्यवसानात् । नाद्यः । लौकिकानामपि मणिमन्त्रौषधिप्रभृतीनां देशकालनिमित्तवैचित्र्यवशाच्छक्तयो विरुद्धानेककार्यविषया दृश्यन्ते इत्यादिना, तस्माच्छब्दमूल एवातीन्द्रिययाथात्म्यावगम इत्यन्तेन स्वयमेवासामञ्जस्यादर्शनस्य व्याख्यातत्वात् । अतो द्वितीयव्याख्यानस्य सर्वप्रमाणसर्वसन्मार्गसंप्लव एव फलमतस्तथेत्यर्थः ॥ २७ ॥

आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि ॥ २८ ॥ ननु श्रुतौ केवलस्य ब्रह्मणः कारणता निरूपिता तथापि देशकालौ त्वधिकरणतया आवश्यकावित्याशङ्कामपि श्रुतिमेवालम्ब्य परिहरति **आत्मनीति** । तद् व्याकुर्वन्ति **सृष्टावित्यादि** । सूत्रे प्रथमश्चकारोऽवधारणार्थो द्वितीयोऽप्यर्थः । एवंपदार्थस्तु **सृष्टत्वादिति** । आत्मनि सृष्टत्वं च, 'आत्मन्येवात्मनात्मानं सृजे

रश्मिः ।

परिणामबोधकश्रुतावपीति । **फलवाक्य** इति फलस्य वाक्ये । प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसंबन्धे षष्ठी । **तस्यैवे**ति ब्रह्मणः स्वात्मकजगदुपादानस्य । तदात्मानमिति श्रुतेः । पूर्वभवत्वाविरस्यैवकारः । अयमन्यो भवतु सगुण इति चेत्तत्राहुः **अनिरुक्ते**ति । **तस्यैवे**ति पूर्वोक्तस्य निरुक्तस्य । अभयं यथा भवति तथा प्रतिष्ठां भक्तिं लभते । अभयातिरिक्तपरप्राप्तेर्मोक्षत्वं स्वमते उपपादितमिति तदाहुः **उपनिष**दिति । ब्रह्मवित्प्रपाठकोपक्रमे 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इत्यत्र । **सर्वै**रिति **भास्कराचार्यै**स्तदनन्यत्वसूत्रेऽन्यैश्चान्यत्रापि । **अत एवे**ति अविद्याया दूषितत्वादेव । **अविद्याया**मिति सूत्रास्पर्शिकल्पनस्य कृत्रिमत्वादविद्यायाम् । गीतायां त्रयोदशेध्याये 'अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् । आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः' इति ज्ञानलक्षण आचार्योपासनादेरुक्तत्वात्तद्विरुद्धसंपदोविद्यात्वादित्येवकारः । **इत्यादिने**ति । ता अपि तावतोपदेशमन्तरेण केवलतर्केणावगन्तुं न शक्यन्ते । अस्य वस्तुन एतावत्य एतत्सहाया एतद्विषया एतत्प्रयोजनाश्च शक्तय इति । किमुताचिन्त्यशक्तिप्रभावस्य ब्रह्मणो रूपं विना शब्देन न रूप्येत । तथा चाहुः पौराणिकाः । 'अचिन्त्या खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत् । प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम्' । इतीत्यादिशब्दार्थः । **एवे**ति कृत्रिमत्वादेवकारः । **तथे**ति उपेक्ष्यत्वेन ॥ २७ ॥

आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि ॥ २८ ॥ श्रुतिमेवेति 'यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्ते' इति श्रुतिम् । वक्ष्यमाणोपबृंहणसत्त्वादेवकारः । **परिहरती**ति सूत्रकारः परिहरति । वक्ष्यमाणवाक्ये सावधारणस्मरणादाहुः **सूत्रे प्रथम** इति । विचित्रपदलब्धार्थं बोधयितुमाहुः **द्वितीय** इति । **सृष्टत्वादितीति** । तदेतदुक्त**मात्मन्येव सृष्टत्वादिति** भाष्येण । सूत्रे

प्यात्मन्येव साधिकरणस्य सृष्टत्वाच्च । बहिरन्तश्च जगत्सृष्टिं वा आह विशेषाभावेन, 'अनन्तरोऽबाह्य' इति । विरोधाभावो विचित्रशक्तियुक्तत्वात् सर्वभवनसमर्थत्वाच्च ॥ २८ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

हन्म्यनुपालये' इति दशमस्कन्धे व्रजभक्तान् प्रति भगवतः संदेशवाक्ये स्फुटम् । द्वितीयस्कन्धे च, 'स एष आद्यः पुरुषः कल्पे कल्पे सृजत्यजः । आत्मन्येवात्मनाऽऽत्मानं संयच्छति च पाति च' इति ब्रह्मवाक्ये । श्रुतौ च, 'नासदासीन्नो सदासीत्' इत्यादिषु ब्रह्मेतरनिषेधाच्च । तदानीमिति कालोक्तिस्तु बोधनार्थेति प्रागेवोक्तम् । अतो न जगत्सृष्टौ ब्रह्मणो देशकालापेक्षेत्यपि शब्दादेव सिद्ध्यतीत्यर्थः । भाष्ये तु सृष्टाविति फक्किकाया एव विवरणं देशकालेत्यादि । प्रथमं चकारमप्यर्थमङ्गीकृत्य पक्षान्तरमाहुः बहिरित्यादि । विशेषाभावेनेति तौल्येन । तथा च यथात्मनि सृष्टौ, 'न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्त्यथ रथान् रथयोगान् पथः सृजते' इत्यत्र न देशकालाद्यपेक्षा । एवं बहिःसृष्टावपि, 'अनन्तरोऽबाह्य' इति श्रुत्या सर्वत्र ब्रह्मण एकरूपताबोधनेनान्तर्बहिस्तुल्यत्वात् । अतो बहिरपि सृज-

रश्मिः ।

विचित्रपदात्तदनुगुणश्रौतमाहुः **श्रुतौ** चेति । समष्टित्वे वैचित्र्यम् । **तदानीमिति** 'नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं तम एवासीत्' इत्यस्याम् । **प्रागेवेति** पूर्वाध्याये 'सदेवेति' श्रुतिव्याख्याने । न चैवं छान्दोग्ये उपदेशे कालोक्तिविरोध इति शङ्क्यम् । प्रकाशे चरम उपदेशो मुख्य इत्यभिप्रायात् । सुबोधिन्यां तु 'कालात्मा भगवान् जातः' इति कारिकायां काल उक्त एव तदायमप्युपदेशः । अत एवाह शिरोमणिः । 'दिक्कालावीश्वरान्नातिरिच्येते' इति पदार्थखण्डनमण्डने । **शब्दादेवेति** आत्मन्येवेति चकारादेवावधारणार्थकात्सिध्यति । 'आत्मैवेदमग्र आसीत्' । 'ब्रह्मैवेदमग्र आसीत्' । 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इत्यादिष्वेवकारेण देशकालापेक्षाव्यवच्छेदेप्यस्मात्सूत्रादुक्तावपिशब्दादेवेत्यन्वयः । अपिशब्दो द्वितीयश्चकारोपिशब्दार्थकः । तर्ह्यपिशब्दादेव देशकालापेक्षा ब्रह्मणो नेति सिध्यतीत्यर्थः । ननु सृष्टिः प्रकरणाल्लभ्यते देशकालापेक्षा नेति सूत्रे कस्माल्लब्धमिति चेत्तत्राहुः **सृष्टाविति** । **फक्किकाया** इति पञ्चम्यन्तम् । अस्माद्धेतोरेव देशकालयोः सृष्ट्यन्तर्गतयोः सृष्टचैव स्मारणात्सूत्रविवरणमाहुरित्याहुरित्यध्याहृत्यान्वयः । अत्र विवरणं सूत्रस्य । आहुरित्यध्याहारः । युक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारे काले घटः देशे घट इति 'अक्षरात्संजायते कालः कालाद्व्यापक उच्यते' इत्यथर्वशिरःश्रुतेः । 'आत्मैवेदम्' इत्यादिश्रुतीनां च विरोधे युक्त्यैवकारार्थेऽन्यस्मिन्स्वरूपकालातिरिक्ते माते एतयोरधिकरणत्वेपि सृष्टत्वमिति श्रुतिष्वेवकारविरोधः परिहृतः । अग्र इति परिचायनार्थम् । **अप्यर्थमिति** वाक्ययोरेवकारावप्यप्यर्थौ । बहिरित्यपिशब्दार्थः । पदार्थसंभावनार्थत्वादपेः । **सृष्टाविति** संध्यसृष्टौ । **न देशेति** । आद्यपदेनेच्छाव्यतिरिक्तसहकारिकारणानि । ननु मायिकी सा स्वप्नकाले कर्मजदेशे भवतीति कुतोस्याऽदृष्टान्तत्वमिति चेन्न । 'कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः' इति श्रुत्युक्तैका । अपरा तु 'अत्रात्मा स्वयंज्योतिर्भवति' इति श्रुत्युक्तोभये मायिक्यौ । उभयत्रापि देशाद्यपेक्षाभावात् अनुक्तेः । कर्मजस्याप्यनुक्तेः । इदं तृतीयस्य द्वितीयपादे व्यास एव वक्ष्यति । अत उक्तं न देशकालाद्यपेक्षेति । **अनन्तरमिति** भाष्यं विवव्रुः **अनन्तर** इति न विद्यतेन्तरं यस्य न विद्यते बाह्यमस्येति कृत्स्नः प्रज्ञानघनः । **अतो बहिरपीति** ।

स्वपक्षदोषाच्च ॥ २९ ॥

प्रधानवादिनोऽपि सर्वपरिणामसावयवत्वाऽनित्यत्वादिदोषो दुष्परिहरः । युक्तिमूलत्वाच्च तस्य । अचिन्त्यकल्पनायां प्रमाणाभावाच्च ॥ २९ ॥.

इति द्वितीयाध्याये प्रथमपादे एकादशमुपसंहारदर्शनाधिकरणम् ॥ ११ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

आत्मन्येव सृजतीत्यर्थः । ननु सा सृष्टिर्मायिकीति तत्र तथा युक्तम् । इयं तु सत्येति कथमस्यां दशाद्यनपेक्षेत्यत आह **विचित्राश्च हीति** । हि यतो हेतोः, 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च' इति श्रुतेस्तस्य शक्तयो **विचित्रा** एव । तदेतद् व्याकुर्वन्ति **विरोधाभाव** इत्यादि । एतेनेदमपि सूत्रं पूर्वपक्षिणः शङ्काव्यमानित्वात् प्रणीतमिति बोधितम् ॥ २८ ॥

स्वपक्षदोषाच्च ॥ २९ ॥ भाष्यं त्वत्र **निगद**व्याख्यातम् । एवमनेनाधिकरणेन वाक्यान्वयाधिकरणविषयवाक्योक्तं स्वत एव ब्रह्मणः सर्वोपादानत्वं समर्थितं ज्ञेयम् ।

अन्ये तु परमाणुवादनिरासमप्यत्राङ्गीकुर्वन्ति । अणुवादिनोऽप्यणुरण्वन्तरेण संयुज्यमानो निरवयवो यदि कात्स्न्र्येन संयुज्येत तदा प्रथिमानुपपत्तेरणुत्वप्रसङ्गः । अथैकदेशेन संयुज्येत तदा निरवयवत्वकोप इति । इदं च दूषणं शिथिलम् । निरवयवेऽप्याकाशे प्रादेशिकस्थाण्वादिसंयोगस्य तैरङ्गीकारात् । अत आचार्यैस्तदुपेक्षितम् ॥ २९ ॥

इत्येकादशमुपसंहारदर्शनाधिकरणम् ॥ ११ ॥

रश्मिः ।

अत्र विरोधोग्रेऽपाकरिष्यते । परिच्छिन्नपरिमाणस्य बहिः संभवतीति । **ननु सेति** दृष्टान्तत्वेनोक्ता । देशकालाद्यनपेक्षणरूपस्तथाशब्देनोक्तः प्रकारो विशेषणं युक्तम् ॥ **विचित्रा** इति विरुद्धधर्मलक्षणाः । वैश्वानराधिकरणोक्तपरिमाणमपि । **तदेत**दिति । ननु 'सा' इत्यादिना एतदवधि उक्तं सूत्राङ्गम् ॥ २८ ॥

स्वपक्षदोषाच्च ॥ २९ ॥ **निगदे**ति । सांख्यान्प्रत्यौलूकान्प्रतीत्युक्तत्वाद्भाष्ये प्रधानवादिनोपीत्युक्तम् । अपिनौलूकाः । यदि तु सिद्धान्तवादिनोऽपि शब्दार्थास्तदा तु वितण्डा । स्वपक्षे दोषमनुद्धृत्य परपक्षे दोषदानात्सिद्धान्तिना । **तस्ये**ति सांख्यादेः । युक्तिमूलत्वं तु 'नासदुत्पादो नृशृङ्गवत्' इत्यादिसूत्रैः । 'श्रुतिश्च' उवाचेति सूत्राच्च । **प्रमाणे**ति योगसूत्रं 'प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि'इति । तेषां तन्मतेऽभावात् । एवं निगदव्याख्यातम् । तथापि सत्कार्यवादात्सविशेषस्य कार्यस्य ये धर्माः व्यक्तत्वपरिच्छिन्नत्वादयस्तेऽव्यक्ते प्रधाने भविष्यन्त्यतो न वयं पर्यनुयोक्तव्या इति स्वपक्षदोषाच्चेत्यत्र पूर्वमुक्तम् । अधुना तु ये ब्रह्मकारणवादे दोषा दीयन्ते ते प्रधानकारणवादेऽपि तुल्या इति पर्यनुयोगो न युक्त इति भेदः । **अन्ये त्वि**ति । **शंकरभास्कररामानुजाचार्याः** । **प्रथिमे**ति । पृथ विस्तारे । इमनिचि रूपं विस्तृतत्वानुपपत्तेः । **तै**रित्याचार्यान्तरैः । **माध्वास्तु** जीवपक्षे दोषात्परमात्मनि जीवीया दोषा अपि गुणा एवेति कथयन्ति । तदप्यचिन्त्यशक्तित्वादुपपन्नम् । अत्र समन्वयो विषयः । सत्कार्यप्रतिपादकानामेकस्मिन् ब्रह्मणि भवति न वा कुलालादेश्चक्रादिसाधनान्तरस्य संपादनादिति संशयः । न भवति कुलालादेश्चक्रादिसाधनसंपादनदर्शनादिति पूर्वपक्षेऽभिधीयते । समन्वयो भवति । यथा क्षीरं कर्तारमनपेक्ष्य दधि भवति तथा ब्रह्मापि ॥ २९ ॥

इत्येकादशमुपसंहाराधिकरणम् ॥ ११ ॥

सर्वोपेता च तद्दर्शनात् ॥ ३० ॥

सर्वशक्तिभिरुपेता उपगतः । चकारात् सत्यादिगुणयुक्तश्च । कुतः । तद्दर्शनात् । तथा वेदे दृश्यते । 'यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिः, सर्वकर्ता सर्वकामः' इत्यादि ॥ ३० ॥

विकरणत्वान्नेति चेत् तदुक्तम् ॥ ३१ ॥

कर्ता इन्द्रियवान् लोके । ब्रह्मणो निरिन्द्रियत्वात् कथं कर्तृत्वमिति चेन्न ।

भाष्यप्रकाशः ।

सर्वोपेता च तद्दर्शनात् ॥ ३० ॥ ब्रह्मण उपादानत्वस्य श्रुतिमात्रगोचरत्वाद् बहुवाद्यसंमतत्वेन पूर्वमुपादानत्व आशङ्कितान्, अभिन्ननिमित्तोपादानत्वे चाशङ्कितान् दोषान् परिहृत्य कर्तृत्वे शङ्क्यमानान् परिहर्तुमधिकरणान्तरमारभमाणस्तन्निर्वाहकं सर्वशक्तिसाहित्यं प्रथमत आह तद् व्याकुर्वन्ति **सर्वशक्तिभिरित्यादि** । **उपेता उपगत** इति । एतेन तृजन्तोऽयं शब्दः, 'सुपां सुलुक्' इतिसूत्रोक्तडादेशान्तो वेति ज्ञापितम् । **सत्यादिगुणयुक्त** इति । ते च गुणाः प्रथमस्कन्धे धरित्र्या धर्मं प्रत्युक्ताः । 'सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः सन्तोष आर्जवम् । शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम् । ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यं तेजो बलं स्मृतिः । स्वातन्त्र्यं कौशलं कान्तिर्धैर्यं मार्दवमेव च । प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः । गाम्भीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मानोऽनहङ्कृतिः । एते चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणाः । प्रार्थ्या महत्त्वमिच्छद्भिर्न व्ययन्ति स्म कर्हिचित्' इति । शेषं स्फुटम् ॥ ३० ॥

विकरणत्वान्नेति चेत् तदुक्तम् ॥ ३१ ॥ सर्वशक्तित्वोपगमे श्रुत्यन्तरविरोधमाशङ्क्य परिहरतीत्याशयेन सूत्रं पठित्वा व्याकुर्वन्ति **कर्तेत्यादि** । ननु यथा, 'स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिः', 'सर्वकर्मा सर्वकाम' इत्यादौ कर्तृत्वं श्रूयते तथा, 'अचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनः', 'न तस्य कार्यं करणं च विद्यते' इत्यादौ विकरणत्वमपि श्रूयते ।

रश्मिः ।

सर्वोपेता च तद्दर्शनात् ॥ ३० ॥ **कर्तृत्व** इति । तेन प्रसङ्गसङ्गतिरुक्ता । **आरभमाणः** सूत्रकारः । **तन्निर्वाहकं** कर्तृत्वनिर्वाहकम् । **सर्वशक्तिभिरित्यादीति** । 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' इति समासः । **एतेनेति** सर्वोपेतेति समासेन कर्त्रर्थकक्तान्तेन **विवरणेन** च । **शब्द** इति । न तु ल्युडन्तः । तृन्नन्तस्तु न । स्वरानुरोधेन तृनादेरप्यत्राप्रसिद्धाभावात् । **ते चेति** । स्वरूपलक्षणस्था गुणा नोक्ताः । युक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारात् । ब्रह्मत्वसत्यत्वादिकं न जातिर्द्वैतापत्तेः किं तु स्वरूपसंबन्धेन स्वरूपभूतम् । अन्यथा विशिष्टशक्त्युच्छेदापत्तेः । व्यक्तावेव वा संबन्धः । प्रस्थानरत्नाकरे उपपादनात् । **शेषमिति** । **भाष्ये सर्वकर्तेति** । 'सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तः' इत्यादिपदार्थः ॥ ३० ॥

विकरणत्वान्नेति चेत्तदुक्तम् ॥ ३१ ॥ **श्रुत्यन्तरेति** । तथा चानयोः श्रुत्योर्विरोधपरिहारान्न पादार्थाव्याप्तिरिति भावः । श्रुत्यन्तरं 'निष्कलं निष्क्रियं शान्तम्' इति । **सर्वकर्मेति** । सर्वकर्ते-

अस्य परिहारः पूर्वमेवोक्तः, श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वादित्यत्र । अनवगाह्यमाहात्म्ये श्रुतिरेव शरणं, नान्या वाचोयुक्तिरिति ॥ ३१ ॥

न प्रयोजनवत्त्वात् ॥ ३२ ॥

न ब्रह्म जगत्कारणम् । कुतः । प्रयोजनवत्त्वात् । कार्यं हि प्रयोजनवद् दृष्टं लोके । ब्रह्मणि पुनः प्रयोजनवत्त्वं संभावयितुमपि न शक्यते । आप्तकाम-श्रुतिविरोधात् । व्यधिकरणो हेतुर्नसमासो वा ॥ ३२ ॥

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ॥ ३३ ॥

तुशब्दः पक्षं व्यावर्तयति । लोकवल्लीला । न हि लीलायां किंचित् प्रयोजन-

---

भाष्यप्रकाशः ।

अतो विप्रतिषेधात् कथं कर्तृत्वमिति चेन्न । परिहारग्रन्थस्तु अस्य परिहार इत्यादिनोक्तः स्फुटः । श्रुतिस्तु, 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता,' 'अन्धो मणिमविन्दत् तमनङ्गुलिरावयत्', 'विश्व-तश्चक्षुरुत विश्वतोमुखः,' 'सर्वतः पाणिपादं तत्' इत्यादिरूपा विरुद्धधर्माधारत्वादिबोधि-कात्र ज्ञेया ॥ ३१ ॥

न प्रयोजनवत्त्वात् ॥ ३२ ॥ एवं साधितेऽपि कर्तृत्वे किंचिदाशङ्कते तद् व्याकुर्वन्ति न ब्रह्मेत्यादि । अस्मिन् पक्षे निषेधार्थकनञः पूर्वसूत्रादेवानुवृत्तिसंभवाद् वैयर्थ्यमायातीति पक्षान्तरमाहुः नसमास इति । नैकधेत्यादिवन्नशब्देन सह सुप्सुपेति समासः । तथा च प्रयो-जनरहितत्वान्न कर्तृ ब्रह्मेत्यर्थः । तथा सतीदं पूर्वपक्षसूत्रम् ॥ ३२ ॥

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ॥ ३३ ॥ समाधिं व्याकुर्वन्ति तुशब्द इत्यादि । तथा च यथा लोके राजभिर्मृगयादि क्रियते, तत्र न मांसाद्याहरणमन्यद् वा प्रयोजनम् । भृत्यादि-

रश्मिः ।

त्यपि पाठः । अत इति विकरणत्वात् । विगतं करणत्वं यस्य तस्माद्विकरणत्वात् । श्रुतिरेवेति भाष्यं विवृण्वन्ति श्रुतिस्त्विति अन्ध इत्यादिश्रुतिरारणे । आवयत् अप्रापयत् । स्वार्थे णिच् । इत्या-दीति आदिशब्देनास्मिन्सूत्रे पूर्वोक्ता ज्ञेया इति । भाष्ये नान्येति वाचोन्या युक्तिर्न । वाक् तु षष्ठस्कन्धे 'नहि विरोध उभयं भगवत्यपरिगणितगुणगणे' इत्यादिः । अथवा एकत्वावच्छिन्नं यत् स्वाश्रयसंबन्धेन वाक्त्वं तदवच्छिन्नबहुत्वावच्छिन्नवागभिन्ना युक्तिः श्रुतिभेदवती नेत्यर्थः ॥ ३१ ॥

न प्रयोजनवत्त्वात् ॥ ३२ ॥ किंचिदिति । प्रयोजनाभावादकर्तृत्वम् । निषेधार्थक-नञ इति । ननु पूर्वसूत्रादनुवर्त्य ब्रह्म न जगत्कारणम् । अप्रयोजनवत्त्वादिति कुतो न व्याकृतं तत्राहुः कार्यं हीति भाष्ये । स्यादेवं यदि कार्यं प्रयोजनवन्न स्यात्तु प्रयोजनवद्दृष्टमतः कारणेपि प्रयोजनवत्त्वं न त्वप्रयोजनवत्त्वमिति हेत्वाभासः स्यादतो नानुवृत्तिर्नञ इत्यर्थः । सिद्धमाहुः व्यधिकरण इति ॥ ३२ ॥

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ॥ ३३ ॥ अन्यद्वेति तदवनम् । प्रयोजनमिति । अत्र राजानो हिंसाविहारा ग्राह्याः । न तु शशादप्रभृतयः यज्ञियाः । तेषां मांसाद्याहरणात् ।

मस्ति । लीलाया एव प्रयोजनत्वात् । ईश्वरत्वादेव न लीला पर्यनुयोक्तुं शक्या । सा लीला कैवल्यं मोक्षः । तस्य लीलात्वेऽप्यन्यस्य तत्कीर्तने मोक्ष इत्यर्थः । लीलैव केवलेति वा ॥ ३३ ॥

वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथाहि दर्शयति ॥ ३४ ॥

कांश्चित् सुखिनः कांश्चिद् दुःखिनश्च प्रलयं च कुर्वन् विषमो निर्घृणश्चेति चेन्न । सापेक्षत्वात् । जीवानां कर्मानुरोधेन सुखदुःखे प्रयच्छतीति । वादिबोध-

भाष्यप्रकाशः ।

भिरपि तत्संभवात् । किं तु लीलैव प्रयोजनम् । अतो लोकेऽपि प्रयोजनं विना ईश्वरकार्यस्य दर्शनेन तत एव समाधानान्नात्र पर्यनुयोगावकाश इत्यर्थः । लीलापदादेवोत्तरसिद्धौ कैवल्यपदस्य किं प्रयोजनमत आहुः **सा लीलेत्यादि** । लक्षणादोषादरुच्या पक्षान्तरमाहुः **लीलैवेत्यादि** । सैव प्रयोजनं सैव वा मोक्षः । तथा च तत्सामर्थ्यस्य स्वरूपस्य च बोधनाय कैवल्यपदोक्तिरित्यर्थः ॥ ३३ ॥

वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथाहि दर्शयति ॥ ३४ ॥ कर्तृत्व एव पुनः किंचिदाशङ्क्य परिहरति तद् व्याकुर्वन्ति **कांश्चिदित्यादि** । ननु कर्मानुरोधेन सुखदुःखदाने स्वातन्त्र्यहानिस्तदनुरोधानादरे वैषम्यादिदोषापत्तिरित्युभयथापि दोषान्नायं वादः साधीयानिति मीमांसकादिशङ्कायामाहुः **वादीत्यादि** । पूर्वं तदनन्यत्वादिसूत्रैः सर्वस्य ब्रह्मात्मकत्वं जीवस्यापि ब्रह्मात्मकत्वं च प्रतिपादयन् यदत्र सापेक्षत्वं हेतूकरोति तेन ज्ञायते वादिबोधनायेदमिति । यतो

रश्मिः ।

तत एवेति दृष्टान्तादेव । **समाधाना**दिति न कारणमप्रयोजनवत्त्वादित्यत्र हेत्वाभासापत्तेः कारणमप्रयोजनवत्त्वाच्छशादादिभिन्नराजवदिति दृष्टान्तान्तरेण समाधानात् । जगत्कारणत्वाभाववति कार्यप्रयोजनवत्त्वस्य व्यधिकरणहेतुत्वात् । **पर्यनुयोग** आक्षेपः । **सा लीलेत्यादी**ति । ननु तथासति शुद्धलीलाया दशमस्कन्धोक्ताया मुक्तिस्कन्धप्रवेश उचितो न तु निरोधस्कन्धत्वमिति चेत्तत्राहु- **र्भाष्ये तस्ये**ति । **तस्य** विद्वन्मण्डने नित्यलीलावादे 'विष्णोः कर्माणि पश्यत' इति संहितोक्तस्य कर्मणः श्रौतत्वाय नपुंसकनिर्देशः । **मोक्ष** इति मोक्षजनकत्वान्मोक्ष इति गौण्या न मुक्तिस्कन्धे प्रवेश इति भावः । **प्रकाशे लक्षणे**ति जन्यजनकत्वसंबन्धरूपा । मोक्षस्य जन्यत्वात् । लीलाया जनकत्वात् । **लीलैवेत्यादी**ति । **कैवल्य**मित्यत्र स्वार्थे ष्यञ् । लीलैव केवला । एवकारेण प्रयोजनव्यवच्छेदः । प्रयोजनं तु वक्तव्यमेव तत्किमत आहुः **सैवे**ति । 'लीलाया एव प्रयोजनत्वात्' इति भाष्यात् । **मोक्ष** इति सारूप्यप्राप्तिर्मोक्षः ब्रह्मणश्च रूपं सलीलमिति लीलामोक्षः । न च लक्षणादोषः । 'प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात्' इति सूत्रे धर्मभेदाङ्गीकारात् पाक्षिकोऽपि दोषः परिहरणीय इति चेन्न । बभ्रमुर्ग्रन्थकारा एतदंशे इति । **तथा चे**ति मुख्यपक्षे व्याख्याय लक्षणापक्षे व्याख्यातत्वे सति । **तत्सामर्थ्यस्ये**ति लीलासामर्थ्यस्य मोक्षजनकत्वस्य **स्वरूपस्य** मोक्षस्य ॥ ३३ ॥

वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति ॥ ३४ ॥ किंचिदिति वैषम्यनैर्घृण्यादि । **परिहरति** सूत्रकारः **न साधीया**निति किंतु मन्त्रमय्येव देवतेत्यादि साधीयान् । अस्मदीयमीमांसाया अपि विभूतिपरत्वेन भिन्नशास्त्रात्तदीयनवमाध्यायोक्ता देवता । कर्म तु लीलारूपं नेश्वरस्वरूपम् । वेदस्य परमात्मत्वात् 'बन्दिनस्तत्पराक्रमौ' इति वाक्याच्च । **हेतूकरोती**ति अहेतुः सापे-

नाप्येतदुक्तम् । वस्तुतस्त्वात्मसृष्टेर्वैषम्यनैर्घृण्यसंभावनैव नास्ति । वृष्टिवद् भगवान्, बीजवत् कर्म । श्रुतिरेव तथा दर्शयति । 'एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषति । एष उ एवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषति' । 'पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन कर्मणा' इति च । सापेक्षमपि कुर्वन्नीश्वर इति माहात्म्यम् ॥ ३४ ॥

न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वात् ॥ ३५ ॥

न कर्म विभागात् कार्योद्गमात् पूर्वं संभवति, पश्चात्त्वन्योन्याश्रय इति-

---

भाष्यप्रकाशः ।

वादिभिर्बहुशो लोकानुसारेणैव चोद्यते । अतो नात्र कोऽपि शङ्कालेश इत्यर्थः । बहु स्यामिति श्रुत्यर्थमनुरुध्य सिद्धान्तरीत्या समाधिमाहुः वस्तुत इत्यादि । किंच । जीवसुखदुःखयोर्ब्रह्मणः साधारणकारणतैव श्रुत्यभिप्रेता, न त्वसाधारणातोऽपि न दोषगन्ध इत्याहुः वृष्टीत्यादि । ननु श्रुत्यैव समाधानसंभवे पुनरुदरमर्दनेन शूलोत्थापनवदाशङ्कोत्थापनस्य किं प्रयोजनम् । प्रक्षालनपङ्कन्यायेनैतदनुल्लेखस्यैव युक्तत्वादित्यत आहुः सापेक्षमित्यादि । तथा च माहात्म्यबोधनमेव प्रयोजनमित्यर्थः ॥ ३४ ॥

न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वात् ॥ ३५ ॥ कर्मसापेक्षत्वमत्राक्षिप्य साध्यते तद् व्याकुर्वन्ति न, कर्मेत्यादि । यदुक्तमीश्वरो जीवकर्मसापेक्ष इति न वैषम्यादिदोषसंबन्धस्तत्रेति तदयुक्तम् । सृष्ट्यादौ, 'सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' इति ब्रह्मेतरनिषेधेन तदानीं, 'यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा' इति श्रुत्युक्तस्य कार्योद्गमरूपस्य विभागस्या-

रश्मिः ।

क्षत्वं हेतुः संपद्यते तं करोति । 'कृभ्वस्तियोगे संपद्यकर्तरि च्विः' । च्वौ चेति दीर्घः । हेतुस्तु स्वाङ्गत्वम् । सापेक्षत्वं त्वहेतुः । अन्यस्य ह्यन्यसापेक्ष्यम् । आत्मसृष्टौ तु कथमेवं स्यात् । तेनेति सिद्धान्तार्थमहेतोर्हेतुकरणेन । बहुश इति बहु हेत्वादिकं ददातीति बहुशः । **शङ्कालेश** इति वस्तुतस्त्वित्यादिभाष्ये यथा केशप्रसाधननखनिकृन्तनादि कुर्वाणोपि न वैषम्यनैर्घृण्यभाग् भवतीति दृष्टान्तस्याप्युन्नेयत्वान्न शङ्कालेशः । **साधारणे**ति साधारणं किंचिद्द्वारकत्वम् । **वृष्टी**त्यादीति । पृथ्वीवद्योनिः श्रुतावनुक्तत्वान्न भाष्ये तदुक्तिः । 'योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः' इति श्रुतेः । **वृष्टिवत्** प्रथमान्ताद्वतिः यथा वृष्टिरनेकव्रीह्यादिबीजाश्रया तथा भगवाननेकविधकर्माश्रयः । 'विष्णोः कर्माणि पश्यत' इति श्रुतेः । **बीजवत्** प्रथमान्ताद्वतिः यथा बीजमङ्कुराद्यनेकप्ररोहस्थानम् । तथा कर्मणां प्ररोहैकस्वभावत्वादनेकदेहस्थानम् । **एष** इति । एषः वृष्टिवद्भगवान्बीजवत्कर्म तदाश्रयः । धर्मिणं विना कर्मरूपधर्मासिद्धेः । **पुण्य** इति देहः । **पाप इत्यपि** । **तथा** चेति आत्मसृष्टावपि सापेक्षत्वेन विरुद्धधर्माश्रयत्वे प्रकारे सति । **प्रयोजन**मिति । न च लीलाया एव प्रयोजनत्वादिति भाष्यविरोधः । माहात्म्यबोधनस्यापि लीलात्वात् ॥ ३४ ॥

न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वात् ॥ ३५ ॥ कार्योद्गमेति विभक्तत्वप्रत्ययासाधारणकारणत्वात्कार्योद्गमस्य । **विभागस्याभावा**दिति । ननु भाष्ये विभागत्वावच्छिन्नप्रतियो-

चेन्न । अनादित्वात्, बीजाङ्कुरवत् प्रवाहस्यानादित्वात् ॥ ३५ ॥

उपपद्यते चाप्युपलभ्यते च ॥ ३६ ॥

कथमनादित्वमिति चेद्, उपपद्यते । अन्यथा कस्य संसारः । कृतहान्यकृ-

भाष्यप्रकाशः ।

भावात् ततः पूर्वं जीवाभावेन तच्छरीरसाध्यं कर्म पूर्वं न संभवति । येन वैषम्यादि समाधीयेत । अथ विभागोत्तरभाविना कर्मणा समाधानम् । तदप्ययुक्तम् । कर्मणः शरीरसाध्यत्वेन शरीरसंबन्धस्य च कर्मसाध्यत्वेनान्योन्याश्रयादित्येवं सूत्रांशेनाशङ्क्य तत् समाधत्ते नानादित्वादिति । स्यादन्योन्याश्रयो यदि शरीरकर्मव्यक्ती द्वे एव स्याताम् । तत्तु नास्ति । बीजाङ्कुरवच्छरीरकर्मप्रवाहस्यानादित्वात् । अतो विभागोत्तरं सापेक्षत्वात् सुघटः समाधिरित्यर्थः ॥ ३५ ॥

उपपद्यते चाप्युपलभ्यते च ॥ ३६ ॥ नन्वयं समाधिरसमाधिरेव । सृष्टेः पूर्वं विभागाभावेन प्रवाहानादित्वस्य वक्तुमशक्यत्वादित्याशङ्कायामिदं सूत्रं प्रवृत्त इति स्फुटीकुर्वन्तो व्याचक्षते **कथमित्यादि** । सूत्रे अपिः पूर्वपक्षिगर्हायाम् । स्वयं यौक्तिकः सन् युक्तिं विस्मरतीति युक्तिमाहुः **अन्यथेत्यादि** । अन्यथेति यदि जीवोऽनादिर्न स्यात् । प्रथमश्चोऽवधारणार्थो द्वितीय उक्तसमुच्चयार्थः । स्मृतिस्तु तृतीयस्कन्धनवमाध्यायस्था । तथा च प्रलयनैकव्यदशायां सदसत्कर्मकरणोत्तरं प्रलये जाते जीवानां ब्रह्मरूपत्वात् तदानीं कर्मफलभोगाभावात् कृतहानिः ।

रश्मिः ।

गिकाभावाऽप्रसिद्धिरिति चेन्न । **पूर्व**मिति भाष्यीयपदेन नञर्थकथनाद् अविभागदशायाम् । न च पूर्वस्मिन्निति प्रयोगापत्तिः । पूर्वं यथा भवति तथा संभवतीति क्रियाविशेषणत्वेऽकर्मत्वान्न सप्तमी किंतु द्वितीयेति । तदेवाहुः **ततः पूर्वमित्यादि** विभागात् पूर्वमविभागदशायामित्यविभागनञर्थस्थाने पूर्वमिति । न संभवतीति नञ् । **न कर्मे**ति अत्रत्यम् । तथा च कर्म न कर्माभावः । अन्वयस्तु यदुक्तमीश्वर इत्यादिनोक्त एव, विभागादित्यनुवर्तते । विभागात्पूर्वमविभागदशायां संभवतीत्यर्थः । तेन पूर्वमित्यस्य क्रियाविशेषणत्वहानिः । **येने**ति कर्मणा । **पश्चात्त्वि**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति **अथेति समाधान**मित्यन्तम् । पश्चाद्विभागदशायाम**न्योन्याश्रय** इति भाष्यमवतारयन्ति **तदपीति** । **बीजाङ्कुरे**ति बीजादङ्कुरमङ्कुराद्बीजं नूतनतर्वादौ दृष्टम् । **अत इति** प्रलयेपि कर्मणः सत्त्वेन सार्वविभक्तिकस्तसिः । चिक्रीडिषाधीनत्वात्सकलशक्तीनामन्योन्याश्रयपरिहारः सुघट इत्याहुः **सुघट इति** । वेदस्य पूर्वशास्त्रत्वेपि वेदान्तत्वात् 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति' इति श्रुत्यानुकल्पेनोक्तम् । पूर्वमीमांसायां 'यदेव विद्यया करोति' इति छान्दोग्यानुकूल्यम् ॥ ३५ ॥

उपपद्यते चाप्युपलभ्यते च ॥ ३६ ॥ व्याससूत्रविरोधे जैमिन्युक्तप्रवाहानादित्वबाध इत्यनादित्वं न समाधिरित्याहुः **नन्वयमिति** । **विभागाभावेने**ति । तथाच व्याससूत्रं 'स्वाप्ययात्' इति । अप्युपपद्यते चोपलभ्यते चेत्यन्वयं मत्वाहुः **सूत्र** इति । तथा च कथमित्यादि **भाष्यमपिशब्दार्थः** । **युक्तिमिति** पूर्वपक्षे विस्मृतां युक्तिम् । **जीवोनादि**रिति । जीवाणुत्ववादेणुत्वं **वास्तविकं** न त्वौपाधिकमित्युक्तेः । तेन व्याससूत्रविरोधः परिहृतः । प्रवाहस्य जीवमात्रपरिनिष्ठत्वेन न **जैमिन्युक्तप्रवाहानादित्वम्** । तस्य पूर्वमीमांसाविषयत्वात् । **अवधारणार्थ** इति । **अन्यथा कस्येति**

ताभ्यागमप्रसङ्गश्च । उपलभ्यते च श्रुतिस्मृत्योः । 'अनेन जीवेनात्मना' इति सर्गादौ जीवप्रयोगादनादित्वम् । 'तपसैव यथा पूर्वं स्रष्टा विश्वमिदं भवान्' इति च ॥ ३६ ॥

सर्वधर्मोपपत्तेश्च ॥ ३७ ॥

उपसंहरति । वेदोक्ता धर्माः सर्वे ब्रह्मण्युपपद्यन्ते सर्वसमर्थत्वादिति ॥ ३७ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

पुनः सृष्ट्यारम्भदशायां विस्फुलिङ्गवद्विभागेऽपि ब्रह्मरूपताया अनपेतत्वेन तदानीमपि भोगायोगाच्च कृतहानिः । सृष्ट्यारम्भे ब्रह्मरूपतयातिशुद्धानां पुनः सकलदुःखनिवहसाधनीभूतशरीरसंबन्धादकृताभ्यागमप्रसङ्गश्च स्यादत एतयोपपत्त्या जीवस्यानादित्वम् । न चास्याः शुष्कतर्कत्वम्, येनास्या अप्रतिष्ठानं स्यात् । यतोऽनेनेति श्रुतौ सर्गादावेव जीवपदस्य सिद्धवत् प्रयोगात् । न च सा भाविनी संज्ञेति युक्तम् । उक्तस्मृतौ यथापूर्वमिति पदेन नामरूपसंबन्धानादित्वस्य बोधनात् । अतोऽविभागदशायामपि नामरूपसंबन्धसत्त्वात् । श्रुतौ च व्याकरवाणीति कथनेन तत्प्रख्यातिमात्रस्य सृष्टावभिप्रेतत्वात् सर्वानादित्वे तत्कर्मानादित्वमपि श्रुतिसिद्धम् । तथा सति तत्सापेक्षतापि तथेति पूर्वोक्तः समाधिरव्याहत एवेत्यर्थः ॥ ३६ ॥

सर्वधर्मोपपत्तेश्च ॥ ३७ ॥ नन्वेवं सति प्रलये नामरूपविभागानर्हरूपेणैव सर्वावस्थानं सिद्ध्यतीत्यविभागलक्षणस्यैवाद्वैतस्य सिद्धिर्न शुद्धाद्वैतस्येत्यद्वितीयश्रुतिविरोधो दुष्परिहर इत्याशङ्कायां तं विरोधं परिहरन् स्वोक्तमुपसंहरतीत्याहुः उपसंहरतीत्यादि । तथा च यथा नारदपरीक्षायां 'चित्रं बत यदेकेन वपुषा युगपत् पृथक् । गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत्' इति उपक्रमे कथनात् । 'तमेव सर्वगेहेषु सन्तमेकं ददर्श ह' इत्युपसंहारे कथनाच्च नानागृहेषु तत्तत्कार्याणि कुर्वतः पृथग्विद्यमानत्वेपि न रूपभेदस्तथात्राविभागेन सर्वेषां रूपाणां विद्यमानत्वेपि नाद्वितीयत्वभङ्गः । 'विचित्राश्च हि' इत्यनेनैतत्समाधेः पूर्वमेव कृतत्वादित्यर्थः । एतेन

रश्मिः ।

भाष्यमुपपत्तिपरम् । कृतहानीत्यादिभाष्यात्तन्निश्चायकादुपपत्त्यवधारणमित्यवधारणार्थः । समुच्चयार्थ इति स्मृतिसमुच्चयार्थः । श्रुतिस्मृत्योरिति भाष्यात् । अन्यथा श्रुताविति भाष्यं स्यात् । गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्यय इति । कृतहानिरिति कृतस्य कर्मणो फलसंबन्धाद्धानिरिव हानिः । तदानीमिति । ब्रह्मणो विभागात्पश्चाच्छरीरसंबन्धात्प्राक् । यदा 'जीवस्यानुस्मृतिः सती' इत्युत्तरार्धवाक्याद् 'ब्रह्माहमस्मि' इति प्रत्ययकाले उपलभ्यत इत्यादिभाष्यतात्पर्यं वदन्ति न चास्या इति । उक्तेति भाष्योक्तस्मृतौ । यथापूर्वमिति पूर्वं सर्गादिमनतिक्रम्येति यथापूर्वम् । नाम जीव इति । रूपमणुत्वम् । तत्प्रख्यातीति नामरूपप्रख्यातिमात्रस्य । तथेत्यनादित्वेन प्रकारेण, अनादिरिति यावत् । तेन यदेव विद्ययेति श्रुतेः तमेतं वेदेति श्रुतेश्च विरोधो युक्त्या परिहृतः । यदि विकल्पविषयत्वं न स्याद्वेदत्वं न स्यादिति । मुख्यस्त्वग्रे श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारो वाच्यः ॥ ३६ ॥

सर्वधर्मोपपत्तेश्च ॥ ३७ ॥ अविभागेति विज्ञानेन्द्रभिक्षुमत इव । स्वोक्तमिति 'सर्वोपेता च' इत्यारभ्योक्तम् । उपसंहरति सर्वधर्मवत्त्वश्रुतिविरुद्धश्रुतिविरोधपरिहारेण विरुद्धसर्वधर्माधारत्वमुपसंहरति । नारदेति दशमे उत्तरार्धेकोनसप्ततितमेध्याये । पूर्वमिति 'आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि' इति सूत्रे । एतेनेति विरुद्धधर्माधारत्वेन सिद्धेन ।

इति द्वितीयाध्याये प्रथमपादे द्वादशं सर्वोपेताधिकरणम् ॥ १२ ॥

इति वेदव्यासमतवर्तिश्रीवल्लभाचार्य विरचिते ब्रह्मसूत्राणुभाष्ये

द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः ॥ २ ॥ १ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

न कर्मेति सूत्रद्वयमादायाविभागाद्वैतमविनाभावाद्वैतं वा ये रोचयन्ते ये चाद्वितीयादि-श्रुतिमादाय प्रपञ्चमायिकत्वं रोचयन्ते ते उभयेपि निरस्ता वेदितव्याः । तेन विरुद्धधर्माश्रयं सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि समाम्यधिकरहितं ब्रह्मेति सिद्धम् । एवमस्मिन् पादे युक्त्या नानाविधः श्रुतिषु यो विप्रतिषेधः स परिहृतः ॥ ३७ ॥

इति द्वादशं सर्वोपेताधिकरणम् ॥ १२ ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणनखचन्द्रनिरस्तहृदयध्वान्तस्य पुरुषो-त्तमस्य कृतौ भाष्यप्रकाशे द्वितीयाध्यायस्य प्रथमपादः ॥ २ ॥ १ ॥

रश्मिः ।

ये इति । **विज्ञानेन्द्रभिक्ष्वाचार्याः** । **य** इति **शंकराचार्याः** । आदिशब्देन 'सदेवेति' श्रुतिः । प्रपञ्चेति सर्वज्ञं सर्वशक्तिमहामायं च ब्रह्मेति भाष्येण मायिकपदं रोचयन्ते । अत्र यद्यपि अविभागाद्वैतम-विनाभावाद्वैतं येभ्यो रोचत इति प्रयोगः । 'रुच्यर्थानां प्रीयमाण' इति सूत्रात् । तथापि णिजन्तेन भवतीत्येवं प्रयुक्तम् । पादार्थं सङ्गमयन्तः सिद्धमाहुः तेनेति । पादार्थत्वेन हेतुना । **विरुद्धेत्यादि** । हेतुगर्भं विशेषणं विरुद्धधर्माश्रयत्वात् । श्रुतिविरोधस्थानं सामान्यमाहुः **सर्ववादे**ति । उपक्रमोप-संहारयोः सर्वोपेतसर्वधर्मशब्दयोरुपादानात् । अनुवदन्ति **एवमस्मिन्निति** । **नानाविध** इति । एकमुदाहरणं तु पूर्वसूत्र उक्तम् । अत्र समन्वयो विषयः स चास्ति कर्तृत्वांशे निर्वाहकाभावान्नास्ति वेति संशयः । निर्वाहकाभावान्नास्तीति पूर्वपक्षेऽभिधीयते । सर्वशक्तिमिरुपगतत्वात्समन्वयोऽस्तीति **सिद्धा-न्तः** । शंकरभाष्ये तु स्मृतिर्गीताख्या । तथाहि । स्मृतावप्यनादित्वं संसारस्योपलभ्यते । 'न रूपमस्येह तथोपलभ्यते' इति त्रयोदशाध्यायस्था । सर्वथापि सगुणवादो न निवर्तते । सर्वधर्मोपपत्तिसूत्रे चेतनं **ब्रह्म** जगतः कारणम् । प्रकृतिश्चेत्यस्मिन्नवधारिते वेदार्थे परैरुपक्षिप्तान्दोषान्पर्यहार्षीदाचार्य इति भाष्येण धर्माः प्राकृताः । पूर्वत्र तु संसारतरुः सोऽपि सगुणवाद एव निविशत इति ते उभयेपि निरस्ता वेदि-तव्या इति पूर्वमुक्तम् । अविभागादिद्वैतवादिनस्तु पूर्वं प्रत्युक्ताः । ननु विभागादिद्वैतस्य 'यथा मधु मधु-कृतो निस्तिष्ठन्ति' इत्युपदेशसिद्धत्वात्कुतो निरस्ता इति चेन्न । व्याख्यानात् । नारदपरीक्षायां वस्तुन एव तथात्वात् । तेन 'त इह व्याघ्रो वा सिंहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दꣳशो वा मशको वा यद्भवन्ति तदा भवन्ति स य एषोणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यं तत्त्वमसि श्वेतकेतो' इत्यत्र तदेतिशब्देन कालोपदेशात् कृष्णावतारपरत्वात् । **भास्करभाष्ये** भेदाभेदोपपादनातिरिक्तो न **विशेष** इत्युपरम्यते । **रामानुजास्तु** न कर्मेत्यादिसूत्रद्वयमेकं कृत्वा व्याचक्षते विशिष्टाद्वैतानुरोधेन । स्मृतिं तु 'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि' इति गीताख्यामाहुः अचिद्वैशिष्ट्यार्थं स्वमतेर्यस्तु

रश्मिः ।

प्रकृतिश्चेत्यधिकरणे पूर्वाध्याये विचारितः । त्रयोदशाध्याये ज्ञानप्रकरणे वर्तते इति भक्तावनुपयोगात्तृतीयस्कन्धातिरिक्तायाः । **माध्वभाष्येपि न विशेषः ॥ ३७ ॥**

इति द्वादशं सर्वोपेताधिकरणम् ॥ १२ ॥

इति श्रीविठ्ठलेश्वरैश्वर्यनिरस्तसमस्तान्तरायेण श्रीगोविन्दरायपौत्रेण संपूर्णवेत्त्रा विठ्ठलरायभ्रात्रीयगोकुलोत्सवात्मजगोपेश्वरेण कृते भाष्यप्रकाशरश्मौ द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः पादः संपूर्णतामगमत् ॥ २ ॥ १ ॥

श्रीकृष्णाय नमः ।
श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ।
श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।

श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम् ।

भाष्यप्रकाश-रश्मि-परिबृंहितम् ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

द्वितीयः पादः

रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम् ॥ १ ॥ (२-२-१)

स्वतन्त्रतया सर्वे वादा निराक्रियन्तेस्मिन् पादे ।

भाष्यप्रकाशः ।

रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम् ॥ १ ॥ प्रथमे पादे सांख्यं निराकृत्य तन्निराकरण-प्रसङ्गे, 'एतेन शिष्टापरिग्रहा अपि व्याख्याताः' इति सूत्रेण शिष्टापरिग्रहरूपं दोषं प्रदर्श्य अन्ये च वादा निराकृताः । तथापि केषांचन मन्दमतीनां तदुक्तयुक्तिष्वाभासताभानाभावे श्रद्धोत्पत्तौ स्वार्थविभ्रंशः स्यात् स मा भूदिति करुणया तदुक्तयुक्तीराभासीकर्तुं द्वितीयः पाद आरभ्यते इति पूर्वं पादार्थनिरूपणे सूचितं तदत्र स्मारयन्ति स्वतन्त्रतयेत्यादि । तत्र प्रथमे पाद उपपादितः सत्कार्यवादः परिणामवादश्च सांख्यवादे सिद्धान्ते च तुल्य इति सांख्ये श्रद्धा शीघ्रमास्तिकस्योत्पद्येतेति तन्निरासाय प्रथमं तदेव निराक्रियते दशभिः सूत्रैः । तेषां चैवं मतम्—

रश्मिः ।

रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम् ॥ १ ॥ शास्त्रत्वानुरोधेन प्राप्तं वेदाङ्गत्वं पूर्वपादे निराकृतं तत्प्रसङ्गसंगत्या स्मृतं स्वातन्त्र्यं तेन रूपेण शास्त्रनिराकरणमस्मिन् पाद इत्याहुः **प्रथमे पाद** इति । **श्रद्धोत्पत्ताविति** । तत्तच्छास्त्रस्य वेदानुपबृंहकत्वे सामान्यतः शिष्टापरिग्रहा उक्ताः, अधुना तु स्वतन्त्रत्वेन स्वोक्तफलाङ्गत्वरूपेण ये सर्वे वादास्ते निराक्रियन्ते । **सूचितमिति** पूर्वपादाद्यसूत्रे 'ततो द्वितीये पादे' इत्यादिना 'वेदबाधकत्वाभावेपि' इतरमतैः पुरुषार्थः स्वतन्त्रः सिद्ध्येद्भ्रान्त्येत्यन्यमतं निराकरोति द्वितीयपाद इत्युक्तम्, तत्र निराकरणकर्तृ निराकरोतेर्वाच्योर्थः, युक्त्याभासीकरणं तु व्यञ्जनया बोधितमिति सूचितम् । **सांख्ये श्रद्धेति** सहजकर्मणां सांख्यानामपरित्यागो भवति 'सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्' इति गीतावाक्यात् । तत्राप्येतन्मतीयपदार्थतौल्यमिति **श्रद्धा शीघ्रं तन्मतास्तिकस्योत्पद्येत** । **तदेव** सांख्यमेव । एवकारेण शास्त्रान्तरव्यवच्छेदः । **सूत्रैरिति** षडधिकरण्या । विषयादिकं तु षडधिकरण्या अन्ते वक्ष्यन्ति । विषयः 'यतो वा इमानि' इत्येवमादीनि सामान्यकारणवाचकयच्छब्दघटितानि । अत्र यच्छब्दार्थो ब्रह्म जगदुपादानं सगुणं वेति संशयः । स्वमतशंकरादिमतविरोधः संशयबीजम् । सगुणमुपादानं निष्कलादिश्रुतेरिति शुद्धं ब्रह्म नेति पूर्वपक्षे, ब्रह्मैवोपादानं सर्वसमयानामयुक्तत्वात् इति सिद्धान्तः । प्रसङ्गान्तर्गतसामान्यविशेषभावः संगतिः ।

भाष्यप्रकाशः ।

'मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ।
षोडशकश्च विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः' इति ।

रश्मिः ।

अनुमीयते कारणत्वेन यत् प्रकृतिस्तदनुमानं कर्मप्रत्ययान्तम् । ननु कर्मप्रत्ययमङ्गीकृत्य प्रकृतिकारणवादाङ्गीकारापेक्षयानुमानं प्रसिद्धमेव कुतो न गृह्यत इति चेन्न । कर्मप्रत्ययस्तु व्याकरणसिद्ध इति न पर्यनुयोगार्ह इति । प्रसिद्धानुमानस्य शिष्टापरिग्रहेणाव्याख्यानात् । न च 'लोके शब्दार्थसंबन्धी रूपं तेषां च यादृशम् । न विवादस्तत्र कार्यो लोकोच्छित्तिस्तथा भवेत्'इत्यनुमानं नैयायिकादिमतसिद्धं ग्राह्यमिति वाच्यम् । तैर्दूषणार्थमेव क्वचिन्नैयायिकादिमतसिद्धपदार्थानुवादात् । योगादरणस्य सूत्र आवश्यकत्वात् । नैयायिकादीनामनुमानशब्दस्य योगरूढत्वात् । ननु 'निर्गुणादिश्रुतिविरोधश्च' इति वदतः सांख्यस्य तु योग एवेति चेन्न । श्रुतिविरोधं ददतोपि 'प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि' इत्यनुमानशब्दघटितसूत्रणात् । अस्माभिस्तु योगमात्रादरणं 'सर्वं सर्वमयम्' 'सर्वे सर्वार्थवाचकाः' इति वाक्यसहायकतर्कैः रूढिस्थाने सर्वत्र प्राप्तयोगपरिहाराय शक्तिसङ्कोचलक्षणा रूढिः । अन्यथा सकलप्रत्यक्षानाय विचारो न स्यात् । ननु नानुमानमिति नैतदर्थकमपि तु प्रत्यक्षमात्रैकप्रमाणसाधनपरम् । यथावत्प्रत्यक्षानुमानयोः प्रामाण्यं तर्कसिद्धं तत्राह रचनानुपपत्तेरनुमानं न, अर्थात्प्रमाणं न । तदुक्तं 'वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि । समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्' इति । नन्वेतच्चतुष्टयमपि शब्दात्मकमिति न प्रमाणमिति चेन्न । आर्षादिना प्रत्यक्षमूलत्वेन प्रामाण्यस्य प्रत्यक्षपर्यवसितत्वात् । न चैवमाचार्याणामभिमतमनभिप्रेतं कुतो भूष इति शङ्क्यम् । अस्मन्मते संदेहा उपनिषद्विचारेण परिहरणीया इत्याज्ञायाः । उपनिषत्तु बृहदारण्यकं तत्र 'चक्षुर्हि वै सत्यम्' इत्युक्त्वा 'तस्माद्यदिदानीं द्वौ विवदमानावेयातामहमद्राक्षमहमश्रौषमिति य एवं ब्रूयादहमद्राक्षमिति तस्मा एव श्रद्दध्याम' इत्यत्र शब्दापेक्षया प्रत्यक्षप्रामाण्योररीकारात् । ननु तर्हि प्रकृतिपदं विहायानुमानपदं कुत इति चेन्न । सूचितार्थार्थाय तथोक्तेः । शंकराचार्यास्तु नैयायिकं प्रति अनुमानं मानमीश्वरे नेत्याहुः । भास्करास्तूकव्युत्पत्त्यास्मदुक्तम् । रामानुजास्तु तत्रेत्यध्याहृत्य प्रकृतावनुमानं नेत्याहुः । माध्वास्तु प्रकृतौ नानुमानमित्याहुः । मूलेति । तत्त्वसंग्रहोयम् । अतःपरं कारणताशोधकस्तर्कः, फलांशे स्वातन्त्र्यस्य निराकरणम्, द्वयं वक्तव्यम् । तर्कस्तु प्राज्ञे नावतरति शङ्काभावात् । शङ्का तु आचार्यप्रदर्शितागमात् भूयो महत्सु तद्दर्शनादपि कारणताशङ्का सापि तर्कनिवृत्ता भवति । अतस्तर्कोऽपि तं प्रति न । मन्दमध्यमयोस्तु द्वयं वक्तव्यम् । तदुक्तं 'हेतुर्व्याप्तिग्रहे तर्कः क्वचिच्छङ्कानिवर्तकः' इति भाषापरिच्छेदे । किंच । 'अलौकिको हि वेदार्थो न युक्त्या प्रतिपद्यते' इति युक्तिः तौ प्रत्यप्यसिद्धा । अतो मीमांसायुतस्तर्क आरभ्यते 'अन्यथाज्ञानं तर्कः' । नन्विदं तर्कलक्षणमत्र सूत्रेऽव्याप्तम् । रचनानुपपत्तेरनुमानं नेत्यस्य प्रमात्वात् । तर्ह्यनुमानं कारणत्ववत् चेतनं विनेति तर्कः । नन्विदमपि न । कारणत्ववत्त्वाभाववदनुमानं रचनानुपपत्तेरिति सौत्रमितीति चेन्न । ज्ञानकाण्डोपपादकत्वेन मीमांसाया अप्यन्यथाज्ञानरूपत्वानौचित्यात् सांख्यीयान्यथाज्ञानरूपतर्कवैशिष्ट्येन तर्कपादत्वव्यवहाराद् ब्रह्मजगतोः कार्यकारणभावः । ब्रह्म जगत्कारणं शास्त्रयोनित्वादित्यत्र शास्त्रयोनित्वं जगत्कारणत्वव्यभिचारीत्याशङ्का सूत्रेण तर्कविशिष्टेन नास्यत इति तर्कपादत्वम् । तदुक्तं 'तदुक्तयुक्तीरत्नसीर्कर्तुम्' इति पूर्वं प्रकाशेनैव । अत एव न भाष्येषु पादसमाप्तौ तर्कशब्दः किंतु द्वितीयः पाद इत्येव । अन्यख्यातिरपि परमार्थदशायामख्यातिरेवेति न कोपि दोषः । फलांशे स्वातन्त्र्यनिराकरणं तु

भाष्यप्रकाशः ।

तत्र साम्यावस्थोपलक्षिता वा अकार्या वा गुणाः प्रकृतिः । प्रकृतित्वं च प्रकर्षेण करोतीति व्युत्पत्त्या तत्त्वान्तरारम्भकत्वम् । गुणास्तु, सत्त्वं लघु प्रकाशकम्, रज उपष्टम्भकं चलम्, तमो गुर्वावरकमिति कार्यलक्षणलक्षिता यथायथं प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकद्रव्यस्वरूपा अतीन्द्रियाः कार्यैकोन्नेयाः । गुणक्षोभस्य पाश्चात्यत्वात् साम्यावस्था सर्वेषां कारणभूतेति मूलप्रकृतिरित्युच्यते । सा एका अचेतना अनेकचेतनभोगापवर्गार्था नित्या सर्वगता सततविक्रिया न कस्यचिद् विकृतिः । महदहंकारपञ्चतन्मात्राः सप्त प्रकृतिविकृतयः । तत्र महानहंकारस्य प्रकृतिः मूलप्रकृतेर्विकृतिः । अहंकारस्त्रिविधो वैकारिकस्तैजसस्तामसश्च । तत्र वैकारिको मनसः प्रकृतिः, तैजस इन्द्रियाणाम्, तामसः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाख्यानां पञ्चतन्मात्राणाम् ।

रश्मिः ।

वाशीवत् करणत्वमात्रत्वेन ब्रह्मस्वरूपत्वेपि सापेक्षत्वात् । 'प्रकृतिश्च' इत्यधिकरणे ब्रह्मस्वरूपत्वमुक्तम् । अतः स्वमते स्वातन्त्र्येपि न क्षतिः तद्भक्तुः स्वरूपप्राप्तेः । नैयायिकादिमते तु सांख्ये सङ्ग इव नैयायिकानां कर्ता चार्वाकादीनामभाव इति तदसमवायिकजगतस्तदंशत्वाभावात्प्रकृत्यादिभजने प्रकृत्यादिप्राप्तौ मुक्तित्वहानिः । 'यो यदंशः स तं भजेत्' इति प्रकृत्यादिभजनेन प्रकृत्यादिप्राप्तेरतः श्रद्धोत्पत्तौ स्वार्थात्तत्तन्मतप्रतिपन्नादन्यत्र मोक्षे विभ्रंशः स्यात् स मा भूदिति करुणया तदुक्तयुक्तीनामाभासीकरणेन प्रकृतिपरमाण्वादिकारणत्वं भगवदीयमेवेति न मोक्षभङ्गः । इति स्वातन्त्र्यनिराकरणम् । व्याकुर्वन्ति तत्रेति उक्तपदार्थेषु । साम्येति 'सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः' इतिसूत्रात् । अकार्येति 'प्रकृतिपुरुषयोरन्यत्सर्वमनित्यम्' इति सूत्रात् । सत्त्वमिति लघु(तत्त्व)त्वं त्वनुभववेद्यम् । प्रकाशकं सर्वेन्द्रियज्ञानजनकम् । रजः उपष्टम्भकमारम्भकम्, चलं प्रवर्तकम् । तमो गुरु सर्वांशेनेत्यनुभवः ज्ञानस्वरूपावरकं च । सूत्राणीमानि । लघुत्वादिकमानुभाविकम् । प्रकाशजनकत्वादिकं कार्यलक्षणं तेन लक्षिताः । 'लघ्वादिधर्मैरन्योन्यसाधर्म्यं गुणानाम्' इतिसूत्रादन्योन्यसाधर्म्योक्त्या लघुत्वगुरुत्वे सत्त्वादिसाधारणे । स्वरूपलक्षणमाहुः यथायथमिति । 'प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योन्यं वैधर्म्यम्' इति सूत्राद्वैधर्म्यमपि । कार्यैकेति प्रकाशचालनावरणानि कार्याणि तैरुन्नेयाः । तदुक्तं 'कार्यात्कारणानुमानं तत्साहित्यात्' इति सूत्रे । मूलपदतात्पर्यमाहुः गुणक्षोभस्येति । अयं क्षोभः पुराणे स्पष्टः । पाश्चात्यत्वादिति । अत्रैकवचनं विवक्षितमित्याहुः एकेत्यादि । 'अचेतनत्वेपि क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य' इति सूत्रादाहुः अचेतनेति । अनेकेति । 'उपाधिभेदेप्येकस्य नानायोग आकाशस्येव घटादिभिः' 'प्रधानसृष्टिः परार्थं त्वितोप्यभोक्तृत्वादुष्ट्रकुङ्कुमवहनवत्' 'ज्ञानान्मुक्तिः' इति सूत्रैः । नित्येति 'प्रकृतिपुरुषयोरन्यत्सर्वमनित्यम्' इतिसूत्रात् । सर्वगतेति 'सर्वकार्यदर्शनाद्विभुत्वम्' इति पाठात् । सततेति सत्त्वप्रीत्यादिदर्शनात्सर्वत्र । अविकृतपदार्थमाहुः नेति । विकृतिः कार्यम् । महदाद्या इत्यादि व्याकुर्वन्ति स्म महदिति । 'महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः' इति सूत्रात्त्रिगुणात्मकं कार्यं महान् । अहंकार इति 'अभिमानोऽहंकारः' इति द्वितीयाध्यायसूत्रात् लक्षणम् । पञ्चेति । 'सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्महतोऽहंकारोऽहंकारात्पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिगुणाः' इति सूत्रे महदहंकारपञ्चतन्मात्राणीति सप्त । उक्तसूत्रान्न साक्षात्प्रकृतिविकृतयः सप्त किंतु क्रमेणेत्याहुः तत्रेति । इन्द्रियाणामिति प्रकृतिरित्यनुवृत्त्यान्वयः । तन्मात्राणामिति प्रकृतिरित्येव ।

भाष्यप्रकाशः।

महतस्तु विकृतिस्त्रिविधोऽपि । पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि श्रोत्रत्वग्घ्राणदृग्रसनाख्यानि, पञ्च कर्मेन्द्रियाणि वाक्पाणिपादपायूपस्थानि । मन उभयनायकम् । पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशाः पञ्च महाभूतानि । एत इन्द्रियादयः षोडश विकाराः । पुरुषस्तु परिणामशून्यत्वान्न कस्यापि प्रकृतिः । नित्यत्वेनाजन्यत्वान्न कस्यापि विकृतिः । अत एव निर्धर्मकश्चैतन्यमात्रस्वरूपो निष्क्रियः सर्वगतः प्रतिशरीरं भिन्नश्च । तत्र निर्विकारत्वान्निष्क्रियत्वाच्च न पुरुषस्य कर्तृत्वम् । प्रकृतेस्तु तदुभयवत्त्वात् कर्तृत्वं परिणामित्वं चेति । तच्च प्रकृतेः कारणत्वमेवमनुमिमते,

> 'भेदानां परिमाणात् समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च ।
> कारणकार्यविभागादविभागाद् वैश्वरूप्यस्य ।
> कारणमस्त्यव्यक्तम्' इति ।

अर्थस्तु विश्वं रूपं यस्मिन्निति विश्वरूपं जगत्, विश्वरूपमेव वैश्वरूप्यम्, स्वार्थे ष्यञ् तस्याऽव्यक्तं कारणमस्ति । तत्र पञ्च हेतवः । भेदानां परिमाणात् भेदा महदादिभूतान्तास्तेषां परिमाणात्, अव्यापित्वाद्, व्याप्यत्वादिति यावत् । कारणे सत्कार्यमिति स्थितम् । तथा च विवादाध्यासिता भेदाः स्वसजातीयाव्यक्तकारणकाः तद्व्याप्यत्वात् । ये यज्जातीयव्याप्यास्ते तज्जातीयाव्यक्तकारणकाः यथा घटादय इति । एवं समन्वयाद् भिन्नानां सरूपता समन्वयः, अविनाभावो वा । तथा च विमता भेदास्तथा, तद्भिन्नत्वे सति तत्सरूपत्वात् तदविनाभूतत्वाद्वा, यदेवं तदेवं घटादिवदिति । किं च । शक्तितः प्रवृत्तेः । शक्तिः स्वान्तःस्थाविर्भावकत्वम् । तथा च यद् यच्छक्तितः प्रवृत्तं तत् तत्कारणकम् ।

रश्मिः ।

त्रिविधोपीति अहंकारः । षोडशकश्च विकार इत्येतं सूत्रांशं व्याकुर्वन्ति **ज्ञानेन्द्रियाणी**ति । **मन** इति महत्तत्त्वानुवादः । **विकारा** इति । तथा च 'सत्त्वरजः' इति सूत्रशेषः 'उभयमिन्द्रियं स्थूलभूतानि' इति । 'कर्मेन्द्रियबुद्धीन्द्रियैरान्तरमेकादशकम्' इति द्वितीयाध्याये । आन्तरमन्तःकरणम् । **न प्रकृति**रित्यादि व्याकुर्वन्ति स्म **पुरुष** इति । **परिणा**मेति 'असङ्गोयं पुरुष इति' सूत्रात् । **निर्धर्मक** इति 'असङ्गोयं पुरुषः' 'निर्गुणत्वमात्मनोसङ्गत्वादिश्रुतेः' इति प्रथमषष्ठाध्यायसूत्राभ्याम् । **तदुभये**ति प्रधानं कर्तृ परिणामि च क्रियाविकारोभयवत्त्वात् । एतद् दूषयितुं मतत्रयेप्यस्वरसानाहुः **तच्च प्रकृते**रित्यादि, **व्यभिचारा**च्चेत्यन्तम् । 'परिणामात्' 'शक्तितश्च'इति सूत्रद्वयदर्शनादाह **भेदाना**मिति लिङ्गद्वयम् । तृतीयं समन्वयात् इति । प्रवृत्तेश्चेति तु शक्तित इत्यस्यैव विशेष्यम् । तस्यापि निष्कृष्टार्थमाह **कारण** इति । **स्थितं** स्थितिः । **स्वसजातीये**ति दृष्टान्तप्रसिद्ध्यै स्वसजातीयेति । **तद्व्याप्यत्वा**दिति अव्यक्ते स्थितत्वात् । **घटादय** इति मृत्त्वजातीयमृद्व्याप्या ये घटादयस्ते मृत्त्वजातीयमृद्रूपाव्यक्तकारणका इति प्रसिद्धम् । अस्य हेतो रामानुजमतास्वरसप्रदर्शने व्यभिचारस्य वक्ष्यमाणत्वाद्धेत्वन्तरमाहुः **अविने**ति । **तथे**ति स्वसजातीयकारणकाः । स्वप्रकाराश्रये लक्षणा । **तद्भिन्नत्व** इति । तत्स्वरूपत्वं मूलप्रकृतौ साध्यशून्यायामपीति साधारण्यवारणाय विशेष्यम् । **घटादिवदि**ति घटादयो मृदविनाभूताः, मृद्भिन्नत्वे सति मृद्रूपा इति, मृत्त्वजातीयमृद्रूपाव्यक्तकारणकाः प्रसिद्धाः । तृतीयं लिङ्गं विवृण्वन्ति स्म **किं चे**ति । **स्वान्त** इति स्वं कारणम् । यदिति यत् पटादि तन्तुशक्तितः प्रवृत्तं **तत्**

भाष्यप्रकाशः ।

यथा घटादिकं मृत्कारणकम् । तथैवैतेऽव्यक्तशक्तितः प्रवृत्तास्तत्कारणका इति । यद्वाऽत्र हेतुद्वयम् । तथा सति, यद् यच्छक्यं तत् तत्कारणकम् । यथा घटादयो मृदः । तथैते परंपरया परमाव्यक्तस्येति । एवं यद् यत्प्रवृत्तिसंपाद्यं तत् तत्कारणकम् । यथा घटादिः कुलालादेः । एवमेव महदादयोऽव्यक्तस्येति । अयं च हेतुः सामान्यतः कारणत्वं वा कर्तृत्वं वा साधयति । किं च । कारणकार्यविभागादविभागात् ताभ्यामित्यर्थः । तथा च ये उत्पत्तौ यतो विभक्ताः प्रलये च यदविभक्तास्ते तत्कारणकाः । यथा घटादयो मृदः । एवमेतेऽपि परंपरया साक्षाच्च परमाव्यक्तादुत्पत्तौ विभक्ताः प्रलये च तदविभक्ता इत्येतैरपि तत्कारणकैर्भवितव्यमिति ।

रामानुजाचार्यास्तु—यद् विचित्रसन्निवेशं तत् कार्यम् । यथा तनुभवनादि । जगदपि विचित्रसन्निवेशमिति तेनापि कार्येण भवितव्यमिति सामान्यतो दृष्टेन जगतः कार्यत्वमनुमाय तेन सिद्धे कारणपूर्वकत्वे ततः किं कारणमित्यपेक्षायां तत्साधनाय समन्वयादयो हेतव इत्येवं सांख्यतत्त्वकौमुद्युक्तप्रकारेण सरूपत्वं समन्वयं देशकालपरिच्छिन्नत्वं परिमाणमङ्गीकृत्य व्याकुर्वन्ति ।

भास्कराचार्यास्तु—अविनाभावरूपमन्वयमङ्गीकृत्य सुखदुःखमोहान्विता बाह्या आध्यात्मिकाश्च भेदा दृश्यन्ते । ये च यदन्वितास्ते तदेककारणपूर्वकाः । यथा घटशरावादयो मृदन्विता मृदेककारणपूर्वका एवं सुखदुःखमोहान्वितं जगत् त्रिगुणकारणकमित्येवं व्याकुर्वते । परिमाणं च द्विविधम्, रूपतः संख्यातश्चेत्याहुः । तत्र भिन्नानां सरूपत्वरूपो यः समन्वयस्तस्य न स्वसजाती-

रश्मिः ।

पटादि तन्तुकारणकम् । **तथैवेति** महदादयः अव्यक्तकारणकाः, **अव्यक्तशक्तितः** प्रवृत्तत्वादित्यनुमानम् । **शक्तिप्रवृत्तिरिति** पाठे पञ्चमीसमासं मत्वा व्याख्यातम् । इदानीं 'शक्तितश्चेति' सूत्राद्विशेषमाहुः **यद्वेति** । **मृद** इति शक्याः । **तथैत** इति भेदाः, तत्कारणकाः, तच्छक्यत्वादित्यनुमानम् । **परमेति** शक्या इत्येव । **यत्प्रवृत्तीति** व्याप्तिस्वरूपम् । **कुलालादेरिति** प्रवृत्तिसंपाद्या इति, अतः परंपरयाव्यक्तकारणकाः । **अव्यक्तस्येति** प्रवृत्तिसंपाद्या, अतोऽव्यक्तकारणकाः । **अयं चेति** । व्याप्यत्वादिकमुपादान एव संभवतीत्युक्ता हेतवो विशेषकारणत्वसमर्पकाः प्रवृत्तिस्तु निमित्तोपादानसाधारणीति तत्प्रवृत्तिसंपाद्यत्वहेतुः **सामान्यतः कारणत्वम्**, प्रवृत्तेश्चेतनधर्मत्वदर्शनात् **कर्तृत्वं वा साधयतीत्यर्थः** । अनुमानं तु तत्कारणकाः तत्प्रवृत्तिसंपाद्यत्वात् । कारणेत्यादि विवृण्वन्ति स्म **किं चेति** । **मृद** इति विभक्ता अविभक्ताश्चेत्यतो मृत्कारणकाः । अहंकारस्य महतः सकाशादुत्पत्तिदर्शनादाहुः **परंपरयेति** । **एतैरिति** भेदैः । **इत्तीति** एवं सूत्रे कारणत्वेनानुमीयत इत्यनुमानमिति कर्मप्रत्ययः । एतदादि दूषयितुं रामानुजादिमते आहुः **रामानुजेति** । **तेनेति** जगता । **दृष्टेनेति** विचित्रसन्निवेशेन । **अनुमायेति** जगत् कारणपूर्वकं विचित्रसन्निवेशात् तनुभवनादिवत् । **व्याकुर्वन्तीति** भेदानामित्याद्युक्तम् । **बाह्याः** जगद्रूपाः । **आध्यात्मिकाः** देवरूपाः । **भेदाः** सुखदुःखमोहान्विताः अन्वयात् तदेककारणपूर्वकाः तदन्वितत्वात् । **एवमिति** । **ये च** इत्यादिव्याप्तिः । **रूपत इति** सुखदुःखमोहान्वितं जगत्, त्रिगुणकारणकं रूपतः परिमाणात् घटादिवत् । पक्षविशेषणं तु सत्त्वरजस्तमोरूपार्थान्तरापत्तिवारणाय तेन रूपेण पक्षैकदेशस्य दृष्टान्तत्वाय च । तथा च कार्यं यदन्वितं तदन्वितकारणानुमानमिति नियमात्त्रिगुणं

भाष्यप्रकाशः ।

थाव्यक्तकारणकतासाधकत्वम् । सदृशे मित्रादौ तस्य सत्त्वेन हेतोर्व्यभिचारात् । द्विविधपरिमाणेऽपि संख्यापरिमाणं न साधकम्। एकत्वसंख्यासंख्यातत्वस्य कारणेऽपि सत्त्वाज्जातिसंख्यासंख्यातत्वस्य व्यक्तौ सत्त्वेन व्यभिचाराच्च। अतः पूर्वव्याख्यातरीत्यैव प्रधानस्य कारणत्वानुमानम्।

रश्मिः ।

कारणं सुखदुःखमोहात्मकम्, न तु सत्त्वरजस्तमआत्मकमिति नार्थान्तरापत्तिः पक्षैकदेशस्य घटादेर्निश्चितसाध्यवत्त्वात् । 'निश्चितसाध्यवत्त्वं दृष्टान्तत्वम्'इति दृष्टान्तलक्षणात् । प्रकृतमनुसरामः । यद् यद्रूपतः परिमाणयुक्तं तत्तत्कारणकम् । घटो हि मृद्रूपतस्तावत्परिमाणो भवति, मृदं विना घटायोगादतो मृत्कारणकः । एवं प्रकृतिरूपा गुणास्तद्रूपतः परिमाणयुक्तं जगद्भवति । प्रकृतिं विना जगदयोगादतो जगत् प्रकृतिकारणकम् । **संख्यात** इति । अयमर्थः । प्रकृतिर्हि सर्वगताऽतः परिमाणं तस्या महत् । एवं च परिमाणस्य स्वोत्कृष्टपरिमाणजनकत्वान्महदादौ परममहत्परिमाणापत्तिः । तथा च प्रकृतिगता संख्या महदादिपरिमाणारम्भिकेति मन्यते । एवं च महदादि त्रिगुणकारणकं संख्यातः परिमाणात् । यत् यत्संख्याजन्यपरिमाणकं तत्तत्कारणकम्, त्र्यणुकवत् । त्र्यणुकं हि न परमाणुपरिमाणजन्यपरिमाणकम्, अणुतरत्वप्रसङ्गात्, अपि तु परमाणुसंख्याजन्यमिति । अथवा संख्यातः परिमाणमेकत्वसंख्यासंख्यातत्वम् । तद्धेतुः पक्षसाध्यौ पूर्वोक्तौ । **तत्रेति** तेषु मतेषु । सांख्यरामानुजमतयोरस्वरसमाहुः **भिन्नाना**मिति । भेदानामित्यत्र स्वविशिष्टे लक्षणां कृत्वोक्तम् । दूषणं तन्मते महदादिः स्वसजातीयाव्यक्तकारणकम्, सरूपत्वात्, घटादिवत् । अत्र सरूपत्वं न समन्वयार्थत्वेपि समन्वितसरूपत्वं रूढेरित्याशयेनाहुः **तादृश** इति । **सदृश** इत्यपि पाठः । सरूपत्ववति **मित्रादौ तस्य** साध्यस्यासत्त्वेनाव्यक्ततयाव्यक्तकारणकतासत्त्वेपि बीजादिरूपाव्यक्ते बीजत्वाद्यतिरिक्तजात्यभावात्स्वसजातीयाव्यक्तकारणकताभावादसत्त्वेन हेतोः साध्याभाववद्वृत्तित्वात् । भास्करमतेऽस्वरसमाहुः **द्विविधेति** । रूपतः परिमाणं व्याख्यातप्रायमिति संख्यातः परिमाणेऽस्वरसमाहुः **न साधक**मिति । जगत् त्रिगुणकारणकमेकत्वसंख्यासंख्यातत्वात् । अत्र गुणाः सत्त्वादिगुणकार्याणि सुखदुःखमोहरूपाः । यथा स्त्रीरेकैव पुंसः सुखदाः, सपत्न्या दुःखदा, अन्येषां मोहदेति दृष्टान्तः । तथा जगत् ज्ञानिनां सुखदम्, अज्ञानिनां दुःखदम्, उदासीनानां मोहदम् । **सत्त्वा**दिति । तथा च प्रकृतौ साध्याभाववद्वृत्तित्वलक्षणव्यभिचारिहेतुः । एवं सामान्यतो जगत्येकत्वसंख्यासंख्यातत्वमुक्तम् । ये च महदादयः परिमितास्ते च सामान्यकारणपूर्वकाः यथा शरावादयः । एवमेव महदादयः परिमितास्तेषामेकैकं सामान्यकारणमस्तीत्यनुमीयत इत्याहुः **जातिसंख्येति** । घटव्यक्तिः स्वसजातीयाव्यक्तकारणिका जातिसंख्यासंख्यातत्वात् । पटव्यक्तिवत् । व्यक्तीनां बहुत्वान्नैकत्वसंख्या अतो जातीति, जातेः संख्या जातिसंख्या । अवच्छिन्नत्वं षष्ठ्यर्थः । जात्यवच्छिन्नसंख्यासंख्यातत्वादिति फलितम् । तादृशी संख्या घटत्वावच्छिन्ना संख्या । तत्संख्यातत्वं यत्र तत्र स्वं घटादि तत्सजातीयाव्यक्तं मृत्त्वेन मृदादि तत्कारणकत्वम् । अत्रैकत्वसंख्यासंख्यातत्वस्य व्यक्तावभावात् स्वसजातीयाव्यक्तकारणकत्वं न सिध्येदतो हेत्वन्तरोपन्यासः । किं च । अव्यक्ते साध्याभाववति हेतुसत्त्वाद्व्यभिचारः सोपि नास्ति । तत्तद्व्यक्तित्वेनाव्यक्तग्रहणात् । तथापि यथाश्रुतसाध्याभाववत्यां व्यक्तौ जातिसंख्येत्यादिहेतोः सत्त्वाद्व्यभिचार इत्याहुः **जातिसंख्येति** । **अत** इति पक्षत्रये दोषात् । **पूर्वव्याख्यातेति** प्रधानं कर्तृ परिणामि च क्रियाविकारोभयवत्त्वात्क्षीरवदिति रीत्यैव । ननु पूर्वपक्षे एवकारस्य किं प्रयोजनं चतुर्षु यः

लोकानां भूर्भुवादीनामचेतनेन केवलेन प्रधानेन रचना नोपपद्यते। रचितत्वाच्च न परिणामः । सर्वस्य संश्लेषप्रसङ्गात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

तदत्र 'रचनानुपपत्ति'सूत्रेण दूष्यते । तद् व्याकुर्वन्ति लोकानामित्यादि । यत् पूर्वोक्तैः परिमाणादिभिर्हेतुभिर्जगत्कारणत्वेन प्रधानमनुमीयते तदनुमानं न कर्तव्यम् । कुतः । रचनानुपपत्तेः । रचना हि बुद्धिपूर्विका वा, प्रतिनियतदेशकालव्यवस्थापिका वा, चेतनस्पार्शना वा क्रिया। सात्र लोकानां भूर्भुवादीनामचेतनेन केवलेन प्रधानेन नोपपद्यते । तथा च भूरादिलोकरचना न केवलाऽचेतनकारणिका, रचनात्वात्, गृहादिरचनावत् । भूरादिलोका नाचेतनकर्तृकाः चेतनस्पार्शनक्रियात्मकरचनाविषयत्वात्, घटकुड्यादिवत् । प्रधानं स्वतोऽकर्तृ, अचेतनत्वात् । स्तम्भादिवत् । इत्यादिभिः प्रयोगैः सत्प्रतिपक्षत्वादर्थान्तरापादकत्वाच्च न तैरनुमानैः कारणत्वेन प्रधानमनुमातुं शक्यमित्यर्थः । नन्वेवमेतैः प्रयोगैः कर्तृत्वस्यैवासिद्धिर्न तु कारणत्वस्येति बाधकाभावात् पूर्वोक्तैरन्वयादिभिः प्रधानस्य परिणाम एव तादृशोऽस्तु । तथा सति तस्य कारणत्वानपायाच्च कश्चिद्दोष इत्यत आहुः रचितत्वादित्यादि । भवतां मते पुरुषो निष्क्रिय इति, क्रिया शक्तिप्राधानिकी, तथा च सति रचनापि तस्यैव धर्मो न पुरुषस्य । तद्विषयाश्च लोकास्तत्कर्तृकाः, अतो न तत्परिणामः । तथा च भूरादयो लोकाः न प्रधानपरिणामः तद्रचित-

रश्मिः ।

कोपि भवत्विति चेन्न । स्फुरितदोषानुपेक्षौचित्यादेवकार इति । प्रधानमनुमीयत इति । अत्र प्रधानानुमानानि विषयः, कर्तव्यानि न कर्तव्यानीति विशयः । अन्यमतदर्शनं संदेहबीजम् । कर्तव्यानि क्रियाविकारोभयवत्त्वात्, इति पूर्वपक्षः । तत्र सिद्धान्तमाहुः तदनुमानमिति । बुद्धीति । इदं विशेषणत्रयं क्रियेत्यस्य । भूरादीति । लोकग्रहणे उपपत्तिरग्रिमसूत्रे वक्तव्या । केवलेति वात्यादि यथा न केवलं कारणं तथा, बाधवारणाय केवलेति । रचनायामचेतनकारणकत्वदर्शनेन पक्षे साध्याभावप्रसक्तेः । रचनात्वादिति बुद्धिपूर्वकक्रियात्वात् प्रतिनियतदेशकालव्यवस्थापकक्रियात्वाच्च । दृष्टान्तानुरोधेनोभयमुक्तम् । दृष्टान्तान्तरेण तृतीयं हेतुमाहुः भूरादीति । स्वरचितानुमाने सत्प्रतिपक्षत्वमाहुः प्रधानमिति । स्वत इति साध्यविशेषणं परतश्चेतनात्तु कर्तृ । सत्प्रतीति । सन्तः प्रतिपक्षाः साध्याभावसाधकहेतवो येषां मतत्रयोक्तानां स्वोत्प्रेक्षितस्य चानुमानानाम्, तत्त्वात् । तथा च पूर्वपक्षे सदनुमानानि सिद्धान्ते सत्प्रतिपक्षरूपाणि । अर्थान्तरेति प्रधानसाधनाय प्रवृत्तस्यादृष्टप्रधानापेक्षया दृष्टकुलालादिसिद्धेरर्थान्तरत्वम् । सत्त्वादीनां सुखादीनां च प्रधानरूपाणां दृष्टत्वेपि कारणत्वेन्यथासिद्धत्वम् । न त्विति । वात्यादौ कारणत्वदर्शनादिति भावः । परिणाम इति । समवायिनो जडस्यैव परिणामो दृष्ट इति तथेत्यर्थः । कारणत्वानपायात् समवायिकारणत्वानपायात् । न कश्चिदिति । 'प्रकृतिश्च'इत्यधिकरणोक्तस्वरूपत्वोक्तिविरोधरूपः । रचितत्वादीति रचितत्वं न प्रकृतेः, तस्याः परिणामनिषेधात् । रचितत्वं परिणाम इति । अतो प्रधानरचितत्वादित्यर्थः । प्रधानरचितत्वं वा । रचितत्वपरिणामयोर्भेदोऽग्रे वक्ष्यत इति । प्राधानिकीति 'क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य' इति सूत्रात् । तस्यैवेति पुरुषसंसृष्टप्रधानस्यैव । तत्परिणामः प्रकृतिपरिणामः । तद्रचितेति प्रधानरचितत्वादिति भाष्यार्थ उक्तः । अत्र तु प्रधानरचितत्वादित्युक्तम् । तद्रचितत्वपरिणामयोः स्वरूपस्य वक्ष्यमाणत्वात्पूर्वमेव पक्षान्तराद-

अतश्चेतनकर्तृका रचना नाचेतनेन प्रधानेन कर्तुं शक्या तस्मात् कारणत्वेन प्रधानं नानुमातव्यम् । अन्यथोपपत्त्या बाधितेनैवानुमानमिति चकारार्थः ॥ १ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

त्वात्, यद् यद् रचितं तन्न तस्य परिणामः, यथा घटादिः कुलालादेः । किंच । भूरादयो लोका यदि प्रकृतिपरिणामभूताः स्युः, सर्वेपि संश्लिष्टाः स्युः । लोके परिणतत्वसंश्लिष्टत्वयोर्नियमस्य दध्यादिषु दर्शनात् । तथा च भूरादयो लोका नैकस्य परिणामभूता इतरेतरसंश्लेषरहित-त्वात् यदेवं तदेवम्, यथा घटकुड्यमन्थानादि । किंच कार्यं द्विविधम्, आरब्धं परिणाम-भूतं च । तत्र निमित्तव्यापारजन्यं यत् तदारब्धम्, तदेव च रचितम्, यथा गृहादिकम् । यत् पुनरुपादानव्यापारप्राधान्येन वा, तन्मात्रव्यापारेण वा जन्यते तत् परिणामभूतम् । यथा हरिद्राचूर्णसंयोगजन्यं कुङ्कुमादि यथा च दध्यादि । रचितत्वपरिणामयोश्चेतरेतरविरुद्धत्वं लोके दृष्टम्, अतोऽत्र परिणामाङ्गीकारे रचितत्वहानिस्तदङ्गीकारे च परिणामहानिरिति तुन्दिलसुरतन्यायादेकस्मिन् कार्ये उभयरूपत्वाङ्गीकारं एकस्मिंश्च कारणे उपादानत्वनिमित्तत्वयो-रङ्गीकारो लोकविरुद्धः, प्रत्यनुमानबाधितत्वान्न्यायविरुद्धश्चेत्यर्थः । सिद्धं वदन्तः सौत्रानुमानपद-स्यार्थमाहुः अत इत्यादि । तथा चानुमीयत इत्यनुमानम्, भावे ल्युडित्यर्थः ।

रामानुजाचार्यास्तु—'कृत्यल्युटो बहुलम्' इति बाहुलकात् कर्मणि ल्युट् । यदनुमीयते तदनुमानमिति सौत्रानुमानपदस्यार्थमाहुः ।

चकारप्रयोजनमाहुः अन्यथेत्यादि । अन्यथोपपत्तिः प्रतिपक्षानुमानं तया कृत्वा

रश्मिः ।

रात् । कुलालादेरिति परिणामो न, रचितत्वादित्यर्थः । सर्वस्येत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म किंच भूरित्यादि । कुड्यं भित्तिः इतरेतरसंश्लेषरहितमिति मृदोऽश्मचूर्णयोः काष्ठस्य च परिणामभूतमिति ज्ञेयम् । परिणामविरुद्धरचनोपादानात्सूत्रे तत्प्रयोजनमाहुः किंचेति । क्रमेणोदाहरणे । यथा हरिद्रेत्यादि । चूर्णं चूनेति लोके उच्यते । कुङ्कुमादीति आदिपदेन रङ्गः । दध्यादीति अत्रादि-पदेन यथा चातुर्मास्ये छत्राकोत्पत्तिः शुष्ककाष्ठे । तुन्दिलेति तुन्दिलश्च तुन्दिला च तुन्दिलौ तयोः सुरतम् । उभयेति आरब्धत्वपरिणामत्वोभयेत्यर्थः । एकस्मिन्निति प्रधाने । प्रत्यनुमानानि दर्शितानि । अनुमानपदं करणव्युत्पत्त्या व्याप्तिज्ञानं ब्रूत इति प्रसिद्धिर्नैयायिकानामिति भावव्युत्प-त्तिमाहुः तथा चेति । अनु चेतनमनु मीयते कारणे मानं क्रियते स्वरूपीक्रियत इत्यनुमानं प्रकृतिः स्वरूपम् । प्रकृतिः तदनुकूलाकृतिरपि स्वरूपमिति । तदुक्तं भावे ल्युडिति पूर्वपक्षे राद्धान्तिका-र्थस्तु भावव्युत्पत्तिस्फोरणाय । नानुमानमित्यस्य नानुमातव्यमिति विवरणात्कर्मणि प्रत्ययो वक्तव्यः । 'माङ् माने शब्दे च'इत्यस्य सकर्मकत्वाच्च तथापि कर्मणि ल्युटोऽप्राप्त्या भाष्यमार्थिकार्थं स्पृशतीत्याशयेन भावे ल्युड् व्याकृतः । तदिति प्रधानम् । आहुरिति अस्वरसस्तु बाहुलकात् । अन्यथेति । वचस्य-न्यथोपपत्तिर्ब्रह्मकारणकत्वोपपत्तिः । उपपत्तिशब्दस्य तर्के शक्तेः । तथापि बाधितमित्यत्र करणत्वे-नोल्लेखाद्भाष्ये प्रतिपक्षानुमानमिति लक्षणया व्याख्या । न च भाष्ये बाधितमिति न । 'पक्षे साध्य-शून्यत्वं बाधः' तमितमित्यर्थो येन लक्षणाप्राप्तिरन्वयानुपपत्त्या अपि तु दुष्टमित्येवार्थं इति वाच्यम् । दोषोपि बाध एवेति व्याख्यानस्य सुस्थत्वात् । न च भाष्ये लक्षणानुचितेति शङ्क्यम् । न्यायमते लक्षणा, आचार्यमते तु भास्करहंसोक्तदिशानुमानान्तःपतितस्यानुमानत्वात् । अत्र स्वतन्त्रत्वेन सर्व-वादनिरासकथनेन 'असदिति चेन्न प्रतिषेधमात्रत्वात्' इत्यत्र छान्दोग्योपन्यासेन सदेव कारणमिति

प्रवृत्तेश्च ॥ २ ॥

भुवनानि विचार्य जनान् विचारयति । सर्वस्य तत्परिणामे प्रवृत्तिर्नोपपद्यते

भाष्यप्रकाशः ।

सांख्योक्तं पूर्वमनुमानं पक्षे साध्यशून्यमेव क्रियत इति बोधनं चकारेण क्रियते इत्यर्थः । एवं सत्प्रतिपक्षोऽर्थान्तरं बाधश्चेति दोषत्रयं दर्शितम् ॥ १ ॥

प्रवृत्तेश्च ॥ २ ॥ ननु पूर्वहेतुनैव निरस्ते सांख्यमते हेत्वन्तरस्य किं प्रयोजनमत आहुः **भुवनानीत्यादि** । रचना द्विविधा, भुवनरचना जनरचना च, तत्र जनरचना शुक्रशोणितपरिणामभूता, अतो रचनात्वहेतुकेऽनुमाने जनशरीररचनाया रचनाविषयत्वहेतुके च जनशरीरस्याचेतनत्वहेतुके च शुक्रशोणितयोर्दृष्टान्तीकरणे तेषां साधारणत्वापत्त्या न तन्मतदूषणं न वा पूर्वोक्तन्यायावतार इति तत्समर्थनार्थं हेत्वन्तरेण तान् विचारयतीत्यर्थः । तद् व्युत्पादयन्ति **सर्वस्येत्यादि** । प्रवृत्तिर्हि प्रयत्नस्तत्पूर्विका क्रिया वा । तथा च सर्वस्य प्रकृतिपरिणामत्वे

रश्मिः ।

व्यवस्थापितम् कार्यं सदसद्वेति किमपि नोक्तम् । तत्तर्कहतं सत्कार्यमसत्सदसद्वा भवेत् । न तु सदेवेति । तदत्र वादस्य तस्य पौराणत्वेनात्र निरासः । स च पौराणो वादः 'सत इदमुत्थितं सदिति चेन्नतु तर्कहतम्' इत्यत्र सुबोधिन्यामुक्तः । एवं **सत्प्रतिपक्ष** इति । न च प्रतिपक्षस्यानुमानस्य सत्प्रतिपक्षत्वेन तेन कथं पक्षे साध्यशून्यमेव क्रियत इति शङ्क्यम् । श्रुत्यनुकूलतर्कोत्थापनात् सत्त्वेनास्य सत्प्रतिपक्षत्वाभावात् ॥ १ ॥

प्रवृत्तेश्च ॥ २ ॥ **जनशरीरे**ति । षष्ठ्यन्तानीमानि पदानि दृष्टान्तीकरण इत्यनेनानुयन्ति । **तेषां** प्रतिपक्षानुमानानां साधारणत्वं साध्याभाववती जनशरीररचना सा साध्याभाववती 'योनेः शरीरम्' इति केवलाचेतनकर्तृकत्वात् । तत्र रचनात्वहेतोः सत्त्वात् । एवमचेतनकर्तृकत्ववति जनशरीरे रचनाविषयत्वसत्त्वात् । एवं परतः कर्तृत्ववतोः शुक्रशोणितयोरचेतनत्वहेतोः सत्त्वात् साध्याभाववद्वृत्तित्वेन हेतूनाम् । **तन्मतदूषणं** सत्प्रतिपक्षस्वरूपं तन्न । प्रतिपक्षाणां साधारणत्वेन तन्मतानुमानानां सत्प्रतिपक्षत्वाभावात् । **न वे**ति रचितत्वपरिणतत्वयोरेकत्र जनशरीरे दर्शनात्पूर्वोक्तहान्योरभावान्न तुन्दिलसुरतन्यायावतार इत्यर्थः । **तत्समर्थे**ति प्रतिपक्षाणां सद्धेतुत्वं समर्थयितुम् । **हेत्वन्तरेण** सौत्रेण । **तानि**ति रचितत्वादीन् हेतून् दृष्टान्तान्तरैर्विशेषणैश्च युक्तान् कर्तुं जननधर्मान्सशरीरान् जीवान् **विचारयतीत्यर्थः** । **व्युत्पादयन्ती**ति जनविचारेण दृष्टान्तेषु पूर्वं जनशरीररचनाजनशरीरशुक्रशोणितानामुक्तत्वेन हेतूनामविशेषितत्वेनाविचारितत्वस्फूर्तेः । 'तर्कोदर्कविभावनासु सततं व्याजेन तन्द्रालवः' इति तार्किकोक्तेरत आवश्यकत्वाज्जनविचारे लोकन्यायेन व्युत्पादयन्ति । दृष्टान्तविशेषणत्वार्थं **प्रयत्न** इति द्वितीयोर्थस्त**त्पूर्विके**ति । तथा च भूरादिलोकरचना न केवलाचेतनकारणिका रचनात्वात्, इत्यत्र प्रवृत्तेरिति हेतुस्तेन न साधारण्यम् । यद्वा रचनात्वादित्येव हेतुः सा च बुद्धिपूर्विकेति प्रतिनियतदेशकालव्यवस्थापिकेति सांख्यबोधनायोक्तं क्रियाविशेषणम् । तत्परित्यागेन व्यासोक्तविशेषणं प्रवृत्तिरुक्ता प्रयत्नपूर्विका क्रिया रचनेति । सोयमर्थः सौत्रचकारेण द्योतितः । तथा च प्रयत्नपूर्विका क्रिया, बुद्धिपूर्विका क्रियेति पूर्वसूत्रेणार्थो जातस्तत्र श्रीव्यासमतेन बुद्धिपूर्विकेतिविशेषणत्यागः, सौत्ररचनाशब्देन लक्षणे क्रियारूपविशेषणत्यागः । एवं च प्रयत्नपूर्विका क्रियेत्येवावशिष्टम् । तदुक्तं तत्पूर्विका क्रिया वेति । भाष्यं विवृण्वन्ति **तथा** चेति ।

भाष्यप्रकाशः ।

शरीरोत्पादनाय मातापित्रोः प्रवृत्तिर्नोपपद्यते । अयमर्थः । अचेतनस्य स्वत एव प्रवृत्तौ शुक्रशोणिते अपि चेतनप्रवृत्तिमन्तरेण स्वत एव जनशरीराणि जनयेताम्, न तु मातापित्रोः प्रवृत्तिमपेक्षेताम् । अपेक्षा त्वस्ति । बहिः पतितयोः संसृष्टयोरपि तयोः शरीरसंभवादर्शनात् । पोषणादिनैव तत्समग्रत्वदर्शनाच्च । अत एव गर्भस्रावादौ शरीरस्यासमग्रता दृश्यते । तेन चेतनाधिष्ठितयोरेव तयोः प्रवृत्तिर्न त्वनधिष्ठितयोः । अतो जनरचनादिदृष्टान्तै रचनात्वादीन् हेतून् साधारणीकृत्य पूर्वोक्तैरन्वयादिभिः प्रधानं न कारणत्वेनानुमातुं शक्यम् । अस्मदुक्तेषु हेतुषु रचनात्वे प्रवृत्तिपूर्वकत्वेन विशेषिते मातापितृप्रवृत्तिपूर्वकशुक्रशोणितपरिणामात्मकशरीर-रचनया दृष्टान्तिते, रचनाविषयत्वे च तथा विशेषिते, पुरुषशरीरेण च दृष्टान्तिते, अचेतनत्वे च प्रवृत्तिमत्त्वेन विशेषिते जीवच्छरीरेण च दृष्टान्तिते साधारण्यनिवृत्तौ दोषाभावादित्यर्थः । ननु केवलचेतनस्यापि प्रवृत्त्यदर्शनात् प्रवृत्तिरपि विशिष्टधर्म एव । तथा सति तत्र कस्य प्राधान्यमित्यपेक्षायां चेतनस्य निष्कलत्वनिष्क्रियत्वाभ्यां न प्राधान्यम्, अपि त्वचेतनस्यैवेति

रश्मिः ।

मातापित्रोरिति 'पिता मात्रा' इत्यस्य वैकल्पिकत्वान्नैकशेषः । **नोपपद्यत** इति । पूर्वसूत्रादनुपप-त्तिपदं नानुमानपदे चानुवर्तेते । एवं च प्रवृत्तेरनुपपत्तेर्नानुमानं प्रकृतेरिति सूत्रार्थः । चेतनकर्तृका प्रवृत्तिर्नोपपद्यते 'योनेः शरीरम्' इति सूत्रात् । दृष्टा च नापलपितुं शक्या । उक्तं व्युत्पादनं कुर्वन्ति **अयमर्थ** इति । **तयोरिति** शुक्रशोणितयोः । संबन्धे षष्ठी । संबन्धो जन्यजनकभावः । तदाहुः **शरीरसंभवेति** । **पोषणेति** मातापितृकृतपोषणादिना । आदिपदेन मासकालः । **अत एवेति** पोषणाद्यभावादेव । **अत** इति भूरादिलोकरचनापक्षके केवलाचेतनकारणप्रतियोगिका-भावसाध्यके रचनात्वहेतुकेऽनुमाने जनशरीररचनां दृष्टान्तीकृत्य साधारण्यमुक्तं तन्मन्दम्, दृष्टान्ते केवलाचेतनजन्यत्वाभावात् । मातापितृभ्यां पोषित एव शरीरादौ सामग्र्यदर्शनेन शुक्रशोणित-पितृयोनिजन्यत्वादिति । इति न साधारण्यम् । किंच । भूरादिलोकपक्षकेऽचेतनकर्तृकत्वप्रतियोगि-काभावसाध्यके चेतनस्पार्शनक्रियात्मकरचनाविषयत्वहेतुकेऽपि जनशरीरदृष्टान्तो न साधारण्या-पादकः । पितृभ्यां पोषितत्वाङ्गीकारेण जनशरीरे साध्यवदन्यत्वाभावेन चेतनस्पार्शनक्रियात्मकरचना-विषयत्वरूपहेत्वाश्रयत्वेपि साधारण्याभावात् । एवं प्रधानपक्षके स्वतः कर्तृत्वाभावसाध्यके अचेतनत्व-हेतुकेऽपि शुक्रशोणितयोर्दृष्टान्तत्वेऽपि न क्षतिः पित्रादिचेतनाधिष्ठितयोरेव शुक्रशोणितयोः सम-वायित्वदर्शनात् । शुक्रस्य साध्यवदनन्यत्वेप्यचेतनत्वेन हेत्वाश्रयत्वाच्च साधारण्यम् । इति हेतुत्रयी घतःशब्दार्थः । **जनरचनेति** भाष्यानुसारेणोक्तम् । प्रकाशानुसारेण तु जनशरीररचनादिदृष्टान्तैः । साधारण्यनिवृत्त्यनुवादपूर्वकं दोषान्तराभावमाहुः **अस्मदिति** । **प्रवृत्तीति** । प्रवृत्तिः प्रयत्नः तत्पूर्विका रचना क्रिया । बुद्धिपूर्विका क्रियेति सांख्यमतनिरूपणे नात्र । **दृष्टान्तित** इति अग्रे साधारण्य-निवृत्तावित्यनेनान्वेति । **तथेति** प्रवृत्तिपूर्वकचेतनस्पार्शनक्रियात्मकरचनाविषयत्वात्, इत्येवंप्रकारेण । **अचेतनत्व** इति प्रवृत्तिमदचेतनत्वादिति हेतुः । प्रवृत्तेरनन्वयं मत्वा प्रवृत्तेः प्रवृत्तिमति लक्षणा कृता । **दोषेति** सिद्धान्ते हेत्वाभासरूपदोषाभावात् । सांख्याः शङ्कन्ते हेतुघटकप्रवृत्तिविशेषणदानेप्यन्वया-दिहेतुत्रयस्य स्वमतसिद्धिम् । **ननु केवलेति** । सांख्यमतत्वेन चन्द्रादिप्रवृत्तिदर्शनेप्यक्षतिः । **प्रवृत्त्य-दर्शनादिति** तदभिमुखेषु तयोक्तेः । **विशिष्टधर्मो** विशिष्टस्य धर्मः । **तत्रेति** चेतनाचेतनयोः ।

प्रधानस्य या प्रथमप्रवृत्तिः । यद्यपि प्रधानकारणवादे फलपर्यन्तमङ्गीक्रियमाणे

भाष्यप्रकाशः ।

प्रवृत्तेरपि नैमित्तिकाचेतनधर्मत्वान्नान्वयादिषु प्रतिपक्षादिदोषः, किंतु रचनात्वादिष्वेव दोष इत्यत आहुः प्रधानस्येत्यादि । निमित्तसंसर्ग एव नैमित्तिकधर्मसंभवान्निमित्तभूतचेतनसंसर्गस्य सार्वदिकत्वे सृष्टिस्थितिप्रलयादिकालविभागानुपपत्तेः कादाचित्कत्वे च हेतोर्वक्तुमशक्यत्वात् प्रधानस्य या प्राथमिकी प्रवृत्तिः सृष्ट्यर्था सैव नोपपद्यते । तथा च तव मते चेतनाधिष्ठानस्यापि वक्तुमशक्यत्वेन हेतोः सविशेषणस्याप्युपादाने त्वन्मतासिद्धिरित्यर्थः । ननु तस्याः स्वभाव एव तादृशोऽतो न किंचिद् दूषणमित्याकाङ्क्षायां तदनूद्य दूषयन्ति यद्यपीत्यादि । धेनुवद्वत्साय पुरुषार्थं स्वभावत एव तस्याः प्रवृत्तिः । नर्तकीवत् सर्वप्रदर्श-

रश्मिः ।

नैमित्तिकेति निमित्तं चेतनं तेन संसृज्यत इति शैषिकः ठक् नैमित्तिकम्, नैमित्तिकं च तदचेतनं नैमित्तिकाचेतनं प्रधानं तस्य धर्मत्वात् । **प्रतिपक्षादी**ति **प्रतिपक्षो**ऽत्र सत्प्रतिपक्षत्वम् । **आदि**शब्देनानुमितिप्रतिबन्धः । **किंत्वि**ति । **दोष**स्तु विशेषणदानेपि जडप्रवृत्तिसंपादनेनाविशेषिततुल्यत्वाद्रचनात्वादिहेतूनां पूर्वतुल्यत्वेन साधारण्यम् । तथाहि । साध्यवदन्यस्मिञ्छत्राके प्रवृत्तिपूर्वकरचनात्वसत्त्वात्पुनः साधारण्यम् । तथा प्रवृत्तिपूर्वकचेतनस्पार्शनक्रियात्मकरचनाविषयत्वस्यापि छत्राकवृत्त्या साधारण्यम् । छत्राकस्याचेतनकर्तृकत्ववत्त्वेन नाचेतनकर्तृका इति साध्यवदन्यत्वात् । एवं प्रवृत्तिमदचेतनत्वस्य स्वतः कर्तृत्वाभाववज्जीवच्छरीरान्यस्मिंश्चलज्जलतरङ्गादौ सत्त्वात्साधारण्यं प्रवृत्तेर्नैमित्तिकाचेतनधर्मत्वात् । अपि च । अर्थान्तरपादकैः सविशेषणै रचनात्वादिहेतुभिर्नान्वयादिषु सत्प्रतिपक्षता संपाद्यते । प्रधानेन चित्संसर्गेण प्रवृत्त्या कर्तृत्वसंभवादर्थान्तरं दोषः । पूर्वमर्थान्तरं निरस्यन्ति **निमित्ते**ति । **सृष्टी**त्यादि । **कालविभागानुपपत्ति**स्तु कालो ह्युपाधिभेद्यः । उपाधिभूतप्रवृत्तिस्त्वेकविधा । यदि चाधेयादिसृष्ट्यादिभेदोऽभ्युपेयते तदा तु भविष्यत्त्वादाधेयानां भेदकता न संभवतीति विभागानुपपत्तेः । **कादाचित्कत्व** इति तादृशसंसर्गस्य । **हेतो**रिति भगवदिच्छारूपहेतोरप्यसूत्रणे वक्तुमशक्यत्वात् । **प्राथमिकी**ति साम्यावस्थातः प्रच्युतिरूपा, सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थातः प्रच्युतिरूपा, सत्त्वरजस्तमसामङ्गाङ्गिभावापत्तिरूपा विशिष्टकार्याभिमुखप्रवृत्तिरित्यर्थः । **नोपपद्यत** इति । जायमाना च प्रवृत्तिः स्थितिप्रलयौ प्रतिबध्नीयादिति नोपपद्यते । ननु जायतां प्राथमिकी प्रवृत्तिर्हेतोर्विद्यमानत्वात् । प्रवृत्ती तु स्थितिप्रलययोर्दर्शनादुपाधिपरिकल्पनया भविष्यत इति चेन्न । चितः कारणतायां बाधकाभावात् । **तथा चे**ति प्रवृत्त्यविशिष्टत्वे प्रकारे सति । **सविशेषणस्ये**ति प्रवृत्तिरूपविशेषणसहितस्य । त्वयाप्युपादाने त्वन्मतस्य प्रथमप्रवृत्तिरूपस्यासिद्धिरित्यर्थः । रचनादिष्वर्थान्तरापादकत्वेपि प्रधाने तदसंभवात् **त्वन्मतासिद्धिः** । किंच रचनादिषु दोषासंपादकत्वान्निर्दोषैः प्रवृत्तिघटितैस्तैरन्वयादयः प्रतिपक्षीक्रियन्त इति त्वन्मतासिद्धिः । **तस्या** इति प्रकृतेः । **तादृश** इति स्वयं विभक्तप्रवृत्तिरूपः । **न किंचि**दिति प्रवृत्त्यनुपपत्तिरूपम् । तथा च प्रवृत्तिपूर्वकरचनात्वादिहेतुकेष्वर्थान्तरापत्तिरिति भावः । **धेनुवदि**ति 'धेनुवद्वत्साय' इति द्वितीयाध्यायसूत्रे षष्ठ्यन्ताद्वतिरित्याहुः **तस्याः प्रवृत्ति**रिति । **पुरुषार्थ**मिति पुरुषादिरचनाय निर्लेपपुरुषार्थं वा । **नर्तकीव**दिति 'नर्तकीवत्प्रवृत्तस्यापि निवृत्तिश्चारितार्थ्यात्' इति तृतीयाध्यायसूत्रादाहुः **नर्तकी**ति । प्रदर्शितकार्येण स्वस्याश्चारितार्थ्यादि-

न किंचिद् दूषणम् । कृतिमात्रस्य प्रधानविषयत्वात् । तथापि वादिनं प्रति लोकन्यायेन वक्तव्यम् ।

तत्र लोके चेतनाचेतनव्यवहारोस्ति । चेतनाश्चतुर्विधा जीवाः सशरीरा अलौकिकाश्च । अन्ये अचेतनाः । तन्न्यायेन विचारोत्रेति न किंचिद् विचारणीयम् ॥ २ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

नोत्तरं स्वत एव कार्यानिवृत्तिरित्येवं **कृतिमात्रस्य प्रधानविषयत्वम**ङ्गीकृत्य फलपर्यन्तं प्रधानकारणवादेऽङ्गीक्रियमाणे स्वभाववादाश्रयणान्न किंचिद् दूषणं रचनाप्रवृत्त्योः कालनियमस्य च स्वभावादेव संभवात् । **तथापी**दं शास्त्रं तर्कमाश्रित्य प्रवृत्तं न तु श्रुत्युपष्टब्धम् । तदीयव्याख्यानस्य श्रुत्यन्तरविरोधेन लक्षणाग्रासेन च व्याख्यानाभासत्वात्, अतस्तर्कालम्बने **वादिनं प्र**त्यपि **लोकन्यायेन वक्तव्यम्। तत्र लोके चेतनाचेतनव्यवहारोऽस्ति। चेतना** जरायुजाण्डजोद्भिज्जस्वेदजभेदेन चतुर्विधाः । **सशरीरा जीवाः । अलौकिका** मुक्ता अशरीराश्चेतनास्तेभ्योऽन्ये घटादयो रथादयश्च ते **अचेतना** इति । **तन्न्यायेना**त्र सूत्रेषु विचारस्तथा सति

रश्मिः ।

त्यर्थः । न तु कृत्स्नप्रसक्तिः ज्ञानकाशात्वात् । **सर्वेति** नृत्यादिकन्दुकलीलान्तं सर्वं दृष्टान्ते, सर्वं कार्यं दार्ष्टान्तिके । **निवृत्तिरि**ति । तथा चैतदुत्तरं स्थितिः पश्चात्स्वभावादेव लयः स च गुणत्रयसाम्यावस्था इत्यर्थः । तथा च षाष्ठं सूत्रं 'साम्यवैषम्याभ्यां कार्यद्वयम्' इति । कार्यद्वयं च सर्जनप्रलयरूपम् । **कृतिमात्रस्येति** । यद्यपि स्वभाववादेन कृतिमात्रस्य प्रधानविषयत्वादिति हेतुपरतया भाष्यं सुखेन संभवति तथाप्याशयविशेषबोधनाय ल्यब्लोपे पञ्चमीमाश्रित्य व्याकुर्वन्ति **प्रधानेति** । तथा चाभिप्रायः सांख्यमतानुवादे न तु स्वीयकथन इति भावः । तेन तन्मते कृतिमात्रस्येत्यादिभाष्ये हेतुरिति तन्मत इत्यध्याहारो नेत्यपि भावः । ननु न किंचिद्दूषणं कुतः दृष्टान्तस्य चेतनत्वेन जडया रचनाप्रवृत्तिकालनियमनासंभवेन च दूषणसत्त्वादिति चेत्तत्राहुः **रचनाप्रवृत्त्योरि**त्यादि । **तथापी**त्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तथापी**ति । **इद**मिति सांख्यम् । **तर्क**मिति । 'अस्त्यात्मा नास्तित्वसाधनाभावात्' स्पष्टमिति । 'देहादिव्यतिरिक्तोसौ वैचित्र्यात्' इत्यत्रानुमानबोधनात्तथा । षष्ठाध्यायोपक्रम इत्यर्थनिर्णायकत्वम् । आत्मा अस्ति नास्तित्वसाधनाभावात् घटादिवत्, आत्मा देहादिव्यतिरिक्तः, वैचित्र्यात्, प्राणवत् । अत्र तर्कः कार्यकारणताग्राहकः व्याप्तिशोधकः । ननु असंज्ञादिश्रुतिविरोधश्च इति 'श्रुत्या प्रसिद्धस्य नापलापस्तत्प्रत्यक्षबाधात्' 'नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वात्' इत्यादिसूत्रेषु श्रुत्युपष्टम्भद्योतनात्कुतो 'न तु श्रुत्यनुपष्टब्धम्'इति चेत्तत्राहुः **तदीयव्याख्यानस्येति** सांख्यव्याख्यानस्य । **व्याख्याने**ति । तच्चोक्तमानुमानिकाधिकरणे चतुर्थपादे। **लोकन्यायेनेति** यस्यालम्बनं तन्न्यायेन वक्तव्यम् । अन्यथा प्रतिज्ञात्यागादिरूपनिग्रहस्थानापत्तेः । लोकन्यायप्रतिपादकं **तत्र लोके** इत्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति स्म, **तत्र लोक** इति । **जरायुजेत्यादि** । अश्वादयः कपोतादयः वृक्षादयो मत्कुणादयश्चेति चतुर्धा, जरायुरतिसूक्ष्मवेष्टनचर्म । 'तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्याण्डजं जीवजमुद्भिज्जम्' इति श्रुतौ तु त्रैविध्यं यत्तन्मत्कुणानामण्डजत्वात् । **मुक्ताः** अक्षरात्मकाः । **तन्न्यायेने**ति भाष्यं विवृण्वन्ति **तन्न्यायेनेति** । **विचार इति**

१. निर्गुणादि इति पाठः । २. श्रुत्या सिद्धस्य'इति प्रवचनसूत्रपाठः ।

भाष्यप्रकाशः ।

प्रकृतेः पञ्चविधेषु चेतनेष्वप्रवेशादचेतनत्वमिति । तत्र धेनुनर्तकीदृष्टान्ताभ्यां प्रवृत्तिनिवृत्ती प्रतिवादिनं प्रति न वक्तुं शक्ये । लोके तयोश्चेतनत्वेनैव व्यवहारात् । अभ्युपगमस्य स्वमात्रसंतोषकत्वेनानुत्तरत्वात् । अत एतावन्मात्रेणैव तन्निग्रहे सिद्धे न किंचिद्विचारणीयम् । प्रवृत्तिः कस्य धर्मः यत्र दृष्टा तस्य वा, यत्संयुक्ते दृष्टा तस्य वेति शङ्कायां यस्मिन् दृष्टा तस्यैव सेति युक्तम् । प्रवृत्तितदधिष्ठानयोः प्रत्यक्षत्वात् केवले चेतने क्वचिदपि प्रवृत्त्यदर्शनात् । अत एवान्वयव्यतिरेकसिद्धत्वाच्चैतन्यमपि देहधर्म एवेति लोकायतिकदर्शनम् । तस्मादचेतनस्यैव धर्मः प्रवृत्तिरिति पूर्वपक्षमुद्भाव्य, न ब्रूमो यस्मिन्नचेतने प्रवृत्तिर्दृश्यते न तस्य सेति किंतु सा चेतनाद् भवतीति ब्रूमः । तद्भावे भावात् तदभावे चाभावात् । यथा काष्ठादिनिष्ठापि दाहप्रकाशलक्षणा क्रिया केवलेऽनलेऽनुपलभ्यमानापि ज्वलनान्वयव्यतिरेकानुविधानात् तन्निमित्तैवेत्यादिकमेकदेशिभिर्विचारितं तल्लोकन्याये देहस्यैव चेतनत्वेन समाधानान्न विचारणीयमित्यर्थः ॥ २ ॥

रश्मिः ।

चेतनाचेतनविचारः । **तत्रेति** प्रधाने । **तयोरिति** धेनुनर्तक्योः । दृष्टान्ताभावेऽपि प्रधानस्यायं स्वभावः स्वयं प्रवर्तेत इति वादिनं प्रत्याहुः **अभीति** । तथा च तृतीये सूत्रं 'स्वभावचेष्टितमनभिसंधानाद्भृत्यवत्' इति । यथा भृत्यस्य नित्यकर्मक्रमे तदभिसंधानाभावादपि नित्याभ्यासं प्राप्य स्वभावचेष्टितं तथा प्रधानस्य जडत्वेनानभिसंधानाद्धेतोर्न चेतनचेष्टितं किंतु स्वभावचेष्टितमित्यर्थः । **एतावदिति** समन्वयादीनां सत्प्रतिपक्षीकरणेन दृष्टान्ताभावेन च । **तन्निग्रह** इति प्रतिवादिनिग्रहे । प्रतिज्ञाहानिर्निग्रहः । तदेवाहुः **प्रवृत्तिरिति** । **यत्रेति** शरीरेषु । **यत्संयुक्ते** चेतनसंयुक्ते देहे । **प्रवृत्तीति** प्रवृत्तिशरीरयोः । **केवल** इति सूर्याचन्द्रमसोरपि प्रवृत्ती रथाभ्यां तयोरप्यश्वादिभिरिति । **अत एवेति** प्रत्यक्षत्वादेव देहसत्त्वे चैतन्योपलब्धिर्देहाभावे तदनुपपत्तिरित्यन्वयव्यतिरेकौ । **न तस्येति** तस्याचेतनस्य सा प्रवृत्तिर्नेति न ब्रूम इति योजना । एतदग्रे भवतु तस्यैव सेति ग्रन्थः स प्रयोजनविधुरो भवति । सा तु चेतनाद्भवतीति ग्रन्थस्थले **किंतु सा चेतनाद्भवतीत्येतावतैव** चारितार्थ्ये लाघवादित्ययमभिप्रायः । **तद्भाव** इति चेतनसत्त्वे । **काष्ठादीति** आदिनाश्मा । **केवल** इति वह्निष्ठशून्येऽनले वह्नौ । **तन्निमित्तैव** ज्वलननिमित्तैव । **इत्यादिकमिति** आदिशब्देन तद्वल्लोकायतिकानामपि चेतन एव देहोऽचेतनानां रथादीनां प्रवर्तको दृष्ट इत्यविप्रतिषिद्धं चेतनस्य प्रवर्तकत्वम् । ननु तव देहादिसंयुक्तस्यात्मनो ज्ञानस्वरूपमात्राव्यतिरेकेण प्रवृत्त्यनुपपत्तेरनुपपन्नं प्रवर्तकत्वमिति चेन्न । अयस्कान्तवद्रूपादिवच्च प्रवृत्तिरहितस्यापि प्रवर्तकत्वोपपत्तेः । यथाऽयस्कान्तो मणिः स्वयं प्रवृत्तिरहितोप्ययःप्रवर्तको भवति । यथा वा रूपादयो विषयाः स्वयं प्रवृत्तिरहिता अपि चक्षुरादिप्रवर्तका भवन्ति । एवं प्रवृत्तिरहितोऽपीश्वरः सर्वशक्तिः सन् सर्वं प्रवर्तयेदित्युपपन्नम् । एकत्वात्प्रवृत्त्यभावात्प्रवर्तकत्वानुपपत्तिरिति चेन्न । अविद्याप्रत्युपस्थापितनामरूपमायावेशवशेनासकृत्प्रयुक्तत्वात्तस्मात्संभवति प्रवृत्तिः । सर्वज्ञकारणत्वे न त्वचेतनकारणत्व इति भाष्यस्य संग्रहः । **एकदेशिभिः** शंकराचार्यैः । प्रवृत्तेश्चेतनधर्मत्वेऽविचारणीयत्वं दोषमाहुरित्याहुः **तल्लोकेति** तत्प्रवृत्तेश्चेतनधर्मत्वम् । **लोकन्याय** इति । प्रवृत्तिः कस्य धर्म इत्याद्युक्ते देहस्यैवेति । तस्य चात्मरूपत्वात्तस्य चाविद्यावच्छिन्नत्वाद्देहात्मभावदृढप्रतीतेस्तदतिरिक्तस्य ब्रह्मणोभावान्न वेदमात्रादसंभावनाविपरीतभावनानिवर्तकं ज्ञानमुत्पद्यत इति भाष्यादेवकारः, लोकन्यायोप्ययम् । **समाधानादिति** अचेतनकारणत्वे प्रवृत्तिर्न संभवति सर्वज्ञकार-

पयोम्बुवच्चेत्तत्रापि ॥ ३ ॥

यथा पयो विचित्रफेनरचनां करोति, यथा वा नद्यादिजलं स्वत एव स्पन्दत

भाष्यप्रकाशः ।

पयोम्बुवच्चेत्तत्रापि ॥ ३ ॥ ननु मास्तु धेनुनर्तकीदृष्टान्तेन प्रवृत्तेरचेतनधर्मत्वं तथापि क्षीरजलदृष्टान्तेनाचेतनधर्मत्वं तस्याः साधयिष्याम इत्याशङ्कायां समाधत्ते पय इत्यादि । तद् व्याकुर्वन्ति यथा पय इत्यादि । यथा दुह्यमानेऽधिश्रीयमाणे च पयसि दृश्यमानां विचित्रां फेनरचनां केवलं पय एव करोति । यथा वा नद्यादिजलं स्वत एव प्रस्रवति, न तत्र चेतनसंसर्गलेशोऽपि, तथा प्रधानमपि प्रवर्तते । विचित्रलोकरचना केवलाचेतनकर्तृका, रचनात्वात्, दुह्यमानपयःफेनरचनावत् । बन्धाद्यर्था प्रधानप्रवृत्तिः केवलाचेतनधर्मः, प्रवृत्तित्वात्, नद्यादिस्पन्दनप्रवृत्तिवदित्यनुमास्यामहे इत्युच्यते

रश्मिः ।

णत्वे संभवतीत्यस्यार्थरूपसमाधानात् । **न विचारणीय**मिति 'यत्संयुक्ते' इत्यादिकोक्त्युपन्यासेन न विचारणीयम् । **इत्यर्थ** इति यदि च सांख्यदोषपोषकोऽयं लोकन्याय इति विभाव्येत तदा तु इत्यादिकशब्दार्थग्रन्थेऽविद्येति न वक्तव्यम् । कल्पितप्रवर्त्यप्रवर्तकत्वापत्तेः । उत्तरक्षणे ब्रह्मविदां च बाधादर्शनात् । अविद्यैव मायेति चानुपपन्नम् । एकस्या जीवशक्तित्वात्, मायायाश्च सगुणब्रह्मशक्तित्वात् । अत्र **शंकराचार्याः** प्रवृत्तिं साम्यावस्थाप्रच्युतिमाहुः । **रामानुजास्तु** प्रवृत्तेरित्यन्तमेकसूत्रमङ्गीकृत्य त्रयाणामपि सर्वगतत्वेन न्यूनाधिकभावाभावाद्वैषम्यासिद्धिमाहुः । तेन पूर्वत्र हेतुरुक्तः । **माध्वास्तु** प्रवृत्तिं चेतनधर्ममाहुः । तेन भाष्योक्तार्थेऽन्यत्र सिद्धिरुक्ता । **भास्कराचार्यास्तु** चेतनस्यापि केवलस्य प्रवृत्तिर्न दृष्टा कथं ब्रह्मणः प्रवृत्तिशक्तिरिति चेन्न सर्वशक्तित्वादित्याहुः । तेन भाष्यमते समर्थनमुक्तम् । विरुद्धसर्वधर्माश्रयत्वं सिद्धान्तेप्यविरुद्धमिति रमणीयम् ॥ २ ॥

पयोम्बुवच्चेत्तत्रापि ॥ ३ ॥ **अधीति** । श्रीञ् पाके श्र्यादिः । अधिश्रयमाण इति पाठे तु श्रिञ् सेवायाम् लटः शानच् उभयपदित्वात् शपि गुणे च कृते 'एचोऽयवायावः' इति कर्तरि भवति । **प्रस्रवती**ति स्पन्दत इत्यर्थः । प्रसवतीति पाठः । 'स्रु प्रस्रवणे' इत्यस्य तु स्रौतीत्येवादादिगणे पठितत्वात् । **चेतनसंसर्गे**ति । दोग्धुरधिश्रेतुश्च तु यथायथं पयोनिष्ठसंयोगजनकव्यापाराश्रयत्वात्पात्रनिष्ठसंयोगजनकव्यापाराश्रयत्वाच्च दोहाधिश्रयणकर्तृत्वमिति भावः । तथेति 'अचेतनत्वेपि क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य' 'कर्मवद्दृष्टेर्वा कालादेः' इति सूत्राभ्यां तथा । कालादेर्हेतुतो वृष्टेर्वृष्टिजलस्य नद्यादेः कर्मप्रवृत्तिस्तद्वदिति सूत्रार्थः । इदानीं रचनात्वहेतुर्विरुद्ध इत्याहुः **विचित्रे**ति । रचनाया लोके प्रवृत्तिपूर्वकत्वदर्शनात्सविशेषणोपादानेपि न व्याप्यत्वासिद्धिः प्रधानरूपार्थो तदा नापादिकेति वक्तुं प्रवृत्तेरचेतनधर्मतामनुमिनोति **बन्धादी**ति गुणैर्बन्ध इति तथा । इदं च विशेषणं प्रवृत्तिप्रयोजनाभिधानपरम्, प्रधानप्रवृत्तित्वस्य लाघवेन पक्षतावच्छेकत्वात् । प्रवृत्तित्वं तु न पक्षतावच्छेदकम् । शरीरप्रवृत्तिदृष्टान्तेनास्यैव हेतोः साध्याभावसाधकत्वेन विरुद्धत्वप्रसङ्गात् । विमतेतरपक्षस्योन्मत्तस्वीकृतत्ववदस्यापि पक्षस्य विमतत्वार्थं च विशेषणम् । तथा च बन्धाद्यर्था सांख्ये विमता प्रधानप्रवृत्तिरित्यर्थः । न तत्रापीत्यादि भाष्यं

इति चेत् । न । तत्रापि दोहनाधिश्रयणे, मेघानां चेतनानामेव सत्त्वात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

नेम । कुतः **तत्रापि** तस्मिन् दृष्टान्तद्वयेऽपि **दोहनाधिश्रयणयो**श्चेतनकर्तृकयोरेव प्रयोजकतया सत्त्वात्, नदीप्रस्रवणेऽपि **चेतनानां मेघानां** प्रयोजकानां सत्त्वात् । तथा च दृष्टान्तद्वयेऽपि चेतनप्रयुक्तत्वस्य विद्यमानत्वेन हेतोः सपक्षराहित्येन व्याप्तिग्रहाभावान्नानुमानमित्यर्थः । ननु यथा क्षीरमचेतनं स्वत एव वत्सविवृद्धये प्रवर्तते । यथा वा नद्यादिजलं स्वभावत एव लोकोपकाराय स्यन्दत एवं प्रधानमपि स्वभावत एव पुरुषार्थसिद्धये प्रवर्तत इत्याशङ्कायामुभयवादिप्रसिद्धे

रश्मिः ।

विवृण्वन्ति स्म नेति । **तत्रापी**ति सौत्रौ व्याख्येयौ इमौ शब्दौ । अत्र **तत्रापि दोहनाधिश्रयणयो**रपि । **दोहनाधिश्रयण** इत्यत्र सुपांशे सर्वादेशः, अतो गुणे । **चेतनानामि**ति । 'इत्थं मघवताज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबन्धनाः' इति वाक्यात् । अत एव गुर्जरदेशे तत्तत्कालावच्छेदेनैव समभूमौ प्रवृत्तिनिवृत्ती अप्सु दृश्येते । एवेति अस्तु दोहने पयसो विचित्रफेनरचनाकर्तृत्वं यत्र स्वयं प्रस्रवणं तत्र फेनरचना चेतनदोग्धारमन्तरेणाऽपि भवतीति चेतनकर्तृकदोहनं फेनरचनां प्रत्यन्यथासिद्धं दोहनाधिश्रयणे तु प्रसिद्धमन्यथासिद्धत्वमित्येवकारः । तेन दोहनाधिश्रयण इति समाहारद्वन्द्वोऽपि । न चाधिश्रयण इत्येवाऽस्तु दोहनेत्यधिकमिति शक्यम् । अनेकस्थलप्रदर्शनार्थत्वात् । समाहारस्तु समाहारेण प्रदर्शनार्थः । ननु मेघानां जलरूपत्वेन पयसो द्रव्यान्तरत्वेन तत्रान्तर्यामिणः सत्त्वं न तु मेघानामिति चेन्न । सांसिद्धिकद्रवत्वसत्त्वेन किं पुनर्जललक्षणसत्त्वेन द्रव्यान्तरत्वाभावात् । जलस्य लक्षणं त्वभास्वरशुक्लेतररूपासमानाधिकरणरूपवद्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वम्, तदत्रापि । किंच **प्रस्थानरत्नाकरे** सामान्यलक्षणमुक्तं जलस्य 'क्लेदनपिण्डनतृप्तिप्रीणनाप्यायनप्रेरणतापापनोदनभूयस्त्वाख्याष्टकार्यकत्वं सामान्यलक्षणमिति । **तदन्यत्रे**ति घृततैलादौ यत्क्लेदकत्वं संग्राहकत्वं च दृश्यते सोऽपि जलधर्म एव । वह्न्यादिसंसर्गेण परमभिव्यज्यते । इत्यत्रापि **प्रस्थानरत्नाकरे**, आदिपदेन पयः । एवं च तत्रापि यः क्लेदकत्वादिर्दृश्यते सोऽपि जलधर्म एवेति । अम्बुदृष्टान्तविषये तु नोक्तं तस्य प्रवृत्तेः केवलाचेतनधर्मत्वसाधकत्वेन विचित्ररचनापक्षकेनुमाने केवलाचेतनकर्तृकत्वसाधकत्वात् । इत्येवं भाष्यव्याख्यानं यद्यपि तथापि **वादिनं प्रति लोकन्यायेन वक्तव्य**मिति भाष्यादाहुः **तत्रापि दृष्टान्तद्वयेपी**त्यादि **नदीप्रस्रवणेपी**त्यादि च । अयं शेषः पूरितः । तथैव सिद्धमाहुः **तथा चे**ति । **प्रयुक्तत्वस्ये**ति चेतनेन प्रकर्षेण युक्तत्वस्य । **हेतो**रिति रचनात्वस्य, **व्याप्ती**त्यनेनान्वेति । हेतोः सम्बन्धिनी या व्याप्तिराधाराधेयभावसंसर्गः तस्याः ग्रहस्तस्याभावादित्येकदेशान्वयः । व्याप्तिग्रहाभावे हेतुः **सपक्षराहित्येने**ति । निश्चितसाध्यवान्सपक्षः । पक्षभिन्नत्वे सति निश्चितसाध्यवत्त्वं दृष्टान्तत्वम् । निश्चितसाध्यवदभावेन दुह्यमानपयःफेनरचनायामपि केवलाचेतनकर्तृकत्वरूपसाध्याभावात् । तथास्मदीयरचनात्वहेतुर्न विरुद्ध इति भावः । **नानुमान**मिति व्याप्तिज्ञानं परामर्शो वा । **इत्यर्थ** इति । एवं प्रवृत्तित्वलिङ्गमप्यसाधारणम् । साध्याभाववतीषु नद्यादिप्रवृत्तिषु प्रवृत्तित्वस्य साध्यासामानाधिकरण्यात् । **प्रवर्तते** इति वत्सपीतं प्रवर्तते । **लोकोपकाराये**ति तदुक्तम्, यमुनोत्पत्तौ **पद्मपुराणे** 'रसो यः परमाधारः सच्चिदानन्दलक्षणः । ब्रह्मेत्युपनिषद्गीतः स एव यमुना स्वयम् । पावनायास्य जगतः सरिद्भूत्वा ससार ह' इति । **प्रवर्तेत** इति जगज्जननप्रवृत्तिं कुरुते । **उभये**ति लोकरीत्या प्रतिवादी

व्याख्यानान्तरे त्वम्बाम्बुवदित्युच्येत । द्वितीय(स्य) समाधानं नोभयवादिसंमतम् ॥ ३ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

रथादावचेतने केवलस्य प्रवृत्त्यदर्शनाच्छास्त्रे च, 'योऽप्सु तिष्ठन् योऽपोन्तरो यमयति', 'एतस्यैवाक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्यो नद्यः स्यन्दन्ते' इति चेतनकर्तृकत्वश्रावणात् साध्यपक्षनिक्षिप्त एवायमुपन्यास इत्येकदेशिकृतव्याख्यानेऽपि प्रकृतार्थसिद्धेस्तत् कुतोऽनादृत्यान्यथा व्याख्यायत इत्यत आहुः व्याख्यानान्तर इत्यादि । पूर्वत्र रचनाप्रवृत्त्योरनुपपत्त्या पूर्वपक्षिणोऽसंगतवादित्वमुक्तमिति तेन तदेव दृष्टान्तेन निवारणीयम् । अत एव दृष्टान्तद्वयमत्र सूत्र उक्तम् । यदि लोकोपकाराय प्रवृत्तिमात्रमेव दूष्यत्वेनाभिप्रेतं स्यात् तदा प्रवचनसूत्रेषु 'अचेतनत्वेऽपि क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य' इति कथनात् तन्मात्रमेवास्मिन् सूत्रे क्षीरपदेनानूदितं स्यात् । यदि च तदभिप्रेता पुरुषोपकारकता दूष्यत्वेनात्राभिप्रेता स्यादम्बाम्बुनोस्तथात्वस्य लोकप्रसिद्धत्वादम्बाम्बुवदित्युच्येत । अतो भिन्नैवेयं युक्तिरिति तथा व्याख्यानमयुक्तम् ।

रश्मिः ।

वादी **चेत्युभयवादिप्रसिद्धे** । **केवलस्येति** सारथ्याद्यनधिष्ठितस्य । **योप्स्वित्यत्र** यः अपः अन्तर इति पदच्छेदः । **साध्यपक्षनिक्षिप्त** इति साध्यं चेतनाधीनत्वं पक्षः प्रवृत्तिरूपस्तौ निक्षिप्तौ यस्मिन्दृष्टान्ते तस्योपन्यासः पयोम्बुवच्चेत्येवम् । **एकदेशीति** शंकरभास्कररामानुजमाध्वकृतेत्यर्थः । प्रवृत्तिश्चेतनाधीना प्रवृत्तित्वात् रथादिप्रवृत्तिवत् । **प्रकृतार्थेति** पयोम्बुनोश्चेतनत्वसिद्धेः । **पूर्वत्रेति** सूत्रद्वये । **पूर्वपक्षिणः** सांख्यस्य । **तेनेति** पूर्वपक्षिणा । **तत्** असंगतवादित्वम् । **अत एवेति** सूत्रद्वयीयार्थदृष्टान्तार्थत्वादेव सूत्रस्य । चेतनाधीनत्वं न साधारणमन्तर्यामिब्राह्मणोक्तं येन दृष्टान्तौ साध्यपक्षनिक्षिप्तौ स्यातां किंतु मेघानामित्यादिभाष्योक्तमिति भिन्नैवेयं युक्तिर्यया सूत्रद्वयोक्तहेत्वनुवादार्थं दृष्टान्तद्वयं न तु प्रवृत्तिमात्रहेत्वनुवादार्थमित्याशयेनाहुः **यदि लोकेति** । 'प्रधानसृष्टिः परार्थं स्वतोप्यभोक्तृत्वादुष्ट्रकुङ्कुमवहनवत्' इति प्रवचनसूत्राल्लोकोपकारो मुख्य इति पुरुषोपकारात्पूर्वमुक्तः । **प्रवृत्तीति** । **मात्रमिति** पूर्वसूत्रीयरचनात्वहेतुव्यवच्छेदाय । एवेति तदा तु कृत्स्नप्रवृत्तिव्यवच्छेदः । 'मात्रं कार्त्स्न्येऽवधारणे' इति कोशात् । कृत्स्नत्वं प्रवृत्तौ स्वभावसाधारणासाधारणचेतनसंसर्गित्वम् । **अभिप्रेतमिति** सूत्रे व्यासचरणानामभिप्रेतं स्यात् । **अचेतनत्वेपीति** तेन स्वभावचेष्टितमुक्तम् । अत्र तु साधारणचेतनाधीनमसाधारणचेतनाधीनं च चेष्टितमिति, इमां युक्तिमग्रेऽनूद्य दूषयिष्यन्ति **न चैवमित्यादिना** । **तन्मात्रमिति** क्षीरमात्रम् । तत्रापि विशेषमाहुः **क्षीरेति** न तु पयःपदेन, पयःपदेन क्षीरतन्निष्ठसांसिद्धिकद्रवत्वस्फूर्तेः । **क्षीरपदेन** वटादिघनक्षीरस्याप्युपस्थित्या सांसिद्धिकद्रवत्वास्फूर्तेः । **अनूदितमिति** तथा च पयोम्बुवदित्यत्र क्षीरवदित्यनूदितम् । पुरुषोपकारपक्षे आहुः **यदि चेति** । **पुरुषेति** । अत्र सूत्रम् । 'पुरुषार्थं संसृतिः लिङ्गानां सूपकारवद्राज्ञः' इति । संसृतिः प्रपञ्चोऽपि । **अग्रेऽपि** सूत्राणि । 'पाञ्चभौतिको देहः' स्पष्टं 'चातुर्भौतिकमित्येके' । 'एकभौतिकमित्यपरे' पार्थिवं **शरीर**मिति । 'न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकाऽदृष्टेः' 'प्रपञ्चस्य¹ मरणाद्यभावश्च' 'मदशक्तिवच्चेत्प्रत्येकपरिदृष्टे सौक्ष्म्यात्सांहत्ये तदुद्भवः' 'ज्ञानान्मुक्तिः' 'बन्धो विपर्ययात्' इति । मदशक्तिः ताम्बूलपूगीफलचूर्णेष्वस्तैर्न मदः सांहत्ये मद इति तद्वत् । **तथात्वस्य** पुरुषोपकारकत्वस्य । **अम्बाम्बुवदिति** 'अम्ब-

---

१. प्रपञ्चत्वाभावश्च प्रपञ्चमरणाद्यभावश्चेति प्रवचनसूत्रे कृत्योः पाठभेदः ।

व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वात् ॥ ४ ॥

प्रधानस्यान्यापेक्षाभावात् सर्वदा कार्यकरणमेव, न व्यतिरेकेण तूष्णीमव-

---

भाष्यप्रकाशः।

न चैवं सति प्रवचनसूत्रस्थयुक्तेरदूषणात् तथा स पुनः प्रत्यवस्थास्यतीति शङ्क्यम्। क्षीरस्य जीवद्धेनुत एव प्रस्रवणेन तस्य दृष्टान्तस्य शिथिलतया तेन प्रत्यवस्थानाभावस्यार्थत एव सिद्धत्वात्। तस्मादयुक्तमेव तद्व्याख्यानम्। यत् पुनर्न चाम्बुनोऽत्यन्तमनपेक्षा निम्नभूम्याद्यपेक्षितत्वात् स्यन्दनस्येति समाधानम्, तत्तु सिद्धान्तिनश्चेतनसापेक्षताभिप्रायवतो निम्नभूमिसापेक्षताया अनभिप्रेतत्वात् पूर्वपक्षिणोऽपि निरपेक्षतां प्रतिपादयतोऽनभिप्रेतत्वान्नोभयवादिसंमतमतस्तदुभयमनादृत्यैवं व्याख्यातमित्यर्थः ॥ ३ ॥

व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वात्॥४॥ प्रकृतेः कर्तृत्वं दूषयित्वा तस्याः स्वतःपरिणामं दूषयति **व्यतिरेके**त्यादि। अत्रापि नानुमानमित्यस्यानुषङ्गः। तद् व्याकुर्वन्ति **प्रधाने**त्यादि।

रश्मिः।

पाने च सर्वदा' इति श्रुतेः। 'एकमस्य साधारणम्' इतिसप्तान्नब्राह्मणश्रुतेः। यच्छान्तिकरं सर्वैरद्यते तदेकम्। अस्येत्यस्य सर्वस्यान्नृवर्गस्येत्यर्थः। **अतो भिन्ने**ति सूत्रद्वयार्थादस्मिन्सूत्रे व्यासाभिप्रेतत्वात् प्रवृत्तिसूत्रमात्रार्थाद्भिन्नेयं युक्तिरिति। **तथे**ति पुरुषलोकोपकारकत्वेन प्रवृत्तिसूत्रमात्रविषयत्वेन च व्याख्यानम्। **प्रवचने**ति सांख्ये तु स्वभावचेष्टितं प्रवचनसूत्रेऽचेतनत्वेऽपीत्यनेन साधारणासाधारणचेतनत्वनिषेधात्। अत्र तु साधारणचेतनत्वमनादृत्यासाधारणमेघ चैतन्यमङ्गीकृतमिति तवेदं दूष्यज्ञानं स्यात् तदा मन्मतं दूषितं स्यात्तव तु दूष्यज्ञानाभावान्न मन्मतं दूषितमिति युक्तेः। **स** इति साङ्ख्यः। **प्रत्यवे**ति। 'समवप्रविभ्यः स्थः' इत्यस्यैकैकोपसंसृष्टात्तिष्ठतेरात्मनेपदं भवतीत्यर्थस्यापि सुवचत्वादुपसर्गद्वयविशिष्टात्तिष्ठतेः परस्मैपदम्। विच्छिन्ने पल्लीपुच्छादौ चेतनत्वदर्शनाद्धेनुशरीरगतमपि क्षीरं चेतनं ततः प्रस्नुतमपि चेतनमिति पयसि चेतनत्वं मन्यमाना आहुः **क्षीरस्ये**ति। **तेने**ति दृष्टान्तेन स्वभावप्रवृत्तिमत्क्षीरेण। **अर्थत** इति प्रधानप्रवृत्तिः केवलाचेतनधर्मः प्रवृत्तित्वात् क्षीरस्वभावप्रवृत्तिवदित्यस्य दृष्टान्तार्थः क्षीरं चेतनमिति तत एव सिद्धत्वात्। तदित्थम्। क्षीरस्वभावप्रवृत्तिर्न केवलाचेतनधर्मः प्रवृत्तित्वात्। तव मतेऽम्बुप्रवृत्तिवदित्यनेनानुमानेन विरुद्धत्वात्। 'साध्याऽभावसाधको हेतुर्विरुद्धः' इति। **अनपेक्षे**ति स्वभावेतरानपेक्षेत्यर्थः। **द्वितीयस्ये**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **यत्पुनरि**ति। **समाधान**मिति सांख्यैरम्बुनः स्वभावप्रवृत्तावनपेक्षत्वे स्वीकृते सापेक्षत्वाय **शंकराचार्य**कृतं समाधानम्। **पूर्वपक्षिण** इति सांख्यस्य। **उभय**मिति व्याख्यानान्तरं समाधानं च। **इत्यर्थ** इति तथा च **भाष्ये द्वितीयस्ये**त्यस्याम्बुन इत्यर्थः। उपसंहारदर्शनसूत्रे क्षीरशब्दोऽन्यविषयोऽविरुद्धव्याख्यानः। **रामानुजभाष्ये**प्येवम् ॥ ३ ॥

व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वात् ॥ ४ ॥ **कर्तृत्व**मिति प्रवृत्तिः कृतिः कृतिमत्त्वं कर्तृत्वमित्यत्र कर्तृलक्षणे कृतिमत्त्वं कृतिरतः 'प्रवृत्तेश्च' इति सूत्रान्नानुमानं कर्तृप्रवृत्त्यभावात्। प्रवृत्तिमतः कुलालादेः कर्तृत्वात्। **परिणाम**मिति। अभिन्ननिमित्तोपादानत्वेनोपादानकारणं निरूपणीयं परिणामिनि तादात्म्यसंबन्धेन समवायस्थानीयेन परिणामात्। **नानुमान**मिति समवायित्वेन सांख्याभिमतमनुमानं न समवायि, अनपेक्षत्वात्कार्यव्यतिरेकेणानवस्थितेः, यन्नैवं

स्थानमुचितम् । पुरुषाधिष्ठानस्य तु तुल्यत्वात् । सेश्वरसांख्यमतेऽप्यैश्वर्यं तद-धीनमिति यथास्थितमेव दूषणम् ॥ ४ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

व्यतिरेकेण अनवस्थितिर्व्यतिरेकानवस्थितिः । गुणत्रयसाम्यात्मकस्य प्रधानस्य परि-णामार्थं गुणक्षोभायान्यापेक्षाभावात् सर्वदा कार्यकरणमेवोचितं न तु कार्यव्य-तिरेकेण तूष्णीमवस्थानमुचितम् । तथा च प्रलयानुपपत्तिः । **चकारेण** त्रयाणां गुणा-नामेकव्यतिरेकेणान्यानवस्थितेर्युगपत् क्षोभात् कार्यत्रयस्यापि यौगपद्यसंभवात् क्रमानुपपत्तिः, कार्यानिरुक्तिश्च समुच्चीयते । न च पुरुषाधिष्ठानेन क्रमानुपपत्तिपरिहारः । पुरुषाणामानन्त्येन नित्य-विभुत्वेन च तदधिष्ठानस्य तुल्यत्वात् । तेषामुदासीनत्वेन च तुल्यत्वात् । न च तर्हि सेश्वरसांख्य-मादरणीयम्, तथा सति तस्य यदा यथाऽधिष्ठानं तथा परिणामादिरिति न दूषणावकाश इति वाच्यम् । यतः **सेश्वरसांख्यमतेऽप्यैश्वर्यं** प्रधानाधीनं, न त्वौपनिषदानामिवैश्वरमतस्तस्या-

रश्मिः ।

तत्रैवं कपालतन्तुचूर्णपाषाणादिवदिति योजना । सूत्रार्थयोजनाव्यतिरिक्त इति पाठक्रमेणाहुः **व्यतिरेकेणे**ति । **अन्यापेक्षे**ति नान्यस्य साधनान्तरस्यापेक्षा यस्य प्रधानस्य सोऽन्यानपेक्षस्तस्य भावोऽन्यानपेक्षत्वं तस्मादित्यत्रानपेक्षत्वमपेक्षा तस्या अभावादित्यर्थः । **कार्ये**ति व्यतिरेकस्य सापे क्षत्वात्कार्येति । **तथा चे**ति सर्वदा सृष्टिकर्तृत्वे च । न च गुणक्षोभस्य सार्वदिकत्वापत्त्या कार्यकरणे प्रलयकर्तृत्वनिवेशेन न प्रलयानुपपत्तिरिति वाच्यम् । इच्छाया अनङ्गीकारादगुणक्षोभक्रमे कारणान्तर-सापेक्षत्वापत्तेः । चकारार्थं स्वयमाहुः **चकारेणे**ति । **एकव्यती**ति । सांख्यसूत्रे सिद्धम् । **कार्यत्रयस्ये**ति सृष्टिस्थितिप्रलयरूपस्य । **क्रमे**ति कार्याणामुत्पत्तिस्थितिप्रलयानां **क्रमानुपपत्तिः** क्रमवाचकपदाभावात् । सत्त्वरजस्तमसां तु कारणत्वेन कार्यानुमानात्क्रमानुपपत्तिर्नास्ति । **कार्ये**ति रजसोत्पत्तिः, सत्त्वेन स्थितिस्तमसा लयस्तेषां यौगपद्यादियमुत्पत्तिरियं स्थितिरयं लय इति कार्यनिरुक्ति-स्तस्या निरुक्तेरभावः । व्यतिरेकानवस्थित्यादिपदसमभिव्याहारात्सूत्रे चकारः परिणामस्य सूचक इत्यत्रापि चकारः सूचको ज्ञेयः । **पुरुषे**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति **न न चे**ति । **पुरुषाणा**मिति जीवानाम् । न पुरुषा ईश्वरः । **सेश्वरे**त्यादिनाऽत्रैव वक्ष्यमाणत्वात्पुनरुक्तयापत्तेः । **नित्ये**ति 'उपाधि-भेदेप्येकस्य नानायोग आकाशस्येव घटादिभिः' इति सूत्रात् । **तदधिष्ठानस्य** पुरुषाधिष्ठानस्य । **तेषा**मित्यादि । 'नित्यमुक्तत्वम्' स्पष्टम् 'औदासीन्यं चेति' प्रथमाध्याये 'शरीरादिव्यतिरिक्तः पुमान्' इति सूत्रे जीवमुपक्रम्य पाठात्तथेत्यर्थः । **सेश्वरे**त्यादिभाष्यमवतारयन्ति । **तस्य** पुरुषस्य । **यथाधि-ष्ठान**मिति ईश्वरः सर्वज्ञस्तन्मतेऽतः क्षुब्धायां क्षोभार्थं यथा ब्रह्मत्वादिप्रकारेण प्रकृतिगुणेष्वधिष्ठानं तथा तन्मते पुरुषस्तूदासीनो न प्रवर्तको न निवर्तक इत्यतोऽनपेक्षं प्रधानम्, अनपेक्षत्वाच्च कदाचिन्महदाद्याकारेण परिणमति कदाचिन्न परिणमतीत्येतदयुक्तम् । ईश्वरस्य सर्वज्ञत्वान्महामायत्वाच्च प्रवृत्त्यप्रवृत्ती न विरुध्येते इति प्रधानस्य तथा परिणामादिरिति दूषणं क्रमानुपपत्तिः कार्यानिरुक्तिश्च । **प्रधानाधीन**मिति असङ्गः पुरुषः सगुणत्वे ईश्वरः इत्यैश्वर्यं प्रधानाधीनम् । **औपनिषदाना**-मिति औपनिषदेन पुरुषेण विक्रियन्ते क्रियन्ते वा ये ते औपनिषदा आचार्यप्रभृतयः । शैषिका-च्छैषिकः प्रत्ययोऽण्, यदि च शैषिकान्न शैषिक इष्टः तदा तु 'तदधीते तद्वेद' इत्यनेनोपनिषदोऽ-धीयते विदन्ति वा ये त औपनिषदाः अण्, पूर्वोक्ता एव । गौणमुख्यन्यायात् विरुद्धधर्मा-

भाष्यप्रकाशः ।

अन्यानपेक्षत्वात् प्रलयानुपपत्त्यादिरूपं दूषणं यथाऽनीश्वरसांख्यमते तथात्रापीति मतद्वयमप्यसंगतमित्यर्थः ॥ ४ ॥

रश्मिः ।

श्रयवादिनामिति यावत् । **ऐश्वर्यमिति** ब्रह्मनिष्ठमैश्वर्यम् । **अत्रापीति** सेश्वरसांख्यमतेपि । **इत्यर्थ** इति । तथा चेदमनुमानं फलितम्–प्रधानं कार्यव्यतिरेकावस्थानाभाववत्, अनपेक्षत्वात् वेध आदिवदिति । स्मृतिसिद्धा हि वेधोनपेक्षा अत्र प्रवृत्तिवदनपेक्षत्वाद्व्यतिरेकानवस्थितिरपि प्रधानधर्मः । न तु प्रवृत्तेश्च कार्यव्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वादित्यत्र प्रवृत्तिः । अनपेक्षत्वाद्व्यतिरेकानवस्थितिश्चेश्वरधर्म इति व्याख्यानम् । तथाहि कर्तृ प्रधानं न प्रवृत्तेः यत्र यत्र चेतनधर्मः प्रवृत्तिः तत्र तत्र जडप्रधानभिन्नत्वं सूर्यादिवदित्यस्य माध्वीयत्वात् । तथा जगत्समवायि किंचिद्वस्तु प्रधानं न, अनपेक्षत्वाद्व्यतिरेकानवस्थितेश्चानातञ्चनदुग्धवत् । ईश्वरैकांशस्यानपेक्षत्वाद्व्यतिरेकानवस्थितिर्वर्तते । 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्' इति गीतावाक्यादित्यस्यापि माध्वमततुल्यत्वात् । **शंकराचार्यास्तु** 'गुणव्यतिरेकेण प्रधानस्य प्रवर्तकं निवर्तकं वा किंचिद्बाह्यमपेक्ष्यमवस्थितमस्ति । पुरुषस्तूदासीनो न प्रवर्तको न निवर्तक इत्यतोनपेक्षं प्रधानम् । अनपेक्षत्वाच्च कदाचित्प्रधानं महदाद्याकारेण परिणमते कदाचिन्न परिणमत इत्येतदयुक्तम् । ईश्वरस्य तु सर्वज्ञत्वात् महामायत्वाच्च प्रवृत्त्यप्रवृत्ती न विरुध्येते' इत्येवं व्याचक्रुः । अत्र सगुणत्वापत्त्या 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इति निर्गुणब्रह्मजिज्ञासाविरोधात्प्रतिज्ञासंन्यासाख्यनिग्रहस्थानम् । **भास्कराचार्यास्तु** 'व्यतिरिक्तस्य बाह्य(स्य)प्रवर्त(न)कस्यावस्थितस्याभावात् प्रधानस्य स्वतः प्रवृत्तिः सा च नित्या स्यादनपेक्षत्वात्ततश्च सर्वदा सर्ग एव स्यात्' इत्येवं व्याचक्रुः । अत्र मध्यमपदलोपिसमासापत्तिः । पूर्वसूत्रानुवृत्तप्रवृत्तेः प्रवृत्तिमत्प्रवर्तके लक्षणापत्तिः । अवस्थित्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावहेतौ प्रतियोगिभूतावस्थितेऽवस्थितिशब्दस्य लक्षणापत्तिः । **रामानुजाचार्यास्तु** 'इतश्च सत्यसङ्कल्पेश्वराधिष्ठानानपेक्षपरिणामित्वे सर्गव्यतिरेकेण प्रतिसर्गावस्थाया अनवस्थितिप्रसङ्गाच्च न प्राज्ञानधिष्ठितं प्रधानं कारणं प्राज्ञाधिष्ठितत्वे तस्य सत्यसङ्कल्पत्वेन सर्गप्रतिसर्गविचित्रसृष्टिव्यवस्थासिद्धिः' इत्येवं व्याचक्रुः । अत्रानपेक्षत्वादित्यस्यार्थकथनं **सत्ये**त्यादिना सर्गस्यासमंताद्व्यतिरेकेण प्रतीत्यादिः किंतु सर्गसाहित्येन प्रतिसर्गावस्थायामवस्थितिप्रसङ्गाच्चेत्यर्थः । तत्र व्यतिरेकानवस्थितेरित्यत्र समासानुपपत्तिः । व्यतिरेकस्यानवस्थितिपदेन सह सामर्थ्याभावात् । 'समर्थः पदविधिः' इति सूत्रे व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्यस्यापि व्याख्यानात् । किंतु प्रतिसर्गावस्थाया अनवस्थितेश्च सामर्थ्यात् । सापेक्षमसमर्थं भवतीति च । या तु श्रुतिरुक्ता 'इष्टापूर्तं बहुधा जातं जायमानं विश्वं बिभर्ति भुवनस्य नाभिः' इति सा त्वदुष्टा । या तु गीता 'यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् । स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः' इति सा तु सांख्यानभिप्रेतात्रानुपयुक्ता । ईश्वरप्रवर्तकत्वविचारोपयुक्ता । **माध्वाचार्यास्तु** 'न ऋते त्वत्क्रियते किंचनार इति तद्व्यतिरेकेण कस्यापि कर्मणोनवस्थितेरनपेक्षितमेवाचेतनवादिमतम्' इति व्याचक्रुः । त्वत् त्वत्तः ईश्वरात्, पञ्चम्यन्तं युष्मच्छब्दरूपम्, किंचन अर इति च छेदः । अत्रापि कर्मानवस्थित्योः सामर्थ्यं न तु व्यतिरेकानवस्थित्योरिति समासानुपपत्तिरतोस्मद्व्याख्यानं परमार्थः सयुक्तिकश्च, नेति वाक्याविरोधः स्पष्टः ॥ ४ ॥

अन्यत्राभावाच्च न तृणादिवत् ॥ ५ ॥

तृणपल्लवजलानि स्वभावादेव परिणमन्त एवमेव प्रधानमिति न मन्तव्यम्। अन्यत्र शृङ्गादौ दुग्धस्याभावात्। चकाराच्चेतनक्रियाप्यस्ति। ततश्च लोकदृष्टान्ताभावादचेतनं प्रधानं न कारणम् ॥ ५ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

अन्यत्राभावाच्च न तृणादिवत् ॥ ५ ॥ ननु यथा **तृणपल्लवजलानि** पशुभक्षितानि **स्वभावादेव** क्षीरभावेन **परिणमन्त एवं प्रधानमपि** महदादिभावेन परिणंस्यते । एवं चानपेक्षाहेतुको व्यतिरेकानवस्थितिदोषोऽपि परिहृतो भवति दृष्टान्तस्य लभ्यत्वादित्याशङ्कायामाह **अन्यत्रे**त्यादि । अत्रापि पूर्ववदनुषङ्गः । तद् व्याकुर्वते **तृणे**त्यादि । प्रधानमन्यानपेक्षपरिणामम्, अचेतनत्वात् तृणादिवदित्येवं कारणतया प्रधानानुमानं न कर्तव्यम् । कुतः । **अन्यत्र शृङ्गादौ दुग्धस्याभावात्** । यदि हि तृणादिकं स्वभावादेव परिणमेत् सर्वत्रैव दुग्धं भवेत् तत्तु न भवति । अतः प्रधानमन्यापेक्षपरिणामम्, अचेतनत्वात् तृणादिवदिति हेतूदाहरणयोः साधारणत्वे नानुमानं न शक्यं कर्तुमित्यर्थः । **चेतनक्रिये**ति घासभक्षणादिरूपा धेन्वादिक्रिया॥५॥

रश्मिः ।

अन्यत्राभावाच्च न तृणादिवत् ॥ ५ ॥ अनपेक्षाहेतुको व्यतिरेकानवस्थितिदोषस्तत्परिहारार्थं सांख्यप्रयासस्तं परिहर्तुं स्वस्वभावकृतपरिणामं दूषयन्तीत्याशयेन पूर्वभाष्यं विवृण्वन्त एवा**न्यत्रे**तिभाष्यमवतारयन्ति स्म **नन्वि**ति । पूर्वभाष्ये स्वभावादित्यस्य स्वस्वभावादित्यर्थः । परस्वभावादग्रिमाधिकरणे वक्ष्यन्ति । **परिणमन्त** इति तदीयात्मनेपदानुवादः । तेन न परस्मैपदाभावप्रयुक्तो दोषः । प्रकृते **परिणमन्त** इति भाष्यानुवादः **परिणंस्यत** इत्यपि प्रसिद्ध्यनुरोधेन, परिणमन्ति परिणमिष्यतीत्येव । ज्ञानादियोग्यं जलाहरणादियोग्यं परिणामं करिष्यत इत्यर्थः । तथा च द्वितीये सांख्यसूत्रम् 'तत्कर्मार्जितत्वात्तदर्थमभिचेष्टा लोकवत्' इति प्रधानकर्मार्जितत्वात्प्रपञ्चकरणार्थं प्रधानस्याभिचेष्टा । लोके यथा धेनुभक्षणरूपकर्मार्जितत्वात् तृणादेः क्षीरीकरणार्थं धेनुचेष्टा तद्वदिति सूत्रार्थः । **एवं चे**ति दृष्टान्ते परिणामव्यतिरेकेणापि भक्षिततृणपल्लवजलानामवस्थानदर्शने चेत्यर्थः । **व्यतिरेकेणे**ति कार्यव्यतिरेकेणावस्थानाभावरूपो **दोषः** । **परिहृत** इति प्रधानं कार्यव्यतिरेकावस्थानवत् जडत्वात् तृणादिवदिति सत्प्रतिपक्षत्वात्परिहृतः । **पूर्ववदि**ति सप्तम्यन्ताद्वतिः । नानुमानमित्यस्या**नुषङ्गः** । **सर्वत्रे**ति शृङ्गकर्णचरणादौ । तथा च पूर्वोक्तो हेतुर्विरुद्ध इत्याहुः **अत** इति स्वभावतः परिणामाभावात् । **तृणादी**ति । **बृहदारण्यके** सप्तान्नब्राह्मणे तृणाद्यप्यन्नम् । अतस्तृणादयो हि त्रेधा परिणमन्ति 'अन्नमशितं त्रेधा विधीयते यस्तस्य स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्मांसं योऽणिष्ठस्तन्मनः' इति छान्दोग्यश्रुतेः 'जातान्यन्नेन वर्धन्ते' 'अद्यन्तेऽत्ति च भूतानि' इति श्रुतेश्च । ते च शरीरं व्याप्य तिष्ठन्ति 'पायोर्मलांशत्यागेन शेषभावं तनौ भजेत्' **इति** वाक्यात् । अत्र दुग्धमपि स्वभावपरिणामं चेन्मांसादिवच्छृङ्गादावुपलभ्येत । बलीवर्दे चोपलभ्येत । स च न दृश्यते । स्वभावो न परिणामहेतुरपि तु तत्तच्छक्तिर्गीयते । तत्तद्देशश्च परिणामहेतुः । वस्तुतस्तु भगवदिच्छाहेतुः । अन्यापेक्षत्वं चैतत्तृणादौ । **हेतूदाहरणयो**रिति उदाहरणं दृष्टान्तः । **साधारणे**ति पूर्वोक्तानुमानसाम्येन । **न शक्यमि**ति हेतोर्विरुद्धत्वात् । **धेन्वादी**ति परिणामहेतुः । समुच्चयश्चकारार्थ इति भावः ॥ ५ ॥

---

१. व्यतिरेकानेति प्रकाशपाठः ।

अभ्युपगमेऽप्यर्थाभावात् ॥ ६ ॥

प्रधानकारणवादाङ्गीकारेपि प्रेक्ष्यकारित्वाभावान्न पुरुषार्थः सिद्ध्यति ॥ ६ ॥

इति द्वितीयाध्याये द्वितीयपादे प्रथमं रचनानुपपत्तेरित्यधिकरणम् ॥ १ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

अभ्युपगमेऽप्यर्थाभावात् ॥ ६ ॥ अन्यानपेक्षस्य प्रधानस्य स्वभावत एव महदादिरूपः परिणामो न युक्तिसह इत्युक्तम् । इदानीं तदुपगम्य यथा धेनुर्वत्सार्थं स्वत एव प्रवर्तते तथा प्रधानमपि पुरुषभोगाद्यर्थं स्वत एव प्रवर्तत इति यत्तेऽङ्गीकुर्वन्ति तद् दूषयतीत्याहुः **प्रधानकारणेत्यादि** । **अभ्युपगमे प्रधानकारणवादाङ्गीकारे** प्रधानस्य पुरुषार्थं स्वतः प्रवृत्तिर्नोपपद्यते । कुतः । **अर्थाभावात्** अर्थः प्रयोजनं तदभावात् । तद्धि प्रेक्षावतां भासते । यतः प्रेक्षापूर्वकारित्वं चेतनधर्मः सोऽचेतने प्रधाने वक्तुं न शक्यते । लोके तथाऽदर्शनात् । तदभावे च **पुरुषार्थो न सिद्ध्यति** । घुणाक्षरवत्तु कादाचित्कः स्यात् । तथापि तादर्थ्यप्रवृत्तिप्रतिज्ञा तु भज्येतैवेत्यसंगतस्तथाभ्युपगम इत्यर्थः ॥६॥ इति **प्रथमं रचनानुपपत्तेरित्यधिकरणम्** ॥१॥

रश्मिः ।

अभ्युपगमेऽप्यर्थाभावात् ॥ ६ ॥ भाष्यं सांख्यस्य निर्हेतुकत्वं स्फोरयतीति भ्रमात्स्यात्तन्निवारणायाहुः **इदानीमिति** । **तद्दूषयतीति** । यद्यपि 'प्रवृत्तेश्च' इत्यत्रेदं दूषितं परं तु स्वभाववादमभ्युपगम्य यदुक्तं तद्दूषितमत्र तु यो वादविरोधी ह्यभ्युपगमस्तमङ्गीकृत्य यत्तद्दूषयतीत्याहुरित्यर्थः । **तदभावादिति** प्रयोजनाभावस्याप्रवृत्तिहेतुत्वम् 'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते' इति वाक्यात् । अनुमानं तु प्रधानं न प्रवर्तते, प्रयोजनाभावात्, अस्मदादिवदिति फलितम् । कथं प्रधाने प्रेक्ष्यकारित्वाभाव इत्यतस्तं विवृण्वन्ति स्म **तद्धीति** प्रयोजनम् । प्रतिभावतां **भासते** । **तथेति** अचेतनस्य प्रकृष्टज्ञानरूपप्रेक्षावत्त्वेन प्रकारेण । मा प्रधाने प्रेक्षा भूत्, प्रवृत्तिस्त्वभ्युपेयत इत्यत आहुः **तदभाव** इति । **पुरुषार्थ** इति पुरुषाणामर्थः प्रयोजनं तच्चानेकविधम् । पुरुषाः सृष्टास्तद्भोग्यमसृष्टम्, अनेनायमुपजीविष्यतीति प्रेक्षाभावादिति विचित्रा जगतः कृतिः हरेरेव । ननु प्रधानं प्रवर्तते, अर्थाभावात् घुणवदित्यनुमानाद्विरुद्धो हेतुरित्यत आहुः **घुणाक्षरवदिति** । घुणः कीटस्तच्चरणेन यदृच्छया कदाचिद्भूमौ रजश्छन्नायामक्षराणि निपतन्ति तद्वत्प्रधानमपि पुरुषात्स्रक्ष्यति तद्भोग्यं चेति प्रेक्षाभावेपि पुरुषार्थः सेत्स्यति परं कादाचित्को भविष्यति । दृष्टान्ते तथा दर्शनादित्यर्थः । इदमनुमानं विरुद्धत्वापादकं तु पूर्वानुमानस्येति तु न च वाच्यं प्रधानं न प्रवर्तते जडत्वाद् घटवदित्यनेन सत्प्रतिपक्षत्वाद्घुणदृष्टान्तेन प्रवृत्तिसाधकस्यानुमानस्येति । **तथापीति** प्रेक्षाभावे पुरुषार्थसिद्ध्यङ्गीकारेऽपि 'प्रधानसृष्टिः परार्थं स्वतोऽप्यभोक्तृत्वादुष्ट्रकुङ्कुमवत्'इति सूत्रे परार्थं पुरुषार्थमित्यर्थात् । **तादर्थ्यं** स्वार्थे ष्यञ् पुरुषार्थम् । पुरुषार्थं **प्रवृत्तिप्रतिज्ञे**त्यर्थः । **भज्येते**ति एतत्प्रवृत्तिरेतद्भोग्यमित्यादिप्रेक्षां विना न भवतीति भज्येतेत्यर्थः । **शांकराचार्य**भाष्ये न विशेषः । **रामानुजाचार्य**भाष्येऽपि । **भास्कराचार्य**भाष्येऽपि न विशेषः । **माध्वाचार्य**भाष्ये तु 'अन्यत्र' इति सूत्रे सेश्वरसांख्यमतनिराकरणं यथा पृथिव्या एव पर्जन्यानुगृहीतं तृणादिकमुत्पद्यते एवं प्रधानादीश्वरानुगृहीतं जगदित्यतो ब्रवीति अन्यत्रेति । 'यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा । अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः' इत्यन्यत्र ब्रह्मणो जगतोऽभावात्तृणादीनां पर्जन्यवन्नानुग्राहकत्वमात्रमीश्वरस्य । चकारेण प्रकृतिसत्तादिप्रदत्वं चाङ्गीकृतम् । अभ्युपगमसूत्रे लोकायतिकपक्षनिराकरणम् । यस्य धर्माधर्मौ न स्तस्तत्सिद्धान्ते किं प्रयोजनमित्यर्थमाहुः । स्वपक्षाभ्युपगमे

पुरुषाश्मवदिति चेत्तथापि ॥ ७ ॥ (२-२-२)

प्रधानस्य केवलस्य कारणवादो निराकृतः । पुरुषप्रेरितस्य कारणत्वमाशङ्क्य

भाष्यप्रकाशः ।

पुरुषाश्मवदिति चेत्तथापि ॥ ७ ॥ एवं प्रधानकारणवादे निरस्ते पुनः प्रत्यवस्थाना-नवकाशात् किमस्य सूत्रस्य प्रयोजनमित्यत आहुः प्रधानस्येत्यादि । तथा च प्रतिज्ञान्तर-परिहारः प्रयोजनमित्यर्थः । पुरुषप्रेरितप्रधानकारणवादस्य स्वरूपमाहुः पुरुष इत्यादि । तथोक्तं सांख्यसप्तत्याम्–

'पुरुषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य ।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः ॥' इति ।

उभयोः प्रधानपुरुषयोः संयोगः संश्लेषस्तत्कृतो महदादिसर्गः । तस्य प्रयोजन-द्वयम् । पुरुषस्य भोग्यतया प्रधानविषयकं दर्शनं, पुरुषस्य कैवल्यं चेति । तथा च

रश्मिः ।

अर्थः प्रयोजनम् । अत्र सेश्वरसांख्यनिरासस्य पूर्वसूत्रे कृतत्वात् सांख्यप्रस्तावे लोकायतिकमतनिराकरणं प्रसङ्गेन भवति । स चाग्रे निराकरणाद्गुरुरिति न स्वमते विचारान्तरप्रयोजनम् । अधिकरणरचना तु जन्माद्यधिकरणेषु ब्रह्मकारणवाद उक्तस्तत्र समन्वयो हेतुरुक्तः स चानुमानेऽपि सुखदुःखाद्यैर्घटादिषु समन्वयात्तुल्य इति संशयः । समवायि ब्रह्म वानुमानं वेति 'प्रधानाज्जगज्जायते' इति श्रुतेः प्रधानं समवायि निमित्तं च ब्रह्मकारणत्वबोधिकास्तु सांख्यीयनिमित्तत्वेनापि नेतुं शक्येति पूर्वपक्षे **सिद्धान्तः** रचनाद्यसंभवाद्ब्रह्मैवाभिन्ननिमित्तोपादानम् । प्रधानादिति श्रुतिस्तु स्वरूपपरा । प्रकृतेः स्वरूपत्वं प्रकृतिश्चेत्यधिकरण उक्तमिति ॥ ६ ॥ **इति प्रथमं रचनानुपपत्तेरित्यधिकरणम् ॥ १ ॥**

पुरुषाश्मवदिति चेत्तथापि ॥ ७ ॥ लिङ्गं यत्किंचित् । अश्मा व्यापको जडश्चेति योगरूढिस्तद्वत् । 'व्यापको भगवान्रुद्रः' इत्यस्य रुद्रचरितत्वे तामसप्रकरणीया लीला नोचेद्भगवल्लीला 'आनन्दादयः प्रधानस्य' इत्यत्र व्याससूत्रे आनन्दव्यापकत्वादयः प्रधानस्य भगवतो धर्मा इत्युक्तत्वात् । एवं च नन्वेतर्हि सतोऽश्मादेः प्रवृत्तिश्चेतनाधीना क्वापि न स्यात्तथा च प्रतिमायाः सच्चिदानन्दबोधकवाक्यानि विरुद्धानि भवेयुः, अप्रतीकालम्बनसूत्रे भाष्यं च विरुध्येत, तत्र प्रतिमायां भगवत्सान्निध्यमुक्तम् । पर्वतत्रयं च सरोनिष्ठं सच्चिदानन्दकं सत् स्वपूजां गृह्णत् प्लवते न प्रवर्तेत इत्यन्यमुखश्रुतं तद्विरोधश्च । अतः सेश्वरसांख्ये दृष्टान्तसत्त्वात्तेन प्रत्यवस्थातारं सांख्यं प्रत्याहुरित्याशयेन भाष्यमवतारयांबभूवुः एवमिति । ननु द्वन्द्वेन व्याख्यानं पुरुषश्चाश्मा च पुरुषाश्मानौ ताविव पुरुषाश्मवत् । आभासे तु कर्मधारय इति विरुद्धमिति चेन्न । माध्वभाष्ये पुरुषोऽश्मशरीरादिकं गृहीत्वा गच्छतीति कर्मधारय उक्तः । किमेतावता संपन्नमिति चेन्न । 'पूर्णा भगवदीयास्ते शेषव्यासाग्निमारुताः' इत्याचार्योक्तेस्तेषां भगवदीयत्वेन कर्मधारयग्रहणेप्याचार्योक्तिविरोधाभावरूपो गुणः संपन्न इति । तेन द्वन्द्वेन **शंकराचार्यादि**वद्व्याख्यानम् 'अनाविष्कुर्वन्नन्वयात्' इति सूत्राद्भगवत्संबद्धानां कृष्णमूर्तिसंबन्धानाविष्करणार्थमेवेति । अत एव पूर्णभगवदीयरामानुजाचार्यभाष्येऽपि शंकराचार्यादिवद्व्याख्यानं युज्यते । आज्ञा च तथा लिखितपाठकोऽधमः इति । अतः पाठे उपयोगः । **प्रतिज्ञान्तरेति** यद्यपि प्रतिज्ञान्तरमपि निग्रहस्थानमिति न तत्परिहारो वक्तव्यः परमाचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञपयति मतान्तरेण जनता मा नश्यत्विति परिहारः । **इत्यर्थ** इति तथा च पूर्वाधिकरणेनास्य प्रसङ्गः संगतिरिति भावः । **संश्लेष** इति । **पङ्ग्वन्धवदि**त्यत्र दृष्टान्तः । **कैवल्यमि**त्यौदासीन्यम् ।

परिहरति । पुरुषः पङ्गुरन्धमारुह्यान्योन्योपकाराय गच्छति, यथा वा अयःकान्तः सन्निधिमात्रेण लोहे क्रियामुत्पादयति । एवमेव पुरुषाधिष्ठितं पुरुषसन्निहितं वा प्रधानं प्रवर्तिष्यत इति चेत् तथापि दोषस्तदवस्थः । प्रधानप्रेरकत्वं पुरुषस्य स्वाभाविकं प्रधानकृतं वा । आद्ये प्रधानस्याप्रयोजकत्वम् । द्वितीये प्रधान-

भाष्यप्रकाशः ।

यथा पङ्गुरन्धमारुह्याऽन्योन्योपकाराय गच्छत्येवं पुरुषः प्रधानमधिष्ठाय उक्तकार्यद्वयार्थं प्रवर्तयतीत्येकं मतम् । यथा वा अयःकान्त इति द्वितीयं मतम् । तदनूद्य दूषयन्ति तथापीत्यादि, एवमङ्गीकारेऽपि । दोषस्तदवस्थ इत्यतो नानुमानमित्यर्थः । तदुपपादयन्ति प्रधानेत्यादि । अप्रयोजकत्वमिति पुरुषोपकारजननासमर्थत्वम् । तथा च स्वाभाविकत्वपक्षे पुरुषस्य स्वत एव प्रवृत्तेः प्रधानकृतो न कश्चिदुपकारः । यथा स्वहस्तेन वीजने व्यजनस्य नोपकारकत्वेन प्रसिद्धिस्तथेति । प्रधानकृतत्वपक्षे तु प्रेक्ष्यकारित्वस्य तत्र वक्तुमशक्यत्वादुपकारकत्वासिद्धिर्व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपायात् पुरुषार्थासिद्धिः प्रलयासिद्धिश्च तदवस्था । किंच ।

रश्मिः ।

अन्योन्योपेति । 'कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये' 'असमासवच्च बहुलम्' इति द्वित्वे समासवद्भावेन सोरलुकि चान्योन्य इति । 'असमासवद्भावे पूर्वपदस्य सुपः सुर्वक्तव्यः' इति वार्तिकादन्योन्यस्योपकारायेति षष्ठीतत्पुरुषः । न चात्रान्यान्योपकारायेति सोर्लोपः संभाव्यः 'अन्योन्यसंश्रयत्वं तदिति महाभाष्याद्बाहुलकेन च सोर्न लुक् । चलनाशक्तस्य पङ्गोः पादकार्यसंपादकोऽन्धः अन्धस्य चक्षुःकार्यसंपादकः पङ्गुरित्यन्योन्योपकारः । तदुक्तं पञ्चमेऽध्याये 'नेश्वराधिष्ठितेऽफलसंपत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः' 'स्वोपकारादधिष्ठानं लोकवत्' इति सूत्रे । ईश्वराधिष्ठिते प्रधानेऽफलसंपत्तिर्नेत्यर्थः । कर्मणा प्रेक्षापूर्वकप्रवृत्त्याख्येन फलं पुरुषार्थं उक्तरूपस्तत्सिद्धेः । स्वस्येश्वरस्य प्रवर्तकत्वरूपप्रधानकृतोपकारालोकः पङ्गुरन्धमित्यादिस्तद्वदित्यर्थः । **उक्तेति** असङ्गस्य पुरुषस्य प्रवर्तकत्वसंपादकं प्रधानं जडस्य प्रधानस्य प्रवृत्तिसंपादकः पुरुष इत्यन्योन्योपकारः । **अयःकान्त** इति 'तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत्' इति सूत्रात् । अनीश्वरसांख्ये जीवसन्निधानात्प्रधानाधिष्ठातृत्वमयःकान्तमणिवदित्यर्थः । **द्वितीयमिति** निरीश्वरसांख्यम् । **दोष** इति । एतच्चाध्याह्रियते । नानुमानमिति पूर्वसूत्रादनुवर्तते पुरुषेति सूत्रीयं तथाप्येतस्य तात्पर्यवृत्तिलभ्यो वा **भाष्ये** तेन सूत्रान्तरादनिर्मोक्षप्रसङ्ग इत्यनुवर्त्य व्याख्यानं भाष्यान्तरे गुरु । अतएव **रामानुजाचार्य**भाष्ये तथापीत्यस्य व्याख्यानमेवमपि प्रधानस्य प्रवृत्त्यसंभवस्तदवस्थ एवेति । **माध्वभाष्ये** तु 'न ऋते त्वत्क्रियते किंचनार' इति तत्रापि तथात्वे दृष्टान्ताभावादिति व्याख्यानम् । अत्र तात्पर्यं दृष्टान्ताभाव इति तथाप्येतयोरेकतरस्य तात्पर्यार्थस्य विवक्षितत्वे न दोषः । अन्यथा विवादास्पदं तात्पर्यार्थः स्यात् । नानुमानमिति पूर्वसूत्रादनुवर्तते । **वीजन** इति स्वहस्तव्यजनकसंबन्धिवीजन इत्यर्थः, दार्ष्टान्तिकसाम्यार्थम् । **द्वितीये**त्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति **प्रधानकृतत्वेति** । **अत्रेति** असङ्गे निर्गुणे तद्विघटके प्रधाने तत्कृते प्रवर्तकत्वेऽत्र प्रधानेऽप्रेक्ष्यकारित्वापत्त्या प्रेक्ष्यकारित्वस्यवक्तुमशक्यत्वादनुपकारित्वापत्त्योपकारकत्वाऽसिद्धिः । **व्यतिरेकेति** कार्यव्यतिरेकानवस्थितेश्चानपायादनाशात्पुरुषार्थो व्याख्यातस्तस्याऽसिद्धिः । अयं भाष्ये प्रधानदोष इत्युक्तः, **तदवस्थेति** सा अवस्थीयत इत्यवस्था भावे घञ् अवस्थितिर्यस्य दोषस्य स तदवस्थ इति भाष्ये । **नित्येत्यादि**भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **किंचेति** अन्यदपि दूषणमारभ्यते । किंचेत्यस्यारम्भसाकल्यार्थत्वं 'किंचारम्भे च साकल्ये' इति

दोषस्तद्वस्थः। नित्यसंबन्धस्य विशिष्टकारणत्वे अनिर्मोक्षः। अशक्तस्य तु मोक्षाङ्गीकारः सर्वथानुपपन्नः ॥ ७ ॥

अङ्गित्वानुपपत्तेश्च ॥ ८ ॥

प्रकृतिपुरुषयोरङ्गाङ्गित्वे भवेदप्येवम्। तच्च नोपपद्यते। पुरुषस्याङ्गित्वे

भाष्यप्रकाशः।

प्रकृतिपुरुषयोर्यः कश्चित् संबन्धो निर्वक्तव्यः स तयोर्नित्यत्वान्नित्य एव। सोऽप्युदासीनत्वेनाभ्युपगतस्य पुरुषस्य वागादिव्यापारासंभवात् प्रकृतिप्रेरणयोग्यतारूपो वक्तव्यः। तस्यैव चेद् भोगादिके विशिष्टकारणत्वं तदा तस्य नित्यत्वात् पुरुषस्यानिर्मोक्ष एव प्रसज्येत। यदि चात्मनामानन्त्यात् तेषां मध्ये कस्यचन शक्तस्य अधिष्ठातृत्वं तदितरस्याशक्तस्य मोक्ष इति न दोष इति विभाव्यते तदापि प्रधानस्य स्वातन्त्र्याद् बन्धकस्वाभाव्याचानिच्छतोऽपि तेनैव भोगसंभवादशक्तत्वेन तन्निवारणासंभवाच्चाशक्तस्य मोक्षाङ्गीकारः सर्वथाऽनुपपन्न इत्यर्थः। सूत्रयोजना तु पुरुषश्चाश्मा च पुरुषाश्मानौ ताभ्यां तुल्यः संबन्धस्तथा। द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणो वतिः प्रत्येकमभिसंबध्यत इति ॥ ७ ॥

अङ्गित्वानुपपत्तेश्च ॥ ८ ॥ पुरुषविशिष्टप्रधानकारणवाद एव दूषणान्तरमाह **अङ्गित्वे**त्यादि। तद् व्याकुर्वन्ति **प्रकृती**त्यादि। यत् तयोरन्योन्योपकारकत्वमङ्गीकृतं तत् तदा स्याद् यदि तयोर्गुणप्रधानभावेनाङ्गत्वमेकस्यान्यस्याङ्गित्वं च स्यात् तदेव तु न जाघटीति। कुतः। **अङ्गित्वानुपपत्तेः। पुरुषस्याङ्गित्वे** स पुरुष इतरविलक्षणो वक्तव्यः। अन्यथा प्रकृतिनियामकत्वं तस्य न स्यात्। तथा सति तत् तस्य वैलक्षण्यं श्रौतधर्मवत्तयैवेति

रश्मिः।

कोशात्। **उदासीने**ति। 'असङ्गोऽयं पुरुष इति' इति सूत्रात्। **तस्यैवे**ति संबन्धस्य विशिष्टकारणत्वं क प्रधानस्य भोक्तृत्वं यदा पुरुषे। **तस्ये**ति संबन्धस्य। **पुरुषस्ये**ति शुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य 'द्वयोरेकतरस्य वा औदासीन्यमपवर्गः' इति सूत्राद्भोगादिके औदासीन्यादनिर्मोक्षः। निरीश्वरसांख्यमतेपि दूषणारम्भ इत्याशयेनाशक्तस्येति विवरामासुः **यदि चे**ति। **स्वातन्त्र्या**दिति प्रकृतिः कर्त्रीति प्रतिप्रयोगात्। 'अकार्यत्वेपि तद्योगः पारवश्यात्' 'स हि सर्ववित्सर्वकर्ता' 'ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा' इति तृतीयाध्यायसूत्रेभ्यश्च स्वातन्त्र्यात् 'स्वतन्त्रः कर्ता'। पुरुषस्याकार्यत्वेपि तद्योगः प्रकृतियोगः। तेन पुरुषस्य तद्योगादेशेन तद्योगाव्याप्तिः परिहृता। ईदृशेति सगुणेत्यर्थः। **बन्धके**ति प्रधानं रूपैरात्मानं बध्नातीति तथा। **अनिच्छतः** पुरुषस्य। **तेने**ति प्रधानेन। **तन्निवारणे**ति भोगनिवारणेत्यर्थः। सूत्रयोजना च पुरुषश्चाश्मा च पुरुषाश्मानौ ताभ्यां तुल्यः संबन्धस्तथा। द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणो वतिः प्रत्येकमभिसंबध्यत इति ॥ ७ ॥

अङ्गित्वानुपपत्तेश्च ॥ ८ ॥ **तच्चे**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तदेवे**ति। **जाघटीती**ति। 'यङोचि च' इति सूत्रे चकारेण च्छन्दसीत्यनुकृष्य बहुलमित्यस्यानुकर्षाद्भाषायामपि यङ्लुगिति मनोरमादौ स्पष्टम्। घटधातोः 'धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिव्याहारे' यङि 'यङोऽचि च' इति तल्लुक्। ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वात् 'सन्यङोः' इति द्वित्वे 'अभ्यासे चर्च' इति घस्य जत्वम्। 'दीर्घोऽकितः' इति दीर्घे धातुत्वाल्लट् ततस्तिपि 'यङो वा' इतीटि भवति। **पुरुषस्ये**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **पुरुषस्याङ्गित्व** इति। प्रधानसन्निहितः प्रधानावच्छिन्नश्च पुरुषः प्रवर्तते। **इतरे**ति निरीश्वरसांख्यविलक्षणः। **अन्यथे**ति जीवत्वे। **श्रौतधर्मे**ति सांख्ययोगावेकं शास्त्रं तद्विलक्षणेन तच्छास्त्रीय-

ब्रह्मवादप्रवेशो मतहानिश्च । प्रकृतेरङ्गित्वे त्वनिर्मोक्षः ।
अनेन परिहृतोऽपि मायावादो निर्लज्जानां हृदये भासते ॥ ८ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

ब्रह्मवादप्रवेशः । यदि न श्रौतधर्मवत्तयेत्युच्यते तदापि कालकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टस्तु वक्तव्यः । तथा सतीतरपुरुषविलक्षणेश्वरसिद्ध्या ईश्वरासिद्धेः 'ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा' इति प्रवचनसूत्रोक्तमत**हानिः** । यदि च तद्भिया **प्रकृतेरङ्गित्व**माद्रियते तदा तस्याः स्वातन्त्र्यात् तया पुरुषाय स्वदोषा न दर्शयितव्याः । ततश्च दुःखाभावेन विरागाभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्त्यभावेना**निर्मोक्ष** इत्यर्थः ।

शंकराचार्यादयस्तु सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था हि प्रधानावस्था तस्यामवस्थायामनपेक्षस्वरूपाणां परस्परं प्रत्यङ्गाङ्गिभावानुपपत्तेर्बाह्यस्य कस्यचित् क्षोभयितुरभावाद् गुणवैषम्यनिमित्तो महदाद्युत्पादो न स्यादित्येवं प्रधानप्रवृत्त्यनुपपन्नताबोधकत्वेनेदं सूत्रं व्याकुर्वते । तन्न युक्तम् । 'पुरुषाश्म'सूत्रस्य सांख्योक्तविशिष्टकारणतापक्षदूषकतया व्याख्यानादत्र केवलकारणतापक्षदूषणस्यासंगतत्वादिति ।

यत् पुनः पूर्वसूत्रव्याख्याने परमात्मनः स्वरूपव्यपाश्रयमौदासीन्यं, मायाव्यपाश्रयं प्रवर्तकत्वमिति शंकराचार्यैरुक्तं, तदुपहसन्ति **अनेनेत्यादि** । माया हि गुणमयी गुणानां चाङ्गाङ्गि-

रश्मिः ।

धर्मवत्ता । अमुख्यत्वाच्चातो वेदवेदान्तशास्त्रधर्मवत्तयैव । एवकारोऽपि व्याख्यातः । पञ्चरात्रपशुपतिमतान्यवेदान्तमतव्यवच्छेदाय च **एवकारः** । ननु न ब्रह्मवादप्रवेशः किंतु कारणत्वेन प्रकृतिवादे प्रकारान्तरेण श्रुतिलापनात्पुरुषसाधनाच्चेति चेदित्याकाङ्क्षायां **मतहानिश्चे**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **यदि नेति** । **उच्यत** इति 'मुक्तात्मनः प्रशंसा उपासासिद्धस्य वा' इति सूत्रे जगत्कर्तृत्वाद्यावेदकानां वेदानां मुक्तोपासनासिद्धयोर्जीवयोः प्रशंसकत्वोक्तेरुच्यत इत्यर्थः । **वक्तव्य** इति 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः' इति समाधिपादस्थसूत्राद्वक्तव्यः । यद्यपि 'अथ योगानुशासनम्' इत्युपक्रम्यास्य पाठस्तथापि 'सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः' इति वाक्येनैक्यात् । 'सांख्यप्रवचने योगशास्त्रे समाधिपादः प्रथमः' इति समाधिपादसमाप्तौ सांख्यप्रवचनत्वनिर्वचनाच्च । **प्रवचनेति** । अस्य सूत्रस्याकार्यत्वेऽपि 'तद्योगः पारवश्यात्' 'स हि सर्ववित्सर्वकर्ता' इत्यनयोरग्रे पाठान्नो मुक्तोपासनासिद्धयोर्जीवयोः प्राप्तिरत एतत्सूत्रोक्त**मतहानिः** । **प्रकृतेरि**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **यदि चेति** । **तद्भियेति** मतहानिब्रह्मवादप्रवेशाभ्यां भिया । **प्रकृते**रित्यादि पुरुषावच्छिन्नं प्रधानं प्रवर्तत इति प्रकृतेर्विशेष्यत्वम् । विशेषणविशेष्यभावे कामचारात् । तथा च द्वितीयेध्याये 'आपेक्षिको गुणप्रधानभावः क्रियाविशेषात्' इति सूत्रम् । **स्वदोषा** इति ते च 'अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या' इति साधननिर्देशपादे सूत्रादनित्ये नित्यमिदमशुचाविदं शुचि दुःख इदं सुखमनात्मन्ययमात्मेति सदसत्ख्यातयः । **अनिर्मोक्ष** इति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **ततश्चेति** 'तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्' इति विभूतिपादसूत्रात् । **अनपेक्षेति** सत्त्वरजस्तमसाम् । **अङ्गाङ्गीति** स्वरूपनाशभयात्तथा । **बाह्यस्येति** असङ्गपुरुषादतिरिक्तस्य । **व्याकुर्वत** इति सत्त्वादीनां परस्परमङ्गाङ्गिभावानुपपत्तेश्चकारेण बाह्याभावान्महदाद्युत्पादो न स्यादिति प्रधानप्रवृत्त्यनुपपत्तिरिति सूत्रार्थः । **केवलेति** पुरुषानधिष्ठितेत्यर्थः । **असंगतत्वादि**ति पुन-

अन्यथानुमितौ च ज्ञशक्तिवियोगात् ॥ ९ ॥

अन्यथा वयं सर्वमनुमिमीमहे । यथा सर्वे दोषाः परिहृता भवेयुरितिचेत्

भाष्यप्रकाशः ।

भावोऽनुपपन्न इति स्वयमेव व्याख्यानात् साम्यावस्थावस्थितगुणकृतमुदासीनस्वरूपस्य परमात्मनः प्रवर्तकत्वमित्यसंगतम् । अथ शुद्धसत्त्वप्रधाना साङ्गीक्रियते, तदा तु तया ज्ञानमात्रमेवोत्पादयितव्यं, न प्रवर्तयितव्यम् । सत्त्वस्य तादृशस्वभावे मानाभावात् । अप्राधान्येन गुणान्तरेऽपि तथात्वस्य वक्तुमशक्यत्वात् । अतः स्वोक्तमप्यननुसंदधानानां निर्लज्जत्वात् तादृशामेव हृदये भासत इति तथासमर्थनमसंगतमित्यर्थः ॥ ८ ॥

अन्यथानुमितौ च ज्ञशक्तिवियोगात् ॥ ९ ॥ 'प्रीत्यप्रीतिविषादात्मकाः प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्थाः । अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणाः' इति हि सांख्यानामपरा प्रतिज्ञा । अर्थस्तु—प्रीतिः सुखम्, अप्रीतिर्दुःखं, विषादो मोहः; सत्त्वरजस्तमांसि गुणाः क्रमेणैतत्त्रयात्मका एतत्रयस्वरूपाः । प्रकाशः प्रवृत्तिर्नियमो निग्रह इति तेषां क्रमेणासाधारणं कार्यं, तेन तेऽनुमीयन्ते । वृत्तिः क्रिया, अन्योन्याभिभवोऽन्योन्याश्रयोऽन्योन्यजननमन्योन्यमिथुनीभावश्च तेषां साधारणीक्रियेति । एवं साधारणक्रियया गुणवृत्तं चलमङ्गीकृत्य तमसा रजोनियमनेन प्रवृत्तावपोदितायां प्रलयसिद्धिः । तत्पूर्वकं सत्त्वजनने तेन प्रकाशादात्मविवेके निर्मोक्ष इत्येवं समर्थनमाशङ्क्य परिहरति । तद् व्याकुर्वन्ति अन्यथेत्यादि । गुणा एवं विभागशः प्रवृत्तिमन्तश्चलस्वभावत्वात् चलदलदलवदित्येवमन्यथा-

रश्मिः ।

रुत्तयापत्त्याऽसंगतत्वात् । न च **भास्करभाष्ये** प्रलयकाले साम्येनावस्थितानां सत्त्वादीनामिति प्रलयकालोक्तेर्न पुनरुक्तिरिति वाच्यम् । पदार्थैक्येन दोषतादवस्थ्यात् । **असंगत**मिति साम्यावस्थावस्थितेति विशेषणस्य समासघटकत्वेपि हेतुगर्भत्वेनासंगतम् । नव्यमतेप्याहुः **अथे**ति । **एवे**ति 'सत्त्वात्संजायते ज्ञानम्' इति वाक्यात् । **तादृशे**ति ज्ञानातिरिक्तपरिणामहेतुत्वे । **तथात्वस्ये**ति प्रवर्तकत्वस्य । यथा वातपित्तकफेषु प्रकुपितस्यैव कार्यं दरीदृश्यते तथा । **तथासमर्थन**मिति स्वरूपव्यपाश्रयमित्यादि**शंकराचार्यभाष्या**नुवादेनोक्ताभासोक्तं समर्थनम् । **तथा** नाम परमात्मन उदासीनत्वेन मायाव्यपाश्रयप्रवर्तकत्वेन समर्थनम् । **माध्वभाष्ये** तु जडशरीरकत्वेङ्गित्वव्यवहारापत्तिः तस्याङ्गित्वस्यानुपपत्तेरित्युक्तम् ॥ ८ ॥

अन्यथानुमितौ च ज्ञशक्तिवियोगात् ॥ ९ ॥ तृतीयकार्यस्य नियमस्य विवरणं **निग्रह** इति । **अनुमीयन्त** इति अनुमानान्यग्रे वक्तव्यानि स्वयमेव । **वृत्तिरि**ति कारिकोत्तरार्धे समासघटकः शब्दः । अन्योन्यानि अभिभवाश्रयजननमिथुनानि वृत्तयो येषां ते गुणा इत्याशयेनाहुः **अन्योन्याभी**ति । **एव**मिति । प्रकृतेः साम्यावस्थोक्ता तस्या **गुणवृत्तं** गुणवर्तनं **साधारणक्रियया चलमङ्गीकृत्य तमसा रजोनियमनेन** रजोधर्मप्रवृत्तावपोदितायां नष्टायां सृष्टभावस्य प्रतिबन्धकाभावत्वेन कारणस्योपस्थित्या तमसा **प्रलयसिद्धिः** । आत्यन्तिकप्रलयमाहुः **तत्पूर्वक**मिति रजस्तमोभिभवपूर्वकं सत्त्वोद्रेके । **निर्मोक्षः** आत्यन्तिकप्रलयः । रजसा तमोभिभवे सृष्टिः, सत्त्वेन तमोनियमने स्थितिरिति **वृत्तिकृच्छ्रीकृष्णचन्द्राः** । **समर्थन**मिति 'साम्यवैषम्याभ्यां कार्यद्वयम्' इति षाष्ठसूत्रात् । **परी**ति सूत्रकारः । **विभागश** इति विभागं ददतीति विभागशः । **चले**ति चलदले दलं

तथापि पूर्वं ज्ञानशक्तिर्नास्तीति मन्तव्यम् । तथा सति बीजस्यैवाभावान्नित्यत्वाद्वानिर्मोक्ष इति ॥ ९ ॥

विप्रतिषेधाच्चासमञ्जसम् ॥ १० ॥

परस्परविरुद्धत्वान्मतवर्तिनां पञ्चविंशादिपक्षाङ्गीकारात् । वस्तुतस्त्वलौकिकार्थे वेद एव प्रमाणं नान्यदिति ॥ १० ॥

इति द्वितीयाध्याये द्वितीयपादे द्वितीयं पुरुषाश्मवदित्यधिकरणम् ॥ २ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

नुमाने रचनाऽनुपपत्त्यादयः सर्वे दोषाः परिहृता भवेयुरितिचेदत्र दूषणमाह **ज्ञशक्तिवियोगादिति** । सौत्रश्चोऽप्यर्थे । एवं प्रकारान्तरेणानुमितावपि तत्तत्काले तत्तत्कार्यं वाच्यं, न सर्वदा । क्रमानुपपत्त्यादिदूषणग्रासात् । तच्च तथा तदा भवति यदि तमसा कालो ज्ञायेत । सा तु **ज्ञानशक्तिर्भवतां मते** पुंप्रकृतिसंयोगात् **पूर्वं नास्तीति** स्वमतानुरोधान्**मन्तव्यम्** । **तथासति** प्रवृत्तिबीजस्य ज्ञानशक्तिसंयोगस्याभावात् प्रवृत्त्यसिद्धिः । अथ 'दिक्कालावाकाशादिभ्यः' इति सूत्रात् सृष्टिदशायां कालस्योत्पन्नत्वात् पुंयोगेन ज्ञानशक्तिसद्भावाच्च प्रवृत्तिः साध्यते, तथापि संयोगस्य नित्यत्वात् प्रलयदशायां कालस्यापि नाशाद् वियोजकान्तरस्य वक्तुमशक्यत्वात् पुरुषस्य गुणसाम्यादनिर्मोक्षस्तदवस्थ इति नानुमानान्तरेणापि तथासिद्धिरित्यर्थः ॥ ९ ॥

विप्रतिषेधाच्चासमञ्जसम् ॥ १० ॥ सर्वपक्षसाधारणं दूषणान्तरं वदति तन्मतस्यार्वाचीनत्वख्यापनायेत्याशयेनाहुः **परस्परेत्यादि** । तानि च मतान्येकादशस्कन्ध उद्धवप्रश्न

रश्मिः ।

तद्वत् प्रथमान्ताद्वतिः । हेतुसूत्रार्थत्वेन तथापीति भाष्यमित्याशयेन **तथापीति** भाष्यमवतारयन्ति स्म **सौत्रे** इति । **क्रमेति** आदिना प्रत्यक्षविरोधः । **तच्चेति** प्रलयकाले प्रलयरूपं कार्यं न त्वन्यस्मिन्काले । **तथेति** क्रमप्रकारेण । **तमसेति** तमसा प्रवृत्तिनिरोधे प्रलय इत्युक्तेस्तमः प्रलयकर्तृ । **ज्ञायेतेति** अयं प्रलयकाल इति ज्ञायेत । पुमिति पुंप्रकृत्योः संबन्धात् । **स्वमतेति** 'स हि सर्ववित्सर्वकर्ता' इति सूत्राज्ज्ञानशक्तिरीश्वरस्येति मतम् । **मन्तव्यमिति** अनेन ज्ञस्य या ज्ञानशक्तिस्तस्य वियोगात् अभावादिति सूत्रांशार्थश्च बोधितः । तथा सति **बीजस्येति** भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तथा सतीति** । **बीजस्येति** जानातीच्छति यतत इत्यत्रापि ज्ञानसंयोगः कारणं न तु तूष्णींस्थितज्ञानमिति बोधितं तस्याभावो हेतुरुक्तपरंपरायाः । **प्रवृत्त्यसिद्धिरिति** । तथा च चलस्वभावत्वं हेतुर्बाधित इति भावः । 'पक्षे साध्याभावो बाधः' यथाद्यक्षणावच्छिन्नो घटो रूपवान्पृथ्वीत्वात् पटवदित्यत्र । **अनित्यत्वाच्चेति** भाष्यमवतारयन्ति स्म **अथेति** । **पुंयोगेनेति** 'उपरागात्कर्तृत्वं चित्सान्निध्यात् चित्सान्निध्यात्'इति सूत्रात् । योग उपरागः संबन्धः । **साध्यत** इति । तथा च चलस्वभावत्वं हेतुर्न बाधित इति भावः । **नाशादिति** 'नाशः कारणे लयः' इति सूत्रात्कालस्याकाशादौ लयात् । **गुणेति** गुणसाम्यं प्रधानं संबध्य वर्तमानस्या**निर्मोक्षः** आत्माविवेकलक्षणः । **तदवेति** विजातीयद्वैतापत्तिश्चेति संगृह्यते । **नानुमानेति** चलस्वभावत्वलिङ्गकेन । **तथेति** गुणेषु प्रवृत्तिरूपप्रकारसिद्धिः ॥ ९ ॥

विप्रतिषेधाच्चासमञ्जसम् ॥१०॥ **सर्वपक्षेति** सर्वे पक्षा अत्रैव वक्तव्यास्तानि **चेत्यादि**ना । **तन्मतस्य** सांख्यमतस्य । **अर्वाचीनत्वं** वेदादिभ्यः । तत्कर्तुः स्मरणात् । **उद्धवेति** एकादशस्

भाष्यप्रकाशः।

उक्तानि। 'केचित् षड्विंशतिं प्राहुरितरे पञ्चविंशतिम्। सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे। केचित् सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश' इति। एतेषां स्वरूपं च तत्रैव भगवता प्रोक्तम्। तच्च सर्वं यौक्तिकत्वादनादरणीयम्। भगवता तथोक्तत्वात्। 'युक्तयः सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा। मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किन्नु दुर्घटम्। नैतदेवं यथाऽऽत्थ त्वं यदहं वच्मि तत् तथा। एवं विवदतां हेतुं शक्तयो मे दुरत्ययाः। यासां व्यतिकरादासीद् विकल्पो वदतां पदम्। प्राप्ते शमदमेऽप्येति वादस्तमनुशाम्यति' इति। तर्हि, 'तमो वा इदमेकमेवाग्र आसीत्' इत्यादिश्रुत्युक्तस्य का गतिरित्यत आहुः वस्तुत इत्यादि। तद्रीत्या तदङ्गीकारे तु भगवत्परत्वान्न दोष इत्यर्थः। एवं दशभिः सूत्रैः सांख्यसमयो निराकृतः॥ १०॥

इति द्वितीयं पुरुषाश्मवदित्यधिकरणम्॥ २॥

रश्मिः।

द्वाविंशे 'कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो। नवैकादश पञ्चत्रीण्यात्थ त्वमिति शुश्रुम' इत्युपक्रम्योक्तानि। **त्रयोदशेति**। तथा च विप्रतिषेधात् मतवर्तिनां मध्ये परस्परं विशेषेण पञ्चविंशादिपक्षे तत्तन्मतप्रतिषेधेन रुद्धत्वाद्धेतोः पञ्चविंशादि(पक्षादि)पक्षाङ्गीकारादिति भाष्यार्थः। **भगवतेति** 'परस्परानुप्रवेशात्तत्त्वानां पुरुषर्षभ। पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा वक्तुर्विवक्षितम्। एकस्मिन्नपि दृश्यन्ते प्रविष्टानीतराणि च। पूर्वस्मिन्वा परस्मिन्वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः। पौर्वापर्यमतोऽमीषां प्रसंख्यानमभीप्सताम्। यथा विविक्तं यद्वक्त्रं गृह्णीमो युक्तिसंभवात्' इति अन्योन्यस्मिन्प्रवेशाद्वक्तुर्विवक्षामनतिक्रम्य संख्या भवति। तथापि विविक्तं निश्चितं यद्वक्त्रं वक्ति तद्गृह्णीम इत्यर्थः। सौत्रमसमञ्जसपदं हेतुपूर्वकं विवृण्वन्ति स्म **तच्चेति**। तथा चासमञ्जसत्वमनादरणीयत्वम्। उक्तमेवाहुः **युक्तय** इति। इदं प्रश्नोत्तरम्। **यासामिति**। **व्यतिकरा**त्क्षोभात्। **विकल्पो** भेदः। **पदं** विषय आसीदित्यर्थः। **अप्येति** विकल्पोऽप्येति। **तमो वा इदमिति**। **उक्तस्य का गतिरिति** समाकर्षाधिकरणे समाहितस्यापि सांख्यमते 'माया च तमोरूपा' इति नृसिंहतापिनीयोक्तस्य तमसः का गतिरिति प्रश्नः। **तद्रीत्येति** अलौकिकार्थे वेदस्य प्रामाण्याच्छ्रुत्युक्तरीत्या। तमसः सर्वपूर्वत्व**स्याङ्गीकारे तु**। तुः तमोमायात्वपक्षं व्यावर्तयति। **भगवदिति** तमःपदस्य भगवद्वाचकत्वादित्यर्थः। एतच्च प्रथमस्य चतुर्थपादे समाधिकरणे स्फुटम्। 'माया च तमोरूपा' इति तु मायायास्तमःप्राधान्ये तमःप्राधान्यं द्योतयति वा। **दशभिरिति** दशेन्द्रियाणि न शास्त्रान्तरपराणि कर्तव्यानीति संख्यातात्पर्यम्। वक्ष्यन्ति च भाष्यसमाप्तौ 'मुधा बुधा धावत नान्यवर्त्मसु' इति। **निराकृत** इति भाष्ये इतिशब्दः सांख्यनिराकरणसमाप्तौ। सिद्धान्ते त्वियान्विशेषः। द्वितीयस्कन्धनवमाध्यायोक्तमतेऽवस्थितिः तत्र धर्मी एकः एकाकी च ब्रह्मात्मशब्दवाच्यः। तस्य धर्मित्वेऽप्युभयरूपत्वेन वर्णनं तत्रैव। एवं च पुरुषः कारणवान् विरुद्धसर्वधर्माश्रयश्च। ब्रह्मत्वमात्मत्वं च विरुद्धम्। विशेष्यविशेषणसंबन्धानवगाहि ज्ञानं ब्रह्म। विशेष्यविशेषणसंबन्धावगाहि ज्ञानमात्मेति तयोर्भेदः। ननु 'आत्मैवेदमग्र आसीत्' 'ब्रह्मैवेदमग्र आसीत्' इति बृहदारण्यके नवमाध्याये च ब्रह्मणे एकाक्येव रूपं प्रदर्शितं, गोपालतापिनीये च 'स्वरूपं द्विविधं चैव सगुणं निर्गुणं तथा' इत्येकमेवाद्वितीयं ब्रह्मेति कथमिति चेच्छृणु। एकमेव शब्दब्रह्म प्रयोगे द्वित्वप्रतीतं क्रियते शब्दार्थभेदेन। द्वन्द्वं न्यञ्चि पात्राणि प्रयुमक्तीति क्रियाप्रयोगेऽत्र तु विरुद्धधर्माश्रयो गृह्यते

रश्मिः ।

प्रयोगे ब्रह्मत्वमात्मत्वं चेति । 'औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन संबन्धः' इति जैमिनिसूत्रे । अस्य पुरुषस्याभिन्ननिमित्तोपादानत्वम्, प्रधानकारणानुमानदूषणात् । प्रधानं तु 'यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् । प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेषवत्' इति गुणत्रयात्मकं यद्यपि तथाप्युद्गतास्त्वंशतो गुणा अपि भवन्ति । 'सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः परः पुरुषः' इति प्रथमस्कन्धादिति सांख्याद्विशेषः । नित्यं स्वरूपात्मकत्वात् । 'प्रकृतिश्च' इत्यधिकरणे उक्तं प्रकृतेः स्वरूपात्मकत्वं सदसदात्मकत्वम् । समाकर्षादित्यधिकरणेन स्वरूपविशेषणात् । कार्यभावशून्यं कार्यवदित्यविशेषं विशेषवदिति । एते च गुणाः 'प्रजायेय'इतीच्छया जघन्यतां गताः सच्चिदानन्दानामाभासा अंशा भगवत उत्पन्नायां तस्यां शक्तौ प्रतिष्ठितास्तस्याः प्रधानत्वं बोधयन्ति । गुणलक्षणानि तु 'तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् । सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ' इति वाक्यात्सुखानावरकत्वे प्रकाशकत्वे सुखात्मकत्वे च सति सुखासक्त्या ज्ञानासक्त्या च देहिनो देहाद्यासक्तिजनकं सत्त्वम् । प्रकाशो वस्तुयाथात्म्यावबोधः । पदकृत्यं तु स्पष्टं **प्रस्थानरत्नाकरे** । 'रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् । तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्' इति वाक्याद्रागात्मकं वा तृष्णासङ्गादिजनकं वा कर्मासक्त्या देहिनो नितरां देहाद्यासक्तिजनकं वा रजः । प्रथमं स्वरूपलक्षणम् । 'पुंसोः परस्परं स्पृहा रागः' इति रामानुजाचार्याः । विषयेषु गर्द्ध इति परे । द्वयं तु कार्यलक्षणम् । गुणान्तरेऽतिव्याप्तिव्युदासाय कर्मासक्त्येति । बन्धने सत्त्वादाधिक्यं नितरामिति पदं बोधयति । 'तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् । प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत' इति वाक्यात् । आवरणशक्तिजन्यं सर्वदेहिमोहकं प्रमादालस्यनिद्राभिर्देहिनो देहाद्यासक्तिजनकं तमः । अत्रान्यथासूत्रे एतेषां स्वतोऽनुवर्तनादिकमुक्तं सांख्यैस्तन्न । जडत्वेन स्वभाववादोऽनीश्वरवादश्च स्यात्स चानिष्टः । 'कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा' इति श्रुतौ चिन्त्यत्वोक्तेः । अन्योन्यजननमिथुनवृत्तित्वमप्यसंभवि । लक्षणसांकर्यप्रसङ्गात् । रजसो दुःखात्मकत्वं च तथा । रागात्मकत्वाद् एतदुपादानीभवति । कदाचिद्यदृच्छयेति सदसदात्मकमिति पदेनावसीयते । अत एवैकादशे 'प्रकृतिर्गुणसाम्यं हि प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः । सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः । सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते । गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च' इति । इमानि गुणलक्षणानि शोभनानि । गुणव्यतिकरः गुणक्षोभकः । क्षोभश्च कार्योन्मुखत्वम् । तत्त्वानि तु नव 'पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमहंकारो नभोऽनिलः । ज्योतिरापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव' इत्येकादशे द्वाविंशाध्याये भगवद्वचनात् । तत्त्वं च तस्य भाव उच्यते । भगवतः कारणता नवधा लोके प्रकटेति यावत् । तथा च पदार्थस्त्वेक एव ब्रह्माख्यः[1] । नैयायिकास्तु प्रकृत्यहंकारयोः स्थाने दिक्कालौ पठन्ति तन्न । प्रकृत्यहंकारयोः सार्वजनीनत्वात् दिक्कालयोश्चेश्वरानतिरेकात् । तथा च पदार्थतत्त्वविवेचने दीधितिकृत् । दिक्कालावीश्वरान्नातिरिच्येते प्रमाणाभावात् । न च पूर्वस्यां दिशि घटः इदानीं घट इति प्रतीत्यपलापप्रसङ्ग इति वाच्यम् । तत्तन्निमित्तसमवधानवशादीश्वरादेव तादृशप्रतीत्युपपत्तेः । न चेश्वरे घट इति प्रतीत्यापत्तिः । 'यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा । स्यादिदं भगवान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः' इति वाक्यादनापत्तेः । कालदिक्शब्दवाच्ये त्वीश्वरे लोकप्रतीतिः । प्रकृतमनुसरामः । पुरुषस्त्वात्मा । स्वयंप्रकाशत्वं तत्त्वम्, तच्च ब्रह्मण्यतिव्याप्तमिति चेन्न । अनादित्वे निर्गुणत्वे प्रकृतिनियामकत्वे सति अहंवित्ति-

१. शब्दाख्यः ।

रश्मिः ।

वेद्यत्वस्य तल्लक्षणत्वात् । प्रकृतिनियामकत्वं सांख्याद्विशेषः । इदमपि तत्रैवाव्याप्तमिति चेन्न । 'आत्मैवेदमग्रे' इत्यत्र सादित्वस्य महदादिसमानाधिकरणस्य निषेधात् । तथा च सादित्वाभावोऽग्रपदार्थः 'द्विधा समभवद् बृहत्' इति वाक्यात् । न चैवमपि न निस्तार एतादृशाऽनादित्वस्य ब्रह्मत्वाऽवच्छेदकत्वादिति शङ्क्यम् । विश्वगतगुणदोषसंबन्धाभावे सति सम्यग्गुणदोषसंसर्गवत्त्वमिति लक्षणात् । 'जगृहे पौरुषं रूपम्' इत्यत्र ब्रह्माण्डतनोरुदरे सृष्टिरिति बहिर्गुणदोषसंबन्धाभावेऽप्युदरे तथेति नासंभवः । स्पष्टं चेदमाकरे । एवमप्यतिव्याप्तौ ब्रह्मभिन्नत्वे सतीति विशेषणं देयम् । सोऽयं न नाना किंत्वेक एव । 'कालवृत्त्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः । पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान्' इति वीर्याधानमात्रार्थं करणत्वेनैकपुरुषापेक्षणात् । सांख्ये त्वयमेवेश्वर उपाधिभेदभिन्नो जीव इत्युच्यत इति महान् भेदः । तदुक्तं तृतीयस्कन्धे 'अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः । प्रत्यग्धामा स्वयंज्योतिर्विश्वं येन समन्वितम्' प्रत्यक् अन्तर्मुखतया धाम स्फूर्तिर्यस्य । अहंवित्तिवेद्य इत्यर्थः । प्रकृतिस्तु व्याख्याता । व्यक्तं महत्तत्त्वम् । तच्च 'तमो रजः सत्त्वमिति प्रकृतेरभवन्गुणाः । मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेन च । तेभ्यः समभवत्सूत्रं महान्सूत्रेण संयुतः' । सूचनात्सूत्रं क्रियाशक्तिमान्प्रथमो विकारस्ततो महान् ज्ञानशक्तिमान् । महान्नाम स्थूलमाद्यं कार्यं वा । स च सूत्रेण संयुतः सम्यग्मिश्रः । किंत्वेकमेव तत्त्वं ज्ञानक्रियाशक्तिभ्यां द्विधोच्यत इति । तच्च हिरण्मयं 'महत्तत्त्वं हिरण्मयम्' इति वाक्यात् । आनन्दसतोरैक्ये हिरण्यरूपता । कूटस्थत्वे सति स्वस्वाधारविश्वव्यञ्जकत्वम् । प्रकृतावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यम् । ब्रह्माण्डेऽतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तम् । जगदङ्कुरत्वम्, अतिसमर्थतमोनाशकत्वमित्यपरं लक्षणद्वयम् । वासुदेवाविर्भावस्थानं शुद्धसत्त्वात्मकं चेतरत् । चित्तत्वं तु सांख्यसमानं लक्षणमिति भेदः । अहंकारस्तु महतः कार्यं चिदचिन्मयश्च । अहं जानामीतिवदहं कुर्व इति चिदाभासरूपत्वात् । तन्मात्रेन्द्रियमनोजनकतमआदिगुणकत्वं तन्मात्राजनकत्वं तामसत्वम् । इन्द्रियजनकत्वं राजसत्वम् । मनोजनकत्वं सात्त्विकत्वम् । संकर्षणाधिष्ठानत्वमाधिदैविकं लक्षणम् । संकर्षणो देवतेत्यर्थः । संकर्षणश्च पुरुषान्नातिरिच्यते । कर्तृत्वं करणत्वं कार्यत्वं चेत्यपराणि लक्षणानि । कर्ताहमितिबुद्धिविषयकत्वं कर्तृत्वम् । एवमन्यदपि ज्ञेयम् । शान्तघोरविमूढत्वमित्यपरम् । निरहंकारस्य नैते भावा उत्पद्यन्ते । शान्तत्वं सात्त्विकाहंकारस्य । घोरत्वं राजसस्य । विमूढत्वं तामसस्येति । विशेषस्तु तृतीयस्य षड्विंशाध्याये **सुबोधिन्यां** द्रष्टव्यः । मनस्त्वनित्यं क्षितौ निविशते । 'अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्मांसं योणिष्ठस्तन्मनः' इति श्रुतेः । गुणाद्यन्तर्भावस्तु समवायाभ्युपगमसूत्रे वक्तव्यः । अत्र **शंकरभास्कराचार्याभ्यां** वेदान्तेऽपि विप्रतिषेधादसमञ्जसमुक्तम् । तत्सगुणब्रह्माङ्गीकारे जीवब्रह्मवादापत्त्या संभवति । आदित्यान्तःस्थस्य पुरुषान्तःस्थस्य च तैत्तिरीय ऐक्याङ्गीकारात् तप्यतापकभावाशङ्का । प्रकृते तु तप्यत्वस्य दुःखरूपस्याविद्यकत्वम् । वाराहे चातुर्मास्यमाहात्म्ये यत उक्तम् 'मनसीर्ष्यासूयादीनां सुखे सामानाधिकरण्येन सत्त्वे सुखं दुःखायते' इति । **रामानुजाचार्यास्तु** स्वयुक्तिभिः सांख्योपन्यासेन च विप्रतिषेधादसमञ्जसमित्याहुरन्यदप्याहुः । येऽपि कूटस्थनित्यनिर्विशेषस्वप्रकाशचिन्मात्रं ब्रह्माविद्यासाक्षित्वेनापरमार्थिकबन्धमोक्षभागिति वदन्ति तेषामप्युक्तरीत्याविद्यासाक्षित्वाध्यासाद्यसंभवान्महदसामञ्जस्यमेव । इयांस्तु विशेषः । सांख्या जननमरणप्रतिनियमादिव्यवस्थासिद्ध्यर्थं पुरुषबहुत्वमिच्छन्ति ते तु तदपि नेच्छन्तीति सुतरामसामञ्जस्यमिति । अत्राप्यस्माकं तद्धजीवाणुत्वादुपपन्नम् । न च विशिष्टाद्वैते चिद्विशिष्यान्न विशिष्टे तथात्वं किंतु चित एव । प्रकृते त्वैक्यात्तप्य-

महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् ॥ ११ ॥ (२-२-३)

इदानीं परमाणुकारणवादो निराक्रियते । तत्र स्थूलकार्यार्थं प्रथमं परमाणुद्वयेन द्व्यणुकमारभ्यते । परमाणुद्वयसंयोगे द्व्यणुकं भवतीत्यर्थः । तत्रोपर्यधो-

भाष्यप्रकाशः ।

महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् ॥ ११ ॥ अतः परं सप्तसूत्र्या नैयायिकादिसमयोत्र निराक्रियते । केचिदिदं सूत्रं ब्रह्मकारणवाददूषणपरिहारार्थत्वेन व्याकुर्वन्ति । तदयुक्तम् । ब्रह्मकारणवादे प्रसक्तानां विलक्षणत्वादीनां दोषाणां पूर्वस्मिन् पाद एव न विलक्षणत्वाद्यधिकरणैर्निवारितत्वेन प्रसङ्गाभावात् पुनरुक्त्यापादकत्वाच्चेत्यभिप्रेत्याहुः **इदानीमित्यादि** । अत्रासमञ्जसमिति पूर्वसूत्रादनुवर्तत इति केचिदाहुः । वस्तुतस्त्वग्रिमसूत्रेणैतस्यान्वयः । वाशब्दो विकल्पार्थः । तथा च **ह्रस्वपरिमण्डलाभ्यां परमाणुभ्यां जायमानं द्व्यणुकं महत् स्याद् दीर्घवद् वा स्यान्न त्वणु ह्रस्वमिति** । तदिदं व्याकुर्वन्ति **तत्रेत्यादि** ।

रश्मिः ।

त्वापत्तिरिति वाच्यम् । तत्त्वमस्यादिस्थले तस्य त्वमित्यपि समासात् । अभेदपक्षे तु ह्यविद्यासंबन्धादेव तप्यत्वमित्युक्तम् । माध्वभाष्ये तु न विशेषः । अत्राधिकरणे प्रेरितकारणप्रतिपादकातिविषयाच्च प्रेरितकारणप्रतिपादकैः संशय्य प्रेरितकारणकं जगत् 'सृजामि तन्नियुक्तोऽहम्' इत्यादिवाक्यात्प्रेरितं कारणमिति प्राप्ते सिद्धान्तः । अप्रेरितं कारणं अलौकिकार्थे वेद एव प्रमाणं नान्यदिति हेतोः । न च प्रेरितकारणस्य स्मार्तत्वेन विषयाद्यसंभव इति शङ्क्यम् । 'इतिहासपुराणं च वेदानां पञ्चमो वेदः' इति छान्दोग्याद्वेदत्वमिति नासंभवात् विलक्षणवेदत्वादधिकरणान्तरम् ॥ १० ॥

इति द्वितीयं पुरुषाश्मवदित्यधिकरणम् ॥ २ ॥

महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् ॥ ११ ॥ **नैयायिकादीति** आदिशब्देन वैशेषिकः । अधिकरणसमासौ वैशेषिकशब्देनातद्गुणसंविज्ञानो वा । अत्रापि प्रतिबन्धकीभूतजिज्ञासानिवृत्त्यर्थं प्रथमं सांख्ययोगशास्त्रीयकर्त्रादिजिज्ञासानिवृत्तिः तस्यां सत्यां नैयायिकादिसमये निराकरणावसर इत्यवसरसंगतिः । सावधानेत्याद्युक्तप्रसङ्गसंगतिस्तु वर्तत एव । **आदिपदेन** 'कणादेन तु संप्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत् । गौतमेन तथा न्यायम्' इतिवाक्यादादिपदेन वैशेषिकः । **निराक्रियत** इति उक्तवक्ष्यमाणप्रकाराभ्यां निराक्रियते । **केचिदिति शंकराचार्याः** । **प्रसङ्गेति** । तथा संगतत्वादित्यर्थः । संगतिसामान्यलक्षणे प्रसङ्गाभिनिवेश ईक्षत्यधिकरण उक्तः । **चेति** । यत्तु प्रधानगुणानां बुद्ध्यादीनां जगत्यनन्वयात्प्रधानस्यानुपादानत्वमुक्तम् । तथा ब्रह्मगुणचैतन्यानन्वयाद् ब्रह्मणो नोपादानत्वमिति दोषो दृष्टान्तसंगतिलाभादत्र स यस्य समन्वय इति तच्चैतन्यान्वयस्य समन्वयाधिकरणे साधनाद्दोषास्फुरणादसंगतं स्फुरणे वा स्मरणमात्रनिवृत्त्या सूत्रप्रणयनवैयर्थ्यमेवेति ध्येयम् । **केचिदिति रामानुजाचार्याः** । तथा च भाष्यं 'असमञ्जसमिति वर्तते' इति । अतोऽसमञ्जसं तन्मतमित्येवम् । परंतु वाक्यपरिसमाप्तिस्त्वतो द्व्यणुकस्याभाव इत्यनेनेति । वस्तुतस्तु पक्षमाहुः **वस्तुतस्त्विति** । तं तत्रैव वक्ष्यन्ति । एवं च ह्रस्वेत्यादिना भास्कराचार्या अध्याहरन्ति । माध्वशंकराचार्यास्तु सूत्रद्वये भिन्नं भिन्नं प्रमेयमाहुः । अतोन्यत्तत् । वाशब्दश्चार्थ इति शंकराचार्योक्तं माध्वाचार्यरामानुजाचार्योक्तं च निषेधन्ति स्म **वाशब्द** इति । भास्कराचार्यास्तु 'वाशब्दादध्याहृत्य योजना कर्तव्या' इत्याहुः । **ह्रस्वेति** । ह्रस्वत्वं परमह्रस्वत्वपरमाणुपरिमाणत्वं परितो मण्डलं च तद्विशिष्टः परमाणुस्ताभ्यामित्यर्थः । **न त्वण्विति** द्व्यणुकेप्यणुपरिमाणं नैयायिका मन्यन्ते । **व्याकुर्वन्तीति** संपूर्णसूत्र-

भाष्यप्रकाशः

अयमर्थः। तेषां मते सर्वं जगद् उपादानभूतेभ्यो नित्येभ्यः परमाणुभ्यो द्व्यणुकादिक्रमेणोत्पद्यते। तत्रैषा युक्तिः। सूक्ष्मादेव स्थूलस्योत्पत्तिर्लोके दृश्यते। तन्तुभ्यः पटस्य, अंशुभ्यस्तन्तूनां चोत्पत्तिदर्शनात्। स चापकर्षः परमकारणद्रव्यमतिसूक्ष्ममवस्थापयति परमाणुरूपम्। तस्य सावयवत्वाङ्गीकारे त्वनन्तावयवत्वेन मेरुसर्षपयोः समानपरिमाणत्वप्रसङ्गः। एवं सिद्धाः परमाणवः पार्थिवाप्यतैजसवायवीयभेदाच्चतुर्विधा नित्याः प्रलयकालेऽवतिष्ठन्ते। किंच। कार्यमात्रं लोके समवाय्यसमवायिनिमित्ताख्यकारणत्रयजन्यं दृश्यते। यथा पटे तन्तवः समवायिकारणम्। तेषां परस्परं संयोगोऽसमवायिकारणम्। तुरीवेमकुविन्दादयश्च निमित्तकारणम्। एवमाद्यकार्येऽपि परमाणवः समवायिनस्तत्संयोगोऽसमवायी। अदृष्टेश्वरेच्छादिकं च निमित्तम्। तत्र जीवादृष्टसहकृतेश्वरेच्छावशाद् वा, ईश्वरेच्छावशगादृष्टवदात्मसंयोगाद् वा परमाणुषु कर्मोत्पद्यते। ततस्ते परमाणवः परमाण्वन्तरेण संयुज्यमानाः प्रत्येकं द्व्यणुकरूपं कार्यमारभन्ते। बहवस्तु परमाणवः संयुक्ता न सहसा स्थूलं कार्यमारभन्ते,

रश्मिः।

भाष्येण व्याकुर्वन्ति। **स चे**ति कारणसौक्ष्म्यम्। **परमे**ति परमाणुरूपमित्यस्य विशेष्यम्। अतः परमाणौ विश्राम इति भावः। स च नित्यः। अन्यथानवस्थितकारणककार्योत्पत्तिप्रसङ्गः। **अवे**ति अणुकं सावयवं चाक्षुषद्रव्यत्वाद् घटवदित्यनुमानेन तदवयवसिद्धौ त्रसरेणोरवयवाः सावयवाः महदवयवत्वात् कपालवदित्यनुमानेनावस्थापयतीत्यर्थः। साध्यवदन्यस्मिन्नाकाशादौ साधारण्यवारणाय चाक्षुषेति। **अनन्ते**ति अवयवावयवधाराया अनन्तत्वात्तथा। अयं हेतुः। **मेर्वि**ति मध्यमपरिमाणौ। अयं पक्षः। **समाने**ति। इदं साध्यम्। तथा च मेरुसर्षपौ समानपरिमाणौ अनन्तावयवत्वात्, घटवत्। **पार्थिवाप्ये**ति आप्येति पदच्छेदः। **कार्यमात्र**मिति द्रव्यं बोध्यम्। केषांचिदसमवायिकारणाभावात्। **समवायी**ति 'यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्'। **असमवायी**ति कार्यैकार्थकारणैकार्थान्यतरप्रत्यासत्त्या ज्ञानादिभिन्नमसमवायिकारणम्। कार्यैकार्थप्रत्यासत्त्या ज्ञानमिच्छा कारणमित्यतिव्याप्तिवारणाय ज्ञानादिभिन्नमित्युपात्तम्। आदिपदेन यत्नं प्रति कारणीभूताया इच्छायाः संग्रहः। अत्रापि कार्यैकार्थप्रत्यासत्त्या तन्तुसंयोगोसमवायिकारणम्। तुरीतन्तुसंयोगस्यापि पटं प्रति कार्यैकार्थप्रत्यासत्त्या कारणत्वादसमवायित्वं पटं प्रति युक्तं परत्वादिना तस्यापि संग्रहान्न भवति। **तत्र** इति अदृष्टेश्वरेच्छादिके विचार्यमाणे। ईश्वरेच्छामात्रस्य कारणत्वे देवदत्ताद्यदृष्टभोग्यव्यवस्थोत्पन्नेषु न स्यादतो विशेषणम्। अनीश्वरवादापत्त्या विशेष्यम्। कारणतावच्छेदकद्वयापत्त्येश्वरस्य संसारमहीरुहस्य बीजत्वं न स्यादत आहुः **ईश्वरेच्छे**ति। ईश्वरस्येच्छावशं गच्छन्ति ये ते ईश्वरेच्छावशगाः ईश्वरेच्छाकारणका अदृष्टवन्त आत्मानः तेषां संयोगात्। अन्यथा जीवानां परमाण्वादिभोगो न स्यात्। तूष्णीं जीवा न कारणाभोग्यसांकर्यप्रसङ्गादतो यत्र यस्य संयोगः तत्तस्य भोग्यमिति न संयोगः कारणतावच्छेदकैक्यान्नानीश्वरवादापत्तिः। नैयायिकव्याख्याने स्पष्टम्। ननु संहत्य परमाणवः कार्यमुत्पादयन्तु किं द्व्यणुकादिक्रमेणेत्यत आहुः। **बहवस्त्वि**ति। पक्षसंख्याविस्मरणायेदम्। न तु पक्षान्तर्गतम्। साध्याप्रसिद्धिवारणाय संयुक्ता इति पक्षविशेषणम्। असमवायिकारणविधुरे समवायिनि साध्यप्रतियोग्यप्रसिद्ध्या साध्याप्रसिद्धिः। बाधवारणाय सहसेति 'अतर्किते तु सहसा' इत्यमरात्, सहते। षह मर्षणे

भाष्यप्रकाशः ।

परमाणुत्वे सति बहुत्वात्, घटोपगृहीतपरमाणुवत् । न चात्र मानाभावः । नष्टे घटे कपालादिदर्शनस्यैव मानत्वात् । तैरेव घटारम्भे तु मुद्गरादिना घटनाशे तदवयवानां परमाणूनामतीन्द्रियत्वान्न किंचिदुपलभ्येत । तस्मान्न बहूनां परमाणूनां सहसा स्थूलकार्यारम्भकत्वं किंतु द्व्यणुकादिक्रमेणैव महाकार्यारम्भ इति द्व्यणुकमेवाद्यं कार्यं द्वाभ्यां परमह्रस्वपरिमण्डलपरिमाणाभ्यां परमाणुभ्यामारभ्यते । किंच । द्रव्येण द्रव्यान्तरारम्भवद् गुणेन गुणान्तरारम्भ इति परमाणुद्वयगतया द्वित्वसंख्यया द्व्यणुकेणुत्वं ह्रस्वत्वं च परिमाणान्तरमारभ्यते । अणु च पारिमाण्डल्यादन्यत् । पारिमाण्डल्यं च परमाणुत्वस्यैव नामान्तरम् । पर-

रश्मिः ।

असाप्रत्ययः । अवितर्किते अविचारिते । तथा च तर्काप्रतिष्ठानाद्वितर्कितस्थूलकार्यारम्भकत्वस्य पक्षे सत्त्वाद्बाधः । अवितर्कितस्थूलकार्यारम्भकत्वं तु नास्तीत्यबाधः । संयुक्तपरमाणुषु अवितर्कितं कार्यं द्व्यणुकादिरूपं तादृशकार्यारम्भरूपसाध्यदर्शनादपक्षताप्रसङ्गवारणाय स्थूलमिति, महत्परिमाणावच्छिन्नमित्यर्थः । सिषाधयिषाविरहविशिष्टसिद्ध्यभावः पक्षता । सिद्धिः साध्यसिद्धिः अनुमितिप्रतिबन्धिका । 'संदिग्धसाध्यवान्पक्षः' इति वा । तेन सहसा स्थूलकार्यारम्भकत्वाभाववत्त्वं साध्यम् । द्व्यणुके साधारण्यवारणाय हेतौ विशेष्यम् । तथा च द्व्यणुके साध्यप्रतियोगिरूपसाध्याभाववति परमाणुत्वस्य सत्त्वात्साधारण्यम् । बहुत्वरूपविशेष्याभावान्न साधारण्यम् । बहुकपालेषु बहुकपालकघटजनकेषु साध्याभाववत्सु बहुत्वरूपहेतुसत्त्वात्साधारण्यं तद्वारणाय विशेषणम् । तथा च परमाणुत्वाभावान्न साधारण्यम् । परमाणुनिष्ठबहुत्वं हेतुतावच्छेदकं लाघवात् । नन्वतीन्द्रियलिङ्गकानुमानमिदं कथं साध्यं साधयिष्यतीत्याशङ्क्य प्रतिषेधति स्म **न चात्रेति** । **अत्रेति** हेतौ । **मानं** व्याप्तिज्ञानं तस्या**भावः** । अथवा । दृष्टान्ताभावं शङ्कते **न चात्रेति** । **अत्रेति** दृष्टान्ते । **कपालादी**ति त्रसरेणुपर्यन्तं दर्शनं प्रत्यक्षं द्व्यणुकादिविषयकं तु योगिनामिति । योग्ययोगिसाधारणं **दर्शनं** तस्यैव **मानत्वात्** । पूर्वपक्षे कपालादीत्यतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः दर्शनयोगिनामेव । पीलुपाकवादिनां मतेनाह **तैरेवे**ति । एवकारेण पिठरनिषेधः । **किंचित्** कपालशकलादि । अतः पिठराणामपि कारणत्वमिति भावः । **परमाणूनामि**ति । **परमे**ति परमह्रस्वमणुपरिमाणेतरत् । अणुह्रस्वमहद्दीर्घभेदेन चतुर्षु परिमाणेषु । **परिमण्डले**ति भावप्रधानः । परिमण्डलत्वमणुपरिमाणं ते परिमाणे ययोस्ताभ्यां परमाणुभ्याम् । भाष्ये स्थूलकार्यत्वमुद्देश्यतावच्छेदकमुक्तमत्र च महाकार्यारम्भ इत्युद्दिष्टं तदुपपादयामासुः **किंचे**त्यादि । **ह्रस्वत्वमि**ति परमह्रस्वत्वम्, द्रव्यचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति महत्त्वेन कारणत्वान्न ह्रस्वत्वे चाक्षुषत्वं वा द्व्यणुकादौ । तर्हि ह्रस्वत्वे परमेतिविशेषणं न देयम् । अणुपरिमाणेनैव चारितार्थ्ये इदं त्रसरेणुपरिमाणारम्भार्थम् । अणुमात्रस्याणुतरपरिमाणजनकत्वात् । तर्हि त्रसरेणुपरिमाणं ह्रस्वजन्यं भवतु अणुतरस्य जनकत्वं मास्त्वित्याकाङ्क्षायामणुतरपरिमाणस्यैवाभावादणुह्रस्वैश्चाणुव्यवहारशून्यैः सुखेन महदादिपरिमाणजनकत्वसंभवाच्च तदर्थमणुपरमाण्वोरभेदभ्रमं वारयन्ति परमाणोः सकाशाद्द्व्यणुकपरिमाणभेदसाधनाय **अणु चे**ति । न च नामभेदाद्भेद इति शङ्क्यम् । पूर्वमीमांसामतत्वात् । संज्ञाया भेदकत्वे श्यामघटाद्रक्तघटः पाकदशायां भिन्नः स्यात् । अतो लक्षणं भेदकम् । ह्रस्वं तु भवति च पुनरणुपारिमाण्डल्यादन्यत् । रूढ्याह **पारिमाण्डल्यमि**ति । तदुक्तम्-'पारिमाण्डल्यभिन्नानां कारणत्वमुदाहृतम्' इति भाषापरिच्छेदे । पारिमाण्डल्यमणुपरिमाणमित्यपि स्थितम् ।

भाष्यप्रकाशः ।

माणुत्वं त्वनारम्भकम् । द्वित्वसंख्या तु महेश्वरीयया अपेक्षाबुद्ध्या जन्यते । तथा त्रिभिर्द्व्यणुकैस्त्र्यणुकमारभ्यते । द्व्यणुकगतया बहुत्वसंख्यया त्र्यणुके महत्त्वं दीर्घत्वं च परिमाणान्तरमारभ्यते । द्व्यणुकगते अणुत्वह्रस्वत्वे त्वनारम्भके । तथा द्वाभ्यां तु द्व्यणुकाभ्यामपि न द्रव्यमारभ्यते । द्व्यणुके बहुत्वमहत्त्वप्रचयविशेषाभावेन द्व्यणुकजनितकार्ये महत्त्वानारम्भे तस्य कार्यस्य द्व्यणुकतुल्यतायां तद्वैयर्थ्यप्रसङ्गात् । किंच । विश्वनिर्माणस्य जीवादृष्टजन्यतया तद्भोगार्थत्वाद् द्व्यणुकभोगस्य कारणद्व्यणुकेनैव सिद्धेः कृतं तत्कार्येण द्व्यणुकान्तरेणेति । अत आरम्भसार्थक्याय बहुभिरेव द्व्यणुकैस्त्र्यणुकचतुरणुकादीनि भोगभेदायारभ्यन्ते । एवं क्रमेण वायवीयपरमाणुसंयोगेभ्य उत्पन्नो महान् वायुर्नभसि दोधूयमानस्तिष्ठति । तदनन्तरं तस्मिन्नेवाप्येभ्यस्तेभ्यस्तथैवोत्पन्नः सलिलनिधिः पोप्लूयमानस्तिष्ठति । तदनन्तरं तथैवोत्पन्ना पृथिवी तत्रैव संहतावतिष्ठते । तदनन्तरं तस्मिन्नेव महोदधौ तथैवोत्पन्नस्तेजोराशिर्देदीप्यमानस्तिष्ठतीत्यादिः प्रक्रिया काणभुजेभ्यः सप्तमाध्यायादिसूत्रेभ्यः सिद्धा तद्भाष्यादिभ्योवगम्यते ।

रश्मिः ।

तदनारम्भकं द्व्यणुकपरिमाणस्यानुत्कृष्टत्वात् । परिमाणस्य स्वसजातीयोत्कृष्टपरिमाणजनकत्वात् । संख्यायाः परमाणुगताया नित्यत्वमाशङ्क्याह **द्वित्वेति** । **अपेक्षेति** प्रथममयमेकोयमेक इत्यपेक्षाबुद्धिः । ततो द्वित्वोत्पत्तिः । ततो विशेषणज्ञानं द्वित्वनिर्विकल्पात्मकम् । ततो द्वित्वविशिष्टप्रत्यक्षमपेक्षाबुद्धिनाशश्च ततो द्वित्वनाश इति प्रक्रिया । **अनारम्भके** इति । अणुकस्याप्रत्यक्षतापादकत्वादिति भावः । तेन द्वयोः परमाण्वोर्द्वयोर्ह्रस्वयोर्मिलने न परमाणुबुद्धिः । घटपटौ न घट इत्येकदेशप्रतियोगिकाभावबुद्धेः । तथा च परिमाणं परिमाणारम्भकं न संख्येति यद्यपि तथापि तादृशपरिमाणस्यापि स्वसजातीयोत्कृष्टपरिमाणजनकत्वात्त्रसरेणौ विवक्षितपरिमाणजनकत्वादपास्तं तदपि । अपसिद्धान्त................ स्म **तथा द्वाभ्यामिति** । **बहुत्वेत्यादि** । बहुत्वं च महत्त्वं च प्रचयविशेषश्च बहुत्वमहत्त्वप्रचयविशेषास्तेषामभावेन । बहुत्वाभावः पक्षे साध्याभावरूपबाधसा............श्वत्वादितिवद्धेत्वभावसाधकश्च । महत्त्वाभावो द्व्यणुकजनितकार्ये द्व्यणुकतुल्यतासंपादकः प्रचयविशेषाभावोपि । **महत्त्वेति** । न च संख्या द्वित्वरूपा परि.........केति वाच्यम् । द्व्यणुकतुल्यतापत्तेः । अतः परिमाणं त्रिभिरारभ्यते । तत्र संख्यया परिमाणारम्भ उक्तः । परिमाणजन्यं तु घटादिपरिमाणं कपालपरिमाणजन्यम् । प्रचयस्तु शिथिलसंयोगस्तज्जन्यं परिमाणं तूलकादाविति । तथा च महत्त्वानारम्भ इत्यर्थः । **तद्वैयर्थ्येति** द्व्यणुकाभ्यां जनितस्य वैय्यर्थ्येन तदारम्भवैय्यर्थ्यप्रसङ्गात् । द्व्यणुकेनाप्यसिद्धत्वं प्रसञ्जयति स्म **किंचेति** । जीवादृष्टस्य कारणत्वं निमित्तत्वेन । दोधूयमानादयो यङन्तक्रियापदैर्विगृह्य शानजन्तास्तद्भाष्यादिव्याख्यानात्समर्थनीयाः । **तस्मिन्निति** नभसि । **आप्येभ्यो** जीवनीयेभ्यः । **तथैवेति** संयोगप्रकारेणैव । एवमग्रेऽपि । **तथैवेति** पार्थिवेभ्यः परमाणुभ्यः, इत्येवं पूर्वोक्तप्रकारेण । **तथैवेति** पृथ्वीत्वेनैव । **महोदधाविति** । श्रुतिश्च 'अद्भ्यः प्रातरुदेति सायमपः प्रविशति'इत्येवमाकारा । **तथैवेति** तैजसेभ्यः परमाणुभ्यः संयोगप्रकारेण । **सप्तमेति** तानि सूत्राणि शंकराचार्यभाष्ये परिमाणान्तरस्यान्यहेतुत्वाभ्युपगमात् 'कारणबहुत्वाच्च कारणमहत्त्वात् प्रचयविशेषाच्च महच्च' तद्विपरीतमणुत्वम् 'एतेन दीर्घत्व ह्रस्वत्वे व्याख्याते इति । **अवगम्यते** इति 'तस्माद्वा एतस्मात्'इति श्रुतिस्तु नैषामुपयोगिनी । एतावता **तत्रेत्यारभ्येत्यर्थ** इत्यन्तं भाष्यं विवृतम् । तद्भाष्यमाभासमुखेन योजनीयमित्या-

भावमिलने द्व्यणुकं महत् स्याद् द्विगुणपरिमाणवत्त्वात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

तामेतां प्रक्रियां दूषयन् प्रथमं त्र्यणुकपरिमाणं दूषयति महदित्यादि । अयमर्थः । यदुक्तं परमाणुगतया द्वित्वसंख्यया द्व्यणुकेवान्तराणुत्वमवान्तरह्रस्वत्वं चारभ्यत इति तदसंगतम् । दूरस्थयोरसंयुक्तयोरपि परमाण्वोरीश्वरापेक्षाबुद्धिजन्यद्वित्वस्य विद्यमानतया तदानीं तदभावेन द्व्यणुकोत्पत्त्यनन्तरं च भावेन द्व्यणुकद्रव्यासमवायिकारणीभूतः संयोग एव परिमाणेपि कारणत्वेनाभ्युपेयः । न च तस्यान्यथासिद्धत्वम् । एकेन संयोगेन द्रव्यगुणात्मककार्यद्वयजननेपि बाधकाभावात् । एकस्मिन् गुणे द्रव्यगुणजनकत्वस्य सर्वोत्पत्तिमन्निमित्तकारणे अदृष्टे सिद्धत्वात् । वस्तुतस्तु संख्याया अपि द्व्यणुकादिकं प्रति कारणता । अन्यथा तद्वाचके पदे संख्योल्लेखो न स्यात् । अतः संख्यया परिमाणमेव जन्यते इति न नियमः । किंच । तया द्व्यणुकगतमेकत्वमेव जन्यते, साजात्यात् । न त्वेकत्वेन । विनिगमनाविरहात् । न च तन्नित्यम् । अनित्यगतगुणस्यानित्यत्वाशयेनाहुः तामेतामिति ।

रश्मिः ।

दूषयतीति सूत्रकारो दूषयतीत्यर्थः । इदं सूत्रप्रतीकम् । तत्रोपरीत्यादि भाष्यं विवरिष्यन्तः किंचिद्द्रव्येणेत्यादिस्वोक्तदूषणानां गौणत्वसूचनाय स्वेषामीश्वरोपादानत्वस्य सूचनाय तान्यनूद्य स्वान्याहुः **अयमर्थ** इति । तेन तत्परिहारसंभवादित्यन्तेन ग्रन्थेन स्वोक्तदूष्यदूषणानि गौणत्वेन भाष्ये युवन्ति स्म तेन गौणार्थेन सह त्वयमर्थ इत्यर्थः । **अवान्तरेति** । महाकार्यावान्तराणुत्वमेवमेवावान्तरह्रस्वत्वम् । **तदभावेनेति** तयोरणुत्वह्रस्वत्वयोरारभ्यमाणयोरभावेन । **संयोग** इति परमाण्वोः संयोगः । **कारणत्वेनेति** अन्वयव्यतिरेकाभ्याम् । तथा द्व्यणुकं तु समवायिकारणम् । **अन्यथासिद्धत्वमिति** अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिन्या द्वित्वसंख्ययाणुत्वह्रस्वत्वकार्यसंभवे तद्भिन्नसंयोगस्यान्यथासिद्धत्वम् । **द्रव्यगुणेति** गुणः परिमाणम् । **बाधकेति** संयोगस्यावश्यक्लृप्तत्वे **बाधकस्य** संख्याया अवश्यक्लृप्तत्वस्य **अभावात्** । संख्यावश्यक्लृप्तत्वस्य न्यायमात्रेऽभ्युपगमैकशरणस्य न संयोगावश्यक्लृप्तत्वविघटकत्वरूपं बाधकत्वमिति भावः । **सर्वोत्पत्तिमदिति** । जडस्य भोग्यतया यद्यददृष्टजन्यं तत्तद्भोग्यमित्येवं तथेत्यर्थः । तत्तु द्वित्वस्य विद्यमानत्वेनास्तु कारणत्वं संयोगस्य त्वसमवायित्वेन परिमाणासमवायिकारणलक्षणाक्रान्तत्वेनादृष्टस्य निमित्तरूपस्य द्रव्यगुणजनकत्वादन्यत्राप्रसिद्धत्वेन च किं पुनः 'लोके शब्दार्थसंबन्धो रूपं तेषां च यादृशम्, न विवादस्तत्र कार्यो लोकोच्छित्तिस्तथा भवेत्'इत्यनेन विरुद्धत्वेन च द्रव्येतरकार्यं प्रति कारणत्रयानावश्यकत्वेन पक्षान्तरमाहुः **वस्तुतस्त्विति** । **संख्याया अपीति** परमाणुरूपेणापि द्व्यणुकपरिमाणजननसंभवात्परमाण्वोरिव संख्याया अपि द्व्यणुकसमवायित्वम्, समन्वयात् । सूचितश्चायं भाष्ये तत्रोपर्यध इत्यादिना । **अन्यथेति** समवायित्वाभावे । द्व्यणुक**वाचके** द्व्यणुक**पदे** **'द्वि'**इति**संख्योल्लेखो न स्यात्** । घटो मृदिति प्रत्ययात्समवायिवाचकस्यैव तद्वाचकत्वात् । **न नियम** इति किंतु संख्यापि जन्यत इति । अथापि द्व्यणुकमेकमिति प्रत्यये द्वित्वमवयवगतमेकत्वमवयविगतमिति स्मरणानुमितिविषयत्वं मन्तव्यम् । तत्रापि संख्यैव कारणमित्येककार्यकत्वं नेत्याहुः **किंचेति** । **एवेति** एवकारः परिमाणं व्यवच्छिनत्ति । **साजात्यात्** संख्यात्वेन साजात्यात् । **न त्विति** साजात्यमित्येव । अन्यथा द्व्यणुके द्वित्वसंख्योल्लेखो न स्यात् । अथवा परिमाणं मा जन्यतामन्यथैवोपपत्तेः । परिमाणेन तु जन्यतामित्याहुः **किंचेति** । **न चेति** एकत्वं नित्यमिति तन्न जन्यते किंतु संख्यया परिमाणमेव

१. मित्यात्मकत्वमिति वा पाठः ।

प्राक्पश्चान्मिलने दीर्घवद् वा स्यात् । परमाणुपरिमाणं ह्रस्वं परितो

भाष्यप्रकाशः।

भ्युपगमात् । एवं द्व्यणुकपरिमाणमपि परमाणुपरिमाणेनैव जन्यत इति मन्तव्यम् । अन्यथातिप्रसङ्गापत्तेः । न च परिमाणस्य प्रकृष्टपरिमाणजनकत्वदर्शनात् सूक्ष्मे चातिसूक्ष्मत्वस्यैव प्रकर्षत्वात् परमाणौ विश्रान्त्यनङ्गीकारेनवस्थापत्त्या मेरुसर्षपयोस्तौल्यापत्तेस्तस्यानारम्भकत्वमिति वाच्यम् । विभागजन्य एव कार्ये सूक्ष्मत्वस्य प्रकर्षतायाः सर्षपभङ्गादौ निर्णीतत्वेन संयोगजे कार्ये तथाङ्गीकारस्य भ्रान्तिमूलकत्वात् । अस्तु वा संख्यायाः परिमाणमात्रजनकत्वम् । तथापि तयाणुत्वह्रस्वत्वे एव जननीये न महत्त्वदीर्घत्वे इत्यत्र किं नियामकम् । न च प्रत्यक्षतापत्तिः । स्पर्शरूपयोरनुद्भूतत्वाङ्गीकारेणापि तत्परिहारसंभवात् । अथवा, तयाणुत्वादिकमेव जन्यताम् । तथापि द्व्यणुकस्य परमाणुपरिमाणापेक्षया द्विगुणपरिमाणवत्त्वाद् द्व्यणुकं स्वजनकसंयोगद्वैविध्येनोक्तरीत्या महद्वद्दीर्घवद् वा स्यान्न तु वर्तुलं ह्रस्वं चेत्यर्थः । भाष्ये, संज्ञापूर्वकस्य विधेरनित्यत्वमभिप्रेत्य मिलनमित्यत्र गुणाभावः । प्राक्पश्चादिति तिर्यग्भावेन । नन्वस्याकाण्डताण्डवस्य

रश्मिः।

जन्यत इति न च वाच्यमित्यर्थः। **एवमिति** संख्यया संख्यावत् । **अन्यथेति** गुणजनने साजात्यापेक्षाभावे। स्वरसेनापि तज्जन्येतेत्येवमतिप्रसङ्गापत्तेः। **अनवस्थेति** विश्रान्त्यनङ्गीकारे सावयवत्वापत्त्या परमाणवः स्वावयवैरवयवाश्चावयवावयवैरित्यनवस्थापत्त्या मेरुसर्षपयोरनन्तावयवत्वसाम्यात्तौल्यापत्तेरित्यर्थः । 'न च वाच्यं अवयवाल्पत्वमहत्त्वाभ्यां हि सर्षपमहीधरयोर्वैषम्यम् । परमाणोरप्यनन्तावयवत्वेऽवयवानन्त्यसाम्यात्सर्षपमहीधरयोर्वैषम्यासिद्धेरवयवापकर्षकाष्ठावश्याभ्युपगमनीयेति । परमाणूनां प्रदेशाभावे सति एकपरमाणुपरिमाणातिरेकी प्रतिप्रथिमा न जायेतेति सर्षपमहीधरयोरेवासिद्धेः किं कुर्म इति चेत् वैदिकपक्षः परिगृह्यताम्' । **तस्येति** परिमाणस्य । **विभागेति** सर्षपभङ्गादावित्यस्य विशेषणम् । **सर्षपेति** । आदिपदेनाग्निविस्फुलिङ्गभङ्गादिः राजिका वा । **संयोगज** इति घटादिकं संयोगजं कार्यम् । **भ्रान्तीति** सूक्ष्मत्वस्य प्रकर्षतायाः क्वाप्यदर्शनात्तथेत्यर्थः । महदारब्धस्य संयोगासमवायिकारणकस्याणुतरत्वं त्रसरेणौ दृष्टमिति भावः । न च तन्तुषु यथा यथा सूक्ष्मत्वं तथा तथा प्रकर्ष इति लोके उपलम्भात् परमाणुपरिमाणजन्यस्याणुतरत्वं प्रकर्ष इति शङ्क्यम् । परिमाणाभ्यां जायमानस्याणुतरत्वाभावेऽणावणुत्वे एकतरवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । परमाणोस्तत्तत्कार्यविश्रान्तिस्थानत्वे दूषणम्, ईश्वरस्य समवायित्वेन तत्तत्कार्यविश्रान्तिस्थानत्वे दूषणं नेत्युक्तम् । न तु परमाण्वभावः । तेन 'चरमः सद्विशेषाणामनेकः' इत्यस्याविरोधः । तेन 'तस्माद्वा एतस्मात्' इति श्रुतावद्भ्यः परमाणवस्तेभ्य उक्तरीत्या महती पृथिवीत्येवं सर्वत्र । तुष्यतु दुर्जन इति न्यायेनाहुः **अस्तु वेति** । महत्त्वदीर्घत्वयोर्जनितयोरसत्त्वेनुपलब्धिर्नियामिकेति शङ्कते **न चेति** । यदि महत्त्वदीर्घत्वे स्यातां तर्हि द्व्यणुकमुपलभ्येत चक्षुषेति **प्रत्यक्षतापत्तिः** । **अनुद्भूतत्वेति** तत्कृतेनाङ्गीकारेण । तत्रोपरीत्यारभ्य मण्डलं चेत्यन्तं भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अथवेति** । **तयेति** द्वित्वसंख्यया । अयमभ्युपगमः पूर्ववत् । **स्वेति** । **द्वैविध्य**मुपर्यधोभागमेलनेन प्राक्पश्चान्मेलनेन च । **उक्तरीत्येति** उपर्यधोभागमिलने इत्युक्तरीत्या । महद्वदित्यादौ मतुब् वतिर्वा । **भाष्ये संज्ञेति** अस्याः परिभाषायाः ज्ञापकमोरोदिति वक्तव्ये 'ओर्गुण' इत्यत्र गुणशब्देनादेङोः संज्ञाभूतेनोद्विधानम् । तेन पञ्चबाणः क्षिणोतीत्यत्र 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इति गुणो न । **गुणाभाव** इति 'पुगन्तलघूपधस्य च' इति सूत्रेण गुणाभावः । **तिर्यगिति** । अन्यथातिसूक्ष्मयोरन्यभावाऽननुभवापत्तेः, दिनवृद्धौ पलाननुभववत् । **अकाण्डेति**

उभयथापि न कर्मातस्तदभावः ॥ १२ ॥

उभयथापि न । कुतः । न कर्म । नकारो देहलीप्रदीपन्यायेनोभयत्र संबध्यते । अतो द्व्यणुकाभावः । उभयथापि न परमाणुसंघट्टनम् । प्रदेशाभावात् । कल्पना मनोरथमात्रम् । असंयुक्तांशाभावात् तदेव तत् स्यात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

किं प्रयोजनमत आहुः, **उपहासार्थमिति** य एवं लोकतत्त्वेप्यकुशलास्ते कथमात्मतत्त्वं ज्ञास्यन्तीत्युपहासार्थम् । वक्ष्यमाणरीत्या वा ॥ ११ ॥

उभयथापि न कर्मातस्तदभावः ॥ १२ ॥ एवं परिमाणदूषणमुखेन दूषयित्वा तदसमवायिकारणसंयोगदूषणमुखेनापि दूषयतीत्याहुः **उभयथेत्यादि** । गृहीत्वा पुनर्व्याकुर्वन्ति **उभयथापि नेत्यादि** । अयमर्थः । अपकर्षकाष्ठां प्राप्तेन परमाणुना सह यः परमाण्वन्तरस्य संयोगः स सार्वदेशिको वा ऐकदेशिको वा । **नोभयथापि युज्यते** । **प्रदेशाङ्गीकारे** सावयवत्वापातात् । **प्रदेशवत्त्वस्य** सावयवत्वव्याप्तत्वात् । **अतस्तस्य** परमाणुत्वनिर्वाहाय निःप्रदेशत्वमङ्गीकर्तव्यम् । तथा सति सुतरामयुक्तम् । **संयोगस्याव्याप्यवृत्तित्वनियमात्** । अतः परमाणूनां यदि प्रदेशवत्त्वं यदि वा न, उभयथा न संयोगः । **अथ** संयोगार्थं कल्पिताः प्रदेशा अङ्गीक्रियन्ते तदा प्रमाणशून्यत्वात् सा **कल्पना मनोरथमात्रमिति** मनोराज्यतुल्यत्वान्न **बाह्यस्य** नियमस्य साधिका । अथाप्रदेशयोरपि संयोग इत्यङ्गीक्रियते, तथा सति तयोः सर्वात्मना संयोगेना**संयुक्तांशस्याभावात् तदेव तत् स्यात्** । ततश्च

रश्मिः ।

अशाखविस्तारस्य । **य** इति वैशेषिकाः । **उपहासेति** । 'विहसन्त्यच्युतप्रियान्' इति तद्धास उचित इति भावः । तर्काप्रतिष्ठानस्योक्तत्वाद्विपरीतसंभावनयाहुः **वक्ष्यमाणेति** ॥ ११ ॥

उभयथापि न कर्मातस्तदभावः ॥ १२ ॥ भाष्ये उभयथापदं द्वेधा व्याकृतं तत्रोत्तरं मुख्यं मत्वोत्तरप्रकारेणावतारयन्ति स्म **एवमिति** । **तदसमवायीति** । तेनाधिकरणान्तर्गतसूत्रयोर्निर्वाहकत्वं संगतिः । किमन्यद्व्यणुकदूषकमिति जिज्ञासया सूत्रप्रवृत्तेः । **संयोगेति** अस्तिसंयोगोऽपि द्विविधः । ऐकदेशिकः सार्वदेशिकश्च । ऐच्छिकं संयोगजं चेति कर्मापि द्विविधम् । उभयथा कर्म न संभवति येन संयोगो द्व्यणुकजनको द्विविधोप्यतोसमवायिकारणाभावात्तदभावो द्व्यणुकाभाव इति सूत्रार्थः । **गृहीत्वेति** । उभयथेत्यादिसूत्रे सौत्रं शब्दत्रयमुभयथेति भाष्येण गृहीतम् । न कर्मेतिभाष्येण कर्मेति शब्दः, अत इत्यादिपदद्वयमतो द्व्यणुकाभाव इति भाष्ये सौत्रमिति ज्ञेयम् । **पुनरिति** । भाष्यत्वान्न पुनरुक्तिरिति भावः । गृहीत्वा व्याकृतं विशदयन्ति स्म **अयमर्थ** इति । **नोभयथेति परमाणुसंघट्टनं युज्यते** । घट्ट चलने संपूर्वः । तेन संघट्टनं संयोगो व्याकृतः । अत्र भाष्ये हेतुः प्रदेशाभावस्तं समर्थयन्ति स्म **प्रदेशेति** । **प्रदेशवत्त्वस्येति** सावयवः प्रदेशवत्त्वात्, घटवदिति फलितम् । **अत** इति व्याप्तेः सकाशात्सावयवत्वापत्तेः । **अयुक्तमिति** निःप्रदेशत्वमयुक्तम्, परमाणुसंघट्टनमयुक्तमिति वा । **अव्याप्येति** स्वात्यन्ताभावसमानाधिकरणत्वमव्याप्यवृत्तित्वं तस्य, विभ्वोस्तु न संयोग इत्यतो **नियमादित्यर्थः** । **अत** इति अनुपदोक्तहेतोः । **कल्पनेति** भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अथेति** । **बाह्यस्येति** चक्षुरादिजन्यज्ञानविषयस्याव्याप्यवृत्तित्वरूपस्य । **असंयुक्तेत्यादिभाष्यं**

संयोगजनकं कर्मापि न संभवति। कारणान्तराभावात्। प्रयत्नवदात्मसंयोगे

भाष्यप्रकाशः।

यथा द्व्यणुकजन्ये कार्ये महत्त्वानारम्भेण द्व्यणुकतुल्यतया द्व्यणुकजन्यद्व्यणुकान्तरवैयर्थ्यमेवं परमाणुजन्यद्व्यणुके परिमाणान्तराभावेन भोगानुपयोगात् तद्वैयर्थ्यमिति न तयोः संयोगः सुवचः। किंच। कर्मजोवयवजश्चेति द्विविधः संयोगो भवतां मते। तृतीयश्च संयोगजः संयोगः। तत्र द्वितीयस्तु निरवयवत्वाद् भवतामपि नात्र संमतः। अतः प्रथमो विचारणीयः। तत्र प्रथमं वायुपरमाणुषु कर्मोत्पद्यते ततस्ते संयुज्यन्ते। तेभ्यः संयुक्तेभ्यो द्व्यणुकादिक्रमेण समुत्पन्नो महान् वायुर्नभसि दोधूयमानस्तिष्ठति। तत एवमापः पृथिवी तेजश्च क्रमेण जाता नभसि तिष्ठन्ति। एवं समुत्पन्नेषु चतुर्षु भूतेषु महेश्वराभिध्यानमात्रात् तैजसेभ्योऽणुभ्यः पार्थिवपरमाणुसहितेभ्यो महदण्डमारभ्यत इत्यादिर्हि काणभुजानां प्रक्रिया। तत्र **संयोगजनकं कर्मापि न संभवति। कारणान्तराभावात्।** न हि तत्र स्वभावः कारणम्, महेश्वरसिसृक्षा वा। तस्य तस्याश्च नित्यत्वेन सर्वदा तत्प्रसङ्गादिदूषणग्रासात्। अतस्तदभावायानित्यमेव कारणमभ्युपगन्तव्यम्। तद्यदि **प्रयत्नवदात्मसंयोगस्तदा** सृष्ट्यारम्भे निःशरीरस्यात्मनो मनःसंयोगस्याशक्यवचनत्वेन प्रयत्नस्यैवासंभवः। शरीरसंबन्धोत्तरमेव तदुत्पत्ति-

रश्मिः।

विवृण्वन्ति स्म **अथाग्रेति**। **तदेवेति** परमाणुद्वयमेवाणु स्यात्। **भोगेति** विलक्षणभो**गानुपयोगात्। सुवच** इति। नापि परमाणुतो द्विगुणगुरुत्वं भोग्यम्। कपालद्वयारब्धे घटे कपालद्वयगुरुत्वतोधिकगुरुत्वस्योत्तोलनेऽननुभवात्। कारणमात्रगुरुत्वं गुरुत्वान्तरं सूक्ष्मतमं करोतीति भोगे भेदाभावात्। गुरुत्वं परमाणुमात्रवृत्तीति केचित्। परमाणुषु तन्नेत्यन्ये। स्पष्टं चेदं स्पर्शनिरूपणे **प्रस्थानरत्नाकरे**। तथा चोभयथापि संयोगस्य सार्वदेशिकत्वे ऐकदेशिकत्वे वापि परमाणुसंघट्टनं न युज्यते प्रदेशाभावादित्यादिहेतुपूरणेन व्याकृतम्। न कर्मेति भाष्यव्याख्यानं संयोगजमित्यादि भाष्यं व्याकुर्वन्ति स्म **किंचेति**। श्येनशैलादिसंयोगः कर्मजः, मेषयोः सन्निपातोऽवयवजः। **संयोगज** इति। उक्ताभिघातसंयोगेतरप्रचयाख्यः। 'कपालतरुसंयोगात्संयोगस्तरुकुम्भयोः। संयोगजोयं संयोगः' इति। **कर्मोत्पद्यत** इति भगवदिच्छयेत्येव। **आप** इति आपो नभोनिष्ठाः। यद्वा व्यापकत्वान्नभसः पृथ्व्यधःस्था अपि नभःस्थाः। पृथिव्यपि नभःस्था व्यापकत्वादेव। तेजस्तु नभःस्थं प्रसिद्धम्। **अभिध्येति** सिसृक्षा पुराणात्। **इत्यादीति** तस्मिंश्चतुर्वदनं सकमलं सर्वलोकपितामहं ब्रह्माणं सप्तभुवनसहितमुत्पाद्य प्रजासर्गे विनियुङ्क्ते स च महेश्वरेण विनियुक्तो ब्रह्मा निरतिशयज्ञानवैराग्यैश्वर्यसंपन्नः सर्वप्राणिनां कर्मविपाकं विदित्वा कर्मानुरूपज्ञानभोगायुषः सुतान्प्रजापतीन्मानसान्मनून्देवर्षिपितृगणान्प्रजापतीन्सृजति। मुखबाहूरुपादतश्चतुरो वर्णानन्यानि चोच्चावचानि भूतानि सृष्ट्वाऽऽश्रयानुरूपैर्धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यैः संयोजयतीत्यादिपदार्थः। **प्रक्रियेति** तद्भाष्यीयप्रक्रिया। कारणेत्यादि भाष्यं विवरीतुमवतारयन्ति स्म **तत्रेति** कर्मजसंयोगे। **कारणेति** श्येने तु कर्मकारणं प्रयत्नः। **तत्र स्वभाव** इति परमाणुषु परिणामहेतुः। **तत्प्रसङ्गादीति** द्व्यणुकप्रसङ्गः त्रसरेणौ कार्यत्वाभानप्रसङ्गः द्व्यणुकनित्यत्वप्रसङ्गश्च। इतः परं **प्रयत्नवदि**त्यादिभाष्यं व्याचकुः **अत** इति। **प्रयत्नवदिति** प्रयत्नवानात्मा ईश्वरः तस्य परमाणुभिः संयोगः, उभयोर्द्रव्यत्वात्। **असंभव** इति जानाती-

अदृष्टवदात्मसंयोगे चाभ्युपगम्यमाने निरवयवत्वात् तदेव तत् स्यात् । विशेषा-

भाष्यप्रकाशः ।

दर्शनात् । अन्यथात्ममनसोर्नित्यत्वेन संयोगनित्यतया प्रयत्नस्यापि सार्वदिकत्वप्रसङ्गात् । अथादृष्टवदात्मसंयोगस्तदा तस्य सार्वदिकत्वात् कर्मणोपि तथात्वप्रसङ्गः । लोके तथैव दर्शनात् । किंचैवमभ्युपगम्यमानेपि कारणान्तरे परमाण्वोर्निरवयवत्वादसंयुक्तांशस्याभावेन तदपि कार्यं परमाणु स्यान्न द्व्यणुकम्, विशेषाभावात् । न च प्रविभज्यमानत्वमेव विशेष इति युक्तम् । लोके मुद्गराभिघातादिना घटभङ्गे कपालानां तेषामपि तथाभङ्गे कपालिकानां दर्शनेन विभागस्य प्रतिलोमक्रमेणैवोत्पत्तिनिश्चयात् प्रलयेपि शरीराणां प्रागेव नाशेन तदानीं परमाणुविभागजनककर्मजनकस्य जीवप्रयत्नाभिघातादेर्वक्तुमशक्यतया, अदृष्टपक्षेपि तस्य भोगनाश्यत्वेन द्व्यणुकपर्यन्तभोगोत्तरं तन्नाशे तदानीं शरीराभावेन कर्मकरणाभावाददृष्टान्तरस्याप्यनुत्पत्तावणुद्वयविभागजनकस्य कस्यापि वक्तुमशक्यतया विभागस्याशक्यत्वादपि विशेषा-

रश्मिः ।

च्छतीत्यादिना 'यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वदति तत्करोति' इति श्रुतेश्चासंभवः । निःशरीरस्येत्याद्युक्तं तत्र निःशरीरत्वे मनःसंबन्धो न घटत इत्यत्र हेतुमाहुः **शरीरे**ति । **बृहदारण्यके** 'उषा वा' इति ब्राह्मणेश्वमुक्त्वा द्वितीयब्राह्मणे 'नैवेह किंचनाग्र आसीन्मृत्युनैवेदमावृतमासीत्' इत्यनया मृत्युरूपदेहसंबन्धमुक्त्वोच्यते 'तन्मनोकुरुत' इति । मृत्योः शरीरत्वं तत्रैवोक्तम् अशनाया हि मृत्युरिति । अशनायेति सोर्याद्व । अशनाग्नेः शरीरम् । 'यास्ते अग्ने घोरास्तनवः क्षुच्च तृष्णा च' इति श्रुतेः । अश्नात्यनया क्षुधेत्यशनाया क्षुत् । **तदुत्पत्ती**ति **बृहदारण्यके** मनउत्पत्तिदर्शनात् । ननु व्यापकस्यात्मनो मनःसंयोगः सुघट इति शरीरमन्तराप्युपपन्न इति प्रयत्नसंभव इत्यत आहुर**न्यथे**ति । शरीरमन्तरापि मनःसंयोगाङ्गीकारे प्रकारे । **सार्वदिकत्वे**ति । तथा च संयोगजनककर्मजनकस्यैव प्रयत्नस्य संभवेन प्रलयाद्यनुपपत्तिः । **अदृष्टे**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अथे**त्यादि कारणमित्येव । **अदृष्टवानात्मा** जीवः । 'बुद्ध्यादिषट्कं संख्यादिपञ्चकं भावना तथा, धर्माधर्मौ गुणा एते आत्मनश्च चतुर्दश' इति भाषापरिच्छेदे । स च मुक्तः संसारिणस्तदाभावात् । **तथात्वे**ति नित्यत्वप्रसङ्गः । **लोक** इति श्येनशैलसंयोगे संयोगजनककर्मनित्यत्वे विभागजनककर्माभावात्संयोगनित्यत्वप्रसङ्ग**दर्शनात्** । चाभ्युपेत्यादिभाष्यं चमप्यर्थे आश्रित्य विवृण्वन्ति स्म **कारणान्तर** इति असमवायिकारणे । **तदपी**ति तेन तदेवेत्येवकारोप्यर्थे व्याख्यातः । चैवशब्दयोः स्पष्टार्थत्वेपि व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तेःअदोषः । विशेषेति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **विशेषे**ति संयोगकृत**विशेषाभावात्** । विभागस्येतिभाष्यंमवतारयन्ति स्म **न चे**त्यादिना । परमाणुर्न विभज्यते द्व्यणुकं तु विभज्यत इति । **अभिघातः** कर्मजः संयोगः । **आदि**शब्देन द्व्यणुकनिष्ठं विभाजकं कर्म । यद्वा । **घटभङ्गे** कारणत्वाद्धृतजलामत्वमादिशब्दार्थः । **प्रतिलोमे**ति संयोगप्रतिलोमक्रमेण । **प्रागि**ति स्वारम्भकद्व्यणुकादिनाशात्प्राक् । **तदानी**मिति । **जीवप्रयत्ने**ति । **आदि**शब्देन महेश्वरेच्छा । यद्वा, आदिशब्देन दृष्टनिमित्तान्तरम् । तस्याः कालस्य चादृष्टे निवेशात् । **अशक्यत**येति ज्ञानाभावेन जानातीत्यादिप्रक्रियाभावात्तथा । दृष्टमुद्गरादिकमुक्त्वाऽदृष्टकारणाभावमाहुः **अदृष्टे**ति । 'धर्माधर्मावदृष्टं स्यात्' । **तस्ये**त्यादि **तस्य** अदृष्टस्य । सुखदुःखसाक्षात्कारो भोगः । **तन्नाशे** इति अदृष्टनाशे । **तदानी**मिति द्व्यणुकभोगोत्तरकाले । **अदृष्टान्तरे**ति प्रारब्धस्य इत्यपिशब्दार्थः । **अपि विशेषा-**

भावाद् विभागस्याशक्यत्वाच्च । अतो द्व्यणुकस्याभावः ॥ १२ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

भावात् । चोऽप्यर्थे । किंच । पार्थिवद्व्यणुकाङ्गीकारः सुतरामसङ्गतः । पृथिवीपरमाणुषु स्नेहाभावेनेतरेतरासंग्रहादवयव्युत्पत्तेरशक्यवचनत्वात् । संग्राहकत्वेनाप्यणुप्रवेशाङ्गीकारे तु त्र्यणुकचतुरणुकताया एवापत्तेरिति । एवं च ह्रस्वपरिमण्डलाभ्यां परमाणुभ्यां जायमानं द्व्यणुकं महद् दीर्घवद् वा स्यात् । उभयथापि न, तज्जनकं कर्मापि न । अतः स्वरूपविरोधाद्धेत्वभावाच्च **तदभावो द्व्यणुकस्याभाव** इति सूत्रयोरन्वयः । तथा च द्व्यणुकाभावात् परमाणुकारणवादोसङ्गत इत्यर्थः । ननु भवत्वेवं, तथापि, 'अणुर्द्वौ परमाणू स्यात् त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः'[1] इति श्रीभागवते संज्ञाभेदेन द्व्यणुकस्याङ्गीकृतत्वात् कथं तदविरोधः साधनीय इति चेत् उच्यते । तत्र हि 'चरमः सद्विशेषाणामनेकोसंयुतः सदा । परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः' इति परमाणुलक्षणे सदा असंयुत इत्यनेन तत्संयोगानङ्गीकारात् संयोगजन्यद्व्यणुकाभावेपि ततः स्थूलभूतत्र्यणुकत्रसरेण्वादिविभागजन्यद्व्यणुकप्रतिषेधाभावेनाविरोधात् । श्रौते पौराणे च दर्शने स्थूलादेव कारणात् सूक्ष्मस्य कार्यस्य विभागेनादावुपत्तेः ।

रश्मिः ।

भावादिति । तथा च विभागस्याशक्यत्वाद्विशेषाभावादित्यपि भाष्यार्थः । भाष्ये चकारोप्यर्थ इति पदार्थसंभावनार्थकत्वात् । **चोप्यर्थ** इति पूर्ववत् । अतो द्व्यणुकस्येत्यादिभाष्ये विशेषमाहुः **किंचेति** । **स्नेहेति** अस्य जलमात्रवृत्तित्वेन तथा । नैमित्तिकं स्नेहं संगृह्यैव परमाणुः परमाणुं प्रतीत्यपि न । द्व्यणुके स्नेहांशाधिक्यात्त्र्यणुकतापत्तिः स्नेहाधिक्ये चतुरणुकतापत्तिरित्याहुः **संग्राहकत्व** इति । नन्वणुप्रवेशो जलपरमाणुप्रवेशो वा वाच्यः स चासंगतः । विशेषरूपपदार्थैस्तदसंभवादिति चेन्न । त्वया विशेषपदार्थखण्डनात् । जलपरमाणुप्रवेशे द्व्यणुकातिरिक्तकार्यभोगाभावात्त्र्यणुकादिरुक्तः । वस्तुतस्त्वग्रिमसूत्रेणैतस्यान्वयायुक्तत्वात्तमाहुः **एवं चेति** । **स्वरूपेत्यादि** । महद्दीर्घपरिमाणापत्त्या द्व्यणुकस्वरूपविरोधाद्धेतोरसमवायिकारणस्य संयोगस्याभावाच्चेत्यर्थः । **संज्ञेति** अणुसंज्ञाया **भेदेन** । **चरम** इति । वाक्यार्थस्तु स परमाणुर्विज्ञेयो यः सद्विशेषाणां चरमः सतो घटादेर्विशेषाणामवयवानां मध्ये चरमो यस्य पुनरवयवो नास्ति, अनेकः समुदायावस्थां न प्राप्तः । असंयुतः कार्यावस्थां न प्राप्तः सदा । द्व्यणुकस्य त्र्यणुकादुत्पत्तिरिति वक्ष्यते । ऐक्यभ्रमश्च नृणां यतः परमाणुभिर्भवति नृणां जीवानां यैः परमाणुभिः कृत्वात्मना सह देहस्यैक्यभ्रमो भवति देहाध्यासात्मकः । ऐक्यभ्रमहेतवस्तु परमाणव एव । 'स्त्रियाः प्रविष्ट उदरे पुंसो रेतःकणाश्रयः' इति वाक्याद्यदा जीवो गर्भे प्रविशति तदान्यदा वा स्वस्य पित्रादेश्च वा धर्माधर्माभ्यां संस्कृतास्ते परमाणवोपि तत्राहारादिभिः प्रविश्य जीवस्वरूपेण संबध्यन्ते रजस्वलमिव तं कुर्वन्ति तदा जीवा देहमापद्यन्ते देहमध्यस्यन्ति । अत्र भ्रमजनको नेन्द्रियदोषः, सर्वेषामेव भ्रमात् किंतु विषयगतः परमाणुसंबन्धः, अतः सर्वेषां भ्रम उपपद्यते । संबन्धापगमे तु विषयदोषाभावान्न भ्रमो विद्यावताम् । यदपि **प्रस्थानरत्नाकरे** सर्वत्रेन्द्रियदोषोभ्युपगतः स चैतदतिरिक्तविषयः । **तत** इति संज्ञाभेदात् । **स्थूलभूतेति** त्र्यणुकमेव त्रसरेणुः **तदादीत्यादिः** । **अविरोधादिति** । तथा च त्रसरेणुः समवायी विभागोऽसमवायी तज्जनकं कालादिकं निमित्तं द्व्यणुकं कार्यमिति फलितम् ।

१. त्रयस्तु ते इति पाठः ।

भाष्यप्रकाशः।

'ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्ष आसीद् यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः' इति 'यथाऽग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्ति' इति तक्षणादिश्रुतेः। न चानुगतकार्यकारणभावविरोधः । जन्यद्रव्यत्वेन स्वयोग्यावयवस्थूलांशत्वेन कारणतानुगमात् । न च लोके सूक्ष्मेभ्य एव तन्तुप्रभृतिभ्यः पटादेः स्थूलस्य कार्यस्योत्पत्तिदर्शनाद् व्यभिचारः शङ्क्यः । तत्रापि तन्तुसमुदायस्यैव कारणत्वेन तं छित्त्वैव यत्रादिभ्यः पटाद्युद्धारात्, स्थूलादेव सूक्ष्मोत्पत्तेः । एवं तन्त्वादेरप्यंशुसमुदायरूपात् कार्पासादिरूपस्थूलांशादेवोत्पत्तिः । ते चावयवाः स्थूलादेव तूलाद् विभज्य पश्चाद्दीर्घावस्थाप्राप्त्यर्थं संयुज्यन्त इति विभाग एव मुख्यो व्यापारः। संयोगस्त्ववान्तरः। यत्र पुनर्मञ्जूषादौ लोहदन्तदारुनिर्यासादिभिः पर्यायेणावयवशो योजनम्, गृहादौ चेष्टकादिभिस्तत्रापि तत्तदवयवसमुदायादवान्तरावयव्युत्पत्तिस्तत्समुदायाच्च महावयव्युत्पत्तिरिति पटन्याय एव । एवं च गर्भादावपि बीजरजःसमुदायस्यैवोपादानता । स च स्थूलांश एव ।

रश्मिः।

ब्रह्म वनमिति वनं वृक्षसमूहः द्यावापृथ्वीसमूहो वा । **स** इति द्यावापृथ्वीभ्यां स्थूलः । **द्यावापृथिवी**ति सुपांसुलुगित्यौटो लुक् । पूर्वसवर्णो वा । **निष्टतक्षु**रिति तक्षू तनूकरणे धातुर्लिडन्तो निस्पूर्वकः। **तक्षणादी**ति। 'तथाऽसतः सद्ये ततक्षुः'। असतः कार्यसद्विलक्षणात्स्थूलारकारणात्सत्कार्यं ये तक्षाणस्ततक्षुः तनूकरणं चक्रुरित्यर्थः । दन्तशृङ्गादितक्षणेन पात्रीचषकाद्युत्पत्तिं चक्रुः। तथा पौराणं दर्शनम् । **काल उपादान**मिति । स च परममहत्परिमाणवानिति स्थूलात्सूक्ष्मोत्पत्तिः। एतच्च 'गुणव्यतिकराकारः' इत्यस्य **सुबोधिन्यां** तृतीयस्कन्धे स्फुटम् । **न चान्वि**ति साधारणत्वमनुगतत्वम् । जन्यद्रव्यत्वेन स्पर्शवत्त्वेन कार्यकारणभावः। जन्यद्रव्यस्य कारणत्रिकवत्त्वनियमात् । स्पर्शस्य संयोगस्यासमवायित्वात् । तस्य संयोगाभावेनाभावाद्विभागजन्ये कार्ये कारणत्रिकाभावाद्विरोधः इति न च शङ्क्यमित्यर्थः। कार्याणां द्वैविध्येन जन्यद्रव्यत्वावच्छिन्नं प्रति स्पर्शवत्त्वेन कारणत्वस्य विभागजन्यकार्येषु व्यभिचारदर्शनादसिद्धमनुगतत्वं सिद्धं च संयोगविभागजकार्यसाधारणं(ण्यं) जन्यत्वे द्रव्यत्वे स्वयोग्यावयवस्थूलांशत्वेनानुगतत्वं तदाहुर्**जन्यद्रव्ये**ति । स्थूलांशत्वेन घटं प्रति मृद्राशेरपि कारणता स्यादतः **स्वयोग्यावयवे**ति । अवयवशब्देनैव परमाणुवारणे ह्रस्वपरिमाणमादाय परमाणुकारणवादः स्यात्तन्निवारणाय **स्थूलांशत्वेने**ति । स्थूलत्वं ह्रस्वपरिमाणे परमाणुपरिमाणेतरपरिमाणवत्त्वं तेन विभागजपरमाणुषु न कारणत्वं स्थूलांशाभावात् । ब्रह्मणस्तु समवायित्वम् । **कारणते**ति । किंच त्वदुक्तस्य मनसि व्यभिचारात्, मनसि संयोगाङ्गीकारात्, संयोगस्य स्पर्शानतिरेकात्, लोके संयुक्त एव स्पृष्टत्वव्यवहारात् । उष्णादयश्च संयोगस्यैव भेदाः स्फुटमिदं **प्रस्थानरत्नाकरे** । **तं छित्त्वे**ति तं तन्तुसमुदायं छित्त्वा । तेन निमित्तसंयोगवद्विभागस्यापि कार्यान्तःपातित्वम् । न चान्त्यदेशावच्छेदेन विभागः संयोगस्तु प्रतितन्तूनिति शङ्क्यम्। निमित्तत्वेन तद्योग्यस्थानेषूपगमात् । असमवायिलक्षणसमन्वये संयोगाद्विभागस्य मुख्यव्यापारत्वमुपपाद्याहुः **एवमि**ति । आदिशब्देन कपालादिः। कार्पासादीत्यत्रादिशब्देन मृद्राश्यादिः। विभाग इति सप्तम्यन्तम् । **संयोग** इति यत्रविशेषे खण्डशस्तूलावयवयोजनं संयोगः। कुण्डलप्रतिमादावपि सुवर्णमण्यादिसमुदायस्यैव कारणत्वम्। **यत्रे**ति । **निर्यासो** वृक्षरसः । **आदि**शब्देन पित्तलादिः । **इष्टकादी**त्यत्रादिशब्देनाश्मचूर्णमृदादिः। **तत्तदवयवे**ति लोहादिरूपावयवसमुदायाद्दीर्घो मञ्जूषादियोग्यो लोहादिमयो वान्तरावयवी तस्योत्पत्तिः । तादृशावयविसमुदायाच्च मञ्जूषादिरूपमहावयव्युत्पत्तिरित्यर्थः । **एवं चे**ति । **रजांसि** परमाणवः रुधिरं च । **स्थूलांशे**ति 'पुंसो रेतःकणाश्रयः' इति वाक्याद्रेतःकणापेक्षया स्थूलांशः ।

भाष्यप्रकाशः ।

अत एकस्यैकमेवोपादानम् । अन्यथा अनेकं कार्यं स्यात् । कारणगुणानामेव कार्यगुणजनकत्वेन कारणगतैकत्वैः प्रत्येकमेकत्वारम्भे बाधकाभावात् । नच तेषामनारम्भकत्वम् । द्वित्वबहुत्वादीनां तत एवारम्भात् । अत एकस्यैकमेवोपादानमिति निश्चयः । तेनादिसृष्टिगतमन्तिमं च कार्यं विभागात् । अन्यत्तु यथासम्भवं विभागात् संयोगाद्वेति दृष्टादिबलादवगन्तव्यम् । इदं यथा तथा सृष्टिभेदवादे व्युत्पादितमस्माभिः । अतोणुद्वयसंयोगजन्यद्व्यणुकस्यैवात्राभावबोधनान्न कोपि दोष इति दिक् ॥ १२ ॥

रश्मिः ।

रजांसि तु स्थूलानि । अत इति । समुदायकारणत्वाङ्गीकारादेकस्य मञ्जूषादेर्गृहादेः शरीरस्य चैक एव लोहदन्तकाष्ठसमुदाय इष्टकादिसमुदायो बीजरजःसमुदायश्चोपादानमित्यर्थः । अन्यथेति मञ्जूषादेर्लोहदन्तकाष्ठानि, गृहादेरिष्टकामृत्पाषाणकाष्ठानि, शरीरस्य बीजरजःपरमाणव इत्येवमनेकेषामुपादानत्वे । कारणगतेति लोहगतमेकत्वं दन्तगतमेकत्वं काष्ठगतमेकत्वं तैरेवमन्यत्र । प्रत्येकमिति कार्यावयवगतैकत्वारम्भे । तेषामिति अनेकोपादाननिष्ठैकत्वानाम् । किंतु तत्समुदायगतमेकत्वमारम्भकम् । तत एवेति एकत्वेभ्योपेक्षाबुद्धिविषयेभ्यः । अत इति कार्यानेकत्वापत्तेः । ननु तन्त्वादिसंयोगेभ्य एव पटाद्युत्पत्तिसंभवेषु विभागादीनामन्यथासिद्धत्वमिति हृदिकृत्याहुर्निष्कृष्टं तेनेति ब्रह्मवनमित्यादिश्रुतिसिद्धत्वेन । अन्तिमं परमाणुरूपं द्व्यणुकविभागात् । विभागाद्वेति । दान्तचषकाद्युत्पत्तिर्दन्तादिविभागात् । घटनाशो मुद्गराद्याघातसंयोगात् । पटोत्पत्तिस्तन्तुविभागात् । वह्निनाशो जलसंयोगात् । एवमादिसृष्टिगतं स्वकारणसंयोगात् यतः सर्वं स्वकारणे लीयत इति । अन्तिमं च स्वस्वकारणसंयोगात् यथा पृथिवी गन्धे परमाणुरूपापि, गन्धस्त्वप्सु । व्युत्पादितमिति । तन्मयात्र पूर्वमनूदितम् । परमाणुलक्षणं तु 'उभयथा च दोषात्' इति सूत्रभाष्यव्याख्याने दूषणीयम् । आरम्भवादोपि दूषित एवेति न पुनरुच्यते । अतोन्यथासिद्धत्वं निमित्तान्यासमवाय्याख्यातुर्मते न तु निमित्तान्तरत्वेनासमवाय्याख्यातॄणामस्माकं मते कारणत्वे निमित्तत्वं तदभावेन्यथासिद्धत्वमिति । एतेनाण्डजा उद्भिज्जा अपि व्याख्याताः 'पुंसो रेतःकणाश्रयः' इति वाक्यात् । उद्भिज्जा अपि बीजखातजलपृथ्व्यादिरूपस्थूलेभ्यः । स्वेदजास्तु स्थूलादेव स्वेदादुत्पद्यन्ते । संयोगाद्विभागाद्वा भवतीति पूर्वं वचनव्यक्तेः, सूक्ष्मरूपेण कार्यसत्ता न विरुध्यते पश्चात्त्वस्तिशब्दवाच्या सत्ता 'नित्यमेकमनेकानुगतं सामान्यम्' इति लक्षणाद्घटाद्युपाधिभेदेन घटत्वादिवत्स्थूलसामान्यविभागकादेव तत्तद्व्यक्तिसत्तादिकं भासते । विपरिणतं वृद्धमपक्षीणं च तदेव न द्रव्यान्तरम्, तत्त्वेनाप्रत्ययात्, प्रत्यभिज्ञानुपपत्तेश्च । परिणतं दुग्धं दधि भवति स्थूलदुग्धविभक्तदुग्धपरिणामात् । चिरविभक्तदुग्धं यत्र दधि भवति तत्र स्थूलमन्यथासिद्धम् । गुरूपसत्त्यादेर्ज्ञानं प्रति नान्यथासिद्धत्वं समन्वयात्समवायित्वम् । उपदिष्टज्ञानसमन्वयान्न शिष्यज्ञानमपि कार्यम् । गुरूपसत्तिर्निमित्तकारणम् । 'इमामगृभ्णन् रशनामृतस्येत्यश्वाभिधानीमादत्त' इति वाक्येन गर्दभरशनाग्रहणमन्त्रात् । गृभ्णन् गृह्णन् 'ग्रहो भश्छन्दसि' । ननु विभागेनोत्पत्तौ नाशः केन स्यात् । शृणु संयोगेन भविष्यतीति । मुद्गराद्यभिघातादिना घटादिनाशात् । अत इत्यादिभाष्यविवरणमत इत्यादि भाष्यं विवृण्वन्त उपसंहरन्ति स्म अत इति । कोपीति ननु 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते' इति श्रुतेरुपादानमीश्वरः परमाणवश्चतुर्विधाश्च । अत एव 'जन्माद्यस्य यतः' इत्यत्र 'यतो वा इमानि' इत्यत्र यत इत्यव्ययमुक्तमिति चेन्न । यत इत्यत्र ब्रह्मरूपार्थस्य जिज्ञासाधिकरणेन सिद्धाव्ययप्रयोगस्य

समवायाभ्युपगमाच्च साम्यादनवस्थितेः ॥ १३ ॥

परमाणुद्व्यणुकयोः समवायोङ्गीक्रियते । स संबन्धिनोरवस्थानमपेक्ष्य, संबन्धस्योभयनिष्ठत्वात् । स च नित्यः सदा संबन्धिसत्त्वमपेक्षते । अतोपि न द्व्यणुकमुत्पद्यते । किंच । समवायो नाङ्गीकर्तुं शक्यः । संयोगेन तुल्यत्वात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

समवायाभ्युपगमाच्च साम्यादनवस्थितेः ॥ १३ ॥ असमवायिनिमित्तयोर्दूषणमुखेन दूषयित्वा समवायदूषणमुखेन दूषयतीत्याशयेनाहुः **परमाण्वि**त्यादि । सूत्रे तु **समवायाभ्युपगमाच्च** तदभाव इति पूर्वेण संबन्धः । परमाणुद्व्यणुकयोः कारणकार्ययोः **समवायोङ्गीक्रियते** काणादैः । समवायो नामायुतसिद्धानामाधाराधेयभूतानामिह प्रत्ययहेतुः संबन्धः । यथा इह तन्तुषु पटः, इह पटे शुक्लत्वम्, इह गवि गोत्वमिति । स च, कार्यकारणयोर्गुणगुणिनोः क्रियाक्रियावतोर्जातिव्यक्त्योर्विशेषनित्यद्रव्ययोश्च । अयुतसिद्धौ च तौ, ययोर्द्वयोरनश्यदेकमपराश्रितमेवावतिष्ठते । स च सर्वेषामेको नित्यो व्यापकश्चेति । एवमभ्युपगम्यमानो यः समवायः **स संबन्धिनोः** परमाणुद्व्यणुकयो**रवस्थानमपेक्ष्य** वक्तव्यः । **संबन्धस्यो**भयस्वरूपनिरूप्यत्वेनोभय**निष्ठत्वात्** । **स च नित्य**त्वात् **सदा संबन्धिसत्त्वमपेक्षते** । संबन्धि च द्व्यणुकं न सदातनम् । असत्कार्यवादाभ्युपगमेन पूर्वकाले तदभावात् । **अत**स्तस्य नित्यत्वाय **द्व्यणुकं नोत्पद्यत** इत्यङ्गीकार्यम् । तथा सति असत्कार्यवादहानिरन्यथा च

रश्मिः ।

ब्रह्मविद्योपनिषदि 'ब्रह्मविद्यां प्रवक्ष्यामि सर्वज्ञानमनुत्तमाम् । यत्रोत्पत्तिं लयं चैव ब्रह्मविष्णुमहेश्वरात्' इति प्रोक्तब्रह्मादिभ्य एवोत्पत्तेरद्वैतश्रुतिविरोधाच्चेत्येवं न कोपि दोष इत्यर्थः । **दिगिति** शंकराचार्यादिसर्वासंमतत्वात्पुराणाद्यसंमतत्वाच्च दिगिति ॥ १२ ॥

समवायाभ्युपगमाच्च साम्यादनवस्थितेः ॥ १३ ॥ **असमवायीति** । नन्वसमवायो दूषितः, निमित्तं तु न दूषितमिति चेन्न । किंच । ईश्वरस्य निमित्तमात्रत्वे परमाणुसमवाय्यभावान्निमित्तमीश्वरः सूत्रोक्तं कर्म निमित्तं तद्दूषितमेव । अभिन्ननिमित्तोपादानमिति वक्तव्यमिति निमित्तं दूषितम् । **समवायो नामे**ति एतच्च तद्भाष्येस्ति संबन्धान्तम् । इह प्रत्ययानाहुः **यथे**ति । आधाराधेये आहुः **स चे**ति । **कार्यकारणयो**रित्यादि द्व्यणुकपरमाण्वोः, घटरूपयोः । पचंश्चैत्र इत्यत्र चैत्रपचनयोः घटघटत्वयोः कर्मक्रिययोः । कर्म 'सत्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इत्युक्तश्रीयमुनाजिद्रूपं सत्ताक्रियात्वं राधात्वं च । क्रिया राधा । **नवाध्यां व्युत्पादितं वेदटीकायाम्** । विशेषपदार्थसकलपरमाण्वोश्चेत्यर्थः । एतेषु युगलेष्वयुतसिद्धत्वं विधत्ते **अयुतेति** । **तौ अयुतसिद्धौ** जानीयात् तावीदृशावित्याह **ययो**रिति अयुतसिद्धलक्षणम् । यथा जातिव्यक्त्योर्व्यक्तिनाशेऽनश्यदेकं गोत्वमपरगवाश्रितमेवावतिष्ठतेतो जातिव्यक्ती अयुतसिद्धे । **स चे**ति समवायः । 'नित्यसंबन्धत्वम्' तल्लक्षणम् । संयोगेतिव्याप्तिवारणाय नित्येति । आकाशादावतिव्याप्तिवारणाय संबन्धेति । **स** समिति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **एव**मिति । **संबन्धस्ये**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **संबन्धस्ये**ति । **स च नित्य** इत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **स च नित्यत्वा**दिति । **तदभावात्** द्व्यणुकाभावात् । **अतोपी**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अतस्तस्ये**त्यादि । **तस्य** समवायस्य नित्यत्वाय । **तथा सति** द्व्यणुकस्य नित्यत्वे सति । **अन्यथे**ति द्व्यणुकानित्यत्वे ।

संबन्धत्वात् तस्य । यथा संबन्धिनि संबन्धान्तरापेक्षा एवं समवायस्यापि । तथा सत्यनवस्थितिः ॥ १३ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

समवायनित्यत्वहानिरित्युभयतःपाशा रज्जुः । अथ स नित्यत्वात् परमाणुष्वेव तिष्ठन् पश्चाद् द्व्यणुकेन संबद्ध्यत इत्युच्यते तर्हि तस्य तदानीं सत्तायां प्रमाणं वक्तव्यम् । न तावल्लौकिकं प्रत्यक्षम् । परमाणूनामेवाप्रत्यक्षत्वेन तद्धर्मस्यास्य सुतरां तथात्वात् । नापि योगिनाम् । कणादादिव्यतिरिक्तैर्मुनिभिरनङ्गीकारात् । कणादप्रत्यक्षस्य वादकवलितत्वात् । नाप्यनुमानम् । तत्साधकस्य लिङ्गस्याभावात् । नापि शब्दः । सर्ववेदादिवेत्तृणामपि मुनीनां तादृशश्रुतिपुराणवाक्यानुपलम्भात् । नाप्युपमानम् । तत्सदृशस्य संबन्धान्तरस्याभावात् । किंच । सदृशान्वेषणे संयोगस्तथा वक्तव्यः । तदापि समवायो नाङ्गीकर्तुं शक्यः तेन तुल्यत्वात् । संबन्धत्वेनापि तिष्ठतस्तस्य यथा संबन्धिनि स्थित्यर्थं संबन्धान्तरस्य समवायस्यापेक्षा, एवं समवायस्यापि स्यात् । संबन्धत्वेनात्यन्तभिन्नत्वेन च तत्तौल्यात् । ततस्तस्यापि तस्यापीत्यनवस्थितिश्च । अन्यान्यपि दूषणानि श्रीहर्षमिश्राद्युक्तानि मया प्रस्थानरत्नाकरे व्युत्पादितानीति

रश्मिः ।

पाशो बन्धनसाधनम्, प्रकृते दूषणकारणम् । अग्रिमभाष्यं विवरीतुं पीठिकामाहुः **अथ स** इति । **स** समवायः । **पश्चा**दिति द्व्यणुकोत्पत्त्यनन्तरम् । **तदानी**मिति द्व्यणुकोत्पत्तिपूर्वकाले । **प्रमाण**मिति अयुतसिद्धेष्वभावाद्वक्तव्यम् । **तत्साधके**ति द्व्यणुकोत्पत्तेः पूर्वं परमाणौ समवायसत्तासाधकस्य । **तादृशे**ति परमाणूनां समवायो दृश्यते यत्र तानि तादृशानि श्रुतिपुराणवाक्यानि तेषामनुपलम्भात् । **तत्सदृशस्ये**ति समवायसदृशस्य । सादृश्यमेकत्वनित्यत्वव्यापकत्वैः सादृश्यम् । **किंचे**ति भाष्यं विवरीतुमवतारयन्ति स्म **किंचे**ति । **तथे**ति संबन्धत्वेन । **संयोगे**नेति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तेने**ति । तथा च सूत्रे साम्यात्तुल्यत्वात्समवायानवस्थितेर्न समवायाङ्गीकारो युक्त इति सूत्रशेषार्थः । संबन्धत्वादित्यस्य तुल्यत्वादित्यर्थं इति भाष्ये उपचारं व्यावर्तयितुं संबन्धाद्धेतोस्तुल्यत्वादित्यर्थं हृदिकृत्याहुः **संबन्धत्वेने**ति । **तस्ये**ति संयोगस्य । **समवायस्यापेक्षे**ति गुणगुणित्वाभ्याम् । संयोगातिरिक्तगुणगुणिनोः स इति कल्पने गौरवात् । अस्मन्मते स्पर्शस्य संयोगानतिरेकात्स्पर्शस्य संबन्धानङ्गीकारप्रसङ्गाच्च । 'न च संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः' इत्यत्राचार्यैर्द्वयोर्भेदाङ्गीकारान्नैवमिति वाच्यम् । लोकसिद्धपुरस्कारात् । **तत्तौल्यात्** संयोगतौल्यात् । **तथा सती**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तत** इति । समवायस्यापि समवायापेक्षेत्येवं समवायसमवायस्यापि समवायापेक्षेत्यर्थः । **चे**ति । तथा च सौत्रश्चकारोत्रान्वेतीत्यर्थः । **प्रस्थानरत्नाकर** इति शब्दखण्डे । **व्युत्पादित**मिति । यत्त्वयुतसिद्धलक्षणेऽपराश्रितत्वं तच्चापरसंबन्धित्वम् । तत्र कोसौ संबन्धः संयोगः समवायो वा, नाद्यः समवायस्थलेपि तस्य संभवेन समवायापलापप्रसङ्गात् । प्रतियोग्यनुयोगिनोरविशेषात् । नापरः, अपराश्रितत्वस्य समवायिघटितत्वेन समवायिनिरूपणे आत्माश्रयप्रसङ्गेनानिर्वाच्यत्वात्समवायासिद्धेः । वस्तुगत्या तु कार्यमात्रस्य प्रलये नाशं वदद्भिर्वैशेषिकैस्तादृशगुणक्रियाप्रतियोगिकस्य तादृशव्यक्त्यनुपयोगिकस्य च समवायस्य प्रतियोग्यादिनाशात् प्रमातॄणां जीवानां बाह्यकरणनाशाच्च प्रतीत्यभावेन कालिकादिसंबन्धेन कालादौ सत्तामप्युपपादयितुमशक्नुवद्भिर्नित्यत्वप्रतिज्ञा भज्येतेति श्रीहर्षमिश्रः । आदिशब्देनान्यमतं तदपि

भाष्यप्रकाशः ।

नात्रानूद्यन्ते । अतः समवायाभ्युपगमादपि द्व्यणुकाभाव इत्यर्थः । ननु दूषिते समवाये अयुतसिद्धयोः कः सम्बन्धोऽङ्गीकर्तव्य इति चेत्, तादात्म्यमेवेति वदामः । कथमिति चेद्, इत्थम् । प्रत्यक्षात् यद् द्रव्यं यद्द्रव्यसमवेतं तत् तदात्मकमिति व्याप्तेः'यथा सुवर्णं सुकृतम्' इत्यादिभगवद्वाक्याच्च कारणकार्यद्रव्ययोस्तादात्म्यं निर्विवादम् । गुणादिष्वपि विचारे शब्दादीनामाकाशादितन्मात्रात्वेन संख्यापरिमाणपृथक्त्वपरत्वापरत्वविभागानां सापेक्षवृत्तिकतया स्वरूपानतिरेकेण

रश्मिः ।

तत्र द्रष्टव्यम् । सूत्रार्थमाहुः **अत** इति । साम्यादनवस्थितेः समवायाभ्युपगमाच्चेत्यपेरर्थः । तदभाव इति पूर्वसूत्रादनुवर्तत इत्याहुः **द्व्यणुके**ति । **तादात्म्य**मिति । एतच्च समन्वयाधिकरणे लक्षितम् । **इति व्याप्ते**रिति । यथा घटद्रव्यं कपालद्रव्यसमवेतं तद्घटद्रव्यं कपालद्रव्यात्मकमित्यत्र यदि यद्द्रव्यसमवेतं तदात्मकत्वव्यभिचारि स्यात्तदा यद्द्रव्ये तदात्मके न भायादिति तर्को व्याप्तिशोधकः । **कारणे**ति धर्मादिः । उपजीव्योपजीवकभाव इतिवत् । गुणगुणिनोरित्याद्युक्तेषु तादात्म्यमाहुः । यद्वा यद्ययं वह्निमान्न स्याद्धूमवान्न स्यात् कारणं विना कार्यानुत्पत्तेः । कार्यं च यदि क्वचित्कारणं विना भविष्यति । अहेतुक एव वा भविष्यतीतिवद्वा । गुणगुणिनोरित्याद्युक्तेषु तादात्म्यमाहुः **गुणादिष्वपी**ति । **स्वरूपे**ति घटे दृष्टे सति पूर्वोक्तानां गुणानां घटस्वरूपानतिरेकेणानुभवो दृश्यते । यथैको घटः परिमित एतद्देशात्पृथगस्मात्परोऽस्मादपरोऽस्माद्विभक्त इति । यदि स्वरूपातिरिक्ततया गुणता स्याद्रूपो घट इति प्रतीत्यनुल्लेखवदेको घट इत्यादिप्रतीत्यनुल्लेखः स्यात् । उल्लेखस्तु रूपवान् रूपीत्येवम् । तस्माद्रूपमर्थजातिः । एते तु स्वरूपे निविशन्ते । एकत्ववानिति प्रतीतिसत्त्वे एक इति प्रतीतेः । एवमन्याः प्रतीतय उन्नेयाः । किंच । सापेक्षावृत्तिर्वर्तनं येषां तथाविधाश्च । नहि रूपादीनां सापेक्षावृत्तिरस्ति एतदपेक्षया नील इति । या तु स्वल्पनीलमपेक्ष्यैष नीलोऽधिक इति प्रतीतिः सा तु नीलस्याधिक्यं सापेक्ष्यमिति बोधयतीति न दोषः । अन्यथैतादृशाधिक्यमपि गुणान्तरं स्यात् । न च स्वाश्रयसमवेतत्वरूपपरंपरासंबन्धेनात्रापि परिमाणात्मकाधिक्यमिति वाच्यम् । नीले आधिक्यप्रतीतेर्बाधकाभावाच्च । न च गुणे गुणानङ्गीकार इति नैवमिति वाच्यम् । स्वाश्रयाधिकदेशवर्तिन्यां प्रभायां गुणाङ्गीकारस्यावश्यकत्वात् 'गुणाद्वा लोकवत्' इति सूत्रभाष्ये स्फुटीकरिष्यते । अथवा सापेक्षा तद्द्रव्यमेवापेक्ष्य वृत्तिर्वर्तनं सत्ता द्रव्यनाशे तु नाश इत्येवंरूपया सापेक्षिकवृत्तिकतयेवेत्यर्थः । तथा च संख्यादयः स्वरूपानतिरेकवन्तः स्वरूपसत्त्वेऽसत्त्वे सति स्वरूपनाशे नाशात्, कम्बुग्रीवादिमत्त्ववत् । व्यतिरेके रूपादिमदित्यनुमानं फलितम् । ननु व्यतिरेके हेतुः साधारण इति चेन्न । आमघटादौ रूपपरावृत्तिदर्शनेन विशेष्याभावप्रयुक्तो हेत्वभाव इति । एवं शब्दरसगन्धस्पर्शानां परावृत्तिरत्र द्रष्टव्या । संख्यादयस्तु न तथा । आमघटे दृष्टानामेवैकत्वसंख्यामध्यमपरिमाणयन्निरूपितपृथक्त्वपरत्वापरत्वविभागानां पक्के घटेऽप्यनुभवात् । न चैवं रूपादयो भवन्ति । अतः संख्यादयो घटस्वरूपानतिरेकवन्तः । रूपादयस्तु स्वरूपातिरेकवन्तः । न च संयोगाभावो विभागः विभागाभावः संयोगः किं न स्यादतो विनिगमनाविरहादुभयं मन्तव्यम् । **प्रस्थानरत्नाकरे** तु कारणकोटिसमाप्त्युपान्ते पृथक्त्वमाविर्भावेन्तर्भावयांबभूवुः । अस्मात्पृथगित्यादिव्यवहारसाधकत्वेनाविर्भावातिरेके मानाभावात् । **शिरोमणि**स्तु पदार्थतत्त्वविवेचनाख्यग्रन्थे गुणवृत्तितया संख्या पदार्थान्तरमित्याह । न चैकं रूपमितिप्रत्ययो भ्रमः । बाधकाभावात् । एकार्थसमवायप्रत्यासत्त्यैकं रूपमिति प्रत्यय इति चेत् विलक्षणाभ्यां समवायैकार्थसमवायाभ्यामविलक्ष-

रश्मिः ।

णायास्तद्वृत्ताप्रतीतेरसंभवात् । नन्वेतादृशानुभवे मानाभाव इति चेन्न । घटत्वस्यादावेकत्वैकार्थसमवायादेकं घटत्वमितिवद्द्वौ घटत्वमिति प्रत्ययापत्तिः । द्वौ घटावित्यत्र तादृशसंबन्धेन द्वित्वस्य घटत्वे वक्तुं शक्यत्वात् । यत्तु घटत्वे घटत्वमित्यादिप्रत्ययप्रसङ्ग इति रघुदेव एतद्व्याख्यायामाह तन्मन्दम् । घटत्वस्यैकत्वेन घटत्वे घटत्वान्तरैकार्थसमवायाभावात् । तस्मात्संख्या पदार्थान्तरमिति द्वित्वस्य घटत्वे समवायाभावान्न द्वौ घटत्वमिति प्रत्ययः । तदिदमशोभनम् । पदार्थान्तरत्वे गौरवात् । पञ्चकं प्रातिपदिकार्थ इति पक्षे स्वरूप एवान्तर्भावात् । द्विकं प्रातिपदिकार्थ इति पक्षे विभक्त्यर्थत्वात् । तथा च पाणिनिः 'द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने' इति । यत्तु **शिरोमणिः** पृथक्त्वमपि न गुणान्तरम् । अन्योन्याभावादेव पृथक्त्वव्यवहारोपपत्तेः । तथा च घटात्पटः पृथग्भिन्न इतरोर्थान्तरमिति प्रत्ययः । पृथक्त्वं भिन्नत्वरूपं भेदं नावगाहत इति युक्तम् । तथा परत्वापरत्वेपि न गुणान्तरे । न चैवं विप्रकृष्टसन्निकृष्टयोर्ज्येष्ठकनिष्ठयोश्च देशकृते परत्वापरत्वे कालकृते च ते आश्रित्यायमस्मात्परोऽयमस्मादपर इति व्यवहार उच्छेत्स्यतीति वाच्यम् । बहुतरसंदेशसंयोगाल्पतरसंयोगान्तर्भूताभ्यां विप्रकृष्टत्वसन्निकृष्टत्वाभ्यां दैशिकपरत्वापरत्वयोस्तत्प्रागभावाधिकरणक्षणवृत्तित्वरूपतज्ज्येष्ठत्वोत्पत्तिक्षणवृत्तिध्वंसप्रतियोगिक्षणवृत्तितत्कत्वरूपतत्कनिष्ठत्वाभ्यां कालिकपरत्वापरत्वयोश्चोपपत्तेः । परमपरयोर्देशापेक्षा । यथा प्राचीदिशमपेक्ष्य ग्रामावधेः परं गृहमिति । द्वितीययोस्तु परस्परस्यापेक्षेति कनिष्ठत्वमपेक्ष्य ज्येष्ठत्वं ज्येष्ठत्वमपेक्ष्य कनिष्ठत्वमिति तथेति । पृथक्त्वपरत्वापरत्वानामन्योन्याभावसंयोगतत्तत्पदार्थेष्वन्तर्भावमाह तदप्यविरुद्धम् । कथमिति चेत् । विप्रकृष्टत्वसन्निकृष्टत्वयोः संयोगेन्तर्भावस्य व्याख्यातृदोषदुष्टत्वात् । यदि च बहुतरदेशसंयुक्तो देशस्तस्य संयोगो दूरतर इति परत्वमेतादृशसंयोगस्तस्यापरत्वमपीति विभाव्यते तर्हि्तु संयोगेन्तर्भावो दैशिकपरत्वापरत्वयोर्न तावता गुणान्तरतेति ध्येयम् । अत्रासमवायिकारणं दिक्संयोगः । निमित्तं तु बहुतरसूर्यसंयोगान्तरितत्वज्ञानम् । अपरत्वस्य त्वल्पतरसूर्यसंयोगान्तरितत्वज्ञानं निमित्तम् । असमवायि तु तदेवेति । कालिके तु कालसंयोगोऽसमवायिकारणम् । निमित्तं तु तत्पूर्वोत्पन्नत्वरूपज्येष्ठत्वबुद्धिः । तदनन्तरोत्पन्नत्वरूपकनिष्ठत्वबुद्धिश्च । केचित्तु बहुतरसंयोगान्तरितत्वे विप्रकृष्टत्वम् । अल्पतरसंयोगान्तरितत्वे सन्निकृष्टत्वम् । बहुतरस्पन्दान्तरितजन्मत्वे ज्येष्ठत्वम् । अल्पतरस्पन्दान्तरितजन्मत्वे कनिष्ठत्वमन्तर्भावयन्ति स्म । कनिष्ठेधिकजीविनि बहुतरसूर्यपरिस्पन्दान्तरितजन्मसत्त्वेन परत्वव्यवहारापत्तिस्तु न भवति । कनिष्ठत्वबुद्धिकाले ज्येष्ठत्वबुद्धिरुदेति तत्सापेक्षत्वात् । एवं च कनिष्ठजन्मकालानन्तरभूतकनिष्ठत्वबुद्धिकालमादाय स्पन्दन्यूनाधिकतयोरवसेयत्वाद् इत्यपि वदन्ति स्म । **मुक्तावलीकारस्तु** पृथक्त्वस्यान्योन्याभावात्मकत्वे घटात्पृथगितिवद्घटो नेत्यत्रापि पञ्चमीप्रसङ्गः । अतो यादृशार्थयोगे पञ्चमी सोर्थोन्योन्याभावभिन्नः पृथक्शब्दार्थ इत्याह । अत्र 'अन्यारादितरर्ते दिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते' इति सूत्रेन्य इत्यर्थग्रहणमितरस्यान्यार्थत्वेपि ग्रहणं प्रपञ्चार्थमित्यनेन तु पञ्चमी ग्रन्थकर्तुर्नापेक्षिता । घटाद्भिन्न इतिवत् घटो नेत्यत्र पञ्चम्यापत्तेरनुद्धारात्किंतु 'पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम्' इति सूत्रेणाभिप्रेता । अत्र तु पृथगिति शब्दग्रहणं न त्वर्थग्रहणम् । रामं रामेण वान्य इतरो भिन्न इति प्रयोगाभावात् । तथा च नञ् न पृथक्शब्द इति नञो योगे पञ्चम्यापादनं न संभवति । ननु 'अन्यारात्' इति सूत्रेण प्राप्ता पञ्चमी कथं वार्या । अन्यो घट इतरो घटो भिन्नो घट इतिवद् घटो नेत्युपपत्तेः । अन्यारादिति सूत्रं तु यत्प्रतियोगिकान्योन्याभावस्तत्र पञ्चमीं विदधाति न त्वन्योन्याभावस्यानुयोगिनि । नन्वेवमपि घटो

भाष्यप्रकाशः ।

संयोगगुरुत्वद्रवत्वस्नेहानां स्पर्शेन्तर्भावेन बुद्ध्यादिप्रयत्नान्तानां मनोवृत्तितया वेगस्थितिस्थापक-

रश्मिः ।

नेत्युपपत्तावपि घटो न पट इत्यत्र पटशब्दादन्योन्याभावप्रतियोगिनः पञ्चमी तु स्यादेवेति चेन्न । अन्योन्याभावमात्रवाच्यार्थग्रहणात् । अन्यपदस्य तत्रैव शक्तेः । नञर्थस्तु संसर्गाभावोन्योन्याभावश्चेत्यग्रहणमित्यपञ्चमी । न चान्यारादिति सूत्रेणैव पञ्चम्याः पृथग्योगे प्राप्तावपि पृथक्सूत्रेण पञ्चमीविधानं पृथक्त्वमन्यात्पृथगिति बोधयिष्यतीति वाच्यम् । पृथक्सूत्रस्य तृतीयाद्वितीययोरप्राप्तयोर्विधानार्थत्वात् । नव्यास्तु । अन्यारादिति सूत्रे निपातातिरिक्तान्योन्याभावार्थकपदप्रयोगस्यैव पञ्चमीप्रयोजकत्वं कल्प्यते । घटो नेत्यत्र पञ्चम्यदर्शनात् । न चान्योन्याभावविशिष्टार्थे पदयोगे पञ्चमीति व्याख्यायतां घटो नेत्यत्र तु नञो नान्योन्याभावविशिष्टार्थकत्वं किंत्वन्योन्याभावार्थकत्वमिति न नञो योगे पञ्चमीति वाच्यम् । घटाद्भेद इत्यत्र घटो नेत्यत्रेवान्योन्याभावार्थकभेदपदयोगे पञ्चम्यप्रसङ्गापत्तेः । अतः पूर्वोक्तमेव प्रयोजकमित्याहुः । अत्रापि घटादन्यः पट इत्यत्रान्योन्याभावानुयोगिनः पटात्कथं न पञ्चमीति प्रश्नः । किंच पूर्वतन्त्रे षष्ठस्य तृतीये पादे 'क्रियाणामाश्रितत्वाद्रव्यान्तरे विभागः स्यात्' इत्यधिकरणे दर्शपूर्णमासयोर्व्रीह्यसंभवे नीवाराः स्वीक्रियन्ते । तत्र नीवारद्रव्यभेदात् कर्म भिद्यते, द्रव्यकर्मणोरेकत्वात् । यतो द्रव्यं कर्मणः स्वरूपम् । ततो द्रव्यान्तरत्वे कर्मान्तरत्वमिति प्राप्ते इदं सूत्रं प्रववृते क्रियाणामित्यादि । क्रियाणामाश्रितत्वाद्रव्याणामाश्रयत्वात्तादात्म्येन भेदस्यापि सत्त्वाद्रव्यान्तरे नीवारद्रव्ये कर्माविभागः स्याद्रव्यस्य तु विभाग इति सूत्रार्थः । अत्र क्रियाक्रियावतोरभेदे जात्यादिवद्गुणवद्देवतादिभेदेपि चलति यजति दर्शपूर्णमासावनुतिष्ठतीत्येकबुद्धिवेद्यत्वं हेतुरिति **पार्थसारथिमिश्रा** वदन्ति । तदेकबुद्धिवेद्यत्वं चेमौ घटपटावित्यत्र व्यासज्यवृत्त्यपीति घटपटयोस्तादात्म्यापत्तिः । मैवम् । एकबुद्धिवेद्यत्वं च ययोरेकतरस्याविच्छिद्यैव वेद्यत्वं घटपटयोस्तु न भवत्यविच्छिद्य वेद्यत्वम् । कालान्तरे विच्छेदेऽयं घटस्ततोऽप्ययं पट इति बुद्धिवेद्यत्वात् । नह्येवं क्रियां द्रव्यतो विच्छेद्य जानाति कश्चित् । एवं हेतुं प्रसाध्य संख्यादिषु पक्षेषु एकबुद्धिवेद्यत्वाद्धेतोस्तत्तदाश्रयस्वरूपानतिरेकः साधनीयः । पक्षैकदेशस्तु दृष्टान्तः । सर्वमभिधेयं प्रमेयत्वादित्यत्रेव शब्दस्पर्शरसगन्धरूपाणि तु विच्छिद्य गृह्यन्त इति नाश्रयस्वरूपाः । वेदशब्दनित्यत्वेनाकाशोत्पत्तेर्वक्ष्यमाणत्वेनाकाशोत्पत्तेः पूर्वं शब्दस्य विच्छिद्य ग्रहणात् । ननु यद्ग्राहकं तदेवाकाशमस्तु यत्र गृह्यते स एवाकाशोस्तु । सत्यज्ञानानन्दातिरिक्तपदार्थाभावेन तदानीं तदतिरिक्तग्राहकाधिष्ठानयोरभावात् । स्पर्शोप्युष्णो जले विच्छिद्य गृह्यते । नहि तत्र वह्न्यवयवाः सन्ति । अन्यतो वह्निनाशप्रसङ्गात् । पात्रेणान्तरितेवयवप्रवेशासंभवाच्च यतस्तथैव दृश्यते । रसोपि विच्छिद्य गृह्यते । कटुसंलग्नकाष्ठे कटुरसोपलब्धेः । गन्धरूपयोस्तु गुणाद्वेति सूत्रे विच्छिद्य ग्रहणं वक्ष्यते । अतः शब्दादयः पञ्चाप्यधिकदेशवर्तिनः । तर्हि संयोगादीनां तु भविष्यत्याधिक्यमित्याकाङ्क्षायां नेत्याहुः **संयोगे**ति । स्पष्ट एव लोके संयुक्तत्वव्यवहारात्संयोगः स्पर्शः । **गुरुत्वम**पि स्पर्शः स्पर्शसहितेनोत्तोलनादिना तदवगतेः । **द्रवत्व**मपि स्पर्शः, स्पर्शेन तज्ज्ञानात् । **स्नेहो**पि तथा, त्वचैवावगमात् । तथाच **स्पर्शेन्तर्भावेने**त्यर्थः । स्फुटमेतत्स्पर्शनिरूपणे **प्रस्थानरत्नाकरे** । संयोगस्पर्शत्वं प्रत्यक्षसिद्धम् । गुरुत्वं तु कठिनसंयोगः । स्नेहद्रवत्वे शिथिलसंयोगौ प्रत्यक्षः । **बुद्ध्यादी**ति बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नानाम् । **मनोवृत्ती**ति 'कामः सङ्कल्पो विचिकित्सा श्रद्धाश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव'

भाष्यप्रकाशः ।

क्रियाणां सामर्थ्यरूपत्वेन जातेरपि व्यवहारसाधकतया स्वरूप एव निवेशेन तत्रापि तादात्म्यस्यैव स्फुटत्वात्। भावना संस्कारो विशेषाश्च प्रमाणविरहादेवानादरणीया इति न कोपि शङ्कालेश इति दिक् ॥ १३ ॥

रश्मिः ।

इति श्रुतेः । काम इच्छा, सङ्कल्पो निश्चयः, विचिकित्सा संशयः, श्रद्धा आस्तिक्यम्, धृतिः सुखादि, धरणमप्रकाशनम् । धीर्भ्रमः। इतिशब्देन प्रकारवाचिना दृष्टस्नेहाद्या मनोधर्मा एव । एते चाध्यासेन जीवे भासन्ते । तेन रूपसंख्यापरिमाणस्पर्शविभागवैराग्यसांख्ययोगतपोभक्ति-चैतन्यसत्त्वानि द्वादश पारमार्थिकानि । परत्वापरत्वान्तःकरणाध्यासप्राणाध्यासेन्द्रियाध्यासदेहाध्यास-स्वरूपविस्मरणानि सप्तान्योपमर्दनीयानीत्येवमेकोनविंशगुणा जीवे न तु चतुर्दशगुणाः, ब्रह्मविद्यावतां तथैवानुभवात् । अन्यत्रान्तर्भूतानि स्पष्टप्रतिपत्तावुक्तानि। अतो न संख्याविरोधः । **वेगेति** । इमौ संस्कारौ। **क्रियाः** पञ्चविधा अपीति। **सामर्थ्येति** मनसो झटिति दूरगमन ईदृशो वेगो भवतीति प्रयोगवदीदृक् सामर्थ्यं भवतीति प्रयोगात्पर्यायतानिश्चयात् । एवं शाखादावेतादृशः संस्कारो भवतीति प्रयोगवदीदृक्सामर्थ्यं भवतीति प्रयोगात्। क्रिया तु प्रत्यक्षेणैव गृह्यते निष्क्रिये शरीरादौ निःसामर्थ्यं शरीरमिति सक्रिये समर्थं शरीरमिति च प्रयोगात्क्रियापि सामर्थ्यम् । सामर्थ्येन गच्छतीत्यत्रापि सामर्थ्येन कर्मणेत्यर्थः। क्रियाणां त्रिक्षणावस्थायित्वेन क्रियान्तरजन्यत्वात् सामर्थ्यरूपत्वेनेत्यर्थः । तेनैषां सामर्थ्यरूपत्वे प्रत्यक्षं प्रमाणम्। **जातेरपीति** । इयं गौरित्यादि-**व्यवहारसाधकतया** आकृतेरपि व्यक्तावेव द्रव्यरूपायां निवेशेनेत्यर्थः। इदं शब्दखण्डे **प्रस्थान-रत्नाकरे** स्पष्टम् । यथा काष्ठविकारेषु मञ्जूषास्तम्भपीठकादिषु काष्ठस्यैकविधस्य आकृत्या मञ्जूषादिव्यवहारः । तेन स्वरूपे निवेशे प्रत्यक्षमेव प्रमाणम् । **स्वरूप** इति पूर्वोक्तदिशा। **निवेशेनेति**। त्वद्रीत्यापि पञ्चैव गुणा भवन्तीति शेषः । संबन्धोयं तत्राप्यव्याहत इत्याहुः **तत्रापीति** । **प्रमाणेति** । तथा च भावनाज्ञानम् । न चैवं स्मृत्यनुपपत्तिः । 'अनुभवभिन्नं ज्ञानं स्मृतिः' इति तल्लक्षणात् । विशेषस्तु शब्दखण्डे **प्रस्थानरत्नाकरे** भ्रमनिरूपणानन्तरं स्मृतिनिरूपणेवसेयः । विशेषास्तु नवीनमतेपि न सन्ति । **शिरोमणिरपि** पदार्थतत्त्वविवेचने नाङ्गीचकार । **न कोपीति** । समवायघटितलक्षणादावपि समवायपदेन तादात्म्यमेवोच्यत इत्यतो न कोपीत्यर्थः । सांख्यमतदूषणावसरे पदार्था विचारिता अपि तादात्म्येपि प्रोच्यन्ते गुणाद्यन्तर्भावार्थम् । अत्र समवायदूषणेन पदार्थेन्तर्भावः स्मृतः । किंच । पूर्वाधिकरणसमासौ नव तत्त्वान्युक्तानि दिक्कालयोः स्थाने प्रकृत्यहंकारौ स्वीकृत्य तेन द्रव्याणि नव । परं त्वीश्वरस्तु न तन्मतप्रतिपन्न इति प्रतिपदं स्फुटम्। **आत्मवादे** चोक्तं मया । मनस्तु जन्यमन्नमयं चेति क्षितौ प्रवेशः । गुणास्तु तन्मात्रात्मकाः पञ्चैव । इतरेषामन्तर्भाव उक्तः । इतरेषां यथायथमेतेष्वेवान्त-र्भावात् । धर्माधर्मावपि कर्म । स्वर्गादिसाधनं धर्मः । तिरोहितधर्मस्त्वधर्मः नरकसाधनम् । नराणां कं सुखम् । अत्यन्तापराधिनां पञ्चमोक्तनरकाणामपि सुखत्वात् । कर्म तु आत्मस्वरूपं सद्भिन्नमप्येकमेव गमनात्मकम्। न तूत्क्षेपणादिपञ्चकम्। द्व्यणुकसमवाययोर्दूषणेनास्य स्वतन्त्रेच्छ-स्यापि मुनेः पर्यनुयोगानर्हत्वात् । सामान्यं त्वाकृतिरतस्तदपि स्वरूपम् । आनन्दमात्रकरपादमुखो-दरादिरूपत्वादाकृतेः, माया वा, व्यक्तिमात्रे शक्तिरिति, आकृतिः तत्र स्थितं रूपं वा । शेषास्तु न सन्त्यैक्यभ्रमजनकाः। विशेषास्तु सन्ति। समवायोपि न, तादात्म्यमस्ति। अभावत्व-

नित्यमेव च भावात् ॥ १४ ॥

परमाणोः कारणान्तरस्य च नित्यमेव भावात् सदा कार्यं स्यात् ॥ १४ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

नित्यमेव च भावात् ॥ १४ ॥ तदभाव इतीहाप्यनुषज्यते । व्याकुर्वन्ति **परमाणो-**

रश्मिः ।

स्त्वत्यन्ताभावः । उपदेशे सत्त्वात् तिरोभावे निविशते । इह भूतले घटो नास्तीत्यादिप्रतीतीनां तिरोभावावगाहित्वात् । तिरोभाव एव नास्तीति व्यवहारदर्शनात् । घटाभावाभावस्य घटात्मकत्वेन संकीर्णत्वेऽप्यभावमुखप्रतीत्या तिरोभावत्वाव्यभिचारात् । अभावपदेनापि भावप्रतियोगिकपृथक्त्ववानेव प्रतीयते । न भावः अभावः इति भावभिन्नः अभाव इति । स च निषेधपूर्वको भाव एवान्यथा ह्यसत्त्वात् खपुष्पवन्निःस्वभावः स्यात्तथा सति न प्रतीयेतैव । अतः प्रतीत्यनुरोधाद्भावान्तरविलक्षणस्तिरोभावरूपब्रह्मशक्तिरूप एव । 'आविर्भावतिरोभावौ शक्ती वै मुरवैरिणः' इति वाक्यात् । तिरोभावस्तु वर्तमानस्य वस्तुनो दर्शनाभावयोग्यतेति **विद्वन्मण्डने** स्फुटम् । ध्वंसप्रागभावौ तु समवाय्यवस्थाविशेषस्वरूपौ । तिरोभावसहकृता कार्यस्थितिप्रतिकूलावस्था ध्वंसः । तादृशी कार्याविर्भावानुकूलावस्था प्रागभावः । तदतिरिक्ते मानाभावात् । अवस्था च समवायिनो ग्राह्या । तथा च प्रत्ययः कार्यस्थितिप्रतिकूलां कारणावस्थां पश्यत एवेह घटो ध्वस्त इति । कार्यजननानुकूलां कारणावस्थां पश्यत एवेह घटो भविष्यत्यत्र घटप्रागभाव इतीति । अन्योन्याभावस्तु प्रतियोगितावच्छेदकारोपापवादः । अयं घटः पटो नेत्यत्र पटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवान्घट इति बोधमुत्पादयन् प्रतियोगितावच्छेदकपटत्वं घटे नास्तीत्येवमारोप्यापवदतीत्यत्यन्ताभाव एव । लक्षणान्तरे तु स्पष्ट एवात्यन्ताभावः । 'प्रतियोगितावच्छेदकतानियामकसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकात्यन्ताभावः सः' इति लक्षणम् । घटे समवायेन पटत्वं नास्तीति प्रत्ययः । तादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वमन्योन्याभावत्वं यदि तदा त्वतिरिक्तः । परं तु घटस्तादात्म्येन पटो नेत्यत्र पटतादात्म्यप्रतियोगिकाभावे पर्यवसानात्तादात्म्यरूपप्रतियोगितिरोभावसंकीर्णघटरूपानुयोगिस्वरूपविषयत्वात्स्वरूप एव निविशते । न च भवेदेतदेवं यदि पटतादात्म्यं घटे नेति बोधः स्यात् । बोधस्तु पटप्रतियोगिकाभाववान्घट इत्यापाद्यते तदा पृथक्त्वमन्योन्याभावः । एतच्चोपपादितं **प्रस्थानरत्नाकरे** प्रत्यक्षखण्डेऽभाववादे निपुणतरमुपपादितम् । अन्योन्याभावस्य भावत्वं संसर्गाभावत्वं चेति वदन् शिरोमणिरप्येतदनुमेने । केचित्तु प्रागभावमपि न मन्यन्त इत्यलम् । अपि च तमः पदार्थान्तरं न तेजःसामान्याभावः । 'स्वतेजसापिबत्तीव्रमात्मप्रस्वापनं तमः' इति वध्यघातकभावात् । विशेषस्त्व**न्धकारवादे** द्रष्टव्यः । प्रतिबिम्बोऽपि पदार्थान्तरः **प्रतिबिम्बवादे** स्फुटः । तन्न्यायेन गन्धर्वनगरादेरपि मायिकत्वस्य तुल्यत्वात् । 'अपरेयमितस्त्वन्याम्' 'जीवभूताम्' इति गीतायाम् । जीवस्य व्यापकत्वं तु न भवति । **जीवव्यापकत्वखण्डनवादे** खण्डनात् । किंच गन्धोऽधिकदेशवृत्तिः, चम्पकादौ तथादर्शनात् । विशेषस्तु 'गुणाद्वा' इति सूत्रे वक्ष्यते । पृथिव्यादिपञ्चमहाभूतैकादशेन्द्रियाणां च लक्षणानि प्रमेयप्रकरणे **प्रस्थानरत्नाकरे** सन्ति । इन्द्रियाणां त्वन्तर्भावोहंकारे । 'वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत् । तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः' इत्येकादशे भगवद्वाक्यात् । एतच्चतुर्थपादे विशिष्य वक्तव्यम् । **दिगिति** तर्काप्रतिष्ठानादिगिति ॥ १३ ॥

नित्यमेव च भावात् ॥ १४ ॥ **कारणन्तरस्य** चेति भाष्यं विवृण्वन्ति स

रूपादिमत्त्वाच्च विपर्ययोऽदर्शनात् ॥ १५ ॥

यद् रूपादिमत् तदनित्यम् । परमाणोरपि रूपादिमत्त्वाद् विपर्ययः ।

भाष्यप्रकाशः ।

रित्यादि । सामग्रीसमवधाने हि कार्यावश्यंभावनियमो लोके दृष्टः । प्रकृतेऽपि परमाणोः समवायिन ईश्वरेच्छादृष्टयोर्निमित्तयोश्च सृष्टिप्राकाले सत्त्वात्तज्जन्यस्य परमाणुद्वयकर्मणस्तज्जन्यस्य संयोगस्य चाभावो वक्तुमशक्य इति कारणान्तरस्य सर्वस्य विद्यमानत्वाद् द्व्यणुकं सदा स्याद्‌तोऽपि जन्यद्व्यणुकाभावात् परमाणुकारणवादो न संगत इत्यर्थः ।

अन्ये तु परमाणवः प्रवृत्तिस्वभावा वा निवृत्तिस्वभावा वा उभयस्वभावा वा अनुभयस्वभावा वा । आद्येऽविरतं सर्गापत्तिः । द्वितीये तु सर्वदा तदभावापत्तिः । तृतीये तु विरोधः । चतुर्थे तु पूर्वोक्तरीत्या निमित्तस्य नित्यसंनिधानान्नित्यप्रवृत्तिप्रसङ्गः । तदतन्त्रत्वे नित्यनिवृत्तिप्रसङ्ग इत्याहुः । सोऽयं स्वभावविकल्पो वैशेषिकानभ्युपगतत्वादाचार्यैरुपेक्षितः ॥ १४ ॥

रूपादिमत्त्वाच्च विपर्ययोऽदर्शनात् ॥ १५ ॥ एवं संयोगजन्यद्व्यणुकदूषणेन कार्यद्वारा परमाणुकारणवादे दूषितेऽपि यावत् तेषां नित्यत्वं न दूष्येत तावदनन्यथासिद्धनियतपूर्ववर्तित्वरूपस्य तदीयस्य कारणलक्षणस्य परमाणुष्वभिमाने पुनः स वाद उत्तिष्ठेदिति तदभावाय परमाणुनित्यत्वदूषणेन दूषयतीत्याशयेन तद् व्याकुर्वन्ति यदित्यादि । 'सदकारणवन्नित्यम्' इति हि काणभुजं चतुर्थाध्यायारम्भे लक्षणम् । तदत्र विपरीतव्याप्तिप्रदर्शनेन सत्प्रतिपक्षोत्थापनाद् दूष्यते । परमाणवो नित्याः, सत्त्वे सत्यकारणवत्त्वादाकाशादिवदिति साधने, अनित्या रूपादिमत्त्वाद् घटादिवदिति प्रतिसाधनस्य सत्त्वादिति । एतेनैव स्थौल्यस्यापि सिद्ध्या परमाणुतापि दूषितैव । तेषां मते रूपादिक्रमेणैव गुणानामुपक्रान्तत्वात्

रश्मिः ।

ईश्वरेच्छेति । **अदृष्टं** च जीवस्य । **तज्जन्यस्येति** कर्मजन्यस्येत्यर्थः । **भावादित्यस्य** विवरणं **अभावो वक्तुमशक्य** इति । अभावमुखविवरणं तु परैर्दूषणानामुद्भावितानां सत्त्वाद्भावे संदेहात् । **सदेति** । तदभाव इत्यतस्तदित्यनुवृत्त्येहानुषज्य सदेत्यावृत्त्या योजनीयम् । तत्कार्यं द्व्यणुकमपीति भाष्ये **स्यादिति** क्रियापदम् । अधुना तु तदभाव इत्यनुषज्यत इति पूर्वोक्तमनुषङ्गेण सहार्थमाहुः **अतोपीति** । **अन्य** इति शंकराचार्यादयः सर्वे । **निमित्तस्य** ईश्वरेच्छादृष्टरूपस्य । **तदतन्त्रत्वे** इति निमित्ताऽतन्त्रत्वे । **उपेति** । तेनाशङ्काः सिद्धा एवानूद्यन्ते सर्वत्रेति ध्वन्यते ॥ १४ ॥

रूपादिमत्त्वाच्च विपर्ययोऽदर्शनात् ॥ १५ ॥ **कार्यद्वारेति** द्व्यणुकरूपकार्याभावं द्वारीकृत्य । **तदीयस्येति** । स्वस्य तु आविर्भावकशक्त्याधारत्वस्य कारणलक्षणस्येश्वरेभिमान इति भावः । **लक्षणमिति** नित्यत्वलक्षणम् । **तदत्रेति** व्याप्तिबोधकं सूत्रम् । प्रकृतसूत्रे **सत्प्रतीति** 'साध्याभावसाधकं हेत्वन्तरं यस्य स सत्प्रतिपक्षः' । न्यायसूत्रं व्याचक्षते **परमाणव** इति । यत्र सत्त्वे सत्यकारणवत्त्वं तत्र नित्यत्वमिति व्याप्तिः । विपरीतव्याप्तिमाहुः **अनित्या** इति । **एतेनेति** रूपादिमत्त्वेन हेतुना । **सिद्ध्येति** परमाणवः ह्रस्वाः रूपादिमत्त्वात्, शकलवदित्यनुमानेन सिद्ध्या । **दूषितैवेति** ह्रस्वपरिमाणाङ्गीकारात् तदनङ्गीकारे भाष्यविरोध इति । ये तु परमाणुगतवायुत्वतेजस्त्वादेः पक्षतावच्छेदकत्वमाहुस्ते तत्प्रयुक्तं गौरवं न विदुः । ननु नैवं व्याप्तिः संभवति रूपादिमत्त्वाभाववति वायौ भागवतोक्तरीत्याऽनित्यत्व-

अनित्यत्वमपरमाणुत्वं च। नच प्रमाणबलेन तदतिरिक्तेऽव्याप्तिरिति वाच्यम्।

भाष्यप्रकाशः।

सूत्रे रूपादीत्युक्तम्। तेन वायुपरमाणुष्वपि न व्याप्त्यभावः। नन्ववयवावयविसंबन्धस्तावदनुभूयते। स यदि निरवधिः स्यान्मेरुसर्षपयोः परिमाणभेदो न स्यात्। अनन्तावयवारब्धत्वाविशेषात्। न च परिमाणप्रचयविशेषाधीनो विशेषः स्यादिति शङ्क्यम्। संख्याविशेषाभावे परिमाणप्रचययोरप्यशक्यवचनत्वात्। न चैवं विशेषाभ्युपगमेऽप्यवयवप्रलयस्य शक्यवचनत्वात् सावधित्वं शङ्क्यम्। अन्त्यस्यावयवस्य निरवयवत्वाभ्युपगमे तदवयवविभागस्याभावेन तज्जनकस्यान्यस्य सजातीयस्य वक्तुमशक्यतया अजन्यत्वे, अजन्यभावत्वेन चानश्वरत्वेन व्याप्त्या प्रलयस्यैवासंभवात्। अतो निरवयवमेव द्रव्यमवधिरिति मन्तव्यम्। एवं प्रमाणबलेनावगते सति तदतिरिक्त एव रूपादिमत्त्वानित्यत्वयोर्व्याप्तिरिति न प्रतिसाधनदोष इत्याशङ्कायामाहुः न चेत्यादि। स्यात् तदतिरिक्ते व्याप्तिर्यदि प्रमाणं बलवत् स्यात्। तदेव

रश्मिः।

सत्त्वेनान्वयव्यभिचारात् इति चेत्तत्राहुः **रूपादी**ति रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नगुरुत्वद्रवत्वस्नेहसंस्कारधर्माधर्मशब्दाश्चेति न्यायोक्ता प्रणाड्याश्रिता **आदि**पदात्। न तु 'शब्दस्पर्शौ रसो गन्धो रूपं चेत्यर्थजातयः' इति भगवद्वाक्योक्तप्रणाडी। **इत्युक्त**मिति। तथा च स्पर्शस्य वायौ सत्त्वेन रूपादिमत्त्वादनित्यत्वं वायाविति नान्वयव्यभिचार इति भावः। **तेने**ति सूत्रे रूपादीति शब्दे स्पर्शस्यापि संग्रहेण। अधिकरणस्यायमर्थ इत्यादिना **मुक्तावल्युक्तं** परमाणुसाधनमुक्तम्। इदानीं **दिनकरो महादेवनामा** यदाह तत्परमाणुसाधनमाशङ्कन्ते **नन्ववयवे**ति। **अनन्ते**ति। तथा च परमाण्वभावे एवं परमाणुकारणत्वे त्वीश्वरातिरिक्तकारणे इच्छायास्तावत्परमाणुसंयोगविषयिणीत्वेन नोक्तदोष इति भावः। **न च परिमाणे**ति मेर्ववयवपरिमाणं महत्। सर्षपपरिमाणं ह्रस्वम्। मेर्ववयवसंयोगोऽशिथिलः प्रचयः। सर्षपावयवसंयोगः प्रचयः शिथिलः, अन्तःस्नेहदर्शनात्। **विशेष** इति अवयविपरिमाणविशेषः। मेरुसर्षपयोः परिमाणमवयवसंख्याजन्यं न तु प्रचयपरिमाणजन्यमिति मत्वा तावदाह **संख्ये**ति। **विशेषे**ति नित्यं परमाणुमवधिं मत्वा मेरुसर्षपयोः परिमाणभेदरूपविशेषाभ्युपगमे। **प्रलयस्य** नाशस्य। **सावयवत्व**मिति अवयवावयविसंबन्धस्य नश्यदवयविपर्यन्तत्वम्। अवयवावयविसंबन्धस्य विनश्यदवयवोऽवधिरिति यावत्। एवं च न मेरुसर्षपयोः परिमाणभेदानुपपत्तिरिति भावः। **निरवयवत्वे**ति। सावयवत्वे तु कार्यद्रव्यत्वापत्त्यावयवधाराप्रसङ्ग इति भावः। **तज्जनकस्ये**ति अन्त्यावयवजनकस्य। **व्याप्त्ये**ति अनश्वरोऽजन्यत्वादित्यत्राकाशादौ व्याप्त्यान्त्यावयवनाशस्यैवेत्यर्थः। **अत** इति नित्यत्वात्। **द्रव्यं** परमाण्वाख्यम्। तच्चान्त्यम्। **प्रमाणे**ति व्याप्तिज्ञानरूपप्रमाणवत्त्वेन। **तदतिरिक्त** इति परमाण्वतिरिक्ते। **व्याप्ति**रिति। परमाणुषु तु विपक्षत्वेनान्वयव्यभिचार इति भावः (**न प्रती**ति अन्वयव्यभिचारात्) **न प्रती**ति न प्रतिसाधनं प्रतिपक्षस्तत्संबन्धी सत्प्रतिपक्षे दोषः प्रतिपक्षरूपः। **आशङ्काया**मिति स्वयमनूदितायाम् प्रतिविधानमाहुरित्यर्थः। **व्याप्ति**रिति। अन्वयव्यभिचारमपि लक्षयति। भाष्यस्य दर्शनमनुमितिस्तदभावादित्यर्थं मत्वाहुः **न ही**ति। नित्यत्वव्याप्यसदकारणवत्त्ववन्तः परमाणव इति ज्ञानं परामर्शः। तज्जन्यं ज्ञानं परमाणवः नित्यत्ववन्त इति ज्ञानमनुमितिः। एवं च परमाणुषु नित्यत्वप्रत्यक्षानुमित्योरभावाद्रूपादिमत्त्वेनानित्यत्वेन व्याप्तेरन्वयव्य-

१. सावधित्वमितिप्रकाशः।

अदर्शनात् । कार्यानुपपत्तिः श्रुत्यैव परिहृता ॥ १५ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

तु नास्ति । कुतः । अदर्शनात् । न हि परमाणुर्दृश्यते, येन भवदुक्तस्याकारणवत्त्वस्य हेतोः पक्षधर्मतावसीयेत । न च तस्य पक्षधर्मतायां अज्ञातायां परमाणुषु नित्यत्वानुमितिः संभवति । व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानजन्यज्ञानत्वादनुमितेः । ननु कार्यद्रव्यत्वसावयवत्वयोः समव्याप्त्या क्वचिन्मूलकारणरूपस्यावधेरवश्यं परामर्शनीयत्वादुक्तरीत्याऽवधित्वेन परमाणुसिद्धौ तस्याजन्यतायाश्च सिद्धौ कार्यलिङ्गकानुमानमेव तत्र प्रमाणमित्यदर्शनेऽप्यदोष इति चेत् तत्राहुः कार्येत्यादि । यदि हि कार्यानुपपत्तिः स्यादेवं कल्पनाप्यनुमन्येत सा तु नास्ति । 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः', 'इदं सर्वं यदयमात्मा', 'तज्जलान्' इत्यादिश्रुत्यैव तत्परिहारात् । कार्यवैजात्यादीनां बाधकानां न विलक्षणत्वाद्यधिकरणैः प्रागेव परिहाराच्च । अतः सत्प्रतिपक्षत्वान्न तदनुमानेन परमाणोस्तन्नित्यत्वस्य वा सिद्धिरित्यसंगतः परमाणुकारणवाद इत्यर्थः । किंच । यदिदं नित्यस्य सामान्यलक्षणे सत्पदं तदप्यनर्थकम् । कारणावस्था-

रश्मिः ।

भिचाराभावात्प्रतिसाधनाहितः सत्प्रतिपक्षत्वदोषस्तदवस्थ इत्यर्थः । **दृश्यत** इति । उद्भूतरूपाभावादिति भावः । उद्भूतरूपत्वेन प्रत्यक्षत्वेन कार्यकारणभावः । **अकारणवत्त्वस्ये**ति । सत्त्वे सतीति त्यक्तुं शक्यमित्यभिप्रायः । वक्ष्यन्ति चात्रैव । **तस्ये**ति हेतोः । **व्याप्तिविशिष्टे**ति व्याप्तिविशिष्टस्य हेतोः पक्षधर्मतायाः ज्ञानमिति षष्ठीतत्पुरुषौ । **अनुमिते**रिति । एवं चाजन्यभावत्वेनानश्वरत्वेन व्याप्तिरपि न । परमाणुषु द्व्यणुकजन्यत्वात् । तत एव तज्जनकस्य सजातीयस्यान्यस्य वक्तुमशक्यतयेति पूर्वोक्तहेत्वसिद्धिः । व्याप्तौ भावपदमपि न देयम्, प्रागभाववारणार्थकम् । प्रागभावस्यैवाभावादिति स्पष्टमाकरे । मेरुसर्षपयोर्न परिमाणभेदाभावापत्तिः । सर्षपस्य सर्षपपरिमितमेरुदेशानन्तावयवसमसंख्याकावयवत्वदर्शनेन मेरोस्तदाधिक्यात् । कार्यस्य निरवधित्वेऽपि तादृशमेरुदेशादारभ्य सर्षपमेरुदेशयोः परिमाणभेदो न स्यादिति वक्तव्यत्वात् । तादृशयोस्तु परिमाणभेदाभावेन तदापादनं न स्यादित्यलं गिरा । **समे**ति त्र्यणुकं सावयवं, कार्यद्रव्यत्वात् । द्व्यणुकं सावयवम्, कार्यद्रव्यत्वात् । परमाणुः सावयवः कार्यद्रव्यत्वाद्घटवदिति समा त्र्यणुकादिपक्षादिषु या **व्याप्ति**स्तया । **उक्तरीत्ये**ति अन्त्यस्यावयवस्येत्याद्युक्तरीत्या । **कार्यलिङ्गके**ति अनुपदमुक्तमनुमानम् । कार्यद्रव्यत्वं तु शब्देनानुमित्या च द्व्यणुके ज्ञातम् । परमाणुत्र्यणुकं तु इदानीं स्वरूपासिद्धमिति नानवस्थाजनकमिति भावः । **अदर्शन** इति पक्षहेत्वोरदर्शनेप्यलौकिकप्रत्यासत्त्या दर्शनान्न दोष इत्यर्थः । **कार्यानुपपत्ति**रिति परमाणून्तरा महापृथ्व्यादेः कार्यस्यानुपपत्तिः । **कल्पने**ति परमाणूनां नित्यत्वेन तत्समवायित्वेन कारणत्वकल्पना । एवमाकाशवायुतेजोप्पृथ्वीनां कार्याणामात्माकाशवायुतेजोपां समवायित्वमुक्त्वा सर्वसमवायित्वमात्मन आहुः सृष्टिभेदेन **इदं सर्व**मिति । **तत्परी**ति कल्पनापरिहारात् समवाय्याकाङ्क्षापरिहाराद्वा । **बाधकाना**मिति ब्रह्मणः समवायित्वे बाधकानाम् । **प्रागेवे**ति प्रथमचरणे । **अत** इति प्रतिपक्षस्यादुष्टत्वात् । **तदन्विति** । परमाणवः नित्या इत्याद्युक्तानुमानं, तत् अनुमानं तदनुमानं तेन । एवं भाष्यं व्याख्यायोक्तं काणभुजलक्षणं दूषयन्ति स्म **किंचे**ति । **कारणे**ति । इह कपाले घटो भविष्यतीति प्रतीतेस्तथा । न च कारणावस्थाधिकरणिका प्रतीतिः तद्विषयिणीति नाधेयाभावं विषयीकरोतीति कथं भावावस्थाविशेषत्वमिति वाच्यम् । अभावबोधकपदाभावेन तथावसायात् । अतोधुना कपाले घटो

भाष्यप्रकाशः।

तिरिक्तस्य प्रागभावस्य निरूपयितुमशक्यत्वेनाभ्युपगमैकशरणतया तद्व्यावृत्त्यर्थस्य तस्य व्यर्थत्वात्। किंच। सत्त्वमपि न सत्तायोगित्वम्। सामान्यादित्रयस्यासत्त्वप्रसङ्गात्। न च तेषां सत्तासामानाधिकरण्यमेव सत्त्वमिति युक्तम्। सत्तायां तदुभयाभावेन तस्या असत्त्वे पूर्वोक्तानां सर्वेषामेवासत्त्वप्रसङ्गात्। न च सदिति व्यवहारविषयत्वं सत्त्वमिति न कोऽपि दोष इत्यपि युक्तम्। घटाभावोऽस्तीत्यमिलापस्याभावेऽपि दर्शनेन प्रागभावव्यावर्तकस्य सत्पदस्यानर्थक्यप्रसङ्गात्। यत् पुनर्नित्यत्वसाधकं सूत्रान्तरम्, 'अनित्य इति विशेषतः प्रतिषेधभावः' इति। अर्थस्तु–विशेषस्य नित्यस्य प्रतिषेधस्तदा स्याद् यद्यनित्य इति प्रत्ययः शब्दप्रयोगश्च न स्यात्। नञ उत्तरपदार्थनिषेधकत्वात्। अतः प्रतिषेधसत्त्वात् कस्यचिन्नित्यस्यास्ति सिद्धिरिति। तदपि नित्यस्य कस्यापि साधनेनैव चरितार्थत्वान्न परमाणुनित्यतां साधयितुमलम्। यदपि 'अविद्या' इति सूत्रान्तरं, तदर्थस्त्वेवं तैर्व्याख्यायते। परमाणुरनित्यो मूर्तत्वाद्, रूपादिमत्त्वाद्, एवं

रश्मिः।

नास्तीत्यार्थिकस्याभावबोधकस्य नाभावबोधकत्वमनङ्गीकारात्। **तद्व्यावृत्त्यर्थस्ये**ति। 'सदकारणवन्नित्यम्' इत्यत्राकारणवत्त्वेन प्रागभावस्य नित्यत्वापत्त्या सदित्यनेन तद्व्यावृत्तिः। प्रागभावे सत्त्वाभावात्। व्याख्यानं दूषयन्ति स्म **किं च सत्त्वमिति**। **सत्तायोगित्वं** सत्तासंबन्धित्वम्। **सामान्यादी**ति सामान्यसमवायाभावरूपस्य त्रयस्य। **असत्त्वे**ति 'सत्तावन्तस्त्रयस्त्वाद्याः' इति भाषापरिच्छेदाद्द्रव्यगुणकर्मणां सत्तावत्त्वसाधर्म्यात्। समवायसंबन्धातिरिक्तसंबन्धेन संबन्धित्वमाशङ्क्य पराकुर्वन्ति स्म **न चे**ति। **तेषां** त्रयाणाम्। घटीयघटत्वसामान्यस्य तन्निष्ठसत्तासामान्यस्य तन्निष्ठसत्तासामानाधिकरण्यवत्सत्तासामानाधिकरण्यमर्थः। **तदुभये**ति सत्तायोगित्वसत्तासामानाधिकरण्यरूपस्योभयस्याभावेन। **पूर्वोक्ताना**मिति चतुर्विधपरमाणूनां सामान्यपूर्वोक्तानां द्रव्यगुणकर्मणां वा सत्त्वविशिष्टसत्तासङ्गेन सताम्। **आनर्थक्ये**ति। तथा सति सत्त्वे सत्यकारणवत्त्वस्य प्रागभावे सत्त्वेन नित्यत्वापत्तिरिति भावः। यत्तु **पदार्थतत्त्वविवेचने** सत्ता न जातिः किंतु भावत्वम् तच्चाभावान्यत्वम्। भावत्वं चाखण्डोपाधिः तच्च ज्ञेयत्वादेर्ज्ञेयत्वाज्ज्ञेयत्वादिवत्। घटाभावेऽपि घटाभावाद्घटाभावादिवच्च स्ववृत्त्यपीति सामान्यादौ सद्व्यवहारोपपत्तिरिति **शिरोमणिः**। तथा चाभावत्वे सत्यकारणवत्त्वस्य प्रागभावेऽभावेऽभावान्न नित्यत्वापत्तिरिति ब्रूयात्कश्चित् तदात्यन्ताभावे व्यभिचारादसाधारणो हेतुः। साध्यासमानाधिकरणत्वस्यासाधारणलक्षणत्वात्। **विशेषत** इति सार्वविभक्तिकस्तसिरित्यभिप्रायमाहुः **विशेषस्ये**ति। **प्रतिषेध** इति परमाणुषु। यद्वा। विशेषस्येश्वरान्निमित्तात्समवायिरूपस्य नित्यस्य परमाणोः प्रतिषेध इत्यर्थः। शेषं पूरयन्ति स्म **प्रत्यय** इति। प्रपञ्चोऽनित्य इति **शब्दप्रयोगश्चायम्**। **न स्यादि**ति। तथा चानित्यस्य नेश्वरः समवायी किंतु परमाणव इति भावः। ननु नित्य इति प्रत्यये नञो विरोधार्थकत्वेनेश्वरविरुद्धनित्यत्वादिसंभवे कुतो न बीजमीश्वर इत्यत आहुः **नञ** इति। नञ्वादे चतुर्भ्योऽर्थेभ्य इतरेषां निषेधादिति भावः। स्वोत्तरपदार्थः नित्यपदार्थः। **कस्यचिदि**ति परमाणोरीश्वरातिरिक्तस्य। **सिद्धि**रिति। प्रतियोगिज्ञानाभावे प्रतिषेधानुपपत्तेः। **तदपी**ति। अनित्यः प्रपञ्च इति प्रत्ययः शब्दश्च। **कस्यापी**ति अनिर्वचनीयस्य ब्रह्मणः। तथा च ब्रह्मणि प्रसिद्धस्य **नित्यस्य** प्रतियोगिनः प्रपञ्चे तव मते निषेधः सूपपन्नः किं परमाणुनित्यत्वेनेति भावः। **मूर्तत्वादि**ति मूर्तत्वमपकृष्टपरिमाणवत्त्वम्। **एव**मिति हेतुद्वयप्रकारवत्।

भाष्यप्रकाशः।

'षट्केन युगपद् योगात् परमाणोः षडंशता' इति दिङ्नागोक्तरीत्या षट्पार्श्ववत्त्वात्। किंच। परमाणोर्मध्ये यद्याकाशोऽस्ति तदा सच्छिद्रत्वेनैव सावयवत्वाद् अव्याप्यवृत्तिसंयोगाश्रयत्वाद् घटादिवदिति। किंच। यत् सत् तत् क्षणिकं यथा घन इति नानानुमानसाध्या परमाण्वनित्यत्वसाधिका अनुमितिरविद्या भ्रमरूपा हेत्वाभासजन्यत्वात्। एतेषामाभासत्वं च क्वचिद् व्याप्यत्वासिद्ध्या, क्वचित् स्वरूपासिद्ध्येति समानतन्त्रेऽन्वेष्टव्यमिति। तन्न। मूर्तत्वस्य सत्त्वस्य च कथंचिद् व्याप्यत्वासिद्धत्वेऽपि षट्पार्श्ववत्त्वादीनां कथंचित् स्वरूपासिद्धत्वाभिमानेऽपि

रश्मिः।

षट्केनेति परमाण्वपेक्षया योयं प्राचीदक्षिणेत्यादिदिग्भेदव्यवहारस्तदवधित्वेन येऽवयवाः परमाणोस्तादृशावयवषट्केनेत्यर्थः। चम्पकावयवगन्धषट्केनाकाशस्य योगात् षडंशतापत्तिस्तस्येति तु न। योगस्य समवायात्मकत्वात्। **दिङ्नागेति** दिङ्नागः शंकरः। तथा चापरिग्रहसूत्रभाष्यं परमाणुनिरवयवत्वनिरासकम्। किंचान्यत्। परमाणूनां परिच्छिन्नत्वाद्यावत्यो दिशः षडष्टौ दश वा तावद्भिरवयवैः सावयवास्ते स्युरिति। **ते** परमाणवः। **षट्पार्श्वेति** षट् पार्श्वान्यवयवा विद्यन्ते यस्य स षट्पार्श्ववान् तत्त्वात्। नन्वतिसूक्ष्मे षट्पार्श्वविभागासंभवेन स्वरूपासिद्धिमाशङ्क्य व्याप्त्या सावयवत्वमाहुः **किंचेति** वेदान्तिभिरुच्यते। **यद्याकाश** इति। व्यापकत्वादिति शेषः। **सच्छिद्रत्वेनेति**। यत्सच्छिद्रं तत्सावयवमिति व्याप्तेर्घटादौ दर्शनात् तथा परमाणूनां सावयवत्वात्। **अव्याप्येति** 'स्वात्यन्ताभावसमानाधिकरणत्वमव्याप्यवृत्तित्वम्'। आकाशादावसाधारण्यवारणायेदं संयोगविशेषणम्। आकाशसंयोगस्य व्याप्यवृत्तित्वात्। **घटादीति**। षट्पार्श्ववत्त्वलिङ्गके तु षट्कपालो घटः। **परमाण्वनित्येति** पक्षसाध्यविषयिणी। **अनुमितिरिति** पक्षसाध्यमविद्येति। अनुमितिस्तु परमाणुरनित्यत्ववान्। अविद्यार्थं संदिग्धत्वादाहुः **भ्रमरूपेति**। हेत्वाभासजन्यत्वं विवेचयन्ति स्म **एतेषा**मिति, मूर्तत्वादिहेतूनाम्। **मूर्तत्वे** सत्त्वे च हेतौ व्याप्यत्वासिद्धिः। सा चाद्ये हेतौ व्याप्तिविरहरूपा। अनित्यत्वस्य व्याप्तिः सामानाधिकरण्यं तद्विरहो **मूर्तत्व** इति। अयं विरहो मनसि द्रष्टव्यः। मनसोनित्यत्वान्मूर्तत्वाच्च। तदुक्तं **चिन्तामणा**वनुमानस्यासिद्धिनिरूपणे ये व्याप्तिपक्षधर्मतःविरहरूपास्तेऽसिद्धिमध्यासते। तदन्ये च यथायथं व्यभिचारादय इति सिद्धान्तप्रवाद इति। द्वितीये तु साधनाप्रसिद्धिरूपा। सत्तायां सत्ताभावेन हेतौ हेतुतावच्छेदकाभावात्। **क्वचिदिति**। षट्पार्श्वत्वादिषु त्रिषु स्वरूपासिद्धिः 'पक्षे व्याप्यत्वाभिमतस्य हेतोरभावः' यथा ह्रदो द्रव्यं धूमादिति। तद्वदत्र **पक्षस्य** परमाणोरतिसूक्ष्मत्वेन तत्र षट्पार्श्ववत्त्वसच्छिद्रत्वसत्त्वानां व्याप्यत्वाभिमतानां हेतूनामभावात् तया इति। हेतुना, **समानतन्त्रे** सकृदुच्चरितं बहूनामुपकारकं तन्त्रं तद्रूपे, हेत्वाभासत्व**मन्वेष्टव्यम्**। **सत्त्वस्येति** अन्त्यस्य क्षणिकं सत्त्वादित्यत्र सत्त्वस्य। **कथंचिदिति**। **मुक्तावल्यां** काञ्चनमयवह्निमानिति काञ्चनमयधूमवानिति नीलधूमादिति च विशेषणविशिष्टस्याध्यासाद्युदाहरणात्तदतिरिक्तरीतिकानुमानचिन्तामण्यनुरोधप्रकारेणेति **कथंचिदि**त्युक्तम्। **कथंचित्स्वे**ति परमाणूनां तद्भाष्ये ह्रस्वपरिमाणमप्यङ्गीकृतमिति षट्पार्श्ववत्त्वादीनां पक्षधर्मता सुखेन संभवतीति नव्यमतेन प्रकारेणेति कथंचिदित्युक्तम्। सत्त्वं न कमपि पक्षधर्मताभाववदित्यभिमानशब्द उपात्तः।

उभयथापि च दोषात्॥ १६ ॥

परमाणूनां रूपादिमत्त्वे तदभावे च दोषः। एकत्रानित्यत्वमन्यत्र कार्य-

भाष्यप्रकाशः ।

रूपादिमत्त्वस्य सद्धेतुताया उपपादितत्वात् तेनैव षट्पार्श्वत्वादीनामपि दोषनिरासात् तज्जन्यानुमितेरविद्यात्वाभिमानस्यैवाविद्यात्वादिति ॥ १५ ॥

उभयथापि च दोषात् ॥ १६ ॥ प्रकारान्तरेणापि परमाणुकारणवादस्यासंगतिं व्युत्पादयतीत्याशयं स्फुटीकुर्वन्ति **परमाणूनामित्यादि** । परमाणूनां हि न स्वरूपतो भेदः । सर्वेषामेव ह्रस्वपरिमण्डलाकारत्वोपगमात् । नापि, भौतिकत्वे सति नित्यो गतिमान् परमाणुरिति लक्षणात् तत्तद्भौतिकत्वाद् भेदः । भूतानां पाश्चात्यत्वेन भौतिकत्वस्य पूर्वमशक्य-

रश्मिः ।

सद्धेतुतेति न चाकारणवत्त्वहेतोः सत्प्रतिपक्षत्वेन नित्यत्वासाधकत्वम् । तथा रूपादिमत्त्वहेतोरपि सत्प्रतिपक्षत्वेनानित्यत्वस्थूलत्वे अपि न सिद्ध्येतामिति वाच्यम् । अकारणवत्त्वस्य स्वरूपासिद्धत्वेन प्रतिपक्षत्वाभावात् । परमाणोर्द्व्यणुकरूपकारणवत्त्वस्य विभागेन सृष्टिपक्षे उक्तत्वात् इति सद्धेतुतायाः । **उपपादितेति तेषां मत** इत्यारभ्येत्यर्थ इत्यन्तेनोपपादितत्वादित्यर्थः । **तेनैवेति** रूपादिगुणवत्त्वात्किंचिद्ध्रस्वत्वेनैव । **दोषेति** पक्षावृत्तित्वरूपो दोषस्तन्निरासात् । **इति** एकप्रकारसमाप्तौ ॥ १५ ॥

उभयथापि च दोषात् ॥ १६ ॥ **परमाणूनां रूपादिमत्त्वे** इत्येतावद्भाष्यं व्याकुर्वन्ति स्म **परमाणूनामित्यारभ्य आदर्तव्या** इत्यन्तेन । तदर्थमत्र स्वरूपासिद्धिवारणाय परमाणुभेदरूपादिगुणयथायोग्यत्वमाहुः **परमाणूनामित्यादिना** । 'पक्षे व्याप्यत्वाभिमतस्याभावः स्वरूपासिद्धिः' यथा ह्रदो द्रव्यं धूमादित्यत्र । **स्वरूपत** इति परमाणुत्वेन रूपेणेति प्रयोगात्स्वस्य परमाणो रूपतः परमाणुत्वतोऽभेदः । **सर्वेषामिति** पार्थिवाप्यतैजसवायवीयानां परमाणूनाम् । पारिमाण्डल्यपदेन सर्वेषामविशेषेण व्यवहाराद्ध्रस्वेत्यादिः । **लक्षणादिति** । भौतिकत्वस्य शब्देऽतिव्याप्तिर्नित्यत्वे सति गतिमत्त्वस्य मनस्यतिव्याप्तिरतो विशेष्यविशेषणदले भौतिकत्वे सति नित्यत्वस्याकाशत्वे भौतिकत्वे सति गतिमत्त्वस्य शरीरेतिव्याप्तिरतो नित्यो गतिमानिति । **तत्तदिति** पृथिवीपरमाणुषु पृथिवीभूतसंबन्धित्वमेवमबादिपरमाणुषु द्रष्टव्यम् । पृथिव्यादिरूपनिरूपकभिन्नभौतिकत्वादित्यर्थः । **पूर्वमिति** सृष्टेः पूर्वम् । **अशक्येति** । अनेन लक्षणेऽसंभवदोषोऽपि ज्ञेयः । आकाशमादायासंभववारणे तु मनस्यतिव्याप्तिः । न च भूतसमवेतत्वं भौतिकत्वम् । मनसस्तु न समवायो भूते किंतु संयोगो द्रव्यत्वादिति वाच्यम् । आकाशेऽपि भूतसमवायाभावेनोक्तासंभवश्च स्यात् योग्यतामादाय लक्षणसमर्थने तु मनस्यतिव्याप्तिः । 'चन्द्रमा मनसो जातः' इति तेजोरूपभूतसमवायित्वयोग्यत्वान्मनसः । इष्टापत्तिर्मनसोणुत्वादिति चेन्न । परमाणुचातुर्विध्यव्याहतेः । एतेन 'द्रव्यारम्भश्चतुर्षु स्यात्' इत्यपि प्रत्युक्तम् । न च द्रव्यारम्भकत्वं द्रव्यसमवायिकारणवृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वमिति पृथिव्यप्तेजोवायुषु द्रव्यारम्भकत्वं न मनसीति वाच्यम् । पारिभाषिकस्यास्य लक्षणस्य चन्द्रसमवायिनि मनस्यप्यक्षतेः । ननु भौतिकत्वं भूतसंबन्धित्वं भूताश्च परमाणवस्तत्संबन्धः समवायः स च नित्य इत्यपि न संभव इति चेन्न । बहिरिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणवत्त्वस्य भूतत्वेन प्रकृतेऽभावात् । आत्मावृत्तिविशेषगुणवत्त्वं भूतत्वं यत्त-

रूपस्य निर्मूलत्वं च। हरिद्राचूर्णसंबन्धे रूपान्तरस्य जननाद् विरोधोपि चकारार्थः॥ १६॥

भाष्यप्रकाशः

वचनत्वात् 'सामुद्रो हि तरङ्गः' इति न्यायात्। अतः परं गुणभेदाद् वक्तव्यः। तत्र क्रमेण चतुस्त्रिद्व्येकगुणत्वविचारे आप्यतैजसपरमाण्वोर्गन्धापत्तिः। प्रतिलोमक्रमे च वायवीयादिषु चतुस्त्रिद्व्येकगुणत्वापत्तिरित्युद्देशक्रममनादृत्य यथायोग्यं गुणा आदर्तव्याः। तथापि पूर्वोक्तव्याप्तेरनपायादनित्यत्वमनिवार्यम्। यदि च त्रसरेणुमारभ्यैव भूतानां रूपादिमत्त्वदर्शनात् तेषां रूपादिराहित्यमुच्यते, तदा, कारणगुणाः कार्यगुणानारभन्त इति नियमात् कार्यरूपादेर्निर्मूलत्वमित्युभयथापि दुष्टः परमाणुकारणवाद इत्यर्थः। चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थ इत्याहुः हरिद्रेत्यादि। विरोध इति रूपादीनां सजातीयारम्भकत्वनियमविरोधः। तथा चात्यन्तासंगतमिदं दर्शनमित्यर्थः॥ १६॥

रश्मिः।

दिष्टम्। कार्यत्वेऽपि संभवात्। समवेतेन्द्रियग्राह्यगुणवत्त्वस्य भूतलक्षणत्वेनातीन्द्रियपरमाणुषु भूतत्वाभावात्। ननु स्पन्दावच्छिन्नसमवायिकारणतावच्छेदकत्वं भूतत्वमिति लक्षणे तु भवेदिति चेन्न द्व्यणुकजन्यत्वेन स्पन्दावच्छिन्नसमवायिकारणताविरहात् स्पन्दावच्छिन्नानां पूर्वमभावेनोक्तदोषतादवस्थ्याच्च। **सामुद्र** इति अयं न्यायः शंकरषट्पद्यामस्ति समुद्रस्य भूतपूर्वत्वेन तरङ्गः सामुद्रो भवति तरङ्गस्तु पाश्चात्य इति न समुद्रः क्वचन तारङ्ग इति। तथा प्रकृते भूतानां पाश्चात्यत्वेन न परमाणुर्भौतिक इत्यर्थः। परमाणुनित्यत्वं तु गतसूत्रे दूषितम्। अन्यत्त्वविरुद्धम्। **वक्तव्य** इति परमाणुभेदो वक्तव्यः। **क्रमेणे**ति रूपरसगन्धस्पर्श इति क्रमेण। **गन्धापत्ति**रिति रूपरसगन्धा इति। गन्धो रसोपलक्षक इति तैजसेषु रसापत्तिः। तथा च गन्धापत्ती रसापत्तिश्चेत्यर्थः। वायवीयेषु स्पर्शसत्त्वान्नापत्तिः। **चतुस्त्री**ति। तथा च वायवीयेषु रूपापत्तिः। तैजसेषु रूपरसयो रसापत्तिः। आप्येषु रूपरसगन्धेषु गन्धापत्तिः। पार्थिवेषु चतुष्टयसत्त्वान्नापत्तिः। गुणप्रातिलोम्ये तु वायवीयेषु गुणत्रयापत्तिः। स्पर्शस्य सत्त्वात्। तैजसेषु रसगन्धापत्तिः स्पर्शस्य सत्त्वाद्रूपाभावापत्तिश्च। आप्येषु गन्धापत्तिः त्रयाभावापत्तिश्च। पार्थिवेषु चतुष्टयसत्त्वान्नापत्तिः। **इति** हेतोः। उभयो**र्देशक्रममनादृत्य। आदर्तव्या** इति। ते च नैयायिकानां साधर्म्यनिरूपणे स्पष्टा भाष्यादावस्माकं तूक्ता एवान्ये च स्पष्टा आकरे भूतनिरूपणे। परमाणूनां रूपादिमत्त्वे एकत्रानित्यत्वमिति योजयित्वोत्तरफक्किकार्थमाहुः **तथापी**ति। **पूर्वोक्ते**ति रूपादिमत्त्वेनानित्यत्वेन **व्याप्तेः**। अतः परं **तदभावे च दोषः** इति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **यदि चे**ति। **तेषामित्यादि** चतुःपरमाणूनाम्। द्रव्यक्रमेण गुणक्रमेण च पृथिव्यप्तेजोवायव इति द्रव्यक्रमः। रूपरसगन्धस्पर्शा इति गुणक्रमः। पृथिव्यां चत्वारः। अप्सु त्रयः। गन्धाभावात्। तेजसि द्वौ। रसगन्धयोरभावात्। वायावेकः। रूपरसगन्धाभावात्। अत्र पूर्ववदन्यत्र **कार्यरूपस्य निर्मूलत्वं** चेति भाष्यं योजयन्तो **दोष** इति भाष्यार्थं च वदन्तस्तद्भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तदे**ति। **कार्ये**ति द्व्यणुकं कार्यम्। तेन च परंपरया घटादिरूपादेरपि ज्ञेयम्। **उभयथे**ति परमाणूनां रूपादिमत्त्वे तदभावे च। **सजातीये**ति साजात्यं च शुक्लत्वादिना। आदिशब्देन योग्यम्। **तथा चे**ति विजातीयरूपाकारणत्वेन नियमव्यभिचारे सति। लोकेप्यकौशल्याप**त्तेरत्यन्ते**ति॥ १६॥

अपरिग्रहाच्चात्यन्तमनपेक्षा ॥ १७ ॥

सर्ववैदिकानामपरिग्रहाच्चात्यन्तं सर्वथा नापेक्ष्यते ॥ १७ ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयं महद्दीर्घवद्वेत्यधिकरणम् ॥ ३ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

अपरिग्रहाच्चात्यन्तमनपेक्षा ॥ १७ ॥ व्याकुर्वन्ति **सर्वेत्यादि** । तथा चाचार्यस्य न तन्मतदूषणार्थमभिनिवेशः किंतु वैदिका मा भ्रश्यन्तामित्येतदर्थमेतदुक्तमित्यर्थः । एवं सप्तभिः सूत्रैर्वैशेषिकप्रतिपन्नः परमाणुकारणवादो निराकृतः ॥ १७ ॥

इति तृतीयं महद्दीर्घवद्वेत्यधिकरणम् ॥ ३ ॥

रश्मिः ।

अपरिग्रहाच्चात्यन्तमनपेक्षा ॥ १७ ॥ सर्वेत्यादीति नैयायिकवैशेषिकसमययोरपेक्षा न, मतद्वयं **नापेक्ष्यत** इत्यर्थः । तेनाधिकरणारम्भे नैयायिकादिसमयोत्र निराक्रियत इत्यादिशब्देनोक्तो वैशेषिकसमयोप्यत्र निराकृतः । दूषणानि तु नैयायिकोक्तानीति न विशिष्योक्तानि । **न तन्मतेति** । भगवच्चिकीर्षितकर्तृत्वादिति भावः । **वैशेषिकेति** एकदेशविकृतत्वाद्विशेषणोपादानम् । प्रमाणद्वयवादिनो वैशेषिकाः, प्रमाणचतुष्टयवादिनो नैयायिका, इति अग्रेतनसंगत्यर्थं चोपादानम् । **निराकृत** इति । अत्र परमाणुकारणवादो विषयः । संभवति न वेति संशयः । 'तदात्मानꣳस्वयमकुरुत' इति श्रुतिः सन्देहबीजम् । संभवतीति काणादपूर्वपक्षः । न संभवतीति परमाणुकारणवादोऽसंगत इति **सिद्धान्तः** । **शांकरास्तु** अत्राधिकरणद्वयमङ्गीकुर्वन्ति । तत्र पूर्वत्र चेतनाद्ब्रह्मणोऽचेतनस्य विजातीयस्योत्पत्तिरुक्ता । तत्र विलक्षणोत्पत्तौ काणाददृष्टान्तोऽस्ति न वेति संशये शुक्लतन्तुभ्यः शुक्लपटोत्पत्त्यङ्गीकारान्नास्ति दृष्टान्त इति पूर्वपक्षः । परमाणुपारिमाण्डल्यपरिमाणाभ्यां विलक्षणमणुपरिमाणयुक्तं द्व्यणुकमुत्पद्यते ह्रस्वपरिमाणोपेताद् द्व्यणुकान्महत्परिमाणयुक्तं त्र्यणुकमुत्पद्यते इत्यस्ति दृष्टान्त इति सिद्धान्तः । तत्र पारिमाण्डल्यमणुपरिमाणमिति नैयायिकाः । अत्र तु ह्रस्वमणुपरिमाणमिति विभेदः । अनेनाधिकरणेन 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इति श्रुतौ सदंशादेव जडोत्पत्तिः समर्थिता । परमाणूनामप्यनित्यत्वस्थापनात् । वियदुत्पत्तिस्तु वक्ष्यते । समवायो विशेषाश्च प्रत्युक्ताः । कालदिशोरीश्वरत्वम् । मनस्तु न नित्यमित्युक्तम् । अत्यन्ताभावस्य तु नित्यत्वेप्यक्षतेः । सलक्षणत्वेन तिरोभावरूपभगवच्छक्तित्वात् । ब्रह्मधर्माणां च नित्यत्वादिरयुक्तम् । सामान्यं त्वाकृतिरित्युक्तम् । अत एव कस्यचित् 'किं गवि गोत्वमुतागवि गोत्वं गवि चेद्गोत्वमनर्थकमेतत् । अगवि च गोत्वं यदि पुनरिष्टं संप्रति भवति भवत्यपि गोत्वम्' इति । न चाकृतेरनित्यत्वम्, एकव्यक्तिनाशेपि व्यक्त्यन्तरे दर्शनात् । ननु प्रलये तु 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इति श्रुतेस्तिरोभावः । सत्यलोकपर्यन्तमाकृतेर्विद्यमानत्वात् । मैवम् । वैकुण्ठेप्याकृतयः सन्तीति प्रलयेप्यतिरोभावात् । उक्तं च द्वितीयस्कन्धे नवमे वैकुण्ठदर्शनप्रस्तावे 'प्रेङ्खं श्रिता या कुसुमाकरानुगैर्विगीयमाना प्रियकर्म गायति । ददर्श तत्राखिलसात्वतां पतिं श्रियः पतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम्' इति जगतोपि तत्र सत्त्वात् । वैकुण्ठे पुनस्ते मूर्तिरूपा आनन्दमय्य' इति । तथा चाविरुद्धं नित्यत्वमिति सर्वं सुस्थमिति सुधीभिराकलनीयम् ॥ १७ ॥

इति तृतीयं महद्दीर्घेत्यधिकरणम् ॥ ३ ॥

समुदाय उभयहेतुकेपि तदप्राप्तिः ॥ १८ ॥ (२-२-४)

अतः परं बाह्यमतनिराकरणम् । ते समुदायद्वयं जीवभोगार्थं संहन्यत इति

भाष्यप्रकाशः ।

अतः परमूनविंशतिभिः सूत्रैर्बाह्यसमयो निराक्रियते ।

समुदाय उभयहेतुकेपि तदप्राप्तिः ॥ १८ ॥ ननु तदग्रे कया संगत्यैतन्मतनिराकरणमित्याकाङ्क्षायामाहुः **अतः परमित्यादि** । वैशेषिका ह्यर्धवैनाशिकाः । परमाण्वाकाशादिद्रव्याणामन्येषां च पदार्थानां नित्यत्वाङ्गीकारेऽपि कार्यद्रव्याणां केषांचिद् गुणानां च निरन्वयविनाशाङ्गीकारात् । निरन्वयध्वंसो नाम तप्तायःपतिताब्बिन्दोरिव निःशेषनाशः । सर्ववैनाशिकास्तु बाह्याः सर्वानित्यत्ववादिनः । तन्मते सर्वस्यैव निरन्वयध्वंसात् । तत्र निराकृतेऽर्धवैनाशिकेऽतियौक्तिकसर्ववैनाशिकनिराकरणाकाङ्क्षाऽवश्यं शुश्रूषूणामुदेतीत्यवसरसंगत्या तन्निराकरणमित्यर्थः । सूत्रं व्याकर्तुं पूर्वं तन्मतमनुवदन्ति **त इत्यादि** । ते सौगताश्चतुर्विधाः । वैभाषिकः, सौत्रान्तिकः, विज्ञानवादी, माध्यमिकश्चेति बुद्धशिष्याः । तत्राद्यः सर्वार्थान् प्रत्यक्षानुमानसिद्धान् सतः क्षणिकान् वदति । द्वितीयस्तु बाह्यान् सर्वान् अर्थान् क्षणिकान् सतो विज्ञानानुमेयानाह । तृतीयस्तु अर्थजन्यं विज्ञानमेव परमार्थम् । अर्थास्त्वसन्तः स्वाप्नकल्पा इत्याह । इतरस्तु सर्वशून्यत्वमेवाह । मतचतुष्टयेऽपि, भोक्ता वा प्रशासिता वा कश्चिचेतनः स्थिरः

रश्मिः ।

समुदाय उभयहेतुकेपि तदप्राप्तिः ॥ १८ ॥ बाह्येति परमाणुपुञ्जस्य कारणतादिर्निराक्रियते । **तदग्र** इति नैयायिकादिसमयनिराकरणाग्रे । **अन्येषामिति** सामान्यविशेषसमवायात्यन्ताभावानाम् । **परमाण्वाकाशादीति** । **आदिशब्देन** कालदिगात्मनाम् । **केषामिति** पूर्वोक्तव्यतिरिक्तानाम् । अर्धवैनाशिकानुक्त्वा सर्ववैनाशिकानाहुः **सर्वेति** । **अतीति** अत्यन्ता निरवधिर्युक्तिस्तर्कोन्यथाज्ञानं विदन्त्यधीयते वा तेऽतियौक्तिकाः । वेदमुक्त्यादेरतिक्रान्ता युक्तयोतियुक्तयस्ता विदन्त्यधीयते वातियौक्तिकाः यदपेक्षयान्यथाज्ञानमन्यस्य न भवतीत्यर्थः । 'क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक्' । **अवसरेति** प्रसङ्गस्तु संगतिमात्रसाधारण इति सामान्यलक्षण इतीक्षत्यधिकरण उक्तम् 'बाह्याबाह्यमतान्येकीकृत्य निराकरणं द्वितीयपादे' इत्युक्तम् । तत्र सांख्ये निराकृते प्रतिबन्धकीभूता नैयायिकादिमतनिराकरणजिज्ञासा । किं नैयायिकमतनिराकरणमिति तस्याः बाह्यमतनिराकरणापेक्षया प्राथमिकजिज्ञासाविषयत्वप्रयोजकं बहुसंमतत्वं तेन नैयायिकादिमतनिराकरणान्निवृत्तौ सत्यां बाह्यमतनिराकरणमवश्यं वक्तव्यमिति जिज्ञासया किमिदानीं वक्तव्यमिति जिज्ञासया वा बाह्यमतनिराकरणमित्यवसरसंगत्येत्यर्थः । **ते सौगता** इति भाष्ये बाह्याः सौगतत्वेन ग्राह्याः । अन्यथा प्रतिज्ञाहानिरूपनिग्रहस्थानापत्तेः । अर्धवैनाशिकस्य प्रत्युक्तत्वात् । **बुद्धेति** तेन बुद्धावतारे त्वधुना वेदसंरक्षणार्थं ते प्रबोध्या इत्यर्थः । अन्यथा विरुद्धधर्माश्रयत्वं न स्यात्, तेन बुद्धावतारस्य 'वदेदुन्मत्तवद्विद्वान्' इति ज्ञानप्रवेशोऽपि ज्ञापितः । **क्षणिकानिति** विधायकमिदम् । **बाह्यानिति** भूतं भौतिकं बाह्यम् । चित्तं चैत्यं च कामाद्यान्तरमिति विभागः । **सत** इति विधायकमिदं पदम् । **विज्ञानेति** । **तृतीय** इति अयमेव **योगाचार** इति कथ्यते । **अर्थेति** अर्थो विषयः । **सर्वेति** न सन्नासन्न सदसन्न च सदसद्विलक्षणमिति तदेवाहेत्यर्थः । **मतेति मतचतुष्टयेप्य**ध्यात्मांशे मतैक्यम् । चार्वाका आर्हताश्चोपेक्षिताः बृहस्पतिप्रणीतलोकायतदर्शनानुसारिणो देहात्मवादिनः प्रत्यक्षैकप्रमाणवादिनः । तन्मतस्यात्यन्तासंगतत्वात् । **स्थिर** इति अत्रिक्षणावस्थायी ।

मन्यन्ते । परमाणुसमूहः पृथिव्यादिभूतसमुदाय एकः । रूपादिस्कन्धसमुदाय-श्चापरः । रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्कारसंज्ञकाः पञ्च स्कन्धाः । तदुभयसंबन्धे

भाष्यप्रकाशः ।

संहन्ता नाभ्युपेयते । यद्यपि प्रस्थानचतुष्टयप्रणेता बुद्ध एकस्तथापि शिष्यमतिभेदाच्चतुर्धा प्रणयनम् । तत्र ये हीनमतयस्ते सर्वास्तित्ववादिनस्ते तदाशयमनुरुध्य सर्वशून्यतायामवतार्यन्ते । ये मध्यमास्ते तु विज्ञानमात्रास्तित्वमनुरुध्य शून्यतायामवतार्यन्ते । ये पुनः प्रकृष्टमतयस्तेभ्यस्तु साक्षादेव शून्यतातत्त्वमुपदिश्यते । तदुक्तं बोधिचित्तविवरणे ।

'देशना लोकनाथानां सत्त्वाशयवशानुगाः । भिद्यन्ते बहुधा लोके उपायैर्बहुभिः पुनः ॥
गम्भीरोत्तानभेदेन क्वचिच्चोभयलक्षणा । भिन्नापि देशनाऽभिन्ना शून्यताऽद्वयलक्षणा' ॥

इति वाचस्पतिमिश्रा ऊचुः । तत्र ये बाह्यार्थास्तित्ववादिनस्ते समुदायद्वयं जीवभोगार्थं संहन्यते संघातभावं प्राप्नोतीति मन्यन्ते । किं तत् समुदायद्वयमित्याकाङ्क्षायां **परमाणुसमूहः पृथिव्यादिभूतसमुदाय एकः** । तत्र रूपरसगन्धस्पर्शाश्चतुर्विधाः पार्थिवाः परमाणवः कठिनस्वभावाः पृथिवीरूपेण संहन्यन्ते । रूपरसस्पर्शा आप्याः परमाणवः स्नेहस्वभावाः सलिलात्मना । तथा रूपस्पर्शपरमाणव उष्णस्वभावास्तेजोरूपेण । तथा स्पर्शपरमाणवः प्रेरणस्वभावा वायुरूपेण । एवमेते चतुर्विधाः परमाणवः क्षणिका भूतरूपेण संहत्य पुनर्भौतिक-संघातहेतुत्वं प्रतिपद्यन्ते । एतदतिरिक्तं तु कालाकाशात्मादि सर्वमवस्तु ।

केचित्तु रूपादिचतुष्टयसंघातः पृथिवी । त्रितयसंघात आपः । उभयसंघातस्तेजः । शब्द-स्पर्शसंघातो वायुः । न तु तदतिरिक्तं द्रव्यमस्तीत्याहुः ।

रश्मिः ।

संहन्ता देहादिषु सम्यग्गन्ता । ननु सर्ववैनाशिकदूषणायाधिकरणारम्भस्योक्तत्वाच्चतुर्णां किं प्रयो-जनमित्याकाङ्क्षोपशमायाहुः **तत्रे**ति चतुर्षु । **य** इति द्वितीयाः । हीनमतित्वादिकं शून्यतातारत-म्यात् । प्रथमास्तु पदार्थक्षणिकत्वमात्रपर्यवसितविशेषका इति 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' इति न शून्यतायामवतार्यन्ते । **तदाशय**मिति सौत्रान्तिकानामाशयः सर्वशून्यत्व इत्येवमनुरुध्य प्रकल्प्य । **सर्वे**ति सर्वशून्यतार्थं तदुपदेशार्थमधिकारित्वेन प्राप्यन्ते । **ये** इति तृतीयाः । **ये पुन**रिति चतुर्थाः । **देशने**ति । **लोकनाथानां** बुद्धानाम् । **देशना** आगमाः । प्राण्यभिप्रायवशानुसारिण्यः शून्यताप्रतिपत्त्युपायैः क्षणिकसर्वास्तित्वादिभिः । **लोके** श्रोतृसमुदाये **बहुधा भिद्यन्त** इत्यर्थः । भेदमाह **गम्भीरे**ति अगाधो गम्भीरस्तद्विपरीत **उत्तानः** स्थूलदृष्टियोग्यस्तद्रूपेण क्वचिद्ग्रन्थप्रवेशः । **उभयलक्षणा** ज्ञानमात्रास्तित्वबाह्यार्थास्तित्वलक्षणा । तत्प्रतिपादिनी भिन्नापि देशना शून्यतैवाद्वयं तल्लक्षणा तत्तात्पर्यवत्यभिन्नेत्यर्थः । भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तत्र ये बाह्ये**ति । **बाह्यार्थास्तित्ववा-दिनः** सौत्रान्तिकाः द्वितीयाः । **संहन्यत** इत्यत्र कर्मणः कर्तृत्वविवक्षायां कर्तरि लकारः 'कर्म-वत्कर्मणा तुल्यक्रियः' इति सूत्रेण कर्मवद्भावे यगात्मनेपदे अभूतामित्याशयेनाहुः **संघातभावं प्राप्नोतीति** । **परमाण्वि**ति न तु द्व्यणुकादिभावं प्राप्तः । **एक** इति इत्युक्तं भाष्य इति शेषः । पृथिव्यादिभूतं च द्रव्यं रूपादिगुणानाश्रित्येत्याशयेन **रूपादी**ति भाष्यं व्याकुर्वन्ति **तत्र रूपे**ति रूपं रसो गन्धः स्पर्शो येषु ते रूपरसगन्धस्पर्शाः । **कठिने**ति प्रत्यक्षात् 'यत्कठिनं सा पृथ्वी' इति श्रुतेस्तु न बाह्यत्वात् । एवमग्रेऽपि । **प्रेरणे**ति प्रकर्षेणेरणं चलनम् । **भौतिके**ति भविष्यद्भौतिकेत्यर्थः । **एतदि**ति भूतभौतिकातिरिक्तम् । **तद्**व**ती**ति रूपादिगुणातिरिक्तम् ।

भाष्यप्रकाशः।

क्षणिकत्वं तु बुद्धवचनात् । क्षणिकाः सर्वसंस्काराः संस्थित्यन्त इति । उत्पत्तिमन्त इत्यर्थः । एवमयं भूतसमुदायो बाह्य एकः । द्वितीयश्चित्तचैत्तिकरूप आभ्यन्तरः समुदायः । स च रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्काराख्यस्कन्धपञ्चकसमुदायात्मकः । तत्र रूप्यन्त एभिरिति वा, रूप्यन्त इति वा व्युत्पत्त्या सविषयाणीन्द्रियाणि रूपस्कन्धः । केचित्तु शरीरं तमाहुः । तदा आभ्यन्तरपदस्याध्यात्ममित्यर्थः । अहमित्याकारं रूपादिविषयमिन्द्रियादिजन्यं ज्ञानं विज्ञानस्कन्धः । स एव क्षणिकविज्ञानसंतानः, कर्ता भोक्ताहमित्यभिमानादात्मेत्युच्यते, न त्वेतदतिरिक्तः कश्चिन्नित्य आत्मास्तीति । केचित्तु यस्मिन् कर्मानुभववासनाः शेरते तद् आशयापरनामकमालयविज्ञानमेवात्मेत्याहुः । प्रियाप्रियानुभवविषयसंस्पर्शे सुखदुःखतद्रहित विशेषावस्था या चित्तस्य जायते सा वेदनास्कन्धः । क्वचित्तु यथा स्वस्तिमती गौरिति स्वस्तिमत्तया गौरुपलक्ष्यते, ध्वजेन गृहं दण्डेन पुरुष इत्युपलक्षणप्रत्ययो वेदनास्कन्ध इति व्याख्यायते । सविकल्पः प्रत्ययः संज्ञासंसर्गयोग्यः प्रतिभासो यथा डित्थः कुण्डली गौरो ब्राह्मणो गच्छतीत्यादिः स संज्ञास्कन्धः । रागादयः क्लेशाः, मदमानमात्सर्यादय उपक्लेशाः, धर्माधर्मौ चेति संस्कारस्कन्धः । स्कन्धशब्दः समूहवाची । अयं स्कन्धपञ्चकरूप आध्यात्मिकत्वादाभ्यन्तरः समुदायः । एवं पुञ्जद्वयस्वीकारेण सकललोकयात्रानिर्वाहे सति नास्त्यव-

रश्मिः।

सर्वसंस्कारा इति रागादयः क्लेशाः मदमानमात्सर्यादय उपक्लेशाः धर्माऽधर्मौ चेति संस्काराः । **संस्थित्यन्त** इति संस्थितेरन्ते । कीदृशा इत्यकाङ्क्षायामाहुः **उत्पत्तिमन्त** इति । **अयमिति** परमाणुहेतुकः । अयं च पञ्चस्कन्धहेतुक इति तान्विवृण्वन्तो **रूपे**त्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति **स च** चेति । **समुदायात्मक** इति । एतद्‌द्वयमेवाशेषं जगन्नातोऽधिकं किंचिदस्ति । **रूप्यन्त** इति रुप विमोहने दिवादिः, रूप्यन्ते मुह्यन्ते एभिः सविषयेन्द्रियैरिति रूपस्कन्ध इत्येकवचनानुरोधत्वादाहुः **रूप्यत** इति रूप्यते मुह्यतेऽनेन रूपस्कन्धेन जन इति । **केचिदिति** रूपाद्यतिरिक्तद्रव्याभाववादिनः । शरीरं तु द्रव्यादिरहितं बहिरित्याभ्यन्तरः समुदाय इति कथं तत्राहुः **तदेति** । **अध्यात्ममिति** आत्मानमालयविज्ञानमधिकृत्य, आत्मन्यालयविज्ञाने इत्यध्यात्ममिति वा । **अहमिति** अहमित्याकारं ज्ञानमिति योजना । ननु विज्ञानस्कन्धः क्षणिक इत्युक्तक्षणे विज्ञानस्कन्धानुभवबाध इत्यत आहुः **स एवेति** । तथा च संतानत्वाददोषः । क्षणिकविज्ञानसंतानस्वरूपमाहुः **कर्तेति** । **आत्मेति** संतानद्वाराऽततीत्यात्मेति । **कर्मान्विति** कर्मानुभवाभ्यां जन्या वासनाः रागसंस्कारादयः । **आशयेति** तथा चाशेरतेऽस्मिन्नित्याशयः । **प्रियेति** प्रियाप्रिययोर्वस्तुनोरनुभवे उदासीनविषयसंस्पर्शे प्रियेण सुखमप्रियेण दुःखमुदासीनेन तद्रहितावस्थेति विवेकः । **उपलक्ष्यत** इति । तथा च स्वस्तिमत्तयोपलक्षणप्रत्ययः । उपलक्ष्यतेनेन स्वस्तिमत्तादिनेत्युपलक्षणम् । **सविकल्प** इति वैशिष्ट्यावगाही प्रत्ययः । अयं तु भ्रमात्मकः । अलीकघटत्वादिसामान्यविषयत्वात् । घटघटत्वसंसर्गावगाही सविकल्पः । अत्र कस्य संसर्ग इत्यत आह **संज्ञेति** । **संज्ञायाः संसर्गः तद्योग्यः प्रतिभासः डित्थ** इत्यादि । इमे प्रत्ययाः डित्थत्वकुण्डलगौरत्वब्राह्मणत्वगमनवैशिष्ट्यं पुञ्जेऽवगाहमानाः डित्थादिसंज्ञासंबन्धं योजयन्ति **आध्यात्मिकेति** अध्यात्म-

जीवस्य संसारः । तदपगमे मोक्ष इति । तत्र उभयहेतुकेऽपि समुदाये जीवस्य तदप्राप्तिः क्षणिकत्वात् । सर्वक्षणिकत्वे जीवमात्रक्षणिकत्वे वा तदप्राप्तिः ॥१८॥

भाष्यप्रकाशः ।

यवी, नाप्यात्मा नित्यः । किंतु पुञ्जात्मके समुदाये बाह्याभ्यन्तरभेदेनाऽनात्मात्मविभागोऽवयवित्वैकत्वादिभ्रमश्च भवति । अयं च समुदायो नेश्वरहेतुकः । तदनङ्गीकारात् । किंतु पृथिव्यादिकं स्कन्धपञ्चकं चेत्युभयहेतुक इति । **तदुभयसंबन्धे** निर्वातस्थदीपवत् पूर्वोक्तक्षणिकविज्ञानसंतानात्मकस्य जीवस्य रूपवेदनासंज्ञासंस्कारस्कन्धात्मकः **संसार** आसंस्कारक्षयात् क्षणपरंपरयाऽवतिष्ठते । क्षीणे तु संस्कारस्कन्धे तैलादिक्षये प्रदीपवदेव निर्वाणमृच्छति । सेयमभावप्राप्तिरेव **मोक्ष** इति । तदिदं दूष्यते । तत्रैवमु**भयहेतुकेऽपि समुदाये**ऽङ्गीक्रियमाणे **जीवस्य तदप्राप्ति**स्तादृक्संसारस्यासिद्धिः । कुत इत्याकाङ्क्षायां पुञ्जात् पुञ्जोत्पत्तिसूचितं हेतुमाहुः **क्षणिकत्वादिति** । बुद्धवचसा क्षणिकत्वाभ्युपगमात् । उक्तं विभजन्ते सर्वेत्यादि । **सर्वक्षणिकत्वे** तेषां निर्व्यापारतया नश्वरतया च समुदायघटनानुपपत्त्या कथंचित् स्वभावादिना समुदायघटनाङ्गीकारे वा तत्तद्विधशरीराणां पर्यायेण घटनायाः परिमाणभेदादेश्चानुपपत्त्या रूपस्कन्धसंबन्धस्यासंभवात् तन्मूलकस्य वेदनादिस्कन्धात्मकस्य संसारस्याप्राप्तिः । विज्ञानस्कन्धात्मक**जीवमात्रक्षणिकत्वे** तु तस्य नष्टत्वादेव संसाराद्यप्राप्तिः । तथा च कारणभूतस्य पुञ्जस्य क्षणिकत्वेन कार्योत्पत्तेरशक्यवचनत्वादसंगतं पुञ्जस्य कारणत्वमित्यर्थः ।

रामानुजाचार्यास्तु—परमाणुहेतुके भूतसमुदाये, भूतहेतुके शरीरेन्द्रियविषयसमुदाये चाभ्युपगम्यमानेऽपि जगदात्मकसमुदायानुपपत्तिः । परमाणूनां भूतानां च क्षणिकत्वाभ्युपगमादिति व्याकृत्यैतदेव व्युत्पादयामासुः ।

रश्मिः ।

माभ्यन्तरसमुदायस्तेनोच्यत इत्याध्यात्मिकस्तत्त्वात् । घटोवयव्येक इति प्रत्ययमपलपति **अवयवित्वेति** । **अयं चेति** द्वित्वावच्छिन्नः । तदुभयेत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **किं त्विति** । **पूर्वोक्तेति** विज्ञानस्कन्धविवरणसमय उक्तः । **आसंस्कारेति** संस्कारस्कन्धक्षयमभिव्याप्य । **निर्वाणमिति** मोक्षम् । **सेयमिति** निर्हेतुकी संस्कारस्कन्धक्षयात्**माभावस्य प्राप्तिः** । **दूष्यत** इति तत्र **उभयेत्यादिभाष्येण** दूष्यते । तद्भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तत्रैवमिति** । **तदप्राप्तिरिति** । व्याख्येयमिदम् । **पुञ्जादिति** परमाणुपुञ्जात् । क्षणिकत्वादिसूत्रेण वा । क्वचित्पुस्तकेऽयं हेतुः सूत्रत्वेन लिखित इति । **बुद्धेति** 'क्षणिकाः सर्वसंस्काराः संस्थित्यन्ते' इति बुद्धवचसा । **क्षणिकत्वेति** । क्षणिकत्वं च द्वितीयक्षणवृत्तिध्वंसप्रतियोगित्वम् । क्षणलक्षणं त्वेतन्मतदूषणसमाप्तौ वक्तव्यम् । **उक्तमिति** हेतुं सूत्रं वा । **तेषामिति** परमाणूनाममीलितानामीश्वराभावेन तदिच्छाजन्यव्यापाराभावेन **निर्व्यापारतया** । सौत्रान्तिकमतमनूद्य दूषयन्तो **जीवमात्रेति** भाष्यं विवृण्वन्ति **विज्ञानस्कन्धेति** । **तस्येति** विज्ञानस्कन्धस्य । **असंगतमिति** । अत ईश्वरात्कार्यमिति मन्तव्यमिति भावः । **एतदिति** समुदायानुपपत्तिव्याकरणमेव । तथा च भाष्यम् 'क्षणविनाशिनः परमाणवो भूतानि च कदा संहतौ व्याप्रियन्ते कदा वा संहन्यन्ते कदा च विज्ञानविषयीभूताः कदा च हानादिव्यवहारास्पदतां भजन्ते को वा विज्ञानात्मकं च विषयं स्पृशति कश्च विज्ञानात्मकमर्थं कदा वेदयते । कं वा विदितमर्थं कश्च कदोपादत्ते स्प्रष्टा हि

इतरेतरप्रत्ययत्वादिति चेन्नोत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् ॥ १९ ॥

सर्वक्षणिकत्वेऽपि पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तरप्रत्ययविषयत्वात् कारणत्वात् संततेरेव

भाष्यप्रकाशः ।

भास्कराचार्यास्तु—परमाण्वादीनामचेतनत्वात् क्षणिकत्वान्नित्यस्य भोक्तुः प्रशासितुरीश्वरस्य संहन्तुरनभ्युपगमाच्च न स्थूला पृथिवी संभवेत् । परमाणवश्चातीन्द्रियाः । न तैः स्थूलव्यवहारः । येन च स्थूलव्यवहारः स तु नास्तीति लुप्यते लोकयात्रेत्याहुः । एवमेव शांकरा अपि । एतदेव किंचिद्वैलक्षण्येनान्येऽप्याहुः ॥ १८ ॥

इतरेतरप्रत्ययत्वादिति चेन्नोत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् ॥१९॥ एवं क्षणिकत्वदूषणे समाधिं सूत्रांशेनाशङ्कांशान्तरेण परिहरतीत्याहुः **सर्वेत्यादि** । अप्राप्तिरिति पूर्वसूत्रादत्रानुवर्तत इति बोध्यम् । प्रत्ययः कारणसमवायः । इतरेतरं प्रत्यया इतरेतरप्रत्ययाः तेषां भावस्तत्त्वं तस्मात् ल्यब्लोपे पञ्चमी । तत् प्राप्य वा । अयमर्थः । अविद्यादिभ्यो जन्मादयो जन्मादिभ्यश्चाविद्यादय इति चक्रवत्परिवृत्तौ सर्वक्षणिकत्वेऽपि न कारणव्यक्तिं प्रति कार्यव्यक्तेः

रश्मिः ।

नष्टस्पृष्टश्च नष्टः तथा वेदिता विदितश्च नष्टः कथं चान्येन स्पृष्टमन्यो वेदयते कथं चान्येन विदितमर्थमन्य उपादत्ते । संतानानामेकत्वेऽपि संतानिभ्यस्तेषां वस्तुतो वस्त्वन्तरत्वानभ्युपगमान्न तन्निबन्धनं व्यवहारादिकमुपपद्यत' इति । सौत्रान्तिकमतं दूषयन्ति **परमाण्वादीनामिति** । **न स्थूलेति** ईश्वरमन्तरेणेति ज्ञेयम् । **येनेति** अवयविना । **नास्तीति** समुदायेनान्यथासिद्ध्या नास्तीत्यर्थः । **अन्य** इति माध्वा अन्ये । वैलक्षण्यं त्वेतत् समुदायस्यैकहेतुत्वं न युज्यते, अन्यतरादर्शनप्रसङ्गात् । उभयहेतुकेप्यन्योन्याश्रयत्वात्स्थूलपृथिव्यादेरप्राप्तिः । स्वभाववादे तु सर्वदा समुदायत्वं स्यादिति भाष्येऽन्योन्याश्रयः । स च पृथिव्यादिभूतसमुदाये सति रूपादिस्कन्धसमुदायस्तस्मिन्सति च तत्समुदाय इति । यत्तु सविकल्पकं भ्रम इति तन्न । सामान्यादेः सत्त्वेन तद्विषयकज्ञानस्य भ्रमत्वायोगात् ॥ १८ ॥

इतरेतरप्रत्ययत्वादिति चेन्नोत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् ॥ १९ ॥ **परिहरतीति** सूत्रकारः । **सर्वेत्यादीति** । सर्वक्षणिकत्व इति भाष्ये पाठं मत्वोक्तम् । **कारणेति** इति नास्तिकैरुच्यते । इण्धातोर्गत्यर्थीयाच्प्रत्ययमादायेत्यत्रापि प्रत्ययः कारणसमवाय इति व्याख्येयमित्यर्थः । अयधातोरजिति विशेषः पूर्वस्मात् । प्रत्ययत्वं तु हेतुं हेतुं प्रत्ययन्ते गच्छन्तीति व्युत्पत्त्येत्यर्थ इति द्वितीयसूत्रे स्फुटम् । **इतरेतरमिति** इतरदिति विग्रहे कर्मव्यतिहारसूत्रे द्वित्वे समासवद्भावे च सुब्लुकि इतरेतरपदात्सुः । अदडादेशस्तु न 'स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्थाया विभक्तेराम्भावो वाच्यः' इति वार्तिकादाम् । न च सामान्ये नपुंसकत्वेऽपि बहुवचनं स्यादिति वाच्यम् । आमः सर्वविभक्त्यादेशत्वात् इतरे इति विग्रहोऽपि संभवी । तदेतरेतरे इति प्रत्यया इति विग्रहः । **तस्मादिति** । तथा चेतरेतरकारणसमवायत्वादित्यर्थो जातः । अयं हेतुः सर्वक्षणिकत्वेन जीवस्य संसाराप्राप्तिरुक्ता सा नेत्यत्र भवति । पूर्वस्य कारणत्वमुत्तरस्य क्रियाविषयत्वं प्राप्यैव भवति । इदमप्युत्तरसूत्रे 'प्रतीत्यसमुत्पादलक्षणमुक्तम्' इत्यादिना स्फुटिष्यति तदाहुः **ल्यब्लोप** इति । 'ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च' इति पञ्चमी । **तत्प्राप्येति** इतरेतरप्रत्ययत्वं प्राप्य । सोयं प्रत्ययशब्दस्य प्रत्ययविषये लक्षणार्थो न तु यथाश्रुतमित्याशयेनाहुः **अयमर्थ** इति । भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अविद्यादिभ्य** इति । **चक्रवदिति** कुलालचक्रवत् । **कारणव्यक्तिमिति** विज्ञानव्यक्तिर्जडव्यक्तिश्च । एवं कार्यव्यक्तिरपि ज्ञेया ।

जीवत्वाज्जडत्वाच्च न काप्यनुपपत्तिरिति चेन्न । उत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् । अनुसंधानाभ्युपगमे स्थिरत्वापत्तिः । संबन्धवियोगार्थं को वा यतेत । स्थैर्याभावात् समुदायानुपपत्तिश्च ॥ १९ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

प्रत्ययता, किंतु पूर्वपूर्वप्रत्ययस्य उत्तरोत्तरः प्रत्ययो विषयः क्रियागोचर इत्युत्तरोत्तरप्रत्ययविषयत्वं प्राप्य पूर्वपूर्वस्य प्रत्ययस्य कारणत्वाद्, उत्तरोत्तरक्षणिकविज्ञानसंततेरेव जीवत्वात् तादृशार्थसंततेरेव जडत्वाच्च संतत्यात्मकस्य जीवस्य संतत्यात्मकरूपस्कन्धसंबन्धेन तादृशे वेदनादिस्कन्धात्मके संसारे तादृशसंस्कारस्कन्धेन नानाविधशरीरपरिमाणादिभेदसिद्धेः संस्कारविरामादेवाभावरूपमोक्षसिद्धिर्न खत इति न काऽपि पुञ्जकारणतायामनुपपत्तिरिति चेत् । न । कुतः । **उत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात्** । ये हि प्रत्ययास्त उत्पत्तिमात्रं प्रति निमित्तभूताः सदृशीं संततिमुत्पाद्य नश्यन्ति । तथा सति विज्ञानसंततिरूपस्य जीवस्य पूर्वकालीनप्रियाप्रियसंस्पर्शाननुसंधानात् कथं वेदनादिस्कन्धात्मकसंसारसिद्धिः । अनुसंधानाभ्युपगमे च संतानिनः स्थिरत्वापत्तिः । संततिरूपस्य जीवस्य क्षणिकत्वेन स्थैर्याभावाद्रूपादिस्कन्धसंबन्धवियोगार्थं को वा

रश्मिः ।

प्रत्ययता कारणसमवायता । समवायस्य कार्यपूर्ववर्तिन्येव निश्चयात् । **पूर्वपूर्वे**ति कारणस्य विज्ञानस्य कारणसमवायस्य च । **उत्तरोत्तरे**ति कार्यरूपः प्रत्ययो विज्ञानं जडवृत्तिः । कारणसमवायश्च क्रियागोचरः कार्यम् । **उत्तरोत्तरे**ति । क्षणिकविज्ञानसंततिस्तु कर्ताहं भोक्ताहमित्याकारिका । **तादृशे**ति उत्तरोत्तरक्षणिकेत्यर्थः । **अर्थसंतति**रविद्यारूपा । **जीवस्ये**ति विज्ञानस्कन्धस्य । विषयेन्द्रियरूपरूपसमूहस्तत्संबन्धेन । **तादृशे** नाम क्षणिके । **वेदनादी**ति चित्तस्य सुखदुःखतद्रहितावस्थात्मके आदिशब्देन सविकल्पकप्रत्ययात्मा **संज्ञास्कन्धो** गृह्यते । **संस्कारे**ति क्षणिकरागादिक्लेशधर्माधर्मात्मकेन । **अभावे**ति संस्कारस्कन्धक्षयरूपेत्यर्थः । **कापी**ति पृष्ठाप्यनुपपत्तिः सर्वक्षणिकत्वेऽपि । जीवस्य संसारप्राप्त्यनुपपत्तिः । तथा च क्षणिकत्वेऽपि पूर्वपूर्वकारणरूपपदार्थस्योत्तरोत्तरं कार्यं लक्षीकृत्य प्रत्ययस्य कारणसमवायस्य च विषयत्वात्क्रियागोचरत्वाद्धेतोर्विषयत्वं प्राप्य वा कारणत्वादविद्यादीनां कुलालचक्रवत्परिभ्रमणेन विज्ञानसंततेरेव जीवत्वात् जडसंततेरेव जगत्त्वाच्च न जीवस्य संसारप्राप्त्यनुपपत्तिरिति चेन्नेति भाष्यार्थः । अत्र क्षणिकत्वेऽपीति न कापीत्यनेनान्वयी । पूर्वपूर्वस्येति तु कारणत्वादित्यनेनान्वेति । प्रत्ययस्येति षष्ठ्या निरूपितत्वमर्थः । तथा च कारणसमवायनिरूपितं यत्कार्यनिष्ठं विषयत्वं तस्मादित्यर्थः । पूर्वस्य उत्तर इति च विग्रहौ । **उत्पत्ती**ति व्याख्येयम् । उक्तं भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **ये ही**ति । **प्रत्ययाः** कारणसमवायाः । **संतति**मिति विज्ञानसंततिम**नुत्पाद्य नश्यन्ती**ति भवान्मन्यत इत्यर्थः । **तथा सती**ति क्षणं क्षणं जीवस्यान्यत्वे सति । **पूर्वकालीने**ति पूर्वकालीनाः **प्रियाप्रियसंस्पर्शा**स्तेषामन**नुसंधानात्** प्रियाप्रियस्पर्शक्षणसंबन्धिजीवस्य नष्टत्वेन द्वितीयक्षणे जीवस्यान्यत्वादननुसंधानादित्यर्थः । **वेदनादी**ति व्याख्यातम् । अनुसंधानेत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अनुसंधाने**ति । चक्रवत्परिभ्रमणेऽनुसंधानं संभवतीति तस्याभिप्रायः । जीवस्य नष्टत्वाच्चक्रवत्परिभ्रमणेप्यनुसंधानं न संभवतीत्यभ्युपगमपदसूचितार्थः । **संतानिन** इति । इदं च विज्ञानवादिमतानुसारेणार्थः संभवति । तेनार्थजन्यत्वे सति परमार्थत्वस्य विज्ञानेभ्युपगमात् । सर्वक्षणिकवादिमते तु संतानातिरिक्तसंतानी न विद्यते । सर्वक्षणिकवादिमते स्थिरत्वं न संभवतीत्याहुः **संततिरूपस्ये**ति । **संबन्धे**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **रूपादिस्कन्धे**ति । **को वे**ति । विज्ञानसंततेः

उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात् ॥ २० ॥

उत्तरोत्पत्तिरपि न संभवति । उत्पन्नस्य खलूत्पादकत्वम् । अत उत्तरोत्पत्तिसमये पूर्वस्य नष्टत्वादुत्पत्तिक्षण एव स्थितिप्रलयकार्यकरणसर्वाङ्गीकारे विरोधादेकमपि न स्यात् ॥ २० ॥

भाष्यप्रकाशः ।

यतेत । परमाणूनां बाह्यानामाभ्यन्तराणां च यः समूहस्तस्यापि **स्थैर्याभावात् स्कन्धसमुदायानुपपत्तिश्च** । अतः क्षणिकानामर्थानामुत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् संतत्यङ्गीकारेऽपि संसारापवर्गाव्यवस्थानादसंगतं पुञ्जस्य कारणत्वमित्यर्थः ॥ १९ ॥

उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात् ॥ २० ॥ ननु यथा दीपज्वाला उत्पद्यमानैव संहन्यते विषयीभवति च तथा पदार्थान्तरमपि संहस्यते विषयीभविष्यति चेति शङ्कायामुत्पत्तिमपि दूषयति **उत्तरे**त्यादि । अत्रापि तदनुवृत्तिः । सूत्रस्यार्थं व्युत्पादयन्ति **उत्तरे**त्यादि । उत्पद्यमानस्य संहन्यमानत्व **उत्तरोत्पत्तिः** कथमिति विचार्य सा तु **न संभवति** । **खलु**र्हेतौ । यतो हेतोर्लोके उत्पन्नस्य जननोत्तरं स्थितस्योत्पादकत्वम् । स्थितिक्षणस्तु न त्वन्मते । नाशक्षणे तूत्पादकत्वं न क्वापि दृष्टम् । नाशश्च त्वन्मते अजन्मा अन्यं ग्रसत्येव । **अत उत्तरोत्पत्तिसमये पूर्वस्य नष्टत्वादु**त्तरानुत्पत्त्या, **उत्पत्तिक्षण एव** स्वस्थितिस्वकारणप्रलयस्वकार्यकरणादि **सर्वाङ्गीकारे** परस्पर**विरोधात्** कार्यकारणभावविरोधाच्च **एकमपि न स्या**दित्येवमप्यनुपपत्त्या च समुदायस्य संसारादेश्चाप्राप्तिरित्यसंगतं पुञ्जस्य कारणत्वमित्यर्थः ।

रश्मिः ।

क्षणिकत्वादिति भावः । तथा च मोक्षासिद्धिः । **स्थैर्ये**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **परमाणूना**मिति । **असंगत**मिति । तथा चेश्वरस्य कारणत्वमिति भावः ॥ १९ ॥

उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात् ॥२०॥ **संहन्यत** इति । संघातभावं प्राप्नोति । संहस्यत इति कर्मकर्तरि प्रयोगः । 'अनुदात्तोपदेश' इति सूत्रेणानुनासिकलोपः । वस्तुतस्तु संहनिष्यत इत्येव । 'स्यसिच्सीयुट्तासिषु भावकर्मणोरुपदेशेऽज्झनग्रहदृशां वा चिण्वदिट् च' इति सूत्रात् । अतो हसे हसने इत्यत उपसंसृष्टाल्लट् । **इति शङ्काया**मिति समुदायोपपत्तिशङ्कायाम् । **दूषयती**ति सूत्रकारः । **अनुवृत्ति**रिति अप्राप्तेरनुवृत्तिः । **उत्पन्नस्ये**ति भाष्ये परमाणुपुञ्ज उत्पन्नपदार्थः । तस्य कारणमुत्पद्यमानपरमाणुरिति तस्य व्यवस्थामाहुः **उत्पद्ये**ति परमाणोरित्यर्थः । परमाणुपुञ्जाय संहन्यमानत्वे तेनोत्तरक्षणे नष्टेन । **उत्पन्नस्ये**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **खलु**रिति । **उत्पन्नस्ये**ति परमाणुपुञ्जस्य । **उत्पादकत्व**मिति । तथा च प्रथमक्षणे कारणसमवायात्मिकोत्पत्तिः, द्वितीयक्षणे स्थितिः, तृतीयक्षण उत्पादकत्वम् । **नाशे**ति द्वितीयक्षणो नाशक्षणस्तस्मिन् । **अजन्मे**ति प्रागभाववत् । अनादिः सान्तः प्रागभाव इति । न तु ध्वंसवत् सादिरनन्तः । सादिरनन्तो ध्वंसाभाव इति । **अत उत्तरे**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अत** इति । अजन्मत्वाद्धेतोः पूर्वक्षणे कार्योत्पत्तिः । द्वितीयक्षणे नाशोत्पत्तिः, तृतीयक्षणे कार्यनाश इति न भवति किंतु द्वितीयक्षणे कार्यनाश इति । **उत्तरे**ति द्वितीयक्षणे कार्योत्पत्त्याश्रये । **उत्तरे**ति कार्यानुत्पत्त्या । **उत्पत्ती**त्यादि भाष्यं **विवृण्वन्ति** स्म **उत्पत्ती**त्यादि । आदिशब्देन प्रागभावः । **परस्परे**ति स्थित्युत्पत्त्योः सहानवस्थानलक्षण**विरोधादेव**मन्यत्र कृतिविषयत्वरूपकार्यभावः आविर्भावकशक्त्याधारत्वरूपकारणभावस्तयोः

भाष्यप्रकाशः ।

शंकराचार्यास्तु यद्यपि भोक्ता प्रशासिता वा कश्चिच्चेतनः स्थिरः संहन्ता क्षणिकवादिमते नास्ति, तथाप्यविद्यासंस्कारविज्ञाननामरूपषडायतनस्पर्शवेदनातृष्णोपादानभवजातिजरामरणशोकपरिदेवनादुःखदुर्मनस्त्वानामितरेतरकारणत्वेन चक्रवत् परिवृत्तेरुपपद्यते लोकयात्रा । तस्यां चोपपद्यमानायां न किंचिदपरमपेक्ष्यते । एते चाविद्यादयो भामत्यामेवं विवृताः । तथाहि । बुद्धेन संक्षेपतः प्रतीत्यसमुत्पादलक्षणमुक्तम् 'इदं प्रत्ययफलम्' इति । इदं परिदृश्यमानं प्रत्ययस्य वक्ष्यमाणलक्षणहेतुसमवायस्य फलं कार्यमित्यर्थः । 'उत्पादाद्वा तथागतानामनुत्पादाद्वा स्थितैवैषां धर्माणां धर्मता,' 'धर्मस्थितिता धर्मनियामकता प्रतीत्यसमुत्पादानुलोमता' इति । अथ पुनरयं प्रतीत्यसमुत्पादो द्वाभ्यां भवति, हेतूपनिबन्धतः, प्रत्ययोपनिबन्धतश्च । स पुनर्द्विधा । बाह्य आभ्यन्तरश्च । तत्र बाह्यस्य प्रतीत्यसमुत्पादस्यायं हेतूपनिबन्धः । यदिदं बीजादङ्कुरोऽङ्कुरात् पत्रं पत्रात् काण्डं काण्डान्नालो नालाद् गर्भो गर्भाच्छूकं शूकात् पुष्पं पुष्पात् फलमिति । असति बीजेऽङ्कुरो न भवति । एवमग्रेऽपि फलपर्यन्तं द्रष्टव्यम् । सति तु बीजेऽङ्कुरो भवति । एवमग्रेऽपि फलपर्यन्तम् । तत्र बीजस्य नैवं ज्ञानं भवति यदहमङ्कुरं निर्वर्तयामीति । तथा अङ्कुरस्याप्येवं ज्ञानं न भवति यदहं बीजेन निर्वर्तित इति । एवं सर्वत्र । तस्मादसत्यपि चैतन्ये असत्यपि चान्यस्मिन्नधिष्ठातरि बीजादीनां कार्यकारणभावनियमो दृश्यते इत्युक्तो हेतूपनिबन्धः । अथ प्रत्ययोपनिबन्धः प्रतीत्यसमुत्पादस्योच्यते । तत्र प्रत्ययो नाम हेतूनां समवायः । हेतुं हेतुं प्रत्ययन्ते हेत्वन्तराणीति तेषामयनानां भावः प्रत्ययः समवाय

रश्मिः ।

सहानवस्थानलक्षणविरोधादित्यर्थः । **शंकरेति**, इतरेतरसूत्रे । **संहन्ता** संघातभावं प्राप्तः । **अविद्येत्यादि** व्याख्याताः व्याख्यास्यन्ते च । **यात्रेति** प्रवाहः । **प्रतीत्येति** इदं प्राप्यायं समुत्पाद इत्यस्य लक्षणम् । प्रतीत्येति ल्यबन्तम् । लक्षणसूत्रमाह **इदमिति** । **परिदृश्यमान**मिति कार्यम् । **वक्ष्यमाणेति** अत्रैवाग्रे वक्ष्यमाणस्य । **कार्यमिति** । न चेतनस्य कस्यचिदित्यर्थः । तथा चायं प्रतीत्यसमुत्पाद इत्यर्थः । अत्र कारणीभूतस्य हेतूपनिबन्धस्य संग्राहकं बुद्धसूत्रमुदाहरति **उत्पादाद्वेति** । **तथागतानां** बुद्धानां मते । **धर्माणां** कार्याणां कारणानां च या **धर्मता** कार्यकारणभावरूपा उत्पादादनुत्पादाद्वा **स्थिता** । धत्त इति धर्मः कारणम्, ध्रियत इति धर्मः कार्यम्, यस्मिन्सति यदुत्पद्यते यस्मिन्नसति च नोत्पद्यते तत्तस्य कारणं कार्यं च । न चेतनः क्वचित्कार्यसिद्धयेऽपेक्षितव्य इत्यर्थः । स्थिता धर्मतेति पदद्वयं सूत्रकृत्स्वयमेव विभजते **धर्मेति** । कार्यस्य **धर्मस्य** कारणादनतिप्रसङ्गेन कालविशेषे **स्थिति**र्भवतीति तल्प्रत्ययः । एतस्यार्थः **धर्मनीति** **धर्मस्य** कारणस्य धर्मं प्रति **नियामकता** । नन्वेवंविधमेव कारणत्वं चेतनादृते न सिद्ध्यति तत्राह **प्रतीत्येति** । सति कारणे **प्रतीत्य** तत्प्राप्य **समुत्पादस्यानुलोमता**नुसारिता या सैव धर्मता सा चोत्पादादनुत्पादाद्वा धर्मस्य स्थिता न चेतनः कश्चिदुपलभ्यत इत्यर्थः । सूत्रद्वयं व्याचष्टे **अथेति** । **हेतूपेति** **हेतो**रेकस्य कार्येणोप**निबन्धः** । **प्रत्ययोपेति** प्रत्ययानां मिलितानां नानाकारणानां कार्येणोपनिबन्धः । **स** इति प्रतीत्यसमुत्पादः । **अयमिति** यदिदमिति वक्ष्यमाणः । हेतूपनिबन्धे उदाहरणमुक्त्वा तेनैवोत्पादाद्वेति सूत्रं योजयित्वानुत्पादेत्यादि सूत्रांशं सोदाहरणं योजयति **असतीति** । **एवमग्र** इति असत्यङ्कुरे पत्रं न भवतीत्येवम् । **एवमग्रेऽपीति** सति त्वङ्कुरे पत्रं भवतीत्येवम् । अत्र चैतन्यं बीजादीनामभ्युपगम्यते किंवा तदतिरिक्तस्य कस्यचिद्भोक्तुः प्रशासितुर्वा, नाद्य इत्याह **तत्र बीजस्येति** । न द्वितीय इत्याह **असत्यपीति** । **प्रत्ययोपेति** इण्धातोर्मत्वर्थीयाच्प्रत्ययान्तस्य रूपम् । **प्रतीत्येति** बाह्यस्यैव । **अयना-**

भाष्यप्रकाशः ।

इति यावत् । ते च हेतवः पृथिव्यादयः षड् धातवः । षण्णां धातूनां समवायात् बीजहेतुरङ्कुरो जायते । तत्र पृथिवीधातुर्बीजस्य संग्रहकृत्यं करोति येनाङ्कुरः कठिनो भवति । अब्धातुर्बीजं स्नेहयति । तेजोधातुर्बीजं परिपाचयति । वायुधातुर्बीजमभिनिर्हरति यतोऽङ्कुरो बीजाभिर्गच्छति । आकाशधातुर्बीजस्यानावरणकृत्यं करोति । ऋतुधातुरपि बीजस्य परिणामतां करोति । तदेतेषामविकलानां धातूनां समवाये बीजे रोहत्यङ्कुरो जायते, नान्यथा । तत्र पृथिवीधातोर्नैवं ज्ञानं भवत्यहं बीजस्य संग्रहकृत्यं करोमीति । एवं धात्वन्तरस्यापि । तथाङ्कुरस्यापि नैवं ज्ञानं भवत्यहमेभिः प्रत्ययैर्निर्वर्तित इति । यथायं बाह्यः प्रतीत्यसमुत्पादो द्वाभ्यां कारणाभ्यां भवति तथैवाध्यात्मिकोऽपि प्रतीत्यसमुत्पादो हेतूपनिबन्धप्रत्ययोपनिबन्धाभ्यां भवति । तत्राध्यात्मिकस्य त्वयं हेतूपनिबन्धः । यदिदमविद्याप्रत्ययाः संस्कारादयो यावज्जातिप्रत्ययं जरामरणादीति । अविद्या चेन्नाभविष्यत्, नैवं संस्कारा अजनिष्यन्त । एवमग्रेपि । तत्राविद्याया नैवं ज्ञानं भवत्यहं संस्कारानभिनिर्वर्तयामीति । संस्काराणामपि नैवं ज्ञानं भवति वयमविद्यया निर्वर्तिता इति । एवमग्रेऽपि । एवं च सत्स्वविद्यादिष्वचेतनेषु चेतनान्तरानधिष्ठितेष्वपि संस्कारादीनामुत्पत्तिर्यथा बीजादिषु सत्स्वङ्कुरादीनाम् । इदं प्रतीत्य प्राप्येदं समुत्पद्यत इत्येतावन्मात्रस्य दृष्टत्वाच्चेतनाधिष्ठानस्यानुपलब्धेः । इति हेतूपनिबन्धः ।

अथ प्रत्ययोपनिबन्धः पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशविज्ञानधातूनां समवायाद्भवति । तत्र कायस्य पृथिवीधातुः काठिन्यं निर्वर्तयति । अब्धातुः कायं स्नेहयति । तेजोधातुः कायस्याशितपीते परिपाचयति । वायुधातुः कायस्य श्वासादि करोति । आकाशधातुः कायस्यान्तःसुषिरं करोति । यस्तु नामरूपाङ्कुरमभिनिर्वर्तयति पञ्चविज्ञानकार्यसंयुक्तं सास्रवं च मनोविज्ञानं सोऽयमुच्यते विज्ञानधातुरित्ययं प्रत्ययोपनिबन्धः । यदा बाह्याध्यात्मिकाः पृथिव्यादिधातवो भवन्त्यविकलास्तदा सर्वेषां समवायात् कायस्योत्पत्तिर्भवति । सोऽयं प्रतीत्यसमुत्पाद आध्यात्मिकः । अत्रापि पूर्ववदेव धातूनां नैवं ज्ञानं भवति यत् कायस्यैतद् वयं

रश्मिः ।

नामिति हेत्वन्तराणाम् । नन्द्यादित्वाल्ल्युः । **बीजहेतुरिति** बीजं हेतुर्यस्य । **अभिनिरिति** बहिर्निर्गमनानुकूलव्यापारयुक्तं करोति । **यत** इति कर्मणः । अनावरणं बीजस्यान्येन । **ऋत्विति** कालाः षड्ऋत्वात्मकाः । **परिणामितामिति** वृक्षादिरूपेणान्यथाभावम् । **समवाय** इति हेत्वन्तरे, रोहतीति सप्तम्यन्तम् । **द्वाभ्यामिति** हेतूपनिबन्धप्रत्ययोपनिबन्धाभ्याम् । **आध्यात्मिक इति** आभ्यन्तरः । उदाहरति स्म **यदिदमिति** । **अविद्येति** अविद्यया प्रत्ययाः कारणानि । **संस्कारेति** संस्कारस्कन्धोक्तमारभ्य **यावज्जातिप्रत्ययं** जातिरूपं कारणम् । यावच्च **जरामरणादि** तत्सर्वमाध्यात्मिकस्य प्रतीत्यसमुत्पादस्य हेतूपनिबन्ध उदाहरणमित्यर्थः । अविद्यासत्तां साधयति **अविद्या चेदिति** । लङ् क्षणिकत्वात् । **अग्र** इति अत्रैवाग्रे किंतु पृथिव्यादिकं स्कन्धपञ्चकं चेत्यादिनोक्तेः । **इदमिति** बीजादिकम् । **इदमङ्कुरादिकम्** । **अथ प्रत्ययेति** प्रत्ययः कारणान्तरम् । विज्ञानस्येश्वरे प्रयोगमालोच्येश्वरं निषेद्धुं विज्ञानं धातुं व्याचष्टे **यस्त्विति** । **नामरूपेति** नाम देवदत्तादिनाम्नः शुक्लादिरूपस्याङ्कुरस्याभिनिर्वर्तनं करोति । अङ्कुरस्य कललबुद्बुदादिनामरूपाणि । **पञ्चेति** पञ्चभी रूपादिविषयैर्विज्ञानैः कार्यैः संयुक्तम् । आस्रवत्यनुगच्छति कर्तारमित्यास्रवः कर्म तत्सहितम् । समनन्तरप्रत्ययरूपम् । **विज्ञानधातुरिति** । अयं च लयविज्ञानमित्यर्थः । **कायस्यैतदिति** । **एतद्** उत्पादनम् ।

भाष्यप्रकाशः ।

निर्वर्तयाम इति । नापि कायस्य ज्ञानमहमेभिः प्रत्ययैर्निर्वर्तित इति । अथ च पृथिव्यादिधातुभ्यः स्वयमचेतनेभ्यश्चेतनान्तरानधिष्ठितेभ्योऽप्यङ्कुरस्येव कायस्योत्पत्तिः । सोऽयं प्रतीत्यसमुत्पादो दृष्टत्वान्नाऽन्यथयितव्यः । तत्रैतेष्वेव षट्सु धातुष्वेकसंज्ञा पिण्डसंज्ञा नित्यसंज्ञा सुखसंज्ञा सत्त्वसंज्ञा पुद्गलसंज्ञा मनुजसंज्ञा मातृदुहितृसंज्ञा अहंकारममकारसंज्ञा । सेयमविद्या अस्य संसारानर्थभारस्य मूलकारणम् । तस्यामविद्यायां सत्यां विषयेषु प्रवर्तन्ते ये रागद्वेषमोहास्ते संस्काराः । वस्तुविषयविज्ञप्तिर्विज्ञानम् । विज्ञानाच्चत्वारो ये रूपिण उपादानस्कन्धास्तन्नाम । तान्युपादाय रूपमभिनिर्वर्तते । तदैकध्यमभिसंक्षिप्य नामरूपमुच्यते शरीरं, शरीरस्यैव कललबुद्बुदाद्यवस्थाः । नामरूपसंश्रितानीन्द्रियाणि षडायतनम् । नामरूपेन्द्रियाणां त्रयाणां सन्निपातः स्पर्शः । स्पर्शाद्वेदना सुखादिका । वेदनायां सत्यां कर्तव्यमेतत्सुखं पुनर्मयेत्यध्यवसानं तृष्णा । तत उपादानं वाक्कायचेष्टा भवति । ततो भवो धर्माधर्मौ । भवत्यस्माज्जन्मेति व्युत्पत्तेः । तद्धेतुकः स्कन्धप्रादुर्भावो जातिः । जन्महेतुका उत्तरे जरामरणादयः । तेषु जरानाम जातानां स्कन्धानां परिपाकः । स्कन्धानां नाशो मरणम् । म्रियमाणस्य मूढस्य साभिलाषस्य पुत्रकलत्रादावन्तर्दाहः शोकः । तदुत्थं हा मातर्हा पुत्रेत्यादिप्रलपनं परिदेवना । पञ्चविज्ञानकायसंयुक्तमसाध्वनुभवनं दुःखं, मानसं च दुःखं दुर्मनस्त्वमिति । एवंजातीयकाश्चोपायास्ते उपक्लेशा गृह्यन्ते । तेऽमी परस्परहेतुका जन्मादिहेतुकाश्चाविद्यादयोऽविद्याहेतुकाश्च जन्मादयो घटीयन्त्रवदनिशं वा वर्तमानाः सन्तीति भामत्युक्तं विवरणम् । तथा चायं सूत्रार्थः । एतेषामविद्यादीनामितरेतरप्रत्ययत्वात् परस्परहेतुसमवायरूपत्वादेतैरविद्यादिभिराक्षिप्तः संघात इति संघाताप्राप्तिरूपदूषणस्य न संसर्ग इति चेत् । न । कुतः । उत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् ।

रश्मिः ।

प्रत्ययैरिति पृथिव्यादिधातुभिः कारणान्तरैः । **एकसंज्ञे**ति । एकः काय इति । देहाकारेण परिणतेषु धातुषु शिरःपाण्यादिसत्त्वेन **पिण्डसंज्ञा** । एकैकस्मिन्काये **नित्यसंज्ञा** । **सत्त्वसंज्ञा** प्राणिसंज्ञा । पूर्यते गलतीति व्युत्पत्त्या **पुद्गलसंज्ञा** वृद्धिह्राससंज्ञा । **वस्त्वि**ति नालयत्वादिविशेषानपेक्ष्याऽपि तु सामान्येन **वस्तुविषये**त्यर्थः । एवमविद्यादिकं व्याख्याय रूपनामादिकं व्याकरोति **भामतीकार** इत्याहुः **विज्ञानाच्चत्वार** इति । **उपादाने**ति कारणस्कन्धाः, प्रभेदाभिप्रायेण बहुवचनम् । **तानी**ति तान्युपादानकारणा**न्युपादाय** कारणत्वेन स्वीकृत्य **रूपं** रूपस्कन्धोक्तं रूपवत्कायोभिनिष्पद्यते । ननु द्वैविध्येन नामरूपयोः कथमेकवचनमत आह **तदैकध्य**मिति । तदा एकध्यमिति पदच्छेदः । 'एकाद्धो ध्यमुञन्यतरस्याम्' इति सूत्रेणैकशब्दात्परस्य धाप्रत्ययस्य ध्यमुञादेशः । कार्यकारणे एकीकृत्यैक्यनिर्देश इत्यर्थः । जातेरग्रे वक्तव्यत्वादत्र देहो गर्भाभ्यन्तराभिधीयत इत्याह **शरीरस्यैवे**ति । **नामरूपे**ति कार्यकारणसंश्रितानि । **षण्** मनसा सह । **स्पर्श** इति स्पर्शाख्यः कायः इति रामानुजभाष्यम् । **उपादान**मिति धर्माधर्मोपादानम् । **तत** इति चेष्टातो **भवः** । तेन चेष्टा धर्माधर्मोपादानम् । **स्कन्धे**ति स्कन्धः समूहवाचीत्युक्तम् । **हा पुत्रेत्यादी**ति । अप्लुतत्वात्संधिः । हेति विषाद इति । **पञ्चे**ति पञ्चरूपादिस्कन्धविषयकं **विज्ञानं** यस्य **कायस्य** तेन **सम्यग्युक्तम्** । **एव**मिति । चोप्यर्थे । दुःखादीनामुपायाः । **उपक्लेशा** मदमानादय इति **गृह्यन्ते** । **तेऽमी**ति अविद्यादय इत्यन्वयः । **वा वर्तमाना** इति वेति भिन्नम् । अतः परं शंकरमतमुपक्षिपन्ति **तथा चे**ति । **उत्पत्ती**ति ।

भाष्यप्रकाशः ।

यत् खलु हेतूपनिबद्धं कार्यं तदन्यानपेक्षं हेतुमात्राधीनोत्पादत्वात् तदुत्पद्यतां नाम । यः पुनः पञ्चस्कन्धसमुदायः स तु प्रत्ययोपनिबद्धो न हेतुमात्राधीनोत्पत्तिरपि तु नानाहेतुसमवधान-जन्मा । न च चेतनमन्तरेणान्यः कारणानां संनिधापयिताऽस्तीति पूर्वसूत्र एवोक्तम् । बीजा-दङ्कुरोत्पत्तेरपि प्रत्ययोपनिबद्धाया विवादाध्यासितत्वेन पक्षकुक्षिनिक्षिप्तत्वात् । पक्षेण च व्यभि-चारोद्भावनायामतिप्रसङ्गेन सर्वानुमानोच्छेदप्रसङ्गात् । विवादाध्यासितत्वं तु कुसूलस्थबीजा-दङ्कुरानुत्पत्तेर्ज्ञेयम् । वस्तुतस्तु तत्रापि चेतनप्रयुक्तिर्मृग्यैव । मेघाभावे वापाभावे च केवल-र्तुधातोरप्रयोजकत्वात् । नदीमातृकस्थले तु स्फुटैव चेतनप्रयुक्तिरित्यादि द्रष्टव्यम् । अतः स्थिरस्य चेतनस्य संहन्तुरनुपगमे सर्वथा संघाताप्राप्तिः । किंचाविद्यादिभिरर्थाक्षिप्तः संघात इति यदुच्यते, तत्र कोऽर्थः । किं संघातमन्तरेणात्मानमलभमाना अविद्यादयः संघातम-

रश्मिः ।

अविद्यादीनामितरेतरकारणत्वेनोत्पत्तिमात्रे निमित्तत्वान्न हेतुसंघाताधीनः कार्योत्पादः संभवति । स्थिरस्य चेतनस्य संघातभावप्रापकस्यानङ्गीकारादित्यर्थः । अत्र द्विविधो हि कार्योत्पादः सौगता-भिमतो हेत्वधीनः कारणसमुदायाधीनश्च । तत्र हेत्वधीनो यथा बीजादङ्कुरोऽङ्कुरात्पत्रं पत्रात् काण्डमित्यादिः । कारणसमुदायाधीनो यथा पृथ्व्यप्तेजोवाय्वाकाशकालविशेषाणां मेलने सति तेभ्य उपकृताद्बीजादङ्कुरो जायते । आध्यात्मिककार्योत्पादेऽपि हेत्वधीनः कार्योत्पादोऽविद्यादीनाम् । द्वितीयस्तु पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशालयविज्ञानानां समवायात्कार्योत्पादः । कार्येऽङ्कुरादौ काठिन्य-स्नेहपाकबहिर्निर्गमनानुकूलकर्मश्वासाद्यन्तःसुषिरज्ञानानां दर्शनात्पृथिव्यादीनां कारणत्वम् । एवमुभय-विधेपि कार्योत्पादे न चेतनापेक्षेति । तत्राद्यमभ्युपगम्य द्वितीयं दूषयतीत्याहुः **यत् खल्विति** । **हेतूपेति** यदिदं बीजादङ्कुर इत्यादिना पूर्वमुक्तम् । **पञ्चस्कन्धेति** रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्कार-रूपपञ्चस्कन्धानां समुदायः । **प्रत्ययोपेति** तत्र प्रत्ययोपनिबन्ध इत्यादिना पूर्वमुक्तः । **नानेति** । यथा कायो बाह्याभ्यन्तरपृथिव्यादिहेतुकः । **संनिधापेति** । अयं दोषो हेतूपनिबन्धेऽपि यत्र निर्वाप-स्तत्र द्रष्टव्यः । निर्वापस्य चेतनकर्तृकत्वात् । **विवादेति** चेतनकृतनिर्वापाभावे कुसूलस्थबीजेनाङ्कुरा-नुत्पत्तेश्चेतनसापेक्षत्वं विवादाध्यासितमित्यर्थः । **पक्षेति** अविद्यादिः पक्षः अविद्यादयोऽसंहताः निमित्ताभावात्, कुलालरहितमृदादिवदिति पूर्वसूत्र उक्तमिदानीमविद्यादयः संहता इतरेतरकारण-त्वात् । बीजाङ्कुरवदित्यनेन सत्प्रतिपक्षीकृतम् । तत्रेतरेतरकारणत्वेन संहतिसाधनमप्रयोजकम् । चेतनस्यापि कारणकोटौ कुलालादेर्यथा । अतः पक्षे दृष्टान्ते च हेतोः संदेहात्संदिग्धसाध्यव्यभिचाराद् दृष्टान्ताभावाच्चेत्याहुः **पक्षेणेति** चकारेण दृष्टान्तः । **पक्षेणा**विद्यादिना । दृष्टान्तेन बीजा-ङ्कुरेण । **अतीति** ह्रदेऽपि धूमसंदेहाद्वह्निमत्त्वप्रसङ्गेन । **अङ्कुरेति** । कारणकोटौ चेतनस्यावश्यक-त्वादिति शेषः । **तत्रापीति** बीजादङ्कुरोत्पत्तौ । **अप्रेति** । तथा च निश्चिता कार्यमात्रे चेतनकारणता । **नदीमातृकेति** नदी माता अस्य । 'नद्यृतश्च' इति कप्, तादृशे देशे । **स्फुटैवेति** । 'मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संनिहितो हरिः' इति वाक्यात्स्फुटैव । 'योऽप्सु तिष्ठन्निति' श्रुतेरेवकारः । आदिशब्देन देवमातृको देशः । 'देवो मेघे सुरे राज्ञि' क्रमेणैकैकम् । नदीमातृकः नद्यम्बुसंपन्नधान्यपालितो देशः, देवमातृकस्तु वृष्ट्यम्बुसंपन्नधान्यपालितः, कोशे भूमिवर्गे । **अत इति** कार्यमात्रे चेतनप्र-युक्तिदर्शनात् । **आत्मानमिति** स्वरूपम् । संघातविषयिणीं बुद्धिमिति यावत् । विषयमन्तरा क्षणिकेषु स्थिरत्वबुद्धिरूपाऽविद्या न संभवतीत्यभिप्रायः । एवं रागद्वेषमोहादिषु स्वरूपालाभो ज्ञेयः ।

भाष्यप्रकाशः ।

पेक्षन्त इति वा अविद्यादय एव संघातस्य निमित्तमिति वा? अनादौ संसारे संघात एव संतत्यानुवर्तत इति वा । तत्र नाद्यः । एवं संघाताक्षेपकत्वेऽपि संघातनिमित्ताकाङ्क्षानुपशमेन तत्र निमित्तान्तरस्यान्वेषणे संनिधापयितुर्वक्तुमशक्यत्वेन संघातानुपपत्तितादवस्थ्यात् । न द्वितीयः । तमेवाश्रित्यात्मानं लभमानानां तन्निमित्तत्वे अन्योन्याश्रयापत्तेः । तृतीये तु संघातः संघातान्तरं किं स्वसदृशमेव नियमेनोत्पादयत्युतानियमेन सदृशं विसदृशं वेति विचार्यम् । तत्र नाद्यः । मनुष्यपुद्गलस्य दैवतैर्यग्योनिनारकप्राप्त्यभावापत्तेः । न द्वितीयः । मनुष्यपुद्गलस्य कदाचित् क्षणेन हस्तिमनुष्यदेवमर्कटादिभावापत्तेः । तस्मादुभयमप्यभ्युपगमविरुद्धम् । किंच । यद्भोगार्थः संघातः स तु क्षणिकवादिमते स्थिरो नास्ति । तथा सति भोगो भोगार्थ एव मोक्षो मोक्षार्थ एवेति नान्येन भोगार्थिना मुमुक्षुणा वा भवितव्यम् । अथान्येन चेत् प्रार्थ्येतोभयं तदा तेन भोगमोक्षकालावस्थायिना भवितव्यमिति क्षणिकत्वाभ्युपगमविरोध इत्यविद्यादीनामितरेतरोत्पत्तिनिमित्तत्वेऽपि न संघातसिद्धिरिति ।

भास्कराचार्या रामानुजाचार्याश्चास्य सूत्रस्य पाठान्तरमाहुः । इतरेतरप्रत्ययत्वादुपपन्नमिति चेन्न संघातभावाऽनिमित्तत्वादिति । अर्थं तूक्तरीत्यैवाविद्यादीन् प्रत्ययत्वेनोक्त्वा तेषां चक्रवत् परिवृत्त्या संघातभावादिकमुपपन्नमितिचेन्नैतदुपपद्यते । एषां पृथिव्यादीनां संघातभावं प्रत्यनिमित्तत्वात् । न खलु क्षणिकेषु स्थिरत्वादिबुद्धिरूपाया अविद्यायास्तदुत्पन्नानां रागादीनां वा क्षणिकार्थान्तरभूतपृथिव्यादिभूतभौतिकसंघाततहेतुतोपपद्यते । न हि शुक्तिकारजतबुद्धिः शुक्त्याद्यर्थसंहतिहेतुरिति क्वचिद् दृश्यते । किंच । यस्य क्षणिके स्थिरबुद्धिः स तदैव नष्ट इति कस्य रागादयः कस्य वा संस्कारादयः कल्पयितुं शक्यन्ते प्रमाणाभावादित्येवमाहुः ।

उत्तरोत्पादसूत्रस्य तु भामत्यामिदमवतारणमुक्तम् । हेतूपनिबन्धनं प्रतीत्यसमुत्पादमुपगम्य प्रत्ययोपनिबन्धनः प्रतीत्यसमुत्पादः पूर्वसूत्रे दूषितः । संप्रति तु हेतूपनिबन्धनमपि तं दूषयतीति । व्याख्यानं तु क्षणभङ्गवादिनोऽयमभ्युपगमः उत्तरक्षण उत्पद्यमाने पूर्वः क्षणो निरुध्यत इति । अत्र क्षणशब्देन तत्तत्क्षणोत्पन्नं वस्तूच्यते तथा सति पूर्वोत्तरयोर्हेतुफलभावो विरुध्यते । निरुध्यमानस्य निरुद्धस्य वा पूर्वक्षणस्योत्तरक्षणहेतुत्वानुपपत्तेः । अकारणं

रश्मिः ।

संघातेति । संस्कारजनिकेति यावत् । **संनिधापयितु**रिति निमित्तान्तररूपस्य । **तमेवे**ति संघातमेव । **तन्निमित्तत्व** इति तेषां निमित्तत्वे तन्निरूपितनिमित्तत्वे । **स्वसदृश**मिति अदृष्टेन सादृश्यम् । **मनुष्ये**ति पूर्यते गलतीति पुद्गलो देहस्तस्य । **नारके**ति नारकयोनिस्तस्याः सादृश्याभावादाकारेणापि प्राप्त्यभावापत्तेः । **उभय**मिति आद्यद्वितीयरूपम् । **भोगार्थ** इति नान्यार्थः । एवकारेण सुखं सुखार्थं न, दुःखार्थं राजसानां स्यात् । दुःखं दुःखार्थं सात्त्विकानां स्यान्न सुखार्थम् । तथा चानुभवविरोधः । **मोक्षार्थ** इति नान्यार्थः । अभावप्राप्त्या तदनन्तरं भावप्राप्त्यर्थं न । ते स्वरूपहानमपुरुषार्थमिति । **अन्येन** क्षणान्तर उत्पन्नेन । **उभय**मिति मोक्षभोगोभयम् । **तेने**ति क्षणिकेनान्येन विज्ञानात्मना । **न संघाते**ति अन्योन्याश्रयादिति भावः । **इती**ति वदन्तीति शेषः । पूर्वोक्तशंकराचार्या इत्यनेनान्वयि । अनिमित्तत्वादित्युक्तं तदेवाहुः **न खल्वि**ति । **त**मिति प्रतीत्यसमुत्पादम् । **व्याख्यान**मिति शंकराचार्यकृतम् । **निरुध्यत** इति कर्मणि यक्, कर्मकर्तरि वा प्रयोगः । तेन नाश्यते नश्यतीति वा । **अत्रे**ति बुद्धमते । **निरुध्ये**ति अभावग्रस्तरूपस्य अतीतस्य वा ।

भाष्यप्रकाशः ।

विनाशमभ्युपगच्छतां वैनाशिकानां मते विनाशकारणसामग्रीसांनिध्यरूपस्य निरुध्यमानत्वस्यानङ्गीकारेणाभावग्रस्तत्वरूपस्यैव निरुध्यमानत्वस्य सिद्धेः । अथ भावभूतः परिनिष्पन्नावस्थः पूर्वक्षण उत्तरक्षणस्य हेतुरित्युच्यते । तदसंगतम् । तस्य पुनर्व्यापारकल्पनायां क्षणान्तरसंबन्धेन क्षणिकत्वप्रतिज्ञाभङ्गप्रसङ्गात् । अथाभाव एव व्यापारः । तदसत् । हेतुस्वभावानुपरक्तस्य फलोत्पादकत्वासंभवात् । स्वभावोपरागाभ्युपगमे च हेतुस्वभावस्य फलकालावस्थायित्वप्राप्तेः क्षणभङ्गत्यागप्रसङ्गात् । स्वभावोपरागं विनैव हेतुफलभावाभ्युपगमे च सर्वतः सर्वत्र सर्वदा सर्वोत्पत्तिप्रसङ्गात् । किंच उत्पादनिरोधौ किं वस्तुनः स्वरूपमुतावस्थान्तरं वस्त्वन्तरमेव वा । आद्ये वस्तुशब्द उत्पादनिरोधशब्दौ च पर्यायाः स्युः । तथा सति व्यवहारबाधप्रसङ्गः । न द्वितीयः । तथा सति वस्तुन आद्यन्तमध्यक्षणत्रयसंबन्धप्राप्त्या क्षणिकत्वत्यागप्रसङ्गात् । न तृतीयः । तथा सत्यश्वमहिषवत् परस्परसंसर्गराहित्याद् वस्तुनः शाश्वतिकत्वप्रसङ्गात् । यदि च वस्तुनो दर्शनादर्शने उत्पादनिरोधौ तदापि द्रष्टृधर्मत्वात् तौ न वस्तुधर्माविति वस्तुनः शाश्वतिकत्वप्रसङ्ग इत्यसंगतं सौगतं दर्शनमित्याहुः ।

भास्कराचार्यास्तु—अनुत्पन्नस्य शशविषाणतुल्यत्वादुत्पन्नविनष्टस्य चाभावग्रस्तत्वान्न हेतुत्वम् । अथ पूर्वक्षणविनाश उत्तरक्षणोत्पत्तिश्च युगपद्भवेतां तुलान्तयोर्नामोन्नामवदिति । तदसत् । तुलाया मध्ये सूत्रधारणादन्तयोश्च युगपदुपस्थितयोरेकस्य गुरुत्वान्नामस्तद्धेतुश्चोन्नाम इति युक्तम् । अत्र तूत्तरोत्पत्तिकाले पूर्वस्थित्यनुपगमान्न हेतुत्वसंभवः । स्थित्युपगमे च

रश्मिः ।

भावभूतः सद्भूतः । **परिनिसिति** विनाशोन्मुखः । **व्यापारेति** क्षणेन क्षणः इति प्रत्यये तृतीयानिर्वाहकस्य **व्यापारस्य कल्पनायाम्** । हेतुत्वस्य सव्यापारनिर्व्यापारसाधारणत्वात् । **क्षणान्तरेति** व्यापाराश्रयस्य क्षणान्तरस्य **संबन्धेन** । **व्यापार** इति कार्योत्पादनाख्यो हेतुर्व्यापारस्तस्य च पूर्वक्षणे नाशक्षणे सत्त्वादुपपन्नं नष्टस्यापि कारणत्वं, यागवत् । स व्यापारो हेतुस्वभावादतिरिक्तोऽनतिरिक्तो वा । आद्ये दोषमाहुः । **अनुपरक्तत्वं** हेतुस्वभावातिरिक्तत्वम् । **फलोत्पादेति** अतिप्रसङ्गात्तथा । द्वितीये दोषमाहुः **स्वभावोपेति** । **फलं** कार्यम् । **क्षणभङ्गेति** हेतुस्वभावस्य द्वितीयक्षणे सत्त्वादयम् । **सर्वदेति** मृत्कुलालादिनाशकालेऽपि । **सर्वोत्पत्तीति** । क्वचित्तु भाव एवास्य व्यापारः भाव उत्पत्तिस्तन्न । हेतुस्वभावानुपरक्तस्य फलस्योत्पत्त्यसंभवात् । समवायिहेतुस्वभावस्य मृत्त्वरक्तत्वादिरित्येवं शंकराचार्यव्याख्यानम् । **किंचेति** । **निरोधो** नाशः । **अवस्थान्तरमिति** उत्पादनिरोधशब्दाभ्यां स्थितिकालिकवस्तुन आद्यन्ताख्येऽवस्थेऽभिलप्येते इत्येवं वस्तुनः सकाशादुत्पादनिरोधयोर्विशेषोऽवस्थान्तरम् । **व्यवहारेति** वस्तुन उत्पादो वस्तुनो नाश इत्यपर्यायताबोधकस्य व्यवहारस्य **बाधप्रसङ्गः** । **आद्यन्तेति** । **मध्यं** स्थितिः । **शाश्वतिकेति** न ह्यश्वो महिषनाशको भवतीत्येवं निरोधाप्राप्त्या शाश्वतिकत्वप्रसङ्गात् । **द्रष्टृति** ज्ञानतदभावात्मकत्वेन तथात्वात् । **ताविति** । ज्ञानाज्ञानात्मकत्वेनोत्पादनिरोधौ । **आहुरिति शंकराचार्याः** उत्तरोत्पादे पूर्वस्य निरोधान्नाशान्न हेतुत्वं संभवतीत्यर्थमाहुः । **अनुत्पन्नस्येति** । **उत्पन्नेति** उत्पन्न एव द्वितीयक्षणे विनष्टः क्षणिकस्तस्येत्यर्थः । **युगपद्भवने** दृष्टान्तमाहुः **तुलेति** । **तुलान्तयोरवयवयोः** । **अन्तयोरवयवयोः** । **तद्धेतुरिति** स हेतुर्यस्य ।

भाष्यप्रकाशः ।

क्षणिकत्वहानिः । किंच कारणधर्माननुविधाने कार्यकारणभावकल्पनायामतिप्रसङ्गः । यतो मृदन्विताः शरावादयः सुवर्णान्विताश्च कुण्डलादयो दृश्यन्ते । किंच आकारसमर्पणेऽपि न सामर्थ्यं त्वन्मते, वस्तुनः क्षणिकत्वात् । तस्मान्नित्यपक्ष एव कार्यकारणव्यवस्था युज्यते, न क्षणिकपक्षे । प्रत्यक्षप्रत्यभिज्ञानाच्च कुम्भादीनां नित्यत्वमिति । ननु नित्यपक्षेऽपि कार्यकारणभावानुपपत्तिः क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोधात् । किं कुसूलस्थो व्रीहिरङ्कुरजननस्वभावोऽथातत्स्वभावः । यद्यन्त्यस्तदा न कदाचिदपि जनयेत् । यद्याद्यस्तदा तदानीमेवोत्पादयन् यानि कर्माणि व्रीहिणा कर्तव्यानि तानि युगपदेव कुर्यात्, न तु सामग्रीवशेनाङ्कुरं जनयेत् । अतत्स्वभावत्वे तत्स्वभावत्वे वा सामग्र्या अकिंचित्करत्वात् । नच प्रत्यभिज्ञानादपि नित्यत्वम् । दीपज्वालादिषु व्यभिचारात् । यदि च नित्यो भावः स्याद् विनाशं न प्राप्नुयात् । अथ मुद्गरादिना विनाशः क्रियत इति चेत् । तदयुक्तम् । विनाशो यः क्रियते स द्रव्यव्यतिरिक्तो वा तदव्यतिरिक्तो वा । आद्ये घटस्य न किमपि स्यात् । यथा पटे कृते । द्वितीये घटस्वरूपमेव विनाशः । स्वरूपं तु कुलालेन कृतमेवेति मुद्गरः किमपरं कुर्यात् । अथ घटसंबन्धी विनाशः क्रियत इति कः संबन्धः । किं तादात्म्यलक्षण उत तदुत्पत्तिलक्षणः । द्वितीयश्चेद्, घटस्य न किंचित् । यथा पावकेन्धनाभ्यां धूम उत्पादिते वह्नेर्न किंचित् तथा घटमुद्गराभ्यां विनाश उत्पादिते घटस्यापि । तादात्म्यपक्षेऽपि तादात्म्यस्य तत्स्वभावत्वात् तस्य च कुलालेन कृतत्वाद् व्यर्थो मुद्गरः स्यात् । अतः स्वाभाविको विनाश एष्टव्य इति । अत्रोच्यते । योऽयं विकल्पः कृतः स तव सिद्धान्तं बाधते सदृशसंतानोत्पत्तिप्रतिनिरोधात् ।

रश्मिः ।

क्षणिकत्वेति द्विक्षणावस्थायित्वेन तथा । **अतीति** मृत्पटयोः कार्यकारणभावप्रसङ्गः । **प्रत्यक्षेति** प्रत्यक्षेण घटग्रहानन्तरं घटिकाद्यनन्तरं पुनः स एवायं घटः इति **प्रत्यभिज्ञानाचे**त्यर्थः । **सौगतः** शङ्कते **ननु नित्ये**त्यादिना **एष्टव्य** इतीत्यन्तेन । **क्रमेत्यादि अर्थो** व्रीह्यादिस्तत्क्रियाङ्कुरजननादिः सा क्रमेण व्रीह्यादौ भवति कचिद्यौगपद्येन भवति **तद्विरोधात्** । विरोधमापादयति **किमित्यारभ्याकिंचित्करत्वादि**त्यन्तेन । **न कदाचिदपीति** निर्वापोत्तरकालेप्यङ्कुरं **न जनयेत्** । सूचीकटाहन्यायेनान्त्यं पूर्वमुक्त्वाद्यमाह **यद्याद्य** इति । **तदानीमिति** कुसूलस्थत्वकाले । **उत्पादयन्निति** अङ्कुरम् । **यानीति** अङ्कुरोत्पादोत्तरमङ्कुरवर्द्धनादीनि । **व्रीहिणा** निर्वापादिकारणसमवहितेन । **कुर्यादिति** कुसूलस्थो व्रीहिः । **नाङ्कुरमिति** । अङ्कुरजननस्वभावात्स्वस्य । **नित्यत्वमिति** कुम्भादीनाम् । **दीपेति** । **आदिपदेना**ग्निज्वाला वेति । स्वाभाविको वेत्यपि द्रष्टव्यम् । स्वाभाविकत्वविकल्पः परित्यक्त इति । वक्ष्यमाणस्वारस्यात् । **किमपीति** नाशादिकम् । **कृत** इति, घटस्य न किमपि स्यादिति पूर्वत्रान्वयः । **किं तादात्म्येति** विनाशस्य भेदत्वे तादात्म्येत्यादिः । **तदुत्पत्तीत्य**ग्रे स्पष्टम् । **किंचिदिति** नाशादिकम् । **घटस्यापीति** न किंचिदित्यन्वेति । **तादात्म्यस्येति** संबन्धस्य घटस्य स्वभावत्वात्तस्य घटस्य । तृतीयमुपगच्छति **अत** इति । **एष्टव्य** इति इच्छायाः कर्मविषयः कर्तव्यः । **उच्यते** सिद्धान्तिभिः । **योयमिति** न तु नित्यपक्ष इत्यादिनोक्तो **विकल्पः** । **सदृशेति** । अङ्कुरस्य विसदृशत्वेन तज्जननस्वभावत्वात् । तथा च भोग्यादृष्टेन यो घटसदृशसंतानस्तस्य बाधः । नन्वन्त्ये घटलक्षणे क्षणे सदृशसंतान-

भाष्यप्रकाशः ।

योऽयमन्त्यो घटक्षणोऽभिमतो यतः कपालोत्पत्तिरिष्यते, स सदृशसंतानजननस्वभावो घटक्षणत्वादतीतानन्तरघटक्षणवदित्यनुमानात् । यदि चासौ विसदृशसंतानजननस्वभाव एवाभ्युपेयेत, तदा पूर्वक्षणाः विसदृशसंतानजननस्वभावाः । घटक्षणत्वादन्त्यक्षणवदित्यनुमानात् कुम्भकारादारभ्य कपालपङ्क्तिरेव स्यात् । एवं सति मुद्गरेण घटस्य सदृशसंतानजननस्वभावता नाश्यते विसदृशसंतानजननस्वभावता चोत्पाद्यत इत्यवश्यमभ्युपेतव्यम् । अन्यथा कपालोत्पत्त्यसंभवात् । ततश्च भवता सहेतुकं विनाशमभ्युपगच्छता विनाशस्य स्वाभाविकत्वविकल्पः परित्यक्तः ।

यदि विकल्पोऽङ्गीक्रियते विसदृशसंतानस्त्यक्तव्य इति सिद्धहानिर्दृष्टविरोधश्च । तत्र यथा तव सदृशसंतानजननस्वभावविनाशो मुद्गरेण क्रियते तथा ममापि घटविनाश एव क्रियते इति स्थितः सहेतुको विनाश इति । प्रत्यभिज्ञानाच्च कालान्तरस्थायित्वम् । ज्वालादिष्वपि सामान्यं समाश्रित्य प्रत्यभिज्ञा । वृद्धिह्रासदर्शनाद् व्यक्तीनामनित्यतैव । तथापि न क्षणिकत्वं, बाधाभावात् । क्षणिकत्वं च न प्रत्यक्षम् । प्रथमोत्पत्तौ निर्विकल्पकज्ञाने विशेषापरामर्शात् । यच्चोक्तं क्रमयौगपद्याभ्यामर्थक्रियाविरोध इति । स तु तवापि समानः । योऽसावन्त्यक्षणो यस्मादङ्कुरोत्पत्तिरिष्यते, सोऽप्यङ्कुरजननस्वभावो न भवति, व्रीहिक्षणत्वादनन्तरातीतव्रीहिक्षणवत् ।

रश्मिः ।

बाधोस्त्येवेति चेत्तत्राहुः **योऽयमन्त्य** इति पुञ्जः । कपालोत्पत्तिरन्त्यकार्यावान्तरोत्पत्तिः । **इष्यत** इति अन्त्यकार्यपर्यन्तं संतानवादिनेष्यते । **स** इति अन्त्यघटलक्षणः पुञ्जः । **घटक्षणे**ति घटरूपक्षणत्वात् । **इत्यनुमाना**दिति । तथा च कपालरूपविसदृशजननस्वभावेन्त्ये घटे सदृशसंतानजननापत्त्या सदृशसंतानोत्पत्तिप्रतिनिरोधः । **असा**वित्यन्त्यो घटः । **पूर्वक्षणा** इति आमघटरूपाः । **कुम्भकारा**दिति आमघटकर्तरि कुम्भकारपदात्तद्व्यापाराद्**आरभ्य** पाकादिकालेऽपि **कपालपङ्क्ति**रामुद्गरसंयोगं स्यात् । **एवं सती**ति उभयथापि दोषे सति । **अन्यथे**ति सदृशसंतानजननस्वभावतानाशाभावे । अथ मुद्गरादिनेत्याद्युक्तं दूषयन्ति स्म **ततश्चे**ति । **सहेतुक**मिति हेतुर्मुद्गरः । **विनाशं** सदृशसंतानजननस्वभावताविनाशम् । **विकल्प** इति स्वाभाविको वेति विकल्पः । **विनाशो** यः क्रियत इत्यादिग्रन्थेऽत्रैव पूर्वमुक्ते । **विसदृशे**ति विसदृशे संतानेऽङ्गीक्रियमाणे आमघटदर्शनोत्तरक्षणेन कपालदर्शनापत्त्या **त्यक्तव्यः** । **सिद्धे**ति **सिद्धस्य** विसदृशोत्पादकत्वस्य **हानिर्दृष्टायाः** कपालोत्पत्तेर्**विरोधश्च** । **तत्रे**ति अन्त्ये घटादौ । दीपज्वालादिषु व्यभिचारः प्रत्यभिज्ञाया नित्यत्वेन साकमुक्तस्तं परिहरन्ति **प्रत्यभी**ति । ननूक्तं दीपज्वालादिषु व्यभिचारस्तत्राहुः **ज्वालादिष्वि**ति । **सामान्य**मग्नित्वं जातिः । **व्यक्तीना**मिति ज्वालादिव्यक्तीनाम् । **तथापी**ति वृद्धिह्रासभाक्त्वेऽपि । **बाधे**ति उत्तरक्षणे ज्वाला**बाधाभावात्** । **प्रथमे**ति प्रथमक्षणरूपघटोत्पत्तौ सत्यां तद्विषयकं निर्विकल्पकं ज्ञानं जायते तत्क्षणत्रिके **विशेषः** इदमपरमित्याकारकः तस्य **परामर्शः** चाक्षुषादिस्तस्याभावात् । तच्च स्वलक्षणमात्रगोचरमिति बाह्याः । एतादृशनिर्विकल्पकज्ञाने विशेषजात्यादीनामपरामर्शाद्विशेषाधीनं प्रत्यक्षं न भवतीत्यर्थः । **अन्त्यक्षणं** लक्षयन्ति **यस्मा**दिति बीजरूपात् । तथा च कालरूपक्षणस्य कालिकसंबन्धो बीजनिष्ठो लक्षणा । दूषयन्ति स्म **सोऽपी**ति । **अनन्तरे**ति उत्पत्तिविनाशविषयप्रतियोगिनौ व्रीहिरूपौ क्षणौ तद्वत् । अनन्तरक्षणस्य नाङ्कुरजननस्वभावत्वमिदं समवायिकारणधर्मः । उक्तौ तु हेतू । व्रीहेर्द्विक्षणावस्थायित्वं तदनुसारेणोक्तं न तु तन्मतीयक्षणिकत्वमादृत्य । व्रीहिरसमानसंतान-

असति प्रतिज्ञोपरोधो यौगपद्यमन्यथा ॥ २१ ॥

एका क्षणिकत्वप्रतिज्ञा । अपरा चतुर्विधान् हेतून् प्रतीत्य चित्तचैत्ता उत्प-

भाष्यप्रकाशः ।

असमानसंतानजननस्वभावत्वे पूर्वक्षणानामपि तथात्वप्रसङ्गः । अथ सहकारिवशादेवंभावः, स त्वस्माकमप्यविशिष्ट इति । किंच । विनाशोत्पादौ भावाव्यतिरिक्तौ न वा । अन्त्ये भावस्योत्पत्तिस्थितिनाशक्षणत्रयसंसर्गप्रसङ्गः । आद्ये उत्पत्तिविनाशयोरभावो नित्यः स्यात् । किंच । विनाशो नाम अभावः । स किं भावस्य पूर्वभावी वा सहभावी वा पश्चाद्भावी वा, आद्ये भावोत्पत्तिरेव न स्यात् । द्वितीयेऽप्यविरोधाद्भावस्य शाश्वतिकत्वप्रसङ्गः । तृतीये तु तस्यापि सहेतुकत्वान्नाशः प्राप्नोतीति नित्यत्वप्रतिज्ञाभङ्ग इत्याहुः ।

रामानुजाचार्यास्तु–क्षणिकत्वपक्षे जगदुत्पत्तिर्न संगच्छते । पूर्वक्षणस्य विनष्टत्वेन तस्योत्तरक्षणं प्रति हेतुत्वानुपपत्तेः । अभावस्य हेतुत्वे सर्वत्र सर्वदा सर्वोत्पत्तिप्रसङ्गात् । अथ पूर्वक्षणवर्तित्वमेव हेतुत्वं, तर्हि कश्चिदेव घटक्षणस्तदुत्तरभाविनां सर्वेषां गोमहिषादीनामन्यदेशवर्तिनामपि हेतुः स्यात् । अथैकजातीयस्यैव पूर्वक्षणवर्तिनो हेतुत्वं, तदापि सर्वदेशवर्तिनामुत्तरक्षणभाविनां घटानां स एवैको हेतुः स्यात् । अथैकस्यैक एव हेतुस्तदापि कः कस्येति न ज्ञायते । अथ यो यस्मिन् देशे घटक्षणे स्थितः स तद्देशीयस्यैवोत्तरघटक्षणस्य हेतुः । तर्हि देशस्य स्थिरत्वापत्त्या सर्वक्षणिकत्वप्रतिज्ञाहानिः । किंच । चक्षुरादिसंप्रयुक्तस्यार्थज्ञानोत्पत्तिकाले अनवस्थितत्वान्न कस्यचिदर्थस्य ज्ञानविषयत्वं स्यादित्याहुः । भाष्यान्तरे तु न किंचिदितोऽधिकम् । एतानि तु दूषणानि सूत्रेष्वेवाग्रे प्रसिद्ध्यन्तीत्याचार्यैर्भाष्य उपेक्षितानि ॥ २० ॥

असति प्रतिज्ञोपरोधो यौगपद्यमन्यथा ॥ २१ ॥ पूर्वसूत्रैः क्षणभङ्गवाद्यभिमता

रश्मिः ।

जननस्वभाव एवाभ्युपेयते तदपि दोषमाहुः **असमानेति** । **पूर्वेति** त्रयाणां क्षणानाम् । **तथात्वेति** समानसंतानजननस्वभावाभावप्रसङ्गः । तथा च व्रीहिरूपक्षणे स्वस्वरूपेऽसमानसंतानजननात्स्वलक्षविरोधः । **सहकारीति** पृथिव्यादिषड्धातुवशाद्व्रीह्यादेरङ्कुरादिजननस्वभाव इति सहकारिवशात् । **अस्माकमिति** कारणनित्यत्ववादिनाम् । **अन्त्य** इति व्यतिरिक्तत्वपक्षे । **भावस्येति** क्षणिकत्वेनैकक्षणरूपस्य । **नित्य** इति अभावस्य नाशस्यानित्यत्वे उत्पत्तिनाशयोर्भावस्य नित्यत्वात्क्षणिकत्वभङ्गस्तस्मादभावो नाशो नित्यः स्यात्प्रतिज्ञाभञ्जको न तु क्षणिक इत्यर्थः । **न स्यादिति** । भावस्य तदा सत्त्वेन कार्योत्पत्तिप्रतिबन्धादिति भावः । ध्वंसस्य ध्वंसाभावात् । **अविरोधादिति** क्षणिकत्वेन भावाभावयोरविरोधात् । य उत्पत्तिक्षणः स एव ध्वंसक्षण इति । **सहेतुकत्वादिति** हेतुस्तु यस्य नाशः सः । उत्तरोत्पादकाले पूर्वस्य हेतोर्निरोधान्नाशान्न पूर्वस्य हेतुत्वमिति सूत्रार्थमाहुः **पूर्वेति** । पूर्वस्य क्षणिकत्वेऽप्यव्याहतं हेतुत्वमिति शङ्कते **अथेति** । **हेतुत्वमिति** । गोमहिषादयस्तु विजातीया इति न घटक्षणस्तेषां हेतुरिति भावः । **स्यादिति** सजातीयत्वादिति भावः । **घटक्षण** इति यः इत्यस्य समानाधिकरणात् घटक्षण इति प्रथमान्तं पदमिति प्रतिभाति घटरूपः क्षणः । **सत्त** इति तद्देशीयस्येत्यस्य विशेषणम् । संपातापातं वा । उत्तरोत्पादे चेति सूत्रस्थचकारार्थमाहुः **तर्हीति** । पूर्वक्षणोत्तरक्षणयोर्देशस्यैकत्वात्स्थिरत्वम् । संप्रयुक्तत्वं संबद्धत्वम् । **भाष्यान्तर** इति माध्वभाष्येयैस्तु कार्योत्पत्तावेव कारणस्य विनाशाच्चेतनविशेषकार्योत्पत्तिरित्युच्यते । अन्यमतानुवादस्य प्रयोजनमाहुः **एतानीति** ॥ २० ॥

यन्त इति । वस्तुनः क्षणान्तरसंबन्धे प्रथमप्रतिज्ञा नश्यति । असति द्वितीया । द्वितीया चेन्नाङ्गीक्रियते तदा प्रतिबन्धाभावात् सर्वं सर्वत एकदैवोत्पद्येत ॥ २१ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

पुञ्जस्य कारणता निरस्ता । अतः परमसत्येव हेतौ फलोत्पत्तिरिति तदभ्युपगतमाकस्मिकपक्षं दूषयति **असतीत्यादि** । तत्र कस्याः प्रतिज्ञाया उपरोध इत्याकाङ्क्षायां तां स्फुटीकर्तुमाहुः **एका इत्यादि** । एका स्फुटा । एतस्यामेवाभावस्य कारणताऽभ्युपगमः । अपरा त्वेवम् । आलम्बनप्रत्ययः, समनन्तरप्रत्ययोऽधिपतिप्रत्ययः, सहकारिप्रत्ययश्चेति **चतुर्विधान् हेतून् प्राप्य चित्तं** विज्ञानस्कन्धात्मकं, **चैत्ता** वेदनास्कन्धात्मका **उत्पद्यन्ते** । तत्रालम्बनप्रत्ययो नाम विषयः, तेन चित्तस्य नीलाद्याकारता । समनन्तरप्रत्ययः पूर्वविज्ञानं, तेन बोधरूपता । अधिपतिप्रत्यय इन्द्रियं, तेन रूपादिग्रहणप्रतिनियमः । सहकारिप्रत्यय आलोकादिः, तेन स्पष्टार्थता । एवं चतुर्विधैर्हेतुभिर्नीलाद्याकारकविज्ञानात्मकं चित्तमुत्पद्यते । एवं चित्ताभिन्नहेतुजानां सुखादीनां चैत्तानामेत एव चत्वारो हेतव इति द्वितीया प्रतिज्ञा । एतस्या अङ्गीकारे हेतुभूतस्य **वस्तुनो** द्वितीयक्षणस्थित्या **क्षणान्तरसंबन्धे** क्षणिकत्वप्रतिज्ञा **नश्यति** । इदमत्र प्रसङ्गादुक्तम् । प्रस्तुतमाहुः **असतीत्यादि** । यदि चासत्येव हेतावभावादेव फलोत्पत्तिरिष्यते तदा **द्वितीया चतुर्विधान् हेतून् प्रतीत्येति** प्रतिज्ञा नश्यति । तदिदमुक्तम् **असति प्रतिज्ञोपरोध** इति । यदि च क्षणिकत्वं स्थितमेवेति **द्वितीया नाङ्गीक्रियते, तदा** हेत्वभावस्य सर्वत्र सुलभत्वेन **प्रतिबन्धाभावात् सर्वं सर्वत उत्पद्येत, एकदैव चोत्पद्येते**ति । तदिदमुक्तं **यौगपद्यमन्यथे**ति । तथा चोभयथाप्यसंगतं सौगतं मतमित्यर्थः ॥ २१ ॥

रश्मिः ।

असति प्रतिज्ञोपरोधो यौगपद्यमन्यथा ॥ २१ ॥ निरस्तेति ब्रह्मणः समवायित्वाय निरस्ता । **दूषयतीति** सूत्रकारः । **तत्रेत्यादि** असति उभयोः प्रतिज्ञयोः **कस्याः** । **तामिति** प्रतिज्ञाम् । **अपरेत्यादिभाष्यं** विवृण्वन्ति स्म **अपरेति** । **प्राप्येति** प्रतीत्य इत्यस्य विवरणम् । **विज्ञानेति** । एते स्कन्धा अधिकरणारम्भे व्याख्याताः चैत्यचैत्तचैतिकशब्दैर्व्यवह्रियन्ते । **चित्तस्येति** । यथा नीलविज्ञानस्य नीलं वस्त्वालम्बनप्रत्ययो विषयस्तेन **नीलाद्याकारता** चित्तस्य विज्ञानस्कन्धस्य । **पूर्वविज्ञान**मिति पूर्वस्य विज्ञानं यत्स्मरणमित्युच्यते संस्कारो वा । **रूपादीति** रूपादिग्रहणस्य प्रतिनियमः चक्षू रूपमेव गृह्णाति श्रोत्रं शब्दमेवेत्यादिनियमः । द्वितीयायां किंचित्कुर्वन्ति स्म **एव**मिति, पूर्वोक्तप्रकारेण । **वस्तुन** इत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **एतस्या** इति । **क्षणिकत्वप्रतिज्ञेति** प्रथमप्रतिज्ञा इति भाष्यविवरणमिदम् । **इदमत्रेति** अत्र भाष्ये । **प्रसङ्गादिति** संगतिसामान्यलक्षणस्य प्रसङ्गघटितत्वात्सामान्यलक्षणसमन्वयाय । एवमुपोद्घातसंगतिमुक्त्वा प्रकृतं सूत्रार्थमाहुरित्यर्थः । तेनोपोद्घातः संगतिरिति सिद्धम् । **असतीत्यादीति** । असति द्वितीया प्रतिज्ञा नश्यति । **हेतूनिति** विषयादिरूपान् **प्रतीत्य** नाभावं प्राप्य । **इतीति** इति सूत्रांशेन । (अत्र यद्यपि वस्तुनः क्षणान्तरसंबन्धेऽसतीत्यर्थः संभवति तथाप्याकस्मिकपक्षदूषणस्यावश्यकत्वात्) भाष्ये सौत्रमन्यथाशब्दः द्वितीया चेदित्यादिना व्याख्यातं तद्भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **यदि चेति** । **स्थितमेवेति** स्थितमेव । **नाङ्गीति** अनतिप्रयोजनत्वान्नाङ्गीक्रियते । अतियौक्तिकत्वात् । भाष्ये तदेत्यादिना सौत्रं यौगपद्यपदं व्याख्यातं तद्भाष्यं व्याकुर्वन्ति स्म **तदा हेत्विति** । **उभयथेति** सत्त्वेऽसत्त्वे च हेतौ ॥ २१ ॥

प्रतिसंख्याप्रतिसंख्यानिरोधाप्राप्तिरविच्छेदात् ॥ २२ ॥

अपि च वैनाशिकाः कल्पयन्ति । बुद्धिबोध्यं त्रयादन्यत् संस्कृतं क्षणिकं चेति । त्रयं पुनर्निरोधद्वयमाकाशं च । तत्रेदानीं निरोधद्वयाङ्गीकारं दूषयति ।

प्रतिसंख्यानिरोधो नाम भावानां बुद्धिपूर्वको विनाशः । विपरीतोऽ-

---

भाष्यप्रकाशः ।

प्रतिसंख्याप्रतिसंख्यानिरोधाप्राप्तिरविच्छेदात् ॥ २२ ॥ एवं चतुःसूत्र्या तदुक्तमुत्पत्तिप्रकारं दूषयित्वा तदुक्तं नाशप्रकारं दूषयति प्रतीत्यादि । तद् व्याकर्तुं पूर्वं तेषां मतमनुवदन्ति अपि चेत्यादि । वैनाशिकाः सर्वानित्यत्ववादिनः सौगताः कल्पयन्ति बुद्धिबोध्यं त्रयादन्यद् भिन्नं यत् तत् संस्कृतं पूर्वपूर्वविज्ञानजैः संस्कारैरालयत्वेन व्यवहारयोग्यम् । यच्च क्षणिकं तदपि । एवं पञ्चपदार्थाः । त्रयं त्वत्र स्फुटम् । आकाशस्वरूपं तद्दूषणसूत्रे वाच्यम् । तत्र क्षणिकं संस्कृतं च पूर्वसूत्रेषु दूषितम् । आकाशं चाग्रे दूषणीयमितीदानीं निरोधद्वयाङ्गीकारं दूषयति । तयोः स्वरूपमाहुः प्रतिसंख्यानिरोध इत्यादि । प्रतिकूला संख्या प्रतिसंख्या सन्तमिममसन्तं करोमीत्याकारकतया भावप्रतीपा या बुद्धिः सा प्रतिसंख्या । तत्पूर्वको विनाशः प्रतिसंख्यानिरोधः । विपरीतस्तादृशबुद्धिं विनापि जायमानोऽप्रतिसंख्यानिरोध इति वाचस्पतिमिश्राः । तदत्राप्युक्तम् ।

सहेतुकः स्थूलो विनाशः पूर्वः, सूक्ष्मः स्वाभाविको द्वितीय इति भास्कराचार्याः ।

मुद्गराभिघाताद्यनन्तरभावितयोपलब्धियोगी सदृशसंतानावसानरूपः स्थूलो यो

रश्मिः ।

प्रतिसंख्याप्रतिसंख्यानिरोधाप्राप्तिरविच्छेदात् ॥ २२ ॥ प्रसङ्गसंगत्यावतारयन्ति **एव**मिति । **दूषयती**ति सूत्रकारः । **वैनाशिका** इति व्याख्येयम् । बुद्धिबोध्येत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **बुद्धिबोध्ये**ति । बुद्धिबोध्यं प्रमेयमात्रम् । त्रयं भाष्ये स्फुटम् । समाहारद्वन्द्वमेकवचनं च । **अन्य-त्रे**ति सार्वविभक्तिकस्त्रल्भाष्ये इत्याहुः **अन्यदि**ति । व्याख्येयम् । शंकरभाष्ये त्वन्यदिति प्रथमान्तम् । यदि च भवदादियोग एव 'इतराभ्योऽपि दृश्यन्त' इति सूत्रप्रवृत्तिस्तदा त्वन्यन्निमित्तं यद्वस्तु तत्संस्कृतमित्यन्वयः । न च क्रियायामन्वयः शक्यः । 'संबुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे' इति सूत्र ओदित्यनुवर्त्य संबुद्धिनिमित्त ओकारो वा प्रगृह्य इति व्याख्यानात् । **संस्कृत**मिति उत्पाद्यम् । उत्पाद्यं व्याकुर्वन्ति **संस्कारै**रिति रागादिभिः । **आलयत्वेने**ति आत्मत्वेन । 'आलय आत्मा' इति पूर्वसूत्र उक्तम् । **पञ्चे**ति निरोधद्वयमाकाशं संस्कृतं क्षणिकं च । यद्वा । बुद्धिबोध्यं त्रयं संस्कृतमालयः क्षणिकं चेति । अस्मिन्पक्षे संस्कृतमित्यस्य पूर्वपूर्वेति न व्याख्यानम् । **त्रयं त्वत्रे**ति अत्र भाष्ये । **तत्रे**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तत्रे**ति । **अग्र** इति 'आकाशे चाविशेषात्' इति सूत्रे । **तयो**रिति निरोधयोः । प्रातिकूल्यमाहुः **सन्तमिम**मिति । **बुद्धि**रिति एकार्थप्रत्यासत्त्या । **प्रतिसंख्यानिरोध** इति मुद्गरादिना कस्यचिद्भावस्य भवति । अप्रतिसंख्यानिरोधस्तु अबुद्धिपूर्वको विनाशस्तम्भादीनां स्वरसभङ्गुराणां भवति । **तदत्रे**ति, अत्रेति भाष्ये । **स्थूल** इति दण्डादिजन्यः परिदृश्यमानः । **पूर्व** इति प्रतिसंख्यानिरोधः । **सूक्ष्म** इति । संतत्यात्माऽज्ञातः । **द्वितीय** इति अप्रतिसंख्यानिरोधः । दण्डेन घटनाशः आद्यः इत्याहुः **मुद्गरे**ति मुद्गरसंयोगो निमित्तकारणम् । आदिशब्देन विभागादयोऽसमवायिनः । **सदृशे**ति घटस्योत्पत्तिमारभ्य क्षणिकघटसंतानः सदृशो भवति तस्यावसानं

प्रतिसंख्यानिरोधः । द्वयमपि निरुपाख्यम् । निरोधद्वयमपि च प्राप्नोति । संततेरविच्छेदात् । पदार्थानां च नाशकसंबन्धाभावात् प्रतिबन्धसंबन्धाभावः । आद्यनिरोधः पदार्थविषयको व्यर्थः । द्वितीयः क्षणिकाङ्गीकारेणैव सिद्धत्वान्नाङ्गीकर्तव्यः ॥ २२ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

विसदृशसंतानः स आद्यः । प्रतिक्षणभावी चोपलब्ध्यनर्हः सूक्ष्मश्च यो निरन्वयविनाशः स द्वितीय इति रामानुजाचार्याः । निरुपाख्यमिति अनिर्वाच्यम्, अवस्त्विति यावत् । दूषणं व्युत्पादयन्ति निरोधेत्यादि । कथं संतत्यविच्छेद इत्याकाङ्क्षायां विभजन्ते पदार्थानामित्यादि । तन्मते पदार्थाः सर्वे क्षणिकाः सदृशसंतानजननस्वभावाः । क्षणिकानां च नाशकसंबन्धो न पूर्वं दृष्ट इत्यन्त्यानामपि पदार्थानां नाशकसंबन्धाभावात् पूर्ववदेव संततिप्रतिबन्धाभाव इत्यविच्छेद इत्यर्थः । न च यदा प्रतिसंख्यासंबन्धस्तदा प्रतिभन्त्स्यत इति युक्तम् । तन्मते विज्ञानसंतानात्मकस्य जीवस्य क्षीणे संस्कारे तैलक्षये प्रदीपस्येव निर्वाणेनाभावप्राप्तिर्मोक्षः । संस्कारक्षयश्चार्च्यचतुष्टयाभ्यासजन्यया प्रतिसंख्यया वाच्यः । तत्राभ्यासस्य पौनःपुन्यरूपत्वेन स्थिरधर्मतया क्षणिके जीवे वक्तुमशक्यत्वेन तज्जन्यप्रतिसंख्यायाः सुतरां तथात्वात् । अतः संततेरविच्छेद एवेत्याद्यनिरोधो विज्ञानपदार्थविषयको व्यर्थः । तथा सति पदार्थान्तरविषयकोऽपि तथा । न च द्वितीयो युक्त इति शङ्क्यम् । यतो द्वितीयः क्षणिकाङ्गीकारेणैव साधनयोगशून्यतायां संतत्यविच्छेदस्य सिद्धत्वान्नाङ्गीकर्तव्यः । 'अर्हे कृत्यतृच-

रश्मिः ।

विसदृशस्य कपालस्य संतानरूपं कपालोत्पत्तेः प्राक् सदृशसंतानाभ्युपगमात् तथा च सदृशघटादिसंतानावधिरित्यर्थः । **विसदृशेति** कपालादिसंतानो घटादिविसदृशः । **स आद्य इति** प्रतियोगिव्यतिरेकाव्यतिरेकशून्यः प्रतियोगिस्वाभाविको नाश इत्यङ्गीकारात् विसदृशसंतान एव नाश इत्यर्थः । **निरन्वय** इति तप्तायःपतिताऽम्बिन्दोरिव निःशेषनाशः । **निरोधेत्यादि** प्रतिसंख्याप्रतिसंख्यानिरोधद्वयमपि न प्राप्नोति न संभवति । तदुक्तं **प्रतिसंख्याप्रतिसंख्यानिरोधाप्राप्तिरिति ।** कुतः । **संततेरविच्छेदादिति** सूत्रभाष्यार्थः । **दृष्ट** इति क्षणिकत्वान्न दृष्टः । **अन्त्यानामिति** परिनिष्पन्नावस्थानां पुञ्जानां घटादीनाम् । **आद्यनिरोध** इत्यादि भाष्यं विवरीतुमाशङ्क्य निषेधन्ति स्म **न च यदेति** । **प्रतिसंख्येति** सन्तमेनमसन्तं करोमीति प्रतिकूलबुद्धिसंबन्धः । **प्रतिभन्त्स्यत** इति कल्याणप्रतिकूलं नाशं भावः करिष्यते । भदि कल्याणे सुखे च 'कल्याणस्यानमङ्गलम्' स्वरवर्णानुक्रमहैमधातुपाठे भ्वादिः । इडभावस्तु चिन्त्यः । संस्कारमदादिरूपसंस्कारस्कन्धे । **निर्वाणेनेति** 'निर्वाणमस्तंगमने' इति विश्वः । **अर्च्यचतुष्टयेति** । अग्रे वाच्यम् । **तथात्वादिति** जीवे वक्तुमशक्यत्वादिति । तथा च प्रतिसंख्यासंबन्धाभावेन प्रतिबन्धाभावान्न युक्तः प्रतिसंख्यानिरोध इति भावः । **अविच्छेद** इति निरन्वयध्वंसाभाव एव । आद्येत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **आद्येति** । बुद्धिपूर्वको विनाशः । **व्यर्थ** इति यद्याद्यनिरोधः स्याद् दृश्येत परं न दृश्यत इत्याद्यनिरोधो व्यर्थः । **तथा सति** संततेरविच्छेदे सति । **पदार्थेति** रूपस्कन्धादिविषयकोऽपि व्यर्थः । **द्वितीय** इति भाष्यमवतारयन्ति **न चेति** । द्वितीय इत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **यत** इति । **द्वितीयो** बुद्धिपूर्वको विनाशः । **क्षणिकेति** भावपदार्थमात्रस्य । **साधनेति**

उभयथा च दोषात् ॥ २३ ॥

प्रतिसंख्यानिरोधान्तर्गताविद्याविनाशे मोक्ष इति क्षणिकवादिनो मिथ्यावादिनश्च मन्यन्ते । अविद्यायाः सपरिकराया निर्हेतुकविनाशे शास्त्रवैफल्यम् ।

भाष्यप्रकाशः ।

श्च' इत्यर्हे तव्यः । नाङ्गीकर्तुं योग्यः । तथा च निरोधद्वयस्याप्ययुक्तत्वान्नाशविचारेऽप्यसंगतमेव सौगतं दर्शनमित्यर्थः ।

भास्कराचार्यास्तु–तौ संतानगोचरौ संतानिगोचरौ वा । नाद्यगोचरौ । निरोधस्यावस्तुत्वाभ्युपगमान्नित्यत्वापभ्युगमाच्च । नापि संतानिगोचरौ । संतानिनां घटादीनां प्रत्यभिज्ञानात् । त्वत्पक्षे विनाशस्याभावाव्यतिरेकाच्च हेतुनापि नाशः संभवति । यन्मतेऽभावव्यतिरिक्तो विनाशस्तन्मते सहेतुकः । अर्च्यसत्यचतुष्टयाभ्यासान्मुक्तिः । अर्च्यसत्यचतुष्टयं तु समुदायसत्यं, निरोधसत्यं, दुःखसत्यं, मार्गसत्यं चेति । सर्वमुत्पत्तिमदस्तीति यन्निर्णयज्ञानं तत् समुदायसत्यम् । सर्वं क्षणिकमिति निरोधसत्यम् । सर्वं दुःखात्मकमिति दुःखसत्यम् । सर्वं शून्यं सर्वं निरात्मकमिति मार्गसत्यमित्येवं भावयतो रागादिनिवृत्त्याभ्युपगम्यमानायां निर्हेतुको विनाश इति प्रतिज्ञा हीयेत । तस्मादसङ्गतं सौगतं मतमित्याहुः ॥ २२ ॥

उभयथा च दोषात् ॥ २३ ॥ एवं पूर्वसूत्रे कार्यविचारेण निरोधद्वयं दूषयित्वाऽत्र स्वरूपविचारेण दूषयतीत्याशयेन सूत्रमुपन्यस्य व्याकुर्वन्ति **प्रतिसंख्येत्यादि** । उक्तनिरोधैकदेशभूतेऽविद्याविनाशे मोक्षस्तद्दर्शनोक्तरीतिको भवतीति, **क्षणिकवादिनो**, वैभाषिकाः, सौत्रान्तिका, **मिथ्यावादिनो** योगाचाराश्च **मन्यन्ते** । तदसंगतम् । यतोऽविद्यायाः सकार्याया

रश्मिः ।

साधनं नाशकस्तस्य योगः संबन्धस्तच्छून्यतायां सत्याम् । **तथा चेति** । संततेरविच्छेददर्शने प्रकारे च । **ताविति** निरोधौ । भावानां हेतुफलभावेन प्रवाहः **संतानः** । **संतानीति** संतानिनो घटादयः । **अवस्तुत्वेति** अवस्तुभूतेन तु संतानादर्शनासंपादनादित्यर्थः । अत एव संतानदर्शनमिति निरस्ते दोषे हेत्वन्तरमाहुः **नित्यत्वेति** । तथा च संताननाशो नित्य इति द्वितीयक्षण एव संतानानुपलब्धिप्रसङ्ग इति भावः । **प्रत्यभीति** । निरोधे नाशे सति सोयं घटादिरिति प्रत्यभिज्ञानं न स्यादिति भावः । **विनाशस्येति** निरन्वयध्वंसस्य । **नाशः** निरन्वयध्वंसः, संतानिनां घटादीनां संभवति । अन्त्यावयवानां परमाणुत्वेनानाशात् । तथा च प्रतिसंख्याप्रतिसंख्यानिरोधयोरप्राप्तिरसंभवः । अविच्छेदात्, अवस्तुत्वान्नित्यत्वाच्च । घटादीनां प्रत्यभिज्ञानाद्वेति सूत्रार्थश्च संभवति । **यन्मत** इति नैयायिकादिमते । **अभावो**त्यन्ताभावः, तद्व्यतिरिक्तः प्रध्वंसो विनाशः । **सहेतुक** इति हेतुर्मुद्गरादिः । **निर्णयेति** निर्णयेन **ज्ञानम्**, निर्णयस्य ज्ञानं वा । **निरात्मकमिति** । आलयविज्ञानस्यैकमतीयत्वात् । **हीयेतेति** । भावनारूपस्याभ्यासस्य हेतुत्वात् ॥ २२ ॥

उभयथा च दोषात् ॥ २३ ॥ कार्येति निरोधद्वयकार्यं संततिविच्छेदस्तद्विच्छेदे विच्छेदाभावान्निरोधद्वयं व्यर्थमित्येवं विचारेण । **अविद्येति** क्षणिकेषु स्थिरत्वबुद्धिरविद्येति । सा च तत्पूर्वकविनाशे प्रतिसंख्यानिरोधरूपेस्त्वेवेति, प्रतिसंख्यासूत्रोक्तनिरोधैकदेशभूतेऽविद्यानाशे सति । **तद्दर्शनेति** क्षीणे तु संस्कारस्कन्ध इत्यादिनोक्तसंस्कारस्कन्धाभावरूपः । **मिथ्यावादिन** इति भाष्यं विवृण्वन्ति **मिथ्यावादिन** इति । **योगाचारा** इति विज्ञानवादिनः । **अविद्याया** इत्यादिभाष्यं विवरीतुमाहुः **तदसमिति** । विवृण्वन्ति स्म **यत** इति । **सकार्याया** इति यमनियमादयः

अविद्यातत्कार्यातिरिक्तस्याभावान्न सहेतुकोऽपि । न हि वन्ध्यापुत्रेण रज्जुसर्पो नाश्यते । अत उभयथापि दोषः ॥ २३ ॥

आकाशे चाविशेषात् ॥ २४ ॥

यच्चोक्तमाकाशमप्यावरणाभावो निरुपाख्यमिति तत्र आकाशेऽपि सर्व-

भाष्यप्रकाशः ।

निर्हेतुके विनाशेऽङ्गीक्रियमाणे अर्च्यसत्यचतुष्टयाभ्यासादिसाधनविधायकशास्त्रवैफल्यम् । तेन सहेतुकत्वोपगमे निर्हेतुकत्वप्रतिज्ञाहानिरपि क्षणिकवादिनं प्रति स्मारिता । मिथ्यावादिनो निर्हेतुकत्वाङ्गीकारे शास्त्रवैफल्यं तुल्यम् । सहेतुकत्वपक्षेऽप्यविद्यातत्कार्यातिरिक्तस्य नाश्यस्य मिथ्यावादिमतेऽप्यभावान्नाशकस्यापि मिथ्यात्वात् तत्र दूषणमविद्येत्यादिनोक्त्वा व्युत्पादयन्ति न हीत्यादि । अत उपगमद्वयस्याप्यसंगतत्वान्मतद्वयेऽपि दोष इत्यर्थः ।

रामानुजाचार्यास्तु—क्षणिकवाद्यभ्युपेतात्तुच्छादुत्पत्तिरुत्पन्नस्य तुच्छत्वाप्तिश्च न संभवतीत्युक्तम् । तदुभयप्रकाराभ्युपगतौ दोषश्च भवति । तुच्छादुत्पत्तौ तुच्छमेव कार्यं स्यात् । यद् यस्मादुत्पद्यते तत् तदात्मकमेव दृष्टम् । यथा मृत्सुवर्णाद्युत्पन्नं मणिकमुकुटादिकं मृत्सुवर्णाद्यात्मकम् । न च तुच्छात्मकं जगद् भवद्भिरिष्यते, न च प्रतीयते । सतो निरन्वयविनाशे सत्येकक्षणादूर्ध्वं कृत्स्नस्य जगतस्तुच्छताप्तिरेव स्यात् पश्चात्तुच्छाज्जगदुत्पत्तावनन्तरोक्तं तुच्छात्मकत्वमेव स्यात् । अत उभयथा दोषान्न भवदुक्तावुत्पत्तिनिरोधावित्येवमाहुः ॥ २३ ॥

आकाशे चाविशेषात् ॥ २४ ॥ अतः परमाकाशं दूषयतीत्याहुः यच्चेत्यादि । आवरणाभावमात्रमाकाश इति यदुच्यते तदसंगतम् । आकाशोऽपि भूतान्तरवद् वस्तुत्व-

रश्मिः ।

कार्याणि परिकराश्च । निर्हेतुके विनाशे अप्रतिसंख्यानिरोधे । अर्च्यसत्येति । एतस्य गतसूत्रे भास्कराचार्यैर्व्याख्यानमनूदितम् । तेनेति साधनविधायकशास्त्रेण । स्मारितेति आरम्भसूत्रे स्कन्धानुवादाग्रे सेयमभावप्राप्तिर्मोक्ष इत्यनुवादान्निर्हेतुकत्वप्रतिज्ञातस्याग्रे संस्कारस्कन्धाप्राप्तिकथनेन संस्कारस्कन्धक्षयात्मा मोक्षोऽपि दुर्लभ इति निर्हेतुकत्वप्रतिज्ञाहानिः सा स्मारिता । क्षणिकवादिन उक्त्वा भाष्योक्तरीत्या मिथ्यावादिन आहुः मिथ्येति । शास्त्रेति अर्च्यसत्यादिशास्त्रवैफल्यम् । अत इति भाष्यं विवृण्वन्ति अत इति । इत्यर्थ इति । तथा चोभयथा च मतद्वयेऽपि दोषादिति सूत्रार्थः । तुच्छादिति अवस्तुभूतात् । उत्पन्नस्येति वस्तुनः । तुच्छत्वाप्तिश्च । उक्तमिति पूर्वसूत्र उक्तम् । तथाहि । निरोधद्वयं सतो न संभवति । अविच्छेदात् । सतो निरन्वयविच्छेदासंभवादिति सूत्रं व्याख्यायासंभवं व्युत्पादयन्ति स्म प्रतिसंख्यावस्थायोगिद्रव्यमेकमेव स्थिरमुत्पत्तिविनाशयोः कार्यावस्थान्तरत्वादित्युक्तं तदनन्यत्वाधिकरणे । ननु निरन्वयविनाशो निर्वाणे दीपे दृश्यते इत्यन्यत्र सोऽनुमीयते निरन्वयनाशवान् कार्यत्वाद्दीपवदिति चेन्न । घटशरावादौ मृदादिद्रव्यानुवृत्त्युपलब्ध्या सतो द्रव्यस्यावान्तरापत्तिरेव नाश इति निश्चिते प्रदीपादौ सूक्ष्मदशापत्त्याप्यनुपलम्भोपपत्तेस्तत्राप्यवस्थान्तरकल्पनेऽस्यैव युक्तत्वेन दृष्टान्ताभावादिति । तदुभयेति तुच्छादुत्पत्तिप्रकार उत्पन्नस्य तुच्छत्वप्रकारश्च । तमाहुः तुच्छादुत्पत्ताविति । मणिकेति । मणिकं महाघटः । तुच्छताप्तिरुक्ता । पश्चादिति तुच्छताप्तेः पश्चात् । अनन्तरेति पूर्वदूषणत्वेनोक्तम् । उभयथेति तुच्छादुत्पत्त्यङ्गीकारे उत्पन्नस्य तुच्छत्वास्यङ्गीकारे च ॥ २३ ॥

आकाशे च विशेषात् ॥ २४ ॥ आवरणेति तदप्यवस्त्वित्युक्तं निरुपाख्यमिति

पदार्थवद् वस्तुत्वव्यवहारस्याविशेषात् ॥ २४ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

व्यवहारस्य समानत्वात् । यथा हि पृथिव्यां घटो, जले नौकेत्यादि व्यवह्रियते तथाऽऽकाशेऽप्यत्र गृध्रोऽत्र श्येन इत्याधारता व्यवह्रियते । तथा बहिरन्तरमिति च । न चासौ भूप्रदेशे दिशि वा वक्तुं शक्यते । बाह्यो देशो, बाह्या दिगान्तरो देश, आन्तरी दिगिति बहिरन्तरव्यवहारविषयपरिच्छेदकत्वेनैव तयोरभिलप्यमानत्वात् । अतो बहिरेव धूमो नान्तरिति व्यवहारसाक्षिकोऽवकाश एवायं व्यवहारः । अवकाशश्च प्रत्यक्षः । भूयानवकाशः स्वल्पोऽवकाश इति प्रत्यक्षानुभवात् । नच रूपाभावो बाधक इति वाच्यम् । गन्धर्वनगरादिवद् वस्तुसामर्थ्येनैव तत्प्रतीत्यङ्गीकारे बाधकाभावात् । तस्मान्नावरणाभावमात्रमाकाशो, नापि निरुपाख्य इत्यर्थः ।

रामानुजाचार्यास्तु त्रिवृत्करणेन पञ्चीकरणस्याप्युपलक्षितत्वादाकाशेऽपि रूपसत्त्वात् तद्धेतुकेऽपि तत्प्रत्यक्षे न विरोध इत्याहुः । तच्चिन्त्यम् । तथा सति वायावपि तदापत्तेः ।

वैशेषिकादयः पुनः शब्दाख्यगुणानुमेयमाकाशमिच्छन्ति शांकराश्च ।

भास्कराचार्यास्तु—शब्दस्याकाशेन सह संबन्धाग्रहणादसत्यपि शब्दे नभोविषयकबुद्ध्युत्पत्तेः, श्रूयमाणेऽपि शब्दे तद्द्वारेण तत्र तदनुत्पत्तेर्न तस्य शब्दानुमेयत्वं, किंतु

रश्मिः ।

भाष्येण । **इति** चेति व्यवह्रियत इत्यन्वयः । बहिरन्तरव्यवहारविषयत्वमाकाशलक्षणे स्पष्टं सुबोधिन्यादौ । **असा**विति व्यवहारः । **बहिरन्तरे**ति बहिरन्तरव्यवहाराभ्यां विशेषेण सिनुतः बध्नतः इति विषयौ, दिग्देशौ तत्परिच्छेदकत्वेन । **तयोर्दि**ग्देशयोः । **अवकाश** इति अवकाशे सप्तम्यन्तम् । **अयमि**ति अत्र गृध्रोत्र श्येन इत्यादिः । नैयायिकाशङ्कामनूद्य परिहरन्ति **न चे**ति । **गन्धर्वनगरादि**स्तैत्तिरीयादौ प्रसिद्धः । **बाधके**ति । उपपादितं चैतत्सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशादित्यधिकरणे नीरूपो नील इत्यस्य रश्मौ । **इत्यर्थ** इति । तथा चाकाशेऽपि व्यवहारेण भूतान्तरतुल्यताया अविशेषान्नीरूपाख्यत्वावरणाभावमात्रत्वयोरप्राप्तिरिति प्रतिसंख्यासूत्रादप्राप्तिमनुवर्त्य सूत्रं योजनीयम् । **त्रिवृदि**त्यादि । 'तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकं करवाणि' इति श्रुतत्रिवृत्करणेन पञ्चीकरणमुपलक्ष्यते । पञ्चीकरणं तु आकाशवायुतेजोबन्नानि तावदविद्यासहायात्परस्मादात्मनः सकाशादनुक्रमेण जातानि तानि सूक्ष्माणि व्यवहाराक्षमाणीति तदीयस्थौल्याकाङ्क्षायां कल्पितव्यवहारनिर्वाहकतदीयधर्माधर्मात्मककर्मापेक्षया तानि पञ्चीकृतानि स्थूलानि भवन्ति । तानि हि प्रत्येकं द्वैविध्यमापद्यन्ते । तत्र चैकैकं भागं परिहायापरेष्वेकैकशश्चातुर्विध्ये सिद्धे तत्तदीयात्मीयमर्धं परित्यज्यार्धोत्तरेष्वेकैकभागस्यानुप्रवेशे प्रत्येकं भूतानि पञ्चतापन्नानि पञ्चीकृतान्युच्यन्ते शांकरैः । एवं च शब्दस्पर्शरूपरसगन्धानां परस्परस्मिन्प्रवेशादाद्याकाशेऽपि रूपसत्त्वात्तद्धेतुके रूपहेतुकेप्याकाशप्रत्यक्षे विरोधो नेत्यर्थः । तदिदं नीरूपो नील इत्याकारेण विरुद्धं तर्करूपमिति लीलाभेदाय चिन्त्यत्वमाहुः **तच्चिन्त्यमि**ति । **तदापत्ते**रिति रूपापरया चाक्षुषापत्तेः । शब्दाख्येति शब्दः पृथिव्याद्यष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रितः । अष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति द्रव्याश्रितत्वात् सुखवदित्यनुमेयम् । **शांकराश्चे**ति आगमप्रामाण्यात्तावद् 'आत्मन आकाशः संभूतः' इत्यादिश्रुतिभ्यः आकाशस्य वस्तुत्वसिद्धिः । विप्रतिपन्नान् प्रति शब्दगुणानुमेयत्वमिति भाष्ये इच्छन्ति । **तदनुत्पत्ते**रिति शब्दादिहाकाश इति बुद्ध्यनुत्पत्तेः । **न तस्ये**ति भवेच्छब्दाश्रयत्वेनाकाशसिद्धिर्यद्याकाशे शब्द-

अनुस्मृतेश्च ॥ २५ ॥

सर्वोऽपि क्षणिकवादो बाधितः। स एवायं पदार्थ इत्यनुस्मरणात् । अनुभवस्मरणयोरेकाश्रयत्वमेकविषयत्वं च ॥ २५ ॥

भाष्यप्रकाशः।

रूपिद्रव्यसमवायित्वात् त्रिवृत्करणेन रूपसंबन्धाच्च प्रत्यक्षमित्याहुः। तत्राप्यनुमेयत्वखण्डनमात्रं युक्तम्।

शंकराचार्या भास्कराचार्याश्चाकाशसत्त्वे बुद्धवाक्यसंमतिमप्याहुः 'पृथिवी भगवन् किं निःसंश्रया' इत्येवं प्रश्नप्रतिवचनप्रवाहे पृथिव्यादीनामन्तः 'वायुः किं निःसंश्रयः' इत्यस्य प्रश्नस्य प्रतिवचनं 'वायुराकाशसंश्रयः' इति बुद्धेनोक्तम्। तथा,

'आकाशस्य स्थितिर्यावद् यावच्च जगतः स्थितिः। तावन्मम स्थितिर्भूयाज्जगद्दुःखानि निघ्नतः'

इति च बुद्धेनोक्तमिति। तथा चाकाशस्यावस्तुत्वे तदसमञ्जसं स्यादिति ॥ २४ ॥

अनुस्मृतेश्च ॥ २५ ॥ एवं क्षणिकवादं विशेषतो निराकृत्येदानीं सङ्क्षेपेण निराकरोतीत्याशयेनाहुः **सर्व** इत्यादि। अयमर्थः। क्षणिकवादी हि सर्वस्य क्षणिकत्वं मन्यमानोऽनुभवितुरनुभूतिविषयस्य च सदृशसंतानेन प्रत्यभिज्ञानमुपपादयति। तदसंगतम्। प्रत्यभिज्ञाने हि यः पूर्वं दृष्टः स एवाऽयं पदार्थ इति, योऽहं पूर्वमद्राक्षं स एवाहमिदानीं पश्यामीत्याकारः। तत्र च, स इत्यनेन पूर्वकालवर्तिनोऽयमहमित्यनेनोत्तरकालवर्तिनोऽनुभूतिविषयस्यानुभवितुश्चैक्यस्य परामृश्यमाणतया पूर्वापरकालवर्तिन एकस्य सिद्धत्वेन क्षणिकसंतानस्य वक्तुमशक्यत्वात्। नच तत्र संताने स इति पूर्वकालवर्तित्वाभिमानात् सर्वमुपपद्यत इति वाच्यम्। अनुभवस्मरणयोरेकाश्रयत्वैकविषयत्वनैयत्यात् संतानेन च पूर्वकालस्याननुभूत-

रश्मिः।

संबन्धो वृत्तिनियामकः स्यात् स तु नास्तीति न तस्याकाशस्य शब्दानुमेयत्वमप्रयोजकत्वादित्यर्थः। **रूपीति** पञ्चीकरणेन रूपिद्रव्यावयवसंबन्धित्वेनावयवाकाशयोस्तादात्म्यं मन्यन्त इति ज्ञायते। रूपाण्याकाशगुणत्वाद् द्रव्याश्रितानि तादृशद्रव्यवायुसमवायित्वादिति वा। **तत्रापीति** एवं मतेऽपि। **अनुमेयत्वेऽति**। न तु रूपिद्रव्यसमवायित्वमण्डनम्। 'आकाशाद्वायुः' इति श्रुतेः। त्रिवृत्करणस्याकरे व्यवस्थापनेन रूपसंबन्धाभावात्। प्रत्यक्षत्वमपि न रूपसंबन्धेन किंतु रूपत्वेन। नीरूपो नील इत्याकाशव्यवस्थापनात्। **अप्याहुरिति** अपिशब्देन श्रुतिसंमतिः। **प्रश्नप्रतीति** एवमवादीनां प्रश्नप्रतिवचनेन **प्रवाहे**। **ममेति** बुद्धस्य। **तदित्युक्तवाक्यद्वयम्**। माध्वास्तु दीपादिषु विशेषदर्शनात् क्षणिकत्वेनान्यत्र क्षणिकत्वमनुमीयते चेदाकाशादिष्वविशेषदर्शनादन्यत्रापि तदनुमीयत इत्याहुः ॥ २४ ॥

अनुस्मृतेश्च ॥ २५ ॥ **अनुभवितुरिति** विज्ञानस्कन्धस्य। **अनुभूतीति** रूपस्कन्धादेः। **प्रत्यभिज्ञानम्** तत्तेदंताप्रकारकं ज्ञानम्। एवं वादस्वरूपमुक्त्वा **बाधित** इतीदं भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तदसमिति**। सूत्रार्थभूतं **स एवे**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **प्रत्यभिज्ञान** इति। **पूर्वकालेति**। घटादेरात्मनश्च तदुक्तमग्रेनुभूतिविषयस्यानुभवितुश्चेति। **अनुभवे**त्यादिभाष्यं विवरीतुमाशङ्कामाहुः **न च तत्रेति**। **सर्वमिति** यद्यत्प्रत्यभिज्ञोपयोगि तत्सर्वम्। **अनुभवे**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति **अनुभवेति**। एकाश्रयत्वं च तादात्म्येन बोध्यम्। एकं च मन

भाष्यप्रकाशः।

तया तस्य तत्स्मरणायोगेन तत्र तथाभिमानस्य वक्तुमशक्यत्वात् । संतानिनोऽपि तदानीं तस्मिन् काले पूर्वकालत्वबुद्ध्यभावेन तत्संताने तादृशबुद्धिवैशिष्ट्यस्यापि वक्तुमशक्यत्वाच्च । न चाकस्मिकमेव स इति ज्ञानमिति युक्तम् । तथा सति सर्वदा तदापत्तेः । न च सादृश्येन तथा ज्ञानं भवतीति वाच्यम् । अज्ञातस्य सादृश्यस्य तादृशज्ञानानुत्पादकतया सादृश्यज्ञानार्थं यतमानस्य पूर्वापरकालवर्तिवस्तुद्वयानुसंधानं पूर्वकालानुसंधानं चावश्यकमिति तदनुसंधातुः स्थिरत्वापत्त्या सादृश्यस्यापि पूर्वापरकालवृत्तिवस्तुद्वयनिष्ठतया स्थिरत्वापत्त्या क्षणिकत्वहानिप्रसङ्गात् । न च सादृश्यसंतानात् सर्वं सेत्स्यतीति वाच्यम् । सादृश्यस्य सदृशबुद्धिबोध्यत्वेन सदृशबुद्धेश्च पूर्वापरकालवृत्तिवस्तुद्वयविषयीकरणं विना असंभवेन तत्संतानाङ्गीकारेऽपि बुद्धेस्तद्विषयस्य च स्थिरत्वापत्तेरनिवार्यत्वेन क्षणिकवादबाधस्य दुर्वारत्वात् । अतस्तत्तेदंतातत्ताहंतासामानाधिकरण्यावगाहिप्रत्यभिज्ञानात्मकानुस्मृत्यन्यथानुपपत्त्या सिद्धे बाह्यार्थानामात्मनश्च स्थैर्ये सर्वोऽपि क्षणिकवादः सर्वत्र बाधित इत्यर्थः । एवं च,

'नित्यदा ह्यङ्ग भूतानि भवन्ति न भवन्ति च । कालेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात् तन्न दृश्यते । यथार्चिषां स्रोतसां वा फलानां वा वनस्पतेः । तथैव सर्वभूतानां वयोवस्थादयः कृताः' इति

रश्मिः।

आश्रयो यस्य । 'कामः संकल्पो विचिकित्सा' इति श्रुतेः । वृत्तिवृत्तिमतोरभेदान्मन एव धीः । किंच । विषयविषयिभावसंबन्धेन तेनैकानुभवोत्तरं विषयविरहदशायां मानसीनतत्स्मरणेऽपि न क्षतिरिति चेन्नेत्याहुः **एकविषयत्वेति** । **तत्स्मरणायोगेने**त्यत्र हेतुत्वेनान्वेति । **पूर्वकालस्येति** यत्र तिङन्तं नास्ति तत्रापि तत्परिकल्प्य काल उन्नेयः 'वर्तमाने लट्' इत्यादिभिः सूत्रैः । **अननुभूते**ति भिन्नत्वात्तथा । **तस्य** तदिति पूर्वकालाननुभवितुर्जीवस्य विज्ञानस्कन्धस्य । **तत्रे**ति । उत्तरकालिके । **स** इत्यनेनोक्तः पूर्वकालवर्तित्वा**भिमान**स्तस्य । **संतानिन** इति विज्ञानस्कन्धस्य, रूपस्कन्धस्येन्द्रियविषयात्मनश्च स्थिरत्वाभिमानविषयस्य । **तदानी**मिति वाक्यालंकारे । तदर्थकस्य **तस्मिन्काल** इत्यस्याग्रे दर्शनात् । **तस्मिन्नि**ति प्रत्यभिज्ञाकाले । **पूर्वकालत्वेति** । सूक्ष्मत्वादिति भावः । **तादृशेति** । वैशिष्ट्यं पदार्थान्तरमिति शिरोमणिः । **आकस्मिकमिति** । न तु विषयादिहेतुकम् । **स इतीति** स इत्यनेन पूर्वकालवर्तित्वाभिमानम् । **सर्वदेति** अनुभवकालेऽपि **स्मरणापत्तेः**, घटमनुभवतः पटस्मरणापत्तेश्च । ननु मास्तु वस्तुविषयिणी प्रत्यभिज्ञा सादृश्यविषयिणी तु स्यादित्याशङ्क्य निषेधन्ति स्म **न च सादृश्य** इति । 'तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयोधर्मवत्त्वं सादृश्यं' तस्मिन् तद्विषयकं तथा ज्ञानं तत्तेदंताप्रकारकं ज्ञानं भवति । तथा च सादृश्यमात्रहेतुकं **न च वाच्य**मित्यर्थः । **तादृशेति** प्रत्यभिज्ञात्मकज्ञाना**नुत्पादकतया** । **सादृश्यं** संबन्धवदुभयापेक्षमित्याहुः **पूर्वापरेति** । यथा चन्द्रसदृशं मुखमित्यत्र । **पूर्वकालेति** अधिष्ठानतया । **तदन्विति** विज्ञानस्कन्धस्य । **सदृशेति** कतिपयैर्धर्मैर्यः **सदृशस्तद्विषयबुद्धिबोध्यत्वेन** । वस्तुद्वयं सादृश्यनिरूपकं सादृश्याधिकरणं च । **तत्संताने**ति सादृश्यसंताना**ङ्गीकारे** । **बुद्धेः** सदृशबुद्धेः । **तद्विषयस्ये**ति पूर्वापरकालवर्तिसादृश्यनिरूपकसादृश्याधिकरणरूपवस्तुद्वयस्य । सिद्धमाहुः **अत** इति । सोयमिति **तत्तेदंता** । सोहमिति **तत्ताहन्ता** । इत्युभयत्र सामानाधिकरण्येत्यादिः । **सर्वत्रे**ति पृथिव्यादिषु पञ्चस्कन्धेषु च । प्रसङ्गाच्छ्रीधरीं दूषयन्ति स्म **एवं चेति** । **कृता**

नासतोऽदृष्टत्वात् ॥ २६ ॥

अपि च नानुपमर्द्य प्रादुर्भावं वैनाशिका मन्यन्ते । ततश्चाऽसतोऽलीकात्

भाष्यप्रकाशः ।

द्वाभ्यां कालिकं नित्यप्रलयमादाय, विमतं प्रतिक्षणोत्पत्तिविनाशम्, अवस्थाभेदवत्त्वात्, दीपज्वालादिवत्यनुमानेन यत् क्षणिकत्वमुक्तं तत् विशेषणाभावप्रयुक्ताभावादेव, न तूभयाभावात् । तथा सति यदग्रे,

'सोऽयं दीपोऽर्चिषां यद्वत्स्रोतसां तदिदं जलम् । सोऽयं पुमानिति नृणां मृषा धीर्गीर्मृषायुषाम्' इति ।

प्रत्यभिज्ञाया मिथ्यात्वम् । तदपि व्यर्थायुषामविवेकिनामेव तस्याः, न तूक्तरीतिकविवेकवतां प्रत्यभिज्ञाया इति न कोऽपि विरोध इति दिक् ॥ २५ ॥

नासतोऽदृष्टत्वात् ॥ २६ ॥ **एवमष्टभिर्वैनाशिकाभिमतं क्षणिकवादं निराकृत्य तदभिमताभावाद्भावोत्पत्तिं निराकरोतीत्याशयेन सूत्रमुपन्यस्य व्याकुर्वन्ति अपि चेत्यादि । अयमर्थः । 'नानुपमृद्य प्रादुर्भावात्' इति बुद्धसूत्रे बीजोपमर्दं विनाङ्कुरोत्पत्तेर्दुग्धोपमर्दं विना दध्युत्पत्तेर्मृत्पिण्डोपमर्दं विना घटोत्पत्तेरदर्शनान्नष्टेभ्य एव तेभ्यस्तत्तदुत्पत्तिदर्शनाच्च केवलोऽभाव**

रश्मिः ।

इति कल्पिताः । द्वाभ्यामिति एकादशे द्वाविंशेऽध्याये स्तः । तत्र 'त्वत्तः परावृत्तधियः स्वकृतैः कर्मभिः प्रभो । उच्चावचान् यथा देहान्गृह्णन्ति विसृजन्ति च । तन्ममाख्याहि' इत्युद्धवप्रश्ने भगवद्वाक्याभ्यामुत्तरभूताभ्याम् । **प्रतिक्षणेति** बहुव्रीहिः । **अवस्थाभेदवत्त्वं** वयोवस्थादिमत्त्वम् । **दीपेति** । **आदिशब्देन** जलतरङ्गः । **उक्तमिति** श्रीधरैरुक्तम् । **तदिति** क्षणिकत्वम् । **विशेषणम**वस्थाभेदवत्त्वम् । अवस्थाभेदवत्सर्वभूतरूपविमतमिति विशेषणत्वम् । तदभावप्रयुक्तविमताभावात् । नतु वयोवस्थादिमत्त्वविमतो**भयाभावात्** । 'वयोवस्थादयः कृताः' इति स्मरणात् । उभयाभावे विवक्षिते विमतवयोवस्थादयः कृता इति स्मरेत् । द्वादशस्कन्धेऽपि 'परिणामिनामवस्थाः' इति 'तात्त्विकोन्यथाभावः परिणामः' तद्वतामवस्था जन्मप्रलयहेतव इति परिणामकथनात्परिणामिनो नित्यत्वमेव न क्षणिकत्वमित्यवसेयम् । द्वादशस्कन्धनिबन्धे 'अतः परं द्वितीयस्तु जगदाश्रय उच्यते' इति जगदाश्रयप्रकरणस्य द्वितीयस्यावरणभङ्गे तु आत्यन्तिकं प्रलयं व्याख्यायाग्रे नित्यप्रलयस्तु कालिकावस्थाभेदकृतः स्फुट एवेत्युक्तम् । तत्र तु परिणामिनामवस्था यास्ता एव जन्मप्रलयाश्रयत्वेन हेतवः । नहि जन्मप्रलयावाश्रयं विहाय भवतः धर्मत्वादित्यर्थो ज्ञेयः । तेनैकदेशेनैकवाक्यत्वमित्युक्तम् । द्वादशस्कन्धे **श्रीमद्भागवते** चतुर्थाध्यायेपि 'नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परन्तप । उत्पत्तिप्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः संप्रचक्षते । कालस्रोतोजवेनाशु ह्रियमाणस्य नित्यदा । परिणामिनामवस्थास्ता जन्मप्रलयहेतवः । अनाद्यन्तवतानेन कालेनेश्वरमूर्तिना । अवस्था नैव दृश्यन्ते वियति ज्योतिषामिव' इति । **तथा सतीति** वयोवस्थादीनामेव कल्पितत्वेन भूतानां व्यावहारिकनित्यत्वे सति । द्वाविंशस्थमाहुः **सोऽयमिति** । **अविवेकिनामिति** नित्यदेत्यस्य स्थूलदृष्टीनाम् । **तस्या** इति प्रत्यभिज्ञायाः । **उक्तरीतिकेति** सूत्रव्याख्यानोक्तरीतिक**विवेकवताम्** । **दिगिति** स्थूलदृष्टीनामपि दृष्टान्तीयाशेषधर्मापत्तिः । चकारस्तु **पूर्वोक्त**हेतुभिः सहास्य हेतोः समुच्चायकः स्पष्ट इति भाष्यादौ तदर्थो नोक्तः ॥ २५ ॥

नासतोऽदृष्टत्वात् ॥ २६ ॥ **नष्टेभ्य एवेति** अपक्षयं प्राप्तेभ्यः[1] । 'किमत्र पश्यसि न

१. ध्वस्तेभ्यः ।

कार्यं स्यात् तन्न । अदृष्टत्वात् । न हि शशशृङ्गादिभिः किंचित् कार्यं दृश्यते ।

भाष्यप्रकाशः ।

एवावशिष्यत इत्यभावादेव भावोत्पत्तिरिति मन्यन्ते । तथा सत्यसतोऽलीकादेव कार्यं स्यात् । यदि हि बीजादिप्रतियोगिकादभावादङ्कुराद्युत्पत्तिरिष्यते तदा तस्याभावस्य बीजादिध्वंसरूपत्वेन तदवस्थाविशेषरूपतयाऽवस्थाविशेषविशिष्टाद् बीजादेरेवोत्पत्तिरिति स्यादतस्तदभावाय वैनाशिकेन निःस्वभावादेवाभावाद्भावकार्योत्पत्तिरङ्गीकार्या । तथा सति तस्याभावस्य निःस्वभावतया शशशृङ्गतुल्यत्वादलीकादेव कार्योत्पत्तिरिति सिद्ध्यति । तच्चासंगतम् । दृष्टविरोधात् । न हि तादृशात् कार्योत्पत्तिः क्वापि दृष्टा । न वा तादृशोऽभावः क्वापि दृष्टः । नाप्यनुमातुं शक्या । यदुत्पद्यते तदभावजन्यं यथा बीजाद्युपमर्दादङ्कुरादीति प्रयोगे दृष्टान्तस्यावस्थाविशेष एव पर्यवसानेन त्वदभिमताभावासाधकत्वात् । तादृशादभावाद्भावोत्पत्त्यङ्गीकारश्च सर्वत्र सर्वतः सर्वोत्पत्तिप्रसङ्गादपि बाधितः । किंच । अभावाद्भावोत्पत्तौ कार्यमभावान्वितं दृश्येत । सर्वस्य कार्यस्य कारणान्वितत्वदर्शनात् । किंच । उपमृद्य प्रादुर्भावोऽपि न सार्वत्रिकः । सुवर्णजन्यकटकादौ तन्तुजन्यपटादौ च तददर्शनात् । एवं चाङ्कुरादावपि बीजस्थूलांशस्यैवोपमर्दो न तु सूक्ष्मांशस्य । तदन्तस्त एव सूक्ष्मांशानामङ्कुरीभावात् । अतः

रश्मिः ।

किमपि भगवः' इति श्रुतिसाहाय्यादेवकारः । ततश्चेति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तथा सतीति** । अभावं निश्चिन्वन्ति स्म **यदि हीति** । **बीजाद्यभाव** इत्यत्र **बीजादीति** । अभावत्रयासंभवाद् ध्वंस उपात्तः । अङ्कुरादिप्रागभावो यद्यपि संभवति तथापि तत्खण्डनान्नास्ति स इति ज्ञेयम् । सहकारिकारणाभावान्न प्रागभावः प्रतीतिविषयो वा । **तदवस्थेति** बीजावस्था**विशेषरूपतया** । एवमेव सर्वोपि प्रत्येति कार्यस्थितिप्रतिकूलां कारणावस्थां पश्यन्निह घटो ध्वस्त इति । **तदभावायेति** भावादुत्पत्त्यभावाय । **निःस्वभावादिति** निरन्वयात् । सूत्रार्थविवरकं **तच्चेति** भाष्यं विवरीतुमाहुः **तच्चेति** । **अदृष्टत्वादि**त्यत्र विरोधो नञर्थः अधर्म इतिवत्, अन्ये स्वभावमात्रं नञर्थः अब्राह्मण इत्यादयस्त्वार्थिकार्थं स्पृशन्तीति वदन्ति तदाहुः **दृष्टेति** । **नहीत्यादि** भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **नहीत्यादिना** । **तादृशादिति** अलीकात् । **तादृश** इति निःस्वभावः । दीपनाशस्याप्यनिरन्वयत्वात् स्वकारणे वायौ लयात् । **अनुमातुमिति** यदुत्पद्यते तदभावजन्यमुत्पद्यमानत्वात् यथा बीजाद्युपमर्दादङ्कुरादि, इत्यनेनानुमानेनानुमातुम् । व्याप्तिमनूद्य दृष्टान्तमनुमानरचनायाहुः **पर्यवेति** । उपमर्दस्य ध्वंसरूपत्वात् । **त्वदभीति** निरन्वयनाशसाधकत्वात् । **दृश्येतेति** समवायित्वादभावस्य दृश्येत । **कारणेति** समवायिकारणेत्यर्थः । **उपमृद्येति** ध्वंसं प्राप्य । ननु न सुवर्णमनुपमृद्य कटकादि दृश्यत इत्यत आहुः **तन्तुजन्येति** । **तददर्शनादिति** तन्तुसुवर्णयोरुपमर्दादर्शनात् । बीजादावुपमर्दः षड्भावविकारान्तर्गतापक्षय एव न निरन्वयो नाश इत्याहुः **एवं चेति** । **न तु सूक्ष्मेति** । न च 'किमत्र पश्यसीति न किंचन भगवः' इति श्रुतिविरोध इति वाच्यम् । न भावयितुं केनापि शक्य इत्यभाव इति व्युत्पत्तेः सूक्ष्मांशानामभावरूपत्वात् । एतदेवाहुः **तदन्तस्त** इति तसिलन्तम् । सार्वविभक्तिकत्वात्तदन्तर्गतानामित्यर्थः । इदं तु पत्रनवदलेष्वभावरूपसमवायिशून्येषु दृश्यते । अभावस्तु न दृश्यतेऽत आहुः **अङ्कुरीभावादिति** । **अत** इति मूलाद्युत्पत्तावपि मूले वैलक्षण्योपलब्धेः ।

एवं सतः कारणत्वं पूर्वपाद उपपाद्यासतः कारणत्वं निराकृत्य व्यासचरणैर्वेदानामव्याकुलत्वे संपादितेऽपि पुनर्दैत्यव्यामोहनार्थं प्रवृत्तस्य भगवतो बुद्धस्याज्ञया

'त्वं च रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय ।
अतथ्यानि वितथ्यानि दर्शयस्व महाभुज ।
स्वागमैः कल्पितैस्त्वं च जनान् मद्विमुखान् कुरु'

इत्येवंरूपया, महादेवादयः स्वांशेनावतीर्य वैदिकेषु प्रविश्य विश्वासार्थं वेदभागान् यथार्थानपि व्याख्याय सदसद्विलक्षणामसदपरपर्यायामविद्यां सर्व-

भाष्यप्रकाशः ।

संस्थानमात्रस्यैव निवृत्तिर्न तु द्रव्यस्येति । तत्र बीजद्रव्यं कूटस्थमेवावयवद्वारा कारणम् । एवं दध्यादावप्यवस्थाभेद एवेत्यभावाद्भावोत्पत्तिः सर्वथानुपपन्नैवेति सिद्धम् । एवमसत्कारणवादनिराकरणेन मायावादिप्रतिपन्नाविद्याकारणवादनिराकरणमप्यर्थादेव सिद्धमित्याहुः एवं सत इत्यादि । अत्र बुद्धाज्ञायां प्रमाणं वक्तुं, त्वं च रुद्र इत्यादिवाक्योपन्यासः । इदं वाक्यं वाराहपुराणे रुद्रगीतासु रुद्रेणागस्त्यं प्रति सर्वदेवादीनप्युद्दिश्य भगवदाज्ञारूपमनूदितम् । द्वितीयं, स्वागमैरिति तु पद्मपुराणोत्तरखण्डे सहस्रनामारम्भे महादेवेन पार्वतीं प्रत्युक्तम् । इत्येवंरूपयेत्यादिनोत्तरखण्डीयानां शंकरेण पार्वतीं प्रत्येवोक्तानां,

'शृणु देवि प्रवक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमम् । येषां श्रवणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि ।
प्रथमं हि मयैवोक्तं शैवं पाशुपतादिकम् । मच्छक्त्यावेशितैर्विप्रैः संप्रोक्तानि ततः परम् ।
कणादेन तु संप्रोक्तं शास्त्रं वैशेषिकं महत् । गौतमेन तथा न्यायं सांख्यं तु कपिलेन वै ।
धिषणेन तथा प्रोक्तं चार्वाकमतिगर्हितम् । दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्धरूपिणा ।
बौद्धशास्त्रमसत् प्रोक्तं नग्ननीलपटादिकम् । मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते ।
मयैव कथितं देवि कलौ ब्राह्मणरूपिणा । अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयल्लोकगर्हितम् ।
कर्मस्वरूपत्याज्यत्वमत्रैव प्रतिपाद्यते । सर्वकर्मपरिभ्रष्टं वैकर्मत्वं तदुच्यते ।
परेशजीवयोरैक्यं मयाऽत्र प्रतिपाद्यते । ब्रह्मणश्च परं रूपं निर्गुणं वक्ष्यते मया ।
सर्वस्य जगतोऽप्यत्र मोहनार्थं कलौ युगे । वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम् ।
मयैव वक्ष्यते देवि जगतां नाशकारणात्' इत्यादीनाम्

रश्मिः ।

संस्थानेति अवयवसंस्थानमात्रस्य । **कूटस्थमिति** तदुक्तं सर्वोपनिषदि 'ब्रह्मादिपिपीलिकापर्यन्तं सर्वप्राणिबुद्धिरष्टविशिष्टतयोपलभ्यमानः सर्वप्राणिबुद्धिस्थो यदा तदा कूटस्थ इत्युच्यते' इति । 'बीजं मां सर्वभूतानाम्' इति गीता । अवयवा आकाशरूपाः । 'आकाशशरीरं ब्रह्म' इति श्रुतेः । श्रुतिसत्त्वादेवकारः । **अवस्थेति** विकारो दुग्धावस्थाविशेषो घटे मृत्पिण्डावस्थाविशेष इत्यर्थः । **असतः** कार्यं न भवति **अदृष्टत्वादिति** सूत्रार्थः । **बुद्धाज्ञायामिति** दैत्यव्यामोहार्थं प्रवृत्तस्य भगवतो बुद्धस्याज्ञायाम् । **इत्यादीनामिति** आदिपदेन 'द्विजन्मना जैमिनिना पूर्वं वेदमपार्थकम् । निरीश्वरेण वादेन कृतं शास्त्रं महत्तरम्' । 'शास्त्राणि चैव गिरिजे तामसानि-

१. भूमिरापोनलो वायुः खं मनो बुद्धिरित्यत्रोक्ता अष्ट । २. विषयतया ।

कारणत्वेन स्वीकृत्य तन्निवृत्त्यर्थं जातिभ्रंशरूपं संन्यासपाषण्डं प्रसार्य सर्वमेव लोकं व्यामोहितवन्तः । व्यासोऽपि कलहं कृत्वा शंकरं शप्त्वा तूष्णीमास । अतोऽग्निना मया सर्वतः सदुद्धारार्थं यथाश्रुतानि श्रुतिसूत्राणि योजयता सर्वो मोहो

भाष्यप्रकाशः ।

वाक्यानामर्थः संगृहीतः । असदपरपर्यायामित्यनेनैतत्सूत्रोक्तदूषणदूष्यता स्फुटीकृता । व्यासकलहादिकं तु,

'व्यासो नारायणः साक्षाच्छंकरः शंकरः स्वयम् । तयोर्विवादे संप्राप्ते किंकरः किं करोम्यहम्' इति

तत्संप्रदाये प्रसिद्धाद् गणेशोक्तात् ।

'वासना यदि भवेत् फलदात्री किं करिष्यति तदा मम काशी ।
व्यापको यदि भवेत् परमात्मा तारकं किमिति नोपदिशेन्माम्' इति ।

कीकटे मरणावसर उक्ताच्छंकराचार्यश्लोकाच्चावगन्तव्यम् । शेषं स्फुटम् । एवं च

रश्मिः ।

निबोध मे' इति ग्राह्यम् । **स्फुटीकृतेति** अन्यदपि भाष्ये । **तन्निवृत्त्यर्थ**मित्यादि अविद्यानिवृत्त्यर्थम् । 'वेदान्तविज्ञान' इति श्रुत्या **संन्यासः** स **पाषण्डं** पापस्य खण्डम् 'त्रिदण्डं परिगृह्णीत सर्वशास्त्राविरोधि तत्' इत्येकदण्डे पापस्य खण्डम् । 'श्रुतिस्मृत्युक्तमाचारं यस्तु नाचरति द्विजः । स पाषण्डीति विज्ञेयः सर्वलोकेषु गर्हितः' इति पाद्मात् । विकर्मत्वात् 'धर्मेण पापमपनुदति' इति श्रुत्यविषयत्वेन पापखण्डसमन्वितत्वं संन्यासे । अस्माकं तु प्रतिमासेवाख्यं कर्मास्त्येव, परं मानसमूर्तेः । तच्च कीदृशं **जातिपरिभ्रंशरूपम्,** जातेर्ब्राह्मण्यरूपायाः परितो भ्रंशस्तस्य रूपं यत्रेति । 'सप्ताहाच्छूद्रतां व्रजेत्' इति वाक्ये सप्ताहसन्ध्याऽकरणे ब्राह्मण्यपरिभ्रंशोक्तेः । तदुक्तम् । सर्वकर्मपरिभ्रष्टमिति । लौकिकी व्युत्पत्तिस्तु षण दाने भ्वादिः । 'ञमन्ताड्डः' इति सूत्रेण डप्रत्ययः औणादिकः । षण्डः संघातः । बाहुलकाद्धात्वादेः षस्य सत्वाभावः । तालव्यादिरयमिति केचित् । **सर्वमेवे**त्यादि उक्तवाक्येभ्यः । **ममेति** वासनावासितस्य । **तारक**मिति 'रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति' इति **जाबाले** रुद्रस्य तारकब्रह्मोपदेशकत्वं श्रूयते । **अतिरोहितार्थ**मिति । तदित्थम् । **अतोग्निने**त्यादि । यतो व्यामोहार्थं रुद्रः सृष्टौ सत्यां क्रीडति अतो द्वितीयरुद्रो मोक्षक्रीडार्थमग्निरूपः । रुद्रोग्निरग्नी रुद्र इति । 'कस्मादुच्यते रुद्रो यस्मादृषिभिर्नान्यैर्भक्तैर्द्रुतमस्य रूपमुपलभ्यते । तस्मादुच्यते रुद्रः' इत्यथर्व**शिर** उपनिषदः । सर्वत इत्याद्यर्थः युक्तः । तेन **मया** 'पूर्णा भगवदीयास्ते शेषव्यासाग्निमारुताः, अग्निरूपत्वम् । 'यो यच्छ्रद्धः स एव सः' इति वाक्यात् । **सर्वत** इति 'मुक्तस्य कार्यमेतद्धि मुमुक्षोर्भवनाशकम् । विषयोत्तमतश्चापि विरक्तोस्मिन्पतेद् ध्रुवम्' इति सुबोधिन्याम् । अत्र च 'नानामतध्वान्तविनाशनक्षमो वेदान्तसिद्धान्तविकाशने पटुः । आविष्कृतोयं भुवि भाष्यभास्करो मुधा बुधा धावत नान्यवर्त्मसु' इति । **सर्वो मोह** इति । अत एव 'हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्ना भवसागरे । ये निरुद्धास्त एवात्र मोदमायान्त्यहर्निशम्' इति । तथा च हरिणा ये निरुद्धास्तेषां मोहो निराकृत इत्यर्थः । दैवीसंपद्वतां वा सर्वो मोहो निराकृतः । तदुक्तम् 'अयमेव महामोहो हीदमेव प्रतारणम् । यत्कृष्णं न भजेत्प्राज्ञः शास्त्राभ्यासपरः कृती' इति । विगतमोहाः श्रीमत्प्रभ्वादयः मर्यादायाम् । विद्वन्मण्डने 'अतो मर्यादायामेव स्थेयम्'

निराकृतो वेदितव्यः । प्रथमाध्याय एव तन्मतमनूद्य विस्तरेण निराकृतमिति नात्रोच्यते ॥ २६ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

पञ्चमस्कन्धीयेषु जडभरतवाक्येषु, 'अयं जनो नाम चलन् पृथिव्याम्' इत्यनेनावयवित्वमभिमानमात्रादेवेत्युक्त्वा,

'एवं निरुक्तं क्षितिशब्दवृत्तमसंनिधानात् परमाणवो ये ।
अविद्यया मनसा कल्पितास्ते येषां समूहेन कृतो विशेषः'

रश्मिः ।

इत्युक्तेः । 'अस्मत्कुलं निष्कलङ्कं श्रीकृष्णेनात्मसात्कृतम्' इति स्तोत्रे । पुष्टौ तु द्वादशाध्यायोक्ता 'वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः' इत्युक्ताः । सर्वात्मभावे मर्यादायामम्बरीषप्रभृतयः । पुष्टौ व्रजरत्नप्रभृतयः । सल्लक्षणं च तैत्तिरीये 'अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुः' इति । **प्रथमाध्याय** इति तृतीयपादे दहराधिकरणे । आचार्यान्तरेभ्य उत्कर्षसाम्यं वल्लभाष्टकविवृतिविवृतौ ग्रन्थकृद्भिरेवोक्तमित्येवं शेषं स्फुटमित्यर्थः । **पृथिव्यामिति** जनरूपविकारवत्याम् । **परमाणुपुञ्जादिति । क्षितिशब्दस्य वृत्तं** प्रतिपादकतया वर्तनं यत्र । तदपि **क्षितिवस्तु । असत्सु** सूक्ष्मपरमाणुषु स्वकारणेषु **निधानाल्लयात्** । अतः परमाणुव्यतिरेकेण क्षितिरपि न देहादिरपि नास्तीति पूर्वार्धात्तथेत्यर्थः । **यदुक्तमिति** अवयविखण्डनं यदुक्तं तदवयविखण्डन**मपि बाहिर्मुख्यं गमिष्यतीत्येतदर्थं** वैराग्यार्थमित्यन्वयः । अयमर्थः । द्वादशेऽध्याय इदमस्ति । अध्यायार्थस्तु वैराग्यम् । 'ततो वैराग्यमुत्कृष्टं परोक्षकथनेऽपि च । योगवैराग्यबाहुभ्यां भक्तिरत्र निरूपिता । परोक्षकथनं सर्वमधिकारिपरीक्षकम् । रहूगणस्याधिकारो यादृशश्च परीक्षिति' इति पञ्चमस्कन्धनिबन्धात् । ततोऽग्रेपि द्वादशेध्यायेऽवान्तरप्रकरणविचारे षष्ठेऽध्याये परोक्षकथनेपि वैराग्यं तत्साधनत्वेनोक्तम् । भगवत्येव रागजननादुत्कृष्टमिति निबन्धार्थः । षडध्यायी कृष्णेन स्वरूपस्थितिनिरूपणम् । अग्रे योगेन स्वरूपस्थितिप्रकरणं पञ्चदशाध्यायपर्यन्तम् । अग्रे देशस्थितिप्रकरणं षड्विंशत्यध्यायपर्यन्तमिति प्रकरणत्रयं षड्विंशत्यध्यायाः । न च योगवैराग्यबाहुभ्यां भक्तिरत्रनिरूपितेति निबन्धे । अत्रोपदेशफलितमाह सर्वत्रोपसंहारे । 'रहूगण' इत्यादिना त्रयोदशे । 'गुरो हरेश्चरणोपासनास्त्रः' इति एकादशे । 'हरिं तदीहाकथनश्रुताभ्याम्' इति द्वादशसमाप्तौ । 'हरिसेवया शितं ज्ञानासिम्' इति प्रथमस्यावयवस्तैर्वाक्यैर्भक्तिनिरूपणात्तस्या एव प्राधान्यम् । तेन भगवच्छास्त्रानुसारी योग इति युक्तम् । तदुक्तं भगवता 'योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना । श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः' इति । तथा च भगवति मनोनिग्रहस्तदत्र वैराग्यमेतत्सहितस्तत्र स्नेहोऽत्र कर्तव्यत्वेनोक्तः । साधकत्वेन बाहुत्वमिति तत्त्वदीपे च । भक्तिर्वैराग्यशेषिणी निरूप्यतेऽत्राध्याय इत्यवैराग्यमध्यायार्थ इति शङ्क्यम् । भक्तिजनकसंहितायां भक्तेरविशेषेण शास्त्रे प्राधान्याद्वैराग्ये विशेषेण प्राधान्यस्याक्षतेः । इह परोक्षवादप्रयोजनं वदंस्तदन्यत्राप्यतिदिशति 'परोक्षकथनं सर्वमधिकारिपरीक्षकम्' इति । परोक्षकथनमेकादशेऽध्याये । अत्र परीक्षाफलितमाह 'रहूगणस्याधिकारो यादृशश्च परीक्षिति' तज्ज्ञापकमाह 'अतः परोक्षशब्दानां व्याख्यानं पृष्टवान्नृपः' न तूक्तार्थावबोधनं हि मुख्याधिकारः । स च व्याख्यानेऽत्रापि तुल्य इत्यत आह 'वर्णितो बोध एव स्यान्नाधिकारस्तु सिध्यति' इति । यथा कयाचिद्विरहिण्या तादृशीमेव प्रीतिमत्सपत्नीं प्रति स्वैरचारी मधुपः संप्रति दहतीत्युक्ते कयाचित्पृष्टयान्यया प्रियपरत्वेन व्याकृतेपि न तद्विप्रयोगरसविशेषानुभवोधिकाररूपप्रीत्यभावात्तटस्थायास्तस्या न वा प्रीत्युत्पत्तिस्तद्वे-

भाष्यप्रकाशः ।

इत्यनेन परमाणुपुञ्जाद्विशेषाख्यदेहोत्पत्तिः, परमाणूनामविद्याकल्पितत्वं च यदुक्तं तदपि रहूगणस्य बाहिर्मुख्यं दूरीकर्तुम् । बहिर्मुखप्रतिपन्नाविद्याकल्पितपरमाणुकारणवादस्यानुपपन्नत्वात्तमादाय बहिर्मुखव्यवहारविषयस्य प्रपञ्चस्य हेयत्वे बोधिते बाहिर्मुख्यं गमिष्यतीत्येतदर्थं, न तु कारणतत्त्वबोधनार्थम् । तदर्थमप्रवृत्तत्वात् । अत एवाग्रे निगमनावसरे, 'ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकम्' इत्यादिभिर्ब्रह्मस्वरूपतद्दुष्प्रापत्वभगवद्विषयकमतिप्राप्त्युपायस्वजन्मत्रयवृत्तान्तान्यु(नु)क्त्वा ।

'तस्मान्नरोऽसङ्गसुसङ्गजातज्ञानासिनैवेह विवृक्णमोहः ।
हरिं तदीहाकथनश्रुताभ्यां लब्धस्मृतिर्यात्यतिपारमध्वनः'

रश्मिः ।

ह्यपि । किंच न बोधकृतोधिकारः किंतु वैपरीत्यं 'अधिकारकृतो बोधः' इति बोधोधिकारज्ञापकः परमिति भावः । परीक्षार्थमेव तथोक्तिरित्यत्र प्रमाणमाह 'अतः स्कन्धत्रये प्रोक्तं परोक्षकथनं तथा 'आदावबोधो मध्येन सुगमत्वाद्धि बुध्यते । उत्तमस्त्वधिकारोऽग्रे तेन कूटनिरूपणम्' इति । चतुर्थादित्रयेण तथा तत्परीक्षकमित्यर्थः । अधिकाराज्ञापकपरमिति भावः । परीक्षार्थमेव तथोक्तिरित्यत्र प्रमाणमाह 'अतः स्कन्धत्रये प्रोक्तं परोक्षकथनं तथा' । अधिकारस्त्रिविधो यतोऽतस्तथा । तत्रादौ प्राचीनबर्हिषः कर्मासक्त्या हीनाधिकारत्वादबोध उक्तः । तत्त्वजिज्ञासासत्त्वेपि कर्मासक्त्यभावेप्यभिमानसत्त्वात्त्यागाभावादुपदेशार्थमपि राजसभावेन चलनाच्च रहूगणो मध्यमाधिकारी । सोपि 'दुरत्ययेऽध्वनि' 'रजस्तमःसत्त्व' इत्यादिना सुगमत्वेनोक्तमिति बुद्धवान् । कूटवाक्यबोधे त्वस्य नाधिकारः । हर्यश्वानां मुक्तत्वादुत्तमाधिकारस्तेन तथा । तर्हि व्याख्यानं व्यर्थमत आह 'रहूगणोत्तमत्वाय व्याख्यानं तेन यत्स्वतः । बुद्धं तत्रापि निःशङ्कं तद्वाक्यं जगृहे पुनः' इति तत्परीक्षितस्तात्पर्यज्ञानार्थमित्यर्थः । क्वचित्तु तारतम्यज्ञानार्थमिति पाठः । तेन रहूगणेन यत्स्वतो व्याख्यानं विना बुद्धं तदत्र व्याख्यातमिति योजना । निःशङ्कं मननानपेक्षमित्यर्थः । शिष्योत्तमतोक्त्यैव तत्प्रयोजकगुरोरपि तत्त्वमुक्तमेवेत्याह 'भरतस्योत्तमत्वं च तेनैवोक्तमिति स्थितिः' इति । यद्वा तेनैव रहूगणेनैवेत्यर्थः । 'नमो नमः कारण' इति 'अहो नृजन्म' इत्यादिना चेति शेषः । यद्वा राजजन्मनः उत्तमत्वं शुकेनैव भरतस्त्वित्यादिनोक्तमित्यर्थः । तज्ज्ञानोक्तिप्रयोजनमाह 'तस्य जन्मत्रयं तत्र द्वयं व्यर्थं न सर्वथा । अतो जन्मद्वयोत्कर्षस्तस्यैवं विनिरूपितः' इति । अमुक्त्या तद्वैयर्थ्यशङ्का । ततोधिकरसरूपभक्तिसाधकत्वेन तदभावः । आद्यन्तयोः प्रियव्रतविरजयोरुत्तमत्वकथनेन संदंशन्यायेन सर्वेषां तथात्वमुक्तं भवतीत्याह 'तस्य पुत्रस्तु पाषण्डेप्यत्यन्तं फलदायकः । कृपावेशी गयश्चापि तद्वंशेऽवततार ह । सर्व एवोत्तमा वंशे ततोन्तिमकथा तथा' इति । एवं च रहूगणस्य मध्यमाधिकारार्थं प्रति परमाणुपुञ्जकारणवादः **परमतभाषेति** तदेतदुक्तम् । **तदपीति बाहिर्मुख्यमिति** । तथा च मध्यमाधिकारी रहूगणः परीक्षितवत् । **बहिर्मुखेति** वेदबहिर्मुखसौगतेत्यर्थः । **एतदर्थमिति** प्रपञ्चस्य नित्यत्वेन वस्तुत्वबोधनेऽवयविमण्डनं भवति तदा तु राजसस्य रहूगणस्य तत्रासक्त्या वैराग्ये नोपकुर्युरिमे श्लोका इति भावः । **तदर्थमिति** । किंतु 'अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्तमाख्याहि' इति रहूगणप्रश्नादेकादशोक्तस्थवाक्यान्याख्यातुं ब्राह्मणस्य प्रवृत्तत्वादित्यर्थः । **अग्र इति** द्वादशाध्याये एव । **ब्रह्मस्वरूपेत्यादि** 'रहूगणैतत्तपसा न याति' इति दुष्प्रापत्वेत्यर्थः । 'विना महत्पादरजोभिषेकम्' इति रजोभिषेकजपापाभावं विना दुष्प्रापत्वं बोध्यम् । **भगवद्विषयकेति** 'यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः' इत्यनेन । **स्वजन्मेति** । 'अहं पुरा भरतो नाम राजा' इति द्वयेन ।

उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः ॥ २७ ॥

यद्यभावाद् भावोत्पत्तिरङ्गीक्रियते तथा सत्युदासीनानामपि साधनरहितानां सर्वोऽपि धान्यादिः सिद्ध्येत। अभावस्य सुलभत्वात् ॥ २७ ॥

इति द्वितीयाध्याये द्वितीयपादे चतुर्थं समुदाय उभयहेतुकेपीत्यधिकरणम् ॥ ४ ॥

नाभाव उपलब्धेः ॥ २८ ॥ (२-२-५)

एवं कारणासत्त्वं निराकृत्य विज्ञानवाद्यभिमतं प्रपञ्चासत्यत्वं निराकरोति।

भाष्यप्रकाशः

इत्यनेन पूर्वोक्तज्ञानस्य मोहनिवारकत्वमुक्त्वा श्रुत्यादिसिद्धभगवच्चेष्टाकथनश्रवणाभ्यां मुख्यज्ञानलाभं भगवत्प्राप्तिरूपां मुक्तिं चाह, न तु पूर्वोक्तरीतिकज्ञानेनेति न कोऽपि विरोध इति बोध्यम् ॥ २६ ॥

उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः ॥ २७ ॥ उदासीनानामपि साधनरहितानामिति कृष्यादिकर्मतत्साधनीभूतहलादिसाधनशून्यानाम्। निगदव्याख्यातमिदम् ॥ २७ ॥ ४ ॥

इति चतुर्थमुभयहेतुकेपीत्यधिकरणम् ॥ ४ ॥

नाभाव उपलब्धेः ॥ २८ ॥ दशभिर्वैभाषिकसौत्रान्तिकयोर्मते निराकृते विज्ञानवाद्यपि कारणांशे निराकृत एव। तथापि कार्यांशे तन्मतं पूर्वस्माद् विलक्षणमिति तन्निराकरणमातनोतीत्याशयेनाहुः एवं कारणेत्यादि। विज्ञानवाद्येव योगाचार इत्युच्यते। तत्स्वरूपं भास्कराचार्यैरुक्तम्। 'शमथविपश्यनायुगनद्धवाही मार्गो योगः' इति तेषां योगलक्षणम्। शमथः समाधिरुच्यते। विपश्यना सम्यग्दर्शनम्। यथा युगनद्धौ बलीवर्दौ वहतस्तथा यो मार्गः सम्यग्दर्शनवाही स योगस्तेनाचरतीति योगाचार इति। तेषां सम्यग्दर्शनं च सर्वं बाह्यार्थशून्यं विज्ञानमेव, सर्वं क्षणिकं सर्वं निरात्मकमिति। तत्र सर्वक्षणिकत्वं, विज्ञानस्कन्धस्य क्षणिकत्वात्। निरात्मकत्वमालयविज्ञानातिरिक्तात्माभावात्। बाह्यार्थशून्यत्वं तु ज्ञानस्यैव साकारत्वात्। तत्साकारत्वं तु ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदेनैकस्यैव प्रत्यक्षतया प्रकाशमानत्वात्। न चैवं त्रिधा प्रकाशनेपि नानात्वम्। प्रमदातनुवदुपपत्तेः। तदुक्तम्

रश्मिः।

मुख्येति 'लब्धस्मृतिः' इत्यनेन। भगवत्प्राप्तीति 'अध्वनोत्यन्तं पारं याति' इत्यनेन। आहेति ब्राह्मण आह। पूर्वोक्तेति कारणतत्त्वबोधेन। तथा च यदर्थं प्रवृत्तस्तेनैव मुक्तिरिति भावः। न कोपीति सप्तमस्कन्धे पञ्चदशे 'अबाधितोपि ह्याभासो यथा वस्तुतया स्मृतः। दुर्घटत्वादैन्द्रियकं तद्वदर्थविकल्पितम्' इत्यादिनावयविखण्डनं तत्राप्येवं न्यायः प्रचरतीति न कोपीत्यर्थः ॥ २६ ॥

उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः ॥ २७ ॥ निगदेति सिद्ध्येतेति छान्दस आत्मनेपदं, सिध्येत् ॥ २७ ॥ इति चतुर्थमुभयहेतुकेत्यधिकरणम् ॥ ४ ॥

नाभाव उपलब्धेः ॥ २८ ॥ विलक्षणमिति प्रपञ्चानन्यत्वं प्रपञ्चस्य विज्ञानानन्यत्वम्। वहत इति रथम्। सम्यगिति सम्यग्दर्शनस्य वाही। तत्रेति सर्वविज्ञाने। ग्राह्येति ग्राह्यग्राहको विषयेन्द्रियात्मा रूपस्कन्धः संवित्तिर्विज्ञानस्कन्धस्तयोर्भेदेनैकस्य विज्ञानस्कन्धस्य। प्रमदेति

स च ज्ञानातिरिक्तः प्रपञ्चो नास्तीत्याह तन्न। अस्य प्रपञ्चस्य नाभावः। उपलब्धेः। उपलभ्यते हि प्रपञ्चः।

भाष्यप्रकाशः।

'बुद्धिस्वरूपमेकं हि वस्त्वस्ति परमार्थतः। प्रतिभासस्य नानात्वान्न चैकत्वं विहन्यते।
परिव्राट्कामुकशुनामेकस्यां प्रमदातनौ। कुणपः कामिनी भक्ष्यमिति तिस्रो विकल्पनाः।
तथाप्येकैव सा बाला बुद्धितत्त्वं परं हि नः' इति।

एवं च नीलं पीतं स्तम्भः कुड्यमित्यादौ तेन तेन रूपेण ज्ञानमेव प्रकाशत इति सर्वे तस्यैवाकारा अनादिवासनयैव विचित्रा भासन्ते। तस्मादाकारसमर्पणाय न बाह्यार्थाङ्गीकारो युक्तः। किंच। यदैव नीलज्ञानं तदैव नीलमुपलभ्यत इति सहोपलम्भादपि ज्ञानार्थयोरभेदः। तदुक्तं, सहोपलम्भनियमादभेदो नीलतद्धियोः' इति। नच नीलादीनां बाह्यत्वेन ज्ञानस्य चान्तरत्वेन भिन्नदेशत्वात् कथं ज्ञानाकारत्वमिति शङ्क्यम्। स्वप्नादिवदभिमानमात्रेणोपपत्तेः। तथाचानुमानम्। स्तम्भादिप्रत्ययाः स्वात्मांशमेव बाह्यतयाऽध्यवस्यन्तो मिथ्याभूताः। प्रत्ययत्वात्। स्वप्नप्रत्ययवत्। शुक्तिरजतप्रत्ययवद्वेति। स्वप्नादिप्रत्यया हि बाह्यार्थाभावाद्देशान्तरकालान्तरवर्तिनां च संनिहितदेशकालतया प्रतिभासासंभवात् क्वचित् कदाचिदप्यदृष्टानां स्वशिरश्छेदादीनां प्रतिभासादवश्यं स्वात्मानमेव बहिर्गृह्णन्तीत्यभ्युपगन्तव्यम्। अतस्तत्सामान्याज्जाग्रज्ज्ञानानामपि स्वात्मांशग्राहित्वं मिथ्यात्वं चेति। तस्मान्नास्ति बाह्यः पदार्थ इति तदेतदभिसंधायाहुः स चेत्यादि। एवमनूद्य तद्दूषणं व्याकुर्वन्ति तन्नेत्यादि। अयमर्थः। यत् त्वया ज्ञानं साकारमिष्यते तत् किं सर्वाकारं यत्किंचिदाकारं वा। आद्ये ग्राह्यग्राहकसंवित्तिवत् सर्वानेव ग्राह्याकारान् युगपदेव प्रकाशयेत्। बाह्यार्थानपेक्षत्वात्। द्वितीये त्वेकमेवाकारं सर्वदा प्रकाशयेन्न कदापीतरम्। न च समनन्तरप्रत्ययाकारात् कादाचित्कत्वसिद्धिः। उक्तदूषणस्य तत्प्रवाहेऽपि तौल्यात्। अतस्तत्तदाकारप्रतीतेः कादाचित्कत्वो-

रश्मिः।

यथा प्रमदातनावेकस्यां परिव्राट्कामुकशुनां देहकामिनीभक्ष्याणां प्रकाशनं तथा। बुद्धीति बुद्धिश्च स्वरूपं च तयोः समाहारो बुद्धिस्वरूपं विज्ञानस्कन्धो रूपस्कन्धश्च वस्त्वालयविज्ञानं न इत्यभ्युपगमः। तेन तेनेति नीलादिना आकृत्यनङ्गीकारात्। विचित्रा इति नीलादयः। बाह्येति सदर्थाङ्गीकारः। स्तम्भादीति स्तम्भादिविज्ञानस्कन्धाः, स्वात्मांशं विज्ञानस्कन्धस्वरूपस्यांशोवयवस्तम्। बाह्यतया स्तम्भादितया। स्वप्नादीति। बहिर्गृह्णन्तीत्यनेनान्वेति। मिथ्यात्वं चेति। अनेन शुक्तिरजतदृष्टान्तोऽपि स्फुटीकृतः। उपलब्धेरिति भाष्यस्योपलब्धिविषयत्वादित्यर्थात्प्रपञ्चस्य। सतो ज्ञानातिरेकं स्मारयन्ति स्म अयमर्थ इत्यादिना। सर्वेति सर्वे आकारा यस्येति सर्वाकारम्। ग्राह्येति विषयाकारान्। प्रकाशयेदिति तथाच, दृष्टविरोधो द्रष्टुः सर्वज्ञतापत्तिश्चेति भावः। बाह्येति विषयेत्यर्थः। विषयापेक्षत्वे त्वात्माश्रयात्। विषयस्यापि ज्ञानत्वात्। इतरमिति घटस्य द्रष्टुः पटादर्शनप्रसङ्ग इति भावः। समनन्तरेति संस्कारस्कन्धाद्विलक्षणप्रत्ययप्रवाहरूपात्। कादाचित्कत्वेति यादृशो धर्मोऽधर्मश्च तादृश एव ज्ञानाकार इति कादाचित्कत्वसिद्धिः। उक्तेति इतरेतरद्धत्र उक्तस्य क्षणिकत्वेन विज्ञानस्य न वेदनास्कन्धसंबन्ध इत्यस्य। तत्प्रवाहे संस्कारप्रवाहेपि विज्ञानस्कन्धसंबन्धाभावात्तौल्यात्। न च वासनावैचित्र्यादुपपत्तिः। सर्वमेव वैचित्र्यं युगपदेव प्रकाशयेत्। द्वितीये तु न कदापीतरम्। तत्तदाकारेति घटपटाद्याकारप्रतीतेः।

यस्तूपलभमान एव नाहमुपलभ इति वदति स कथमुपादेयवचनः स्यात् ॥ २८ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

पपत्तये बाह्यार्थापेक्षा तस्यावश्यमभ्युपेया । तथा सति सिद्ध एव बाह्योऽर्थः प्रपञ्चरूपः । सहोपलम्भनियमादभेदस्तु सहपदार्थविचारादेवासंगतः । सहत्वं हि द्वयोर्भिन्नयोः पदार्थयोरेकदेशवर्तित्वमेककालवर्तित्वं वा । उभयथापि हेतुतावच्छेदकतया प्रविष्टे पदार्थान्तरे भिन्नोपलम्भनियमादित्येष हेत्वर्थो भवति । तदेवं प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोधे यदि हेतुरादरणीयस्तदा प्रतिज्ञाबाधः । यदि प्रतिज्ञादरणीया तदा साधकं विना तदसिद्धिः । किंचाभेदोऽपि किमेकत्वमुत भेदाभावः । आद्येपि संख्या वा धर्मान्तरम् । आद्ये नीलतद्धियोरेकत्वसंख्याविशिष्टत्वमित्यर्थो भवति । तेन न बाह्यार्थबाधः । यथा घटपटयोरेकत्ववैशिष्ट्येपि नान्यतरबाधस्तद्वत् । एवं द्वितीयेपि । यदि भेदाभावपक्षस्तदा अभावस्य प्रतियोगी भेदस्त्वयावगतो, न वेति वक्तव्यम् । यदि नावगतस्तर्हि भेदस्य सर्वथा बुद्ध्यनारूढत्वेन नीलमात्रस्य भानान्न भेदस्य निषेधार्हत्वमित्यभेदासिद्धिः । अथावगतस्तथा सति संवित्तिवत् प्रत्यक्षत्वाद्धेत्वन्तरस्य तत्प्रतिक्षेपकस्याभावात् सिद्ध एव भेद इत्यभेदप्रतिज्ञा असंगतैव । तदेतदुक्तम् । **यस्तूपलभमान एव नाहमु-**

रश्मिः ।

तस्येति ज्ञानस्य । **बाह्य** इति । एतावतास्य **प्रपञ्चस्य नाभावः उपलब्धेरिति** भाष्यं प्रपञ्चितम् । अस्येति इदमा प्रत्यक्षस्य सदात्मकस्येत्युच्यते । **नाभावो** भावाभावः, सत्त्वमिति यावत् । उपलब्धिविषयत्वादित्युपलब्धेरिति भाष्यार्थः । इन्द्रियसंनिकर्षे बाह्यप्रपञ्चस्योपलभ्यमानत्वादित्युपलब्धेरित्यस्यार्थ इति वृत्तौ **श्रीकृष्णचन्द्राः** । उपलभ्यते हि प्रपञ्च इति तु भाष्यं उपलब्धेरित्यस्य विवरकम् । किंचेत्यादिना पूर्वमनूदितात्सहोपलम्भनियमादभेदस्तत्र हेतोरप्रसिद्ध्या साधनाप्रसिद्धिर्यथा काञ्चनमयधूमादित्यादौ । तस्याश्च हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेतुज्ञानाभावाद्व्याप्तिज्ञानादेरभावः फलमिति कथं व्याप्तिग्रह इत्याहुः **सहोपेति** । ज्ञानविषयौ अभिन्नौ । सहोपलम्भनियमात् । अयं घट इतिवदिति । **उभयथेति** भिन्नपदार्थैकदेशवर्तित्वादिलक्षणद्वयेऽपि । **हेतुतेति** हेतू भिन्नपदार्थैकदेशवर्तित्वोपलम्भनियमादिति भिन्नपदार्थैककालवर्तित्वोपलम्भनियमादिति च जातौ तत्र भिन्नोपलम्भनियमत्वं हेतुतावच्छेदकं पदार्थस्य भिन्नशब्देन देशकालवर्तित्वस्यापि भिन्नशब्देन लाभाद्धेतुघटके न भवतः । एवं च तत्तया **प्रविष्टे पदार्थान्तरे** भिन्नरूपे सति **भिन्नोपलम्भनियमादित्यर्थो भवति** । हेतुस्तु भिन्नोपलम्भनियमादित्येवेत्यर्थः । नियमोपि नियतोपलम्भ इत्येवमुपलम्भविशेष एवेति यदि तदा तु भिन्नोपलम्भादित्यपि हेतुर्लाघवादेव । **विरोध** इति अभेदप्रतिज्ञा ज्ञानविषयावभिन्नाविति साध्यरूपा भेदघटितो हेतुरिति विरोधस्तस्मिन् । **आदरणीय** इति अशुद्ध एवादरणीयो न तु शोधनीयः । **प्रतिज्ञेति** अभेदबाधः । नहि गोत्वमश्वत्वेन सिध्यतीति । **साधकमिति** हेतुं **विना** । **तदसिद्धिरिति** अभेदप्रतिज्ञाया असिद्धिः । तथा च भेदसिद्ध्या सूत्र उपलब्धिविषयत्वरूपहेतुसिद्ध्या सूत्रीयसाधनाप्रसिद्धिर्नेति भावः । प्रकारान्तरेणापि साधनाप्रसिद्धिं वारयन्ति **किंचेति** । **अभेदो** नीलतद्धियोः । **एकत्वेति** । तदतिरिक्तमते तु संख्याया नीले द्रव्ये समवायसंबन्धस्तद्धियां स्वसमवायिसमवेतत्वसंबन्धः । **तेनेति** बहुतरप्रसिद्धेनाङ्गीकारेण । **एकत्वेति** घटश्च पटश्च तयोः समाहारो घटपटमित्यत्रै**कत्ववैशिष्ट्येपि** । **नीलेति** नीलमित्यत्र तद्धीरपि नीलभिन्ना नेति **नीलमात्रस्य** । **न निषेधार्हत्वमिति** प्रतीतं हि निषेध्यमिति न्याय्यत्वान्न निषेधार्हत्वम् । **प्रत्यक्षत्वादिति** संवित्तौ प्रत्यक्षत्वं भेदे स्वाश्रयविषयतासंबन्धेन वर्तते । **हेत्वन्तरस्येति** प्रत्यक्षत्वेतरहेतोः । **तत्प्रतीति** भेदापाकारकस्य । तथापि यदि गणिता

वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् ॥ २९ ॥

ननूपलब्धिमात्रेण न वस्तुसत्त्वम् । स्वप्नमायाभ्रमेष्वन्यथादृष्टत्वादितिचेत् न । वैधर्म्यात् स्वप्नादिषु तदानीमेव स्वप्नान्ते वा वस्तुनोऽन्यथाभावोपलम्भात् । न तथा जागरिते । वर्षानन्तरमपि दृश्यमानः स्तम्भः स्तम्भ एव । स्वस्य मोक्षे प्रवृत्तिव्याघातश्चकारार्थः ॥ २९ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

पलभ इति वदति स कथमुपादेयवचनः स्यादिति । उपलभन्नेवेति पाठे तु औणादिकोऽतिप्रत्ययः । उणादीनां सर्वधातुभ्यो भवनात् । 'वर्तमाने पृषद्बृहन्महज्जगच्छतृवच्च' इति शतृवद्भावाच्चुम् ।

'संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे । कार्याद् विद्यादनूबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु' इति भाष्यानुशासनात् ॥ २८ ॥

वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् ॥२९॥ पूर्वसूत्रोक्तस्य हेतोरनैकान्तिकत्वं वारयितुं तद्दृष्टान्तासंगतिं वदतीत्याशयेन सूत्रमुपन्यस्य व्याकर्तुमवतारयन्ति नन्वित्यादि । अन्यथा

रश्मिः ।

एवातिप्रत्ययान्ता निपातिता इति कथं लभधातोरतिप्रत्यय इत्यत आहुः **संज्ञास्विति । अनूबन्धमिति** 'उपसर्गस्य घञि'इति दीर्घः । **शास्त्रमिति** अनुशासनीयमित्यर्थः । तथाचोपलभेरनुदात्तेतश्चातिर्नुम् । इति लभधातुरतिप्रत्ययः **शतृवदिति** उपलभन्निति भाष्यप्रयोगरूप**कार्याद्विद्या**दिति साधुरित्यर्थः । किंच रञ्जेः क्युनिति रञ्जेर्विहितः क्युन् कृपेरपि दृश्यते कृपण इति । तथा पृषदादिभ्यो निपातितः शतृवदिति लभेरपि भाष्ये दृश्यत इत्युपलभन्निति साधुः । अत्र उपाच्चेति सूत्रेण परस्मैपदप्रक्रियास्थेनोपपूर्वकालभेः परस्मैपदम् । वृत्तौ तु रमिरनुवृत्तः तत्प्रामादिकम् । सूत्रप्रणयनवैय्यर्थ्यापातात् । उपसंख्यानप्रसङ्गात् । तत्स्वरूपं तु 'व्याङ्परिभ्यो रमः' इति सूत्रादनु 'उपाच्च' उपसंख्यानमित्यनुशासनादिति । तथाच प्रपञ्चः सन् उपलब्धिविषयत्वात् घटवदिति सूत्रार्थः ॥ २८ ॥

वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् ॥ २९ ॥ अनैकान्तिकत्वमिति । प्रपञ्चोऽसन् उपलब्धिविषयत्वात् स्वप्नवत् शुक्तिरजतवच्चेति दृष्टान्तान्तरेण पूर्वोक्तस्योपलब्धिविषयत्वस्य हेतोः स्वप्ने साध्यवदन्यस्मिन् वृत्तित्वात्साधारण्यम् । तत्रैव साध्यासामानाधिकरण्यादसाधारण्यम्, तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगिसाध्यकादिरनुपसंहारीत्यनुपसंहारित्वं च । तद्वान् हेतुमान् स्वप्नादिस्तन्निष्ठोत्यन्ताभावः सत्त्वात्यन्ताभावस्तादृशाभावप्रतियोगिसाध्यं सत्त्वं यस्य विपक्षस्य स्वप्नादेरिति लक्षणसमन्वयः । साधारणाद्यन्यतमत्वमनैकान्तिकत्वमित्यनैकान्तिकलक्षणादनैकान्तिकत्वमुक्तम् । किंच विरुद्धत्वमपि । 'साध्य[1]व्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वं विरुद्धत्वम्' । साध्याभावसाधको हेतुर्यथोक्ते प्रपञ्चः असन्नित्यत्र प्रपञ्चः असन् प्रत्ययत्वात् स्वप्नप्रत्ययवदिति सत्प्रतिपक्षत्वमपि । तथा प्रपञ्चस्य पक्षत्वे आश्रयासिद्धत्वमपि । पक्षे पक्षतावच्छेदकाभावात् । व्याप्यत्वासिद्धत्वं च । पक्षस्य ज्ञानात्मकत्वेनोपलब्धिविषयत्वानङ्गीकारात् । एवं साध्याप्रसिद्धिरपि । सत्त्वे सत्त्वत्वाभावात् । सत्पदार्थानङ्गीकारात् । साधनाप्रसिद्धत्वमपि । हेतुतावच्छेदकस्योपलब्धिविषयत्वत्वस्य हेतौ ज्ञानातिरिक्तविषयाभावेनाभावात् । किंच बाधोपि । पक्षे साध्याभावात् । प्रपञ्चस्यासत्त्वादिति परोट्टङ्कितं वारयितुमित्यर्थः । **तद्दृष्टान्तेति**

---

[1] साध्यव्यापकीभूतस्य हेतोर्योऽभावस्तस्य प्रतियोगित्वम् ।

भाष्यप्रकाशः ।

दृष्टत्वादिति वस्त्वसत्त्वस्य दृष्टत्वात् । तथा च पूर्वोक्तो हेतुः साधारण **इत्यर्थः** । **व्याकुर्वन्ति नेत्यादि** । तथा च स्वप्नदृष्टजागरितदृष्टयोस्तात्कालिकाऽन्यथात्वतात्कालिकान्यकालिकान्यथात्वाभावरूपवैधर्म्यान्न स्वप्नजागरितदृष्टयोस्तुल्यत्वमित्यर्थः । अन्ये तु बाधाबाधाभ्यां दुष्टकारणजन्यत्वशुद्धकारणजन्यत्वाभ्यां च वैधर्म्यमाहुः । एवंच मायास्थलेऽप्येतत् तुल्यम् । तत्र

रश्मिः ।

तस्य सौगतस्य यौ दृष्टान्तौ स्वप्नवत् शुक्तिरजतवदिति तयोर**संगतिम्** । **पूर्वोक्त** इति उपलब्धिविषयत्वहेतुः । **साधारण** इत्युपलक्षणमसाधारणादीनाम् । सूत्र आदिशब्दो जागरितदृष्टान्तं वक्ति । 'स्वप्नः सुप्तस्य विज्ञाने' इति । षष्ठ्यन्ताद्वतिः तुल्यार्थ इत्याशयेनाहुः **स्वप्नदृष्टेति** । **तात्कालिकान्यथात्वं** च **तात्कालिकान्यकालिकान्यथात्वाभावश्च** तौ ताभ्यां रूप्यते व्यवह्रियत इति तद्रूपं वैधर्म्यम् । तात्कालिकान्यथात्वतात्कालिकान्यकालिकान्यथात्वाभावरूप**वैधर्म्यं** तस्मादित्यर्थः । **इत्यर्थ** इति तथा च जागरितस्यादिशब्दार्थत्वेन भाष्ये स्वप्नमायाभ्रमेष्वित्युक्त आदिशब्दार्थौ न सिद्धान्ते अपि तु पूर्वपक्ष इति ज्ञापितम् । तथा चोक्तसूत्रार्थादिदं लभ्यते । स्वप्नजागरितदृष्टयोस्तुल्यत्वम् । स्वप्नदृष्टविषयत्वतुल्यं जागरितदृष्टविषयत्वं यदुक्तं तन्न संभवति । भ्रमप्रमाभ्यां विषयभेदात् । तथा च प्रमाविषयत्वस्य हेतुतावच्छेदकत्वान्नोपलब्धित्वेन सामान्यरूपेणोपलब्धिः पूर्वसूत्रे विवक्ष्यते अपि तु प्रमात्वेन रूपेणातो न साधारणादय इति । तदित्थम् । प्रपञ्चः असन्, उपलब्धिविषयत्वात्, स्वप्नवदित्यनेनानुमानान्तरेण दोषा उद्भावितास्ते न सन्ति स्वप्नादेः सत्त्वरूपसाध्यवदन्यत्वेपि तत्र प्रमाविषयत्वरूपहेतोरभावान्न हेतोः साधारण्यम् । एवं स्वप्नादौ साध्यासामानाधिकरण्यविरहादसाधारण्यमपि न । एवं स्वप्नमायादौ हेतुमत्ताभावेन तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वाभावात्साध्ये हेतोर्नानुपसंहारित्वम् । किंच संस्तूपलभ्यत इति सत्त्वव्यापकीभूतहेत्वभाव उपलब्ध्यभावो न जातः किंत्वन्याभावस्तादृशाभावप्रतियोगी अन्यः । न तूपलब्धिविषयत्वमितीदं न विरुद्धम् । तथा असन् प्रत्ययत्वात्, स्वप्नप्रत्ययवदित्यस्य प्रतिपक्षस्य 'अत्रात्मा स्वयंज्योतिर्भवति' इति श्रुतेरात्मभिन्नस्य विषयस्य मिथ्यात्वेन प्रत्ययत्वहेतोः स्वप्नसृष्टिविषयकज्ञाने साधारण्यमिति न सत्त्वसाध्यकोपलब्धिविषयत्वहेतुकमनुमानं सत्प्रतिपक्षम् । किंच प्रपञ्चे पक्षतावच्छेदकाभावादाश्रयासिद्धत्वं यदुक्तं तत्तु पूर्वसूत्रे एवायमर्थ इत्यादिना बाह्यार्थसाधनान्नित्ये प्रपञ्चे प्रपञ्चत्वमस्तीति न संभवति । एतेन बाह्यार्थसाधनेनैवोपलब्धेर्विषयत्वस्यैव प्रपञ्चेङ्गीकार्यत्वाज्ज्ञानात्मकत्वाभावेन हेतोः पक्षसत्त्वान्न व्याप्यत्वासिद्धत्वम् । किंच बाह्यार्थसाधनेन प्रपञ्चस्य सत्त्वात्साध्याप्रसिद्धिरपि नास्ति । तथा प्रपञ्चस्य सत्त्वादेवोपलब्धिविषयत्वस्य हेतुतावच्छेदकस्य हेतौ सत्त्वान्नासाधनाप्रसिद्धिः । बाधोऽपि नास्ति । प्रपञ्चस्य सत्त्वात् । ब्रह्मकार्यत्वात् । किंच प्रपञ्चः असन्, उपब्धिविषयत्वात् स्वप्नवदिति । व्याप्यत्वासिद्धम् । कथम् । इत्थम् । मायिकत्वमुपाधिः । यत्र यत्रासत्त्वं तत्र तत्र मायिकत्वमिति साध्यव्यापकत्वम् । यत्र यत्रोपलब्धिविषयत्वं तत्र तत्र मायिकत्वमिति नास्ति । प्रपञ्चे मायिकत्वाभावात् । तस्मान्निर्दुष्टं सत्त्वसाध्यकमुपलब्धिविषयत्वलिङ्गकमनुमानमिति भावः । **अन्ये त्विति शंकररामानुजमाध्वाचार्याः** । स्वप्नजागरितयोर्बाधाबाधाभ्याम् । **रामानुजाचार्य**मते तु विशेषमाहुः **दुष्टेति**, निद्रादयो दोषाः । **आहुरिति** । सिद्धान्ते तु निर्हेतुकतात्कालिकान्यथात्वनिर्हेतुकतात्कालिकान्यकालिकान्यथात्वाभावाभ्यां वैधर्म्यमित्युक्तम् । जागरितदृष्टेऽपि क्वचिदतिदिशन्ति स्म **एवं चेति** । **मायास्थले** इति शुक्तिरजतादिस्थले ।

भाष्यप्रकाशः ।

मायायास्तत्कृतनेत्रबन्धस्य वा दोषत्वात् । तदुक्तमष्टमस्कन्धे, 'जित्वा बलान्निबद्धाक्षान्नटो हरति तद्धनम्' इति । सर्वेषां तथा प्रतीतेश्च । मरीच्युदकस्थलेऽपि तेजःप्राबल्यस्यैव दोषत्वम् । तथा गन्धर्वनगरस्थले वस्तुसामर्थ्यस्यैव दोषत्वम् । एवमन्यत्रापि ।

भास्कराचार्यास्तु—स्वप्नप्रत्ययस्य मिथ्यात्वं त्वया जाग्रत्प्रत्ययबाध्यत्वाद्वक्तव्यम् । तत्र स्वप्नसत्यत्वबाधकीभूतप्रत्ययेऽपि मिथ्यात्वमेवाङ्गीकृतमिति तस्य तेन बाधाभावात् स्वप्नस्य मिथ्यात्वासिद्धौ दृष्टान्तासिद्ध्या तेनानुमानेन जाग्रत्प्रत्ययस्य मिथ्यात्वं न साधयितुं शक्यमित्यपि दूषणमाहुः ।

पार्थसारथिमिश्रास्तु—नीलज्ञानस्यात्मावसायित्वं केन गृह्यते, नीलस्य विज्ञानाकारत्वं च । न तावन्नीलज्ञानेन । नीलमात्रप्रकाशनात् । अथ विमतं नीलादिकं स्वात्मांशभूतज्ञानाकारः । स्वसंवेद्यत्वात् । बाह्यत्वघटितग्राह्यलक्षणायोगादित्याद्यनुमानात् । तर्हि तदनुमान-

रश्मिः ।

'ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि । तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः' इति वाक्यात् माया विषयदोषः । नेत्रबन्धः करणदोषः । **अष्टमे**ति एकादशाध्यायेऽस्ति 'बलान्निबद्धाक्षान्' इति । बालानित्यपि पाठः । निबद्धान्यक्षीणि येषां तान् । विषयगतदोषस्तु न भवतीत्याहुः **सर्वेषा**मिति, निबद्धाक्षभिन्नानां **तथा** नाम शुक्तिरजतादौ शुक्तित्वादि**प्रतीतेश्चे**त्यर्थः । **तेज** इति तथा चात्रापीन्द्रियगतो दोषो न विषयगतस्तथा सति समीपगतावपि मरीच्युदकं दृश्येतेत्यर्थः । करणगतदोषमुक्त्वा विषयगतमाहुः **तथे**ति वस्तुविषयः । **एवमन्यत्रे**ति प्रतिबिम्बे तमसि च विषयगतो दोष इन्द्रियगतो दोषश्च ज्ञातव्य इत्यर्थः । अत्र मुखाद्यभिन्नः प्रतिबिम्बः दर्पणादिसंनिधानदोषप्रतिहतपरावृत्तनयनकिरणस्य स्वमुखदर्शनमात्रेण दर्पणादौ प्रतिबिम्बाभिमानात् । अतोऽवस्त्विति मन्यन्त इन्द्रियदोषजन्यत्वं च तन्न । प्रतिबिम्बस्य पदार्थान्तरत्वात् । विषयदोषजन्यत्वस्य चावश्यकत्वात् 'तत्त्वं तु प्रतिबिम्बोस्ति शब्दात्प्रत्ययतस्तथा । विलक्षणत्वाद्भिन्नोयमन्येभ्यो मायिकोस्त्यसौ । किंचादर्शविशेषेपि चातुर्येण विनिर्मिते । प्रत्यस्रं स्वमुखं भाति तत्रोक्तोपायकुण्ठता । यतोस्रेभ्यः प्रतिहताः परावृत्य दृगंशवः । संसृष्टाः स्वमुखेनैकमीक्षेरन्न बहूनि तु' । प्रत्यस्रं प्रतिबिन्दु । उक्तोपायकुण्ठता तु 'यतोस्रेभ्यः' इति कारिकया दर्शिता । एकं मुखम् । बहूनि मुखानि । विस्तरस्तु **प्रतिबिम्बवादे** द्रष्टव्यः । तथा न तमस्तेजःसामान्याभावः । तमश्चलतीति भावमुखप्रतीतेः । तच्च मायापरिणामविशेषरूपं भावातिरिक्तं पदार्थान्तरम् । 'तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः' इति वचनात् । तच्च तेजोभावे मायया मनुष्यादीन्प्रत्येव जन्यते न सर्वान्प्रति । अत एवोलूकबिडालादयस्तेजोभावमेव गृह्णन्ति न तमः । अत एवोलूकरूपिणा कणादेन वैशेषिकदर्शनस्य कृतत्वात् । तस्य तमश्चाक्षुषाऽभावेन तत्सूत्रे भावाभावस्तम इत्युक्तिरपि युज्यते । एवं चास्मदादीनां दृष्टीनां तमोवृतत्वात्तमस एव ग्रहस्तथा तद्दृष्टेः कोमलत्वाद्बलवत्तेजसा प्रतिघातस्तदभावे च सुखेन तेषां विषयग्रह इति । विस्तरस्त्व**न्धकारवादे** द्रष्टव्यः । **तेने**ति मिथ्याभूतेन जाग्रत्प्रत्ययेन । **अनुमानेने**ति स्तम्भादिप्रत्ययाः स्वात्मांशमेव बाह्यतयाध्यस्यन्तो मिथ्याभूताः प्रत्ययत्वात्, स्वप्नप्रत्ययवदित्यनुमानेन । **आत्मावे**ति स्वात्मांशमिति साध्यविशेषणेनोक्तं स्वात्मविषयकत्वमित्यर्थः । **केन** हेतुना । **नीलमात्रे**ति मात्रशब्देनात्मांशविज्ञानाकारत्वयोर्व्युदस्तिः । सौगताशङ्कामाहुः **अथे**ति । **विमतं** बौद्धमतम् । **आदिशब्देन** पीतं स्तम्भः कुड्यं च । **स्वात्मे**ति स्वं ज्ञानं तस्यात्मांशो बाह्यस्तद्भूतं ज्ञानं तस्याकारः स्वं ज्ञानं नीलमित्याकारकं तस्य **संवेद्यत्वं सम्यक्** बाह्यत्व-

न भावोऽनुपलब्धेः ॥ ३० ॥

यदप्युच्यते, बाह्यार्थव्यतिरेकेणापि वासनया ज्ञानवैचित्र्यं भविष्यतीति तन्न। वासनानां न भाव उपपद्यते। त्वन्मते बाह्यार्थस्यानुपलब्धेः। उपलब्धस्य हि वासनाजनकत्वम्। अनादित्वेऽप्यन्धपरंपरान्यायेनाप्रतिष्ठैव। अर्थव्यतिरेकेण वासनाया अभावाद् वासनाव्यतिरेकेणाऽप्यर्थोपलब्धेरन्वयव्यतिरेकाभ्यामर्थसिद्धिः ॥ ३० ॥

भाष्यप्रकाशः ।

मात्मांशग्राहि वा न वा। आद्ये तस्य तथात्वे हेत्वन्तराकाङ्क्षा, ततस्तद्धेतोरित्यनवस्थानादसिद्धिः। द्वितीये तु नीलादिज्ञानैः किमपराद्धं येन स्वानुमाने तथात्वमङ्गीकृत्यापि बाह्यप्रकाशकानि तान्यात्मन्यवरुध्यन्ते। किंच। अज्ञानविषयकज्ञानस्य ज्ञानाभाव एव ग्राह्यः। न च ज्ञानाभावस्य ज्ञानात्मता संभवति। अत्यन्तविरुद्धत्वादित्यादीनि बहूनि दूषणान्याहुरित्युपरम्यते। चकारसूचितं दूषणान्तरमाहुः। स्वस्येत्यादि। प्रवृत्तेर्बाह्यत्वात् तदस्तित्वस्य चानङ्गीकारात् तथेत्यर्थः। तेन प्रपञ्चस्य न स्वप्नादितुल्यत्वमिति सिद्धम् ॥ २९ ॥

न भावोऽनुपलब्धेः ॥ ३० ॥ क्षणिकविज्ञानवाद्युक्तं ज्ञानवैचित्र्यहेतुं दूषयतीत्याशयं स्फुटीकुर्वन्ति **यदपीत्यादि**। अयमर्थः। वासना हि अनुभवजनितः स्मृतिजनकः संस्कारः

रश्मिः ।

घटितं वेद्यत्वं संवित्तिः तस्मात्। स्वसंवित्तित्वं हेतुतावच्छेदकम्। एतच्च ग्रन्थे द्रष्टव्यम्। हेतुं विवृणोति स्म **बाह्यत्वेति बाह्यत्वघटितग्राह्यलक्षणयोग** इत्यत्र ज्ञाने बाह्यत्वेन घटितं ग्राह्यं गोचरस्तलक्ष्यतेऽनेन ग्राहकेण स ग्राहकः बाह्यत्वघटितग्राह्यलक्षणः तस्य योगो विषयितया संवित्तौ तस्मात्, संवित्तिप्रोक्तज्ञानात्। आदिशब्दार्थो द्रष्टव्यः। **अनुमानादिति** गृह्यत इति संबन्धः। दृष्टान्तस्तु स्वप्न एव। **आत्मांशे**ति बाह्यत्वघटितग्राह्य**ग्राहि**। **तस्येति** अनुमानं व्याप्तिज्ञानं न तु नीलादिकम्। ज्ञानात्मांशभूतज्ञानाकार इत्यनुमितिमुद्भाव्य सनाथं न नीलज्ञानात्मांशभूतज्ञानाकारं गृह्णाति विषयीकरोति तस्मादनुमानस्य तादृशात्मांशग्राहित्वे विषयीकरणे हेत्वन्तरस्य परंपरारूपस्या**काङ्क्षा** भवति। हेत्वन्तरे परंपरारूपे हेतोरुक्तन्यायाविरोधरूपस्य। यद्वा हेतोरनुमानतयोक्तविकल्पे प्राप्ते पुनः पुनराद्ये तस्य तथात्वे हेत्वन्तराकाङ्क्षा पूर्वोक्तप्रकारेण भवत्येवं तस्य तस्यापीत्य**नवस्थानादा**त्मांशाग्राहित्वा**सिद्धि**रित्यर्थः। **किमपराद्ध**मिति आत्मांशाग्राहित्वे तुल्ये येनापराधेन नीलज्ञानस्य प्राथम्यमपहृतम्। प्रत्यक्षानुमानेत्यादिक्रमाद् एतदेवाहुः **येने**त्यादिना। **येन** अपराधेन। **तथात्वं** आत्मांशाग्राहित्वम्। **बाह्ये**ति अर्थप्रकाशकानि। **तानी**ति नीलादिज्ञानानि। **आत्मनि** ज्ञानस्वरूपविषयेऽव**रुध्यन्ते** संकुचितानि क्रियन्ते। **एवे**ति अयं ज्ञानात्मकत्वं व्यवच्छिनत्ति। विरुद्धत्वं सहानवस्थायित्वम्। **सूचित**मिति। तथा च व्यञ्जनया चकारार्थ इति भाष्येऽर्थः। **तदस्ती**ति आलयविज्ञानास्तित्वस्य। **तथे**ति मोक्षार्था या प्रवृत्तिस्तस्या व्याघातः। चैत्रस्य गुरुकुलमितिवदन्वयः। **स्वप्नादी**ति। **आदि**शब्देन मायाभ्रमौ ॥ २९ ॥

न भावोऽनुपलब्धेः ॥ ३० ॥ क्षणिकेति। ननु वैधर्म्यमप्रयोजकं स्वप्नेपि स्वप्नान्तरवैधर्म्यदर्शनात्। अतो विचित्रवासनाभ्यो विचित्राणि ज्ञानानि तेभ्यः पुनस्ता इति चक्रवत्परिवृत्त्यङ्गीकृतौ न किमपि दूषणमित्येवमुक्तम्। **हेतुं** वासनाम्। **त्वन्मत** इत्यादिभाष्यतात्पर्यमाहुः **अयमि**ति।

क्षणिकत्वाच्च ॥ ३१ ॥

वासनाया आधारोऽपि नास्ति । आलयविज्ञानस्य क्षणिकत्वात् । वृत्तिविज्ञानवत् । एवं सौत्रान्तिको विज्ञानवादी च प्रत्युक्तः ।

भाष्यप्रकाशः ।

कार्यलिङ्गकानुमानात् सिद्ध्यति । अनुभवं विना तु न तस्या उत्पत्तिः । अनुभवस्य चार्थं विना । अर्थस्तु त्वन्मते नास्त्येवेति तज्जनकाभावे कथं तस्याः सिद्धिः । अथ विचित्राज्ज्ञानाद् वासना, विचित्राभ्यो वासनाभ्यो ज्ञानानीति हेतुहेतुमद्भावेन विज्ञानवासनाचक्रमनादि परिवर्तत इति वदसि तदाप्यन्धपरंपरान्यायेन तस्य ज्ञानस्याप्रतिष्ठैव । अर्थव्यतिरेकेण वासनाया अभावात् । यदि ह्यर्थव्यतिरेकेण वासनाः स्युस्तदा स्वप्नं दृष्ट्वोत्थितस्य तदनुभवजन्या वासनास्ताभ्यश्च तादृशानि विज्ञानान्येव सर्वदानुवर्तेरन् न तु तद्विसदृशानि जाग्रद्विज्ञानानि भवेयुः । तदुपमर्दकस्य बाह्यार्थस्य त्वन्मते अभावात् । दृश्यते त्वन्यथा, अतोऽर्थव्यतिरेकेण वासनाया अभावादन्वयेन वासनाव्यतिरेकेणार्थोपलब्धेश्च व्यतिरेकेणेत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यामर्थसिद्धिरिति न बाह्यापलापः शक्यः ॥ ३० ॥

क्षणिकत्वाच्च ॥ ३१ ॥ प्रकान्तरेणापि वासनां निराकरोतीत्याशयेनाहुः **वासनाया** इत्यादि । अयमर्थः । वृत्तिविज्ञानं वासनाजनकं पूर्वक्षणवृत्ति । तदाधारश्चालयविज्ञानं तत्समानकालम् । एवं सति वृत्तिविज्ञानेन यदा वासनोत्पादनीया तदानीं वृत्तिविज्ञानाधारस्यालयविज्ञानस्य नष्टत्वादाधाराभावेनापि वासनानुपपत्तिः । तदानीमालयविज्ञानसत्ताङ्गीकारे क्षणिक-

रश्मिः ।

आर्थेतरे प्रत्यक्षाभावादाहुः **कार्येति** देवदत्तो वासनावान्, स्मृतेः, अस्मदादिवदित्य**नुमानात्** । **विनेति** नोत्पत्तिरित्यर्थः । **तज्जनकेति** वासनाजनकानुभवाभावे । **तस्या** इति वासनायाः । तथा चोपलब्धस्य बाह्यार्थस्य विषयस्यानुभवद्वारा वासनाजनकत्वं हि निश्चयेनेतिभाष्यार्थः । **अनादित्व** इत्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अथेति** । **विचित्राज्ज्ञाना**दिति स्मार्तः प्रयोगः । **अप्रतीति** युक्ते**रप्रतिष्ठा** । तर्काप्रतिष्ठानसूत्रादेवकारः । **अर्थेत्यादि** । इदं व्याख्येयं भाष्यम् । उक्तं भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **यदि हीति** । **तदुपेति** स्वप्नोपमर्दकस्य । सिद्धान्ते त्वयं दोषो नास्तीत्याहुः **त्वन्मत** इति । **अन्यथेति** स्वप्नविज्ञानोपमर्दनेन विसदृशानि विज्ञानानीत्यर्थः । **अन्वयेनेति** अर्थसत्त्वे वासनासत्त्वमित्यनेन । **वासने**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **वासनाव्यती**ति अर्थाभावे वासनाभाव इति व्यतिरेको न तु वासनाभावेऽर्थाभाव इति । ननु किमनेन न त्वित्युक्तपक्षेणार्थाभावे वासनाभाव इत्यस्यैव सुवचत्वादिति चेन्न । चक्रवत्परिवृत्तौ वासनाया अपि कारणत्वसंभवो न भवतीत्यस्य कारणताग्राहकव्यतिरेकेऽवश्यवक्तव्यत्वात्, लाघवमत्र शरणम् । **अर्थसिद्धि**रिति विषयसिद्धिः ॥ ३० ॥

क्षणिकत्वाच्च ॥ ३१ ॥ वृत्तिविज्ञानक्षणिकत्वतुल्यमालयविज्ञानस्य क्षणिकत्वम् । तस्मा**द्वासनाया आधारोऽपि नास्ती**ति भाष्यार्थमाहुः **अय**मिति । **वृत्तिविज्ञान**मिति । वृत्तौ तु प्रवृत्तिविज्ञानमुक्तं शंकरभाष्येपि तथोक्तम् । तत्र प्रवृत्तेर्वासनाजनकत्वं दुरूहमिति तत्त्यक्तम् । **पूर्वेति** वासनायाः **पूर्वक्षणवृत्ति** । **तदाधारः** वासनाधारः । **तत्समाने**ति क्षणिकत्वेऽपि वृत्तिविज्ञानसमकालं भवति । **यदे**ति द्वितीयक्षणे । **तदानी**मिति आलयविज्ञानतृतीयक्षणे । एवमेतावता भाष्यं व्याख्यातम् । अन्यदाहुः **तदानी**मिति । **क्षणिके**ति । आधारस्यालयविज्ञानस्य द्विक्षणावस्थायित्वात् ।

माध्यमिकस्तु मायावादिवदत्यसंबद्धभाषित्वादुपेक्ष्य इति न निराक्रियत आचार्येण ॥ ३१ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

वादहानिः । यदि च संतानिन आलयविज्ञानस्य वृत्तिज्ञानाधारत्वं तत्संतानस्य वासनाधारत्वमित्युच्यते, तदापि वृत्तिविज्ञानवैसादृश्यहेत्वभावादसंगतिः । यदि च संतानप्रवाह एव वासनेत्युच्यते, तदापि, उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधादित्यादीनां दूषणानामापत्तिः । तस्मादसंगतमेवेदं मतमिति । उपसंहरन्ति **एवमित्यादि** । तर्हि माध्यमिकः कुतो न दूष्यत इत्यत आहुः **माध्यमिकेत्यादि** । यथा हि **मायावादिनः** श्रुतिच्छायामादाय सर्वं विप्लावयन्ति तथा सोऽपि युक्तिच्छायामादाय सर्वं नाशयतीत्य**संबद्धभाषित्वात्** स्वयुक्तिभिरेव दूषितप्रायः । स हि सर्वशून्यवादी येन प्रमाणेन शून्यतां साधयति तत् प्रमाणं वर्तते, न वा । यदि वर्तते तदा सर्वशून्यत्वप्रतिज्ञाहानिः । यदि नास्ति तदा तदभावे कथं सर्वशून्यतां साधयेत् । किंच, स ह्येवं वदति । यदसत् तन्न कारकैर्जायते । यथा शशविषाणम् । यत् सत् तदपि भावाच्च नोत्पद्यते । तथाहि । न तावद्भावात् । पिण्डबीजाद्युपमर्देनैव घटाङ्कुराद्युत्पत्तिदर्शनात् । नाप्यभावात् । अभावात्मकत्वस्याभावान्वयस्य च कार्येष्वदर्शनात् । न स्वतः । आत्माश्रयप्रसङ्गात्, प्रयोजनाभावाच्च । न वा परतः । परतः परोत्पत्तौ परत्वाविशेषात् सर्वतः सर्वोत्पत्तिप्रसङ्गात् । एवं जन्मनि निरस्ते जन्माभावादेव विनाशस्या-

रश्मिः ।

संतानिन इति विज्ञानप्रवाहिणः । **संतानस्य** प्रवाहस्य । **वृत्तीति** । घटवृत्तिविज्ञानस्य पटवृत्तिविज्ञान**वैसादृश्ये हेतोरभावा**दालयविज्ञानस्य प्रकाशकस्यैकविधत्वेन विचित्रवासनासंगतिः । **संताने**ति वासनायाः संतानप्रवाहः । **श्रुती**ति 'यतो वाचो निवर्तन्त' इति 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इति 'सैषाविद्या जगत्सर्वम्' इत्येवंजातीयश्रुतीनाम् । **छाया**मर्थाभासमादायेत्यर्थः । कथम् । इत्थम् । पूर्वस्यास्तैत्तिरीयस्याया उत्तरार्धाविचारात् । तत्र ब्रह्मण आनन्दज्ञानमुक्तम् 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्' इति । तच्च प्रत्यक्षं भयाभावलिङ्गात् । तत्र शाब्दमपि पक्षे कारणम् 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' इति श्रुतेः । शाब्दं शब्दनिवृत्तौ न संभवति । तथा 'सत्यं ज्ञानम्' इति श्रुतिव्यापारस्य स्वयमङ्गीकारादनङ्गीकारे ब्रह्माज्ञानं प्रसज्येत । द्वितीयस्यां नानात्वमिह प्रपञ्चे परिदृश्यमानं यत्तन्नास्ति किंत्वेकमेव ब्रह्म साकारं व्याप्तमित्यैच्छिकमिति स्फुटप्रतीतेः । सत्यत्वादिधर्माणां नित्यानां स्वस्थितानां स्वयमङ्गीकाराच्च । अत एव च तृतीयस्यामपि नृसिंहोत्तरतापनीयस्थायामविद्यात्मकत्वं जगतोऽपार्थं द्वैतस्य पूर्वं सत्यत्वादिनैवाविद्याया असत्याया न समवायित्वम् । शशशृङ्गवत् । अतः प्रकरणानुरोधाद्ब्रह्मविष्णुशिवरूपिणी सा गृह्यते इत्यादि स्फुटं **पण्डितकरभिन्दिपाले** । विशेषस्तु दहराधिकरणे स्फुटः । **सर्व**मिति सन्मार्गम् । **विप्लावयन्ती**ति न सन्नासन्न सदसन्न सदसद्विलक्षणं किंतु शून्यमस्थूलादिश्रुतेरित्येवंवादिनः । न च 'शून्यभावेन युञ्जीयात्' इत्यमृतबिन्दूपनिषद्विरोध इति वाच्यम् । भावशब्दान्न केनापि भावयितुं शक्य इति व्युत्पत्तेः, शून्यशब्दस्यापि । **युक्ती**ति इयमग्रे स्वयमेव वक्तव्या । **किंच स ही**त्यादिना । **एवे**ति नीलादिप्रकाशकज्ञानं व्यवच्छिनत्ति । **अभावे**ति समवायिकारणतागमकस्येत्यर्थः । **आत्मे**ति यथा घटाद् घटोत्पत्तौ । **प्रयोजनं** प्रवर्तकं फलं, तदभावान्न स्वत इत्यर्थः । **परत** इति शून्यतत्त्वात् । कारणतावच्छेदकदेशकृतकालकृतपरत्वस्य यथाकथंचित् सर्वत्र सत्त्वेनाविशेषात्**सर्वतः** कारणेभ्यः कार्यमात्राधिककार्येभ्यश्च **सर्वोत्पत्ते**र्दृष्टातिलङ्घनेन **प्रसङ्गात्** ।

भाष्यप्रकाशः ।

प्यभावः । नापि सदसत् । सदसतोरितरेतरविलक्षणत्वादेकस्य सदसद्भावानुपपत्तेः । नापि सदसद्विलक्षणम् । एकस्य तथात्वानुपपत्तेः अदर्शनाच्च । अतः कोटिचतुष्टयनिर्मुक्तं शून्यमेव तत्त्वम्, अभावापत्तिरेव मोक्ष इति । तदिदमसंगतम् । तथाहि । यत्त्वया चतुष्कोटिनिर्मुक्तं शून्यं तत्त्वं व्यवस्थाप्यते, तत् केनचित् प्रमाणेनावगतमुत प्रमाणं विना वस्तुसामर्थ्यात् । नान्त्यः । तथा सत्याकाशवत् सार्वजनीनं स्याद् न वादिनो विप्रतिपद्येरन् । किंच, तत् सामर्थ्यं तत्रास्ति न वा । यद्यस्ति तर्हि तदाधारं शून्यमप्यस्त्येवेति न चतुष्कोटिनिर्मुक्तता । अथ नास्ति, तदापि तथा । नाद्यः । प्रमाणेप्यस्तिनास्तिभ्यां विकल्पिते चतुष्कोटिविधुवनासिद्धेः । किंच । येनावगतं तत् किंप्रमाणं, प्रत्यक्षमनुमानं वा । नाद्यः । सार्वजनीनत्वाभावेन तव प्रत्यक्षस्य प्रतिवाद्यनादरणीयत्वात् । अथ यद्विचारासहं तच्छून्यमित्यनुमातव्यं तदा तवो-दाहरणाभावः । सर्वस्यैव पक्षीकरणात् । तथा च नानुमानस्य सिद्धिः । अथ, घटः शून्यः उक्तरीत्या विचारासहत्वात् पटवत्, इति परोक्तरीतिकप्रयोगेणानुमातव्यं तदा तु सुवर्ण-जन्यकटकादौ तन्तुजन्यपटादौ च व्यभिचारेणोपमृद्य प्रादुर्भावस्य निरस्तत्वाद्भावादेव भावोत्पत्तिः सिद्धैवेति न विचारासहत्वस्य सिद्धिरिति स्वयुक्तिभिरेव दूषितत्वान्न निरा-क्रियत इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

रश्मिः ।

अभाव इति । 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' इति । **नापीति** उत्पद्यत इत्यन्वयः पूर्ववत् । **एकस्येति** सत्त्वमसत्त्वं चैकस्य नास्तीति **नापीति** उत्पद्यत इत्येव पूर्ववत् । **एकस्येति** सद्विलक्षणमसत्, असद्विलक्षणं सदिति द्वैतं त्वेकमिति भावः । भिन्नमुभयादेकमिति चेत्तत्राह **अदर्शनादिति** । **कोटीति** सदसत्सदसत्सदसद्विलक्षणरूप**कोटिचतुष्टयं** तेन **निर्मुक्तम्** । नन्वाकाशवत्सार्वजनीनत्वेपि वादि-विप्रतिपत्तिर्दृश्यत इत्यत आहुः **किंचेति** । **न चतुरिति** असत्कोट्यभावादिति भावः । किंतु सत्कोटौ निवेशः । **तथेति** अभावाधारः शून्यमस्तीति सत्तया **न चतुष्कोटिनिर्मुक्तता** । **नाद्य इति** शून्यं प्रमाणेनावगतमिति पक्षो नेत्यर्थः । **चतुरिति** चतुष्कोटिनिर्मुक्ततासिद्धेः । प्रमाणमपि शून्यमिति शून्येनावगतं शून्यमिति वक्तुं योग्यं नेत्यर्थः । धुञ् कम्पने स्वादिः ल्युट् । उवङ् । धू विधूनने तुदादिर्वा । चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युजिति युच् तु न । अकर्मकत्वाभावात् । चतुष्कोटेः कर्मत्वात् । पठिताविद्यामितिवत् । **सार्वेति** शून्यस्य सार्वेत्यादिः । **अनुमातव्यमिति** । सर्वं शून्यं विचारा-सहत्वादित्यत्र केवलव्यतिरेकिणि व्याप्तिज्ञानविषयं कर्तव्यं शून्यमित्यर्थः । **उदाहरणमन्वये** दृष्टान्तस्तदभावात् । **तथा चेति** सामानाधिकरण्यग्रहे स्थलान्तराभावे च दृष्टान्ताभावेन व्याप्तिज्ञानस्या-सिद्धिः । तथा चाज्ञानरूपा सिद्धिरेव न हेत्वाभासत्वमस्येति स्थितमनुमानपरिच्छेदसमाप्तौ मुक्ताव-ल्याम् । दृष्टान्तार्थं यतते स्म **अथेति** । **उक्तरीत्येति** कोटिचतुष्टयखण्डन**रीत्या** । **परोक्तेति** सामान्यतः पक्षासंभवे विशिष्य पक्षसंभव इति नैयायिकोक्तरीतिकप्रयोगेण । **व्यभीति उपमृद्या-**भावं प्राप्य **प्रादुर्भावस्य** व्यभिचारेणेत्यर्थः । **उपमृद्येति** अभावं प्राप्य । **निरस्तत्वात्** 'नासतो दृष्टत्वात्' इति सूत्रे । **स्वेति** नाप्यभावाद् अभावात्मकत्वस्याभावान्वयस्य च कार्येष्वदर्शनादिति युक्त्या । एवं भावात् स्वतः परतश्चोत्पत्तिः । **स्वयुक्तिभिर्दूषितेति** बहुवचनात् । **इत्यर्थ इति** । आचार्येण व्यासेनेत्यर्थो भाष्ये । आर्हतास्तु द्वितीयाधिकरणे निरस्तीकरणीयाः । चार्वाकस्त्वग्रे प्रतिवक्तव्य इति षट् सौगताः ॥ ३१ ॥

सर्वथानुपपत्तेश्च ॥ ३२ ॥

किं बहुना बाह्यवादो यथा यथा विचार्यते तथा तथा असंबद्ध एवेत्यलं विस्तरेण। चकाराद् वेदविरोधो मुख्यः ॥ ३२ ॥

इति द्वितीयाध्याये द्वितीयपादे पञ्चमं नाभाव उपलब्धेरित्यधिकरणम् ॥ ५ ॥

भाष्यप्रकाशः।

सर्वथानुपपत्तेश्च ॥ ३२ ॥ भाष्यमत्र निगदव्याख्यातम्। एतेनैवात्यसंबद्धत्वबोधनेन केवलदृष्टमात्रानुसारी चार्वाकोपि प्रत्युक्तो ज्ञेयः। ननु यद्यप्यत्र विज्ञानातिरिक्तप्रपञ्चसत्त्वं साधितं, तथापि तृतीयस्कन्धे कापिलेये,

'ज्ञानमेकं पराचीनैरिन्द्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम्। अवभात्यर्थरूपेण भ्रान्त्या शब्दादिधर्मिणा'

इत्यत्र, तथा दशमस्कन्धे

'सत्त्वं रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः। त्वय्यद्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया। तस्मान्न सन्त्यमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः' इत्यत्रैवमन्यत्र च

प्रपञ्चस्य ज्ञानमात्रत्वं कल्पितत्वं चोच्यत इति कथं तद्विरोधः परिहर्तव्य इति चेत्। उच्यते। कपिलेन हि प्रपञ्चं ब्रह्मात्मकत्वेनाजानतां बहिर्मुखतया ब्रह्मभिन्नगुणजन्यपृथगर्थत्वेन जानतां प्रतीतिमादाय तस्या एकदेशस्वस्वभावग्राहित्वेन तादृशप्रतीतिविषयमर्थत्वमपोह्य ज्ञानात्मकब्रह्मरूपता बोध्यते वैराग्यार्थं, न तु ब्रह्मोपादेयार्थरूपताप्यपोह्यत इति ब्रह्मनिर्गुणपदाभ्यामवसीयते।

रश्मिः।

सर्वथानुपपत्तेश्च ॥ ३२ ॥ **निगदेति**। चकारादित्यादिभाष्ये चकारोनुक्तस्य वेदविरोधस्य समुच्चायक इति हृदयम्। **एतेनैवेति** भाष्येणैव। एवकारेण युक्तिव्यवच्छेदः। **रामानुजाचार्यैरस्मिन्सूत्रे** माध्यमिको निराकृतः। तथा सति षट्सु सर्वथानुपपत्तिर्न संभवति। या तु **'स्मृतेश्च'** इति सूत्रेणानुस्मृतिमात्रेण निराकृतात आचार्यैः षट्सु सर्वथाऽनुपपत्तिं बोधयितुं बाह्यवाद इत्युक्तं तदाहुः **अत्यसंबद्धेति**। **चार्वाक** इति। अयं तु लोकायतदर्शनं बृहस्पतिप्रणीतमनुसरति देहात्मवादी प्रत्यक्षैकप्रमाणवादी च। अस्य देहात्मविवेकदर्शनज्ञानिप्रत्यक्षाननुसंधानात्प्रत्यक्षैकप्रमाणवादित्वेऽत्यसंबद्धभाषित्वम्। **पराचीनैरिति** पराङ्मुखैः केवलदृष्टमात्रग्राहकैः। **शब्दादीति** शब्दादिधर्मो यस्य विद्यते स शब्दादिधर्मी तेनार्थरूपेण। द्वात्रिंशेस्ति श्लोकः। **दशमेति** पञ्चाशीतितमेध्याये। **तद्वृत्तय** इति प्रकृतिपरिणामादयः। **उच्यत** इति इयं मतान्तरभाषैरुच्यते। **ब्रह्मेति** प्रकृतिजन्येत्यर्थः। **जानतामिति** सांख्यानाम्। एकोनत्रिंशत्तमे देवहूतेः 'यथा सांख्येषु कथितम्' इति प्रश्नात्। उत्तरस्यापि सांख्यानुसारित्वात्। **तस्या इति** ब्रह्मात्मकेऽन्यथाबुद्धिर्भ्रान्तिरित्यतो भ्रान्तेरित्यर्थः। सर्वजनीना प्रतीतिः कथं भ्रान्त्येत्यत आहुः **एकेति** व्यापकसर्वाकारज्ञानस्यैकदेशः कश्चिदाकारः परिच्छेदश्च तद्ग्रहणेन स्वस्येन्द्रियस्य यः स्वभावः परत्वं तद्ग्रहणेन च तद्ब्रह्मात्मकं निर्गुणं ज्ञानमन्यथागृहीतं भवतीति भ्रान्तिरित्यर्थः। **तादृशेति** भ्रान्तप्रतीतिविषयम्। **अपोह्येति** विशेषदर्शनवद्विद्यमानघटत्वादिप्रकारकं ज्ञानमपोह्य ब्रह्मत्वेन ज्ञानात्मकब्रह्मरूपता घटादीनां बोध्यते इति। **वैराग्यार्थमिति** 'विरागो येन पुरुषो भगवन्सर्वतो भवेत्' इति देवहूतिप्रश्नादिदं कपिलवाक्यं वैराग्यार्थम्। स्फुटं चेदमाकरे। **ब्रह्मोपेति** ब्रह्म उपादेयार्थः ब्रह्मोपादेयार्थस्तद्रूपतापीत्यर्थः। **ब्रह्मनिर्गुणेति**। अत्र ज्ञानमर्थरूपेण भ्रान्त्यावभातीत्युच्यते। तत्र

नैकस्मिन्नसंभवात् ॥ ३३ ॥ (२-२-६)

विवसनसमयो निराक्रियते । ते ह्यन्तर्निष्ठाः प्रपञ्चे उदासीनाः सप्त विभक्तीः

भाष्यप्रकाशः ।

तथा सति कस्तत्र विरोधः । एवमेव दशमस्कन्धीये वाक्येऽपि ज्ञेयम् । तत्रापि सांख्यसिद्धानामेव योगमायाकल्पिततया अभावविधानात् । एवं सर्वत्रावान्तरप्रकरणवशेन वैराग्यार्थं महेन्द्रजालपक्षमिन्द्रियायनसृष्टिपक्षं चादाय मतान्तरसिद्धस्यैव बोधकं ज्ञेयम् । अतो न कोपि क्वापि विरोध इति सर्वं सुस्थम् ॥ ३२ ॥ **इति नाभाव उपलब्धेरित्यधिकरणम्** ॥ ५ ॥

नैकस्मिन्नसंभवात् ॥ ३३ ॥ अधिकरणमवतारयन्ति **विवसनेत्यादि** । एत एव क्षपणका आर्हता जैनाश्चोच्यन्ते । मुक्तकच्छाः पूर्वं दूषिताः, इदानीं विवसना दूष्यन्त इति **वाचस्पतिमिश्राः** । सौगतवज्जैना अपि परमाणुकारणत्वादिकं जगतो वदन्तीत्यनन्तरं जैनपक्षो दूष्यत इति **रामानुजाचार्याः** ।

वस्तुतस्तु विरुद्धधर्माधारत्वं ब्रह्मण्येव प्रमाणसिद्धं, नान्यत्रेति स्थापयितुं तद्दूषणम् ।

रश्मिः ।

ज्ञानं न भ्रमः । नाप्यर्थानुपादानम् । ब्रह्मेति ज्ञानविशेषणात् । ब्रह्मणः समवायित्वं समन्वयाधिकरणे सिद्धम् । अर्थरूपेणेत्यानन्दसंवलने साकारो भवति । तन्मन इन्द्रियेण गृहीतं सयथार्थो भवति । पराचीनैरिन्द्रियैस्तु जनितया भ्रान्त्या गृहीतं भवति । ब्रह्मभिन्नगुणजन्यपृथगर्थत्वेन ग्रहणात् । पृथक्त्वं भ्रान्तिविषयः । तदेतत्पराचीनैरितीन्द्रियविशेषणाल्लभ्यते । पराक्त्वं पृथक्त्वापरपर्यायम् । जगत्यारोप्य गृह्णत इतीन्द्रियधर्मा भ्रान्त्या गृह्यन्त इति । इयं भ्रान्तिरपि सांख्यानां न ब्रह्मवादिनामिति वदति एकमित्यनेन । अस्त्वेवं तथापि ब्रह्मोपादानत्वं त्वपोह्यमेव सत्त्वादिगुणानां जगति दर्शनादत आह **निर्गुणमिति** । एते गुणा ब्रह्मण एव न प्रकृतेः 'सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः' इति वाक्यात् । तदेतदभिसंधायोक्तं **ब्रह्मनिर्गुणपदाभ्यामवसीयत इति** । अन्यथैकं वदेत् । तथा च गुणा भ्रान्त्या सांख्यानां, निर्गुणं तु ब्रह्म ब्रह्मवादिनामिति सिद्धम् । **सांख्यसिद्धानामिति** । अयमर्थः । इदं हि वसुदेववाक्यम् । इदमपि भगवतोपगतम् । तातत्वेन वसुदेववरणात् । परं सूचितमेतत् । उदाहृतं 'तत्त्वसंघः सांख्यसिद्ध' इति 'वचो वः समवेतार्थं तातैतदुपमन्महे । यन्नः पुत्रान्समुद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः' इति भगवद्वाक्यात् । तत्त्वसंघस्तत्त्वग्रामः । निबन्धेऽपि 'गुरुत्वं देवतात्वं वा न स्वीकृत्य सुतत्वतः । तदुक्तमेव निखिलं सर्वं ब्रह्मेति बोधितम्' । 'तदुक्तम्' वसुदेवोक्तम् । भगवता इति पूरणीयम् । अतिदिशन्ति स्म **एवमिति** । **अवान्तरेति** तानि प्रकरणानि निबन्धतत्त्वदीपावरणभङ्गेषु प्रसिद्धानि । **इन्द्रियायनेति** आन्तरालिकसृष्टिपक्षम् । **मतान्तरेति** । प्रकृते तु मतान्तरं सांख्यमित्युक्तम् ॥ ३२ ॥

इति पञ्चमं नाभाव उपलब्धेरित्यधिकरणम् ॥ ५ ॥

नैकस्मिन्नसंभवात् ॥ ३३ ॥ एत इति विवसनाः । संगतिं वक्तुमाहुः **मुक्तेत्यादि** । **वाचस्पतीति** । तथा चावसरः संगतिः, सामान्या तु प्रसङ्गसंगतिरिति भावः । **रामानुजेति** । तथा च प्रसङ्गः संगतिरित्येषामाशयः । ननु संगतिरन्याधिकरणवदवक्तव्येति चेत्तत्राहुः **वस्तुतस्त्विति** । 'आत्माऽकार्त्स्न्यम्' इत्यत्रात्मस्मारणादाहुः **विरुद्धेत्यादि** । एवकारेणैकस्मिन्सप्तप्रकारयोजनमन्यत्र व्यवच्छिद्यते । **नान्यत्रेति** नीले पीते स्तम्भे कुड्ये । **तद्दूषणमिति** अन्यत्र विरुद्धसप्तविभागदूषणम् ।

परेच्छया वदन्ति। स्याच्छब्दोऽभीष्टवचनः। अस्तिनास्त्यवक्तव्यानां प्रत्येकसमुदायाभ्यां स्यात्पूर्वकः सप्तप्रकारो भवति। तदेकस्मिन् योजयन्ति।

भाष्यप्रकाशः।

सूत्रेषु तथैव प्रतीतेरिति प्रतिभाति। दूष्यांशमनुवदन्ति ते हीत्यादि। यतस्त ईदृशा अतो भङ्गीरूपान् सप्त विभागान् परेषां विवक्षावशेन वदन्ति। तत्रायं प्रकारः। **स्याच्छब्दोऽभीष्टवचनः**। इववाएवप्रभृतीनामुपमादिवाचकत्वस्य सुप्रसिद्धत्वात्। तथाऽयमप्यभीष्टवाचकोऽनेकान्तं द्योतयति। अतोऽस्त्यादिभेदैः समयस्तेषां सप्तप्रकारो भवति। तत्प्रकारसप्तकमेकैकस्मिन् योजयन्तीत्यर्थः। परेच्छा त्वग्रे वाच्या। सांप्रतं तु दूषणं प्रपञ्चयितुं ग्रन्थान्तरोक्तं तन्मतमन्यदप्यनूद्यते। ते ह्येवं मन्यन्ते। जीवाजीवात्मकं जगदेतन्निरीश्वरम्। तेन सङ्क्षेपतो द्वावेव जीवजडौ बोधाबोधात्मकौ पदार्थौ। विस्तरतस्तु जगत् षड्द्रव्यात्मकम्। तानि च द्रव्याणि जीवधर्माधर्मपुद्गलकालाकाशाख्यानि। अत्र जीवास्त्रिविधाः। बद्धा योगसिद्धा मुक्ताश्च। धर्मो नाम गतिमतां गतिहेतुभूतो द्रव्यविशेषो जगद्व्यापी। अधर्मश्च स्थितिहेतुभूतो व्यापी। पुद्गलो नाम वर्णगन्धरसस्पर्शवद्द्रव्यम्। तच्च द्विविधं, परमाणुरूपं तत्संघातात्मकपवनज्वलनसलिलधरणीतनुभवनादिकं च। कालस्तु अभूदस्ति भविष्यतीतिव्यवहारहेतुरणुरूपो द्रव्यविशेषः। आकाशोऽप्येकोऽनन्तप्रदेशश्च। तेषु परमाणुव्यतिरिक्ताः पञ्चास्तिकाया इति संगृह्यन्ते। जीवास्तिकायो, धर्मास्तिकायोऽधर्मास्तिकायः

रश्मिः।

सूत्रेष्विति आत्मशब्दाक्षिप्तात्मशब्दाभ्यां संबद्धेषु। **प्रतिभातीति**। न चासंगतमधिकरणम्। संगतेः पूर्वोक्ताया एव सत्त्वात् सावान्तरेति। एककार्यत्वं च सा समन्वयसूत्रोक्तमभिन्ननिमित्तोपादानत्वम्। अध्यायोक्तसमन्वयश्च कार्यं, परमतनिराकरणं च कारणम्। अत्र मते विशेषः समाप्तौ भवति। **भङ्गीरूपानिति** अभङ्गा भङ्गाः संपद्यन्ते तथाभूता भङ्गीभूतास्ते च रूपा इति भङ्गीरूपास्तान्। **भाष्ये सप्तविभक्तीः** सप्तविभागान्। **परेच्छया** नाम परेषां विवक्षावशेन। **स्याच्छब्द** इति। भाष्यमवतारयन्ति स्म तत्रायमिति। **स्याच्छब्द** इति व्याख्येयं भाष्यम्। **स्यादिति** विभक्तिप्रतिरूपमव्ययम्। निपातानां द्योतकता न वाचकतेति। अभीष्टवचनं व्याचक्षते स्म **इव वा** इति सुप्रसिद्धत्वादिति। नैयायिकमते तथा। वैयाकरणास्तु प्रादीनामिव चादीनामपि द्योतकत्वमिच्छन्ति। **तथेति** इवादीनामुपमावाचकत्वस्य सुप्रसिद्धत्वं तथेत्यर्थः। **अनेकान्तमिति**। अनिश्चितमर्थम्। **समयः** अभ्युपगमः। **एकैकस्मिन्निति** घटपटादौ सर्वत्र विरुद्धधर्मास्तित्वनास्तित्वे आदाय तथेत्यर्थः। **अग्र** इति अनन्तवीर्यनाम्नः स्याद्वादिनः कारिकोपन्यासावसरे। **ग्रन्थान्तरोक्तमिति** शंकरभाष्याद्युक्तम्। तत्र रामानुजाचार्यग्रन्थोक्तानुवादमुपक्षिपन्ति स्म **जीवेति**। शंकरभाष्ये कालो नोक्तः। रामानुजभाष्ये तूक्तः। **जगद्व्यापीति** व्यापित्वमननुगामित्वम्। **व्यापीति** पूर्वोक्त एव। **पुद्गल** इति पूर्यते गलतीति। **तत्संघातेति** अन्ये पार्थिवविकारा आदिशब्दार्थाः। **तेष्विति**। **परमाण्विति** पुद्गलः परमाणुस्तद्व्यतिरिक्ताः। **इतीति** इत्यपि

भाष्यप्रकाशः ।

पुद्गलास्तिकायः, आकाशास्तिकायश्चेति । अनेकदेशवर्तिनि द्रव्ये अस्तिकायशब्दः । तत्र जीवास्तिकायस्त्रिविधजीवात्मको व्याख्यातः । धर्मास्तिकायः प्रवृत्त्यनुमेयः । अधर्मास्तिकायः स्थित्यनुमेयः । पुद्गलास्तिकायस्तु परमाणुव्यतिरिक्तानि चत्वारि भूतानि, स्थावरं जङ्गमं चेति । परमाणवस्तु नाऽस्तिकाय इत्युच्यन्ते । परमाणवश्चैतेषां मते एकविधाः, न तु चतुर्विधाः । पृथिव्यादिभेदस्तु परिणामभेदकृतः । आकाशास्तिकायो द्वेधा । लोकाकाशोऽलोकाकाशश्चेति । तत्रोपर्युपरिस्थितानां लोकानामन्तर्वर्ती लोकाकाशः । तेषामुपरि मोक्षस्थानमलोकाकाशस्तत्र हि न लोकाः सन्तीति । तदेवं जीवाजीवपदार्थौ पञ्चधा प्रपञ्चितौ । जीवानां मोक्षोपयोगिनमपरमपि सङ्ग्रहं कुर्वन्ति । जीवाजीवास्रवसंवरनिर्जरबन्धमोक्षा इति जीवाजीवौ प्रपञ्चितौ । तत्र जीवस्तु ज्ञानदर्शनवीर्यसुखगुणः सावयवो देहपरिमाणः । अजीवस्तु जीवभोग्यं वस्तुजातम् । आस्रवसंवरनिर्जरास्त्रयः पदार्थाः प्रवृत्तिलक्षणाः प्रपञ्च्यन्ते । द्वेधा प्रवृत्तिः । सम्यङ् मिथ्या च । तत्र मिथ्याप्रवृत्तिरास्रवः । आस्रावयति पुरुषं विषयेष्वितीन्द्रियप्रवृत्तिरास्रवः । इन्द्रियद्वारा हि पौरुषं ज्योतिर्विषयान् स्पृशद् रूपादिरूपेण परिणमत इति । अन्ये त्वार्हताः कर्माण्यास्रवमाहुः । तानि हि कर्तारमभिव्याप्यास्रवन्ति, कर्तारमनुगच्छन्तीत्यास्रवाः । सेयं मिथ्याप्रवृत्तिरनर्थहेतुत्वात् । संवरनिर्जरौ तु सम्यक्प्रवृत्ती । तत्र शमदमादिरूपा प्रवृत्तिः संवरः । सा ह्यास्रवं स्रोतसो द्वारं संवृणोतीति संवर इत्युच्यते । निर्जरस्त्वनादिकालप्रवृत्तिकषायकलुषपुण्यापुण्यप्रहाणहेतुस्तप्तशिलारोहणास्नानमौनवीरासनतिष्ठतिभोजनकेशोल्लुञ्चनादिलक्षणमर्हदुपदेशावगतं तपः । तद्धि सुखदुःखोपभोगेन पुण्यापुण्यं निःशेषं जरयतीति निर्जर इत्युच्यते । बन्धस्त्वष्टविधं कर्म । तत्र ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं मोहनीयमन्तरायमिति चतुर्विधं घातिकर्म । तत्र सम्यग् ज्ञानं न मोक्षसाधनम् । न हि ज्ञानाद्वस्तुसिद्धिरतिप्रसङ्गादिति विपर्ययो ज्ञानावरणीयं कर्मोच्यते । आर्हतदर्शनाभ्यासान्न मोक्ष इति ज्ञानं दर्शनावरणीयं

रश्मिः ।

संगृह्यन्ते । **शब्द** इति सांकेतिक इत्यर्थः । इतः परं शांकरमतानुवादः । **जीवास्तीति** जीवश्चासावस्तिकायश्चेति विग्रहः । **प्रवृत्तीति** प्रवृत्तिर्धर्मज्ञानकार्यमित्युक्तम्, 'गतिहेतुभूत' इत्यनेन । तथा च धर्मज्ञानवान् प्रवृत्तेरित्यनुमानानुमेयः । **स्थितीति** स्थितिरधर्मकार्यमित्युक्तम् । अधर्मश्च स्थितिहेतुभूत इत्यनेन । अधर्मवान्स्थितेरित्यनुमानानुमेयः । पुद्गलास्तिकायः षोढेत्यनुवदन्ति स्म **पुद्गलेति** । पूर्यते गलतीति पुद्गलः स चासावस्तिकायश्चेति समासः । **एकविधा** इति । एतच्च रामानुजभाष्येनूदितम् । **जीवानामिति** । पुनरिममारभ्य रामानुजाचार्यभाष्यमनुवदन्ति स्म, शंकरभाष्येप्यस्ति । **इन्द्रियेति** । किंचिद्भेदेनात्मा मनसा संयुज्यत इत्यादिरत्र । **रूपादीति** द्रव्यं नेच्छन्ति । **परिणमत** इति ज्योतीरूपं जगदिच्छन्ति । **तानीति** कर्माणि । **आस्रव** इति । रामानुजाचार्यास्तु तद्भोगोपकरणमिन्द्रियादिकमास्रव इत्याहुः । **सा हीति** । आस्रवमिन्द्रियप्रवृत्तिं स्रोतसो द्वारं मन इन्द्रियस्य द्वारभूतां निरुणद्धीत्यर्थः । तथा च समाधिः संवर इत्यर्थः । तिष्ठतीति विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययं श्तिपा निर्देशो वा स्थानकर्ता । **अर्हदिति** जिनोपदेशावगतम् । **कर्मेति** इन्द्रियविक्षेपरूपं कर्म । **अतीति** घटज्ञानेन घटासिद्धिदर्शनादतिप्रसङ्गः घटसिद्धिप्रसङ्गस्तस्मात् । **इतीति** एवंविधः । **विपर्ययः** मोक्षसाधनत्वेन यज्ज्ञानं तदावरयितुं योग्यम् । **दर्शनं** शास्त्रं तदावरयितुं

भाष्यप्रकाशः ।

कर्मबहुषु विप्रतिपिद्धेषु मोक्षमार्गेषु तीर्थंकरैरुपदिष्टेषु विशेषानवधारणं मोहनीयं कर्म। सन्मोक्षमार्गप्रवृत्तानां तद्विघ्नकरं विज्ञानमन्तरायं कर्म । तद्धि जीवगुणानां ज्ञानदर्शन-वीर्यसुखानां घातकरमिति घातिकर्मेत्युच्यते । वेदनीयं नामिकं गोत्रिकमायुष्कमिति चतुर्विधमघातिकर्म । तद्धि शरीरसंस्थानतदभिमानतत्स्थितितत्प्रयुक्तसुखदुःखोपेक्षाहेतुभूतम् । तत्र वेदनीयं नाम शुक्लपुद्गलविपाकहेतुः । तद्विबन्धोपि न मोक्षपरिपन्थी । तत्त्वज्ञानाविघातकत्वात् । शुक्लपुद्गलारम्भकं वेदनीयकर्मानुगुणं नामिकं कर्म। तद्धि शुक्ल-पुद्गलस्याद्यावस्थां कललबुद्बुदादिरूपामारभते । गोत्रिकं त्वव्याकृतं ततोऽप्याद्यं शक्ति-रूपेणावस्थितम् । आयुष्कं तूत्पादद्वारेणायुष्कायति कथयतीति । तान्येतानि शुक्लपुद्गलाश्र-यत्वादघातीनि कर्माणि । तदेतत्कर्माष्टकं पुरुषबन्धकत्वाद् बन्ध इत्युच्यते । मोक्षस्तु विग-लितसमस्तक्लेशतद्वासनस्य अनावरणज्ञानस्य सुखैकतानस्य स्वरूपाविर्भावः । तादृशस्य उपरि-देशावस्थानं वा । स च बन्धनिवृत्तौ नित्यसिद्धार्हदनुग्रहाद् भवतीति । एवं जीवादयः पदार्था व्याख्याताः । एतत् सर्वं वस्तुजातं सत्त्वासत्त्वनित्यत्वानित्यत्वभिन्नत्वाभिन्नत्वादिभिरनैका-न्तिकमिच्छन्तः सप्तभङ्गीनयं नाम न्यायमवतारयन्ति । स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति च नास्ति च, स्यादवक्तव्यः, स्यादस्ति चावक्तव्यः, स्यान्नास्ति चावक्तव्यः, स्यादस्ति च स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्चेति । स्याच्छब्दो निपातः । यथाहुः ।

रश्मिः ।

योग्यम् । **कर्मेति** । कर्माणि बहूनि येषु मार्गेषु । **विप्रतीति** यथाऽस्मन्मते कर्मचित्तशुद्धस्य भक्तिः सा नास्तीत्येवं विप्रतिषिद्धेषु । **ज्ञानेति** यथाक्रमं बोध्यम् । **शुक्लेति** सलिलं **शुक्ल-पुद्गलस्तस्य** जाठराग्निवायुभ्यामीषद्घनीभावो **विपाकस्तस्य हेतुः । तद्विबन्धः** कललबुद्बुदावस्थया विबन्धः । **तत्त्वेति** शुक्लपुद्गले शरीरे तत्त्वज्ञानात् । **अव्याकृत**मित्यादि रूपनामभ्यामव्याकृ-तम् । कललबुद्बुदादितोपीति **ततोऽपी**त्यस्यार्थः । **शक्तीति** तस्य तत्त्वज्ञानानुकूलदेहपरिणाम-शक्ति**र्गोत्रिक**मिति **रत्नप्रभा । उत्पादेति** रत्नप्रभायां तु शुक्रशोणितमिश्रित**मायुष्कम्** । शुक्लपुद्गलः सलिलमिति व्याख्यातम् । **मोक्ष** इति विगलिताः समस्ताः क्लेशाः तद्वासनाः क्लेशजनक-संस्कारा यस्य ज्ञानस्य पुंसः, न विद्यते आवरणं यस्य तस्य स्वाभाविकस्य, **तादृशस्येति** उक्तपुंसः । **स चेति** मोक्षः । **अनैकान्तिक**मिति अनिश्चितं वादकवलितमित्यर्थः । **सप्तेति** सप्तानां भङ्गानां अस्तित्वादीनां समाहारः सप्तभङ्गी तस्या नयो न्यायस्तम् । अस्तित्वनास्तित्वविरुद्धधर्म-द्वयमादायैकस्मिन्घटपटादौ योजयन्तीत्यर्थः । स्यात्पूर्वकाः षट् । सप्तमस्तु स्यात्पूर्वकः स्यान्मध्यमश्च एते सप्तभङ्गा इति व्यवह्रियन्ते । स्याच्छब्दोऽभीष्टवचन इत्युक्तम् । अभीष्टं घटाद्यस्तीत्यर्थः । अभीष्टं घटादि नास्तीति द्वितीयभङ्गार्थः । यदि स्यात्कथंचिदर्थकं तदा घटत्वादिरूपेण कथंचिदस्ति । सदेकरूपत्वे प्राप्यात्मनाप्यस्त्येव स इति तत्प्राप्तये यत्नो न स्यादतः प्राप्तत्वादिरूपेण कथंचिन्नास्तीत्यर्थः। वस्तुनोस्तित्ववाञ्छायामाद्यः **स्यादस्तीति** भङ्गः । प्रवर्तनास्तित्ववाञ्छायां **स्यान्नास्तीति** द्वितीयः । क्रमेणोभयवाञ्छायां **स्यादस्ति च नास्ति चेति** तृतीयः । युगपदुभयवाञ्छायामस्ति नास्तीति पदद्वयस्य सकृदुक्रमशक्यत्वात्**स्यादवक्तव्य**श्चतुर्थः । आद्यचतुर्थभङ्गयोर्वाञ्छायां पञ्चमः **स्यादस्ति चाव-क्तव्यः** । द्वितीयचतुर्थभङ्गवाञ्छायां **स्यान्नास्ति चावक्तव्य** इति षष्ठः । तृतीयचतुर्थभङ्गवाञ्छायां **स्यादस्ति च स्यान्नास्ति चावक्तव्य** इति सप्तमो भङ्गः, इति विभागो **रत्नप्रभायां** दर्शितः ।

तद् विरोधेनासंभवादयुक्तम् ॥ ३३ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

'वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रति विशेषणम् ।
स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात्तिङन्तप्रतिरूपकः' इति ।

तदिदं दूषयन्ति तद् विरोधेनासंभवादयुक्तमिति । अयमर्थः । योऽयं सप्तभङ्गीनयो नाम न्यायः सर्वत्रावतारितः स त्वयाभ्युपगतेषु जीवधर्माधर्मपुद्गलकालाकाशेषु तदवान्तरविधासु अस्तिकायादिषु तद्धर्मेषु आस्रवसंवरनिर्जरेषु बन्धमोक्षसाधनेषु तत्तत्फले बन्धे मोक्षे चावतरन् सर्वानेव त्वदुक्तान् पदार्थान् सत्त्वासत्त्वादिभिः स्वरूपतो नित्यत्वानित्यत्वादिभिर्धर्मतोऽवस्थातश्च सन्दिग्धान् कुर्वंस्तद्दर्शनस्यातिपेलवत्वं तीर्थकरस्यार्हतश्च भ्रान्तिमेव द्योतयन् प्रेक्षावत्प्रवृत्तिमेव निरुणद्धीत्ययुक्तम् । नच यथा घटो घटरूपेणास्ति, पटरूपेण नास्त्येवं सर्वं स्वरूपेणास्ति रूपान्तरेण नास्तीति कथमसंभव इति वाच्यम् । एवं सति येन रूपेणास्ति तेन रूपेणास्त्येव, येन नास्ति तेन नास्त्येवेति तत्तद्रूपे तद्भङ्गे तद्विरुद्धभङ्गासंभवाद्, वस्तुतस्तु विषयभेदेनास्तिनास्त्योस्तत्रैकान्त्याभञ्जकतया भङ्गत्वस्यैवाभावाच्च सप्तभङ्गीनयस्यासार्वत्रिकप्रसङ्गः । यदि च तत्राप्यस्ति सप्तभङ्गी, तदा तत्पदार्थस्वरूपमस्तीत्यपि स्यान्नास्तीत्यपीति स्वरूपानध्यवसानप्रसङ्गः । किंच । ये भङ्गरूपाः सप्तार्थास्तत्रापि सप्तभङ्गीसद्भावादेकोनपञ्चाशद्भङ्गीति प्रसङ्गः । तेऽपि यथा त्वयोच्यन्ते तथाऽन्यथा वेत्यनध्यवसानप्रसङ्गश्च । नच सर्वमनैकान्तिकमित्यवधारणं निश्चितमेवेति वाच्यम् । अवधारणस्य सर्वमध्यपातेन तत्रापि सप्तभङ्ग्युपनिपातात् तस्याप्यनिश्चयप्रसङ्गात् । अतो भङ्गानां परस्परविरोधेनैकस्मिन् धर्मिण्यसंभवादयुक्तमेवेदं दर्शनमिति । किंच । या एषा सप्तभङ्गी एकैकस्मिन् योज्यते सा केन प्रमाणेन, कुत्र वाऽवधृता इति वक्तव्यम् । प्रत्यक्षेणैव सर्वत्रेति चेन्न । सर्वत्रावध्रियमाणस्य सर्वजनीनत्वदर्शनान्न तत्र वादिनां विप्रतिपत्तिः स्यात् । प्रत्यक्षस्य निश्चयाङ्गीकारे च तत्र नास्तीत्यादिभङ्गनिवृत्त्या त्वन्न्यायस्य सार्वत्रिकत्वं च भज्येत । कथनादवक्तव्यत्वं भज्येत । एवं प्रमाणान्तरेणावधारणेऽपि ज्ञेयम् ।

रश्मिः ।

वाक्येष्विति सप्तसु । **गम्यं** अस्ति नास्त्यादि । **अर्थयोगित्वं** अर्थविशेषणत्वम् । **सर्वत्रेति** घटपटादौ । **सत्त्वासत्त्वेति** **सत्त्वं** स्यादस्ति **असत्त्वं** स्यान्नास्तीत्यादिपूर्वोक्तप्रकारेण । **नित्यत्वेति** नित्यत्वं स्यादस्ति अनित्यत्वं स्यान्नास्तीत्यादिप्रकारेण । **संदिग्धानिति** विरुद्धकोटिद्वयावगाहिज्ञानविषयान् । **अतिपेलेति** पिल क्षेपे चुरादिः परस्मैपदी अत्यन्ताक्षेपवत्त्वम् । अतिपेशलवत्त्वं वा अतिक्रान्तपेशलवत्त्वम् । **भ्रान्तिमिति** । यथा रज्जुः सर्प इत्यत्र तामसे ज्ञाने तमसि रजोवैशिष्ट्ये रज्जुर्वा सर्पो वेति संशयो विशेषदर्शनोत्तरमपि तथा । **प्रेक्षावन्तः** पण्डिताः । अयं दोषो नैयायिकप्रसिद्धिं **विरुणद्धीति** । वस्तुतस्तुपक्षमाहुः **वस्तुत** इति । **विषयेति** । स्यादस्तीत्यत्रास्तीत्यस्य विषयः स्यात्पदवाच्यो घटादिः सत्ताश्रय इत्यर्थः । स्यान्नास्तीत्यत्र नास्तीत्यस्य विषयः प्रतियोगी स्यादवाच्य इति विषयभेदेनेत्यर्थः । ऐकान्त्येति निश्चयाभञ्जकतया । **तत्रापीति** । **विषयभेदे**पि । **स्वरूपेति** । **अध्यवसानं** निश्चयः । **एकोनेति** सप्तानामेकैकस्य सप्तधा विभागे एकोनपञ्चाशद्भङ्गी भवतीति । समुदाये सप्तभङ्गयोजने यो दोषस्तमाहुः **त** इति सप्तभङ्गाः । **अध्यवेति** । निश्चयप्रसङ्गः प्रथमद्वितीयभङ्गाभ्यामित्यर्थः । **अनैकान्तिकम**निश्चितस्वरूपम् । **निश्चयेति** स्यादस्तीति प्रथमभङ्गाङ्गीकारे । **कथनादिति** प्रत्यक्षेण स्यादस्तीति कथनादवक्तव्यत्वं चतुर्थो भङ्गो भज्येत । **प्रमाणान्तरेति** अनुमानादिना प्रथमभङ्गाङ्गीकारे द्वितीयादिभङ्गनिवृत्ति-

भाष्यप्रकाशः ।

यदि च सर्वं वस्तुजातं द्रव्यपर्यायात्मकमिति द्रव्यात्मना सत्त्वैकत्वनित्यत्वादिकं व्युत्पाद्यते । पर्यायात्मना च तद्विपरीतं व्युत्पाद्यते पर्यायाश्च द्रव्यस्यावस्थाविशेषास्तेषां भावाभावरूपत्वादिकं सर्वमुपपन्नमित्युच्यते तदाप्येकस्य वस्तुन एकस्मिन् कालेऽस्तित्वनास्तित्वयोरसंभव एव । उत्पादविनाशशालित्वतद्वैपरीत्यरूपानित्यत्वनित्यत्वयोश्चासंभव एव । इदं च कालभेदेऽपि न संभवतीत्ययुक्त एवायमभ्युपगमः । यत्तु कश्चिदनन्तवीर्यनामा स्याद्वादी ।

'तद्विधानविवक्षायां स्यादस्तीति गतिर्भवेत् । स्यान्नास्तीति प्रयोगः स्यात्तन्निषेधे विवक्षिते ॥
क्रमेणोभयवाञ्छायां प्रयोगः समुदायवान् । युगपत्तद्विवक्षायां स्यादवाच्यमशक्तितः ॥
आद्यावाच्यविवक्षायां पञ्चमो भङ्ग इष्यते । अन्त्यावाच्यविवक्षायां षष्ठभङ्गसमुद्भवः ॥
समुच्चयेन युक्तश्च सप्तमो भङ्ग उच्यते' ।

इति परेच्छाकृतव्यवस्थया सप्तभङ्गान् प्रतिपादयामास । युगपदस्तित्वनास्तित्वयोर्विवक्षायां क्रमवर्तित्वादुभयं युगपदवाच्यम् । आद्यास्तित्वभङ्गोऽन्त्येनासत्त्वेन सह युगपदवाच्यः । अन्त्यश्चाद्येन भङ्गेन सह युगपदवाच्यः । समुच्चितरूपश्चान्य एकैकेन सह युगपदवाच्य इति तदर्थं चाह ।

अत्रोच्यते । ये एते सप्तभङ्गा विवक्षाभेदेनोपपादितास्ते किं वस्तुनो नैसर्गिका धर्मा, आगन्तुका वा, आरोपिता वा, तद्विषया वा । नाद्यः । नैसर्गिकस्य धर्मस्य स्वभावत एव वस्तुषु

रश्मिः ।

रित्यर्थः । अनुमानं तु सर्वः प्रथमभङ्गः स्यादस्ति, प्रकारान्तरदर्शनात् । घटादिवत् । न चात्र पक्षतावच्छेदकसाध्यतावच्छेदकयोरैक्यमिति सिद्धसाधनमिति वाच्यम् । सिषाधयिषासत्त्वेन सिषाधयिषाविरहविशिष्टायाः सिद्धेरभावो वर्तत इति पक्षतासत्त्वे सर्वत्वस्य पक्षतावच्छेदकत्वेन तयोर्भेदात् । एवं शब्दप्रमाणेनावधारणं प्रथमभङ्गः स्यादस्तीति । एवमुपमानमपि । प्रथमभङ्गस्तृतीयभङ्गसदृश इति प्रथमभङ्गपदार्थमजानन्तं प्रत्युक्ते प्रथमभङ्गदर्शने नास्ति चेत्संज्ञाभावादयं प्रथमभङ्गपदवाच्य इत्युपमितिरिति । **द्रव्येति** । **अवस्थात्र** पर्यायः कललबुद्बुदादिः शक्तिरूपा आयुःकथनरूपा च । **इदं चेति** उत्पादविनाशशालित्वरूपमनित्यत्वं तद्वैपरीत्यरूपं नित्यत्वं चैकस्मिन्वस्तुनि **कालभेदेपि न संभवती**त्यर्थः । **तद्विधाने**ति वस्तुविधानकथनपरवाञ्छायाम् । **स्यादस्ती**ति घटादिः कथंचिदस्तीति । **तन्निषेध** इति वस्तुनिषेधे । **उभये**ति वस्तुविधाननिषेधवाञ्छायाम् । **समुदायवान्** तृतीयभङ्गवान् । चतुर्थमाह **युगपदि**ति । **तद्विवक्षायां** भावाभावविवक्षायाम् । **पञ्चम** इति स्यादस्ति चावक्तव्यः । **अन्त्ये**ति स्यादस्ति स्यान्नास्तीत्येनयोरन्त्यः स्यान्नास्तीति तस्यावाच्यविवक्षायाम् । **षष्ठे**ति स्यान्नास्ति चावक्तव्य इत्यस्य **भङ्गस्य समुद्भवः** । **समुच्चयेने**ति । षष्ठपञ्चमौ चकारेणोक्तौ अवक्तव्यसमुच्चये एकेनाव्यक्तेनायुक्तः । **सप्तम** इति स्यादस्ति च स्यान्नास्ति चावक्तव्यः । **परेच्छे**ति स्वस्येच्छायां तु हृदये व्यवस्था कृता स्यात् । **क्रमे**ति उभयोः क्रमवर्तित्वात् । **असत्त्वे**ति द्वितीयभङ्गेन । **समुच्चिते**ति । षष्ठपञ्चमावक्तव्यसमुच्चयरूपः । **अन्य** इति सप्तमः । **एकैकेने**ति आद्येन सहान्त्यस्यान्त्येन सहाद्यस्य । **तदर्थ**मिति । युगपदिति कारिकाद्वयार्थः । **नैसर्गिका** इति घटत्वादय इव । **आगन्तुका** इति सच्छिद्रत्वादय इव । **आरोपिता** इति शुक्तिरजतादय इव । **तद्विषया** आरोपविषयाः ।

एवं चात्माऽकात्स्न्र्यम् ॥ ३४ ॥

ननु कथं बहिरुदासीनस्य तद्दूषणमत आह । एवमपि सति आत्मनो वस्तुपरिच्छेदादकात्स्न्र्यं न सर्वत्वम् । अथवा शरीरपरिमाण आत्मा चेत् तदा सर्वशरीराणामतुल्यत्वादात्मनो न कात्स्न्र्यं न कृत्स्नशरीरतुल्यत्वम् ॥ ३४ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

सत्ताया नियततया सप्तानामपि भङ्गानां विवक्षां विनापि सत्त्वप्राप्तेर्विवक्षानिवेशनस्य तत्राप्रयोजकत्वात् । न द्वितीयः । एकान्तस्य कस्यापि नैसर्गिकस्याभावे आगन्तुकस्यापि दृष्टविरोधेनाशक्यवचनत्वात् । अत एव न तृतीयोपि । आरोपितैर्भङ्गैर्वास्तवधर्मानैकान्त्यस्य कर्तुमशक्यत्वेन तस्य वैयर्थ्याच्च । न तुरीयः । अनया भङ्गकल्पनया नैसर्गिकस्यानैकान्तित्वायोगात् । नाप्येषां नैसर्गिकत्वम् । परस्परविरोधप्रदर्शनेन प्राचीनैरेव दूषितत्वात् । अतः सप्तानां भङ्गानामितरेतरविरोधेनासंभवादयुक्तमेवैकत्र निवेशनम् ॥ ३३ ॥

एवं चात्माऽकात्स्न्र्यम् ॥ ३४ ॥ सूत्रमवतारयन्ति **नन्वित्यादि** । व्याकुर्वन्ति **एवमित्यादि** । एवमात्मनिष्ठतया तद्दूषणेनङ्गीकृतेपि सति परमाणुभ्य एव सृष्ट्यङ्गीकारेणात्मनो वस्तुपरिच्छेदाङ्गीकाराद् अकात्स्न्र्यं सर्वत्वं न भवति । तथा च मोक्षदशायामलोकाकाशवर्तित्वेन तत्कृतावरणसंभवान्निरावरणप्रतिज्ञाहानिः । किंच । सर्ववस्तुष्वात्माभावादात्मनामस्तिकायत्वप्रतिज्ञाहानिश्चेत्यर्थः । अथाकाशावरणं नावरणम् । दिगम्बरेष्वनावृतत्वव्यवहारात् । आत्मनामसर्वत्वेपि जातिवत् तत्र तत्र व्याप्तेः सुवचनत्वेन जीवास्तिकायस्य न हानिरित्याशङ्क्य पक्षान्तरमाहुः **अथवेत्यादि** । यथा बहिर्विरोधेन सप्तभङ्गायोगो दूषणम्, एवमेव देहपरिमाणात्मवादाङ्गीकारेण देहानां सर्वेषां व्यक्तिभेदेनावस्थाभेदेन च

रश्मिः ।

अप्रयोजकेति अप्रयोजकत्वापातात् । **एकान्तस्येति** निश्चितस्य धर्मस्येत्यर्थः । **अभाव इति** यथा ब्राह्मण्यादेः 'त्रिभिर्नश्यति ब्रह्मत्वं हालाहलहलाहलैः' इति वाक्यात् । **दृष्टेति** दृष्टमसच्छिद्रत्वादि । **अत एवेति** आरोपितानामागन्तुकत्वविशेषत्वादेव । **वास्तवधर्मेति** वास्तवधर्माणामनिश्चितत्वस्य । **तस्येति** आरोपितभङ्गस्य । **अनयेति** आरोपविषयभूतया । **नैसर्गिकस्येति** नैसर्गिकस्य घटत्वादेः । **अनैकान्तिकत्वमनिश्चयविषयत्वं तस्यायोगात्** । भङ्गानामेवारोपविषयत्वात् । आरोपविषयः सोऽनैकान्तिक इति शुक्तिरजतादौ दर्शनात् । तथा चानैकान्तिकवादार्थं भङ्गाङ्गीकारो व्यर्थ इत्यर्थः । **एषामिति** भङ्गानाम् । **प्राचीनैरिति** । **एकत्रेति** ब्रह्मणि तु सर्वं विरुद्धं संभवति । विद्वत्प्रत्यक्षात् 'नहि विरोध उभयं भगवति' इति शब्दाच्च ॥ ३३ ॥

एवं चात्माऽकात्स्न्र्यम् ॥ ३४ ॥ **तद्दूषणे** तन्मते दूषणे । **आत्मन इति** । जगति समवाय्याकाङ्क्षापूरणात्तथेत्यर्थः । **वस्तु** शरीरं तेन **परिच्छेदस्तस्याङ्गीकारात्** । वस्त्वात्मा वा । **सर्वत्वमिति** । तथा च देहमात्रमात्मेति घटपटादिरूपताकाशरूपता च न भवति । **अलोकेति** लोकोत्तराकाशवर्तित्वेन । **तत्कृतेति** आकाशकृतेत्यर्थः । तच्च जीवभिन्नमित्यावरणं संभवति । **अस्तिकायत्वेति** जीवोस्तिकायः जीवोनेकदेशवर्ति द्रव्यमिति **प्रतिज्ञाया हानिः** । **जातिवदिति** । एष सामान्यं विकल्पमात्रमभ्युपगच्छति न वस्तु तथा च विकल्पवदित्यर्थः । **तत्र तत्र घटपटादौ** ।

न च पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः ॥ ३५ ॥

शरीराणामवयवोपचयापचयानुसारेणात्मनोपि देवतिर्यङ्मनुष्येषु अवयवोपचयापचयाभ्यां तत्तुल्यता स्यात्। तथा सति पर्यायेणाविरोध इति न वक्तव्यम्। तथा सति विकारापत्तेः। संकोचविकासेपि विकारस्य दुष्परिहरत्वात् ॥ ३५ ॥

भाष्यप्रकाशः।

अतुल्यत्वान्मनुष्यजीवस्य केनचित् कर्मणा गजशरीरे प्रवेशे शरीरैकदेश एव स जीवः स्यादेकदेशान्तरं च जीवशून्यं स्यात्। न च सिद्धान्तवद्गुणव्याप्त्या दोषः परिहर्तव्य इत्यपि युक्तम्। तथा सत्यणुत्वत्यागायोगात्। चकारात् पिपीलिकादिदेहे प्रविशँस्तत्र न संमीयेतेत्यपि सूच्यते ॥ ३४ ॥

न च पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः ॥ ३५ ॥ किंचिदाशङ्क्य परिहरतीत्याशयेन व्याकुर्वन्ति **शरीराणा**मित्यादि। अयमर्थः। जीवो हि नानाविधेन कर्माष्टकेन ज्ञानावरणीयादिना तत्तच्छरीरेषु प्रविशति ततो निर्गच्छति च। तानि च शरीराणि नानापरिमाणानीति तेषां शरीराणामवयवोपचयापचयानुसारेण देवादिशरीरप्रविष्टस्य जीवस्याप्यवयवोपचयापचयाभ्यां तत्तच्छरीरपरिमाणता वक्तुं शक्यते। तथा सति पर्यायाख्येनावस्थाविशेषेण क्रमिकेण प्रवेशेन वा परिमाणस्याविरोध इति सूत्रांशेनाशङ्क्य, न चेति परिहरति। एवं न वक्तव्यम्। कुतः। विकारादिभ्यः। विकारसावयवत्वानित्यत्वानां प्राप्तेर्लोकायतमतादविशेषः। किंच। तेऽवयवाः कुत्र गच्छन्ति, तिष्ठन्ति च महान्तं कालं, कुतश्चायान्तीत्यपि निर्धारयितुमशक्यम्। अथ न ततोऽपगच्छन्ति, किंतु स्वल्पशरीरप्राप्तौ घटे

रश्मिः।

जीवेति जीवोस्तिकायोनेकदेशवर्ति द्रव्यं तस्येत्यर्थः। **सिद्धान्ते**ति अस्मत्सिद्धान्तवत्। **गुण**श्चैतन्यम् तस्य **व्याप्त्या**। **तथा सती**ति अस्मत्सिद्धान्ताङ्गीकारे। अत्र पक्षे सौत्रश्चकारो नाप्यर्थः। अनन्वयप्रसङ्गादित्याशयेनार्थान्तरत्वद्योतकत्वमाहुः **चकारा**दिति। **न संमीयेत** इति असङ्कुचितामवस्थां न लभेतेत्यर्थः। 'मीङ् गतौ' दिवादिरात्मनेपदी। उपसृष्टोन्यार्थः देहाद्बहिरपि जीवेदित्यर्थः। **सूच्यत** इति। शंकराचार्यैरकात्स्न्र्ये मध्यमपरिमाणत्वं तेन चानित्यत्वं स्यादित्युक्तं तदुपेक्ष्यम्। आत्मनोऽनित्यत्वापादने जैनेष्टापत्तिस्वीकारः स्यादिति ॥ ३४ ॥

न च पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः ॥ ३५ ॥ कर्मेति नैकस्मिन्सूत्रे बन्धस्त्वष्टविधं कर्मेत्यादिना दर्शितेन। किंरूपेणेत्याकाङ्क्षायामाहुः **ज्ञानावरणीयादिने**ति। **तथा सती**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तथा सती**ति। **प्रवेशेणे**ति णत्वं रभसात्। **परिमाणस्य** मध्यमपरिमाणस्य। **न वक्तव्यमिति** इति भाष्यार्थ इत्यर्थः। व्याख्येयसूत्रांशोपन्यासपूर्वकं **तथा सती**त्यादि भाष्यं विवरीतुमाहुः **कुत** इति। भाष्यस्थं विकारशब्दमादिशब्दार्थेन सह व्याकुर्वन्ति स्म **विकारे**ति। अत्रेष्टापत्तिरपि कर्तुं न शक्यत इत्याहुः **लोकायते**ति, बृहस्पतिप्रणीतात्। **त** इति पिपीलिकादेहादधिका गजदेहान्न्यूना मानवीयजीवस्यावयवाः। **काल**मिति अत्यन्तसंयोगे 'कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इति सूत्रेण द्वितीया। **कुतश्चे**ति पुनर्मानवीयजीवस्य मानवीयदेहप्राप्तौ **च कुत आयान्ती**त्यर्थः। **संकोचे**त्यादिभाष्यं विवरीतुमाहुः **अथे**ति। **तत** इति जीवतः।

अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषः ॥ ३६ ॥

अन्त्यावस्थितिर्मुक्तिसमयावस्थितिस्तस्माद्धेतोः। पूर्वदोषपरिहाराय च उभयनित्यत्वं भवेदणुत्वं वा, महत्त्वं वा । उभयथापि शरीरपरिमाणो न भवतीति न तवार्थसिद्धिः ॥ ३६ ॥

इति द्वितीयाध्यायद्वितीयपादे षष्ठं नैकस्मिन्नसंभवादित्यधिकरणम् ॥ ६ ॥

भाष्यप्रकाशः।

दीपावयववद् मुष्ट्यादिस्थितपटवद् वा संकुच्य तिष्ठन्ति, पुनर्बृहच्छरीरप्राप्तौ विकाशं प्राप्नुवन्तीति विभाव्यते, तदापि विकारवत्त्वं तु दुष्परिहरम् । तथा सत्यनित्यत्वापाताद् बन्धमोक्षाङ्गीकारो बाध्येतेति ॥ ३५ ॥

अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषः ॥ ३६ ॥ दूषणान्तरं वदतीत्याशयेनाहुः अन्त्येत्यादि । दिगम्बरैर्हि मोक्षावस्थागतो यो जीवस्तत्परिमाणमवस्थितमिष्यते । मुक्तस्य जीवस्य देहान्तराभावात् तन्नित्यं परिमाणम् । एवं सति त्वदङ्गीकृता या अन्त्यपरिमाणनित्यता तस्माद्धेतोः । चकाराच्चार्वाकमतं वारयितुं विकारादिप्राप्तं यज्जीवानित्यत्वं तत्परिहाराय उभयनित्यत्वाद् उभयोः संसारमोक्षावस्थयोर्जीवपरिमाणस्य नित्यत्वं भवेत् । अणुत्वं वा महत्त्वं वा। संसारिजीवपरिमाणं नित्यम्, नित्यद्रव्यपरिमाणत्वात्, आकाशादिपरिमाणवत्, जैवान्त्यपरिमाणवद्वेत्यनुमानात् । अन्यथा विपरीतानुमानादन्त्यपरिमाणस्याप्यनित्यत्वं

रश्मिः ।

न तेऽवयवाः किंतु दीपस्य प्रभागुण इत्यपेक्षायां दृष्टान्तान्तरमाह **मुष्ट्यादीति** । **तथा सतीति** विकारवत्त्वे सति । **बन्धमोक्षे**ति कर्माष्टकपरिवेष्टितस्य जीवस्य बन्धनोच्छेदादूर्ध्वगामित्वं भवतीति **बन्धमोक्षौ** तयोर**ङ्गीकारो बाध्येत** । नहि शून्यस्य किमपि संभवति ॥ ३५ ॥

अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषः ॥ ३६ ॥ दूषणेति आत्ममध्यमपरिमाण एव **दूषणान्तरं वदति**। **अवस्थित**मिति निश्चितम् । **तन्नित्य**मिति तदवस्थितं नित्यं संसारावस्थस्य त्वनित्यम् । **मुक्ती**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **एवं सती**ति । **अन्त्ये**ति मोक्षावस्थावस्थितजीवपरिमाणनित्यता । **तस्मा**दिति व्याख्येयं भाष्यम् । अत्र यद्यपि तच्छब्दार्थस्य पूर्वपरामर्शित्वेन स्त्रीत्वमुचितं तथापि बहुप्रयोगानुसारीदं विशेष्यनिघ्नत्वं दृष्टान्तादित्यर्थः । दृष्टान्तस्यापि हेतुत्वात् । **चार्वाके**ति सर्वथानुपपत्तिसूत्र उक्तम् । **पूर्वदोषे**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **विकारादी**ति । पूर्वसूत्रोक्तमिदम् । इदं दूष्यं चार्वाकमतम् । अत्र भाष्यीयचकारान्वयो ज्ञेयः । **उभयनित्यत्व**मिति भाष्यं विवरीतुं सूत्रप्रतीकमाहुः **उभयनित्यत्वा**दिति । व्याकुर्वन्ति स्म **उभयो**रिति । सप्तम्यन्तम् । **नित्यत्वं भवे**दिति । पञ्चम्यर्थोऽग्रे वक्तव्यः । मध्यमपरिमाणस्य नित्यत्वं दूषणमुक्तम् । परिमाणनिष्ठं नित्यत्वं जीवेऽणुपरिमाणनिष्ठं युक्तमीश्वरे महत्परिमाणनिष्ठमित्यधिकरणयोरणुमहतोरणुत्वं वा महत्त्वं वा नित्यं परिमाणं तदपि नित्यत्वं साधयन्तोऽणुत्वं वा महत्त्वं वेति भाष्यमुभयोरणुमहतोः परिमाणयोर्नित्यत्वादित्यर्थान्तरं कृत्वानुमानेन विवृण्वन्ति स्म **अणुत्वं वे**ति । **आकाशादी**ति आदिशब्देनाणु वस्तु । **जैवे**ति जैवं च तदन्त्यपरिमाणं चेति सौत्रोन्त्यावस्थितिरूपो दृष्टान्तः तद्वदित्यर्थः । अन्त्यावस्थितश्चाविशेष इत्येवास्त्वित्याकाङ्क्षायां हेतुप्रयोजनमाहुः **अन्यथे**ति उभयनित्यत्वासाधने । **विपरीते**ति, अन्त्यपरिमाणम्, अनित्यं मध्यमपरिमाणत्वात्, घटपरिमाण-

पत्युरसामञ्जस्यात् ॥ ३७ ॥ (२-२-७)

पराभिप्रेतान् जडजीवान् निराकृत्येश्वरं निराकरोति ।

भाष्यप्रकाशः ।

स्यादतोऽविशेषः । उभयथापि जीवः शरीरपरिमाणो न सेत्स्यतीति न तवाभिमतार्थसिद्धिरित्यर्थः । एवमार्हतान् यौक्तिकानवगत्य कश्चित्तद्दर्शने श्रद्धालुर्भवेदिति तस्यापि निवारणं कृतम् ।

एतेषु षट्स्वप्यधिकरणेषु ब्रह्म जगदुपादानं न वेति संदेहस्तत्तन्मतविरोधः संदेहबीजं, नेति पूर्वः पक्षः सर्वसमयानामयुक्तत्वाद् ब्रह्मैवोपादानमिति सिद्धान्तो ज्ञेयः । षष्ठे तु ब्रह्मैव विरुद्धधर्माधारं, नेतरदिति नियमो युक्तो न वेति संदेहे स्याद्वादिभिः सर्वत्र तथाभ्युपगमान्नेति पूर्वः पक्षः । स्याद्वादस्यासंगतत्वाद् ब्रह्मैव तथेति नियमो युक्त एव श्रुत्या भक्तप्रत्यक्षेण च प्रमितत्वादिति सिद्धान्त इति प्रकारान्तरमधिकं ज्ञेयम् ॥ ३६ ॥

इति षष्ठं नैकस्मिन्नसंभवादित्यधिकरणम् ॥ ६ ॥

पत्युरसामञ्जस्यात् ॥ ३७ ॥ अधिकरणमवतारयन्ति परेत्यादि । तथा च पत्युरिति पदमेवात्राधिकरणभेदकम् । पूर्वमते पत्युरभावात् । तेन स्मृतिसिद्धस्य पत्युरिदानीं

रश्मिः ।

वदिति **विपरीतानुमाना** । सूत्रशेषोपन्यासपूर्वकमुभयथेति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अत** इत्यादि । **अविशेष** इति संसाराऽवस्थातोऽविशेषः । अणुत्वमहत्त्वाभ्यां परिमाणाभ्यामवस्थाद्वयसिद्धेर्मध्यमपरिमाणेऽविशेषः । **उभयथेति** अन्त्यावस्थितेश्चकारार्थानित्यत्वापत्तेश्चेत्यर्थः । **कृत**मिति । अन्त्यावस्थितेरन्त्यपरिमाणनित्यतायाः । पञ्चम्यन्तमिदम् । अस्माद्दृष्टान्तात्सिद्धं यन्नित्यद्रव्यपरिमाणत्वलिङ्गकमनुमानं तेनोभयनित्यत्वात् । उभयोर्मोक्षसंसारावस्थपरिमाणयोर्नित्यत्वं ततश्चाविशेषस्तवाभिमतशरीरपरिमाणासिद्धिरिति सूत्रार्थः । क्षणं त्वतिरिक्तं भावाभावेभ्यो नैयायिका इच्छन्ति कालोपाधिम् । विभागप्रागभावविशिष्टं कर्मैव क्षण इति चेन्न । उदीच्यकर्मजन्यविभागप्रागभावविशिष्टकर्मणः क्षणचतुष्टयावस्थायित्वात् । स्वजन्यविभागप्रागभावविशिष्टं स्वत्वं क्षण इति चेत्तर्हि स्वत्वस्याननुगमादननुगमः । जायमाने च विभागे कुतः क्षणव्यवहारः विभागपूर्वसंयोगविशिष्टात् कर्मण एवेति चेत्तर्हि सुतरामननुगमः । एवं पूर्वसंयोगनाशे उत्तरकालेपि कर्मसत्त्वे वक्तव्यमिति । तृतीयस्कन्धे एकादशाध्याये 'चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा' इति परमाणुलक्षणानन्तरं 'अणुर्द्वौ परमाणू स्यात्त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः । जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात् । त्रसरेणुत्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः । शतभागस्तु वेधः स्यात्तैस्त्रिभिस्तु लवः स्मृतः । निमेषस्त्रिलवो ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः' इति । अर्थस्तु स्फुट आकरे । अत्र सिंहावलोकनन्यायेनाधिकरणमाहुः **एतेष्विति** । **विरुद्धेति** । यद्यपि 'घञबन्त' इति सूत्रेण पुंस्त्वं भवति । तथापि 'कर्मण्यण्'इत्यण् । किंच भावे घञि पुंस्त्वं भवति न तु कर्मणि घञि कृतेऽत आध्रियन्ते आधाराः विरुद्धधर्माश्च ते आधाराश्चेति विग्रहीतव्यम् । तथा महाभाष्यम् । 'संबन्धमनुवर्तिष्यते' इति । **विशेष्यमनुवर्तिष्यत** इति । **सर्वत्रेति** घटपटादावपि । **श्रुत्येति** 'तदेजति तन्नैजति' इति श्रुत्या । **भक्तेति** विराड्विषयकेण । गीतायां स्पष्टम् ॥ ३६ ॥ **इति षष्ठं नैकस्मिन्नसंभवादित्यधिकरणम् ॥ ६ ॥**

पत्युरसामञ्जस्यात् ॥ ३७ ॥ **अवतारयन्तीति** प्रसङ्गसंगत्यावतारयन्ति । लुञ्चितकेशमतनिरासानन्तरं तार्किकयोर्जटाधारिशैवस्य च मतस्य बुद्धिस्थत्वात् । **पूर्वेति** पाशुमते ईश्वराभावात्तथा । **तेनेति** पत्युरभावेन । **वेदेपि** 'विष्णोः कर्माणि पश्यत' इति पत्युः सत्त्वेपि अवतारादिभिः

वेदोक्तादणुमात्रेऽपि विपरीतं तु यद् भवेत् ।
तादृशं वा स्वतन्त्रं चेदुभयं मूलतो मृषा ॥
तार्किकादिमतं निराकरोति ।

भाष्यप्रकाशः ।

निराकरणं प्रस्तूयत इत्यर्थः । नन्वीश्वरवादस्य वेदानुसारित्वात् कुतस्तन्निराकरणमित्यत आहुः **वेदोक्तेत्यादि तादृशमिति** । वेदोक्तात् सर्वप्रकारैर्विपरीतम् । तथा चेतो हेतोर्बाह्याबाह्य-निराकरणमित्यर्थः । पराभिप्रेतेश्वरनिराकरणेपि विशेषमाहुः **तार्किकादीति** । **तार्किका** नैयायिकाः, वैशेषिकाश्च । **आदिपदेन** हैरण्यगर्भाः, पातञ्जलाः, कापालिकाः, कालामुखाः, पाशुपताः, शैवाश्च । तत्र तार्किकमते नित्यज्ञानेच्छाप्रयत्नाख्यविशेषधर्मवान् स्वाभाविक-शरीररहितो जीवादृष्टसंपादितं शरीरं भूतावेशन्यायेनाविश्य कार्यं जगत् करोति । हैरण्य-गर्भादीनां मते 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः' प्रधानपुरुषाभ्यामन्यस्तद-धिष्ठाता शुद्धसत्त्वशरीरो जगन्निर्मिमीते । कापालिकादीनां चतुर्णां मते तु निमित्तकारणं पशुपतिरीश्वरः । सर्वेऽप्येत ईश्वरे जगदुपादानत्वं नेच्छन्ति । निमित्तकारणत्वमात्रमाहुः । तथा तार्किकाः प्रमाणादिषोडशपदार्थतत्त्वज्ञानाद् द्रव्यादिसप्तपदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्यज्ञानाच्च यथायथं मोक्षमाहुः । योगिनश्च नित्यानित्यवस्तुविवेकमात्रात् । कापालिकास्तु

रश्मिः ।

वदन्तीत्यस्यापि सत्त्वादस्यां विष्णोर्ब्रह्मणि पर्यवसानात् पत्युरभावेन निराकरणप्रस्तावेन च **स्मृति-सिद्धस्येत्यर्थः** । **इत्यर्थ** इति इतिप्रयोजनमित्यर्थः । अन्यथा भाष्ये व्यासो निराकरोति इत्यत्र व्यासेन निराकरणं प्रस्तूयत इति विभक्तिविपरिणामापत्तेः । **वेदोक्तेत्यादीति** । **अणुमात्र** इति ईश्वरमात्रादौ । **वेदोक्तादिति** । **तादृशं स्वतन्त्रं** प्रकारभेदभिन्नं **चेद् वा** यदि वा **भवेदिति** योजना । **मूलतो** युक्तिरूपात् मूलमालोच्येत्यर्थः । **नैयायिका** इति न्यायं सूत्राणि स्मृतिरूपाण्यधीयते विदन्ति वा नैयायिकाः । 'क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक्' । उक्थादिः । एतेषां लौकिकत्वेनानुमानसिद्ध ईश्वरः पतिर्विष्णुः पातीति पतिरिति । न ब्रह्म लौकिकत्वात् । 'अत एव चानन्याधिपतिः' इति पति-ब्रह्मसूत्रेऽधिविशिष्टः । **वैशेषिकाः** प्रमाणद्वयवादिन इत्युक्तम् । उक्तसूत्राट्ठक् । हिरण्यगर्भेण पतञ्जलिना च प्रणीतानधीयते विदन्ति ते तथोक्ताः । 'तदधीते तद्वेद' इत्यण् । एवं च सांख्यस्मृत्यनुसारिण उभयेऽपि । **कापालिका** इति कपालमधीयते विदन्ति वा कापालिकाः । 'क्रतूक्थादि' सूत्रेण ठक् । एते च महेश्वरप्रोक्तागमानुगामिनो माहेश्वरपदवाच्याः । **कालामुखा** इति कलामुखं वक्ष्यमाणकपालपात्रेत्यादिकमभिदधति ये ते । शैषिकोऽण् । 'तदधीते तद्वेद' इति वाऽण् । एवं पशु-पतिमभिदधति शिवमभिदधति पाशुपताः शैवाश्च 'तदधीते तद्वेद'इत्यण् वा । **क्लेशेति** इदं पातञ्जले योगसूत्रप्रथमे समाधिपादेऽस्ति । **प्रधानेति क्लेशेनापरामृष्ट** इति प्रधानादन्यः । **पुरुषविशेष** इति पुरुषादन्यः । **तदधीति** । पुरुषविशेषपदेन पुरुषो लभ्यते स चाधिष्ठाता सशरीरः । 'द्रष्टा दृशि-मात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः' इति सूत्रम् । **जगदिति** । कापिलसाङ्ख्यप्रवचनसूत्रवृत्तौ 'प्रधानाज्जग-ज्जायत' इति । 'उपरागात्कर्तृत्वं चित्सांनिध्यात् चित्सांनिध्यात्' इति च सूत्रेऽत्र । **योगिन** इति

पतिश्चेदीश्वरस्तस्माद् भिन्नस्तदा विषमकरणाद् वैषम्यनैर्घृण्ये स्याताम्। कर्मापे-

भाष्यप्रकाशः।

'तोकमं च कारुकं चैव कुण्डलं च शिखामणिः। भस्म यज्ञोपवीती च मुद्राषट्कं प्रचक्षते।
आभिर्मुद्रितदेहस्तु न भूय इह जायते। मुद्रिकाषट्कतत्त्वज्ञः परमुद्राविशारदः।
भगासनस्थमात्मानं ध्यात्वा निर्वाणमृच्छति'इत्यादिकमाहुः।

तथा कालामुखा अपि कपालपात्रभोजनशवभस्मस्नानतत्प्राशनलगुडधारणसुराकुम्भ-स्थापनतदाधारदेवपूजादिकमैहिकामुष्मिकसकलफलसाधनमभिदधति। तथा शैवा अपि
'रुद्राक्षकङ्कणं हस्ते जटा चैका च मस्तके। कपालं भस्मना स्नानम्' इत्याद्याहुः।
तथा केनचित् क्रियाविशेषेण विजातीयानामपि ब्राह्मण्यप्राप्तिमुत्तमाश्रमप्राप्तिं चाहुः।
'दीक्षाप्रवेशमात्रेण ब्राह्मणो भवति क्षणात्। कापालं व्रतमास्थाय यतिर्भवति मानवः' इति।

पाशुपतशास्त्रमपि पशुपतिनेश्वरेण प्रणीतं पञ्चाध्यायी। तत्र पञ्च पदार्थाः ख्यायन्ते। कारणं, कार्यं, योगो, विधिः, दुःखान्तः, इति। कारणमीश्वरः। कार्यं प्रधानं महदादि च। योगोऽप्योङ्कारादि ध्यानधारणादिः। विधिस्त्रिषवणस्नानादिः। गूढचर्यावसानो दुःखान्तो मोक्षः। पशवः संसारिण आत्मानस्तेषां पाशो बन्धनम्। तद्विमोक्षो दुःखान्तः। पाशुपतवैशेषिक-नैयायिककापालिकानां मुक्त्यवस्थायामशेषविशेषगुणोच्छित्त्या पाषाणकल्पा आत्मानो भवन्ति। सांख्यशैवयोश्चैतन्यस्वभावास्तिष्ठन्तीति भेदः। ईश्वरं निमित्तकारणं मन्वानानामयमाशयः। चेतनस्य खल्वधिष्ठातुः कुलालादेः स्वस्वकार्ये कुम्भादिरूपे निमित्तत्वमात्रं दृष्टं, न तूपादा-नत्वमपि। अत ईश्वरोऽप्यधिष्ठाता जगतो निमित्तमेव, न तूपादानम्। एकस्यैकस्मिन्नेव निमित्तत्वोपादानत्वयोर्विरुद्धत्वादिति प्राप्तम्। तत्रेदमुच्यते॥ पत्युरसामञ्जस्यादिति॥ किमसामञ्जस्यमित्याकाङ्क्षायां विवृण्वते पतिश्चेदित्यादि। ननु वैषम्यनैर्घृण्यसूत्रे कर्मसापेक्ष-त्वेन स्वयमेव दोषः परिहृत इति कथं तत्कृतमसामञ्जस्यमिहोद्भाव्यत इत्यत आहुः कर्मेत्यादि। तत्र हि, 'पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति' इति, 'एष उ एव साधु कर्म कार-यति' इत्यादिश्रुतिसिद्धं विरुद्धधर्माश्रयत्वं ख्यापयितुं तथोक्तम्। एते तु न तथा वदन्ति,

रश्मिः।

हैरण्यगर्भाः। तदुक्तं मोक्षधर्मे 'हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता' इति वाक्यम्। कारुकमिति। अत्र पूर्वमक्षरत्रिकात्मकं पदं पुराणे मृग्यम्। रामानुजभाष्ये तु कणिका रुचकं चैवेति यज्ञोपवीतमिति च पठ्यते। कारुकं सिद्धान्तविशेषः। इत्यादिकमिति आदिशब्देन तच्छास्त्रप्रसिद्धं ग्राह्यम्। इत्याद्याहुरिति। शैवागमप्रसिद्धम्। ओङ्कारेति सामान्ये नपुंसकम्। त्रिषवणेत्यत्रापि। गूढेति। गूढचर्यायामवसानं यस्य 'पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चिति-शक्तिरिति' सूत्रम्। अत्र पञ्चपदार्थाः पशुपाशविमोक्षणायेत्याहुः पाषाणेति। 'अहल्या पाषाण' इत्यु-क्तिरत्र। एकस्येति कारणस्य। एकस्मिन् कार्ये। पतिश्चेत्यादीति तस्मादित्युपादानात्। विषम-करणं कुलालादेर्बोध्यम्। न तु कामधेन्वादेर्मण्यादेश्च स्वस्वरूपत्वात्कार्यस्य। वैषम्येति प्रथमपादस्थं सूत्रम्। विरुद्धेति कर्मसापेक्षत्वनिरपेक्षत्वरूपविरुद्धेत्यर्थः। तथेति विरुद्धधर्माश्रयत्वम्।

श्रायां त्वनीश्वरत्वं युक्तिमूलत्वाद्दोषः असामञ्जस्याद्धेतोर्न पतित्वेनेश्वरसिद्धिः॥३७

भाष्यप्रकाशः।

किंतु दृष्टानुसारेण कल्पनया । श्रुतिसिद्धस्य त्रिगुणातीतसाकारेश्वरस्वरूपस्यानङ्गीकारात् । योगिभिः शुद्धसत्त्वोपाधिकस्य नैयायिकैर्ज्ञानेच्छाप्रयत्नातिरिक्तविशेषधर्मरहितस्याशरीरस्याङ्गीकारेण तद्दर्शनेषु तद्विरोधस्य स्फुटत्वात् । माहेश्वरमतेपि त्रिलोचननीलकण्ठादिविशिष्टरूपाङ्गीकारेण, तादृशस्य च नारायणोपनिषदादौ नारायणादुत्पत्तेरुक्तत्वात् तदनङ्गीकारेण विरोधस्य स्फुटत्वात् । तत् सर्वं मया प्रहस्ते प्रपञ्चितमिति नात्रोक्तम् । अतो यत् तैरङ्गीक्रियते तद् युक्तिमूलमेवाङ्गीक्रियते, न तु श्रुतिसिद्धम् । अतो वेदविरुद्धयुक्तिमूलत्वाद्दोष इत्यर्थः । सूत्रे साध्यनिर्देशस्याभावात् पूर्वाधिकरणारम्भसूत्राञशब्दस्यानुवृत्त्या साध्याकाङ्क्षापूर्तिरित्याशयेनाहुः असामञ्जस्यादित्यादि । सूत्रयोजना तु तार्किकाद्यभिमतः पतिर्नोपपद्यते कुतः असामञ्जस्यात् । तथा च वैषम्यादिरूपात् तस्मात् तथेत्यर्थः ॥ ३७॥

रश्मिः।

किंत्विति कल्पनयेत्यन्तस्य वदन्तीत्यन्वयः । **योगिभिरिति** हैरण्यगर्भैः पातञ्जलैश्च । **तद्विरोधस्येति** श्रुतिविरोधस्य । **माहेश्वरेति** कापालिकादिचतुष्टयमते । **त्रिलोचनेति** आदिशब्देन कपर्दी । कपर्दोस्य जटाजूटः । **नारायणादिति** । 'एको नारायण आसीन्न ब्रह्मा नेशानः' इति । 'नारायणाद्रुद्रो जायते' इति च । अथर्वशिखया विवादमाशङ्क्याहुः **तदिति** । **प्रपञ्चितमिति** । किंचिल्लिख्यते । महेश्वरपदस्वारस्यान्महेश्वरे पराकाष्ठाविश्रान्तिरभ्युपेयते । तन्महेश्वरपदं त्वेवं प्रयुज्यतेऽथर्वशिरसि 'अथ कस्मादुच्यते भगवान्महेश्वरो यस्माद्भक्ता ज्ञानेन भजन्त्यनुगृह्णाति च वाचं संसृजति विसृजति य' इति भगवच्छब्दप्रवृत्तिनिमित्तकथनोत्तरं पठ्यते 'यः सर्वान् परित्यज्यात्मज्ञानेन योगैश्वर्येण महति महीयते' इति । तथा च योगैश्वर्येणेश्वरः सन् महत्याकरादौ महीयते पूजयति भगवन्तमिति महेश्वरः । अदृश्यत्वाधिकरणात् । यत्तु **नारायणः** भावान् विषयान् परित्यज्य त्याजयित्वा देवमुपदिश्य तदर्थबोधनद्वारा विषयवैरं समुत्पाद्याधिकारिणं कृत्वा दत्तेनात्मज्ञानेन मनःस्थिरतामेवाष्टाङ्गयोगजन्यैश्वर्येण च भक्तान्महति कुर्यादिति न्यायेनेदं निर्बन्धनमिति व्याख्यातवान् । तदप्यनुकूलं व्याख्यानान्तरम् । तथा च सर्वसारोद्धारे भागवते 'वैष्णवानां यथा शंभुः' इति वाक्यम् । युक्तीत्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अतो वेदेति** । **साध्येति** ईश्वरः न पतिः न कर्तृमात्रः असामञ्जस्यात् । यन्नैवं तन्नैवं कुलालवत् । **पतिरिति** । ननु पत्युरिति षष्ठ्यन्तं सूत्रं कुतो विभक्तिविपरिणाम इति चेच्छृणु । पत्युर्नासामञ्जस्यदोषादित्यर्थे विचार्यमाणेनुमानमिव भवतीति विचारितार्थकथनेन विभक्तिविपरिणामदोषाऽभावात् । विचारस्तु पत्युर्नासामञ्जस्यादिति सूत्रं जातम् । तत्र प्रतियोगितासंबन्धेन पत्युर्नान्वयः । षष्ठ्याः संबन्धद्योतकत्वेन संबन्ध्याकाङ्क्षत्वात् । अनन्वयादेव घटो नेत्यत्र घटस्य नेत्यप्रयोगः । प्रयोगे तु घटस्य न रूपमिति प्रतियोगितासंबन्धेनान्यस्यान्वयः । अत्र तु पत्युः पदस्यार्थः पतित्वमपेक्षिताश्रयं पतिर्भवति । तस्य नञा भेदान्वयो नास्ति पत्युः स्वत्वात् । अतः पतिः बौधपतिमान् असामञ्जस्यात् । इति सूत्रार्थ इति । छन्दोवत्सूत्राणि भवन्तीति पत्युरिति प्रथमार्थे षष्ठी वा॥ ३७ ॥

संबन्धानुपपत्तेश्च ॥ ३८ ॥

जीवब्रह्मणोर्विभुत्वादजसंयोगस्यानिष्टत्वात् पतित्वानुपपत्तिः। तुल्यत्वादप्यनुपपत्तिरिति चकारार्थः ॥ ३८ ॥

अधिष्ठानानुपपत्तेश्च ॥ ३९ ॥

स चेश्वरो जगत्कर्तृत्वेन कल्प्यमानो लौकिकन्यायेन कल्पनीयः। स चाधिष्ठित

भाष्यप्रकाशः।

संबन्धानुपपत्तेश्च ॥ ३८ ॥ दृष्टानुसारेण दूषणान्तरं वदतीत्याहुः **जीवेत्यादि**। निमित्तमात्रत्वाङ्गीकारेण जीवपरमाण्वादीनां प्रधानस्य च नित्यत्वाङ्गीकारेण तन्निरूपितसमवायस्य तदभिमतेश्वरे अभावात् समवायसंबन्धस्यानुपपत्तिः। **जीवब्रह्मणोर्विभुत्वा**दनवयवत्वाच्च कर्मजस्यावयवजस्य च संयोगस्य वक्तुमशक्यतया जन्यस्य तस्याभावाद**जसंयोगस्य** चानिष्टत्वात् वैषम्याद्यापत्त्या प्रवर्तनादेरशक्यवचनत्वेन ईशनप्रयोजकतया स्वरूपसंबन्धस्याप्ययुक्तत्वात् **पतित्वानुपपत्तिः**। नच स्वरूपसंबन्धान्तराभावेपि स्वस्वामिभाव एव संबन्धोऽस्त्विति वाच्यम्। यतः सर्वगतत्वचिद्रूपत्वादिना तुल्यत्वाददृष्टेनैव तत्प्रयोगोपपत्तेश्चेशनस्याप्रयोजकत्वादपि पतित्वानुपपत्तिरिति चकारसूचितोऽर्थः। एतेनैव प्रधानेशनमप्यनुपपन्नमिति व्याख्यातम्। तस्यापि व्यापकत्वमहदादिजननस्वभावतयाङ्गीकारेण तदीशनस्याप्यप्रयोजकत्वादिति। तथा चानुपपन्नं तार्किकादिमतमित्यर्थः। भाष्येऽनुल्लेखस्तूपलक्षणविधया अनुक्तसिद्धत्वाज्ज्ञातव्यः।

इदं च सूत्रं रामानुजभट्टभास्करशैवभिक्षुभिर्न लिखितम्। मध्वशंकराभ्यां तु लिखितम् ॥ ३८ ॥

अधिष्ठानानुपपत्तेश्च ॥ ३९ ॥ तार्किकमते दूषणान्तरमन्यदप्याहेत्याहुः **स चेत्यादि**। अधिष्ठानं शरीरम्। अयमर्थः। कार्यत्वादिलिङ्गकानुमानैर्जगत्कर्तृत्वेन कल्प्य-

रश्मिः।

संबन्धानुपपत्तेश्च ॥ ३८ ॥ **दृष्टेति**। **दृष्टानुसारेणेति**। दृष्टानुसारित्वात्तेषामिति भावः। **दूषणेति** पतित्वे संबन्धानुपपत्तिरूपम्। हैरण्यगर्भादिमतमाहुः **प्रधानस्येति**। **समवायेति**। ईशितृत्वं समवायस्य प्रयोजकत्वं शंकरभाष्येऽस्ति। अतोत्र पतित्वमात्रसाधकत्वेप्यक्षतेः ईशितृत्वे संबन्धमात्रानिषेधे तात्पर्यात् व्याकुर्वन्ति स्म **जीवब्रह्मणोरिति**। **कर्मजस्येति**। यथा घटस्य देशान्तरसंयोगः कर्मजः। अवयवजः शाखामूलयोः। **अशक्येति**। अत्राजन्यस्येति पदच्छेदः। **तस्येति** संयोगस्य। **अजेति** अजयोः संयोगस्य नैयायिकानामनिष्टत्वात्। कर्माभावादवयवाभावाच्च। **वैषम्यादीति** आदिशब्देन नैर्घृण्यम्। **प्रवर्तनेति**। आदिशब्देन प्रवृत्तिः। **अयुक्तेति** ईश्वरस्य जीवादिभ्यो भेदेन स्वरूपसंबन्धस्यायुक्तत्वादन्तर्यामिब्राह्मणश्रावितनियम्यनियामकभावे संबन्धस्य प्रयोजकत्वेन तदभावात्प**तित्वानुपपत्तिरि**त्यर्थः। पतित्वं कर्तृत्वमात्रत्वम्। **तुल्यत्वादिति** भाष्यं विवरीतुमाहुः **न चेति** विवृण्वन्ति स्म ॥ ३८ ॥

अधिष्ठानानुपपत्तेश्च ॥ ३९ ॥ शरीरमिति सूत्रस्य ब्रह्मविषयत्वात्तैः शरीरानङ्गीकारादनुपपत्तिः पतित्वस्य। **कार्यत्वादीति**। इदं च जन्माद्यधिकरणसमाप्तावेव स्फुटं व्याख्यातम्। **कर्तृत्वमिति** 'यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वदति तत्करोति' इति श्रुतौ कर्तृत्वे मनः-

एवं किंचित् करोतीतीश्वरेप्यधिष्ठानमङ्गीकर्तव्यम् । तस्मिन् कल्प्यमाने मतविरोधः, अनवस्था असंभवश्च ॥ ३९ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

मान ईश्वरो लौकिकन्यायेनोपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षायत्नवत्तया कल्पनीयः । लौकिकश्च कर्ता शरीरमधिष्ठायैव करोतीतीश्वरेपि शरीराधिष्ठानमङ्गीकर्तव्यम् । न चाशरीरस्यैव कर्तृत्वम् । मनसो नित्यत्वेप्यशरीरेषु मुक्तेषु मानसकार्यादर्शनात् तत्र दृष्टान्ताभावेन न्यायानवतारात् । अतः शरीराधिष्ठानमवश्यमङ्गीकर्तव्यम् । अन्यथा दृष्टविरोधेन प्रतिवादिनं पर्यनुयुञ्जानस्य तवैव निग्रहात् । **तस्मिंश्च कल्प्यमाने** नित्यानित्यविकल्पेन **मतविरोधः** । सावयवस्य शरीरस्य नित्यत्वे जगतोपि नित्यत्वाविरोधादीश्वरासिद्धेः । नच तन्निरवयवम् । अदर्शनादसिद्धेः । अथानित्यम् । तर्हि तस्य कः कर्ता । न तावज्जीवः । तस्याशरीरस्य तत्रासामर्थ्यात् । सोपि सशरीरश्चेत् तस्यापि कर्त्रन्तरविचारेण**नवस्था**प्रसङ्गः । अथ स्वयमेव स्वशरीरं करोति इति चेन्न अशरीरस्य तदयोगेना**संभवः**। अथ जीवादृष्टसंपादितशरीरं भूतावेशन्यायेनाविश्य करोतीति चेत् तदाप्युक्तैवानवस्था । अतो वज्रलेपायितैवाधिष्ठानानुपपत्तिः । **च**कारोनुक्तानां दोषाणां समुच्चायकः । ते च जन्माद्यधिकरणे प्रपञ्चितास्ततोऽवगन्तव्याः ।

माध्वास्तु—अधिष्ठानपदे आधारं व्याकुर्वन्ति, निराधारस्य कर्तृत्वं न दृष्टमिति ॥ ३९ ॥

रश्मिः ।

पूर्वकल्पान्मानसशरीरसत्त्वात् । **नित्यत्वेपीति** । तथा च शरीरत्वसंभव इति भावः । **अशरीरेष्विति** जीवन्मुक्तवारणायेदम् । **मानसेति** एतच्च सर्वसंमतम् । **तत्रेति** कर्ता शरीरी कुलालवदित्यत्रेव तत्र मानसशरीरे स्वीकृतेपि, मानसशरीरी कर्ता अशरीरी आत्मत्वादित्यत्र मुक्तात्मवदिति दृष्टान्ताभावेन न्यायोनुमानं मुक्तन्यायो वा तस्यानवतारात् । **दृष्टेति** कुलालादिदृष्टान्तस्य विरोधेन । **निग्रहादिति** अशरीरिकर्तृत्वप्रतिज्ञासंन्यासरूपनिग्रहस्थानात् । नव्यमतमवतारयन्तीत्याशयेन तस्मिन्निति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तस्मिन्निति** । कुलालवच्छरीरे कल्प्यमाने नित्यमनित्यं वेति विकल्पेन नित्यं चेदशरीरत्वमतविरोधः । अनित्यं चेज्जीवविलक्षणत्वमतविरोधः । तमेवाहुः **सेति** । **नित्यत्वेति** जगन्नित्यं सावयवत्वादीश्वरदेहवदित्यनुमानेन नित्यत्वाविरोधान्नित्यस्य कर्त्रनपक्षेणादीश्वरासिद्धेः । न चानित्यं सावयवत्वादिति विरुद्धः पूर्वोक्तो हेतुरिति वाच्यम् । घटादेर्जगत्त्वेन दृष्टान्तत्वाभावेन विरुद्धत्वाभावात् । न च पक्षैकदेशस्य दृष्टान्तत्वम् । साधनवेलायामनित्यत्वस्य पक्षेऽनिश्चयात् । **असिद्धेरिति** शरीरम् अदर्शनवत् निरवयवत्वात् आकाशवदित्यनेनादर्शने सिद्धे, शरीरं न विद्यते अदर्शनात्, अदृष्टघटवत्, इति शरीराऽसिद्धेः । अनवस्थामसंभवं च स्पष्टयितुमाहुः **अथेत्यादिना** । **तस्येति** अनित्यस्येश्वरशरीरस्य । **सोपीति** सृष्टिप्राक्कालिकजीवोपि । **तस्यापीति** तत्सामयिकजीवदेहस्यापि । **अनवस्थेति** अन्यो जीवः सशरीरः कर्ता, तस्याप्यन्यो जीवः सशरीरः कर्तेत्येवमनवस्थाप्रसङ्गः । असंभवविवरणार्थमथेति भिन्नप्रक्रमेणाहुः **अथ स्वयमिति** । **तदयोगेनेति** स्वशरीरकरणायोगेनेत्यर्थः । **भूतावेशेति** ईश्वरः आविश्य जगत्करोतीति नव्यमतमुक्तम् । **जन्माद्यधीति** । समासौ **अवेति** । अत्रापि न पत्युरिति पदद्वयमनुवर्त्य विभक्तिविपरिणामेन योजनीयम् । तार्किकाद्यभिमतः पतिर्नोपपद्यते । अधिष्ठानानुपपत्तेः मुक्तात्मवदिति सूत्रार्थः ॥ ३९ ॥

करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः ॥ ४० ॥

करणवदङ्गीकारे असंबन्धदोषः परिहृतो भवति । तच्च न युक्तम् । भोगादिप्रसक्तेः ॥ ४० ॥

भाष्यप्रकाशः ।

करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः ॥ ४० ॥ परोक्तं परिहारमाशङ्क्य दूषयतीत्याहुः **करणवदित्यादि** । करणवदिति द्वितीयार्थे वतिः । तथा च यथा शरीररहितोपि जीवः करणग्रामं मनश्चक्षुरादिकमधितिष्ठति स्वस्वकार्ये प्रेरयति, तथा ईश्वरोप्यशरीरः सर्वाञ्जीवानधिष्ठास्यति । प्रधानपुरुषौ चाधिष्ठास्यति । अधिष्ठानं चात्र स्वस्वकार्ये नियोजनम् । एवं चासंबन्धदोषोपि परिहृतो भवति । श्रेणीमुख्यवत् स्वस्वामिभावेनैव निर्वाहादिति चेन्नेदं युक्तम् । कुतः । **भोगादिभ्यः भोगादिदोषप्रसक्तेः** । यथा हि करणान्यधितिष्ठञ्जीवः पुण्यपापाभ्यां सुखदुःखभोगभाग् भवति, तत्र रागद्वेषादिवांश्च । तथैवेश्वरोपि भवेत् । तत्र तदसंसर्गे नियामकाभावात् । न चैश्वर्यस्य नियामकत्वम् । लौकिकैश्वर्यवत्स्वपि तेषां दर्शनात् । नापि निरतिशयितरूपाया ऐश्वर्यकाष्ठायाः । केवलाभिर्युक्तिभिस्तस्या एवासिद्धेः । अतो नानेनापि दृष्टान्तेनाधिष्ठानसंभव इत्यर्थः ॥ ४० ॥

रश्मिः ।

करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः ॥ ४० ॥ परिहारमिति संबन्धानुपपत्तिसूत्रोक्तसंबन्धानुपपत्तावपि संबन्धान्तरस्य स्वस्वामिभावस्याङ्गीकरणरूपपरिहारमाशङ्क्येत्यर्थः । **द्वितीयार्थे** इति । 'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' । 'तत्र तस्य' इति सूत्रद्वयेन तृतीयासप्तमीषष्ठ्यर्थेषु वतिर्विहितस्तथापि छान्दसोयं वतिरित्यर्थः । अत्र शंकराचार्यैर्द्वितीयव्याख्याने षष्ठ्यर्थे वतिरुक्तः । करणानां तुल्यमीश्वरस्यायतनं यदि तदा भोगादिदोष इति । रामानुजाचार्यैः प्रथमार्थे वतिरुक्तः । यथा भोक्तुर्जीवस्य करणकलेवराद्यधिष्ठानमशरीरस्यैव दृश्यते तद्वत् ईश्वरस्याप्यशरीरस्य प्रधानाधिष्ठानमुपपद्यत इति । वस्तुतस्तु 'करणवदित्यारभ्य द्वितीययाधिष्ठास्यति' इत्यन्त आर्षो ग्रन्थः । 'कर्मादीनामपि संबन्धसामान्यविवक्षायां षष्ठ्येव' इति सिद्धान्तात् । एवं च सर्वत्र द्वितीयास्थले षष्ठी प्रयोक्तव्या । षष्ठ्यर्थे वतिरिति । करणग्रामस्य मनश्चक्षुरादिकस्य सर्वेषां जीवानां प्रधानपुरुषयोश्चेति । द्वितीया तु कर्मणोत्र संबन्धसामान्यविवक्षा नेतरस्येति । 'तदर्हम्'इति सूत्रेण द्वितीयान्ताद्वतिस्तु न सादृश्यबोधं जनयति । 'विधिवत्पूज्यते हरिः' इत्यत्र विधिविषययोग्यताकर्तृ हरिकर्मकं देवदत्तकर्तृकं पूजनमिति बोधात् । विग्रहस्तु विधिमर्हतीति विधिवदित्यन्यत्र विस्तरः । यद्वा मास्तु छान्दसो वतिर्मास्तु चार्षो ग्रन्थः । किंतु करणमर्हतीति करणवदिति सूत्रभाष्ये व्याख्यातव्ये । अधितिष्ठतीत्यस्यार्हतीत्यर्थः । अधिष्ठास्यतीत्यनयोरर्हिष्यतीत्यर्थः । **शरीररहित** इति 'कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि । योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये' इति गीतायां पञ्चमेध्याये । परोक्तौ ष्ठाधातुरत्र लिखितस्तदर्थमाहुः **अधिष्ठानमिति** । **असंबन्धेति** । संबन्धानुपपत्तिसूत्रोक्तो योऽ**संबन्धः** स **दोषः** सोपि **परिहृतो भवतीत्यर्थः** । **श्रेण्यां** पङ्क्तौ **मुख्यः** स्वामी । अन्ये स्वे सेवकास्तद्वत् । तच्च **न युक्तमिति** भाष्यार्थमाहुः **नेदमिति** । सूत्रव्याख्येयांशोपन्यासपूर्वकं **भोगादीति** भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **भोगादिभ्य** इति । **अधितिष्ठन्निति** अर्हन्नित्यर्थः । **तेषामिति** दोषाणाम् । तथा चैश्वर्यस्य दोषासंसर्गनियामकत्वे दोषदर्शनं तस्मादिति भावः । **तत्रेति** ईश्वरे करणकृतदोषासंसर्गः । **असिद्धेरिति** निरतिशयितैश्वर्यकाष्ठायाः क्वापीश्वरातिरिक्तेऽभावात् । दृष्टानुसारिणी युक्तिरिति भावः । **अधिष्ठानेति** स्वस्वकार्ये नियोजन**संभवः** ॥ ४० ॥

अन्तवत्त्वमसर्वज्ञता वा ॥ ४१ ॥

ईश्वरः प्रकृतिजीवनियमार्थमङ्गीकृतः । तत्तु तयोः परिच्छदे संभवति । ततश्च लोकन्यायेन जीवप्रकृत्योरन्तवत्त्वं भवेत् । ततश्चानित्यतायां मोक्षशास्त्रवैफल्यम् । एतद्दोषपरिहाराय विभुत्वनित्यत्वेऽङ्गीक्रियमाणे संबन्धाभावादसर्वज्ञता वा स्यात् । तस्मादसंगतस्तार्किकवादः ॥ ४१ ॥

इति द्वितीयाध्याये द्वितीयपादे सप्तमं पत्युरसामञ्जस्यादित्यधिकरणम् ॥ ७ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

अन्तवत्त्वमसर्वज्ञता वा ॥ ४१ ॥ दूषणान्तरादपि तार्किकप्रतिपन्न ईश्वरो न युक्त इत्याशयं स्फुटीकुर्वन्ति **ईश्वर** इत्यादि । अयमर्थः । न हि तैरीश्वरः श्रुतिश्रद्धयाङ्गीकृतः, किंतु जीवानामनन्तत्वाच्चेतनतया स्वतन्त्रत्वान्नानास्वभावत्वाच्च जगन्निर्माणं तैर्न भवति तेषां भोगनियमश्च न संभवति । प्रकृतेरुपादानत्वेपि चेतनानधिष्ठिताया अकिंचित्करत्वान्न तयापि केवलया जगन्निर्मितिः । यन्मते न प्रकृतिस्तन्मते परमाण्वादय इति जडचेतनयोः प्रकृतिजीवयोर्नियमनार्थमङ्गीकृतः । **तत्तु** नियमनं **तयो**र्जडचेतनयोः **परिच्छेदे** इयत्तायां **संभवति** । न हीयत्ताशून्याः सर्वे नियन्तुं शक्यन्ते, नापि व्यापकाः । अतो नियमनसिद्ध्यर्थं तेषामियत्ताङ्गीकार्या । **ततश्च** यदियत्तापरिच्छिन्नं तदन्तवत् यथा घटपटादिकमिति **लोकन्यायेन जीवप्रकृत्योरन्तवत्त्वं भवेत्** । **ततश्च** जीवानित्यतायां स्वस्वशास्त्रस्य **मोक्षशास्त्र**त्वं यदङ्गीक्रियते, तद्वै**फल्यम्** । यदि चैतस्य शास्त्रवैफल्य**दोषस्य परिहाराय विभुत्वनित्यत्व**मङ्गीक्रियते जीवानां, तदा तस्मिन्नङ्गीक्रियमाणे तेष्वियत्तावच्छेदकदेशसंख्ययोः **संबन्धाभावा**दीश्वरस्या**सर्वज्ञता स्यात्** । यदपरिमितं तत् सर्वमज्ञेयमाकाशादिवदिति नियमात् ।

रश्मिः ।

अन्तवत्त्वमसर्वज्ञता वा ॥४१॥ दूषणान्तरादिति अन्तवत्त्वरूपात्, असर्वज्ञतारूपाच्च । योगमते ईश्वरनियामकत्वमाहुः **प्रकृते**रिति । **अकिंचि**दिति । 'अचेतनत्वेपि क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य' इति कापिलसांख्यप्रवचनसूत्रवृत्तेः । एतेन चिदुपरागोपि प्रत्युक्तः । **न तये**ति सेश्वरसांख्यमते अन्यथेश्वरवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । **यन्मत** इति नैयायिकमते । **नियमने**ति परमाणुक्रियोत्पादकेच्छाद्वारा **नियमनार्थम्**। पूर्वं भाष्यं विवृत्य **तत्त्वि**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तत्त्वि**ति। **नापी**ति । **नियन्तुं शक्यन्त** इत्यन्वयः । **ततश्चे**ति । एतदिति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **यदि चे**ति । **विभुत्वे**ति । समाहारद्वन्द्वः । **तेष्वि**त्यादि तेषु व्यापकेषु जीवेषु इयत्ता परिच्छिन्नपरिमाणं तदवच्छेदकयोरन्यूनाधिकदेशवर्तिनो**र्देशसंख्ययोः** । अयमर्थः। देश(ह)विशेषे स्थितो महत्त्वाणुत्वासमानाधिकरणसंख्यावच्छिन्नो घटादिर्विषयो न तु जीवा इति । जीवस्त्वितरथाङ्गीकृत इति तादृशदेशसंख्ययोरसंबन्धादित्यर्थः । **असर्वज्ञते**ति । सर्वज्ञत्वं च विषयज्ञानाश्रयत्वं विषयज्ञानं विषयेन्द्रियसंबन्धमन्तरा न भवति । ब्रह्मजीवयोस्तु विभुत्वान्न संयोगः । संयोगस्य जन्यत्वात् । नापि समवायः । अयुतसिद्धत्वाभावात् । विशेष्यविशेषणभावस्त्वभावप्रत्यक्ष एव । एवं च षड्विधलौकिकसन्निकर्षाभावादसर्वज्ञता । लौकिकसन्निकर्षाभावेप्यलौकिकसन्निकर्षमाशङ्क्य व्याप्तिमाहुः **यदि**ति । **अपरिमितं** अपरिच्छिन्नम् । अत्रैवं भावः । सामान्यलक्षणा ज्ञानलक्षणा योगजधर्मा चेति त्रिविधा प्रत्यासत्तिः । तत्र नान्या

उत्पत्त्यसंभवात् ॥ ४२ ॥ (२-२-८)

भागवतमते कंचिदंशं निराकरोति।

ते च चतुर्व्यूहोत्पत्तिं वदन्ति । वासुदेवात् संकर्षणस्तस्मात् प्रद्युम्नस्तस्माद-निरुद्ध इति। तत्रैषामीश्वरत्वं सर्वेषामुत संकर्षणस्य जीवत्वम्। अन्यान्यत्वम्। उत्पत्तिपक्षे जीवस्योत्पत्तिर्न संभवति। तथा सति पूर्ववत् सर्वनाशः स्यात् ॥ ४२ ॥

भाष्यप्रकाशः।

तस्मादेकदोषवारणे दोषान्तरसंभवादसंगतस्तार्किकाणां वाद इति।

माध्वा रामानुजाश्चात्र केवलं माहेश्वरमतनिराकरणमेवाधिकरणप्रयोजनमाहुः।

शैवस्तु पूर्वाचार्यव्याख्यां शिवस्य केवलनिमित्तत्वबोधकशिवागमैकदेशदूषणपरामुक्त्वा केवलेश्वरनिमित्तत्ववादिहिरण्यगर्भोक्तयोगस्मृतिमात्रनिराकरणपरामित्याह। तदसंगतम्। केषांचिदाचाराणां शैवपुराणाविरुद्धत्वेपि पूर्वोपदर्शिताचाराणां विरुद्धत्वेनाप्रामाण्यादिति।

भिक्षुस्तु सांख्याद्युक्तेन विरोधितर्केणानुकूलतर्काभावेन श्रुतिप्रवृत्तेः प्राग्व्याप्तिग्रहाभावेन केवलानुमानैरीश्वरसाधनं निराकर्तुमिदमधिकरणमासमाप्त्येकमित्याह ॥ ४१ ॥

इति सप्तमं पत्युरसामञ्जस्यादित्यधिकरणम् ॥ ७ ॥

उत्पत्त्यसंभवात् ॥ ४२ ॥ अधिकरणप्रयोजनमाहुः **भागवते**त्यादि । ननु श्रुत्यविरुद्धा स्मृतिः प्रमाणमिति स्थितिः। पञ्चरात्रे च परमात्मा वासुदेव एव जगत उपादानं निमित्तं चोच्यते। योगश्च तत्प्राप्त्युपाय उपदिश्यते। अभिगमनोपादानेज्यास्वाध्याययोगैर्भगवन्तं वासुदेवमाराध्य क्षीणक्लेशस्तमेव प्रतिपद्यत इति। अयं च सर्वोपि प्रपञ्चः श्रुतिप्रसिद्ध एवेति कुतो निराकरणमित्याशङ्कायां तमंशं स्फुटीकुर्वन्ति **ते चे**त्यादि। **चतुर्व्यूहो-**

रश्मिः।

गुणत्रयातिरिक्तयोगस्येश्वरेऽनङ्गीकारात्। नाद्या। लक्षणं स्वरूपं तु इन्द्रियसंबद्धविशेष्यकज्ञाने प्रकारीभूतं गृहीतम्। तत्रेन्द्रियसंबद्धेत्यत्रेन्द्रियसंबन्धश्च लौकिको गृहीत इत्यप्रसक्तेः। या द्वितीया सुरभिचन्दनमित्यत्र सौरभस्य सामान्यलक्षणया ग्रहणात्सुरभित्वग्राहिका सा तु भवेत्परं व्याप्तिं प्रतिरुन्ध्यादिति। **तस्मा**दिति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तस्मा**दिति। अन्तवत्त्वदोषवारणेऽपि विभुत्वनित्यत्वाभ्यामसर्वज्ञता दोषान्तरसंभवात्। **इत्ती**ति तर्काप्रतिष्ठानसूत्रात् समाप्तावितिः। **केवले**ति एतादृशनिराकरणपरां तामाहेतीत्यन्वयः। इतिः शैवोक्तिसमाप्तौ। **पूर्वे**ति पूर्वाचार्योपदर्शितानामाचाराणाम्। **सांख्ये**ति रचनानुपपत्तिसूत्रानूदितेन। **श्रुती**ति 'यतो वा इमानि' इति श्रुतिप्रवृत्तेः प्रागित्यर्थः। **व्याप्ती**ति यत्र यत्र कार्यत्वं तत्र तत्र कर्तृजन्यत्वमिति व्याप्तिस्तस्या ग्रहाभावेन। **केवले**ति क्षित्यङ्कुरादिकं कर्तृजन्यं कार्यत्वात् घटवदित्याद्यनुमानैर्यदीश्वरसाधनं तन्निराकर्तुम्। **आसमाप्ती**ति समाप्तिमभिव्याप्येत्यासमाप्ति ॥ ४१ ॥

इति सप्तमं पत्युरसामञ्जस्यादित्यधिकरणम् ॥ ७ ॥

उत्पत्त्यसंभवात् ॥ ४२ ॥ **स्थिति**रिति पूर्वतन्त्रे मर्यादा। **अभी**ति अभिगमनं ज्ञानं ज्ञानपादे। **उपादानेज्या** क्रियापादचर्यापादयोः। **स्वाध्याययोगो** योगपादे। **त**मिति

भाष्यप्रकाशः ।

त्पत्तिमिति चतुर्भ्यो व्यूहेभ्य उत्पत्तिम् । तथाचायमंशो निराकार्य इत्यर्थः । ननु 'एकोऽहं बहु स्याम्' इति, 'स एकधा भवति' इत्यादिश्रुतावेकस्यानेकव्यूहता 'तस्माद्वा एतस्मात्' इत्यादौ क्रमसृष्टिश्च श्राविर्तैवेति किमत्र विसंवादस्थानमित्यत आहुः तत्रेत्यादि । अन्यान्यत्वमिति अन्ययोः प्रद्युम्नानिरुद्धयोरन्यत्वं जडत्वम् । तथा च श्रुतौ यत्रानेकव्यूहतोक्ता, न तत्रोच्चनीचत्वम् । यत्रोच्चनीचत्वं बोधितम्, तत्र नानेकव्यूहता । इह तु साम्यमुच्चनीचत्वं चोच्यते । अथवा यत्रानेकव्यूहता तत्र सा । अत्र तूभयमेकत्रेति विसंवादस्थानमित्यर्थः । ननु 'आसीनो दूरं व्रजति' इत्यादौ विरुद्धधर्माश्रयत्वस्य ब्रह्मणि सिद्धत्वाद्, 'अजायमानो बहुधा विजायते' इति श्रुत्यानेकव्यूहतायामप्युत्पत्तेः श्रावणाच्च नात्रापि श्रुतिविरोध इत्यत आहुः उत्पत्तीत्यादि । 'न जायते म्रियते वा विपश्चित्' इति श्रुत्या जीवस्य तदुभयनिषेधादुत्पत्त्यङ्गीकारे च तस्यानित्यतायां मोक्षाभावः । कार्यस्य कारणे लयप्रसङ्गात् । ततो मोक्षशास्त्रवैफल्यं च स्यात् । ब्रह्मवद् विरुद्धधर्माधारत्वस्य जीवे श्रुत्या अनुक्तत्वात् । व्युच्चरणं तु नोत्पत्तिः, किंतु विभागमात्रमतो न दोषः । न च तस्य तन्त्रस्य भगवत्प्रणीतत्वादस्मिन्नप्यंशे कथं विरोध इति शङ्क्यम् । कौर्मे चतुर्दशाध्याये गौतमशप्तानां मुनीनामर्थे

'तस्माद्वै वेदबाह्यानां रक्षणार्थाय पापिनाम् । विमोहनाय शास्त्राणि करिष्यावो वृषध्वज ।

रश्मिः ।

श्रुतिविरुद्धमंशम् । व्यूहेभ्य इति ऊह वितर्के विशेषेणोह्यन्ते समतया ये ते व्यूहाः स्वरूपज्ञानायेति । उत्पत्तिमिति क्रमेणोत्पत्तिम् । विसंवादेति श्रुतौ विगतो यः संवादस्तस्य स्थानम् । जडत्वमिति अनेकेश्वरापत्त्योत्पन्नानां जीवत्वं जडत्वं च । न च 'सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ' इत्यस्य प्रवृत्तिरिति शङ्क्यम् । एकशेषस्य द्वन्द्वापवादत्वेन तत्पुरुषेऽप्रवृत्तेः । तत्रेति 'स एकधा भवति' इत्यादिश्रुतौ । यत्रेति 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः' इत्यादौ । इहेति पञ्चरात्रे । साम्यमिति व्यूहानां साम्यमुच्चनीचत्वं चोच्यत इति विसंवादस्थानमत्रेत्यर्थः । अत्रोच्चनीचत्वं 'अखण्डं कृष्णवत्सर्वम्' इत्यस्य विरोधीति साम्यमात्रान्न विसंवादस्थानमित्याशङ्क्याहुः अथवेति । यत्रानेकेति स एकधेत्यादौ । उत्पत्तिरिति । भवतीति । यत्रेति 'तस्माद्वा' इत्यत्र । सेति अनेकव्यूहता । अत्रेति पञ्चरात्रे उत्पत्तिरनेकव्यूहत्वं चेत्युभयम् । आहुरिति सूत्रव्याख्यानमाहुरित्यर्थः । भाष्ये पक्षशब्दोऽनुत्पत्तिपक्षं द्योतयति तमाहुः नेति । तदुभयेति जननमरणोभयेत्यर्थः । उत्पत्त्यङ्गीकार इति उत्पत्तिपक्षे इति भाष्यविवरणम् । तस्येति जीवस्य । उत्पत्तिर्न संभवतीति भाष्येणान्वयः । तथा चानित्यतायां सत्यामिति तथा सतीति भाष्यविवरणम् । अनित्यत्वे सतीति तस्यार्थः । मोक्षेति भगवत्प्राप्तिर्मोक्षस्तस्याभावः । पूर्ववदिति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म कार्यस्येत्यादिना । कार्यस्य जीवजडरूपस्य संकर्षणादेः सर्वस्य कारणे वासुदेवादौ नाशो लयस्तस्य प्रसङ्गात् । नन्वयं मोक्षः कुतो न भवतीति चेत्तत्राहुर्भाष्ये पूर्ववदिति । बाह्येन तुल्योयं मोक्षो न मोक्षो घटादिमोक्षप्रसङ्गादित्यर्थः । घटादयोपि स्वकारणे लीना भवन्तीति । सर्वनाशान्तर्गतार्थनाशमुक्त्वा शब्दस्यापि सर्वान्तर्गतस्य पुनर्नाशमाहुः तत इति । जीवस्यानित्यत्वात् । न च पुनरुक्तिदोष इति वाच्यम् । वैफल्यरूपगौणनाशपरत्वात् । विरुद्धेति । अनित्यत्वं मोक्षाश्रयत्वं च विरुद्धधर्मौ तयोराधारत्वस्य 'यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्ति' इत्यादिश्रुतिसंमता जीवोत्पत्तिरित्याशङ्क्य वारयन्ति स्म व्युच्चरणमिति । भगवदिति ।

न च कर्तुः करणम् ॥ ४३ ॥

कर्तुः संकर्षणसंज्ञकाज्जीवात् प्रद्युम्नसंज्ञकं मन उत्पद्यते इति । तल्लोके न सिद्धम् । न हि कुलालाद्दण्ड उत्पद्यत इति । चकारादग्रिमस्य निराकरणम् ॥४३॥

विज्ञानादिभावे वा तदप्रतिषेधः ॥ ४४ ॥

अथ सर्वे परमेश्वरा विज्ञानादिमन्त इति तथा सति तदप्रतिषेधः । ईश्वराणामप्रतिषेधः । अनेकेश्वरत्वं च न युक्तमित्यर्थः । वस्तुतस्तु स्वातन्त्र्यमेव दोषः ॥ ४४ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

एवं संबोधितो रुद्रो माधवेन मुरारिणा । चकार मोहशास्त्राणि केशवोपि शिवेरितः । कापालं लागुडं वामं भैरवं पूर्वपश्चिमम् । पाञ्चरात्रं पाशुपतं तथान्यानि सहस्रशः' इति । साम्बपुराणे च ।

'पाञ्चरात्रं भागवतं तन्त्रं वैखानसाभिधम् । वेदभ्रष्टान् समुद्दिश्य कमलापतिरुक्तवान्' इति वाक्यात्तावतोंशस्य बुद्धिपूर्वकमेव तत्र स्थापनात् । अतो न कश्चिद्दोषः ॥ ४२ ॥

न च कर्तुः करणम् ॥ ४३ ॥ अग्रिमस्येति अहंकारस्य । अत्रापि लोकश्रुत्योर्विरोध एव दोषः । स्फुटमन्यत् ॥ ४३ ॥

विज्ञानादिभावे वा तदप्रतिषेधः ॥ ४४ ॥ पक्षान्तरं प्रतिक्षिपतीत्याहुः अथेत्यादि । विज्ञानादिमन्त इति विज्ञानैश्वर्यशक्तिबलवीर्यतेजःप्रभृतिपारमेश्वरधर्मान्विताः । अप्रतिषेधः अनियमनम् । शेषं स्फुटम् ॥ ४४ ॥

रश्मिः ।

'पञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता नारायणः स्वयम्' इति मोक्षधर्मे वाक्यात् । स्थापनादिति भगवता स्थापनात् । दोष इति अत्र नेत्युत्तरसूत्रादनुकृष्यते मण्डूकप्लुत्या वा पूर्वसूत्रादनुवर्तते । पञ्चरात्रोक्तजीवोत्पत्तिर्न उत्पत्त्यसंभवादिति सूत्रार्थः ॥ ४२ ॥

न च कर्तुः करणम् ॥ ४३ ॥ अहमिति अनिरुद्धरूपस्य मनोभेदत्वात् । लोकेति लौको भाष्योक्तनिमित्तानिमित्तोत्पत्त्यभावः 'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च' इति श्रुतिः । तयोर्विरोधः । दोष इति । अतो निराकरणमिति भावः । स्फुटमिति भाष्ये मनः इति करणस्य व्याख्यानमित्येवं स्फुटमित्यर्थः ॥ ४३ ॥

विज्ञानादिभावे वा तदप्रतिषेधः ॥ ४४ ॥ पक्षान्तरमिति वासुदेवात्परब्रह्मणः संकर्षणो नाम जीव इत्याद्युक्तपक्षादन्यं पक्षम् । एषामीश्वरत्वं सर्वेषामित्युक्तम् । स चात्र सूत्रे वाशब्देन द्योत्यते । आदिशब्दार्थं वक्तुमाहुः विज्ञानेति । एते तत्र प्रसिद्धाः । शेषमिति । भाष्ये तथा सतीति एवंविधे विज्ञानादिभावे इत्यर्थः । न युक्तमिति 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इति श्रुतेर्न युक्तमित्यर्थः । ननु युक्तं 'निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति' इति श्रुतेः साष्टर्यादिश्रुतेश्चेत्याहुः वस्तुतस्त्विति । सत्यं साम्यं न स्वातन्त्र्यं भगवन्नियम्या एवेत्युपपादितमेतैरेव । अत्र तु स्वातन्त्र्यमिति दोष इत्यर्थः । एवकारेणेश्वरत्वं न दोष इत्युक्तम् । एवं शेषं स्फुटमित्यर्थः ॥ ४४ ॥

विप्रतिषेधाच्च ॥ ४५ ॥

बहुकल्पनया वेदनिन्दया च विप्रतिषेधः । चकाराद् वेदप्रक्रियाविरोधः ४५

इति द्वितीयाध्याये द्वितीयपादे अष्टमं उत्पत्त्यसंभवादित्यधिकरणम् ॥ ८ ॥

इति श्रीवेदव्यासमतवर्तिश्रीवल्लभाचार्यविरचिते ब्रह्मसूत्राणुभाष्ये द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ २ ॥ २ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

विप्रतिषेधाच्च ॥ ४५ ॥ बहुकल्पनयेत्यादि प्रद्युम्नाख्यं मनोऽनिरुद्धोऽहंकार इति करणत्वमहंकारत्वं चाभिधाय सर्व एते वासुदेवा आत्मान एवेति परमेश्वरत्वादिकल्पनया, शाण्डिल्यश्चतुर्षु वेदेषु परं श्रेयोऽलब्ध्वा इदं शास्त्रमधीतवानित्यादिरूपया वेदनिन्दया च स्वोक्तविरोधो वेदविरोधश्चेत्यर्थः । वेदप्रक्रियाविरोध इति तप्तचक्रादिधारणरूपसाधनप्रकारविरोधः॥८॥

एवं च मोक्षधर्मे नरनारायणीये

'सांख्यं योगः पञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा । ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नानामतानि वै ॥
सांख्यस्य वक्ता कपिलः परमर्षिः स उच्यते । हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः ॥
अपान्तरतमश्चैव वेदाचार्यः स उच्यते । प्राचीनगर्भं तमृषिं प्रवदन्तीह केचन ॥
उमापतिर्भूतपतिः श्रीकण्ठो ब्रह्मणः सुतः । ऊचिवानिदमव्यग्रो ज्ञानं पाशुपतं शिवम् ॥
पञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता नारायणः स्वयम् । सर्वेष्वपि नृपश्रेष्ठ ज्ञानेष्वेतेषु दृश्यते ॥
यथागमं यथान्यायं निष्ठा नारायणः प्रभुः । न चैनमेवं जानन्ति तमोभूता विशांपते ॥

रश्मिः ।

विप्रतिषेधाच्च ॥ ४५ ॥ **एत** इति संकर्षणादयः । **इत्यादीति** आदिशब्देन पञ्चापि शास्त्राणि रात्रियन्तेऽत्रेति वेदनिन्दा । पञ्च शास्त्राणि तु वेदवेदान्तसांख्ययोगपशुपतिरूपाणि । विप्रतिषेध इत्यस्यार्थमाहुः **स्वोक्तेति** स्वोक्तस्य सर्व आत्मानः इत्यस्य विरोधे गौरवप्रसङ्गात् । **वेदेति** वेदेषु परं श्रेयोऽलब्ध्वेति वचनाद्वेदविरोधश्चेत्यर्थः । **तप्तेति** तच्च 'अतप्ततनूर्न तदामोऽश्नुते' 'गोविन्दु ईप्स आयुधानि बिभ्रत्' 'चरणं पवित्रम्' 'प्रतद्विष्णोः' 'अब्जचक्रे सुतप्ते' इति श्रुतिषु वर्तते । तत्राद्यास्तिस्रस्तु भगवल्लीलाबोधिकाः । चतुर्थी अप्रसिद्धापि पाद्मवाक्यादस्ति । न च 'शङ्खचक्रादिकं धार्यं मृदा पूजाङ्गमेव तत्' इति निबन्धविरोध इति शङ्क्यम् । तप्तचक्रादिधारणस्यापि पूजामात्राङ्गत्वेन पूजाव्यङ्गतापरिहारार्थत्वात्तस्य मृदा धारणेऽपि सिद्धे ब्राह्मणसाधारणमृदैव धारणात् । तप्तादिधारणे तु द्विजकर्मणि तन्नाशयितुमशक्यत्वेनानधिकारप्रसङ्गात् । एतच्च शङ्खचक्रादिधारणवादे एतैः स्फुटमुक्तम् ॥ ८ ॥ **इति श्रीति** । अत्र पादस्तर्कपादः ब्रह्मसूत्रपुस्तके तथोल्लेखात् ।

भाष्ये—आकस्मिकैच्छिकमतनिराकरणवारणाय प्रमाणान्याहुः एवं चेति । **वेदा** इति वेदान्ता अपि वेदशब्देन संगृहीताः । तथा च षट् शास्त्राणि व्यवस्थापितानीति नाकस्मिकैच्छिकत्वमिति भावः । **नानामतानि** भगवत्क्रीडासाधनानि । अन्यानि प्रपञ्चरूपाणीति वा इत्युक्तम् । तेन नानामतानां विरोधनिराकरणं पञ्चसु शास्त्रेषु विचारितेषु भवतीति तानि गृहीतानि । शास्त्रत्वाय कर्तृशुद्धिमाहुः **सांख्यस्येति** **अपान्तरतम**श्चावान्तरप्रलयाधारत्वमुत्पत्तिमत्त्वं च **पुरातन** इत्यर्थः । **प्राचीनेति** वेदगर्भम् । **यथागम**मिति प्रकृत **आगमा** विषयवाक्यानि । **न्यायाः** सूत्राणि । **निष्ठा**

भाष्यप्रकाशः।

तमेव शास्त्रकर्तारः प्रवदन्ति मनीषिणः। निष्ठां नारायणमृषिं नान्योऽस्तीति वचो मम।
निःसंशयेषु धर्मेषु नित्यं संवसते हरिः। ससंशये तु बलवान्नाध्यावसति माधवः॥
पञ्चरात्रविदो ये तु यथाक्रमपरा नृप। एकान्तभावोपगतास्ते हरिं प्रविशन्ति वै॥

सांख्यं च योगश्च सनातनं वै वेदाश्च सर्वे निखिलेन राजन्।
सर्वैः समस्तैर्ऋषिभिर्निरुक्तो नारायणो विश्वमिदं पुराणम्'॥

इति सर्वेषां भगवत्परत्वं वदतां पञ्चरात्रविदां भगवत्प्राप्तिं च वदताम्।
'सांख्यं योगः पञ्चरात्रं वेदाः पाशुपतं तथा। आत्मप्रमाणान्येतानि न हन्तव्यानि हेतुभिः'
इति च वदतामपि वाक्यानां न विरोधः।
'अक्षपादप्रणीते च काणादे सांख्ययोगयोः। त्याज्यः श्रुतिविरुद्धोंऽशः श्रुत्येकशरणैर्नृभिः।
जैमिनीये च'ेति पराशरोपपुराणीयवाक्योक्तस्य श्रुतिविरुद्धांशस्य कौर्मादिवाक्योक्तस्य विमोहनांशस्य च दूषणमुखेनात्र स्फुटीकरणात्। बहुषु भाष्येष्वेवं व्याख्यानदर्शनेन प्राचीन-

रश्मिः।

पराकाष्ठा भक्तिर्वा। अभेदान्वयात्सर्वात्मभावः। भूमत्वान्नारायणसर्वात्मभावयोरिति भूमत्वेनाभेदात्। **ऋषिमि**ति सप्तर्षिरूपम्। **ससंशय** इति। ससंशयान्हेतुबलानिति क्वचित्पाठः। **एकान्ते**ति निश्चितां भक्तिमुपगताः। **वेदाश्चे**ति पूर्ववद्वेदान्तसंग्राहकाः। **निखिलेने**ति अङ्गेन। **विश्वमि**ति सर्वम्। **सर्वेषां** शास्त्राणाम्। **वेदा** इति पूर्ववत्। **वदतामि**ति प्रामाण्यं वदताम्। **न विरोध** इति आकस्मिकैच्छिकतानिवारकत्वात्। श्रुतिविरुद्धांशत्यागः उक्तः तत्र प्रमाणमाहुः **अक्षपादे**ति तेन प्रच्छन्नबौद्धानां स्मृत्युक्तानां बाह्यानां च स्मारणात्तत्रापि **श्रुतिविरुद्धोंऽशस्त्याज्यः** सर्वं चेत्सर्वमित्युक्तम्। **जैमिनीय** इति। न चास्य 'जैमिनीये च वैयासे न विरोधोऽस्ति कश्चन' इत्युत्तरान्वयितेति वाच्यम्। निरीश्वरजैमिनीयस्य पूर्वान्वयितायाः। जैमिनीये विरुद्धांशो हि शब्दमयी देवता प्रातिपदिकार्थस्तु यः कश्चिदिति साध्यार्थपरता वेदस्येति च। न च 'भावार्थाः कर्मशब्दा' इत्यत्र व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तेः कुतो वेदविरोध इति शक्यम्। व्याख्यानस्य निरीश्वरार्थत्वात्। **श्रुतिविरुद्धे**ति इदमुपलक्षणं श्रुतिविरुद्धांशस्य। **कौर्मादी**ति। इमानि वाक्यानि 'उत्पत्त्यसंभवात्' इति सूत्रसमाप्तावुक्तानि। रामानुजाचार्यास्तु पञ्चरात्राप्रामाण्यमाशङ्क्यात्र तन्निराक्रियत इत्याहुस्ते च प्राचीनवृत्त्यनुसारिण इत्ययमुत्पत्त्यसंभवसूत्रोक्तोंऽशोऽप्यप्रत्याख्येय इत्यत आहुः **बहुष्वि**ति। **एतादृशे**ति प्राचीनवृत्तिरेतादृशव्याख्यानवती बहुषु भाष्येष्वेवं व्याख्यानदर्शनात्। अत्रैतादृशसूत्रव्याख्यानं साध्यम्। तत्कार्यं दर्शनं हेतुः। लाघवात्। साध्यं हेतुविषयः। एतादृशसूत्रव्याख्यानदर्शनमिति। भाष्यवत्। अत्र पक्षे साध्यहेतूभयाभावाद्धेत्वाभासत्वम्। 'पक्षे साध्याभावो बाधः'। यथा गौरश्वत्वात्। 'पक्षे व्याप्यत्वाभिमतस्याभावः स्वरूपासिद्धिः'। यथा ह्रदो द्रव्यं धूमादिति। तदुभयात्मकोऽयं हेत्वाभासः। अत्रोच्यते। हेतावेतादृशशब्दस्य सूत्रव्याख्यानादिभिः सदृशमित्यन्यथाव्याख्यानविशेषणं तद्वत्त्वं प्राचीनवृत्तावस्तीति न हेत्वाभासत्वम्। न चास्मिन्ननुमाने साध्यसिद्धिः प्रतिबन्धिकेति वाच्यम्। सिषाधयिषाया उत्तेजिकायाः सत्त्वात्। यथा महानसो वह्निमानित्यनुमितिः। **तेने**ति। श्रुतिसूत्रस्मृतिविमर्शेन। षट्सु द्वयोरङ्गाङ्गीभाव उक्ते जिज्ञासाधिकरण एवेति चतुर्णां

भाष्यप्रकाशः ।

श्रुतिष्वप्येतादृशव्याख्यानानुमानात् । तेनात्रेदं निष्पन्नम् । सांख्ये हि प्रकृतिपुरुषपर्यन्तता निरीश्वरता च श्रुतिविरुद्धा । सेश्वरसांख्ये च तदैश्वर्यस्य प्रधानाधीनता केवलनिमित्तता । तथैव योगेपि । तदननुसंधाय तत्र प्रवृत्तानां जीवन्मुक्तताभवनोत्तरमपि पातः । तयोर्भगवन्निष्ठताया अज्ञानात् । तदत्रैवोक्तं, न चैनमित्यर्द्धेन । दशमस्कन्धे च ।

'येन्येरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः' इति ।

तयोर्भगवत्परत्वज्ञाने तु देवहूतिवत्कृतार्थता । तदप्युक्तं द्वितीयस्कन्धे ।

'जज्ञे च कर्दमगृहे द्विजदेवहूत्यां स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगतिं स्वमात्रे ।
ऊचे ययात्मशमलं गुणसङ्गपङ्कमस्मिन् विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे' इति ।

एवं पाशुपतेपि साधनादिकं पशुपतेः परत्वं च श्रुतिविरुद्धम् । तन्मयात्र प्रागेव 'अन्तस्तद्धर्मोदि' अधिकरणेषु व्युत्पादितं, प्रहस्ते च प्रपञ्चितम् । अतस्तावन्मात्रपरतायां पूर्ववत् पातः । भगवदङ्घ्र्यनादरणात् ।

'त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम् । बह्वाचार्यविभेदेन भगवन् समुपासते'

इत्यक्रूरोक्तरीत्या भगवत्परत्वज्ञाने तु क्रमान्मुक्तिः । तदप्युक्तं ब्रह्मपुराणे समाप्तिदशायां विष्णुमायानुकीर्त्तनाध्याये व्यासेन

'अन्यदेवेषु या भक्तिः पुरुषस्येह जायते । कर्मणा मनसा वाचा तद्गतेनान्तरात्मना ।
तेन तस्य भवेद्भक्तिर्यजने मुनिसत्तमाः । स करोति ततो विप्रा भक्तिं चाग्नेः समाहितः ।
तुष्टे हुताशने तद्वद्भक्तिर्भवति भास्करे । पूजां करोति सततमादित्यस्य ततो द्विजाः ।
प्रसन्ने भास्करे तस्य भक्तिर्भवति तत्त्वतः । सेवां करोति विधिवत् स तु शंभोः प्रयत्नतः ।

रश्मिः ।

स्वमते व्यवस्थामाहुः **सांख्ये हीति** । **तदनन्विति** परमकाष्ठापन्नत्वमीश्वरेऽननुसंधाय तत्र साधने विरुद्धांशमननुसंधाय तत्र शास्त्रयोरिति वार्थः । **तयोरिति** शास्त्रयोः । **न चैनमिति** । **परं पदमिति** जीवन्मुक्तत्वम् । **तयोरिति** सेश्वरसांख्ययोगयोः । **परत्वमिति** परमकाष्ठापन्नत्वम् । **प्रपञ्चितमिति** प्रहस्ते वादत्रयं भवति । मध्यमे तु सर्वत्रैतत् प्रपञ्चितम् । नृसिंहोत्तरतापनीये नवमखण्डे 'अनुपनीतशतमेकेनोपनीतेन तत्समम्'इत्यारभ्य गृहस्थवानप्रस्थयतिरुद्रजाप्यथर्वशिरःशिखाध्यापकान्तानां तथैव दिशा यथोत्तरमुत्कर्षमुक्त्वोच्यते । 'अथर्वशिरःशिखाध्यापकशतमेकेन मन्त्रराजजापकेन तत्समम्'इति मन्त्रराजजापके उत्कर्षो विश्राम्यन्विद्योत्कर्षमाह । तथा ब्रह्मकृतशिवस्तुतौ 'जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः ॥ शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरन्तरम्' इति परत्वोक्त्यनन्तरं 'भवांस्तु पुंसः परमस्य मायया दुरत्ययास्पृष्टमतिः समस्तदृक्' इति परशिवस्य तन्मायास्पृष्टमतित्वमाह न तु परत्वमिति संक्षेपः । **तावन्मात्रेति** पशुपतिमात्रपरतायाम् । पूर्ववत् सांख्ययोगाभ्यां पातस्तत्तुल्य इत्यर्थः । **भक्तिमिति** सेवाम् । यजनं सेवेत्युक्तम् । यजनेन चित्तशुद्धौ भक्तिं वा । वेदमर्यादोक्ता । अग्रे आदित्योधिकारी तस्य भक्तिः । तदग्रे 'मद्भक्तपूजाभ्यधिका'इति

भाष्यप्रकाशः ।

तुष्टे त्रिलोचने तस्य भक्तिर्भवति केशवे । संपूज्य तं जगन्नाथं वासुदेवाख्यमव्ययम् ।
ततो भुक्तिं च मुक्तिं च स प्राप्नोति द्विजोत्तमाः' इति ।

एवं पञ्चरात्रेपि यो विरुद्धांशस्तदननुसंधाने विमोहकत्वान्न मुक्तिः । तदनुसंधाय तदंशत्यागे तु तदुक्तसाधनपाकेन साक्षादेव मुक्तिः 'पञ्चरात्रविदः' इति मोक्षधर्मीयवाक्यात् । अतो न कस्यापि वाक्यस्यास्मिन् प्रकारे विरोध इति सर्वं सुस्थम् ।

रामानुजाचार्यास्तु आद्यं सूत्रद्वयं पूर्वपक्षसूत्रत्वेनाभिधाय, विज्ञानादीति सूत्रद्वयं सिद्धान्तीयत्वेनाभिधायैवं व्याचक्रुः । वाशब्दः पक्षविपरिवर्तनार्थः । विज्ञानं च आदि चेति विज्ञानादि परं ब्रह्म । संकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धानां परब्रह्मभावे परब्रह्मरूपत्वाङ्गीकारे तदप्रतिषेधः । पञ्चरात्रप्रामाण्याप्रतिषेधः । विप्रतिषेधात् । अस्मिन्नपि तन्त्रे जीवोत्पत्तेर्विशेषेण प्रतिषेधाच्च नास्याप्रामाण्यमिति । एवं व्याख्याने प्रमाणत्वेन पञ्चरात्रस्थवाक्यान्यप्युदाजह्रुः शाण्डिल्यावस्थासंबन्धिनीं निन्दां च, 'न हि निन्दा'न्यायेनानुदितहोमनिन्दावत् पञ्चरात्रप्रशंसातात्पर्यकामूचुः ।

रश्मिः ।

वाक्याच्छिवभक्तिः । **केशव** इति कश्चेशश्च केशौ तयोर्वं सुखं यस्मादित्यलौकिकी व्युत्पत्तिः । लौकिकी तु व्याकरणे केशाः सन्त्यस्येति । **पञ्चरात्रे**ति । 'पञ्चरात्रविदो ये तु यथाक्रमपरा नृप । एकान्तभावोपगतास्ते हरिं प्रविशन्ति वा' इति । **पूर्वपक्षे**ति स्वसिद्धान्तः । द्वितीयसूत्रार्थोऽपि पूर्वपक्षार्थः । तादृशसूत्रत्वेनेत्यर्थः । द्वितीयसूत्रोपन्यासपूर्वकं व्याख्यानमाहुः **विप्रती**ति । **अस्मि-न्नि**ति पञ्चरात्रे । **प्रतिषेधा**दिति । यथोक्तं परमसंहितायाम् । 'अचेतना परार्था च नित्या सततविक्रिया । त्रिगुणा कर्मिणां क्षेत्रं प्रकृते रूपमुच्यते । व्याप्तिरूपेण संबन्धस्तस्याश्च पुरुषस्य च । स ह्यनादिरनन्तश्च परमार्थेन निश्चितः' इति वाक्यैः पञ्चरात्रस्थैः । **एवमि**ति सर्वांशे प्रामाण्यव्याख्याने । **पञ्चरात्रस्थे**ति तान्युक्तानि । अपिशब्देन भारतशास्त्रम् । तद्वाक्यानि तु मोक्षधर्मे ज्ञानकाण्डे 'गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोथ भिक्षुकः । य इच्छेत्सिद्धिमास्थातुं देवतां कां यजेत सः' इत्यारभ्य महता प्रबन्धेन पञ्चरात्रप्रक्रियां प्रतिपाद्य 'इदं दशसहस्राद्धि भारताख्यानविस्तरात् । आविध्य मतिमन्थानं दध्नो घृतमिवोद्धृतम् । नवनीतं यथा दध्नां द्विपदां ब्राह्मणो यथा । आरण्यकं च वेदेभ्य औषधीभ्यो यथाऽमृतम् । इदं महोपनिषदं चतुर्वेदसमन्वितम् । सांख्ययोगकृतान्तेन पञ्चरात्रानुशब्दितम् । इदं श्रेय इदं ब्रह्म इदं हितमनुत्तमम् । ऋग्यजुःसामभिर्जुष्टमथवाङ्गिरसैस्तथा । भविष्यति प्रमाणं वै एतदेवानुशासनम्' इति । **शाण्डिल्ये**ति साङ्गेषु वेदेषु निष्ठामलभमानः शाण्डिल्यः पञ्चरात्रमधीतवानिति वेद**निन्दा** ताम् । **नहीति नहि निन्दा** निन्दितुं प्रवर्ततेपि तु विधेयं स्तोतुमिति **न्यायेन । अनुदिते**ति 'प्रातः प्रातरनृतं ते वदन्ति पुरोदयाज्जुह्वति येऽग्निहोत्रम्'इति श्रुतिः । ऊचुरिति । स्वमार्गे तु 'भक्त्या प्रसन्ने तु हरौ तं योगेनैव योजयेत्' इति तृतीयस्कन्धनिबन्धाद्भक्त्या प्रसन्ने हरौ सति पश्चादस्यार्थस्य योगः 'आसीज्ज्ञानमथो ह्यर्थः' इति सांख्ये श्रीभागवतात् । सांख्ययोगयोश्चैक्यात् । ज्ञानं सत्यानन्तयोरुपलक्षकम् । **अङ्गीचक्रु**रिति । सूत्रव्याख्यातुः शक्तिपक्षं दूषयति **उत्पत्ती**ति । नहि पुरुषाननुगृहीतस्त्रीभ्य उत्पत्तिर्दृश्यते । न

भाष्यप्रकाशः ।

मध्वाचार्यास्त्वेतत्सूत्रचतुष्टयं शाक्तमतनिराकरणार्थत्वेनाङ्गीचक्रुः । तथा चात्र वेदविरुद्धानां स्मृतीनामप्रामाण्यान्न ताभिः स्वतः किंचित् फलमिति सिद्धम् ॥ ४५ ॥

इत्यष्टममुत्पत्त्यसंभवादित्यधिकरणम् ॥ ८ ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणनखचन्द्रनिरस्तहृदयध्वान्तस्य पुरुषोत्तमस्य कृतौ भाष्यप्रकाशे द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ २ ॥ २ ॥

रश्मिः ।

च कर्तुः करणम् । यदि पुरुषोऽङ्गीक्रियते तस्यापि करणाभावात्तदनुपपत्तिः । **विज्ञानादिभाव इति** । यदि विज्ञानादिकरणं तस्याङ्गीक्रियते तदा तत एव सृष्ट्याद्युत्पत्तेरीश्वरवादान्तर्भावः । विप्रतिषेधाच्च सकलश्रुत्यादिविरुद्धत्वाच्चासमञ्जसमिति भाष्यम् । **अत्रेति** संपूर्णपादे । **अप्रामाण्यादिति** अंशेन सर्वांशेन चेत्यर्थः । **स्वत** इति शास्त्राणां तु विशेषप्रकारे प्रामाण्यमस्ति । यथा वेदवेदान्तयोः परस्पराङ्गाङ्गीभावे प्रामाण्यं तथा भक्तपूजने पाशुपतं शास्त्रं प्रमाणम् । वेदवेदान्तोक्तसाधनप्रसन्नभगवति सांख्ययोगौ सेश्वरौ प्रमाणं योजितौ । पञ्चरात्रं तु वेदाज्ञान इत्युक्तम् । अतस्ताभिर्न स्वतः किंचित्फलमित्यर्थः । **इति श्रीति** । **पाद** इति तर्कपाद इत्यर्थः ॥ ४५ ॥

इत्यष्टममुत्पत्त्यसंभवादित्यधिकरणम् ॥ ८ ॥

इति श्रीविठ्ठलेश्वरैश्वर्यनिरस्तसमस्तान्तरायेण श्रीगोविन्दरायपौत्रेण संपूर्णवेत्त्रा विठ्ठलरायभ्रात्रीयेण गोकुलोत्सवात्मजगोपेश्वरेण कृते भाष्यप्रकाशरश्मौ द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः तर्कपादः संपूर्णतामगमत् ॥ २ ॥ २ ॥

श्रीकृष्णाय नमः ।

श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ।

श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।

श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम् ।

भाष्यप्रकाश-रश्मि-परिबृंहितम् ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।
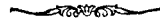
तृतीयः पादः ।

न वियदश्रुतेः ॥ १ ॥ (२-३-१)

श्रुतिवाक्येषु परस्परविरोधः परिह्रियते विप्रतिषेधपरिहाराय । मीमांसाया-

भाष्यप्रकाशः ।

न वियदश्रुतेः ॥ १ ॥ तृतीयपादं व्याचिख्यासवस्तत्प्रयोजनं संगतिं चाहुः **श्रुती**त्यादि । द्वितीयपादे श्रुतिविरुद्धस्मृतिनिराकरणेन तद्विरोधस्याकिंचित्करत्वख्यापनात् **तासामेव** प्रमेयविरोधो न श्रुतेः सः, इत्येवं प्रमेयाविरोधः स्थापितः । तृतीये पादे **श्रुतिवाक्येषु परस्परविरोधः परिह्रियते विप्रतिषेधपरिहाराय,** विरोधकृतो यः प्रामाण्यप्रतिषेधस्तन्निवृत्तये, न चानावश्यकत्वं शङ्क्यम्, **मीमांसायास्तदर्थं प्रवृत्तत्वात् शास्त्रयविरोधाभ्याम् ।**

रश्मिः ।

अत्र 'महत्सृष्ट' प्रकरणं संपूर्णं साधकबाधकयुक्तिभिः समन्वयाविरोधाभ्याम्, अग्रे 'द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम्' अविरोधेन विचार्यते । 'अणुः पन्था विततः पुराणः' इति बृहदारण्यकशारीरब्राह्मणोक्तश्चाविरोधेन विचारितः, 'प्रथमं महतः सृष्टं द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम् । तृतीयं सर्वभूतस्थम्' इतिवाक्यात् ।

न वियदश्रुतेः ॥ १ ॥ अवसरसंगत्या तृतीयपादमवतारयन्ति स्म **तृतीये**ति । **तासामेवे**ति स्मृतीनामेव श्रौतप्रमेयेण साकं विरोधो दुष्टो न तु श्रुतेः स्मार्तप्रमेयेण साकं विरोधो दुष्ट इत्यर्थः । एवकारेणोक्तमर्थमाहुः **न श्रुतेरि**ति । **स** इति प्रसिद्धः । **श्रुती**ति व्याख्येयं भाष्यम् । **परस्परविरोधो** यथा साक्षात्सृष्टौ नाकाशस्य वैलक्षण्यं परंपरासृष्टौ तु वैलक्षण्यमिति, वैलक्षण्यावैलक्षण्ययोः प्रतिपादकत्वेन विरोधः, विरुद्धार्थप्रतिपादकत्वात् । विप्रतिषेधपरिहारपदार्थमाहु**र्विरोधे**ति । विलक्षणाकाशविषयिणी या प्रमा तस्याः करणत्वं साक्षात्सृष्टिविषयकप्रमाकरणभूतश्रुतौ नास्तीति तच्छ्रुतिविरुद्धम् । स्वरूपाकाशविषयिणी या प्रमा तस्याः करणत्वं परंपरासृष्टिविषयकप्रमाकरणभूतश्रुतौ नास्तीति साक्षात्सृष्टिबोधकश्रुतिविरुद्धम् । तादृश**विरोधकृतो यः** परस्परं भिन्नेऽर्थे प्रामाण्यमेकस्या नास्ति भिन्नेऽर्थे प्रामाण्यं द्वितीयाया नास्तीति **प्रामाण्यप्रतिषेधः, तन्निवृत्ति**स्त्वाकाशोत्पत्तिसमर्थनेन स्वरूपाकाशस्यापि विलक्षणाकाशत्वात् । न च सृष्टिद्वैविध्यबाधः वैलक्षण्यमन्तरा स्वरूपत्वेऽप्यनिर्वाहात् । क्रीडार्थत्वात्सृष्टेः । **मीमांसाया** इत्यादिभाष्यं विवरीतुमाहुः **न चे**त्यादि । **मीमांसाया** इति इदं व्याख्येयं भाष्यम् । व्याचक्षते स्म

स्तदर्थं प्रवृत्तत्वात् शक्त्यविरोधाभ्याम्। तथा च ब्रह्मवादे जडजीवयोर्विरुद्धांश-निराकरणाय तृतीयपादारम्भः।

द्विविधा हि वेदान्ते सृष्टिः। भूतभौतिकं सर्वं ब्रह्मण एव विस्फुलिङ्ग-

भाष्यप्रकाशः।

यदा हि लोकानां मौढ्यकृतसंदेहवशाद् वेदार्थावगमसामर्थ्याभाव आचार्येण दृष्टस्तदा वेदार्थभूतस्य ब्रह्मणः सामर्थ्यं वेदवाक्यानां परस्परविरोधाभावं च स्वयमाकलय्य ताभ्यां कृत्वा प्रमेयाविरोधार्थं मीमांसां प्रवर्तितवानिति, न च प्रथमपाद एवाविरोधस्य विचारितत्वादस्य गतार्थत्वं शङ्क्यम्। यथा तत्र शक्त्यविरोधाभ्यां ब्रह्मणि विरुद्धांशं परिहृतवांस्तथा च तेन प्रकारेणैव, चोवधारणे। ब्रह्मवादे 'सर्वं ब्रह्म' इतिवादे। जडानां जीवानां च ब्रह्मत्वाज्जडजीवयोः संबन्धी यो विरुद्धांशस्तन्निराकरणाय तृतीयपादारम्भ इत्येवं सार्थक्यात्, तथा-चेदं पादस्य प्रयोजनम्, प्रासङ्गिकं पूर्वपादे परिहृत्य पुनः प्रस्तुतस्य श्रुत्यविरोधस्यैव विचारादवसरः संगतिरित्यर्थः। ननु यद्यपि ब्रह्मवादे जडजीवयोर्ब्रह्मत्वं तथापि गौणमुख्यभाव-स्त्वसंदिग्धः, पूर्वं तथा निर्णीतत्वात्, अतो मुख्यविचारमतिहाय किमित्येष आरभ्यत इत्याकाङ्क्षायामाहुः द्विविधेत्यादि। तथा च जन्माद्यधिकरणविषयपरिशोधार्थं एवायं प्रपञ्च इति नास्य गौणत्वमित्यर्थः। एकः, अपर इति पुँल्लिङ्गपाठे तु प्रकारो विशेष्यत्वेन व्याख्येयः। प्रातिपदिकस्थायाः सुपो लुगुच्यत इति महाभाष्यादौ विभक्तिपदाध्याहारेण योजनया प्राचीन-

रश्मिः।

यदेति। **मौढ्ये**ति यथार्थसंदेहे दूरत्वं कारणं तथा **मौढ्यं** मोहः भगवत्प्रसादजन्यवेदार्थज्ञाने संदेहं करोति विरुद्धकोटिसंपादनेन। सा च **वेदार्थावगमसामर्थ्याभाव**रूपा। संदेहस्तु वेदार्थावगमसामर्थ्यं वर्तते न वेति, मौढ्यमुक्तसामर्थ्यज्ञानमावृणोति। **आचार्येणे**ति भगवता व्यासेन। **सामर्थ्य**मिति शक्तिम्। **ताभ्या**मिति शक्त्यविरोधाभ्याम्। **प्रमेये**ति परस्परं श्रुति**प्रमेयाविरोधार्थं प्रवर्तितवा**निति। अत्र वाक्यानि स्कान्दानि 'नारायणाद्विनिष्पन्नम्' इत्यादीनि जिज्ञासाधिकरण उक्तानि। **तथा चे**ति भाष्यं विवरीतुमाहुः **न चे**ति। **विरुद्धे**ति समवायित्वाभावादिरूपं श्रुति**विरुद्धांशं** शक्तिर्ब्रह्मसामर्थ्यं निमित्तत्वोपादानत्वयोरविरोधस्ताभ्यां **परिहृतवान्। तथा चे**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तथा चे**ति। **सर्व**मिति भावाद्वैते। **विरुद्धे**ति उत्पत्त्यनुत्पत्तिरूपः। अणुत्वं व्यापकत्वं जीवविषय एव। इदमग्रे स्फुटम्। **इद**मिति जडजीवयोर्विरुद्धांशनिराकरणम्। **प्रासङ्गिक**मिति। स्मृत्यनवकाशसूत्रोक्तस्मृत्यविरोधस्मृतावानुमानिकस्मृत्युपेक्षानर्हत्वं प्राप्तं प्रासङ्गिकं स्मृतिविरोधम्। **पूर्वे**ति द्वितीयपादे। **प्रस्तुतस्ये**ति द्वितीयाध्यायार्थत्वेन प्रस्तुताविरोधान्तर्गतस्य प्रस्तुतस्य श्रुत्यविरोधस्य। **अवसर** इति प्रतिबन्धकीभूतजिज्ञासाद्वितीयपादोक्तस्मृत्यविरोधजिज्ञासा, सर्वैः कृतत्वात्। तस्याः निवृत्तौ सत्यां जडजीवयोर्विरुद्धांशनिराकरणमवश्यं कर्तव्यमिति तदुक्तमित्यवसरः संगतिरित्यर्थः। **पूर्व**मिति समन्वयसूत्रे जडजीवान्तर्यामिष्वित्यर्थः। **जन्मादी**ति 'यतो वा इमानि' इति 'तस्माद्वा एतस्मात्' इति विषयवाक्यद्वयम्। **व्याख्येय** इति। एकोऽपरेति पाठमङ्गीकृत्य पूर्वं व्याख्यातम्। अत्र द्विविधा हि वेदान्ते सृष्टिर्भवति **तत्रे**त्यध्याहार्यं भाष्यं व्याख्येयम्। सृष्टेर्विशेष्यत्वयत्यागेऽध्याहारे चाप्यदोषमाहुः **प्राती**ति। **विभक्ती**ति 'प्रातिपदिकस्थाया विभक्तेः सुपः' इति **योजना** तया। ननु पदाध्याहारोर्थाध्याहारो वेति चेन्न लाघवेऽपि पदजन्यपदार्थोपस्थितेः पदाध्याहार इत्याहुः **विभक्तिपदे**ति। जीवेति नाम्नो वर्तुल-

न्यायेनैका, अपरा वियदादिक्रमेण, सा चानामरूपात्मनो नामरूपवत्त्वेनाभिव्यक्तिः। सजडस्यैव कार्यत्वात् तस्य जीवस्य त्वंशत्वेनैव न नामरूपसंबन्धः।

'अनित्ये जननं नित्ये परिच्छिन्ने समागमः ।
नित्यापरिच्छिन्नतनौ प्राकट्यं चेति सा त्रिधा' ॥

तत्र क्रमसृष्टौ सन्देहः। छान्दोग्ये हि, 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' इत्युपक्रम्य 'तदैक्षत तत् तेजोऽसृजत' इति तेजोऽबन्नसृष्टिरुक्ता, न

भाष्यप्रकाशः।

शैल्यास्तथात्वावगमात् । ननु सर्वस्य ब्रह्मरूपत्वे सृष्टिरेवासंगता, तस्या उत्पत्तिरूपत्वात्, ब्रह्मणश्चाजत्वादित्याकाङ्क्षायामाहुः सा चेत्यादि। न नामरूपसंबन्ध इति न प्रतिनियतनामरूपसंबन्धः। तथा च प्रलयदशायां कार्यस्य कारणे लयानन्तरं तस्य परमकारणेन ब्रह्मणैकीभावात् प्रतिनियतनामरूपशून्यत्वेनानामरूपत्वं तादृशस्य या प्रतिनियतनामरूपत्वेनाभिव्यक्तिः प्रकाशः सैव सृष्टिर्न तु नैयायिकादीनामिवासतः सत्तारूपा, अतस्तस्या अजत्वाविरोधित्वान्नासंगतत्वमित्यर्थः। एतेन कालविशेषे प्रतिनियतनामरूपशालित्वं कार्यत्वमित्यपि व्याख्यातम्। अत एव कटककुण्डलादौ सुवर्णकार्यत्वव्यवहारो न सुवर्णशकले, तथात्रापि जडजीवयोर्बोध्यम् । नन्वेवं सति ब्रह्मणो जीवकारणता न स्यात् तथा सति तत्र जीवनियामकतापि भज्येतेत्यत आहुः अनित्य इत्यादि। सेति अभिव्यक्तिः। तथा च त्रिविधाया अप्यभिव्यक्तेर्ब्रह्माधीनत्वात् तिसृष्वपि ब्रह्मणः कारणत्वमक्षुण्णमिति नियामकताऽप्यक्षुण्णेत्यर्थः। एवं प्रासङ्गिकं परिहृत्य प्रस्तुतं व्याकर्तुं तदावश्यकताबीजमाहुः तत्र क्रमेत्यादि। तथा चैवं सत्यामेकवाक्यतायामेकत्रोक्तत्वादन्यत्रानुक्तत्वाच्च संदेह इत्यर्थः। यदि च छान्दोग्ये तेजसः सृष्टिकर्मत्वेन कथनादसृजतेत्यादिसृष्टिवाचकपदोपादानादीक्षापूर्वकत्वाच्च मुख्यतया

रश्मिः।

रूपस्य च सत्त्वाद्विशेषपरतामाहुः न प्रतीति प्रतिनियतनाम्नां देवदत्तादीनां प्रतिनियतरूपाणां करचरणादीनामित्यर्थः। तस्या इति अङ्गीकृताया अभिव्यक्तेः। तदुक्तमेकादशस्कन्धे 'जन्म त्वात्मतया' इति द्वाविंशे भगवता। कालेति कालविशेषे सृष्टिकाले[1]। व्याख्यातमिति विशेषेणोक्तम्। विशेषशब्दकृत्यमाहुः अत एवेति अस्माद्विशेषशब्दघटिताल्लक्षणादेव। न सुवर्णेति कालविशेषाभावात्। न चाभावप्रतियोगित्वरूपकार्यलक्षणसत्त्वात्सुवर्णशकलेपि कार्यत्वमिति वाच्यम्। सुवर्णशकलेति नाम्न एकरूपदीर्घादिरूपस्य प्रतिनियतत्वाविवक्षणात्। जडजीवयोरिति तयोर्जडस्यैव कार्यत्वं बोध्यम्। जडस्यैवोक्तकार्यलक्षणकत्वात्। तेन कार्यलक्षणान्तरे श्रुत्यनुकूलत्वरूपो गुण उक्तः। एवं सतीति जीवस्य कार्यलक्षणानाक्रान्तत्वे सति। जीवेति कारणलक्षणस्य कार्यघटितत्वात्। अनन्यथासिद्धत्वे सति कार्यनियतपूर्ववृत्तित्वं कारणत्वमिति। जीवेति 'य आत्मानमन्तरो यमयति' इत्यन्तर्यामिब्राह्मणोक्ता। तिसृष्विति अनित्यघटादौ जननरूपायां, नित्ये जीवादौ परिच्छिन्नेऽण्वादिपरिमाणविशिष्टे देहे समागमरूपायां, नित्याऽपरिच्छिन्नतनौ ब्रह्मणि प्राकट्यमाविर्भावस्तासु। कारणत्वमिति आद्य उत्पादकत्वम्, द्वितीये विभाजकत्वम्, तृतीये दर्शकत्वमिति विभागः। तदेति श्रुत्यविरोधरूपप्रस्तुतावश्यकतायां बीजं संदेहस्तदाहुरित्यर्थः। छान्दोग्य इत्यादि भाष्यं विवरीतुं शङ्कामाहुः यदि चेति। ईक्षेति। चकारात्तदध्यन्नाद्यं जायत

[1] कार्यकाले।

वाय्वाकाशयोः। तैत्तिरीयके पुनः 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इत्युपक्रम्य, 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः' इति आकाशादिसृष्टिरुक्ता । उभयमपि क्रमसृष्टिवाचकमित्येकवाक्यता युक्ता । छान्दोग्ये मुख्यतया सृष्टिस्तैत्तिरीये गौणी, मुख्या त्वग्रे वक्ष्यते, 'सोऽकामयत' इत्यादिना ।

तत्र संशयः किमाकाशमुत्पद्यते, न वेति । किं तावत् प्राप्तम् । नोत्पद्यत इति, कुतः, अश्रुतेः । श्रुतिवादिनां श्रुत्यैव निर्णयः । श्रुतौ पुनर्मुख्ये क्रमसृष्टौ न श्रूयते ॥ १ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

सृष्टिस्तैत्तिरीय आकाशादीनां संभवं प्रति कर्तृत्वकथनात् सृष्टिवाचकपदाभावादीक्षाभावाच्च गौणीति नैकवाक्यतेति शङ्क्यते तदापि मुख्या त्वग्रे वक्ष्यते, 'सोऽकामयत' इत्यादिना, तत्र च 'इद५ सर्वमसृजत' इतीदमा 'सर्व'पदेन च कर्मतया सर्वेषां परामर्शादसृजतेति पदाच्छान्दोग्यतुल्यतेति संदेह एव, यदि च तस्याः साक्षात् सृष्टित्वं तदा श्रुत्यन्तरे, 'खं वायुर्ज्योतिरापः' इति वाय्वाकाशोत्पत्तिकथनादत्र च तदकथनात् साक्षात् सृष्टावेव संदेहोऽस्तु । तथा च यद्याकाशाद्युत्पत्तिर्ब्रह्मणः सकाशात् सिद्ध्यति तदा जन्माद्यधिकरणप्रभृतिषु यन्निर्णीतं तत् सर्वमुपपन्नं भवति, नो चेन्नेति तद्विषयपरिशोधार्थ एवायं यत्न इत्यर्थः । एवं प्रस्तुतस्यावश्यकत्वं समर्थयित्वा अधिकरणमवतारयन्ति तत्रेत्यादि । आद्याधिकरणारम्भस्थे पूर्वपक्षसूत्रे उक्तरीतिकः संशय इत्यर्थः । पूर्वपक्षं विवृण्वन्ति किमित्यादि । नन्वश्रवणेपि स्मृत्या तदुत्पत्तिरादरणीयेत्याकाङ्क्षायामौलूकादिश्चोदक उपालभते श्रुतीत्यादि । मुख्ये क्रमसृष्टाविति क्रमसृष्टिविषये ईक्षाप्रतिपादकतया मुख्यं यद्वाक्यं तत्र । तथा च तत्रेक्षाविषयत्वादिना अश्रवणाम्नोत्पत्तिरादरणीयेत्यर्थः ॥ १ ॥

रश्मिः ।

इति ब्रह्मरूपान्नफलसंबन्धादित्यस्य समुच्चयः । संभवमिति 'आत्मन आकाशः संभूतः' इत्युक्तम् । 'सोऽकामयत' इति ईक्षामकुरुत । छान्दोग्य इति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म तदापीति । मुख्येति पूर्वोक्तं मुख्यत्वमत्रापि ज्ञेयम् । एवकारेण निश्चयव्यवच्छेदः क्रियते । तस्या इति छान्दोग्योक्ताया उत्पत्तेः । तैत्तिरीयके तु 'वायोरग्निः' इत्यसाक्षात्सृष्टित्वमिति वैषम्यमिति विभाव्यत इत्यर्थः । खमिति 'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च' इति पूर्वार्धः, 'पृथ्वी विश्वस्य धारिणी' इति चतुर्थचरणः । अत्रेति छान्दोग्ये । आवश्यकत्वमिति जन्माद्यधिकरणविषयपरिशोधार्थमावश्यकत्वम् । पूर्वेति 'न वियद्' इति सूत्रे । स्मृत्येति 'आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः' इति स्मृत्या । 'सदेव सौम्येदम्' इत्यत्र सच्छब्देनाकाशोऽप्युत्पन्नो गृह्यते आकाशशरीरत्वाद्ब्रह्मणोतस्तदुत्पत्तिरादरणीयेत्याकाङ्क्षायां सत्यामित्यर्थः । औलूकेति उलूकरूपगौतमादिः । उपेति नैवं स्मृत्या युक्त्याकाशोत्पत्तिरादरणीया किंतु श्रुतिवादिनां श्रुत्यैव निर्णयो युक्त इत्युपालम्भं कुरुत इत्यर्थः । मुख्य इति मुख्यक्रमसृष्टावित्युक्तौ स्पष्टार्थत्वं मत्वा मुख्यक्रमसृष्टाविति पाठमपि व्याकुर्वन्ति स्म क्रमेति ॥ १ ॥

अस्ति तु ॥ २ ॥

तुशब्दः पक्षं व्यावर्तयति । तैत्तिरीयके वियदुत्पत्तिरस्ति । यद्यपि मुख्ये नास्ति तथापि विरोधाभावादन्यत्रोक्तमप्यङ्गीकर्तव्यमेकवाक्यत्वाय, एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानानुरोधाच्च ॥ २ ॥

गौण्यसंभवात् ॥ ३ ॥

वियदुत्पत्तिर्गौणी भविष्यति, कुतः । असंभवात् । न ह्याकाशस्योत्पत्तिः

भाष्यप्रकाशः ।

अस्ति तु ॥ २ ॥ सिद्धान्तं वदतीत्याहुः **तुशब्द** इत्यादि । **विरोधाभावादिति** वियदुत्पत्त्यादरेऽपि मुख्यवाक्येऽनुपपत्त्यभावात् । एकवाक्यतायां को वा आग्रह इत्यत आहुः **एके**त्यादि । तथा चैतत्प्रतिज्ञानुरोधात् तैत्तिरीयवाक्यं सृष्ट्यर्थमीक्षासाकाङ्क्षम्, छान्दोग्यवाक्यं च सृष्ट्यर्थमाकाशादिसाकाङ्क्षम्, क्रमसृष्टिस्तूभयत्राप्यर्थ इत्येकवाक्यतेत्यर्थः ॥ २ ॥

गौण्यसंभवात् ॥ ३ ॥ सूत्रत्रयेण पूर्वपक्षं पुनराह । तद् व्याकुर्वन्ति **वियदि**त्यादि । यदुक्तं तैत्तिरीये वियदुत्पत्तिः श्रूयत इति । सत्यं श्रूयते । परं सा आवरणनिवारणरूपतया **गौणी भविष्यति, कुतः, असंभवात्**, लोके हि सावयवस्यैवोत्पत्तिर्दृश्यते, सजातीयैर्विजातीयैश्च द्रव्यैरवयवभूतैरेकं द्रव्यमुत्पाद्यत इति, **आकाशस्य** तु निरवयवत्वेन समवाय्यभावात्

रश्मिः ।

अस्ति तु ॥ २ ॥ **अनुपपत्तीति** अन्वयानुपपत्त्यभावात् । **आग्रह** इति विचित्रसृष्ट्यङ्गीकारे दोषाभावाद् आग्रहपदम् । **आहुरिति** प्रकरणेनैकवाक्यतायां न काप्याकाशनित्यताभ्रमः श्रौते सिद्धान्ते इत्याहुरित्यर्थः । **तथा** चेति 'आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः' इति स्मृतौ सर्वगतत्वं नित्यत्वं च सावधिकमिति श्रौते सिद्धान्ते च श्वेतकेतूपाख्याने 'उत तमादेशमप्राक्षो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्' इत्येकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा, तदनुरोधादाकाशस्य सर्वत्र कार्यत्वावश्यकत्वे एकवाक्यताप्रयोजकप्रकरणोपस्थितौ । **तैत्तिरीये**त्यादिः । **आकाशादी**ति आदिशब्देन वायुः, वाय्वाकाशसाकाङ्क्षम् । **उभयत्रे**ति छान्दोग्ये तैत्तिरीये च । **इत्यर्थ** इति तथा चाकाशस्य श्रौते मते कार्यत्वेन 'कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्शनं पटतन्तुवत्' कटकं सुवर्णमिति प्रतीत्या च कारणत्वेन रूपेणैकविज्ञाने सर्वविज्ञानोपपत्तिरिति न श्रुतिविरोध इति भावः । तेन द्वितीयस्कन्धनवमाध्याये 'स चिन्तयन् व्यक्षरम्'इत्यत्राम्भसि जलमध्य इति **सुबोधिन्या** नाकाशः शब्दगुणकः किं तु लीनो यथा वदति तद्वाक्यमिवाश्ववाक्यं **बृहदारण्यकात्** । द्विर्गदितं व्यक्षरमुपाशृणोदित्यर्थः । न तु स्मार्तव्यतिरिक्तकेनापि प्रकारेण शब्दाश्रयत्वेनाकाशो नित्यस्तत्रेत्युक्तम् ॥ २ ॥

गौण्यसंभवात् ॥ ३ ॥ **पूर्वे**ति पूर्वपक्षिण आशङ्का, **गौणी**शब्दान्मीमांसकस्य, वाय्वाकाशाभ्यां स्मार्तस्य, युगपद्वृत्तिद्वयविरोधशब्देन माहात्म्यज्ञानरहितलौकिकस्य । नैयायिकपूर्वपक्षस्तु प्रथमसूत्रे नात्र । **आवरणे**ति प्राकट्यरूपाभिव्यक्तेस्तथा । तथा चाकाशः संभूतो निवृत्तावरणो जातः । तथा च निरावरणत्वमुत्पन्नमित्याकाशोत्पत्त्यभावादभिव्यक्तिर्गौणीत्यर्थः । अयमसंभवस्त्रिभिर्हेतुभिर्भाष्ये साधितः । तत्र निरवयवत्वादसंभवं विवृण्वन्ति स्म **लोक** इति । **सजातीयैरि**त्यादि । सजातीयैः काष्ठखण्डैर्विजातीयैर्दन्तादर्शखण्डादिभिरेकं मञ्जूषाख्यद्रव्यमित्यर्थः । आकाशं नोत्पादविनाशशालि निरवयवत्वाद् ब्रह्मवदित्यनुमानं सूचयन्ति स्म **आकाशस्येति** ।

संभवति, निरवयवत्वात् व्यापकत्वाच्च । मुख्ये चाभावात् । एकविज्ञाने सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा तु तदधिष्ठानत्वेन जीववत् तदंशत्वेन वा तच्छरीरत्वेन वा एकविज्ञानकोटिनिवेशात् । लोकेऽप्यवकाशं कुर्वित्यादौ गौणप्रयोगदर्शनात् ॥ ३ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

तदभावेनासमवायिनः संयोगस्याप्यभावात् तयोरभावे केवलस्य निमित्तस्येश्वरस्य जीवादृष्टस्य चाकिंचित्करत्वात्, अतो **निरवयवत्वादसंभवः** । किंच । **व्यापक**स्योत्पत्तिः प्रत्यक्षविरुद्धा, अन्यथा ब्रह्मणोऽपि स्यात् । किंच ब्रह्मणोऽमूर्तत्वात् तेनाकाशावरणासंभवादुत्पत्तेः पूर्वकाल आकाशाभावोऽप्यशक्यवचन इति **व्यापकत्वा**दप्यसंभवः । यदि च ब्रह्मैव समवायि ततो विभज्योत्पद्यत इति विभाग एव चासमवायीति विभाव्यते, तच्चायुक्तम्, **मुख्ये** सृष्टिवाक्ये **अभावात्**, यदि हि मुख्ये उत्पत्तिरुक्ता भवेत् तर्ह्येवमपि कल्प्येत, अतस्तदभावादप्यसंभवः । न चैकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञाया अनुरोधात् साङ्गीकार्येति वाच्यम्, सा त्वधिष्ठेयस्याकाशस्य **तदधिष्ठानत्वेन जीववत्तदंशत्वेन वा**, पृथिव्यादिवत्तच्छरीरत्वेन **वा**, विशेषणत्वान्नागृहीतविशेषणन्यायेन **एकविज्ञानकोटिनिवेशा**दुपपत्स्यते । अतो गोअश्वा एव पशवोऽन्ये

रश्मिः ।

असंभव इति मुख्यवियदुत्पत्तेरसंभवः । व्यापकत्वादसंभवं विवृण्वन्तः पक्षसाध्ये पूर्वोक्ते व्यापकत्वाद्ब्रह्मवदित्यनुमानं सूचयन्ति स्म **किं चे**ति । इदानीमभावस्यावरकत्वममन्वानो ब्रह्मण्यावरकत्वं भावत्वात्संभावितं पराकुर्वन्नावरणनिवारणरूपोत्पत्तिरपि न संभवतीत्याह पूर्वपक्षी **किं चे**ति । **अमूर्तत्वा**दिति, अयमर्थः । लोकेऽवकाशातिरिक्त आकाशो न प्रतीयते अवकाशश्च कुड्यादौ जाते एतावानवकाश इति मूर्तैः कुड्यादिभिरभिव्यज्यते कुड्याद्यभावे तु अवकाशाप्रतीत्या कुड्याभावे नाव्रियते । ब्रह्म तु नाभाव इत्यनावरकं किं चामूर्तत्वादपि । न ह्यमूर्तेन कालादिनाकाश आव्रियते व्यवहारविषयः क्रियते किं तु कुड्यादिना मूर्तेन । कुड्यादौ सत्याकाश इति व्यवहारात् । **उत्पत्ते**रिति असंभव इत्यनेनान्वेति । किंच कार्यत्वमाकाशे प्रागभावप्रतियोगित्वं तदप्याकाशस्य व्यापकत्वात्पूर्वकालाभावेनासंभवीत्याह **पूर्वकाल** इति । **आकाशाभाव** आकाशप्रागभावः । **असंभव** इति उत्पत्त्यसंभवः । भाष्यीयं **मुख्ये चासंभवादि**त्युक्तमसंभवं विवृण्वन्ति **यदि चे**ति । **विभज्ये**ति सिद्धान्ते विभागात्सृष्टेः संयोगस्यासमवायित्वाभावात् । **उत्पद्यत** इति आकाशः । **मुख्य** इति छान्दोग्यस्थे ईक्षादिश्रावणान्मुख्ये । **एव**मिति ब्रह्मणः समवायित्वं विभागस्यासमवायित्वम् । **तदभावा**दिति मुख्ये चाभावात् । **एके**ति भाष्यं विवृण्वन्ति **न चैके**ति । **साङ्गी**ति सा वियदुत्पत्तिः । **सा त्वि**ति प्रतिज्ञा **तूपपत्स्यत** इत्यन्वयः । आकाशस्याश्रयत्वाभावाद्विशेषणमाहुः **अधी**ति । अधिष्ठातुं योग्यस्याधिष्ठानं कर्तुं यत्र काले योग्यस्य तत्र काले **तदधिष्ठानत्वेन** ब्रह्माधिष्ठानत्वेनेत्यर्थः । तच्छब्दाः ब्रह्मवाचकाः । 'आकाशः संभूतः' इति श्रुतेराह **जीववदि**ति । अन्तर्यामिब्राह्मणे 'यस्य पृथिवी शरीरम्' 'यस्यापः शरीरम्' इतिवद्यस्याकाशः शरीरमिति श्रावणादाह **पृथिव्यादी**ति, विशेषणत्वाद्धेतोः । **नागृही**तेति नागृहीतविशेषणा बुद्धिर्विशिष्ट उपसंक्रामतीति न्यायेन विशिष्टज्ञाने विशेषणज्ञानं कारणम्, अन्वयव्यतिरेकाभ्यां तथावसायात् । इदं ज्ञानं विशेषणज्ञानपूर्वकं विशिष्टज्ञानत्वात्, दण्डीति ज्ञानवदित्यनुमानाच्च । **एके**ति एकविज्ञानम् 'आकाशशरीरं ब्रह्म' इति विशिष्टं ज्ञानं तच्च विषयविशिष्टमित्याकाशस्यै**कविज्ञानकोटिनिवेशा**दित्यर्थः । सिद्धं वदन् श्रुत्यर्थमुपनिबध्नाति **अत** इति । **गवि**ति गावश्चाश्वाश्चेति द्वन्द्वः

शब्दाच्च ॥ ४ ॥

'वायुश्चान्तरिक्षं च एतदमृतम्' इति । 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः' इति । न ह्यमृतस्य ब्रह्मदृष्टान्तभूतस्योत्पत्तिः संभवति ॥ ४ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

त्वपशव इत्यत्र यथा गोअश्वप्रशंसार्थमपशुपदे गौणी, छागादिष्वपशुत्वासंभवादाद्रियते, तथात्राकाश उत्पत्त्यसंभवात् संभूतपदे गौणी आदर्तव्या ब्रह्मप्रशंसार्थम्, लोकेऽप्यवकाशं कुर्वित्यादौ गौणप्रयोगदर्शनादित्यर्थः ॥ ३ ॥

शब्दाच्च ॥ ४ ॥ ननु श्रुत्यपेक्षया लोकोऽकिंचित्करः पूर्वकाण्डमपि स्वर्गादिफलकत्वाल्लोकमनुरुन्ध इति न तदनुरोधेनोत्तरकाण्डे व्याकुलीकरणमुचितमित्यत आह **शब्दाच्चेति** । भाष्यमत्र निगदव्याख्यातम् । तथा चोत्तरकाण्डानुमतेरपि गौण्येवोचितेत्यर्थः ॥ ४ ॥

रश्मिः ।

प्रकृतिभावः । **प्रशंसेति** पशुत्वेन प्रशंसार्थम् । **अपश्विति** सिंहो माणवक इत्यत्र क्रौर्या(प्रशस्तत्वा)दिवत्सौम्यादिगुणयोगाच्छागादिषु गौणी । **प्राश्च**स्त्वप्राशस्त्य नञर्थमाहुः । अप्रशस्ताः **पशव** इत्यर्थः । अन्ये तु पशुपदं प्रशस्तपशौ लाक्षणिकं, अभावो नञर्थः । अर्थस्तु स एव । अप्राशस्त्यमार्थिकमिति **भूषणकारः** । **आद्रियत** इति पूर्वपक्षिणा । **मीमांसक**स्तु 'लक्ष्यमाणगुणैर्योगाद् गौणी वृत्तिः प्रकल्पिता'इति वक्ति । अतस्तेनाप्याद्रियते । पूर्वतन्त्रे प्रथमस्य चतुर्थे पादे 'पूर्ववन्तो विधानार्थास्तत्सामर्थ्यं समाम्नाये' इत्यधिकरणे **शास्त्रदीपिकायां**, **अधिकरणमालायां** तु षोडशाधिकरणे 'अपशवो वाऽन्ये गोऽश्वेभ्यः पशवो गोअश्वाः' इति इदमर्थवादः । पशुकार्ये गवाश्वव्यतिरिक्तानामजादीनां प्रतिषेधः प्रतीयते । न चायं वक्तुं शक्यः । पशुकार्येऽजादीनां विहितत्वेन प्रतिषेधस्यासिद्धान्तत्वात् । अतोऽपशुशब्देन पशुव्यतिरिक्ता घटादय उच्यन्ते तस्याजादिषु प्रयोगः प्रशंसागुणयोगात् । तथाहि श्रुतिगते अपशव-इत्यस्मिन्नञ्समासे पशुपदेन प्रथमं गवाश्वगतं प्राशस्त्यमुपादाय पश्चात्तदभावो नञा पश्वन्तरेषु कथ्यते । पशुत्वस्याशक्यप्रतिषेधत्वात् । अवश्यं च पशुशब्दोपात्तोर्थो नञा पश्वन्तरे प्रतिषेध्यः, अपशव इति प्रयोगात् । एवं सति पशुशब्दो गवाश्वपदाभ्यामेकवाक्यतया संबद्धस्तद्गतं प्राशस्त्यं लक्षयति । तत्प्राशस्त्यं नञा पर्युदसिष्यते । तेनैतदुक्तं भवति, गवाश्वेषु यत्प्राशस्त्यं न तदन्येष्वस्ति तस्मादप्रशस्तास्ते पशवः, गवाश्वमेव प्रशस्तमिति सोऽयं गवाश्वगतप्राशस्त्यस्याभावः पश्वन्तराणामजादीनामपशूनां च तुल्य इत्यभिप्रायेण पश्वन्तराण्यपशव इत्युच्यन्ते । **संभूतेति** 'आकाशः संभूतः' इत्यत्राकाशे संभूतत्वासंभवान्निवृत्तावरण आकाश इत्येवं **गौणी** । व्यापकोऽपि ब्रह्मण उत्पद्यत इति **ब्रह्मप्रशंसा तदर्थम्** । **लोकेपी**त्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति **लोकेपी**त्यादिना । **गौणेति** वस्त्वपसारणे **गौणोऽयं प्रयोगः** ॥ ३ ॥

शब्दाच्च ॥ ४ ॥ **लोकमिति** लोके हि ग्रामप्राप्ती राज्ञः परमफलम्, स्वर्गस्य लोकतामात्रवर्णनेनानुरुन्धे । **व्याकुलीति** उत्पत्तेर्व्याकुलीकरणं गौणीकरणम् । **निगदेति** वायुश्चेत्यादिकमुत्तरकाण्डम् । **तथा चोत्तरकाण्डानुमतेरिति** वक्ष्यमाणत्वात् । 'आकाशवत्' इति गीतापि । **ब्रह्मदृष्टान्तभूतस्येति** यथामृतं तथा ब्रह्मेति । एवं **निगदव्याख्यात**मित्यर्थः । **गौण्येवेति** शब्दादुत्पत्त्यसंभवादाकाशोत्पत्ति**र्गौणी**, उत्तरकाण्डत्वादेवकारः ॥ ४ ॥

---

१. वाक्यम् ।

स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत् ॥ ५ ॥

ननु कथं वियदुत्पत्तिर्गौणी भविष्यति । तत्र हि संभूत इत्येकमेव पदमुत्तरत्रावर्त्यते । तथा सत्युत्तरत्र मुख्या आकाशे गौणीति युगपद् वृत्तिद्वयविरोध इतिचेन्न । एकस्यापि स्यात् कचिन्मुख्या कचिद् गौणीति । ब्रह्मशब्दो यथा, 'तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व' 'तपो ब्रह्म' इति । प्रथमवाक्ये मुख्या, द्वितीये गौणी । न चात्र प्रयोगभेदोऽस्तीति वाच्यम् । संभूतशब्दोऽप्यावर्त्यते न तु तादृशार्थयुक्तोऽपि । आत्मसत्त्वैनेव तत्सत्त्वमिति सत्त्वगुणो वचनहेतुः ।

भाष्यप्रकाशः ।

स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत् ॥ ५ ॥ पुनरपि गौण्यनुपपत्तिमाशङ्क्य परिहरति **स्यादि**-त्यादि । तद् व्याकुर्वन्ति नन्वित्यादि । एकस्येति शब्दस्य । ननु ब्रह्मशब्दस्य दृष्टान्तता न युक्ता, तपोवाक्ये तस्य प्रयोगभेदेन वृत्तिद्वययौगपद्याभावात्, 'तस्माद्वा' इति वाक्ये तु संभूतशब्दस्य सकृत्प्रयोगेण यौगपद्यस्य दुर्वारत्वादिशङ्कां न चेत्यादिनानूद्य परिहरति **संभूते**-त्यादि । तथा चात्राप्यावृत्त्या शब्दव्यक्तिभेदान्न यौगपद्यमिति न दृष्टान्तत्वायोग इत्यर्थः । नन्वस्त्वेवं वृत्तिद्वयोपपत्तिस्तथापि गोअश्वसाध्यफलासाधकत्वरूपमपशुसादृश्यं छागादिषु यथा गौणीवचनहेतुस्तथाऽऽकाशे किं वा संभूतसादृश्यं गौणीवचनहेतुर्येनात्र साऽऽद्रियत इत्यत आह आत्मेत्यादि । सत्कार्यवादे उत्पत्तिपूर्वदशायां कारणभावेनैव कार्यं तिष्ठति, आत्मा चात्र कारणम् । अत उत्पत्तिपूर्वदशायां यथा कार्यमात्मभावेन तिष्ठत्येवमाकाशोऽप्यात्मावृतत्वादात्मभावेनैव तिष्ठतीत्यात्मसत्त्वेनैव तत्सत्त्वमाकाशसत्त्वं, न तु पृथक्त्वेन, अतः सृष्टिदशायां कार्यवद् ब्रह्मणः सकाशादाकाशस्य पृथक् सत्तारूपो य आकाशनिष्ठः सत्त्वगुणः स एव कार्यसादृश्यरूप आकाशे गौणीवचनहेतुरतः साद्रियत इत्यर्थः । ननु भवत्वेवं तथाप्याकाशं प्रति ब्रह्मणः कारणतानङ्गीकारे वाय्वादिवाक्येष्वात्मनः कारणत्वाकथनादाकाशादीनामेव तत्कथनाद् वायुकारणता आकाशासाधारणा अग्निकारणता च वाय्वसाधारणेत्येवं कारणता

रश्मिः ।

स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत् ॥ ५ ॥ **परी**ति सूत्रकारः । तदिति तत्सूत्रमाचार्या **व्याकुर्वन्ति । भाष्ये उत्तरत्रे**ति 'आकाशः संभूतः' इतिवद्वायुः संभूतोऽग्निः संभूत इत्येवं 'तस्माद्वा एतस्मात्' इति श्रुतावुत्तरत्रावर्त्यते । प्रकृते **शब्दस्ये**ति संभूतशब्दस्य । **वृत्तिद्वये**ति 'ब्रह्म विजिज्ञासस्व' इत्यत्र मुख्याभिधा, तपसि गौणी, जगज्जन्मादिकर्तृत्वचतुर्भुजत्वतपस्त्वादिगुणयोगाद् अतो **यौगपद्याभावात् । परी**ति मीमांसकः परिहरति । **संभूतेत्यादी**ति । अयमर्थः । शब्दस्य शक्या गौणाश्चेत्युभयेप्यर्थाः । एतादृशः संभूतशब्दः आकाशाद्वायुरित्यत्रावर्त्यते न तु तादृशार्थयुक्तः । उभयेषामेकतमार्थयुक्तस्त्वावर्त्यते । एतादृशे आवृत्ते शब्देऽपि शब्दस्यान्यस्य संनिधिरुभयेषामेकतमस्यार्थस्य निर्णयः । यथा देवस्य त्रिपुरारातेरित्यत्र त्रिपुरारातिशब्दसंनिधिः । **अपश्वि**ति अपशु घटादि **सादृश्यम् । अत्रे**ति आकाशे गौणीत्यर्थः । **सादृश्यरूप** इति संभूतपदस्याकाशे गौणीवचनहेतुरित्यर्थः । **वाय्वादी**ति 'तस्माद्वा एतस्मात्' इति 'वायुश्चान्तरिक्षम्' इति एवमन्यत् तेषु । **असाधारणे**ति 'अजाद्यतष्टाप्' इति सूत्रेण 'टाप्' । साधारणीनां परिग्रह इति **सुबोधिन्यां** तु

तत्तद्भावापन्नं ब्रह्मैव सर्वत्र कारणमिति नानेकलक्षणा । तद्भावापत्तिविशेषणव्यावृत्त्यर्थमपि न लक्षणा । स्वभावतोऽपि ब्रह्मणः सर्वरूपत्वात् तस्माद् गौणी आकाशसंभूतिश्रुतिरित्येवं प्राप्ते इदमाह ॥ ५ ॥

प्रतिज्ञाहानिरव्यतिरेकाच्छब्देभ्यः ॥ ६ ॥

भवेदेतदेवं यदि छान्दोग्यश्रुतिर्न विरुध्येत । कथम् । एकविज्ञानेन सर्व-

---

भाष्यप्रकाशः ।

अनेकेषां लक्षणभूता स्यात् । ततश्च ब्रह्मणः कारणताभङ्गे ब्रह्मणः प्रशंसा न कापि स्यात् तदभावे च तन्निबन्धना गौण्यपि दूरमपेयादतः सर्वापि कल्पना असंगतेत्याशङ्कायामाह **तत्त-दित्यादि** । वायुसंभूतिवाक्य आकाशभावापन्नम्, अग्निसंभूतिवाक्ये वायुभावापन्नमित्येवं **ब्रह्मैव सर्वत्र कारणमिति** सा कारणता **नानेकलक्षणा**, युञ्जतः प्रयोगः । तथा चैवं ब्रह्मप्रशंसासत्त्वान्न गौण्यनुपपत्तिरित्यर्थः । ननु तथाप्याकाशादिपदेषु तद्भावापत्तेरनुक्ताया एव विशेषणीयत्वात् तेषु लक्षणा तु स्यादेवेत्यत आह **तदित्यादि** । घटे छिद्रेतरत्ववत् तत्तद्भावापन्नत्वमर्थबलादेव प्राप्यत इति तद्व्यावृत्त्यर्थमपि नास्मन्मते लक्षणेत्यर्थः । सिद्धमाह **तस्मादित्यादि** । **इदमिति** वक्ष्यमाणं दूषणम् ॥ ५ ॥

प्रतिज्ञाहानिरव्यतिरेकाच्छब्देभ्यः ॥ ६ ॥ पृच्छति **कथमिति** । कथं विरुध्यते ।

रश्मिः ।

ङीप् । **लक्षणेति** अव्याप्त्यादिरहितासाधारणधर्मस्य लक्षणत्वात् । **प्रशंसेति** पूर्वं व्याख्याता । 'अपशवो वा' इति श्रुतौ तु गोऽश्वौ प्रशस्तावन्ये त्वप्रशस्ता इति प्रशंसा । **तन्निबन्धनेति** प्रशंसानिबन्धना । 'तत्सिद्धिजातिसारूप्यप्रशंसालिङ्गभूमभिः । षड्भिः सर्वत्र शब्दानां गौणी वृत्तिः प्रकल्पिता' इति **शास्त्रदीपिकाकारः** । उदाहरणानि तु 'पूर्ववन्तो विधानार्थाः' इति सूत्रे प्रथमस्य चतुर्थपादे । **इत्येवमिति** 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इति श्रुतेरिति भावः । **नानेकेति** अनेकेषामाकाशादीनां **लक्षणा** लक्षणभूता, नानेकेषामाकाशादिपदानां ब्रह्मणि लक्षणा वा जन्यजनकभावरूपा । **युञ्जत** इति प्रतिपादितत्वं षष्ठ्यर्थः युञ्जन्नैयायिकप्रतिपादितः श्रौतः 'आकाशः संभूतः' इति **प्रयोगः** । अयमर्थः । ननु नैवं वक्तुं युक्तम् । नैयायिका ईश्वरं निमित्तं मन्यन्ते न समवायिनमित्याकाशस्य नित्यत्वेन वाय्वादीनां तत्तत्परमाणुरूपत्वं न त्वाकाशादिरूपब्रह्मभावापन्नत्वमित्याकाङ्क्षायामाहुः **युञ्जत** इति योगं युञ्जतो नैयायिकस्य प्रयोगः समाधानं च योगं कुर्वन्नैयायिक आकाशादौ ब्रह्म पश्यति योगजधर्मेण । परं चिन्ता सहकारिकारणम् । युक्तस्य तु योगिनो न चिन्ताविशेषः सहकारी । अत्र तु विचारविशेषदर्शनेन चिन्ताप्राप्त्या युञ्जानो योगी । मीमांसकस्तु 'तदात्मानꣳस्वयमकुरुत' इत्यर्थवादादारोपितं मन्यत इति तन्मते तु न विरुद्धं वायुसंभूतिवाक्य इत्याद्युक्तसमाधानम् । **विशेषणीयत्वादिति** ब्रह्मभावापन्नात् 'आकाशाद्वायुः संभूतः' इत्येवं विशेषणीयत्वात्तेष्वाकाशादिपदेषु । **घट इति घटछिद्रेतर** इत्यत्र प्रथमान्ताद्वतिः, छिद्रेतरत्ववदिति । **अर्थेति** युञ्जतो नैयायिकस्य 'मनसैवानुद्रष्टव्यम्' इति श्रुतेर्मनोबलादपि, मीमांसकस्य तु 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इति श्रुतिबलादेव । **तद्व्येति** ब्रह्मभावापन्नविशेषणेन ब्रह्मेतरत्वव्यावृत्त्यर्थम् । सूत्रं तु **एकस्येत्यारभ्य तपो ब्रह्मेतीत्यन्तेन** भाष्येण स्फुटं व्याख्यातम् ॥ ५ ॥

प्रतिज्ञाहानिरव्यतिरेकाच्छब्देभ्यः ॥ ६ ॥ विभ्वोः संयोगतादात्म्यसंबन्धाभावादाहुः

विज्ञानप्रतिज्ञा बाध्येत, अव्यतिरेकात् अनुद्गमात् । यदि संबद्धमेव ब्रह्मणा आकाशं तिष्ठेत्तदा ब्रह्मविज्ञानेनाकाशविषयीकरणे तन्नैकविज्ञानम् । आकाशस्य च लौकिकत्वात् तज्ज्ञानं सर्वज्ञतायामपेक्षितमेव । न च जीवघत्

भाष्यप्रकाशः ।

तत्रोत्तरमाहुः एकेत्यादि । अनुद्गमादिति कार्यत्वेन रूपेणाव्युच्चरणात् । एतदेव विभजन्ते **यदीत्यादि** । यदि स्वरूपसंबन्धेनाविभक्तमेव ब्रह्मणा आकाशं तिष्ठेत् तदा विभुत्वादिसाधर्म्याद् ब्रह्मविज्ञानेनाकाशविषयीकरणे तन्नैकविज्ञानं, विषयद्वयमहिम्ना जायमानत्वात्, न च का आवश्यकतेति शङ्क्यम्, यत आकाशस्यापि लौकिकत्वाल्लौकिकसर्वविषयकज्ञानस्यैव प्रतिज्ञायां विवक्षितत्वात् तज्ज्ञानं सर्वज्ञतायामपेक्षितमेव, न चांशत्वेन यथा जीवज्ञानं ब्रह्मज्ञानाज्जायते तद्वदाकाशज्ञानमपि भविष्यतीति शङ्क्यम्, आकाशस्य लौकिकत्वात्, न च लौकिकप्रत्यासत्त्यविषयत्वेनातीन्द्रियत्वादाकाशोऽप्यलौकिक एवेति शङ्क्यम् । यदि ह्यतीन्द्रियः स्याल्लौकिकव्यवहारविषयो न स्यात् यथा विविक्तात्मा । वर्तते च लौकिकव्यवहारविषय आकाशः । अतो व्यवहारमात्रविषयत्वान्नातीन्द्रियत्वादिचिन्ता तस्य युज्यते । तथा च तस्य लौकिकत्वात् तज्ज्ञानं सर्वथापेक्षितम् तच्चेन्न स्यात् प्रतिज्ञा हीयेतैवेत्यर्थः । अत्र चोदयति

रश्मिः ।

स्वरूपेति । **विभुत्वादी**ति आदिना सत्ता । **एकविज्ञान**मिति एकस्य विज्ञानमेकविज्ञानं तेन, नागृहीतविशेषणन्यायेनाकाशज्ञानमित्युक्तम् । **आकाशस्ये**ति भाष्यं विवरीतुं शङ्कामाहुः **न चे**ति । विवृण्वन्ति स्म **यत** इति । **तज्ज्ञान**मिति स्मार्तः प्रयोगः इत्यसकृदुक्तम् । **न चे**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति **न चे**ति । **जायत** इति सामान्यलक्षणया प्रत्यासत्त्या शते पञ्चाशदितिवज्जायते जीवा इति । अंशत्वं सामान्यस्थानीयम् । इदं ज्ञानमविद्वद्दशायाम् । विद्वद्दशायां तु प्रत्यक्षम् 'अनागतम्' इति वाक्यात् । **तद्व**दित्यंशत्वेन । **लौकिकत्वा**दिति । तथा च तद्वदिति दृष्टान्तविरोध इति भावः । **व्यवहारे**त्यादि भाष्यं विवरीतुमाहुः **न च लौकिके**ति । लौकिकप्रत्यासत्तयः षट्, अलौकिकास्तिस्रः । तेन नैयायिकाशङ्का । **एवे**ति योगजधर्मरूपालौकिकप्रत्यासत्त्या भविष्यति तज्ज्ञानम्, अयोगिनस्तु ज्ञानलक्षणया प्रत्यासत्त्या भविष्यत्यस्मन्मते इत्येवकारः । **लौकिके**ति भूतानां छिद्रदातृत्वादिर्व्यवहारस्तद्विषयः । ननु लौकिकत्वं लोके भवत्वं तादृशव्यवहारविषयत्वं कालपरमाण्वादावप्यस्तीति तस्यानतीन्द्रियत्वापत्तिरिति चेन्न । कालादौ रूपाभावात्परमाण्वादौ महत्त्वाभावाच्चातीन्द्रियत्वेनोद्भूतरूपमहत्परिमाणाद्यधिष्ठानत्वेन लौकिकत्वहेतोर्विशेषणीयत्वात् । न चैवमाकाशेपि रूपाभावादनतीन्द्रियत्वासिद्ध्यातीन्द्रियत्वं सिद्ध्येदिति शङ्क्यम् । सर्वत्रप्रसिद्धोपदेशाधिकरणे आकाशात्मेति भाष्यस्य प्रकाशो 'नीरूपो नील' इति तस्य रश्मौ नीलात्मताया आकाशस्य समर्थनात् । **विविक्ते**ति । अहं सुखीत्यादिप्रतीतिस्तु त्वन्मते सुखाद्यवगाहत इति वक्तव्यं, सुखाद्यतिरिक्ताभावात् । सुखादीनां गुणत्वेन तदाश्रयतयात्मसिद्धिमात्रं न तु भानम् । **वर्तते चे**ति । अयमर्थः । मीमांसकस्यार्थवादे अर्थविशेषाग्रहाभावादाकाशज्ञानं भवतु न वा । नैयायिकानां तु ज्ञानलक्षणयाकाशज्ञानं न भविष्यति । ज्ञानलक्षणाया यद्विषयकं ज्ञानं तस्यैव प्रत्यासत्तित्वात् । ज्ञानं तु ब्रह्मविषयकमत आकाशे ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्तिर्न भविष्यतीत्यवक्तव्यमाकाशस्य व्यवहारविषयत्वम्, बहिरन्तर्व्यवहारदर्शनात् । वर्तते च लौकिकव्यवहारविषय आकाश इति । **व्यवहारे**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अत** इति । कार्त्स्न्ये मात्रच् । **एवे**ति श्रुतेरुक्तत्वादेवकारः ।

लौकिकत्वाद्, व्यवहारमात्रविषयत्वान्नातीन्द्रियत्वादिचिन्ता । अनुद्गमेऽपि वस्तुसामर्थ्यात् कथं प्रतिज्ञा हीयते इत्यत आह शब्देभ्यः । 'येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतं भवत्यविज्ञातं विज्ञातं भवति' इति शब्दात् प्रकृतिविकारभावेनैव व्युत्पादयति ज्ञानम्। शब्देभ्यो हेतुभ्यः प्रतिज्ञाहानिरिति योजना ॥ ६ ॥

यावद्विकारं तु विभागो लोकवत् ॥ ७ ॥

तुशब्द आकाशोत्पत्त्यसंभावनशङ्कां वारयति । यद्यद् विकृतं तस्य सर्वस्य

भाष्यप्रकाशः ।

अनुद्गमे इत्यादि । **वस्तुसामर्थ्या**दिति, ज्ञानं भविष्यतीति शेषः । अत्रोत्तरं व्युत्पादयन्ति **येने**त्यादि । **शब्दा**दिति वाक्यात् । तथा च यद्यविभक्तस्याकाशस्य वस्तुसामर्थ्येन ज्ञानं विवक्षितं स्याद्, अश्रुतं श्रुतमित्यादि न वदेत्, शाब्दस्य मननात्मकस्य च ज्ञानस्य वस्तुसामर्थ्यजन्यत्वाभावात् । अग्रे च, यथा सौम्यैकेन मृत्पिण्डेनेत्यादिना प्रकृतिविकारभावेन न ज्ञानं व्युत्पादयेत्, वदति त्वेवं, व्युत्पादयति चैवमतः कार्यरूपेण व्यतिरेकानङ्गीकारे **शब्देभ्यो हेतुभ्यः** सिद्धायाः **प्रतिज्ञाया हानि**रित्यर्थः ॥ ६ ॥

यावद्विकारं तु विभागो लोकवत् ॥ ७ ॥ अस्मिन् सूत्रे व्याप्तिदृष्टान्तयोरुप

रश्मिः ।

ज्ञानमिति आकाशस्य व्यापकत्वेन वस्तुसामर्थ्येन ब्रह्मणि सत्त्वाज्ज्ञानं लक्षणया भविष्यति ज्ञानमिति । **न वदे**दिति । तथा च ज्ञानलक्षणया प्रत्यासत्त्या ज्ञानेऽविज्ञातत्वाभावेना**विज्ञातं विज्ञात**मिति **विरुध्येते**ति भावः । किं चाऽऽकाशप्रत्यक्षे योगजधर्मप्रत्यासत्तिरङ्गीकृता तद्धानिः । ज्ञानलक्षणाङ्गीकारात् । किं च यद् यदुपादेयं तत् तज्ज्ञानेन ज्ञायत इति नियमोऽवश्यमभ्युपेयोऽन्यथा सुवर्णज्ञाने सति घटादयोपि ज्ञाता भवेयुः कुण्डलादिवत् । आकाशं तु न ब्रह्मोपादेयमिति ब्रह्मज्ञानेऽपि ज्ञायेतेति-श्रुतिर्न वदेदित्यर्थः । ननु दर्शितो नियमो ज्ञानलक्षणायाः प्रत्यासत्तेः स्थले संभवति प्रकृते तु योगजधर्मः प्रत्यासत्तिस्तया तु ब्रह्मानुपादेयमपि ज्ञास्यते विषयमात्राधीनत्वादित्यत आहुः **शाब्दस्ये**ति । **वस्त्वि**ति वस्तुसामर्थ्येन विषयविधया वस्तुसामर्थ्यजन्यत्वम्, अभावस्तु पदादिज्ञानजन्ये शाब्दे युक्त्यनुभवप्रतिभादिजन्ये मनने च । तथा च भवेद्योगजधर्मेणाकाशज्ञानं यदि तन्मानसं भवेन्न त्वेवं किं तु शाब्दम् । 'आत्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम्' इति श्रुतेः । तत्र तु पदज्ञानं तु करणम् । पदजन्यपदार्थस्मरणं व्यापारः । अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरसंकेतरूपेच्छा सहकारिणी । कथं त्वत्र योगजधर्मप्रत्यासत्तिरित्यर्थः । श्रुतौ दृष्ट इति चाक्षुषविषयताप्युच्यते परं सा मोक्षोत्तरभाविनीत्यविद्वद्दशायां विचारः । **प्रकृती**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अग्रे चे**ति । **आदि**नेति दृष्टान्तेन । **प्रकृतिविकारभावेन** प्रकृतिविकृतिभावेन कार्यकारणभूतेन । **ज्ञान**मेकविज्ञानेन सर्वविज्ञानम् । **शब्देभ्य** इति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अत** इति । किं तु नित्यत्वेन ब्रह्माव्यतिरेकेणाकाशाङ्गीकारे **शब्देभ्यो** येनाश्रुतं श्रुतं भवतीत्यादिभ्यो **हेतुभ्यो** व्यतिरेकात् कार्यत्वेनाकाशाव्यतिरेकमाश्रित्य **सिद्धायाः प्रतिज्ञायाः** एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञायाः **हानि**रित्येकदेशान्वयेन योजना । वृत्तौ तु प्रतिज्ञापदे 'सुपां सुलुक्' इति सूत्रेणैकदेशान्वयभिया षष्ठ्या लुगुक्तः । अत्र गौण्यसंभवसूत्रोक्तं निरसनीयम् ॥ ६ ॥

यावद्विकारं तु विभागो लोकवत् ॥ ७ ॥ **अस्मि**न्निति । यावन्तो विकारास्तावन्तो-

विभाग उत्पत्तिः । आकाशमपि विकृतं, लौकिकव्यवहारविषयत्वात् । यथा लोके विकृतमात्रमुत्पद्यते ।

भाष्यप्रकाशः ।

न्यासेनाकाशोत्पत्तावनुमानमेवोपन्यस्तमित्याशयेनाहुः **यद्यदित्यादि** । तथा चाकाश उत्पादविनाशशाली, विकृतत्वात् । विकृतो, लौकिकव्यवहारविषयत्वात्, लोकवदिति । तस्मादाकाश उत्पद्यत इति सिद्धम् । नन्वाकाशोत्पत्तिर्विभागशब्दमहिम्ना विभागद्वारा वक्तव्या, स तु ब्रह्मणो व्यापकत्वादशक्यवचन इति कथमुत्पत्तिरिति चेत्, न । बृहदारण्यके मैत्रेयीब्राह्मणे ब्रह्मणः प्रज्ञानघनत्वश्रावणाद् ब्रह्म तादृशं, यदा सृजति, तदा घनत्वं तिरोभावयतीत्याकाशो विभज्यत इत्यनुपपत्त्यभावात् । एवमन्यदपि बुद्धिदोषोद्भवं परिहर्तव्यमिति दिक् ।

रश्मिः ।

च्युतकार्याणीति यावद्विकारं । 'यावदवधारणे' इति सूत्रेण समासः । 'नाव्ययीभावादतोम् त्वपञ्चम्याः' इत्यनेन षष्ठ्या लुकं बाधित्वाऽमादेशः । यावद्विकाराणां **विभाग उत्पत्तिः** । विभागादुत्पत्तिरिति विशेषेण **भागः** । आद्यक्षणसंबन्धः उत्पत्तिः विभागः इति व्युत्पत्तिः । तृतीये स्कन्धेप्युत्पत्तिस्वरूपमस्ति । **लोकवत्** घटादिवदित्यर्थ**केस्मिन्सूत्रे** । **व्याप्तीति** यद्यद्विकृतं तत्तदुत्पत्त्यादिमदिति व्याप्तिः, **लोकव**दिति दृष्टान्तस्तयोः । **अनुमान**मिति गौण्यसंभवसूत्रे आकाशं नोत्पादविनाशशालि निरवयवत्वाद्व्यापकत्वाच्च ब्रह्मवत्, यन्नैवं तन्नैवं घटादिवदित्यनुमानं सूचितम् । तन्निरासायात्र प्रतिपक्षमनुमानम् । अनुमानं वक्ष्यते **यद्यदित्यादी**ति । उक्तसमासमभिप्रेत्याहुः **यद्यदि**ति । भाष्ये विकृतत्वहेतौ स्वरूपासिद्धिं निरस्यन्ति **आकाशमि**त्यादि । दृष्टान्तं व्याकुर्वन्ति **यथे**ति । आकाशे विकृतत्वाभावात्प्राप्तां स्वरूपासिद्धिं परिहरन्ति स्म **विकृत** इति । ननु लौकिकव्यवहारविषयत्वेन विकृतत्वेन न व्याप्तिः । कालदिगात्ममनःसु परमाणुषु च विकृतत्वापत्तेरिति चेन्न । 'दिक्कालावीश्वरान्नातिरिच्येते' इति **दीधितिकृतोक्त**स्य सिद्धान्तेप्यविरुद्धत्वान्मनसोऽन्नमयत्वेन जन्यत्वात् परमाणूनां द्व्यणुकजन्यत्वादिष्टापत्तेः । यादृशात्मनो व्यवहारविषयत्वं तादृशस्य विकृतत्वात् । जीवात्मनां तु आनन्दांशतिरोभावो ब्रह्मधर्मविपरीतधर्मवत्त्वं च विकारः । तेन जीवो ब्रह्मांश इत्यादिव्यवहारविषयत्वेऽपि न क्षतिः । **विभागद्वारे**ति विभागमसमवायिनं मत्वा **वक्तव्या** । **स** इति विभागः । **कथ**मिति असमवायिकारणविरहात्कथम् । **तादृश**मिति छिद्रदात्राकाशरहितत्वं घनत्वं प्रचयाख्यसंयोगरहितत्वं वा प्रज्ञानघनत्वं वा श्रीगोवर्धननाथवत्तत् दृश्यते यत्र । **तिर** इति 'हन्त तिरोऽसानि' इति श्रुतेस्तिरोभावयतीत्यर्थः । 'आविर्भावतिरोभावौ शक्ती वै मुरवैरिणः' इति वाक्याच्च । **अन्यद**पीति यथा विभाग एवोत्पत्तिः । उत्पन्ने स्वरुशरावादौ विभक्त इति व्यवहारः, विभक्ते स्वरुशरावादौ उत्पन्न इति व्यवहारः, मृदो मृत्पिण्डमुद्धृत्य शरावादौ विभागजे विभाग एवोत्पत्तिः । विभक्तत्वव्यवहारासाधारणं कारणं विभागो मृत्पिण्डे शरावसमवायिनि वर्ततेऽतो विभागविशिष्टमृत्पिण्डे विभागसत्त्वात्स एवोत्पत्तिः प्रथमज्ञानस्योत्पत्तित्ववत् शरीरस्वीकारस्योत्पत्तित्ववच्च । न च मृत्पिण्डोत्पत्तिः सा न शरावस्येति शङ्क्यम् । शरावसत्ता मृत्पिण्ड इति स्वसत्तारूपशरावाद्युत्पत्तिर्विभागः । शरावादावुत्पन्नेऽपि मृत्पिण्डविभागौ तावेव । नामाकृतिविकारभेदेन न द्रव्यविभागयोर्भेद इति । घटमञ्जूषादिषु तु संयोगोऽपि निमित्तान्तर्गतः । विभागस्य सर्वत्र सत्त्वात् । संयोगस्य तु संयोगजकार्य एवेत्यलम् । **परी**ति अचिन्त्यानन्तशक्तिमत्त्वेन विरुद्धधर्माश्रयतया च परिहर्तव्यम् । 'युक्तिभिरतिशिथिलाभिः समादधानो दृढान्दोषान् । वाचस्पतिरपि

भाष्यप्रकाशः।

वाचस्पतिमिश्रास्तु आकाशकालदिङ्मनःपरमाणवो, विकाराः। आत्माऽन्यत्वे सति विभक्तत्वात्, घटादिवद् इत्यनुमानमाहुः।

भास्कराचार्यास्तु 'अचेतनत्वे सति विभक्तत्वात्, पृथिव्यादिवत्' इत्येवमनुमानमाहुः।

रामानुजाचार्यास्तु ऐतदात्म्यमिदं सर्वमित्यादिभिराकाशस्य विकारत्ववचनेन तस्याकाशस्य ब्रह्मणः सकाशाद् विभाग उत्पत्तिरप्युक्तैव, लोकवत्, लोके यथा, एते देवदत्तपुत्रा इत्यभिधाय तेषु केषांचित् तत उत्पत्तिवचनेन सर्वेषामुत्पत्तिरुक्ता स्यात् तद्वदित्येवं व्याकुर्वन्ति। तत् क्लिष्टम्। आकाशस्य तत्र विकारताया अश्रावितत्वात्, ऐतदात्म्यवाक्यस्य तेजआद्युत्पत्तिवाक्यात् पूर्वमसत्त्वात् तत्रापीदं सर्वमित्यनेनाकाशस्य संग्राह्यत्वाच्चेति। एवमेव तच्चौरमतेऽपि बोध्यम्।

शंकराचार्यास्तु आकाशमनित्यम्, अनित्यगुणाश्रयत्वात्, घटादिवदित्यनुमानं प्रयुञ्जते।

माध्वास्तु अथ हैतान्युत्पत्तिमन्ति चानुत्पत्तिमन्ति च प्राणः श्रद्धाऽऽकाश इति भागशो ह्युत्पद्यन्त इति भाल्लवेयश्रुतिमुपन्यस्य बहुभिर्भागैरुत्पद्यन्ते कैश्चिन्नोत्पद्यन्त इत्याहुः। सा तु श्रुतिरिदानीं न प्रसिद्ध्यति।

भिक्षुस्तु, 'यथा मधु मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति'इति, 'अथास्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि संपद्यते' इति छान्दोग्यश्रुती लिखित्वा अविभागलक्षणमेवाद्वैतमङ्गीकुर्वन् प्रकृतिगुणभूतस्य सूक्ष्माकाशस्य ब्रह्माविभक्तत्वादनुत्पत्तिं भूताकाशस्य विकृतत्वादुत्पत्तिं च व्याकुर्वन्नहंकारस्य तदनुगतसूक्ष्माकाशस्य च भूताकाशावयवत्वमङ्गीकृत्य पृथिव्यादिवदाकाशोऽपि नित्यानित्यो-

रश्मिः।

भाष्ये व्याख्याव्याजेन दूषणं ब्रूते' इति वक्तुं **शंकराचार्यमतात्पृथक्** तेनाहुः **वाचस्पतिमिश्रास्त्विति**। सूत्राक्षरार्थोऽत्राग्रे व्याख्येये नास्तीति व्याख्याव्याजेन दूषणम्। **आकाशे**त्यादिसौत्रयावत्पदार्थः। **विकारा** इति विकारशब्दार्थः। **विभक्तत्वादिति** विभागपदार्थः। **घटादीति** लोकवदित्यस्यार्थः। **विकारत्वेति** ऐतदात्म्यपदेनैतदात्मनो भावत्वकथनाद् भावश्च विकारो दृष्ट इति तथा। **तत** इति देवदत्तात्। **व्याकुर्वन्तीति** सूत्रम्। **तत्क्लिष्टमिति** पूर्वोक्तरीत्याकाशकालदिक्षु ईश्वरातिरेकाभावेन विभक्तत्वस्याभावादंशतः स्वरूपासिद्धेः क्लिष्टत्वम्। **रामानुजाचार्य**मतेऽप्याहुः **आकाशस्येति**। **तत्रेति** छान्दोग्ये श्वेतकेतूपाख्याने। **ऐतदात्म्यवाक्यस्य** तु 'तत्तेजोऽसृजत' इति 'तदपोऽसृजत' इति 'ता अन्नमसृजन्त' इति पठित्वाग्रे कथनात्तेजआदिषु विकृतत्वं वक्ति न वाय्वाकाशयोरित्याहुः, **ऐतदात्म्येति** आकाशविकृतत्वप्रतिपादकस्य। **असत्त्वादिति** तथा च नास्मादाकाशावृत्तिः। ननु सिद्धान्त आकाशस्याविकृतत्वापत्त्या 'आकाशः संभूतः' इति श्रुत्या नैकवाक्यतेत्यत आहुः **तत्रेति**, ऐतदात्म्यवाक्ये एव। **अपि**रेवकारार्थे। **संग्राह्येति** आकाशस्य नीलत्वादिदंपदेन **सर्व**पदेन चेत्यर्थः। **तच्चौरेति** रामानुजमतचौरभगवच्छैवमते। **आकाशमिति**। यावच्छब्दार्थः पक्षः। विकारशब्दार्थः साध्यम्। अनित्यगुणो विभागस्तदाश्रयत्वाद्धेतुः। दृष्टान्तस्तु घटादीत्यनेन विवृतो भाष्यत्वात्। **यथा मध्विति मधुकृतो** भ्रमरा **मधु निस्तिष्ठन्ति** निरुपसर्गा निष्पादयन्ति। **अथेति** अस्य सौम्य पुरुषस्येत्यपि पाठः। **प्रयतो** म्रियमाणस्य पुरुषस्य। **वाङ्मनसि संपद्यते** उपसंह्रियत इत्यर्थः। **छान्दोग्येति** श्वेतकेतूपाख्यानस्थाम्। **प्रकृतीति** तमोरूपस्य। **तदन्विति** अहंकारानुगतसूक्ष्मतमसः। **पृथिवीति** आदिशब्देनाबादिः। परमाणुरूपा **नित्या**

आकाशोत्पत्तौ श्रुत्या सिद्धायाम्, 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः,

भाष्यप्रकाशः ।

भयरूप इत्याह । तन्न । उक्तश्रुत्योर्जीवविषयत्वेन ताभ्यां जडाविभागस्यापादयितुमशक्यत्वात्, उपक्रमे 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' इति प्रतिज्ञायाग्रे तेजःप्रभृतिसृष्टिकथनेनाग्रे च 'सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः' इत्यादिना सति ब्रह्मणि सर्वमूलत्वस्यैव निगमनेन च जडस्य सर्वस्य ब्रह्मैवोपादानमिति सिद्ध्यति, तथा सति प्रलयेऽपि न कार्यस्याविभागमात्रता, किंत्वैकीभावपर्यन्ततेति, लोके सुवर्णादिविकारेषु तथैव दर्शनात् । सांख्यैरपि कार्यस्य प्रतिसंक्रमे कारणभावस्यैवादरणाच्च । एवं सति भूताकाशावयवविचारेऽपि यथान्नस्याबादिद्वारा ब्रह्मैक्यपर्यन्तता, तथास्यापि त्वदभिमतावयवद्वारा ब्रह्मैक्यपर्यन्ततैव । प्रकृतेऽपि जन्यत्वस्य समन्वयाध्याय एवोपपादितत्वात् । एवं जीवस्यापि नाविभागमात्रम्, ऐतदात्म्यमध्ये तस्यापि प्रवेशात् । एतावान् परं विशेषो यज्जीवस्य न विकृतौ प्रवेशः । अंशत्वादेवैतदात्म्यात् प्रतिज्ञापूर्तेः अतोऽपार्थोयमाडम्बर इति ।

प्रकृतमनुसरामः । नन्वाकाशस्योत्पत्तिमत्त्वे 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः' इत्यादिश्रुतीनां विरोधः कथं परिहार्य इत्यत आहुः आकाशोत्पत्तावित्यादि । सिद्धायामिति छान्दोग्यस्थप्रतिज्ञाबलात् सिद्धायाम् । तथा चाकाशवदिति श्रुतौ या आकाशस्य ब्रह्मोपमानता, सा, 'समोऽनेन सर्वेण' इत्यत्र यथा सर्वस्य भगवदुपमानता भगवतस्तत्तत्परिमाणतायां पर्यवस्यति, न तु सर्वस्य ब्रह्मतुल्यपरिमाणत्वे । तथात्राप्युपमानता ब्रह्मणो व्यापकत्वनित्यत्वयोः पर्यवस्यति, न त्वाकाशस्य भगवत्तुल्यत्वे, सर्वगतनित्यशब्दयोर्ब्रह्मविशेषणत्वात् । 'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च

रश्मिः ।

कार्यरूपा **अनित्या** । **जीवविषये**ति पूर्वस्याः नानात्ययानां वृक्षाणां रसान् समवहारमेकतां रसं गमयन्ति, ते यथा तत्र न विवेकं लभन्त इत्यन्ताया दृष्टान्तत्वेन 'एवमेव खलु सौम्येमाः सर्वाः प्रजाः सति संपद्य न विदुः सति संपद्यामहे' इत्यत्र नानागतीनां वृक्षाणां समवहारं समाहृत्यैकतां मध्वात्मकतां रसं गमयन्ति रसानां मधुत्वं संपादयन्ति ते यथा तत्र मधुनि न विवेकं लभन्ते तथेमे जीवाः ब्रह्मणि संपद्य न विदुरित्यर्थात् । द्वितीया तु व्याख्याता एवं जीवविषयत्वेन । तर्हि जीवाविभागाद् द्वैतं भविष्यतीत्याशङ्कामपनुदन्तो जीवजडयोः सतोरपि ब्रह्माद्वैतमाहुः **उपे**ति । **तथे**ति ब्रह्मणः समवायित्वे सति । **एकी**ति कारणैकीभावेत्यर्थः । **तथैवे**ति अविभागानन्तरं कारणैकतादर्शनात् । संमतिमाहुः **सांख्यै**रिति । **प्रतिसंक्रमे** नाशे । **कारणे**ति प्रथमाध्याये 'कारणभावाच्च' इति सूत्रे । **भूते**ति अनित्याकाशविचारे । **यथान्नस्ये**ति 'तस्माद्वा' इति श्रुतावन्नस्यौषधावोषधेः पृथिव्यां तस्या अप्सु तासामग्नौ तस्य वायौ तस्याकाशे तस्य ब्रह्मणि लय इत्येवं **ब्रह्मैक्यपर्यन्तता** । **अस्यापि** इति आकाशस्य । **समन्वये**ति चतुर्थपादे 'ज्योतिरुपक्रमात् तु तथाह्यधीयत एके' इति सूत्रे । स्वमतेनाहुः **एवमि**त्यादिना । **विरोध** इति यः 'शब्दाच्च' इति सूत्र उक्तः । आकाशोत्पत्तिश्रुतिराकाशानुत्पत्तिश्रुतिसमेति नैकतरसिद्धिः शक्यवचनेति श्रुत्येत्यस्य पदस्यार्थमाहुः **छान्दोग्ये**ति छान्दोग्यस्थ**प्रतिज्ञा**श्रुति**बलात्** । तेन श्रुत्यासिद्धायामित्येकं पदं भाष्ये समस्तम् । छान्दसनामत्वारोपणैकदेशग्रहणं **सिद्धायामिती**ति प्रतीकेन **श्रुत्या सिद्धाया**मिति व्यस्ते पदे यदा तदा सुगमान्वयः । श्रुत्यविरोधरूपपादार्थसमन्वयार्थं क्रमेण श्रुतिषु विशेषानाहुः **तथा चे**ति । **तत्त**दिति । 'य आकाशमन्तरो यमयति' इति श्रुतेराकाश**परिमाणतायाम्**, 'यः पृथिवीमन्तरो यमयति' इत्यादिभ्यः सर्वपरिमाणतायाम् ।

'आकाशशरीरं ब्रह्म,' 'स यथाऽनन्तोऽयमाकाश एवमनन्त आत्मा वेदितव्यः, आकाश आत्मा' इत्यादिश्रुतयः, 'समोऽनेन सर्वेण,' 'य आकाशे तिष्ठन् सर्वमात्मा' इत्येवमादिभिरेकवाक्यतां लभन्ते । व्यवहारे त्वज्ञबोधनं वाक्यानामुपयोगः ॥७॥ इति द्वितीयाध्याये तृतीयपादे प्रथमं वियदित्यधिकरणम् ॥ १ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

दृश्यते' इति साम्यनिषेधश्रुतेर्ज्यायानाकाशादिति नभोज्यायस्त्वश्रुतेश्च । तथा सत्याकाशस्य यन्नित्यविभुत्वं तदन्यापेक्षयैव, न तु ब्रह्मवदिति फलतीति सर्वसाम्यश्रुत्यैकवाक्यतां लभते । एवमाकाशशरीरत्वश्रुतिर्य आकाशे तिष्ठन्नित्यन्तर्यामिब्राह्मणश्रुत्या, बहुव्रीहिविग्रहेण तस्यैवार्थस्य लाभात्, एवं सति यथा पृथिव्यादीनामाधारतामात्रं, न तु नित्यत्वादिकमपि, तथैवाकाशस्येति फलति । एवमनन्तत्वोपमानश्रुतावप्यापेक्षिकमेवानन्तत्वमाकाशस्येति पूर्ववत् सर्वसाम्यश्रुत्यैवैकवाक्यतां लभते, उत्पत्तिमत्त्वेनैवान्तवत्त्वस्य प्राप्तत्वात्, 'नभस्तमनुलीयते' इत्यादि स्मृतेश्च । एवम्, 'आकाश आत्मा' इति प्राणमयवाक्यस्थश्रुतिरपि, 'इदं सर्वं यदयमात्मा' इति मैत्रेयीब्राह्मणश्रुत्या । तत्र सर्वमुद्दिश्यैवात्राकाशमुद्दिश्यात्मत्वविधानात् । अतस्तत्र सर्वस्यैवात्राकाशस्यापि न नित्यत्वादौ तात्पर्यमपि तु ब्रह्मात्मकत्वे, वस्तुतस्तु प्राणसंचारायाकाशस्यात्मत्वमुच्यते इति तत्रायमर्थ एव न भवतीति, न चाशङ्का न चोत्तरमिति । ननु भवत्वेवमेतासां श्रुतीनां गतिस्तथाप्येवं कथनस्य प्रयोजनं तु किंचिद् वक्तव्यम् । अन्यथा, एवं तात्पर्यकत्वमपि संदिग्धमेव तिष्ठेदित्यत आहुः व्यवहारे त्वित्यादि। 'आकाशशरीरम्' इति श्रुतिर्हि उपासनार्था। 'इति प्राचीनयोग्योपास्व' इत्युपसंहारात्, यदि ह्याकाशं तथा न जानीयात् कथं ब्रह्मशरीरत्वेनोपासीत, अतोऽज्ञानां बोधनमेव वाक्यप्रयोजनम्, एवमन्यत्रापि द्रष्टव्यम् । अतो न तात्पर्ये संदेह इत्यर्थः।

रश्मिः ।

अन्येति । आकाशवच्छ्रुतेः । आकाशं शरीरमस्येति शरीर्यपेक्षया श्रुत्यन्तरस्वारस्यस्य वक्ष्यमाणत्वादेवकारः। **लभत इति** तथा च 'वायुश्चान्तरिक्षं चैतदमृतम्' 'आकाशवत्' इति श्रुत्योश्चतुर्मुखाजन्यायेनामृतादिपदप्रवृत्तिरिति भावः । आकाशं शरीरमस्येति विग्रहादाहुः **बहुव्रीहीति** । सुबोधिन्यामाकाशशरीरश्रुतेरेवकारः । **आधारतेति** । 'यः पृथिव्यां तिष्ठन्' इत्यादिश्रुतिजाले । **फलतीत्या**काशशरीरश्रुतौ फलति । **आपेक्षिकमिति** वाय्वाद्यपेक्षिकम् । आकाशवच्छ्रुतिवत् । **प्राप्तत्वादिति**। अतोऽनन्तपदेन तस्य निषेध इति भावः । **प्राणमयेति** ब्रह्मवित्प्रपाठके । **नित्यत्वादाविति** आदिशब्देन सर्वगतत्वम् । **ब्रह्मात्मेति** उभयत्रात्मपदात्, **एवमादि**शब्दार्थौ वेदितव्यौ । प्रयोजनाभावान्नोदाहृतौ । **प्राणेति** । आकाशाद्वायुरित्युक्तवायुरूपविराट्प्राणसंचाराय । **तत्रायमिति** श्रुतिष्वयं नित्यत्वादिलक्षणः । **एवं कथनस्येति** आकाशे शरीरत्वादिकथनस्य । प्रयोजनमात्रप्रश्नोयं प्रासङ्गिकः । **संदिग्धमिति** आकाशवदित्यादिभिर्नित्यत्वस्य । **अज्ञानामित्यादि** अशुद्धचित्तानां चित्तशुद्ध्यर्थमुपासनबोधनम् । एवकारस्तु भक्त्येकलभ्यत्वात् । ज्ञानात्तु दार्ढ्यार्थं स्थूणाखननवदिति ज्ञेयम् । **अन्यत्रेति** । आकाशवदित्यादिवाक्येषु सर्वगतत्वेन नित्यत्वेनामृतत्वेनानन्तत्वेनात्मत्वेन ब्रह्मधर्मेण जगत उपासनं प्रयोजनं द्रष्टव्यम् । तदुक्तं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत' इति । **अत** इति उपासनार्थत्वेन निरवधिनित्यत्वादौ मिथ्यात्वे च नित्यत्वादेस्तात्पर्याभावात् । **न तात्पर्येति** पूर्वोक्तार्थे न तात्पर्यसंदेहः । **इत्यर्थ इति** 'स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत्' इति सूत्रोक्ता 'तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः'

१. द्वितीयसूत्रोदाहृतौ ।

एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः ॥ ८ ॥ (२-३-२)

आकाशोत्पत्तिसमर्थनेन मातरिश्वोत्पत्तिः समर्थिता । 'सैषाऽनस्तमिता देवता' इति भौतिकवायुव्यावृत्त्यर्थमलौकिकपदम् ॥ ८ ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयपादे द्वितीयमेतेन मातरिश्वेत्यधिकरणम् ॥ २ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

तस्मादाकाशोऽप्युत्पद्यत इति सिद्धम् ॥ ७ ॥ **इति प्रथमं वियदित्यधिकरणम्** ॥ १ ॥

एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः ॥ ८ ॥ ननु वायूत्पत्तिः श्रुता प्रत्यक्षसंवादिनी चेति संदेहाभावात् किमस्याधिकरणस्य प्रयोजनमत आहुः **सैषे**त्यादि । श्रुतिस्तु बृहदारण्यके सप्तान्नब्राह्मणे व्रतमीमांसास्था । म्लोचन्ति ह्यन्या देवता न वायुः सैषाऽनस्तमिता देवता यद् वायुः' इति । तथा चाऽनस्तमितत्वादेवोत्पत्त्यभावः सिद्ध्यतीति श्रुतिविप्रतिषेधादेव संदेहः श्रुतिविरोधनिराकरणमेव चाधिकरणप्रयोजनम् । ननु तथापि प्रत्यक्षविरोधस्य का गतिरित्यत आहुः **भौतिके**त्यादि । तथा च प्रत्यक्षं भौतिकविषयं, न भूतविषयमित्यदोष इत्यर्थः । शब्दनिर्वचनं तु मातरीति सप्तम्यन्तप्रतिरूपकमव्ययमन्तरिक्षवाचकम्, तत्र श्वयति गच्छतीति

रश्मिः ।

इत्यत्र गौणी सा तु पूर्वमुत्पत्तिसमर्थनाच्छत्तया निरस्यत इति न पृथक् दूषिता । **उत्पद्यत** इति आत्मा समवायिकारणं विभागोऽसमवायी, आत्मेच्छा निमित्तमाकाशं कार्यमित्युत्पद्यते । लक्षणं तु प्रस्थानरत्नाकरे प्रमेयप्रकरणेऽस्ति । तेनाकाशं नोत्पद्यते सामग्रीशून्यत्वादित्यनुमानं स्वरूपासिद्धम् ॥ ७ ॥

इति प्रथमं न वियदित्यधिकरणम् ॥ १ ॥

एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः ॥ ८ ॥ **भाष्ये एतेने**ति पदात्सूत्रे मातरिश्वपदे लक्षणेत्याशयवन्त आहुः **मातरिश्वोत्पत्ति**रिति । मातरिश्वपदं लाक्षणिकम्, तात्पर्यग्राहकादेतेनेति पदात् । पूर्वसूत्रे गौणीशब्दात्प्रथमत्यागे मानाभावाच्च व्याख्यात इत्यत्रैव लिङ्गविपर्यय इत्याशयवन्त आहुः, **समर्थिते**ति छान्दोग्योक्तप्रतिज्ञानुरोधिनीभिः पूर्वोक्तयुक्तिभिरुत्पत्तिः समर्थिता । **श्रुते**ति आकाशाद्वायुरिति श्रुत्या । किं च **प्रत्यक्षे**ति । **म्लोचन्ती**ति अग्न्यादिदेवता म्लोचन्ति अस्तं यान्ति स्वकर्मभ्य उपरमन्ति न वायुर्म्लोचति । **सैषा** 'वायुश्चान्तरिक्षं चैतदमृतम्' इति श्रुत्यन्तरान्नित्यत्वावेदकादविरोधः । **सैषा वायुर्देवताऽनस्तमिता**ऽविनाशिन्नेत्यर्थः । वायुलक्षणं 'चालनं व्यूहनं प्राप्तिर्नेतृत्वं द्रव्यशब्दयोः । सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं वायोः कर्माभिलक्षणम्' इति वाक्यादरूपित्वे सति चालनव्यूहनद्रव्यशब्दगन्धनयनसर्वेन्द्रियबलदानाख्यकार्यत्वमेकमेव । रूपरहितः स्पर्शवान्वायुरिति नैयायिकाः । **अनस्ते**ति अविनाशित्वात् । **श्रुती**ति उत्पत्तिश्रुतिप्रतिरोधात् । वायोरुत्पत्तेः सर्वेषामिष्टत्वेन पूर्वपक्षासंभवादधिकरणभङ्गस्तं वारयन्ति स्म **श्रुती**ति । वायूत्पत्त्यनुत्पत्तिबोधकश्रुतीत्यर्थः । वायुनित्यत्वश्रुतिस्तु 'वायुश्चान्तरिक्षं च एतदमृतम्' इति । तथा च विरोधनिराचिकीर्षोर्व्यासाचार्यस्यैवाशङ्कापूर्वपक्ष इति भावः । स च **तथा चे**त्यादिना वक्ष्यते । तथा च न पादार्थस्य लक्षणभूतस्य श्रुतिविरोधनिराकरणरूपस्याव्याप्तिः । अग्रे वक्ष्यन्ति च । **भौतिके**ति भौतिको वायुर्यः पञ्चीकृत इत्युच्यते प्राणः सृष्टवायोस्त्वग्वा । **भूते**ति भूतो वायुर्यस्त्रिवृत्कृत[1] इत्युच्यते आकाशप्रथमकार्यं स भूतसूक्ष्मम् । **अदोष** इति विषयभेदाददोषः । एतच्छब्दप्रयोगादरे व्यासाशयमाहुः ।

१ त्रिवृत् ।

असंभवस्तु सतोऽनुपपत्तेः ॥ ९ ॥ (२-३-३)

ननु ब्रह्मणोऽप्युत्पत्तिः स्याद् 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः' इति श्रुते-

भाष्यप्रकाशः ।

मातरिश्वा । टु ओ श्वि गतिवृद्धौ । तथा च भूतात्मा वायुर्नोत्पद्यते, छान्दोग्ये अश्रवणादिति पूर्वः पक्षः । तैत्तिरीये श्रावणादुत्पद्यत इति सिद्धान्तः । अन्येऽपि गौण्यादिसूत्रोक्ताः पक्षा अत्र योजनीयाः । सूत्रे, एतेनेत्यतिदेशात् । अमृतत्वश्रुतिस्त्वापेक्षिकी, म्लोचन्तीति श्रुत्यनुसारेण तथा निर्णयस्य सिद्धत्वात् । तस्माद् वायुरुत्पद्यत इति सिद्धम् ॥ ८ ॥

इति द्वितीयं एतेन मातरिश्वेत्यधिकरणम् ॥ २ ॥

असंभवस्तु सतोऽनुपपत्तेः ॥ ९ ॥ व्याकुर्वन्ति नन्वित्यादि । अयमर्थः । यद्यपि ब्रह्मण उत्पत्तिर्न श्रूयत इति तदुत्पत्त्याशङ्कैव नोदेति, तथापि पूर्वस्मिन् पादे बाह्याबाह्यमतानां निराकृतत्वात् तदसहमानः कश्चिद् अस्तेरुत्पत्तिवाचकत्वस्य, 'हरितो रोहितादासीद्धुन्धुस्तस्या-

रश्मिः ।

यौगिकालौकिकपदादरे । **भूतात्मेति** । अनेन विशेषणेन भौतिको वायुर्व्युदस्यते । **छान्दोग्य** इति श्वेतकेतूपाख्याने । 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इत्युपक्रम्य 'तत्तेजोऽसृजत' इत्यादिना तेजोबन्नानां सृष्टिश्रावणेन **वायोरश्रावणात्** । **तैत्तिरीय** इति आकाशाद्वायुरिति । **पक्षा** इति निरवयवत्व-व्यापकत्वैकविज्ञानसर्वविज्ञानप्रतिज्ञावायुशरीरत्वपूर्तिवायूत्पत्तिगौणप्रयोगरूपाः पक्षाः पूर्वपक्षाः गौणी-सूत्रोक्ताः शब्दाच्चेति सूत्रोक्ताश्चानूद्याग्रे निराकरिष्यन्ते । तत्र व्यापकत्वनिरवयवत्वयोः स्वरूपासिद्ध-त्वात् । वायुशरीरविशिष्टज्ञानस्यैव विषयकज्ञानत्वाभावान्मुख्ये प्रयोगे सति गौणस्यान्याय्यत्वान्नि-रसनीया इत्येवं **योजनीयाः** । **अतीति** आन्यत्रिकप्रतीतपक्षाणां कार्यतोऽनित्यत्वस्थापनतोऽत्र प्राप-णात् । पादार्थं संगमयन्ति स्म **अमृतत्वेति** । 'वायुश्चान्तरिक्षं चैतदमृतम्' इति श्रुतिः । **आपे-क्षिकीति** तैत्तिरीयोक्ताग्न्याद्यापेक्षिकी । अग्न्याद्यपेक्षया वायोरमृतत्वमित्यर्थः । कथैकवाक्यतां लभत इत्याकाङ्क्षायामाहुः **म्लोचन्तीति** । **तथेति** अग्न्याद्यपेक्षया वायोरमृतत्वं निरपेक्षं नेति **निर्णयस्य सिद्धत्वादिति** । न चात्र निम्लोचत्यस्तं यातीत्यस्योपरमतीत्यर्थाद्रुत्पत्तौ समकक्षत्वात्साध्यत्वमिति वाच्यम् । न वायुर्म्लोचतीत्येतावतैव चारितार्थ्यात् । अन्या देवता म्लोचन्तीति कथनात्तदपेक्षया न वायुर्म्लोचतीत्यस्यावश्यकत्वात् स्याच्चेति सूत्रे पक्षो न संभवति । गङ्गायां मत्स्यघोषौ स्त इति क्वचि-द्दर्शनात् । गङ्गायां मत्स्यः गङ्गायां घोष इतिवद्वा । **उत्पद्यत** इति आकाशः समवायिकारणमात्मेच्छा निमित्तम् । असमवायिनोऽनियतत्वं द्योतयति स्म सूत्रं वायुः कार्यमित्युत्पद्यत इत्यर्थः ॥ ८ ॥

इति द्वितीयमेतेन मातरिश्वेत्यधिकरणम् ॥ २ ॥

असंभवस्तु सतोऽनुपपत्तेः ॥ ९ ॥ व्याकुर्वन्तीति । **ननु ब्रह्मणोप्युत्पत्तिरित्यस्य** ब्रह्ममहिम्ना वाय्वाकाशयोरुत्पत्तेः पूर्वं निरूपणे प्राप्तेऽधीतवेदान्तस्य वाय्वाकाशनिरूपणं प्रतिबन्धकी-भूतजिज्ञासाविषयं तन्निरूपणेन प्रतिबन्धकजिज्ञासानिवृत्त्या पूर्वाधिकरणेनावसरसंगतिरित्याशयेन व्याकुर्वन्तीत्यर्थः । पूर्वपक्षं वदन्तीत्याशयेन व्याचक्षते स्म **अयमर्थ** इति । 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इति विषयवाक्यं तत्रायं संशयादिरूपोर्थ इत्यर्थः । **नोदेतीति** 'अस्तीत्येवोपलब्धव्यः' इति **श्रुतेर्ब्रह्म** नोत्पद्यत इति संशयस्यैका कोटिः । द्वितीयां कोटिमाहुः **तथापीति** । **कश्चिदिति** । स्वमतपराभवं श्रुत्वा बाह्यान्तर्गतोऽक्रोधमयः शान्तो न क्रोधमय इति तस्याशङ्कोचिता वेदरीत्यापि

राकाशन्यायेन सर्वगतत्वनित्यत्वयोरभावे इतीमामाशङ्कां तुशब्दः परिहरति।

सतः सन्मात्रस्योत्पत्तिर्न संभवति। न हि कुण्डलोत्पत्तौ कनकोत्पत्तिरुच्यते। नामरूपविशेषाभावात्। उत्पत्तिश्च स्वीक्रियमाणा नोपपद्यते। स्वतो न संभवति। अन्यतस्त्वनवस्था। यदेव च मूलं तदेव ब्रह्मेति॥ ९॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयपादे तृतीयमसंभवाधिकरणम्॥ ३॥

भाष्यप्रकाशः।

भवत् सुतः' इत्यादिपुराणवाक्येषु दर्शनात्, 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इत्यत्रापि तमर्थं कल्पयेत् तदा श्रुतौ ब्रह्मणोऽप्युत्पत्तिः स्यात्, न च नित्यत्वविभुत्वयोर्बाधकत्वं शङ्क्यम्, 'आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः' इति श्रुतेराकाशस्य यथा आपेक्षिके एव नित्यत्वविभुत्वे, तन्न्यायेन निरङ्कुशसर्वगतत्वनित्यत्वयोरभावे, इमां वैतण्डिकाशङ्कां तुशब्दः परिहरतीत्यर्थः। **सन्मात्रस्येति** अविकृतस्य। **स्वतो न संभवतीति** आत्माश्रयापत्त्या न संभवति। शेषमतिरोहितार्थम्।

यत्तु भास्कराचार्यैरुक्तम्, आशङ्काहेत्वभावाद् ब्रह्मण उत्पत्तिसंभावनाभावेन तन्निराकरणार्थमिदं सूत्रं वदतां सूत्रवैयर्थ्यमिति, तदप्यनेनैवापास्तं ज्ञेयम्। अतो यद् दिक्कालसंख्या-

रश्मिः।

त्वयाकाशवायूत्पत्तिरुक्ता। तादृशशरीरस्वीकारप्राप्त्यापि मदशक्तिवन्न तु ब्रह्मणोऽप्युत्पत्तिः स्यादिति। **सदेवेति** इदं विषयवाक्यम्। **आसीदि**त्युत्पत्त्यर्थं न वेति संदेह इति सूचितम्। **तमिति** उत्पत्तिरूपमर्थम्। **आकाशवदिति** भाष्यमवतार्य व्याकुर्वन्ति स्म **न चे**त्यादिना। **अभाव इति** अभावे सति नित्यत्वविभुत्वयोर्बाधकत्वं न शङ्क्यं चेति योजना। **वैतण्डिकाशङ्का**मिति स्वपक्षदोषाननुद्धृत्य परपक्षे दोषाविष्करणं वितण्डा तत्संबन्धिन्याशङ्का। **अविकृतस्ये**ति। सन्मात्रं विकृतमविकृतं च तयोरविकृतस्य सन्मात्रस्य नोत्पत्तिः संभवति। जगतस्तु 'परतन्त्रविशेषो हि विकार इति कीर्तितः' इत्येवमपि पाञ्चाद्विकृतस्य संभवति। भाष्ये **न हीत्यादि**। कुण्डलोत्पत्त्युक्त्या संयोगासमवायिकोत्पत्तिरुक्ताऽतोत्र विभागाभावात्तदतिरिक्तोत्पत्तिः केत्यत आहुः **नामेति**। नामरूपस्वीकार उत्पत्तिरिति भावः। तेनोत्पत्तिलक्षणबाहुल्यमुक्तम्। तेनैवंविधोत्पत्तिर्यद्यपि यावद्विकारसूत्रे संभवति तथापि स एवोत्पत्तिरुक्ता। विशेषः कनकनामरूपाभ्यां बोध्यः। अनेन भाष्येणान्याप्यधिकरणसंगतिः सूचिता। वाय्वाकाशोत्पत्तिसमर्थनेन शरीरोत्पत्त्या 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' इति मदशक्तिवच्च ब्रह्मणोप्युत्पत्तिसंभव इति प्रसङ्गसंगतिरिति। ननु पाञ्चभौतिकं शरीरमिति द्वयोत्पत्तिकथनोत्तरं कथं ब्रह्मोत्पत्तिप्रसङ्ग इति चेच्छृणु। 'इषे त्वोर्जे त्वा' इति मन्त्राभ्यां द्वयोक्तेः दृश्यतेपि द्वयमन्नात्पुरुषे पुष्पकीटादौ पश्चादन्येषामुत्पत्तयः। तत्राकाशो मांसम्। वायुस्त्वक्। अग्निस्तेज ऊष्मादि। आपो लोहितरूपा अपि। पृथिवी कठिनांशोऽस्थ्यादीति। प्रकृते **आत्मेति** स्वोत्पत्तौ स्वापेक्षायामात्माश्रयस्तस्यापत्त्या। **आशङ्केति** आशङ्काया यो हेतुस्तत्प्रतिपादकं वाक्यमपि **हेतुस्तदभावात्। अनेनेति** सदेवेति वाक्ये आसीदित्यस्योत्पत्त्यर्थकत्वसंभावनेनैव। किं च वायोस्तेज इत्यनुक्त्वाग्निपदं यद्दत्तं तेन पदेन ब्रह्मण उत्पत्तिसंभावना। संभूत इति पदान्वयाद् अग्निपदस्य ब्रह्मवाचकत्वम्। अग्निमीळ (ड) इति वेदे। अग्नये जुष्टं निर्वपामीति च। ब्रह्म तर्हि अग्निरित्युत्तरार्धसुबोधिन्याम्। ब्रह्म 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्युक्तम्। वाय्वाकाशरूपशरीरस्य पूर्वाधिकरणाभ्यामुक्तेरुत्पत्तिसंभावनेति। अत एव तेजोऽतो वायोरिति वक्ष्यते नाग्निर्वायोरिति, अग्निपदं तेजसि लाक्षणिकम्। लक्षणा जन्यजनकभावः। 'तत्तेजोऽसृजत' इति श्रुतेः। **अत इति** आशङ्काहेतोर्वाक्यस्य सत्त्वात्। **दिक्कालेति**।

भाष्यप्रकाशः ।

परिमाणादिनित्यत्वनिराकरणार्थत्वं तैरङ्गीकृतं, तस्मिन्नेव पक्षे वैयर्थ्यम्, व्यवहारे दिशां सूर्योदयास्तमयमेरुप्रभृतिविभजनीयत्वेन पारिभाषिकतया देश एव पर्यवसितत्वेनातिरिक्तपदार्थत्वाभावात् शास्त्रे च 'दिशः श्रोत्रात्' इत्युत्पत्तिश्रावणेन नित्यत्वशङ्कानुदयात्, एवं कालस्यापि, 'सर्वे निमेषा जज्ञिरे' इत्यादिश्रुत्यैव नित्यत्वशङ्कानिरासान्न शङ्कोदयः । 'दिक्कालावाकाशादिभ्यः' इति सांख्यप्रवचनसूत्राच्च । अतो वैशेषिकादिमतेनैव शङ्कोत्थापनीया, सा तु तेषां, वैतण्डिकत्वे ब्रह्मपक्षेऽप्युत्पत्तुमर्हतीति वृथा तद्दूषणम् ।

रश्मिः ।

इदमुपलक्षणं शब्दस्पर्शादिगुणानां तथा च भाष्यं शब्दस्पर्शादीनां गुणानामुपचितानां दिक्कालसंख्यापरिमाणादीनां चोत्पत्त्यश्रवणान्नित्यत्वमितीति । सा काष्ठेत्यत्र परागतिपदसंबन्धाद्दिङ् नित्या । 'कालः स्वभावः' इति श्वेताश्वतरे ब्रह्मस्थाने पाठात्कालो नित्यः नित्यगतनित्यसंख्यापरिमाणं च । पृथक्त्वादि च । अङ्गीति अधिकरणस्य सूत्रस्याङ्गीकृतम् । वैयर्थ्यमिति एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इति श्रुतावेकत्वसंख्यादीनामनित्यत्वम् नित्यधर्माणां नित्यत्वनियमभङ्गप्रसङ्गात् वैयर्थ्यम् । वैयर्थ्यं विशदयन्ति स्म व्यवहारेति । दिशामित्यादि । 'सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः' इति पञ्चमे विंशाध्यायवाक्यात् । वैष्णवे च–'उदयास्तमये चैव सर्वकालं तु संमुखे । दिशास्वशेषासु तथा मैत्रेय विदिशासु च । यैर्यत्र दृश्यते भास्वान्स तेषामुदयः स्मृतः । तिरोभावं च यत्रैति तत्रैवास्तमनं रवेः । नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा स्मृतः । उदयास्तमयाख्यं हि दर्शनाऽदर्शनं रवेः । शक्रादीनां पुरे तिष्ठन् स्पृशत्येष पुरत्रयम् । विकर्णौ द्वौ विकर्णस्थस्त्रीन् कोशान् द्वे पुरे तथा' इति । तत्रैव च पुनः–'सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुरुत्तरतः स्थित' इति-। यतो यः पश्यति सैव तस्य प्राची तस्य वामतो मेरुस्तिष्ठतीति । प्रतीची त्वेकविंशेऽध्याये 'यत्रोदेति तस्य ह समानसूत्रनिपातेन निम्लोचति' इति वाक्यादस्तमयविभजनीया । एवं दक्षिणादिग्विभक्तव्या । अतीति । ननु देशस्तु दिक्संबन्धी तत्र का दिगिति चेदत्र दीधितिकृत् 'दिक्कालावीश्वरान्नातिरिच्येते इतीश्वरः' इत्याह । सर्वे व्यवहारास्तत्रोपपत्स्यन्त इति सिद्धान्तेपि दिगीश्वरः दिशामाकाशेन्तर्भावात्, आकाशस्येश्वरशरीरत्वात् । ईश्वरोऽव्यवहार्य इति । शास्त्र इति पुरुषसूक्ते । श्रोत्रं कर्णविवरावच्छिन्न ईश्वरः नभसस्तच्छरीरत्वात् । तादृशमाकाशं दिगित्यन्ये । नित्यत्वेति । आकाशोत्पत्तेः पूर्वं समर्थनात् । सर्वे इति तैत्तिरीयाणां महानारायणोपनिषदि । नित्यत्वेति । विद्युतः पुरुषादधि जातस्य कालस्यानित्यत्वम् । न तु 'कालात्मा भगवान् जातः'–इत्युक्तस्य । शङ्केति दिक्कालादिनित्यत्वशङ्का । अत इति । सांख्यादिमतेन दिक्कालाद्यनित्यत्वात् । सा त्विति । दिगादीनि नित्यानीति वैशेषिकाद्युक्ता शङ्का तु वेशषिकादीनां वैतण्डिकत्वे स्वमते प्राप्तो दोषो द्वितीयश्रुतिविरोधस्तमनुद्धृत्यैव तव मते दोषस्य दिक्कालाद्यनेकतद्ध्वंसप्रागभावादिकल्पनस्याभिधातृत्वे दिगादीनां ब्रह्मजन्यत्वपक्षेप्युत्पत्तुमर्हतीत्यर्थः । ब्रह्मपक्ष इति भावप्रधानो निर्देशः । ब्रह्मत्वपक्ष इति ब्रह्मणो जगदुपादानत्वात्तैर्ब्रह्मपक्ष इत्युक्तम् । तद्दूषणं नित्यत्वदूषणम् । तथा च दिक्कालादीनि सन्ति असन्ति वेति संदेहे सन्तीति पूर्वपक्षे न सन्तीति सिद्धान्तयन्ति । अद्वितीयश्रुत्यनुपपत्तेः सतो दिक्कालादेरसंभवो नित्य-

१. मुण्डके ।

तेजोऽतस्तथा ह्याह ॥ १० ॥ (२-३-४)

तेजोऽतो वायुतः । तथा ह्याह । वायोरग्निरिति श्रुतेः । हिशब्देनैवमाह । छान्दोग्यश्रुतिः प्रतिज्ञाहानिनिराकरणार्थं तैत्तिरीयकमपेक्षते वाय्वाकाशयोरुत्प-

भाष्यप्रकाशः ।

एतेनैव भिक्षुरपि दत्तोत्तरः । यत्पुनस्तेनोक्तमिदं सूत्रं प्रधानोत्पत्तिनिराकरणार्थम् । तथाहि । 'सदेव सौम्येदमग्र आसी'दित्यादौ तप्तायःपिण्डवदीक्षितृब्रह्माभेदेनोपन्यस्तं सूक्ष्मं जगत् सत्, तस्य सतोऽव्यक्तस्य प्रधानस्य तु संभव उत्पत्तिर्नास्ति, कुतः अनुपपत्तेः । तस्य कारणाभावेन विकाररूपत्वासंभवात् । कारणकल्पने चानवस्थानादिति । तन्न । सच्छब्दस्य प्रधानवाचकत्वे मानाभावात् । सांख्यसमाससूत्रीयपञ्चशिखवृत्तावप्यव्यक्तपर्यायेषु, अव्यक्तम्, प्रधानं, ब्रह्म, गुरु, बहु, धातृकं, अक्षरं, क्षेत्रं, तमः, प्रधानमिति दशानामेव गणनात्, कोशादिष्वपि तथानुपलम्भात् । ब्रह्मवाचकत्वं तु गीतायामेव सिद्धम् । 'ॐ तत् सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः' इति वाक्यात् । अतः सद्भावेन ब्रह्मैवात्रोच्यत इत्यपार्थ एवाडम्बरः ॥९॥

इति तृतीयमसंभवाधिकरणम् ॥ ३ ॥

तेजोऽतस्तथा ह्याह ॥ १० ॥ आकाशवाय्वोरुत्पत्तिं विचार्य तेजसो विचारयति, तेजः किं साक्षाद् ब्रह्मजमुत परंपरयेति विचारयति । श्रुतिविरोधपरिहारार्थत्वादध्यायस्य । तत्र छान्दोग्योक्तसृष्टेर्मुख्यत्वात् साक्षात्पक्ष एव श्रेयानिति प्राप्त आह तेजोऽत इति । तद् व्याकुर्वन्ति तेज इत्यादि । नन्वेवं सति छान्दोग्यविरोधस्य कथं परिहार इत्यत आहुः हिशब्देनेत्यादि । अयमर्थः । तेजसः साक्षाद् ब्रह्मजत्वाङ्गीकारे, 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्'

रश्मिः ।

त्वाऽसंभव इति सूत्रार्थात् । **भिक्षुरिति** भगवान्भिक्षुः । अव्यक्तमेकं, प्रधानं द्वितीयं, गुरुः तृतीयं, बहु तुरीयम् । धातृकं पञ्चमम् । तम इति नवमम् । प्रधानं दशमम् । पुनः कथनप्रयोजनं मृग्यम् । **सद्भावेनेति** सत्पदसत्त्वेन । **आडम्बर** इति समारम्भः 'आडम्बरः समारम्भे गजगर्जिततूर्ययोः' इति विश्वः ॥ ९ ॥ **इति तृतीयमसंभवाधिकरणम् ॥ ३ ॥**

तेजोऽतस्तथा ह्याह ॥ १० ॥ विषयमाहुः **आकाशेति । विचार्येति** ताभ्यां ब्रह्मोत्पत्तिशङ्कानिरासपूर्वकं विचार्य । **विचारयतीति** अवसरगर्भितैककार्यत्वसंगत्या विचारयति । वियदुत्पत्तिं विचार्यैककार्यत्वसंगत्या मातरिश्वोत्पत्तेर्विचारात् । परंतु पूर्वसूत्रेणावसरसंगतिरिति तद्गर्भितत्वम्, एकस्य कार्यता प्रयोजकता एककार्यता । अत्र तु कारणता । **विचारयतीति** छान्दोग्यतैत्तिरीयश्रुतिभ्यां संदेहे विचारयति । **तत्रेति** तयोः । **छान्दोग्येति** श्वेतकेतूपाख्याने 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इत्युपक्रम्य 'तत्तेजोऽसृजत' 'तदपोऽसृजत' 'ता अन्नमसृजन्त' इति **सृष्टेः मुख्यत्वं** 'तदैक्षत' 'ता आप ऐक्षन्त' इतीक्षापूर्वकत्वम् । ईक्षासंबन्धात्फलत्वं फलसंबन्धान्मुख्यत्वं वा पूर्वतन्त्रसिद्धम् । **तेज इत्यादीति** । तेजःपदप्रयोगस्तु छान्दोग्यसृष्टेर्मुख्यत्वात्, न त्वग्निपदप्रयोग उत्पत्त्यनर्हत्वात् । न वा तेजोधिकरणमग्निः । 'यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्' इत्युक्तः । तथा चाध्यात्मं तेजः आधिदैविकस्य ब्रह्मरूपाग्नेराधिभौतिकाग्नेः संबन्धात् । **तथेति** वायुजत्वे**नाह** । अग्निरत्राधिभौतिकः परतेज आश्रयः । अग्निरत्राध्यात्मस्तेजःपदवाच्यः । एवं च पर्यायता । **छान्दोग्येति** विरोधस्तु छान्दोग्ये

भाष्यप्रकाशः ।

इति प्रतिज्ञा, 'येनाश्रुतं श्रुतं भवति' इति प्रतिज्ञा च हीयेते । अतस्तन्निराकरणार्थं तेजःसृष्टि-वाक्यं तैत्तिरीयकमपेक्षत इति तैत्तिरीयकं तस्योपजीव्यम् । तथा सति तत्र या वायोरिति पञ्चमी सा किं हेतावुतानन्तर्य इति जिज्ञासायां यद्यप्युभयथापि प्रतिज्ञासिद्धिः, प्रायपाठ-श्चोभयथाऽपि शक्यवचनस्तथापि प्राथमिक्या आत्मन इति पञ्चम्या अनुरोधात् पृथिव्या ओषधय इत्यग्रिमाया अपि 'पर्जन्येनोषधिवनस्पतयः प्रजायन्त ओषधिवनस्पतिभिरन्नं भवत्य-न्नेन प्राणाः' इति श्रुत्यन्तर ओषधीनामन्नकारणतायाः स्फुटत्वात् प्रत्यक्षसंवादाच्च कारकवि-भक्तिरेव युक्ता, बलिष्ठत्वाच्च । एवमुपजीव्यवाक्यगतपञ्चम्या हेत्वर्थकत्वे निश्चिते उपजीव्यस्य

रश्मिः ।

ततस्तेजः, तैत्तिरीये वायुतोऽग्निरित्येवम् । **हीयेते** इति वाय्वाकाशयोः कार्यत्वाभावे सदेवेदमित्यत्र तयोस्सत्यलये 'स देव' इति प्रतिज्ञा हीयेत, तथैकत्वाभावेऽश्रुतं श्रुतमिति प्रतिज्ञा च हीयेत । **तन्निरे**ति प्रतिज्ञाहानिनिराकरणार्थम् । **उपजीव्यं** कारणम् । **तथा सती**ति उपजीव्यत्वेन तत्रत्य-तत्पदवदत्रत्यवायुपदस्य विचार्यत्वे सति । **हेता**विति हेतुः कर्ता । छान्दोग्ये सदेवेत्यत्र कर्तरि प्रथमे-त्येकवाक्यतां वक्ष्यन्ति 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' इति सूत्रेण पञ्चम्यभिहिता । हेतुरुपादानं, निमित्तं सत् । कालश्चासमवायि निमित्तान्तर्गतम् । **आनन्तर्ये** इति 'भुवः प्रभवः' इति सूत्रेणाभिहिता । छान्दोग्ये साक्षाद्ब्रह्मोत्पन्नं तेजः वायोः संभूतं प्रथमं प्रकाशितमित्येवमानन्तर्येऽन्यत उत्पन्नस्याग्नेः प्रकाशोऽनन्त-रोऽस्ति । उत्पत्तिरेव तेजोनिष्ठा नानन्तर्यनिरूपिका । प्रथमप्रकाशरूपे आनन्तर्येर्थे पञ्चमी । यथा हिमवतो गङ्गा प्रभवतीत्यत्र विष्णुपद्या हिमवति प्रथमं प्रकाशः । एवं ब्रह्मजाग्नेर्वायौ प्रथमं प्रकाश इति वायोरग्नि-रिति श्रुत्यर्थः । **अपादाने** पञ्चमीति वाभिहिता महाभाष्योक्तरीत्या । 'अन्याराादितरर्ते दिक्शब्दाञ्चूत्तर-पदाजाहियुक्ते' इति सूत्रेण वा वायोरनन्तरमग्निर्न तु सत इत्यनन्तरपदयोगं प्रकल्प्य पञ्चमी वायु-पदात् । अनन्तरपदस्य दिशि दृष्टत्वेन दिक्शब्दत्वात् । **प्रायपाठ** इति आत्माकाशादिपदोत्तरी-भूतानां पञ्चमीनां हेतुप्रायपाठ आनन्तर्यप्रायपाठश्च । **पञ्चम्या** इति अभिन्ननिमित्तोपादानतार्थायाः । नन्वात्मन इति पञ्चमी निमित्त उपादाने चावक्तव्या । पञ्चम्याः एकत्र शक्तेरिति चेन्न । समवायित्वा-दिभिरेकार्थत्वं पञ्चम्यर्थे सर्वत्र तद्वत्कारणत्वेनैकार्थत्वस्य मणिकामधेन्वाद्युत्तरपञ्चम्या अर्थे दर्शनात् । अत आत्मपदोत्तरपञ्चम्या अभिन्ननिमित्तोपादाने शक्त्यभावे मणिकामधेन्वाद्युत्तरपञ्चम्या कुतोऽभिन्नो-पादानत्वमर्थः स्यादिति । अन्यच्च **पृथिव्या** इति अप्यनुरोधादित्यन्वयः । अत्राभिन्ननिमित्तोपादानत्वं स्फुटं प्रत्यक्षं च । **पर्जन्येने**ति । इत आरभ्य स्फुटत्वं प्रत्यक्षत्वं च ज्ञेयम् । **प्राणा** इति । 'अन्नमय१ हि सौम्य मनः' इति श्रुतेर्मनआदीन्द्रियाणि । **अन्ने**ति अन्नस्याभिन्ननिमित्तोपादानतायाः । **कारके**ति आत्मन इत्यत्र पृथिव्या इत्यत्र च 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' इत्यनेन कारकविभक्तेरावश्यकत्वेन 'भुवः प्रभवः' इत्युपपदविभक्तेरनावश्यकत्वात् । उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसीत्याहुः **बलि-ष्ठे**ति । **तथा चे**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **एव**मिति । उपजीव्यवाक्यं तैत्तिरीयवाक्यं तद्गत**पञ्चम्याः । हेत्वर्थकत्वे**ऽभिन्ननिमित्तोपादानार्थकत्वे । **निश्चित** इति यद्यपि तस्माद्वेति वाक्ये संभूतोपपदमहिम्ना 'भुवः प्रभवः' इत्येव प्राप्नोति । तथा च नाभिन्ननिमित्तोपादानार्थकत्वनिश्चयस्तथापि छान्दोग्यश्रुत्ये-

१. वायोः ।

त्यर्थम् । तथाचोपजीव्यस्य प्राधान्याद् वायुभावापन्नमेव सत् तेजस उत्पादकमिति स्वीकरोति । ब्रह्मण एव सर्वोत्पत्तिपक्षस्त्वविरुद्धः ॥ १० ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयपादे चतुर्थं तेजोत इत्यधिकरणम् ॥ ४ ॥

आपः ॥ ११ ॥ (२-३-५)

तथा ह्याहेत्येव । इदमेकमनुवादसूत्रमविरोधख्यापकम् । न श्रुत्योः सर्वत्र विरोध इति ॥ ११ ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयपादे पञ्चमं 'आपः' इतिपञ्चममधिकरणम् ॥ ५ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

प्राधान्याद् वायुभावापन्नमेव सत् तेजस उत्पादकमित्येवमश्रुतमपि क्रमं स्वीकरोतीति विरोधपरिहार इत्यर्थः । तस्माद् वायुद्वारैव तेजःसृष्टिरिति सिद्धम् । नन्वाथर्वणे यथा साक्षात्सृष्टिरुक्ता, 'एतस्माज्जायते प्राणः' इति, तथा, तैत्तिरीये, 'इदꣳ सर्वमसृजत' इत्युक्ता । तत्र किं विस्फुलिङ्गवद् यौगपद्यमुत वाय्वनन्तरभाव इत्याशङ्क्य तेजसो वाय्वानन्तर्यं समर्थनीयं, न तु पूर्वोक्तः क्रमसृष्टिविचारोऽत्र युज्यते, असंभवसूत्रव्यवधानेन पूर्वोक्तविचारसमाप्तेः शक्यवचनत्वादित्यत आहुः ब्रह्मण इत्यादि । आथर्वणोक्तः पक्षस्तु तैत्तिरीये यौगपद्याङ्गीकारेऽपि ब्रह्मणः कारणताया असंदिग्धत्वात् सामर्थ्यविचारेणैव सर्वपदवृत्त्यसंकोचादेवाविरुद्ध इति पूर्वोक्तविचार एवात्र युक्त इत्यर्थः ॥ १० ॥ इति चतुर्थं तेजोत इत्यधिकरणम् ॥ ४ ॥

आपः ॥ ११ ॥ तथा ह्याहेत्येवेति पूर्वसूत्रादनुवर्तते । तथा चापस्तेजस उत्पद्यन्ते, हि यतो हेतोः श्रुतिद्वयमपि तथाऽऽह 'तदपोऽसृजत' इति, 'अग्नेरापः' इति । अतो नात्र किमपि विचार्यमित्यर्थः ।

अन्ये तु, अतःशब्दस्याप्यनुवृत्तिमिच्छन्ति । तदयुक्तम् । अत्र कारणतया तेजसो विव-

रश्मिः ।

कवाक्यतायै वायुभावापन्नं सदितिभाष्योक्त्या छान्दसं विकल्पं 'सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते, इति छान्दसं विकल्पं व्यवस्थितमाश्रित्य नात्र 'भुवः प्रभवः' इत्यस्य प्रवृत्तिरतो निश्चित इत्यभिप्रायः । प्राधान्यादिति । ईक्षाघटितछान्दोग्यवाक्यस्य मुख्यत्वेऽपि कारणत्वरूपोपजीव्यत्वप्रयुक्तप्राधान्यात् । सदिति तत्तेजोऽसृजतेत्यत्र तच्छब्देन सदेवेत्यतः परामृष्टं सत् । अश्रुतमिति । छान्दोग्येऽश्रुतमपि 'आकाशाद्वायुर्वायोरग्निः' इति क्रमं छान्दोग्येऽस्मात्सूत्रात्सूत्रकृत्तैत्तिरीयैकवाक्यतायै स्वीकरोतीत्यर्थः । स्वीकारपदेन पृथगपि क्रमः । तस्मादिति तैत्तिरीयवाक्यप्राधान्यात् । आथर्वण इति मुण्डके । विस्फुलिङ्गेति 'यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे जीवाः सर्वे आत्मानो व्युच्चरन्ति'इतिवत् । वाय्वन्तरेति । मुण्डके 'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी'इति श्रावितस्य ज्योतिषः । तैत्तिरीये तु सर्वपदेन श्रावितस्य ज्योतिषः वाय्वनन्तरभावः । इत्यर्थ इति श्रुतिविरोधपरिहारोध्यायार्थ इति विरुद्धश्रुतिविचारस्यैव युक्तत्वादिति भावः ॥ १० ॥ इति चतुर्थं तेजोतस्तथेत्यधिकरणम् ॥ ४ ॥

आपः ॥ ११ ॥ सूत्रं योजयन्ति स्म तथा चेति । तदप इति छान्दोग्यस्थेयम् । तत्तेजः । अग्नेरिति । तैत्तिरीयस्थेयं, संभूता इति लिङ्गवचनयोर्विपर्ययेणावृत्तिः । इदꣳसर्वमसृजतेत्याशङ्कास्पदश्रुत्यनुदाहरणं पूर्वसूत्रेण गतार्थत्वात् । इदमेकमनुवादसूत्रमविरोधख्यापकम् । न श्रुत्योःसर्वत्र विरोध इतीति भाष्यादविरुद्धश्रुत्युदाहरणम् । अतो नात्रेति । यत इदमनुवादसूत्रं नाधिकरणमतो नात्र विषयादिकं किमपि, न विचार्यमित्यर्थः । अन्य इति शंकररामानुजाचार्याः । ननु नातःशब्दो

पृथिव्यधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः ॥ १२ ॥ (२-३-६)

'ता आप ऐक्षन्त बह्वयः स्याम प्रजायेमहि' इति । 'ता अन्नमसृजन्त' इति । तत्रान्नशब्देन व्रीह्यादय आहोस्वित् पृथिवीति संदेहः । ननु कथं संदेहः । पूर्वन्यायेनोपजीव्यश्रुतेर्बलीयस्त्वादिति चेत् । उच्यते । 'अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधय

भाष्यप्रकाशः ।

क्षितत्वेन वाय्वर्थकस्य ग्रहीतुमशक्यत्वाच्छ्रुत्युक्तहेत्वर्थकत्वग्रहणे, 'तथा ह्याह' इत्येतावतैव चारितार्थ्यादित्येवकारेणात्र बोधितं ज्ञेयम् । नन्वेवं सति अस्य सूत्रस्य किं प्रयोजनमत आहुः इदमित्यादि । तथाचेदं प्रयोजनमित्यर्थः ॥ ११ ॥ **इति पञ्चममाप इत्यधिकरणम् ॥ ५ ॥**

पृथिव्यधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः ॥ १२ ॥ अधिकरणप्रयोजनं वक्तुं विषयवाक्यमाहुः **ता आप** इत्यादि । संशयमाहुः **तत्रे**त्यादि । तथाच रूढिप्रायपाठयोर्विरोधात् संशय इत्यर्थः । अत्र चोदयति **ननु कथ**मित्यादि । **तथा च** पृथिव्येव प्राप्स्यत इति व्यर्थोऽधिकरणारम्भ इत्यर्थः । **एतेन** पूर्वाधिकरणवदत्र पृथिवीति भिन्नं सूत्रमङ्गीकृत्याधिकरणान्तरमिदं वाच्यम्, ततोऽन्नशब्देन कथं पृथिवी ग्रहीतुं शक्येत्याकाङ्क्षायामधिकारेत्यादिसूत्रान्तरेण तन्निर्णय इति रामानुजाचार्यमतं पूर्वाधिकरणन्यायतः संदेहनिवृत्तिप्रदर्शनाच्छिथिलमित्यपि बोधितम् । अत्र समादधते **उच्यत** इत्यादि । तथा चोपजीव्यानुरोधाद् यथा आकाशवायुव्यव-

रश्मिः ।

वाय्वर्थकः किं तु 'आत्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः' इति श्रुत्येकदेशपञ्चम्युक्तो हेतुस्तदर्थक इति ग्रहीतुं शक्योऽतःशब्द इत्यत आहुः **श्रुत्युक्ते**ति । **चारितार्थ्या**दिति तथाशब्देनैव श्रुत्युक्तहेत्वर्थकातःपदग्रहणेन चारितार्थ्यं बोध्यं तस्मात् । एवेति भाष्यीयैवकारेण । **एवं सती**ति । 'तदपोऽसृजत' 'अग्नेरापः' इत्यनयोरसंदिग्धे विरोधे सति । **इद**मिति इदं सूत्रं श्रुत्योर्योऽसंदिग्धो विरोधस्तमनुवदति दृष्टान्तार्थं न तु विरोधमपाकरोतीत्यनुवादसूत्रम् । न श्रुत्योः सर्वत्र विरोध इत्यविरोधख्यापकमतो न विरोधख्यापनं प्रयोजनमित्यर्थः । अत्र माध्वभास्कराचार्यादयः तदपोऽसृजतेत्यादिविषयवाक्यं धृत्वा साक्षात्परंपरया वापां सृष्टिरिति संशये । अत्रापि साक्षादिति पूर्वपक्षे परंपरयेति सिद्धान्तयन्ति स्म । अयं सिद्धान्तः सूत्राणां न्यायरूपत्वात्पूर्वसूत्रेण सिद्ध इति न पुनरुच्यते ॥ ११ ॥

इति पञ्चममाप इत्यधिकरणम् ॥ ५ ॥

पृथिव्यधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः ॥१२॥ विषयेति छान्दोग्ये श्वेतकेतूपाख्यानस्थम् । **रूढी**ति । पृथिवीग्रहणेऽन्नशब्दस्य व्रीह्यादिषु या रूढिः योगरूढिर्नामैकदेशग्रहणं तस्यास्त्यागस्तदनुरोधेन व्रीह्यादिग्रहणे पञ्चमहाभूतप्रायपाठत्याग इत्येतयोर्विरोधात् । संशयबीजभूतौ योगरूढिप्रायपाठौ । **ननु कथमित्यादी**ति 'तेजोतः' सूत्रोक्तेन प्रतिज्ञाहानिनिराकरणार्थं तैत्तिरीयकापेक्षान्यायेनोपजीव्यश्रुतेः 'अद्भ्यः पृथिवी' इति तैत्तिरीयश्रुतेर्बलीयस्त्वादिति भाष्यार्थः । **तथा चे**ति तैत्तिरीयश्रुतेर्बलीयस्त्वे । **एतेने**ति । संदेहान्तर्गतग्रन्थेन शिथिलमित्यपि बोधितं पूर्वाधिकरणन्यायतः संदेहनिवृत्तिप्रदर्शनात्पुनरुक्तया व्यर्थत्वस्फोरणादित्यन्वयः । **पूर्वाधी**ति 'आपः' इत्यधिकरणन्यायतोऽनुवादकम् । 'आपः' इति सूत्रमित्यनुवादन्यायतः **पृथिवी**ति सूत्रादपि 'अद्भ्यः पृथिवी' 'ता अन्नमसृजन्त' इत्यविरुद्धश्रुतिभ्यां निरस्तः संदेहो निरस्यत इत्येवंविधसंदेहनिवृत्तेः पृथिवीतिसूत्रमुपन्यस्य पृथिव्यद्भ्य उत्पद्यते **अद्भ्यः पृथिवी ता अन्नमसृजन्त** इत्याहेति भाष्येण प्रदर्शनादित्यर्थः । **उच्यत इत्यादी**ति ।

ओषधीभ्योऽन्नम्' इत्यग्रे वर्तते । तथा सति पृथिवीमोषधीश्च सृष्ट्वा आपोऽन्नं सृजन्ति आहोस्विदन्नशब्देनैव पृथिवीति ।

नन्वेवमस्तु पृथिव्योषधिसृष्ट्यनन्तरमन्नसृष्टिरितिचेत् । न । छान्दोग्यश्रुतेरपेक्षाभावान्महाभूतमात्रस्यैवाभिलषितत्वात् । एकपदलक्षणापेक्षया तत्स्वीकारस्य गुरुत्वात् पूर्वोक्त एव संशयः ।

भाष्यप्रकाशः ।

धानेन तेजःसृष्टिरङ्गीक्रियते, तथाऽत्र पृथिव्योषधिव्यवधानेनान्नसृष्टिरप्यङ्गीकर्तुं शक्या । उपजीव्ये वाक्ये त्रयाणामुक्तत्वात् । आहोस्वित् प्रायपाठबलात् पृथिवीति पूर्वकोटौ विशेषगर्भसंदेह उपजीव्यवाक्यविचारेऽपि नापैतीति नारम्भवैयर्थ्यमित्यर्थः । पुनश्चोदयति **नन्वेवमित्यादि** । तथा चोपजीव्यवाक्यापेक्षया प्रायपाठस्य नैर्बल्यादेव संदेहनिवृत्तेरारम्भवैयर्थ्यं दुर्वारमित्यर्थः । तत्र समादधते नेत्यादि । ब्रह्मणः कारणत्वसमर्थनायोपक्रमे महाभूतयोरेवोत्पत्तिदर्शनेन महाभूतमात्रस्यैव विवक्षितत्वाच्छान्दोग्यश्रुतेरन्नापेक्षाभावात्, न च लक्षणाप्रसक्तिदोषः । तस्या एकपदनिष्ठत्वेन तदपेक्षया वाक्यदोषभूतानधिकारत्यागाधिकपदार्थद्वयतत्क्रमानादृत्य रूढिस्वीकारस्य गुरुत्वात् । अतः पूर्वोक्तेऽन्नपद एव संशयो, न पृथिव्युत्पत्ताविति नाधिकरणारम्भवैयर्थ्यमित्यर्थः । एवं सिद्धे संशये पूर्वपक्षं सोपपत्तिकमाहुः

रश्मिः ।

अग्र इति अग्रेरापः इत्यस्याग्रे **वर्तते** । **ओषधीश्चे**ति पाठे घोः किः' तदन्तं स्त्रियाम् क्यन्तं स्त्रियामिति लिङ्गानुशासनात् । ओषधीश्चेति स्मार्तपाठः । 'समाधिनाऽनुस्मर तद्विचेष्टितम्' इति वाक्यात् । **उपजीव्ये**ति तस्माद्वेति श्रुत्य**नुरोधात्** । **तेज** इति तत्तेजोऽसृजतेति छान्दोग्योक्ता सृष्टिः 'तेजोतः' सूत्रे व्यासचरणैरङ्गीक्रियते । **तथात्रे**ति विषयवाक्ये । **उपजीव्य** इति अद्भ्यः पृथिवीत्यादितैत्तिरीय**वाक्ये** । **त्रयाणां** पृथिव्योषध्यन्नानाम् । **आहोस्वित् प्राये**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **पृथिवी**ति । विषयवाक्येऽन्नशब्देनैव पृथिवीति । **पूर्वकोटा**विति । **तथा सती**ति भाष्योक्तपदं पराकोटौ । **विशेषः** परंपरा **गर्भे** यस्य । **अपैती**ति अप आ एतीति पदच्छेदः । **नारम्भे**ति विशेषनिवृत्त्यर्थमारम्भवैयर्थ्यं न । **प्राये**ति भूतप्राय**पाठस्य** । **नैर्बल्यं** यथान्नमयादिषु विकारार्थकमयट्प्रायपाठस्य नैर्बल्यं तस्मादेवं निर्बलसाक्षात्सृष्ट्यप्राप्त्या द्वितीयकोट्युक्तपृथ्वीतरान्नसृष्टिप्राप्त्या संदेहनिवृत्तेरित्यर्थः । **ब्रह्मण** इति 'सदेव सौम्येदम्' इत्युक्तस्य सत इत्यर्थः । अत्र प्रायपाठस्य नैर्बल्यं वार्यते द्वितीयकोटिसिद्ध्यर्थम् । **उपक्रम** इति 'तत्तेजोऽसृजत' 'तदपोऽसृजत' इति वाक्ययोः । एवकारेण परंपरा व्यवच्छिद्यते । **एवे**ति । अयं प्रथमसंशयगतव्रीह्यादीन् व्यवच्छिनत्ति । **अन्नापेक्षे**ति अन्नशब्देन व्रीह्यादि **तदपेक्षाभावात्** । **एकपदे**ति भाष्यं विवरीतुमाहुः **न चेति** । **लक्षणे**ति । अन्नपदे लक्षणा परंपरितकार्यकारणभावसंबन्धरूपा । **वाक्यदोषे**ति वाक्यं विषयवाक्यं तस्य **दोषभूतान्** । महाभूताधिकारत्यागः । **अधिकपदार्थद्वयं** पृथिव्यौषधिरूपम् । **तत्क्रमः** पदार्थक्रमः । तानादृत्यान्नपदस्य व्रीह्यादिषु योगरूढिस्वीकारस्य गुरुत्वात् । **पूर्वोक्त** इति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अत** इति । ब्रह्मणः कारणत्वसमर्थनाय महाभूतोत्पत्तेर्विवक्षितत्वात् । **संशय** इति । अन्नपदेन व्रीह्यादिर्वा पृथिवी वेति संशयो न पूर्वोक्तः किंतूच्यत इत्यादिनोक्तः पूर्वोक्तः । **न पृथिवी**ति । पूर्वाधिकरणेन गतार्थत्वात्पुनरुक्त्यापत्तेः । उत्पत्तिशब्देनास्मिन्नपि संशये न सृजन्तीति मुख्यं किंतु आहोस्विदन्नशब्देनैव पृथिवी

तत्र 'अन्नमयं हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वाक्' इति त्रयाणां सहचारः सर्वत्रोपलभ्यते । लोकप्रसिद्धिर्वर्षणभूयिष्ठलिङ्गं च । तस्मात् पृथिव्योषध्यन्नानां मध्ये अभेदविवक्षया यत्किंचिद्वक्तव्ये अन्नमुक्तमित्येवं प्राप्ते उच्यते । अन्नशब्देन पृथिवी । न, कुतः । अधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः । अधिकारो भूताना-

भाष्यप्रकाशः ।

तत्रान्नेत्यादि । उपलभ्यत इति पदमग्रेऽप्यन्वेति । तथा च त्रितयसहचारो लोकप्रसिद्धिस्तस्माद्यत्र क्वचन वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवतीति वाक्यशेषोक्तं वर्षणभूयिष्ठं लिङ्गं चेति त्रयं क्रमेणात्रोपलभ्यते, अथवात्र उपपादनग्रन्थे 'यथा तु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत् त्रिवृदेकैका भवति' इति प्रतिज्ञोत्तरमन्नेजःसहचारः कार्यलिङ्गितोऽन्नस्य यो दृश्यते सोऽपि ये फलपत्राद्याहारास्तेषामपि पुरीषमांसमनांसि भवन्तीति त्रयाणां धातूनां सहचारो मृद्भक्षकेषु कीटादिष्वोषधिभक्षकेषु पश्वादिष्वन्नभक्षकेषु पुरुषादिष्वेवं सर्वत्र पृथिव्योषध्यन्नेषूपलभ्यते । 'अन्नशब्दस्य च लोकेऽदनीयत्वमादाय पृथिव्यादिषु त्रिष्वपि प्रसिद्धिः । यथा नैषधे, 'नास्ति जन्यजनकव्यतिभेदः सत्यमन्नजनितो जनदेहः । वीक्ष्य वः खलु तनूममृतादाम्' इति, चतुर्थे-

रश्मिः ।

ग्राह्येति कोटिगतग्राह्येति मुख्यम् । तेन प्रथमकोटौ सृजन्तीति ग्राह्यमिति पूरणीयम् । **अग्रेपीति ।** लोकप्रसिद्धिरुपलभ्यते । वर्षणभूयिष्ठलिङ्गं चोपलभ्यत इत्यग्रेप्यन्वेति । **तथा चेति ।** 'यत्र क्वचन स्वेदति तेजसस्तदध्यापो जायन्ते' इति श्रुतेर्भौतिकानामपि तेजआदीनां ग्रहणे सिद्धे च । त्रितयं मनःप्राणवागिति त्रयोऽवयवा यस्य सहचारस्य । तत्रान्नमयं मन इत्युक्तेः शरीरमनसः पृथ्वीविकारत्वासंभवादन्नेति प्रकृतिर्व्रीह्यादिर्न तु पृथिवीति । **लोकेति** व्रीह्यादिष्वेवान्नपदप्रसिद्धिः । **वर्षणेति** भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तस्मादिति । वाक्येति** ता अन्नमसृजन्तेतिवाक्यशेषोक्तम् । वर्षणेन यद्भूयिष्ठमन्नं तस्य लिङ्गं च व्रीहियवाद्येव सति वर्षणे बहु भवति पृथिवीत्यत्र लिङ्गं चेति व्रीह्यादिग्रहणे हेतुत्रयम् । भौतिकपक्षस्य प्रागेवासंग्रहादत्र प्रकारान्तरेण भौतिकानादाय पूर्वपक्षमग्रिमभाष्यानुरोधेनाहुः **अथवेति** 'तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोत्'इत्यस्योपपादनग्रन्थे । 'यथा तु खलु सौम्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहि'इति । 'यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपम्' इत्यादावित्यर्थः । सा सच्चिदानन्दाख्या देवता तासां तेजोबन्नरूपदेवतानामेकैकां त्रिवृतं त्रिवृतमकरोदित्यर्थः । उपपादनग्रन्थान्तर्गतप्रकृतोपयोगिग्रन्थमाहुः **यथा त्विति । तिस्रो देवता** इति तेजोबन्नरूपाः, आधिदैविकं रूपं देवतापदेनोच्यते । **प्रतिज्ञेति** 'तन्मे विजानीहि' इति तन्मत्तोऽवधारयेति श्वेतकेतोः पितुरुद्दालकस्य प्रतिज्ञा, तदुत्तरम् 'अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यन्मध्यमस्तन्मा१ंसं योऽणिष्ठस्तन्मन' इत्युक्तस्यान्नस्य । 'आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः स प्राणः,' तेजोशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति यो मध्यमः स मज्जा योऽणिष्ठः सा वाग्' इत्यप्तेजःसहचार उक्तस्यान्नस्य दृश्यते । **कार्यं** पुरीषादि । लिङ्गं कारणस्य तस्मात् । अन्नम्—अप्तेजःसहचरितं पुरीषादिकार्यात् । फलपत्राद्योषधिवत् । **धातूनामिति** पुरीषमांसमनसाम् । **पृथिव्यौषध्यन्नभक्षकेषू**दाहरणपूर्वकं सत्तत् त्रयाणां धातूनां सहचारं दर्शयन्ति स्म **मृदित्यादिना । मृत्** पृथिवी । **लोकप्रसिद्धिरिति** भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अन्नशब्दस्येति । अदनीयत्वमिति** गौणी बोधयितुमयं धर्मनिर्देशः । **प्रसिद्धिरिति** गौण्या प्रसिद्धिः । **नैषध इति** पञ्चमसर्गे । **व्यतीति** भेदः । **अन्नेति** अत्रान्नं पृथिव्योषध्यन्नानि । जातानां कीटादीनां

भाष्यप्रकाशः ।

स्कन्धे च, 'एवं पृथ्वादय पृथ्वीमन्नादाः स्वन्नमात्मनः' इति वर्षणभूयिष्ठलिङ्गमपि त्रिषु तुल्यम् । वर्षणे पृथिव्या आर्द्रतया भूयस्त्वात्, ओषधिवीरुधां व्रीह्यादीनामुत्पत्तेश्च, तस्माद् वाक्यशेष-लोकप्रसिद्धिलिङ्गानां त्रिष्वपि तुल्यत्वात् पृथिव्याद्यन्यतमे वक्तव्ये अन्नमुक्तम्, एवं चोप-जीव्यवाक्यरूढिप्रायपाठानां त्रयाणामविरोधोऽतस्तत्रयेऽपि ग्राह्यत्वेन प्राप्ते इत्यर्थः । सिद्धान्ते तु लक्षणा नास्त्येव, योगनैर्बल्यं त्वधिकारादिभिर्हेतुभिः परिह्रियत इति न कोपि दोषः ।

रश्मिः ।

देहा मृदादिजनिता इति । अमृतादामिति अमृतं जलमत्तीत्यमृतादा ताम् । 'दङ्क्रिमज्जनमुपैति सुधायाम्' इतिचतुर्थश्चरणः । तथा च तन्वमृतयोर्जन्यजनकत्वेन व्यतिभेदो नास्तीति तनुं पश्यन्ती दक् सुधायामेव निमज्जतीति । पृथ्वीमिति 'अकथितं च' इत्यनेन सूत्रेणापादानत्वाविवक्षायां कर्मसंज्ञा । यद्वा पृथ्वीं स्वन्नमिति विशेष्यविशेषणभावः । वर्षणेत्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति स्म वर्षणेति । व्रीह्यादीनामिति व्रीह्यादीनां च भूयसामुत्पत्तेरित्यन्वयः । तस्मादित्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति स्म तस्मादिति । वाक्यशेषेति पृथ्वादय इति चतुर्थस्कन्धस्थवाक्यशेषः । पृथ्वीमोषधीरन्नानि चा-न्नपदवाच्यानि निर्णयति । पृथ्वादय इत्यत्रादिपदेन पशुमनुष्यादीनां ग्रहणं संभवात् । पृथुः सकलौ-षधीः स्वन्नानि अन्नादः सकलौषध्यादः पृथ्वीं पृथ्व्या दुदोह पाणौ । पशुरन्नादः यवसक्षीरादः । अरण्यपात्रे पृथ्वीं पृथिव्याः स्वन्नं यवसादिरूपमधुक्षत् । एवं मनुष्याः पृथ्वीं पृथ्वीतः स्वन्नं व्रीह्या-दिरूपं वीरुत्पात्रे दुदुहुरित्यर्थात्पृथिव्योषध्यन्नानि अन्नपदवाच्यानीति । लोकेति नैषधप्रसिद्धिरपि । लिङ्गानामिति तस्माद्यत्र क्वचनेति वाक्यशेषोक्तवर्षणभूयिष्ठं लिङ्गम् । त्रिष्विति पृथिव्योषध्यन्नेषु । उपजीव्येति उपजीव्यं तैत्तिरीयवाक्यम् 'अद्भ्यः पृथिवी' इति रूढिर्योगरूढिर्व्रीह्यादौ प्रायपाठो भूतानाम् । तत्त्रये इति पृथिव्यादित्रये । भाष्योक्ताभेदविवक्षा तु गौण्या भवति तुल्यस्वादनीयत्वगुण-योगात् । सिंहो माणवक इतिवत् । सिद्धान्ते त्विति । अयमर्थः । अन्नशब्देन पृथिवी तत्रान्नपदं व्रीह्यादिषु शक्तं पृथिव्यां लाक्षणिकम्, जन्यजनकभावसंबन्धो लक्षणा, लक्षणेत्युपलक्षणं गौण्याः । तेन गौणी चेत्येवं लक्षणा तु नास्त्येव । 'अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते' इति श्रुतावन्नपदस्य यौगिकस्यादरणात् । न चायं योगः पृथिव्यां बाधित इति वाच्यम् । भूतान्तर्गतकीटादिभिर्मृद्भक्षणात् । अतः 'ता अन्नमसृजन्त' इत्यत्रान्नपदं यौगिकं पृथिवीवाचकं भवति । नन्वेवमपि योगस्यान्ने संभवाद्रूढे-र्योगापहारकत्वस्य पङ्कजादिस्थलेऽवयवशक्त्या कुमुदादिबोधवारणाय प्राचीनैः कृतत्वाद्योगनैर्बल्यं तस्मिंश्च सति रूढ्या व्रीह्यादिकमेव ग्राह्यम्, न तु योगेन पृथिवीत्याकाङ्क्षायामाहुः योगेति । यद्यपि योगरूढि-रन्नशब्दस्य पृथिव्यामपि 'पृथिवी वान्नम्' इति श्रुतेः रूढिः । कीटादिभिरद्यतेत्ति च भूतानीति योगः । तथापि त्रिषु या लोकप्रसिद्धिस्तस्या अभावान्न । वेदान्तत्वाद्योगमात्रमपि, रूढेरस्मन्मतेऽभावात् । वेदे योगरूढिः, वेदान्ते योग इति । ननु कथं तर्हि घटस्थापने वेदान्ते योगाभावादर्थोपस्थितिर्वेदे तु योगाभावाद्योगरूढिः कथमिति चेन्न । एकाक्षरब्रह्मवाचकत्वेनोपपत्तेः । लोके तु शक्तिसंकोचलक्षणया रूढ्या, ब्रह्मज्ञानवतां तु योगरूढ्येति । सत्यं रूढिराद्रियते तव मतरीत्या परमधिकारो भूतानामित्यधि-कारबलात्त्यज्यते योगस्त्वाद्रियते । अधिकारादिभिरित्यत्रादिशब्देन रूपं शब्दान्तरं च । तत्र रूपं 'यत्कृष्णं तदन्नस्य' इति कृष्णः स च पृथिव्या एव 'पृथिवी वा अन्नम्' इति श्रुतेर्नान्नस्यानुपलब्धेरतो योग आद्रियते । शब्दान्तरं त्वद्भ्यः एतन्नाप्त्वेन पृथ्वीत्वे कार्यकारणभावमाह । न त्वस्त्वेन व्रीह्यादित्वेन

मेव, न भौतिकानाम् । नीलं च रूपं पृथिव्या एव । भूतसहपाठात् । शब्दान्तरम् 'अद्भ्यः पृथिवी' इति । तस्मादन्नशब्देन पृथिव्येव ॥ १२ ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयपादे पृथिव्यधिकार इति षष्ठमधिकरणम् ॥ ६ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

स ग्रन्थस्तु निगदव्याख्यातेनैव भाष्येण व्याख्यातः ।

भास्कराचार्यास्तु 'तद्यदपां रस आसीत् तत् समहन्यत सा पृथिव्यभवत्' इति श्रुतिमपि शब्दान्तरत्वेनोदाजह्रुः । तेन योगस्यादुष्टत्वादत्र पृथिव्येवान्नपदेनोच्यते इति सिद्धम् ॥ १२ ॥

इति षष्ठं पृथिव्यधिकार इत्यधिकरणम् ॥ ६ ॥

रश्मिः ।

चेति छान्दोग्येऽन्नपदे योग आद्रियते । किंच पृथिवीमन्तरेण व्रीह्यादिः कुतो भवेदिति प्रथमं पृथिव्यर्थं योगोन्यथानुपपत्त्याद्रियते । किंच रूढिर्योगमपहरतीति केषांचित्प्रवादः स च विरोध्यविषयकज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वं जनकज्ञानविघटकत्वेनेति नियमं भनक्ति । यथा विरोध्यो विषयो रजतरूपस्तज्ज्ञानमिदं रजतमिति तस्य जनकं शुक्त्यादिस्तद्विषयकज्ञानमियं शुक्तिरित्याकारकं तन्नाशकत्वेन रूपेण दृष्टम् । तत्र रूढेर्योगापहारकत्वे इदं रजतमिति ज्ञानकाले इयं शुक्तिरिति ज्ञाननाशवत् पङ्कजपदेन रूढ्या समुदायशक्त्या पद्मज्ञानकाले पङ्कजनिकर्तृत्वज्ञाननाशापत्तेः । न च रूढेर्योगापहारकत्वाभावे पङ्कजनिकर्तृत्वेन कुमुदबोधो भवेत्तच्चानिष्टमिति वाच्यम् । समुदायशक्त्योपस्थितपद्मेऽवयवार्थपङ्कजनिकर्तुरन्वयो भवति सांनिध्यात् । अतः कुमुदादिवारणाय रूढिज्ञानस्य यौगिकार्थबुद्धिप्रतिबन्धकत्वकल्पनमपार्थमिति मणिकारेण दूषणाद्योग आद्रियते । **अतोधिकारादिभिर्हेतुभिर्योगस्य नैर्बल्यं परिह्रियते** इति **न कोऽपि दोष** इत्यर्थः । **निगदे**ति । भाष्ये **पृथिवी**ति पृथिवी उच्यते न तु व्रीह्योषधी उच्येते । **अधिकारे** इति प्रस्तावात्मा स च भूतानामेव । 'तत्तेजोऽसृजत' । 'तदपोऽसृजत' इति । एवकारव्यावर्त्यमाहुः **न भौतिकानामि**ति पूर्वपक्षोक्तपुरीषमांसमनआदीनाम् । **नीलं चे**ति । न च 'गुणे शुक्लादयः पुंसि गुणिलिङ्गास्तु तद्वति' इति नील इति पुंस्त्वं शङ्क्यम् । 'यच्छुक्लं तदपाम्' इत्यादिषु रूपविशेषणे शुक्लादौ नपुंसकत्वदर्शनात् । तेन 'नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम्' इति सूत्रे गुणपरतायां नीलो रूपमित्येव गुणिपरतायां तु विशेष्यनिघ्नता कोशादिति **शेखरे** लोकविषयम् । इदं च भूयस्त्वाभिप्रायम् । पीतरोहितादीनामपि दर्शनात्तद्ग्रंस्यैवोपादानं कुतः । व्रीह्यादिव्यावृत्त्यर्थं श्रुतेश्च नीलग्रहणमिति हेतोः । कृष्णास्तिलास्तु नान्नं तदाहुः । **एवे**ति । कचिद्भौतिकेऽपि कृष्णस्तद्व्युदसितुमाहुः **भूतसहे**ति 'यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्य' इति श्रुतौ तथा **पाठा**दित्यर्थः । **शब्दान्तर**मिति विषयवाक्यशब्दतो भिन्नः शब्द इत्यर्थः । इत्येवमभिधानव्याख्यातेनेत्यर्थः । **समहन्यते**ति **बृहदारण्यके** द्वितीयब्राह्मणेऽस्ति 'आपो वार्कस्तद्यदपाꣳरसः समहन्यत सा पृथिव्यभवत्' इति । **समहन्यत** कठिनं समयुज्यत । पाषाणावयवसंयोगवत्साऽपां कठिनीपरिणतिः । **भास्करे**ति शंकराचार्यस्याप्युपलक्षकं तत्र रसपदस्थले शरपदम् । **तस्मा**दिति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तेने**ति, पूर्वोक्तोपपादनेन । **सिद्ध**मिति एत आकाशादयः पञ्चापि ब्रह्मविभूतयः 'तत्तेज ऐक्षत' 'ता आप ऐक्षन्त' इति छान्दोग्ये **ईक्षालिङ्गा**त् । तत्सहचरिताकाशस्य ब्रह्मशरीरत्वेन तथात्वम् । वायोः सशरीरकार्यत्वात् । पृथिव्यास्तु मार्गत्वं वर्तते इति तथा ॥ १२ ॥ **इति षष्ठं पृथिव्यधिकार इत्यधिकरणम् ॥ ६ ॥**

तदभिध्यानादेव तु तल्लिङ्गात् सः ॥ १३ ॥ (२-३-७)

आकाशादेव कार्याद् वाय्वादिकार्योत्पत्तिं तुशब्दो वारयति । स एव परमात्मा वाय्वादीन् सृजति । कथं तच्छब्दवाच्यतेति चेत् तदभिध्यानात् । तस्य तस्य कार्यस्योत्पादनार्थं तदभिध्यानं, ततस्तदात्मकत्वं, तेन तद्वाच्यत्वमिति । ननु यथाश्रुतमेव कुतो न गृह्यत इत्यत आह तल्लिङ्गात् । सर्वकर्तृत्वं लिङ्गं तस्यैव सर्वत्र वेदान्तेष्ववगतम् । जडतो देवताया वा यत्किंचिज्जायमानं तत् सर्वं ब्रह्मण एवेति सिद्धम् ॥ १३ ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयपादे तदभिध्यानादेवेति सप्तममधिकरणम् ॥ ७ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

तदभिध्यानादेव तु तल्लिङ्गात् सः ॥ १३ ॥ एवं तैत्तिरीयश्रुत्येकवाक्यतया छान्दोग्येऽपि क्रमेण ब्रह्मणः सकाशात् पञ्चमहाभूतसृष्टिरित्यवधारितम्, तत्रायं संशयः । क्रमसृष्टावाकाशादयः किं स्वतन्त्राः स्वस्वकार्यं सृजन्त्युत परमेश्वरतन्त्रा इति । तत्र तावत् प्राप्तम्, 'आकाशाद् वायुः वायोरग्निः' इत्यादि, 'तत्तेज ऐक्षत' 'बहु स्याम्' इत्यादिश्रुत्या भूतानां देवतायाश्च हेतुत्वस्य कर्तृत्वस्य कथनात् स्वतन्त्रा एव सृजन्तीति । एवं पूर्वपक्षे सूत्रमुपन्यस्य सिद्धान्तं व्याकुर्वन्ति आकाशादेवेत्यादि । कथमिति । तर्हीति शेषः । तदभिध्यानमिति आकाशरूपः स्यां वायुरूपः स्यामित्येवं स्वस्य तद्रूपाभिध्यानं तच्च, 'बहु स्यां प्रजायेय' इति श्रुत्यैव संग्रहेणोक्तम् । न च तस्य तेजःप्रभृतिसाधारण्यं शङ्क्यम् । तेजःप्रभृतिष्वपि तत्पदोपनिबन्धेन प्रकरणेन च तस्यापि ब्रह्मधर्मत्वनिश्चयात् । सर्वत्र वेदान्तेष्विति 'स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिः' । 'यतः प्रसूता जगतः प्रसूतिः' । 'यः पृथिव्यां तिष्ठन्' 'यः पृथिवीमन्तरः' इत्यादिषु ।

रश्मिः ।

तदभिध्यानादेव तु तल्लिङ्गात् सः ॥१३॥ विषयमाहुः एवमिति । **अवधारितमिति** । **देवताया** इति ईक्षणलिङ्गात्तेजसोऽपां चाधिदैविकरूपायाः । **हेतुत्वस्येति** तैत्तिरीये हेतुत्वस्य छान्दोग्ये कर्तृत्वस्य । 'तस्माद्वा एतस्माद्' इति तैत्तिरीयम् । 'तत्तेज ऐक्षत' इति छान्दोग्यम् । **तर्हीति** वाक्यशोभार्थम् । भाष्यं तु लाघवाभिप्रायेण । शोभामुखं गौरवं न दोषाय । **तद्रूपेति** । **अभिध्यान**मिच्छा स्मृतौ दर्शनात् । **तस्येत्य**भिध्यानस्य । **तेज** इति 'तत्तेज ऐक्षत' इत्यादिश्रुतेः । तथा चाभिध्यानस्य न ब्राह्मतेजआदिपदाभिधानलिङ्गत्वमिति शङ्कमानस्याभिप्रायः । **तत्पदेति** तेजआदिपदोपनिबन्धनेन । **प्रेति** 'सदेव सौम्येदमग्र आसीद्' इति श्रुतेः ब्रह्मप्रकरणेन तैत्तिरीये 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इति श्रुतेर्ब्रह्मप्रकरणेन । **तस्येति** छान्दोग्योक्तस्य तेजआदेरपि । तथा च 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इति श्रुतिविषयस्यापि छान्दोग्योक्तस्य ब्रह्मधर्मत्वमुक्तम् । भाष्ये **तद्वाच्यत्वमिति** आकाशादिपदवाच्यत्वम् । विशिष्टस्य रूपादिविशिष्टस्य घटादिपदवाच्यत्ववत् । यद्वा एवमेव सर्वत्र तत्पदवाच्यत्वम् । ब्रह्मणो व्यापकत्वात् । **तल्लिङ्गादिति** । कर्मधारयःषष्ठीतत्पुरुषो वेत्याशयेन व्याकुर्वन्ति **स सर्वेति** । **तत्** सर्वकर्तृत्वं **लिङ्गं** तस्मात्, तस्य लिङ्गं तल्लिङ्गं तस्माद्वा । **प्रकृते प्रसूतिरिति** । महाभूतानि । **इत्यादीति** । आदिशब्देन मुण्डके 'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खं

विपर्ययेण तु क्रमोऽत उपपद्यते ॥ १४ ॥ (२-३-८)

यथोत्पत्तिर्न तथा प्रलयः, किंतु विपर्ययेण क्रमः । अत उत्पत्त्यनन्तरं

भाष्यप्रकाशः ।

फलितमाहुः **जडत** इत्यादि । **ब्रह्मण** इति तत्तद्रूपेण तत्तदन्तःस्थात् तस्मात् । एवमेव पौराणिकीषु महदादिसृष्टिष्वपि ज्ञेयम् ।

भिक्षुस्तु, अत्र स्थितिकर्तृत्वं विचार्यत इत्याह तन्मन्दम् । पूर्वेषु पादेषु ब्रह्मण एव कारणत्वेऽवधारिते स्थितिप्रलयौ प्रत्यपि सामान्यतः कारणता सिद्धैवेति तदंशे संदेहाभावेनाधिकरणवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । अतः पूर्वोक्त एवार्थ इति निश्चयः ॥ १३ ॥

इति सप्तमं तदभिध्यानादेवेत्यधिकरणम् ॥ ७ ॥

विपर्ययेण तु क्रमोऽत उपपद्यते ॥ १४ ॥ ननु तैत्तिरीये छान्दोग्ये च सृष्टेः क्रमो निरूप्यते, न तु प्रलयस्य । नैयायिकादयस्तु समवाय्यसमवायिकारणनाशात् कार्यनाशमङ्गीकुर्वन्ति; मुण्डके तु विस्फुलिङ्गन्यायेन युगपदेव सर्वोत्पत्तिर्युगपदेव सर्वेषां प्रलयश्च श्राव्यते, 'यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः । तथाऽक्षराद् विविधाः सौम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति' इति । तथा सति क्रमिकाणां प्रलये कः प्रकारो ग्राह्य इति संशये मुण्डके ब्रह्मण्येव सर्वप्रलयस्योक्तत्वेन श्रौतत्वाल्लौकिकं मतं विहाय यौगपद्यपक्षो ग्राह्य इति पूर्वपक्षे प्रवृत्तं सूत्रमुपन्यस्य व्याचक्षते **यथोत्पत्तिरित्यादि** । सत्यमेवमेव साक्षात्सृष्टौ, तथापि सुबालोपनिषदि, 'किं तदानीं तस्मै स होवाच न सन् नासन्न सदसत्' इति सदसद्विलक्षणं ब्रह्माभिसंधायोच्यते, 'तस्मात् तमः संजायते तमसि भूतादिर्भूतादेराकाशमाकाशाद् वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी' इत्यादि एवं सृष्टिमुक्त्वा अग्रे उच्यते, 'सोऽन्ते वैश्वानरो भूत्वा संदग्ध्वा सर्वाणि भूतानि, पृथिव्यप्सु प्रलीयते आपस्तेजसि विलीयन्ते तेजो वायौ प्रलीयते वायुराकाशे विलीयते आकाशमिन्द्रियेषु' इत्यादि । पुराणेषु च

रश्मिः ।

वायुर्ज्योतिरापः पृथ्वी विश्वस्य धारिणी' इति श्रुतेर्ग्रहणम् । **जडत इत्यादीति** । आधिभौतिकादेवतायाः, आध्यात्मिकरूपात् ब्रह्मादीति । तृतीयस्कन्धे षड्विंशतितमेऽध्याये दैवात्क्षुभितधर्मिण्यामित्यादिनोक्तासु । 'एवं पराभिध्यानेन कर्तृत्वं प्रकृतेः' इति वाक्याज्ज्ञेयम् । रामानुजा इममेवात्र सूत्रे चिन्तयन्ति । **भिक्षुरिति** । भगवान् । **पादेष्विति** । तत्रत्यजन्माद्यधिकरणेषु । **एवेति** युक्तीनामुक्तत्वादेवकारः ॥ १३ ॥ **इति सप्तमं तदभिध्यानादेवेत्यधिकरणम् ॥ ७ ॥**

विपर्ययेण तु क्रमोऽत उपपद्यते ॥ १४॥ समवायीति यथा दण्डेन कपालतत्संयोगयोर्नाशे घटनाशः । विषयवाक्यं वक्तुमाहुः **मुण्डक** इति । **अपियन्तीति** अपीतिं लयं कुर्वन्ति । **क्रमिकाणामिति** आकाशादीनाम् । **प्रकार** इति तत्रैव चापियन्तीत्यत्र प्रकारः समवाय्यसमवायिनाशात्कार्यनाशप्रकारो वा युगपत्सर्वनाशप्रकारो वा ग्राह्य **इति संशये । लौकिकमिति** । नैयायिकमतं श्रुत्यन्तरसंग्रहेणैव विप्रतिपत्त्यभावायाहुः **सुबालेति** । किमिति प्रश्ने । **तस्मादित्यादि** । तस्मात्सदसद्विलक्षणात् । **तम** इति 'ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रम्' इति वाक्याद्धिरण्यगर्भसृष्टिः । **भूतादिः** भूतानामादिः भूतश्चासावादिराकाशः । युगपत्सर्वनाशातिरिक्तनाशो व्युत्क्रमेणैवेत्याहुः । **पृथिव्यप्स्विति । इन्द्रियेष्विति** । इन्द्रियाणि तामसानीति भूतानि तमसीत्यर्थः । **आदिशब्देन** तमस्तत्स्रष्टा हिरण्यगर्भश्च राजसत्वेन पुत्रीं यमितुमुद्यतस्यान्धतामिस्रस्रष्टृत्वौचित्यात् सदसद्विलक्षणे ।

भाष्यप्रकाशः ।

'वायुना हृतगन्धा भूः सलिलत्वाय कल्पते । सलिलं तद्धृतरसं ज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥
हृतरूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते । हृतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसि लीयते ॥
कालात्मना हृतगुणं नभ आत्मनि लीयते' ।

रश्मिः ।

तैत्तिरीये त्वात्मनि । अन्यमपि लयप्रकारमाहुः **पुराणेष्विति** । एकादशे तृतीयाध्याये । **वायुना** चम्पकादेर्गन्धो ह्रियते इति प्रसिद्धम् । तदा जलादिभ्यो व्यावर्तकस्य गन्धस्याभावात् सांवर्तकमेघगणेन च सलिलवर्षणद्वारा प्रचयसंयोगजननेन द्रवत्वजननाद्भूः **सलिलरूपा** भवति । यतः सलिलरसः कठिनः सन् पृथिवी भवतीत्युक्तम् । तथा च यथा मृदि शर्करायां च बहुलतरजलप्रक्षेपे जलत्वाय ते कल्पेते तथेयं **कल्पत** इत्यर्थः । न च पाषाणानां सलिलभावोऽनुपपन्नः । 'सांवर्तको मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः । धाराभिर्हस्तिहस्ताभिः' इति पूर्णीभावे पङ्कजभावे वा सलिलभावात् । ईश्वरेच्छाया मनसाप्याकलयितुमशक्यरचनस्य निमित्तभूताया अत्रापि निमित्तत्वात् । न च नदीपाषाणादौ सलिलत्वापत्तिः । मैवम् । नदीजलस्य संवर्तकत्वाभावात् । ईश्वरसंजिहीर्षोत्तरीभूतवर्षण एव संवर्तकत्वात् । एवं च मृतदेहे घटादौ च यादृशसमवायी तद्भावः, कारणान्तरसमवधाने तु भस्मादिरूपं रूपान्तरमिति द्रष्टव्यम् । तथा सांवर्तकवायुना **हृतो रसो** यस्य तत् **सलिलम्** । वायुना रसापहार आर्द्रपटादौ प्रसिद्धः । यद्वा तदिति भिन्नं पदं भूसलिलमित्यर्थः । तर्हि केन हृतरसं सूर्यतेजोरूपेण । अनुक्ते काल एव संवर्तक इति सुबोधिन्याः । संवर्तकः प्रलयकर्ता । एवं सति **ज्योतिष्ट्वायोपकल्पते** सूर्यरश्मीनां तत्र प्रविष्टत्वात् चन्द्रवत् । ज्योतिषे चन्द्रे सूर्यकिरणप्रवेशः । रसस्य च हृतत्वात् । यथा चार्द्रकाष्ठं वह्निना हृतरसं वह्नित्वायोपकल्पते तथा । ज्योतिषो रूपं भास्वरंशुक्लम् । तत्तमसा तमोगुणस्य तामसेनाधिदैविकरूपेण हृतम् । एतच्च तमो मायिकं अर्थान्तरमेव । न तेजःसामान्याभाव इत्युपपादितमन्धकारवादे एतैः । वायावुत्कृष्टे चक्षुषस्तेजो मायाजनिततमसा निहन्यत इति दृष्टम् । यद्यपि तेजसा तमो निहन्यते 'अह्नाय तावदरुणेन तमो निरस्तम्' तथापि आनन्दांशात्तमो भवति तज्जगल्लयार्थं भगवान् गृह्णातीति 'अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः' इति प्रथमाध्यायस्योपान्त्यसूत्रे मतम् । एतच्च द्वितीयस्कन्धपञ्चमे 'सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणाः' इत्यस्य सुबोधिन्यामस्ति । तेन प्रकृतिगुणभूतं मायिकं तमस्तेजो निहन्ति आनन्दांशाः । एतेन **तमसा** तु तेजो निहन्यते इति विवेकः । एवं च भास्वररूपं तमसा हृतमिति नीरूपं तेजो नीरूपे **वायौ प्रलीयते** । अथवा तम आसीदित्यत्र तमःपदेन कर्मोच्यत इति समाकर्षसूत्रे स्थितम् । तथा च कर्मणा हृतरूपं ज्योतिरित्यर्थः । कर्मविशेषेण तेजोरूपं ह्रियत इति प्रसिद्धम्, सुवर्णरङ्गकारादौ । तथा हृतस्पर्श इत्यत्र कार्यानाधारौ देशकालाववकाशशब्देनोच्येते । तत्र देशेन स्पर्शनाशः । लोकेऽपि देशावकाशे न स्पर्शो भवति, उष्णोऽनुष्णाशीतश्च । स च लोके कर्मणा देशयोः कपालयोरवकाशे सति स्पर्शः संयोगो समवायी सन् भवतीति देशे न स्पर्शस्य संयोगस्य नाशः । न च कर्मणा कपालविभागस्तत आरम्भकसंयोगनाश इति लोकेऽपि विभागेन नाशो न देशेनेति शङ्क्यम् । विभागो न गुणः किं तु तत्स्वरूपात्मक इति समवायाभ्युपगमसूत्रे विभागानङ्गीकाराद्देशावकाशेनैव तत्र संयोगनाशः । एवं कालात्मनावकाशेन संयोगनाशः । कालात्मनेत्यग्रे वक्ष्यमाणत्वाच्चेत्यर्थः । तथा च स्पर्शेन वायुराकाशातिरिक्तोऽनुभूयतेऽवयव-

१. रोहितम् ।

प्रलयः । कुतः । उपपद्यते । प्रवेशविपर्ययेण हि निर्गमनम् । क्रमस्रष्टावेवैतत् ॥ १४ ॥ इति द्वितीयाध्याये तृतीयपादे विपर्ययेणेत्यष्टममधिकरणम् ॥ ८ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

इत्यादि । पुराणं च श्रुत्युपबृंहणम् । अतो ब्रह्मणः सकाशादुत्पत्त्यनन्तरं तत्रैव प्रलय इति येन क्रमेणोत्पत्तिस्तेन क्रमेण न प्रलयः, किं तु विपर्ययेण क्रमः प्रलयस्य । अत्र पृच्छति, कुत इति । सत्यं श्रुतिपुराणेषूच्यते, परं तत्रापि हेतुर्वक्तव्यो येन बुद्धावारोहेत्, तत्राह, उपपद्यत इत्यादि । तथा च वैशेषिकादिवद् ध्वंसरूपो नात्र प्रलयः, किं तु कारणे प्रवेशरूपः । अतो लौकिकप्रवेशनिर्गमन्याय एव बुद्धिगोचरीकरणायानुसंधेय इत्यर्थः । तेनेदं सिद्धम्, युगपत्प्रलयोत्तरं युगपत्सृष्टिः, क्रमेण प्रलये तद्विपरीतक्रमेण सृष्टिरिति । तदेतदुक्तं क्रमस्रष्टावेवैतदिति ।

अन्ये तु प्रलयस्य ब्रह्मकर्तृकत्वावधारणार्थमित्याहुः । तन्मन्दम् । यतो वेत्यादिश्रुत्यैव तस्यावधारितत्वेन तत्र संदेहस्यैवानुदयात् । अत उक्तमेव प्रयोजनमिति दिक् ॥ १४ ॥

इत्यष्टमं विपर्ययेणेत्यधिकरणम् ॥ ८ ॥

रश्मिः ।

स्पर्शाभावे तु वायुर्नभ इति भावः । कालेति कालात्मनावकाशेन कालेन हि तृतीयक्षणरूपेण शब्दस्तिरोभवति कालात्मना च विज्ञानघन इत्यवकाशाभावादाकाश आत्मनि विज्ञानघने । यत्तु तामसाहंकारे इति श्रीधर्या तन्न । तन्मात्राजनको हि तामसाहंकारस्तत्र शब्दादीनां तन्मात्राणां लय उचितः कार्यत्वान्न तु नभसः कार्यत्वाभावादित्यर्थः । ननु श्रौते सृष्टिक्रमे श्रौत एव पूर्वपक्षोक्तलयो युक्तो न पौराण इत्यत आहुः पुराणमिति । समन्वयाध्याये द्वितीयपादे स्मृतेश्चेति सूत्रेण 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' इति स्मृतिं 'संगृह्य शब्दविशेषादि'ति सूत्रेऽन्तरात्मनि हिरण्मयः पुरुषो न जीवः किं तु ब्रह्मेति यथा व्रीहिर्वा यवो वेति श्रुत्यर्थः स उपबृंहित इति प्रकृतेऽपि तथेत्यर्थः । अत इत्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति स्म अत इति । इदं च भाष्ये सौत्रं पदमुपन्यस्तम् । परं न व्याख्यातम् । अतः ब्रह्मणः सकाशाद्भूतोत्पत्त्यनन्तरं प्रलयः । यद्वाऽऽनन्तर्ये पञ्चमी । अस्या उत्पत्तेरनन्तरमित्यतः शब्दार्थः । तत्रोत्पत्तिक्रमविपर्ययेण क्रमः यत उपपद्यते लौकिकप्रवेशनिर्गमन्यायेनेति सूत्रार्थः । प्रवेशेति येन क्रमेण सोपानमारूढः प्रविशति तद्विपरीतक्रमेण सोपानमवसेहन्निर्गच्छतीति प्रवेशनिर्गमन्यायः । यत्तु शंकरभाष्ये दृश्यते मृदो जातं घटाद्यप्ययकाले मृद्भावमप्येति । अद्भ्यश्च जातं हिमकरकादि अब्भावमप्येतीत्युक्तः स न ग्राह्यः । अनेकपदार्थाभावात् परंपराभावेनादृष्टान्तत्वादित्येवकारार्थः । एवकारेण युगपत्सृष्टिव्यवच्छेदः । अन्य इति माध्वाः । 'कर्ता प्राणादिकस्यास्य हन्ता भूम्यादिकस्य च । यः क्रमाद् व्युत्क्रमाच्चैव स हरिः परउच्यते' इति भाल्लवेयश्रुतिप्रामाण्यादेवमाहुरित्यर्थः । संदेहस्यैवेति । एवकारस्तु स्वाप्ययसुत्प्येव-मिति । उक्तमिति सृष्टिक्रमात् लये क्रमवैपरीत्यम् । दिगिति । रामानुजाचार्यास्तु 'एतस्माज्जायते प्राणः' इति मुण्डकोक्ता सृष्टिः परंपरयाप्युपपद्यते इति पूर्वपक्षे सूत्रमवतारयन्ति स्म । तुशब्दोऽवधारणे । अव्यक्तमहदहंकाराकाशादिक्रमाद्विपर्ययेण क्रमो मुण्डके प्रतीयते स च क्रमस्तद्ब्रह्मणस्तत्तत्कार्योत्पत्तेरेवोपपद्यते, परंपरया कारणत्वे एतस्मादिति पदफलितं सर्वेषां प्राणादीनां ब्रह्मानन्तर्यश्रवणमुपरुध्येतेत्याहुः ॥ १४ ॥ इत्यष्टमं विपर्ययेणेत्यधिकरणम् ॥ ८ ॥

अन्तरा विज्ञानमनसी क्रमेण तल्लिङ्गादितिचेन्नाविशेषात् ॥ १५ ॥ (२-३-९)

तैत्तिरीयके आकाशादि अन्नपर्यन्तमुत्पत्तिमुक्त्वा अन्नमयादयो निरूपिताः। तत्रान्नमयस्य प्राणमयस्य च सामग्री पूर्वमुत्पन्नोक्ता। आनन्दमयस्तु परमात्मा मध्ये विज्ञानमनसी विद्यमाने क्वचिदुत्पन्ने इति वक्तव्ये।

भाष्यप्रकाशः ।

अन्तरा विज्ञानमनसी क्रमेण तल्लिङ्गादिति चेन्नाविशेषात् ॥ १५ ॥ क्रमविचार एव प्रसङ्गादन्यं विचारयतीत्याहुः **तैत्तिरीयक** इत्यादि । अत्र हि तैत्तिरीयवाक्यैकवाक्यतया छान्दोग्यवाक्यं विचारितम्, छान्दोग्ये च, 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य'इति जीव उच्यते । षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टासीदिति मन उच्यते । अतस्तत्क्रमोऽपि विचारणीयः । न च मनसोऽन्नविकारत्वस्य मयटा प्राप्तत्वादन्नोत्तरभावः शङ्क्यः । अन्नमशितं त्रेधा भवतीति तत्पूर्ववाक्ये तस्याशनोत्तरभावित्वकथनादशनस्य च मनःप्राणसंबन्धोत्तरभावितायाः प्रत्यक्षसिद्धत्वेनान्नमयत्वादिश्रुतेः पोषणाभिप्रायकत्वनिश्चयेन अन्नोत्तरभावित्वस्य तत्र वक्तुमशक्यत्वात्, अतस्तयोः क्रमः सर्वथा विचार्यः सोऽपि तैत्तिरीयकानुरोधेन उपजीव्यत्वात् । तैत्तिरीयके त्वाकाशाद्यन्नपर्यन्तमुत्पत्तिमुक्त्वा तदुत्तरमन्नमयादयो निरूपिताः, तत्रान्नमयसामग्र्योषध्यन्नरूपा । तस्यान्नरसमयत्वात्, इदमा तन्निर्देशाच्च । प्राणमयस्तत आन्तर

रश्मिः ।

अन्तरा विज्ञानमनसी क्रमेण तल्लिङ्गादिति चेन्नाविशेषात् ॥ १५ ॥ प्रसङ्गसंगत्याधिकरणमवतारयन्तीत्याहुः **क्रमे**ति । प्रसङ्गसंगतिं स्फोरयन्ति स्म **अत्रे**ति । तृतीयपादे । **छान्दोग्य** इति श्वेतकेतूपाख्याने । **षोडशाना**मिति । 'दध्नः सोम्य मथ्यमानस्य योणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तत्सर्पिर्भवत्येवमेव खलु सोम्यान्नस्याश्यमानस्य योणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति'इत्यत्राणिमान्नरसजनिता मनसः शक्तिः षोडशादिनावच्छेदेन षोडशधा विभज्य कलात्वेन विवक्ष्यते तासां कलानामेका कलावशिष्टास्ति तयैककलयेदानीं श्रुत्वापि वेदान्न प्रतिपद्यस इति श्वेतकेतुं तत्पितुरारुणेर्वचनम् । **आसी**दिति । स्यादित्यपि पठ्यते । **मन** उच्यत इति एककलापदेनोच्यते । जीवमनसोः क्रमः जीवमनसी भूतेभ्यः पूर्वं पश्चाद्वेति संशयापनुत्तये विचारणीयः । मयटेति 'अन्नमयꣳहि सौम्य मनः' इति श्रुतौ । **भवती**ति । विधीयत इत्यपि पठ्यते । पुरीषमांसमनोरूपेण त्रेधा भवतीत्यर्थः । **तस्ये**ति मनसः । **अन्नमये**ति 'अन्नमयꣳसौम्य' इत्यादिश्रुतेः मनसः पोषणाभिप्रायकत्वनिश्चयेन । **तयो**रिति जीवमनसोः पूर्वं वा पश्चाद्वेति क्रमः । **उपे**ति छान्दोग्ये एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं प्रतिज्ञाय 'तत्तेजोऽसृजत' इति तेज आदिसृष्टिरुक्ता । न वाय्वाकाशयोरित्येकविज्ञानेन वाय्वाकाशयोर्विज्ञानं न भवेदतः 'तस्माद्वा एतस्मात्' इति तैत्तिरीयोक्तवाय्वाकाशोत्पत्तिमपेक्षते । अतश्छान्दोग्यस्य तैत्तिरीयमुपजीव्यं तस्य भावस्तत्त्वं **तस्मात्** । एवमुपोद्घातमुक्त्वा भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तैत्तिरीयक** इति । **आकाशे**ति 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः' इत्यारभ्यौषधीभ्योऽन्नमित्यन्तेन । **अन्नमये**ति । 'स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः' इत्यादिना । **तत्रे**त्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तस्ये**ति अन्नमयस्य । **इदमे**ति । प्रत्यक्षवाचिनेदमा 'तस्येदमेव शिरः, अयं दक्षिणः पक्षः, अयमुत्तरः पक्षः, अयमात्मा, इदं पुच्छं प्रतिष्ठा' इति । न ह्यन्नरसमयादन्यः प्रत्यक्षेण दर्शयितुं शक्यते । **तत** इति ।

तत्र क्रमेणोत्पन्ने इति वक्तव्यम् । क्रमस्तु प्रातिलोम्येन, सूत्रे विपर्ययानन्तरकथनात्, अन्तरेति वचनाच्च । तेजोऽबन्नानामन्नमये गतत्वात् । वाय्वा-

भाष्यप्रकाशः ।

इति तस्य सामग्री वाय्वाकाशपृथिवीरूपा, न तु प्राणाख्यबाह्याबाह्येन्द्रियरूपा, तच्छिरःप्रभृतिकथने प्राणव्यानापानाकाशपृथिवीनामेव कथनात्, एवमेतद्द्वयसामग्री, ओषधीभ्योऽन्नमित्यन्तेन पूर्वमुत्पन्नोक्ता, आनन्दमयस्तु परमात्मा, स तु मूलकारणं 'तस्माद्वा एतस्मादात्मनः' इत्यात्मपदेनैवोक्तः । अतः परं मनोमयविज्ञानमयावचशिष्येते तदाह 'अन्तरा विज्ञानमनसी' इति मध्ये विज्ञानमनसी विद्यमाने क्वचिदुत्पन्ने इति वक्तव्ये । तत्र पूर्वपक्षी आह क्रमेणेति । तैत्तिरीये आनन्दमयस्य निकटे विज्ञानमयो, दूरे मनोमय इति तत्क्रमेणोत्पन्ने इति वक्तव्यम् । न च यद्ययं व्यासाशयः स्यात् तदा मनोविज्ञाने इति वदेन्न तु विज्ञानमनसी इति, अतो नैवमिति शङ्क्यम्, क्रमस्तु प्रातिलोम्येनैव व्यासस्य विवक्षितः, अभ्यर्हितत्वेन छान्दोग्यानुसारेण च प्रथममात्मनस्ततो मनसः स्मरणात्, न चात्र मानाभावः शङ्क्यः । सूत्रे विपर्ययानन्तरं कथनात्, अन्तरेति वचनाच्च । यद्येतन्नाभिप्रेयादिदं सूत्रं विपर्ययसूत्रात् पूर्वं पठेत्,

रश्मिः ।

वाय्विति । प्राणव्यानापानाः वायवः । यत्तु शांकरा 'एतस्माज्जायते प्राणो मनः' इति मुण्डके प्राणपदेन बाह्यानि कर्मेन्द्रियाणि अबाह्यानि ज्ञानेन्द्रियाणि प्रोच्यन्त इति व्याचख्युस्तदपेशलमित्याहुः **नत्विति** । **तच्छिर** इति 'तस्य प्राण एव शिरः व्यानो दक्षिणःपक्षः-अपान उत्तरःपक्षः आकाश आत्मा पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा' इति श्रुतौ । **एतदिति** अन्नमयप्राणमयसामग्री । **उत्पन्नेति** 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निरग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी' इत्यनेन वायोरग्निरग्नेराप इति वाक्यरहितेन प्राणमयसामग्र्युत्पन्नोक्ता 'पृथिव्या ओषधय ओषधीभ्योन्नम्' इत्यनेनान्नमयसामग्रीति विवेकः । **आनन्दमय** इति । व्याख्येयम् । व्याचक्षते **स त्विति** । मध्य इत्यारभ्य सूत्रव्याख्यानमित्याशयेन भाष्येणैव सूत्रं विवृण्वन्ति स्म **मध्य** इत्यादिना । विज्ञानमनसी मयड्रहिते ते तु स्वार्थे मयटौ द्योतयतः । तौ तु सूत्रविरुद्धावतः सूत्रोदाहरणाभ्यां मयट् तद्रहितोऽभयविषयत्वार्थम् । **क्वचिदिति** । संशये तु भूतेभ्यः पूर्वमुत्पन्ने उत पश्चादिति वक्तव्ये । **तत्रेति** । एवं संशये **तत्रेति** भाष्यस्याप्ययमेवार्थः । क्रमे उत्पादकत्वादानन्दमयस्य प्राथम्यमाहुः **आनन्दमयस्येति** । **दूर** इति विज्ञानमयेन व्यवहितः । **तत्क्रमेणेति** । क्रमस्तु प्रातिलोम्येनेति भाष्यादुक्तक्रमेण । क्रमस्त्विति भाष्यं विवरीतुमाहुः **न चेति** । **अयमिति** । आनन्दमयस्य निकट इत्याद्युक्तः । **वदेदिति** सूत्राणां श्रुत्यनुसारित्वेन श्रुतिक्रमानुसारित्वाय वदेत् । **नैवमिति** । प्रातिलोम्येन क्रम इति नेत्यर्थः । व्याचक्षते स्म भाष्यं **क्रमस्त्विति** । **विवक्षित** इति । **सूत्रे** । सूत्राणां श्रुत्यर्थनिश्चायकत्वेन सूत्रे क्रमप्रातिलोम्ये श्रुत्यपेक्षायां प्रथमं श्रुती आहुः **अभ्यर्हितत्वेनेति** । अल्पाच्तरं पूर्वमिति सूत्रापेक्षयाऽभ्यर्हितं चेति सूत्रस्य विशेषसूत्रत्वादभ्यर्हितत्वेन छान्दोग्ये चानेन जीवेनेत्यादिना विज्ञानमुक्त्वोच्यते । एका कलातिशिष्टा स्यादिति मनस्तदनुसारेण चेत्यर्थः । **आत्मनो** जीवस्य । **स्मरणादिति** । सूत्रणात् । स्मृतित्वात्सूत्राणाम् । प्रातिलोम्यप्रयोजकाङ्गग्रन्थरूपाभ्यर्हितं चेति सूत्राश्रयणे । **सूत्रे विपर्ययेति** । व्याख्येयं भाष्यमिदम् । विपर्ययपदघटितसूत्रानन्तरमेतत्सूत्ररूपवाक्यप्रबन्धादित्यर्थः । कथ वाक्यप्रबन्ध इत्यस्य प्रयोगाद्भाष्ये ।

काशयोः प्राण एव गतत्वात्। आकाशात् पूर्वं विज्ञानमनसी उत्पद्ये इति वक्त-

भाष्यप्रकाशः।

अन्तरेति च न वदेत्। वायुतेजःप्रभृतिष्वन्तरेति पदं विनापि प्रणयनात्, अत एतद्वाक्यविचार एव व्यासाशयः। एवं सति छान्दोग्योक्तानां तेजोऽबन्नानामन्नमये गतत्वाद् वाय्वाकाशयोरङ्गीक्रियमाणयोः प्राणमये गतत्वाद् आकाशात् पूर्वं विज्ञानमनसी विज्ञानं जीवाः मनोऽन्तःकरणमुभयविधबाह्येन्द्रियनायकमिति तदुपलक्षितं करणकदम्बकं चेति द्वे उत्पद्ये इति वक्तव्यम्, अन्यथा 'सर्व एवात्मानो व्युच्चरन्ति' इति श्रुत्युक्तानां जीवानाम्, 'एतस्माज्जायते प्राणः' इति श्रुतौ स्मृतिपुराणादिषु च जगत्कारणकोटिनिविष्टानां प्राणादीनां महदहंकारादीनां च ब्रह्मकार्येष्वनिवेशे क्रमसृष्टौ न्यूनताऽऽपद्येत। न चाकाशादिग्रहणे यथा महाभूताधिकारो नियामकस्तथात्र विज्ञानमनसोर्ग्रहणे नियामकं छान्दोग्ये नास्तीति वाच्यम्, तयोरग्रे, 'अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य'इति, 'षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टाऽऽसीत्'इति वचनमेव लिङ्गम्।

रश्मिः।

तत्फलं तु विपर्ययेण इत्यनुवृत्त्य मध्ये विज्ञानमनसी विपर्ययेण मनो विज्ञाने इति वक्तव्येऽभ्यर्हितं चेति सूत्रेण विपर्ययेणोक्ते इत्येवं शिष्याः सूत्राशङ्कां पराकुर्यासुरिति व्यासाशयसूचनम्। तर्हि कः शब्दोऽर्थसूचक इत्यत आचार्याः **अन्तरेति**। हेत्वन्तरभाष्यमिदम्। आनन्दमयान्नमययोर्मध्ये विज्ञानमनसी इत्यभिदधदन्तराशब्दो विज्ञानमनसी अन्नमयप्राणमये इत्येव पञ्चानां प्रयोगे मध्ये शङ्कापहारौ सूचयतीत्यर्थः। तथाच अन्तरेतिवचनात् अन्तराशब्दएव सूचक इति भाष्यभावार्थः। व्याचक्षते स्म **यन्नेतदिति**। एतद्विपर्ययेणेत्यस्यावर्तनम्। तदभिध्यानसूत्रे समाप्ताकाशाद्युत्पत्तिविचारान्त एतद्विचारस्य युक्तत्वादित्यर्थः। **वायुतेज** इति। निर्णेतव्येष्विति शेषः। **प्रणयनादिति**। एतेनेत्यादिसूत्रचतुष्टयप्रणयनात्। एवं चात्रैवैतादृशौ मध्ये शङ्कापरिहारौ न पूर्वसूत्रेष्विति व्यासाशयः। **अत एतदिति**। विज्ञानमनसी इत्येवं सौत्रेण विषयवाक्यविचार एव। तेज इति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **एवं सतीति**। **गतेति**। पाञ्चभौतिकत्वाद्देहस्य। **यद्वा**। अग्निमीळे पुरोहितमिति तेजः। ईडे इड स्तुतौ। इषेत्वेत्यन्नं इट् अन्नमिति व्याख्यानात्। ऊर्जेत्वेत्यापः। ऊर्क् तदन्तर्गतो रस इति व्याख्यानात्। कीटेषु त्रयं प्रसिद्धम्। **अङ्गीति**। तत्तेजोऽसृजतेति तेजःपदेन तैत्तिरीयकमनुरुध्य लक्षणयाङ्गीक्रियमाणयोराक्षेपेणाङ्गीक्रियमाणयोर्वा। **गतेति**। आकाश आत्मेति प्राणमयावयवनिरूपकश्रुतेः। **पूर्वमिति**। आकाशस्य शरीरत्वात्पूर्वम्। 'आकाशशरीरं ब्रह्म' इति श्रुतेः। तत्रापि पूर्वं मनः पश्चाद्विज्ञानम्। तन्मनोऽकुरुतेति 'नैवेह किञ्चनाग्र आसीत्' इत्यस्याग्रे श्रुतेः। **अन्यथेति**। द्वयोरनुत्पत्तौ प्रकारे सति। **एतस्मादिति**। एतस्माज्जायते प्राण इत्यादि। **स्मृतीति**। 'उद्बबर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम्। मनसश्चाप्यहंकारः अभिमन्तारमीश्वरम्। वैकारिकं तैजसं च तथाभूतादिमेव च। स एव च त्रिधा भूत्वा महदित्येव संस्थितम्। महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च। विषयाणां ग्रहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च' इति मनुस्मृतीत्यर्थः। **पुराणेति**। एकादशे चतुर्विंशे। आसीज्ज्ञानमयो ह्यर्थ इत्यादिष्वित्यर्थः। तयोरिति भाष्यं विवरीतुमाहुः **नचेति**। **आकाशादीति**। छान्दोग्ये तत्तेजोसृजतेत्यत्र तेजःपदे लक्षणया। **महेति**। तत्तेजोऽसृजत तदपोऽसृजतेति महाभूताधिकारः। विवृण्वन्ति स्म **तयोरग्र इति**। विज्ञानमनसोरग्रे वचनमित्यन्वयः **षोडशेति**। व्याख्यातैषा।

ञ्यम् । तयोरग्रे वचनमेव लिङ्गमिति,अतस्तयोरुत्पत्तिर्वक्तव्येति चेन्न अविशेषात् । नामरूपविशेषवतामेवोत्पत्तिरुच्यते, न त्वनयोः । विज्ञानमयस्य जीवत्वात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

तैत्तिरीये चानन्दमयनिकटे विज्ञानमयस्य दूरे मनोमयस्य कथनं लिङ्गम्, आकाशादिभूतघटितस्य प्राणमयस्य दूरत्वात्, भौतिकघटितस्यान्नमयस्य ततो दूरत्वाच्च, इदमपि लिङ्गमिति च । अतस्तयोर्जीवान्तःकरणयोरुत्पत्तिर्वक्तुं युक्तेति चेत् न, कुतः अविशेषात् । नामरूपात्मकविशेषवन्तो ये वर्तन्ते तेषामेवोत्पत्तिरुच्यते छान्दोग्ये तैत्तिरीये च, न त्वनयोर्भवदुक्तयोर्जीवान्तःकरणयोः । छान्दोग्ये जीवस्यात्मपदेन विशेषितत्वात्, भूतविकारात्मकमनःप्राणवाचामुक्त्या भवदुक्तेन्द्रियाणां चाभावात् । तैत्तिरीये च विज्ञानमयस्य जीवत्वात्, मनोमयस्य ऋगाद्यात्मकवेदत्वात्, अतः श्रुतिद्वयेऽपि जीववेदयोरेवाभिप्रेतत्वात् तयोश्च भूतभौतिकप्रवेशाभावाच्च तयोरुत्पत्तिर्वक्तव्येति सिद्धम् । न च छान्दोग्ये वेदोऽभिप्रेत इति कथं ज्ञेयमिति शङ्क्यम्, नामरूपव्याकरणरूपकार्येण तदवगमात् ।

'वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि ।
'धातुषूद्धव कल्प्यन्त एतेषां स्वार्थसिद्धये' ॥

रश्मिः ।

कथनं लिङ्गमिति । एतच्चैकवाक्यतया छान्दोग्यस्पष्टतायामप्युपयुज्यते । **आकाशे**ति । आकाशः आदिश्चासौ भूतः तद्घटितस्येत्यर्थः । **भौतिके**ति । त्रिवृत्कृततेजोऽब्घटितस्य । **ततः** प्राणमयात् । **इद**मिति । आकाशात्पूर्वं विज्ञानमयः । ततः पूर्वं मनः उक्तयुक्तेरिति छान्दोग्ये विज्ञानमनसोर्ग्रहणे लिङ्गमिति चेत्यर्थः । **अत** इत्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति **अत** इति । **अविशेषा**दिति । विज्ञानमनसोर्विशेषस्य नामरूपस्याभावात् । भाष्यमपि विवृतम् । **नामे**ति भाष्यं विवृण्वन्ति **नामे**ति । आत्मेति । **जीवेनात्मने**ति । आत्मपदेन यो जीवस्तस्य परिच्छेदाय जीवपदेन विशेषितत्वात् । विशेष्यविशेषणभावे कामचारो वा । **जीवः** कीदृक् । आत्मेति विशेषितत्वे मुक्तत्वप्रसंगः । न च जीवे आत्मत्वं चित्त्वं विधीयत इति वाच्यम् । इष्टापत्तेः । **भूते**ति । 'अन्नमय९हि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वाग्' इति श्रुतौ पृथिव्यप्तेजोविकारेत्यर्थः । **भवदुक्ते**ति । पूर्वपक्ष्युक्तमनउपलक्षितकरणकदम्बकस्य । विज्ञानमयस्येति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तैत्तिरीय** इति । **जीवत्वा**दिति । श्रद्धर्तसत्ययोगमहोवयवत्वश्रावणेन तथात्वात् । अवयवप्रयोजनं तु पञ्चानां मात्रवर्णिकसूत्र एवोक्तम् । **ऋगादी**ति । तदवयवग्रन्थात्तथा । एतेन **मनोमयस्ये**ति भाष्यं विवृतम् । **अत** इत्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति **अत** इति । छान्दोग्ये तैत्तिरीये श्रुतिद्वये । **वेद** इति । 'अन्नमय९हि सौम्य मन' इत्यत्र मनःपदेन । 'अनेन जीवेनात्मना' इत्यत्रात्मपदेन चित्त्वविधानाच्चिद्वेदः । 'नाम चिद्धिवक्तने'ति ऋग्वेदात् । अन्यथा सदानन्दरूपेण विराजि प्रवेशः । कथमिति । तैत्तिरीये तु तदवयवग्रन्थाज्ज्ञातमिति भावः । **नामरूपे**ति । 'सेयं देवतेमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत्' इति श्रुतेः । जीवेनार्थरूपेण तिरोहितानन्दसद्रूपेण । 'छिद्रा व्योम्नीव चेतना' इति वाक्यात् । तृतीयमिदंश आत्मनेत्यनेनोक्तः । **तद्वे**ति । आत्मपदेन चिदात्मकमनोमयत्वस्यापि सच्चिदानन्देऽपि जीवेऽवगमात् । एवं सत्युपबृंहणमप्याहुः **वेदे**नेति । एकदेशेऽस्ति । अर्थस्तु । नामरूपाणि वर्णाश्रमादीनि । धातुषु देहेषु । कल्पनाप्रयोजनमाहुः **स्वार्थे**ति । 'प्राणिनां स्वार्थसिद्धये'इत्येवम् ।

भाष्यप्रकाशः ।

इत्येकादशस्कन्धीयभगवद्वाक्येन तस्य तत्कार्यतानिश्चयात् । एवं च जीवस्य करणत्वं वेदस्य च द्वारत्वम्, तेनोभयोः कार्यं नामव्याकरणमिति निश्चयः । इदं च 'शब्द इति चेन्नातःप्रभवात्' इति सूत्रे सर्वैरङ्गीक्रियत इति नात्र विवादलेशः । एवं चास्मिन्नधिकरणे तैत्तिरीयोक्तौ विज्ञानमयमनोमयौ विषयः । क्वोत्पद्येते इति संदेहः । उत्पत्तिसामग्र्यनुक्ति-रुत्पन्नेषु पाठश्च संदेहबीजम् । तयोर्जीवान्तःकरणरूपत्वाच्छ्रुत्यन्तरे तयोः साक्षादुत्पत्तिकथना-दाकाशात् पूर्वं च कथनात् क्रमसृष्टावपि आकाशात् पूर्वं परमात्मनः सकाशात् ते अप्युत्पद्येते इति पूर्वः पक्षः । ते अत्र न जीवान्तःकरणरूपे किं तु जीववेदरूपे, तद्गमकस्य लाभात्, अतो न तयोरुत्पत्तिरत्राभिप्रेतेति सिद्धान्तः । ननु भवत्वेवं तथापि न्यूनांशपूरणाय क्रमसृष्टावपि प्राणे-न्द्रियमनसां क्वचिदुत्पत्तिस्तु वक्तव्येति चेत् । पुराणानां श्रुत्युपबृंहणत्वात् तदनुसारेणाकाशात् पूर्वमेव तत्तत्कारणभावापन्नाद् ब्रह्मण एवेति ज्ञातव्यम् ।

रश्मिः ।

तस्येत्यादि । नामरूप व्याकरणस्य वेदकार्यतानिश्चयात् । सोपबृंहणत्वान्निश्चयपदम् ननु । श्रुतौ जीवेनेत्युच्यते इति जीवस्य नामरूपव्याकरणं भवतु कार्यं कुतो वेदस्येत्याकाङ्क्षायामाहुः एवं जीव-स्येति । उक्तप्रकारेण जीवस्य । अयमर्थः । ब्रह्मस्वरूपात्मके ज्ञाने जीवानां प्रवेशः । सजातीयत्वात् । धर्मात्मकप्रकाशरूपेणाविर्भूते ज्ञाने जीवीयगुणचैतन्यप्रवेशः । इदमेव सृष्ट्यर्थं भवन्मनोमयादिप्रणाड्या वेदशरीरं गृह्णाति ।

'स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः ।
मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः' ॥

इत्येकादशस्कन्धात् । तथा च सा व्याकृता देवता ब्रह्माख्या जीवेन रूपेण प्रविश्य मनो-मयं रूपं गृहीत्वा मात्रादिक्रमेण वर्णात्मकनाम व्याकरोदिति श्रुत्यर्थाज्जीववेदयोः कार्यं नामेति । द्वारत्वमिति । नामोत्पत्तौ जीवस्य रूपान्तररूपं द्वारत्वम् । निश्चय इति । स एष इत्युक्तोप-बृंहणात् । अस्तु तर्हि नामोत्पत्तिर्मा नाम रूपोत्पत्तिर्भूत् द्वारस्य शब्दत्वाद्रूपस्यार्थत्वादित्याकाङ्क्षाया-माहुः इदं चेति । नामव्याकरणं चकाराद्रूपव्याकरणम् । सूत्रे तु प्रथमाध्यायस्य तृतीयपादे । विज्ञानेति । विज्ञानं च मनश्च विज्ञानमनसी द्वंद्वः । विज्ञानमनसोः प्राचुर्ये विज्ञानमनोमयौ द्वंद्वान्ते मयडुभयत्रेति विज्ञानमयमनोमयौ । क्वेति । आकाशादिभ्यः पूर्वं पश्चाद्वेति । उत्पन्ने-ष्विवति । अन्नमयादिषु । श्रुत्यन्तर इति । 'एतस्माज्जायते प्राणो मन' इति श्रुतौ मुण्डके प्राण-पदेन जीवस्य ग्रहणं वायुरूपप्राणस्य न वायुक्रिये इति सूत्रे निषिध्यमानत्वात् । एवं जीवोत्पत्तिरपि द्रष्टव्या 'सर्व एवात्मानो व्युच्चरन्ति'इति श्रुतौ । आकाशादिति । मुण्डके खपदेनोक्तात् पूर्वम् । तच्च स च ते । 'त्यदादितः शेषे पुंनपुंसकतो लिङ्गवचनानी'ति वार्तिके । पुंनपुंसकयोस्तु परत्वान्न-पुंसकं शिष्यत इति व्याख्यानात् । ते इति । विज्ञानमनसी । अत्रेति । छान्दोग्ये । तद्गमक-स्येति । नामरूपव्याकरणरूपस्य कार्यस्य सेयं देवतेति श्रुतौ लाभात् । सिद्धान्त इति । मुण्डके तु जीवान्तःकरणरूपे ज्ञेये जायत इति लिङ्गात् । अजायमानो बहुधा विजायत इत्यङ्गीकारे तु तत्र जीवे समागमरूपोत्पत्तिः । अन्तःकरणे तु जननरूपा । न जीववेदयोर्नित्यत्वे द्वैतमपि । जीवाना-मंशत्वेन सजातीयत्वाद्वेदस्य तद्रूपत्वात् । 'स एष जीव' इत्युपक्रम्य 'मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपम्'इत्ये-

भाष्यप्रकाशः।

रामानुजाचार्या विज्ञानभिक्षुश्चैवमेवाहुः ।

यत्तु शंकराचार्यभास्कराचार्याभ्यां 'बुद्धिं तु सारथिं विद्धि' इति, 'एतस्माज्जायते प्राणः' इति वाक्यद्वयं विषयत्वेन धृत्वा सूत्रस्थं विज्ञानपदं च करणव्युत्पत्त्या बुद्धीन्द्रियसंग्राहकं विधाय विज्ञानमनसी इति द्विवचनमुपपादितम्, ततोऽग्रे करणानां भौतिकत्वपक्षे तेनैव

रश्मिः।

कादशस्कन्धात् । न च शब्दस्यार्थेन द्वैतं । अधोक्षजत्वेन विशेषविचाराप्रवृत्तेः विरुद्धधर्माश्रयत्वाच्चेत्यन्यदेतत् । **वक्तव्येति** । 'एतस्माज्जायते प्राणः' इति । **पुराणानामिति** । 'तमोरजःसत्त्वमिति प्रकृतेरभवन्गुणाः । मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेन च । तेभ्यः समभवत्सूत्रं महान्सूत्रेण संयुतः । ततो विकुर्वतो जातो सोहंकारो विमोहनः । वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत् । तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः' इत्येकादशचतुर्विंशाध्यायवाक्यानाम् । अत्र तन्मात्राभूतसूक्ष्मावस्थाः शब्दादयः । तत्र पूर्वं मनइन्द्रियाणामुत्पत्तिः पश्चात्तन्मात्राणां सूक्ष्माणां भूतानां चोत्पत्तिः । विज्ञानोत्पत्तिर्ज्ञातव्या । 'अन्ने प्रलीयते मर्त्यमन्नं धानासु लीयते । धाना भूमौ प्रलीयन्ते भूमिर्गन्धे प्रलीयते । अप्सु प्रलीयते गन्ध आपश्च स्वगुणे रसे । लीयते ज्योतिषि रसो ज्योती रूपे प्रलीयते । रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सोऽपि चाम्बरे । अम्बरं शब्दतन्मात्र इन्द्रियाणि स्वयोनिषु[2] । योनिर्वैकारिके सौम्य लीयते मनसीश्वरे । शब्दो भूतादिर्महति[3]प्रभुः । स लीयते महान्स्वेषु गुणेषु[4] गुणवत्तमः । तेऽव्यक्ते संप्रलीयन्ते तत्काले लीयतेऽव्यये । कालो मायामये जीवे जीव आत्मनि मय्यजे । आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः' । इत्यत्र भूतेभ्यः पश्चात्प्राणेन्द्रियमनसां लयोक्तेः । 'विपर्ययेण क्रम' इति विपर्ययसूत्र उक्तम् । मर्त्यं शरीरं धानासु ओषधीषु लीयते । ओषधिमात्रं भवति । प्रलीयन्ते उप्ता अपि न प्ररोहन्ति । प्रलीयते सूक्ष्मा भवति । स्वयोनिषु राजसाहंकारे दिग्वातार्कप्रचेतोश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकमनोरूपासु देवतासु वा । योनिर्देवताः मनसीश्वरे देवनियामके । मनसो वशेऽन्ये ह्यभवन्स्म देवाः । मनो वैकारिके सात्वताहंकारे लीयत इति योजनीयम् । **भूतादिं तामसाहंकारम्** । प्रभुर्मोहकः स्वेषु क्रियाज्ञानादिषु । **अव्यक्ते** प्रधाने । मायामये विज्ञानमये । विकल्पापायाभ्यां विश्वोत्पत्तिप्रलयाभ्यां लभ्यत इति तथोक्तः । मुण्डके 'एतस्माज्जायते' इत्यत्र एतस्माद्ब्रह्मणः कारणात् प्राणादिकार्यं जायते इत्युक्तेः । ब्रह्मणः प्राणमनआदीनां साक्षात्कारणताबोधनादाहुः **तत्तदिति** । **एवेति** । अधिकांशस्य पौराणत्वेनैवकारः । **एवमेवाहुरिति** । एवं नाम मुण्डके न क्रमसृष्टिर्नापि विज्ञानमनसी उत्पद्येते एवम् । तथाहि—'एतस्माज्जायते प्राणः' इति श्रुतौ भूतप्राणयोरन्तराले विज्ञानमनसी उत्पद्येते क्रमेणेति चेन्नाविशेषात् । विज्ञानमनसोः खादीनां चोक्तश्रुतौ 'एतस्माज्जायते' इति ब्रह्मसाक्षात्संभवस्य संबन्धस्य प्राणादिषु तौल्यात् । अतो न क्रमसृष्टिर्मुण्डके किन्तु साक्षात्सृष्टिरित्याहुरित्यर्थः । **बुद्धिं त्विति** । 'मनः प्रग्रहमेव च । इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्' इति पादत्रयमितरत् । **उपेति** । अत्र भूतक्रम इन्द्रियक्रमेण विरुद्धो नवेति संशयेऽविरुद्ध इति चित् । इत्थं च बुद्धिवृत्तौ प्रसिद्धविज्ञाने पदविरोध इति करणव्युत्पत्त्योपपादितं द्विवचनम् । विज्ञायतेऽनेनेति विज्ञानमिति । तेषां सिद्धान्तमाहुः **ततोऽग्र इति** । **तेनैवेति** । भूतोत्पत्तिप्रलयक्रमेणैव ।

१. ओषधिषु । २. जीवेषु । ३. ज्ञानक्रियावेदार्थरूपप्रधाने । ४ वेदार्थरूपज्ञानक्रिययोः ।

भाष्यप्रकाशः।

निर्वाहान्न क्रमान्तरापेक्षा, अभौतिकत्वपक्षे तु भूतेभ्यः पूर्वमित्युक्तम्। तत् तदनुसारिणामेव रोचिष्णु। आद्यस्य काठकवाक्यस्योत्पत्तिप्रकरणीयत्वाभावेन विषयवाक्यत्वायोगात्, बुद्ध्यादीनां त्रयाणां तत्र पृथगुक्त्या सौत्रद्विवचनविरुद्धत्वाच्च। द्वितीयस्य मुण्डकवाक्यस्य च बुद्धिरहितत्वेनैव तथात्वाच्च। करणव्युत्पत्तेर्बुद्ध्यादित्रयसाधारण्येन सूत्रे मनःप्रयोगवैयर्थ्यापत्तेश्च। भौतिकेन्द्रियपक्षानादरणीयतायाः अस्माभिः प्रागुपपादितत्वेन तद्रीत्या छान्दोग्ये तन्निवेशस्याशक्यवचनतया, अभौतिकपक्षे चात्माकाशयोरन्तराले वा पश्चाद्वा तेषां प्राप्त्या सूत्रीयसिद्धान्तस्योपपत्तिशून्यतया शैथिल्यप्रसङ्गाच्च। न च 'प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीत् स आत्मानमैक्षत स मनोऽसृजत तन्मन एवासीत्तदात्मानमैक्षत तद्वाचमसृजत' इति श्रुत्यन्तरे पृथक्क्रमाम्नानात्, 'स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीमिन्द्रियं मनोऽन्नम्' इति प्रश्नोपनिषच्छ्रुतेश्च न शैथिल्यमिति वाच्यम्, तथा सति व्यासपादैः श्रुत्यन्तरेणाविशेषादित्येवमुच्येत।

रश्मिः।

अभौतिकेति। भूतत्वपक्षे। तन्मते प्रौढिरियम्। उत्पत्तीति। किन्तु जीवप्रकरणम्। 'योग्यं शरीरमारुह्य गच्छेदिति हरेः पदम्' इति। **त्रयाणा**मिति। बुद्धिमनइन्द्रियाणाम्। **तत्र पृथ**गिति। विषयवाक्ये। नच विज्ञानशब्देनैव बुद्धेरिन्द्रियाणां चाभिधानमिति शंक्यम्। युगपद्वृत्तिद्वयविरोधात्। गङ्गायां घोषमत्स्यौ स्तः। **विरुद्धे**ति। तथा च विषयवाक्यत्वायोग इति भावः। **तथात्वा**दिति। विषयवाक्यत्वायोगात्। भौतिकानीन्द्रियाणीति सिद्धान्तं दूषयन्ति **भौतिके**ति। **प्रा**गिति। सूत्रारम्भ एव न च मनस इत्यादिना। 'अन्नमयꣳहि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वाक्' इति श्रुतौ वाङ्मनसोर्भौतिकत्वमुक्तम्। तन्न। अन्नतेजसोर्मनोवाक्पोषकत्वमभिदधातीयम्। नैयायिका अपि भौतिकत्वमाहुः। राजसाहंकारकार्यत्वमिति सिद्धान्तः। **तद्रीत्ये**ति। तेषामनुमानरीत्या। प्राणेन्द्रियमनांसि भौतिकानि भूताधीनवृद्धिमत्त्वात् देहवदित्यनुमानरीत्याप्यशक्यवचनता। भौतिकत्वं च समवायिभूतजन्यत्वम्। प्राणादीनां समवाय्यपेक्षत्वात्। एवं च यद्भूताधीनवृद्धिमत्त्वं तद्भौतिकत्वमिति व्याप्त्या कुलालाधीनवृद्धिमति मृत्पिण्डे कुलालभूतसमवायिजन्यत्वापत्तिरतः साधारणोऽयं हेतुरिति। साधारण्यं कुलालाधीनवृद्धिमति मृत्पिण्डे बोध्यम्। **तन्नी**ति। 'तत्तेजोऽसृजत' इत्यादौ वाय्वाकाशयोर्लक्षणया स्वीकारान्नैयायिकरीत्या तद्भूते तत्तदिन्द्रियस्य भौतिकत्वेन निवेशस्य। **अभौतिके**ति। 'एतस्माज्जायते प्राणः' इति श्रौती प्राणादीनां खादिभ्यः पृथक् जन्मोक्तिर्भौतिकत्वं न सहत इति तदुक्ते प्रौढिवादरूपे। **आत्माकाशयो**रिति। 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः' इति श्रुत्युक्तयोः। **पश्चाद्वे**ति। आत्माकाशयोः पश्चात्। तथाधीनाग्रहसूचकं भाष्यं प्रथमं करणान्युत्पद्यन्ते चरमं भूतानि प्रथमं वा भूतान्युत्पद्यन्ते चरमं करणानीति। **सूत्रीये**ति। अन्तरा मध्ये विज्ञानमनसी इति सूत्रीयसिद्धान्तस्य स्वनिश्चयोपपत्तिशून्यतया। **अग्र** इति। स्थूलोत्पत्तेः प्राक्। **स** इति। शारीरः पुरुषः। **शैथिल्य**मिति। इन्द्रियाणां यत्र कुत्राप्युत्पत्तौ न शैथिल्यम्। भूतोत्पत्त्यादिक्रमः करणोत्पत्तिक्रमेण विरुध्यते नवेति सन्देहे 'एतस्माज्जायते प्राणः' इत्यत्र भूतानामात्मनश्चान्तराले करणानुक्रमाद्भूतोत्पत्तिप्रलयक्रमभङ्ग इति पूर्वपक्षे सूत्रं प्रववृते। अत्राहुः **तथा सती**ति। **श्रुत्यन्तरेणे**ति। **उच्येत** सूत्रमुच्येत। तथा च प्रजापतिर्वा **इति स** प्राणमिति च श्रुत्यन्तरं तेन इन्द्रियाणां यत्र कुत्राप्युत्पत्तावविशेषः। भूतोत्पत्तिक्रमविरोधाभावस्तस्मा-

मनोमयस्य च वेदत्वात् । अतो भूतभौतिकप्रवेशाभावान्न तयोरुत्पत्तिर्वक्तव्या ॥ १५ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

किंच एकस्यां सृष्टाविन्द्रियादीनां नानाविधाभिरुत्पत्तेर्वक्रमयुक्तत्वात् तत्तत्सृष्टौ तत्र तत्रोत्पत्तिरित्यङ्गीकार्यम्, तथा सति यथा साक्षात्सृष्टिक्रमसृष्ट्योः शब्दादेव संदेहाभावस्तथाऽत्रापीति सूत्रमनावश्यकं च स्यात् । अतस्तदविचारेऽपि शास्त्रे न्यूनत्वस्याभावात् प्रागुक्तमेव निरवद्यमिति दिक् ॥ १५ ॥

रश्मिः ।

दिति सूत्रार्थः । इदानीं सूत्रमेव नोच्येतेत्याहुः **किञ्चेति** । **नानेति** । नानाप्रकारैः । **अत्रापीति** । इन्द्रियसृष्टौ । नन्वस्त्वयं दूषणनिकुरम्बः शङ्करभाष्ये न तु तट्टीकायां । मुण्डके प्रौढिवादमङ्गीकृत्य भौतिकत्वपक्ष आदृतः । प्रजापतिर्वा इत्यत्र प्रजापतिः सूत्रात्माऽऽसीत् । अत्र सूक्ष्मभूतात्मकः प्रजापतिसर्गः प्रथमः ततो मनआदिसर्ग इति क्रमनिश्चयाङ्गीकारादिति चेन्न । मुण्डकश्रुतौ नैयायिकस्मृतिविरोधेन प्रौढिवादस्यान्याय्यत्वात् । तर्काप्रतिष्ठानसूत्रात् । अन्नमयतेजोमय्योर्मनोवाचोरभावस्य सूत्रारम्भ एवोपपादनात् । **तदविचार** इति । भौतिकाभौतिकत्वयोर्मध्ये वा पश्चाद्भेत्यस्य वा विचारे । **शास्त्र** इति । सृष्टिनिरूपकशास्त्रे सन्देहवारकेऽस्मिन्मीमांसाशास्त्रे वा यदि संदिग्धं न विचारयेत्तदा न्यूनत्वरूपं निग्रहस्थानस्य भावस्तस्मादित्यर्थः । **प्रागुक्तमिति** । विज्ञानमनसोर्नित्यत्वव्यवस्थापनं सूत्रानर्थक्यपरिहारकम् । **दिगिति** । विस्तरसंक्षेपस्तु प्रोच्यते । न च–'तस्माद्विराडजायत विराजो अधिपूरुषः' इति पुरुषसूक्ते पूर्वोक्तसहस्रशीर्षेण विराज उत्पत्तिरुक्ता सा कुत्रेति शंक्यम् । 'तस्मादण्डाद्विराड् जज्ञे भूतेन्द्रियगुणात्मकः' इति द्वितीयस्कन्धे षष्ठाध्याये तद्विवरणे भूतपदेन महाभूतासंग्रहात्प्राणेन्द्रियमनःसृष्ट्युत्तरं पञ्चमहाभूतसृष्टिस्ते च विभूतयः । 'एते देवाः कला विष्णो'रिति तृतीयस्कन्धे पञ्चमाध्याये वाक्यात् । 'तदुत्तरं विराड् जज्ञे भूतेन्द्रियगुणात्मकः । ततस्तदधिपुरुषः स्वराडात्मेति ज्ञायते' । अत्र श्लोके–भूतान्यधिभूतं द्रव्यम् । इन्द्रियाणि अध्यात्मम् । गुणा आधिदैवमिति । अयमर्थः सुबोधिन्याः प्रथमवर्णके । द्वितीये तु । भूतानि महाभूतानि । इन्द्रियाणि शब्दादयश्च विषयाः । शरीरेन्द्रियैर्विषयभोगकर्तेत्यर्थ उक्तस्तस्मिन्पक्षे महाभूतोत्पत्त्यैव विराडुत्पत्तिः समर्थितेति न पृथक्त्वसमर्थनापेक्षा अस्मिन्वर्णके । 'किं तदानीं तस्मै सहोवाच न सन्नासन्न सदसदिति तस्मात्तमः संजायते तमसि भूतादिः भूतादेराकाशः, आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी तदण्डं समभवत् । मध्ये पुरुषो दिव्यः सहस्रशीर्षेति सुबालोपनिषदप्यनुकूलीभवति । अत्र तमो माया । माया च तमोरूपेति नृसिंहतापनीयश्रुतेः । भूतादि तन्मात्राः । भूतानामादिः इति व्युत्पत्तेः । एतच्च द्वितीयस्कन्धे तामसादपि भूतादेरित्यत्र निरूपितम् । पञ्चमाध्याये–अत्र चतुर्दशभुवनान्यङ्गतां भजन्ते ।

> पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम् ।
> महातलं विश्वसृजोथ गुल्फौ, तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे ।
> द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरुद्वयं वितलं चातलं च ।
> महीतलं तज्जघनं महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ॥
> उरस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोस्य ।
> तपोरराटीं विदुरादिपुंसः सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः' ।

इति द्वितीयस्कन्धात् । इदं विष्णो रूपं 'पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च' इत्यग्रे

चराचरव्यपाश्रयस्तु स्यात् तद्व्यपदेशो भाक्तस्तद्भावभावित्वात् ॥ १६ ॥

ननु विज्ञानमयस्य जीवस्यानुत्पत्तौ सर्वव्यवहारोच्छेदः । उत्पत्तिस्तु

भाष्यप्रकाशः ।

चराचरव्यपाश्रयस्तु स्यात् तद्व्यपदेशो भाक्तस्तद्भावभावित्वात् ॥ १६ ॥

जीवाद्यनुत्पत्तावेव किञ्चिदाशङ्क्य परिहरतीत्याशयेन सूत्रमुपन्यस्य व्याकुर्वन्ति । **नन्वि-त्यादि** । जीवस्येत्युपलक्षणम्, पूर्वसूत्रे वेदस्यापि विचार्यत्वेनोपक्षिप्तत्वात्, अतो **विज्ञानमयस्य**

रश्मिः ।

विष्णुपदप्रयोगात् । कालरूपस्य यज्ञरूपस्य वेति विष्णोरित्यस्य व्याख्यानाच्च । 'कालोऽस्मी'ति गीतावाक्यात् पुरुषाभेदेन व्याख्याने कथनाच्च । **माध्वास्तु** इदं रूपं सृष्टतादिकर्तृ ब्रह्म चेतीति । 'नात्माश्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्य' इति सूत्रे तथा दर्शनात् । 'कस्तस्य मेढ्रं सर्वात्मनोन्तःकरणं गिरित्रमि'ति ब्रह्मशिवयोस्तदनु पुरुषस्य नाभ्यान्नलिनात् जन्म ब्रह्मणः । तस्य भ्रुवोर्मध्याद्रुद्रस्य जन्मेति गुणत्रयाभिमानिनो देवाः । तदुक्तं द्वितीयस्कन्धे 'सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः । विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक्' इति ब्रह्मवाक्ये । ततो ब्रह्मणोन्ध-तामिस्रादिकं सनकादिकं रुद्रश्च मरीच्यादिकं च जातम् । तदेतत्तृतीयस्कन्धे द्वादशेऽध्यायेऽस्ति । 'ततः प्रजाभिः प्रार्थितः पृथुः । समां पृथिवीं कृपया यतनादिकमचीकरत् । चूर्णयन् स्वधनुःकोट्या गिरिकूटानि राजराट् । भूमण्डलमिदं वैन्यः प्रायश्चक्रे समं विभुः । अथास्मिन्भगवान्वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता । निवासान्कल्पयांचक्रे तत्र तत्र यथार्हतः । ग्रामान् पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च । घोषान् व्रजान् सशिबिरान् आकरान् खेटखर्वटान् । प्राक् पृथोरिह नैवैषा पुरग्रामादिकल्पना । यथासुखं वसन्ति स्म तत्र तत्राऽकुतोभयाः' इति चतुर्थस्कन्धीयाष्टादशाध्यायवाक्यात् । चतुर्दशलोकानां मर्यादापालनं पञ्चमस्कन्धे । तृतीयस्कन्धपञ्चमाध्याये तथैव दर्शनात् । किञ्चातलादिषु सप्तसु अतले आयुश्चतुर्दश-वर्षाणि । वितले द्वादशवर्षाणि । सुतले दशवर्षाणि । तलातलेऽष्ट । महातले षट् । रसातले चत्वारि । पाताले द्वे वर्षे इत्यायुर्विभागः स्वीकर्तव्यः । एकादशेऽपि । 'देवानामोक आसीत्स्वर्भूतानां च भुवः पदं । मर्त्यादीनां च भूर्लोकः सिद्धानां त्रितयात्परम् । अधोऽसुराणां नागानां भूमेरोकोऽसृजत्प्रभुः । त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मिणां त्रिगुणात्मनाम् । योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः । महर्जनस्तपः सत्यं भक्तियोगस्य मद्गति'रिति चतुर्विंशे । एवं शब्दादयस्तन्मात्रापि तत्तन्महाभूतेभ्यः पूर्वमुत्पन्ना वेदितव्याः । एकाविंशाद्यध्यायेषु द्युमर्यादापालनम् । चतुर्विंशे अतलादिमर्यादापालनं तु स्फुटतरम् । एवं सत्यलोकेऽभयं तपोलोके क्षेमः जनलोकेऽमृतम् । 'अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायि मूर्धसु' इति द्वितीयस्कन्धात् । महर्लोकादारभ्य भूर्लोकपर्यन्तं दुःखसंमिश्रं सुखम् । 'यान्त्यूष्मणा महर्लोकाज्जना भृग्वादयोर्दिता' इति वाक्यात् । स्वर्गादौ दुःखदर्शनाच्च । अतलादौ तु मायिकमेव विषयसुखमिति चतुर्विंश एवोक्तम् । प्रश्नोपनिषदि गार्ग्यप्रश्ने । 'पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशं चाकाशमात्रा चे'ति तन्मात्राणां पृथक्श्रवणात् । इति विस्तरे संक्षेपः ॥ १५ ॥

चराचरव्यपाश्रयस्तु स्यात्तद्व्यपदेशो भाक्तस्तद्भावभावित्वात् ॥ १६ ॥

जीवादीति । जीवत्वेन जीवग्रहणम् । तेन विराड्जीवस्तु भोगभुगिति विराड्जीवस्यापि ग्रहणम् । सूत्रे **चराचरव्यपाश्रयपदात्** । अनेनैव पदेन ब्रह्माण्डस्य तृतीयं सर्वभूतस्वरूपमुद्देशेन कीर्तितम् ।

त्रिविधा निरूपिता । 'अनित्ये जननं नित्ये परिच्छिन्ने समागमः' इति । तथाच जीवस्य समागमलक्षणाऽप्युत्पत्तिर्न स्यादितीमामाशङ्कां निराकरोति तुशब्दः । चराचरे स्थावरजङ्गमे शरीरे तयोर्विशेषेणापाश्रय आश्रयः शरीरसंबन्ध इति यावत् । स तु स्यात् । न तु स्वतः । ननु शरीरस्योत्पत्तौ जीवोऽप्युत्पद्यते ।

भाष्यप्रकाशः ।

मनोमयस्य चानुत्पत्तौ सर्वव्यवहारोच्छेदः । न हि जीवानुत्पादे कश्चित् संसारासक्तो वा मुमुक्षुर्वा प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षणकर्मज्ञानभक्त्यधिकारी भवेत्, तदभावे च लोकयात्रा तत्तत्पुरुषार्थोपायबोधकानि शास्त्राणि चोच्छिद्येरन् । न वा वेदस्यानुत्पत्तौ धर्माधर्मादिकमसंकीर्णमवगन्तुं शक्येत, तदभावे लोकमर्यादाऽप्युच्छिद्येत, एवं सर्वव्यवहारोच्छेद उभयत्रापि समान इति पृथक् तदनुक्तिः । नच नामरूपसंबन्धात्मिका या उत्पत्तिः सैवात्र निषिध्यते नेतरेत्यतो न दोष इति वाच्यं, उत्पत्तिस्तु पूर्वं त्रिविधा निरूपिता 'अनित्ये जननं नित्ये परिच्छिन्ने समागमः' इत्यादि, सन्नियोगशिष्टासु तिसृष्वेकतरैव निषिध्यते नेतरे इत्यत्र विनिगमकाभावात् **तथाच जीवस्य समागमलक्षणाऽप्युत्पत्तिर्न स्यादितीमामाशङ्का**मित्यर्थः । **शरीरे** इति प्रथमायाः **तयो**रिति सप्तम्या द्विवचनम् । **स तु स्या**दिति जायमानः शरीरमभिसंपद्यमान उत्क्रामन्म्रियमाण इति श्रुत्या देहसंबन्धेनैव तयोरुक्तत्वाद्देहसंबन्धस्तु स्यादित्यर्थः । नच वेदस्य न शरीरसंबन्ध इति शङ्क्यं, नादात्मना सर्वशरीरेषु तस्यैव विद्यमानत्वात्, तदुक्तमेकादशस्कन्धे भगवता 'स एष जीवो विवरप्रसूतिः' इत्यादिद्वयेन ।

रश्मिः ।

देवदत्तो जातो विष्णुमित्रो जात इति भाष्यात् । आदिशब्देन मनोमयो वेदः । व्याकुर्वन्ति **स्म नहीति** । **असंकीर्ण**मिति वेदोक्तप्रकारेणासंदिग्धम् । **लोके**ति । मनुष्याणां मध्ये ब्राह्मणानां वेदाध्ययनादयः । क्षत्रियाणां अध्ययनदानयजनानि युद्धापलायनादयश्च । वैश्यानां अध्ययनदानयजनानीति वाणिज्यादयश्च । शूद्राणां सेवादयः । स्त्रीणां पतिशुश्रूषादयो धर्मास्तैरेव कर्तव्या इति मर्यादा । **पृथ**गिति विज्ञानमयात्पृथङ्मनोमयानुक्तिः । **उत्पत्तिरि**त्यादि भाष्यं विवरीतुमाहुः **नचे**ति । **अत्रे**ति भाक्तपदेन निषिध्यते नाद्यक्षणसंबन्धरूपा समागमरूपा वा**तो न दोषः** सर्वव्यवहारोच्छेदरूपः । भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **उत्पत्तिरि**ति । **पूर्व**मिति 'न वियदश्रुतेः' इति सूत्रे । **इत्यादी**ति । 'नित्यापरिच्छिन्नतनौ प्राकट्यं चेति सा त्रिधा' इत्यादिशब्दार्थः । **तथा चे**ति भाष्यं विवरीतुं **त्रिविधे**ति भाष्यपदतात्पर्यमाहुः **सन्नि**ति हेतुगर्भविशेषणम् । यद्वा । उत्पत्तयोऽनेकविधाः । नामरूपसंबन्धः । आद्यक्षणसंबन्धः । प्रथमज्ञप्तिः । आत्मतया शरीरस्वीकृतिः । जननम् । समागमः प्राकट्यम् । आविर्भावभेदाः । तद्व्यावर्तकं विशेषणमेक**तरे**ति । ननु बहूनां निर्धारणे डतमच् प्राप्तः । मैवम् । 'एकाच्च प्राचाम्' इति सूत्रेण डतरच् । यद्यप्युदाहरणेऽनयोरेकतरो मैत्रः एषामेकतम इति बहूनां निर्धारणे डतमजुदाहृतः । द्वयोर्निर्धारणे डतरच् तथापि द्वयोरित्युपलक्षणम् । प्रत्यय इति सूत्रे बहुष्वासीनेषु कश्चित् कंचित्पृच्छति कतरो देवदत्त इति महाभाष्यात् । अतो द्वयोर्बहूनां वा मध्ये एकस्य निर्धारणे डतरच् । अयं न हेतुः किंतु ल्यबन्तम् । **इति निरूपिते**ति भाष्ये इत्येवं निरूपितेत्यर्थे हेत्वनन्वयात् । तथा चेत्यग्रेतनभाष्यस्य जीवस्यानुत्पत्तौ

अन्यथा जातकर्मादीनामभावप्रसङ्गादितिचेन्न । तद्व्यपदेशस्तस्य शरीरस्य जन्ममरणधर्मवत्त्वेन जीवव्यपदेशो भाक्तो लाक्षणिकः । कुतः । तद्भावभावित्वात् । शरीरस्यान्वयव्यतिरेकाभ्यामेव जीवस्य तद्भावित्वम् । देहधर्मो जीवस्य भाक्तः । तत्संबन्धेनैवोत्पत्तिव्यपदेश इति सिद्धम् ॥ १६ ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयपादे नवममन्तरा विज्ञानमनसीत्यधिकरणम् ॥ ९ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

तस्य शरीरस्येत्यादि । शरीरस्य जन्ममरणवत्त्वेन जीवे तस्य जन्ममरणवत्त्वस्य **व्यपदेशो भाक्तो लाक्षणिक** इति योजना । पृच्छति **कुत** इति, लक्षणारूपात् कस्मात् संबन्धात् । **तद्भावभावित्वादिति** तद्भावेन शरीरभावेन शरीराभिमानेनेति यावत्, तेन भवति व्याप्त्तिष्ठति तच्छीलस्तद्भावभावी तत्त्वात् । तथाच शरीराभिमानरूपात् संबन्धादित्यर्थः । तदाहुः **शरीरस्येत्यादि** । **तद्भावित्वमिति** तदभिमानित्वम् । सिद्धमाहुः **देहेत्यादि** । **तत्सं-**

रश्मिः ।

सत्यामित्यर्थान्न हेत्वपेक्षाभावात् । **तथाच** । तथाचेति भाष्याग्रे ल्यबन्तं हेतुं वा पूरयित्वा भाष्यं व्याख्येयम् । तथाच सन्नियोगशिष्टास्वित्यादिल्यबन्ताद्धेतोर्वा जीवस्य समागमलक्षणाप्युत्पत्तिर्न स्यादितीमामाशङ्कामित्यर्थ इत्यर्थः । **शरीरे** इति । **चराचरेत्यादिभाष्ये** । भाष्ये । **अपाश्रय** इत्यस्याश्रयोऽर्थः अपपरी अनर्थकाविति सूत्रात् । **तयोरिति** जन्ममरणयोः । **इत्यर्थ** इति । तथा च देहसंबन्धो जन्मरूपः स्यान्नतु स्वतो जननमिति भाष्यार्थः । **भाष्ये** । **जातकर्मादीना**मिति । जातस्य नाभौ यज्ञोपवीतनिक्षेपः स्पर्शः स्नानादिकर्म । **आदिशब्देन** अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः, 'षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्या यथाकुलम्' इति याज्ञवल्क्योक्तनामकरणादि । निष्क्रमः, शुभर्क्षतिथिवारयोगे कुमारमलंकृत्य मङ्गलतूर्यघोषैर्देवालयगङ्गादितीरप्रशस्तारामबन्धुगृहाणामन्यतमस्थानं गत्वा तद्दत्तं सगुडादिद्रव्ययुतकांस्यपात्रादिशकुनादिकं गृहीत्वा गृहमागत्य पुण्याहवाचनम् । चूडाकरणं तु पुण्याहवाचनं केशवपनमध्यं ब्राह्मणभोजनान्तमित्यापस्तम्बानां विश्वप्रकाशे स्फुटम् । प्रकृते । **स एवेति** । दृष्टान्तसहितवर्णनार्थे **द्वयेन** । 'यथाऽनलः खेऽनिलबन्धुरूष्मा बलेन दारुण्यभिमथ्यमानः । तथैव मे व्यक्तिरियं हि वाणी' इति द्वितीयः । पूर्वत्रोष्मस्थानापन्नो घोषो नाद इति तथा । यथोष्मा काष्ठनिष्ठोग्निरणुप्रजातस्तदनन्तरं हविषा समिध्यते, ततोऽनिलबन्धुः सन्ननलः खे महानग्निरिति योजना । **व्यपदेश** इति 'ततो विराडजायत' 'दग्धगोमयपिण्डवत्' इति मृतः । देवदत्तो जातो मृत इत्ययम् । तथा च जीवीयजन्ममरणयोर्व्यपदेशस्तद्व्यपदेश इति समासः । यदि च व्यपदेशशब्दो जन्ममरणव्यपदेशं ब्रूते तदा तु जीवे व्यपदेशस्तद्व्यपदेश इति समस्तं पदम् । **तस्येति** इति तु व्याख्येयम् । जन्ममरणवत्त्वसापेक्षमेकवचनमिति चोक्तद्विवचनविरोधः । **पृच्छतीति** लाक्षणिकत्वनियामकं संबन्धं पृच्छति । **लक्षणेति** लक्षणा शक्यसंबन्धः स कः संबन्ध इति प्रश्नः । अस्मात्संबन्धाल्लाक्षणिक इत्यर्थः । **यावदिति** पुरुषविधब्राह्मणे 'ततोऽहंनामाभवत्' इति श्रुतेस्तदंशेष्वपि तथेति । **भवतीति** भवत इति पाठः । भूङ् प्राप्ताविति धातुपाठात् आत्मनेपदी धातुः । धातूनामनेकार्थत्वाद्वा भू सत्तायां परस्मैपदी प्रयुक्तः । **तद्भावभावीति** । 'सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' इति सूत्रेण ताच्छील्ये णिनिः । **तत्त्वादिति** तद्भावभावित्वात् । **शरीरस्ये-**

भाष्यप्रकाशः ।

बन्धेनेति देहसंबन्धेन । एवमेव वेदेऽपि समानन्यायाद् बोध्यम् । एवं च चराचरव्यपाश्रयस्तु स्यादिति भिन्नं वाक्यं, शिष्टं वाक्यान्तरम् ।

भास्कराचार्यास्तु चरे अचर उद्गत इति गौणत्वसिद्धिरित्यर्थं वदन्तश्चरे अचरस्य व्यपाश्रय इत्येवं समासं कृत्वा, अन्ये तु, चराचरं व्यपाश्रयो यस्येति बहुव्रीहिं कृत्वा चराचरव्यपाश्रयपदं उत्पत्तिनाशव्यपदेशस्य भाक्तत्वे हेतुत्वेन व्याकुर्वन्ति । तद्भावभावित्वादिति तु शरीरसद्भावे जन्ममरणयोर्भावित्वादित्येवं ताच्छील्ये णिनिमङ्गीकृत्य व्याकुर्वन्ति, तथा सति तद्भावभावित्वाच्चराचरव्यपाश्रयस्तद्व्यपदेशो भाक्तः स्यादित्येकमेव वाक्यं भवति । तन्न सूत्रकृतोऽभिप्रेतमिति प्रतिभाति । स्यात्पदस्य मध्ये पाठात्, अभिमानेन वा समागमेन वा जीवशरीरयोः संबन्धस्य सर्वेषामावश्यकत्वाच्च वाक्यद्वयपक्ष एव साधीयानिति ।

रश्मिः ।

स्यादीति । यत्सत्त्वे यत्सत्त्वमन्वयः । यदभावे यदभावो व्यतिरेकः । किंच । शरीरस्यान्वयः समवायी रेतआदिः । व्यतिरेको निमित्तम्, देहकारणव्यतिरिक्तं वा परमाण्वादि, ताभ्यामेव जीवस्य तद्भावित्वं देहाभिमानित्वं देहाध्यास इति भाष्यार्थः ।

'चरमः सद्विशेषाणामनेकः संयुतः सदा । परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः ॥'

इति वाक्यात् । अर्थस्तु उभयथापि न कर्मातस्तदभाव इति सूत्र उक्तः । **समानेति** **समानन्यायादिति** । समानन्यायाभावेतिदेशाधिकरणानवतारान्मीमांसायामस्य प्रसिद्धिः । नादात्मना सकलदेहेषु वेदस्य नित्यस्य विद्यमानत्वाज्जीवसमानन्यायोऽवतरति तस्मादित्यर्थः । **एवं चेति** । **स्यादित्यन्ते** पूर्वपक्षे च **भिन्नं वाक्यमिति** । स्यादिति तिङ्साहित्यादिति भावः । एकतिङ्वाक्यमिति लक्षणात् । एकवाक्यतापक्षं त्वग्रे दूषयिष्यन्ति । एकवाक्यतया व्याख्यातॄनन्यथा पर्यनुयुञ्जते **स भास्करेति** । **चर** इत्यादि **चरे** जीवेऽ**चरो** जड उद्गतो जातः । **इत्यर्थमिति** चराचरव्यपाश्रय इति सूत्रांशार्थं वदन्त इत्यर्थः । **अन्ये** त्विति शांकराः । **यस्येति** उत्पत्तिनाशव्यपदेशस्य । **हेतुत्वेनेति** भाक्तस्त्वेष जीवस्य जन्ममरणव्यपदेशः । किमाश्रयः पुनरयं मुख्यो यदपेक्षया भाक्त इत्यत उच्यते । चराचरव्यपाश्रयजातो देवदत्तो मृतो देवदत्त इत्यत्र लोके स्थावरजङ्गमशरीरविषयौ **जन्ममरणशब्दौ** । स्थावरजङ्गमानि हि भूतानि जायन्ते च म्रियन्ते चातस्तद्विषयौ जन्ममरणशब्दौ मुख्यौ सन्तौ तत्स्थे जीवात्मन्युपचर्येते इत्येवं भाक्तत्वे लक्षणायां हेतुः । शक्तं पदम्, तत्त्वं च शक्यार्थस्तेन व्याकुर्वन्तीत्यर्थः । **भावित्वादिति** भवतस्तच्छीले भाविनी, तयोर्भावो भावित्वं तस्मात् । **तद्भावेति** । शरीरान्वयव्यतिरेकाच्चराचरव्यपाश्रयो जन्ममरणधर्मव्यपदेशोतः शक्यार्थलाभात्तस्य धर्मस्य व्यपदेशो जीवे भाक्तः स्यादित्यर्थः । **मध्य** इति । तथा च स्वारसिकान्वयाभावो दूरान्वयश्च दोषौ स्यातामिति भावः । अतो नाभिप्रेतम् । **अभीति** देहे समागमज्ञानतिरोभावकेन । **समेति** । मुक्तदेहे प्रकटत्वादुभयत्र भेदेनोक्तिः । **संबन्धस्येति** अभिमानरूपस्य, अध्यासस्येति यावत् । **आवश्यकेति** देवदत्तो जातो मृतश्चेत्यादावावश्यकत्वात् । यतश्चरवाचकपदस्य शरीरे संबन्ध एव तद्धर्मयोर्जन्ममरणयोर्जीवे व्यपदेशः स च भाक्तः । यथा गङ्गापदार्थसंबन्धादेव गङ्गापदस्य तीरे प्रयोगः । तदर्थधर्मस्य शैत्यपावनत्वादेर्व्यपदेशो भाक्तश्च भवति । **एवेति** । पूर्वपक्षबोधकसूत्रे संभावनार्थकलिङन्तधातुप्रयोगस्यावश्यकत्वात् । सिद्धान्त-

भाष्यप्रकाशः ।

भिक्षुस्तु अन्तःकरणस्य रूपभेदेनाकाशवन्नित्यानित्यत्वं स्वीकृत्यात्र नित्यान्तःकरणस्याभिप्रेतत्वात् तदुत्पत्तिव्यपदेशो भाक्त इत्येवमर्थमाह । तदस्माकमप्यभिमतम् । परं यन्नित्यत्वेन तस्याभिमतं तदस्माकं वेदसूक्ष्मरूपत्वेन भगवदीयत्वेन, न तु तत्त्वान्तरत्वेनेति विशेषः ।

रामानुजाचार्यास्तु इदं सूत्रं प्रासङ्गिकत्वेनेच्छन्ति, तथाहि 'पूर्वं तेज ऐक्षत' इत्यादौ तेजःप्रभृतयः शब्दाः ब्रह्मैवाभिदधतीत्युक्तम् । तथा सति तैस्तैः शब्दैस्तत्तद्व्यपदेश उपरुध्यत इति शङ्कायां चराचरसूत्रं प्रववृते । अर्थस्तु, चराचरव्यपाश्रयस्तत्तद्व्यपदेशो भाक्तः लोके वाच्यैकदेशे भङ्क्त्वोक्त इत्यर्थः । समस्तप्रकारिणो ब्रह्मणः प्रकारभूतवस्तुग्राहिप्रज्ञादिप्रमाणाविषयत्वाद् वेदान्तश्रवणात् प्रकारप्रकारिप्रतीतेः प्रकारिप्रतीतिभावभावित्वाच्च तत्पर्यवसानस्येति । यद्वा, तेजआदयः शब्दास्तत्तद्वाचका इति तेषां ब्रह्मवाचकत्वं भाक्तमित्यत आह चराचरेति । चराचरव्यपाश्रयस्तद्व्यपदेशश्चराचरवाचिशब्दप्रयोगो ब्रह्मण्यभाक्तः । कुतः तद्भावभावित्वात्, सर्वशब्दानां वाचकभावस्य नामरूपव्याकरणश्रुत्या ब्रह्मभावभावित्वादिति द्विधा व्याख्यानात् । अत्रोदासीना वयम् ।

माध्वास्तूक्तसूत्रद्वयात्मकमधिकरणं लयक्रमविचारपरमिच्छन्ति । तत्रापि वयं तथैव ॥१६॥

इति नवमं अन्तरा विज्ञानमनसीत्यधिकरणम् ॥ ९ ॥

रश्मिः ।

सूत्रांशे त्वस्तीत्यपेक्षणेन संभावनार्थकलिङन्तधात्वनपेक्षणात् विध्याद्यर्थासंभवाच्च । न चास्तीत्यध्याहर्तव्यम् । गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तीनां निमित्तमिति व्याकरणसिद्धान्तात् । जातकर्मादिशास्त्रस्यापि भाक्तजन्मादीति न पूर्वपक्षोक्तदोषः । तथा च दोषबाहुल्यादेकवाक्यत्वपक्ष इत्येवकारः । **आकाशे**ति । भगवान् अयमाकाशस्य नित्यत्वानित्यत्वे स्वीकरोतीत्युक्तं 'यावद्विकार'-सूत्रे । **वेदसूक्ष्मे**ति । 'मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपम्'इति वाक्यात् । **भगे**ति । 'मनस उत ये मनो विदु'रिति श्रुतेः । **पूर्व**मिति अन्तरासूत्रे । **तेजः**प्रेति तेजोबन्नानि । **तत्त**दिति तेजआदिव्यपदेशः । **चराचरे**ति चराचरप्रतिपादकः । **भाक्त** इति ब्रह्मणि भाक्तः । **वाच्ये**ति । वाच्यं ब्रह्म, तदेकदेशः शरीरं तत्र भंक्त्वा आमर्द्य । **समस्ते**ति समस्तं चराचरं प्रकारः शरीरं तदस्यास्तीति तथोक्तम् । **तस्य** ब्रह्मणः । **प्रकारे**ति । प्रकारभूतं वस्तु चिदचिच्छरीररूपं तद्ग्राहिप्रज्ञादि प्रमाणं तद्विषयत्वं ब्रह्मणस्तत्त्वात् । **वेदान्ते**ति । अन्तर्यामिब्राह्मणात् प्रकारप्रकारिविषयिण्याः प्रतीतेर्भावभाविनोः प्रकारप्रकारिणोर्विषययोर्भावात् विषयत्वात् । **तत्परी**ति तेजआदिशब्दानां प्रकारपर्यवसानस्य । **चराचरे**ति व्यस्तमपि समस्तेन व्याख्यातम् । **वाची**ति व्यपाश्रयपदार्थः । **शब्दे**ति तत्पदार्थः । **नामरूपे**ति वाच्यं रूपं वाचकं नाम । श्रुतिस्तु 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' इति । **ब्रह्मभावे**ति ब्रह्मभावो न जीवः तत्त्वमसीत्यत्र तस्य भाव इति व्याख्यानात् । तेन भावित्वात् । देवदत्तो विष्णुमित्र इति । **व्याख्याना**दिति इच्छन्तीति पूर्वेणान्वयः । **अत्रे**ति सिद्धान्तस्यास्य 'आकाशस्तल्लिङ्गात्' इति सूत्र एवोक्तत्वेन तथा । **तथे**ति अधिभूतादीनि सर्वाण्युत्पत्तिक्रमवैपरीत्येन लीयन्ते कानिचित्क्रमेण वेति संदेहे सर्वेषां न व्युत्क्रमेण लयः किंतु केषांचित्क्रमात्केषांचिद्व्युत्क्रमादिति पूर्वपक्षे, सर्वेषां व्युत्क्रमेणेति सिद्धान्तः । पूर्वसूत्रे 'विपर्ययेण तु क्रमः' इत्युक्त्वा

नात्माऽश्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः ॥ १७ ॥ (२-३-१०)

नन्तु जीवोऽप्युत्पद्यतां, किमिति भाक्तत्वं कल्प्यत इति चेत् न । आत्मा नोत्पद्यते । कुतः । अश्रुतेः । न हि आत्मन उत्पत्तिः श्रूयते देवदत्तो जातो,

भाष्यप्रकाशः ।

नात्माऽश्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः ॥ १७ ॥ पूर्वाधिकरणे जीवस्य नामरूपविशेषसंबन्धाभावाज्जीवस्य नोत्पत्तिरित्युक्तम् । तद्युक्तं न वेति संदेहे देवदत्तादिनाम जीवस्यैव, न शरीरमात्रस्य, मृते देवदत्ते तदीयगयाश्राद्धादिकरणानुपपत्तेः । एवं नामसंबन्धे तत्र सिद्धे सोऽप्युत्पद्यतां तदेतदाहुः **ननु जीवोपीत्यादि** । समाधिं व्याकुर्वन्ति **नेत्यादि** । तथाच 'अङ्गादङ्गात् संभवसि हृदयादधि जायसे आत्मा वै पुत्रनामासि त्वं जीव शरदः शतम्' इत्यादिश्रुतिविचारे लोकविचारे च देहस्यैवोत्पत्तिः । श्राद्धादिशास्त्रे तु देवदत्तादिदेहोपलक्षितो

रश्मिः ।

'अन्तरा विज्ञानमनसी क्रमेण'इत्युक्त्या पूर्वपक्षः सूचितः । प्राणात्मनो मनसश्च विज्ञानम् । 'यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञानमात्मनि'इति तल्लिङ्गाद्विज्ञानमनस्यन्तरा विपरीतक्रम इति चेदिति भाष्येण । अत्र प्राणात्मन इत्यस्याग्निर्वाग्भूत्वेति श्रुत्युक्तोऽग्निः । 'एष प्राण उदेति'इति श्रुतेः । एष सूर्यः । सूर्योग्निरस्त्येव । विज्ञानं तु प्राज्ञपदलभ्यम् । यच्छेद्द्यात् । विज्ञानमनस्यन्तरेति छान्दसः संधिः । **अविशेषादित्यनेन** सिद्धान्तः सूचितः । न विशेषप्रमाणाभावादिति भाष्येण । एवं द्वितीयसूत्रार्थोपि विमर्शनीयः । तथाहि । मनसश्च विज्ञानमिति व्यपदेशश्चराचरेष्वालोचनाद्विज्ञानं भवतीति भागापेक्षया स्यात् । न विज्ञानतत्त्वापेक्षया । स्कान्दे च 'पराद्व्यक्तमुत्पन्नमव्यक्तं तु महांस्तथा । विज्ञानतत्त्वं महतः समुत्पन्नं चतुर्मुखात् । विज्ञानतत्त्वात्तु मनो मनस्तत्त्वाच्च खादिकम् । एवं बाह्यापरा सृष्टिरन्तस्तद्वत्त्यपेक्षया । विपरीतक्रमो ज्ञेयो यस्माद् दत्ते हरेर्दृशि'रिति । **तथैवेति** । भाष्येऽपि तथा व्याख्यानमिति तथा । सूत्रे लयप्रपञ्चस्यात्यन्तानावश्यकत्वेनोक्तविचारस्यान्यत्राभावेन विपर्ययसूत्रेण चारितार्थ्याच्च ॥ १६ ॥

इति नवममन्तरा विज्ञानमनसीत्यधिकरणम् ॥ ९ ॥

नात्माऽश्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः ॥ १७ ॥ नामेति विस्फुलिङ्ग इति नाम वर्तुलादिरूपं सामान्यं तद्व्यावृत्यर्थं **विशेषेति** । नामरूपविशेषस्य । भस्मज्वलितकाष्ठादिह्रस्वविशिष्टचतुष्कोणवर्तुलत्रिकोणादिरूपस्य संबन्धाभावात् । यद्वा । नामरूपयोर्विशेषसंबन्ध आत्मतया शरीरस्वीकरणरूपस्तस्याभावात् । **जीवस्यैवेति** एवकारोप्यर्थे जीवस्यापीत्यर्थः । **तत्रेति** जीवे । नामवद्रूपस्याध्यासाख्यः संबन्धः । **नेत्यादीति** । उत्पत्तेर्निरूपितत्वादाहुः **आत्मा नोत्पद्यत** इति । देवदत्त इत्यादिभाष्ये किंचिच्छ्रुतिविरोधसमाधानं कुर्वन्त एव विवृण्वन्ति स्म **तथाचेति** । श्रुतौ जीवजन्माश्रवणोक्ते च । **श्रुतीति** । अत्रात्मपदशब्दः त्रिषु वर्तमानोऽपि देहमात्रपरः । **पुत्रनामासीत्यग्रे** नामरूपसंबन्धकथनात् । अतः समानप्रजाजननियमकत्वादङ्गादङ्गात्संभवसीति देहरूपात्मजन्यत्वं मुख्यम् । हृदये ईश्वरस्थितेस्तस्मादधि अधिकं चिज्जडात्मकं जायसे अतो **वा** इति निश्चये । त्वं पुत्रनामा देहोधिकोऽपि । इति **श्रुतिविचारे** । **लोको** व्याकरणं **तद्विचारे** जीव प्राणधारणे, प्रत्यक्षविचारे वा **देहस्यैव** नतु जीवस्योत्पत्तिः । लोकविचारे

विष्णुमित्रो जात इति देहोत्पत्तिरेव । न तु तद्व्यतिरेकेण पृथग् जीवोत्पत्तिः श्रूयते । विस्फुलिङ्गवदुच्चरणं नोत्पत्तिः । नामरूपसंबन्धाभावात् । एतस्य गुणाः स्वरूपं चाग्रे वक्ष्यते ।

भाष्यप्रकाशः ।

जीवोऽभिप्रेयते तत्रापि पूर्वोक्तश्रुतिप्रभृतय एव बीजम्, अत एव, 'अहस्तानि सहस्तानाम-पदानि चतुष्पदाम् । फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम्' इत्यादौ देहेऽपि गौण्या जीवपदप्रयोगः । यद्वा 'एतत्पञ्चविधं लिङ्गं त्रिवृत् षोडशविस्तृतम् । एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते' इति चतुर्थस्कन्धस्मृतेर्विशिष्टे पारिभाषिको वा । न तु देहव्यतिरे-केण पृथग् जीवोत्पत्तिः श्रूयते, नापि युक्तिगोचरीभवति । तस्योत्पत्तिनाशशालित्वे श्राद्धादिशास्त्रोक्तामुष्मिकफलसंबन्धानुपपत्त्या सर्वशास्त्रविप्लवप्रसङ्गात्, प्रेतादिपूर्वजन्मकथनाद्य-नुपपत्तेश्च ।

अतो देहस्यैव जन्मादिधर्मवत्त्वात् तत्संबन्धेनैव जीवे जन्मादिव्यपदेश इति निश्चयः । ननु बृहदारण्यके 'यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि सर्व एवात्मानो व्युच्चरन्ति' इति श्रुत्या प्राणादिजडसाधारण्येन व्युच्चरणश्रावणात् मुण्डके च 'एतस्माज्जायते प्राण' इत्यनेनोत्पत्तिमत्तया श्रावितानां प्राणादीना-मस्य साहचर्यात् कथं नोत्पत्तिरित्यत आहुः **विस्फुलिङ्गवदि**त्यादि । यतो **विस्फुलिङ्गवदुच्च-**

रश्मिः ।

प्रत्यक्षव्याकरणाभ्यां देहमात्रोत्पत्तिसिद्धेः । एवं च रूपदेवदत्तादिनाम्नोर्दैहिकत्वात्तयोश्च ध्वंसा-त्संकल्पादावुद्देश्यताऽसंभवस्तं वारयन्ति स्म **श्राद्धादी**ति । **जीवोभी**ति देवदत्ताद्युद्दिश्य तत्पुत्रकृतसंकल्पादौ देवदत्तादिनामकशरीराभावेपि जीवोभिप्रेयत इति वा संभव इति भावः । **तत्रे**ति जीवस्य देहोपलक्षितत्वे । **पूर्वोक्ता** अव्यवहितपूर्वोक्ताः । **प्रभृति**शब्देन लोकः प्रत्यक्षं च । **जीव** इति शरदः शतं प्राणान् धारयेति प्राणधारणं देहमात्रलिङ्गं सिध्यतीति जीवो देहः । **जीवस्ये**ति । 'हृदयादधि जायसे' इति श्रुतेः । **गौण्ये**ति । प्राणधारणस्य देहे प्रत्यक्षेऽपि लौकिकत्वाज्जीवनत्वगुणयोगेन गौणी । चैतन्यत्वमलौकिकम् । प्राणधारणत्वं लौकिकम् । अलौ-किकजीवशब्दस्य लौकिकदेहरूपजीवे गौणी युक्ता । **नत्वि**ति भाष्यविवरणम् । **नत्वि**ति । **युक्ती**ति प्रत्यक्षस्योपलक्षकम् । **तस्ये**ति जीवस्य । **श्राद्धे**ति ।

'वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः । प्रीणयन्ति मनुष्यांश्च पितॄन् श्राद्धेन तर्पिताः' ।
'आयुः प्रजां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च । प्रयच्छन्ति तथा राज्यं प्रीता नृणां पितामहाः' ॥

इति श्राद्धप्रकरणीययाज्ञवल्क्यस्मृत्युक्तेत्यर्थः । यज्ञवक्ता यज्ञवल्क्यः । तस्यापत्यं याज्ञवल्क्यः । **सर्वशास्त्रे**ति । सर्वेषां जीवाधिकारकत्वात्सर्वशास्त्रं जीवाधिकारकशास्त्रं तस्य विप्लवप्रसङ्गादित्यर्थः । **प्रेतादी**ति । प्रेतादिभिः स्वपूर्वजन्मकथनादेरनुपपत्तेश्च । **विस्फुलिङ्गे**ति भाष्यं विवरीतुं शङ्कामाहुः **न च बृहदि**ति । दृप्तबालाकिब्राह्मणे । ननु व्युच्चरणं नोत्पत्तिरित्याकाङ्क्षायामन्यत्रोत्पन्नानां प्राणादीनामत्र व्युच्चरणकर्तृत्वादुत्पत्तिरित्याशयेन श्रुत्यन्तरमाहुः **मुण्डक** इति । **अस्ये**ति । व्युच्चरणस्य कर्तृतया ऐकार्थ्यात् । **विस्फुलिङ्गे**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **यत** इति । भाष्ये **नामरूपे**त्यनेन केवलव्युच्चरणस्य

किंच । नित्यत्वाच्च ताभ्यः श्रुतिभ्यः । अयमात्माऽजरोऽमरः, न जायते म्रियत इत्येवमादिभ्यः ॥ १७ ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयपादे दशमं नात्माश्रुतेरित्यधिकरणम् ॥ १० ॥

भाष्यप्रकाशः ।

रणं नोत्पत्तिः नामरूपसंबन्धाभावात्, अन्यथा व्युच्चरणश्रुतावात्मशब्दप्रयोगस्य, बालाग्रश्रुति-व्याकरणश्रुत्योर्जीवशब्दप्रयोगस्य च विरोधापत्तेः ।

न चास्यापि सृष्ट्यनन्तरभावित्वात् कृत्रिमत्वं शङ्क्यम् । तथा सति सृष्टेः पूर्वं ब्रह्मण एव केवलस्य सत्त्वात् सृष्ट्यनन्तरं प्रयुज्यमानानां शब्दानां सर्वत्र पारिभाषिकत्वापत्त्या रूढ्युच्छेद-प्रसङ्गात्, अतस्तदभावाय 'सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो नामानि कृत्वाऽभिवदन् यदास्ते' इति श्रुत्युक्तस्य नामरूपनियमस्य साहजिकत्वमास्थेयम् । तथा सति तदतिरिक्तस्यैव कृत्रिम-त्वं, न तु नैसर्गिकस्येति निश्चयः । तदेतदुक्तं **नामरूपसंबन्धाभावादिति** । न च नामरूपान्तरसंबन्धस्यैवोत्पत्तित्वं, न केवलव्युच्चरणस्येत्यत्र किं गमकमिति शङ्क्यम्, यथो-र्णनाभिस्तन्तुनोच्चरेदित्यव्यवहितपूर्वमुदितस्य दृष्टान्तस्यैव गमकत्वात्, अन्यथैकेनैव निर्वाहे इतरवैयर्थ्यप्रसङ्गात्, अतस्तन्तूनां नामरूपसंबन्धात् पूर्वो दृष्टान्तः प्राणादीनां भूतान्तानां नाम-रूपसंबन्धवतामुत्पत्तिबोधकः । नच तेषामुत्पत्तिमत्त्वे किं मानमिति वाच्यम् । ऐतरेये 'स ऐक्षत लोकान्नु सृजै' इति प्रश्ने, 'स प्राणमसृजत' इत्यादिसृष्टिश्रुतीनामेव मानत्वात् । नच 'तदात्मान९ स्वयमकुरुत' इत्यात्मकरणश्रुतिविरोधः । तत्र यथास्थितप्राकट्यस्यैव करणत्वेन विवक्षितत्वात् । अन्यथा तस्य सुकृतत्वविरोधापत्तेः । नच 'आत्मकृतेः परिणामात्'इति सूत्रे तस्य परिणामत्वस्याङ्गीकारविरोधः शङ्क्यः । तत्र यथास्थितप्राकट्यस्यैव परिणामत्वेन वि-वक्षितत्वात् । अन्यथा विपरिणामादित्येव वदेत्, अतः प्राणादीनामेवोत्पत्तिर्न जीवस्येति निश्चयः । द्वितीयस्तु जीवानामुच्चरणमात्रबोधक इत्यास्थेयम् । नच 'यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च' इति मुण्डकवाक्यस्वारस्यात् पूर्वो दृष्टान्तः कर्तृत्वमात्रबोधक इति वाच्यम् । एवमपि क्रिया-

रश्मिः ।

नोत्पत्तित्वं ज्ञापितं तत्र शङ्कते स्म **न चेति** । आत्मेति नाम । रूपं विस्फुलिङ्गवद्वर्तुलं तदन्यनाम-रूपसंबन्धस्यैवेत्यर्थः । **अव्यवहितेति** बृहदारण्यके यथाग्नेरित्यस्याव्यवहितपूर्वम् । **एकेनेति** यथोर्णनाभिरित्यनेन । **इतरेति** यथाग्नेरित्यस्य वैयर्थ्यप्रसङ्गात् । **अत इति** एकतरस्य वैयर्थ्याभावाय । सार्वविभक्तिकस्तसिद्धिरिति । **तन्तूनामित्यादि** ऊर्णनाभिः कीटविशेषस्तन्तुना तन्तून् क्रीडां क्रीडायै उच्चरेत् । कर्मणः करणसंज्ञा संप्रदानस्य कर्मसंज्ञेत्यनेन कर्मणः करणसंज्ञायां जातायां तृतीया । पशुना रुद्रं यजत इतिवत् । पशुं रुद्राय ददातीत्यर्थः । उच्चरेदुत्पादयेदिति दृष्टान्तश्रुत्यर्थान्नाम तन्तुः दीर्घाकृति-रूपं तयोः संबन्धाद्धेतोः । द्वितीयो यथाग्नेरिति दृष्टान्तः । **उच्चरणेति** । तदानीं देहसंबन्धाभावादेव-दत्तादि नाम करपादादि रूपं च नास्तीति तन्मात्रबोधकः । **एतस्येति** भाष्यं विवरीतुमाहुः **न च यथेति** । **कर्तृत्वमात्रेति** मात्रशब्देनोत्पत्तिव्यवच्छेदः । **क्रियेति** । कृतिमत्त्वं कर्तृत्वमित्यत्र

भाष्यप्रकाशः ।

विषयाणामुत्पत्तिमत्त्वस्य सिद्धेः । नचैवमपि प्राणादिसाम्यानपाय इति शङ्क्यम् । यत एतस्य गुणाः स्वरूपं चाग्रे 'ज्ञोऽत एव'इत्यादिसूत्रेषु वक्ष्यते अतस्तदवगतौ प्राणादिसाम्यसंदेहस्य सुखेन निवृत्तेः । नन्वेवमपि प्रमेयबलेन निवृत्तिर्न तु प्रमाणेन, शास्त्रं तु भवतां प्रमाणप्रधानमतो नेदं युक्तमत आहुः किंचेत्यादि । इत्येवमादिभ्य इत्यादिपदेन 'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्' 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयम्' इत्यादीनां संग्रहः । तथाच नात्र प्रमाणाभाव इत्यर्थः ॥ १७ ॥ इति दशमं नात्माऽश्रुतेरित्यधिकरणम् ॥ १० ॥

रश्मिः ।

निविष्टकृतिविषयाणाम् । **प्राणादीति** । जीवेषु व्युच्चरणेन प्राणादिसाम्यं प्राणादिसदृशं व्युच्चरणम् । व्युच्चरणे जीवस्यैव प्राणादीनामकर्तृत्वात् । तथाचानित्यत्वापत्तिरिति भावः । **एतस्येति** भाष्यं विवृण्वन्ति **यत** इति । **एतस्येति** जीवस्य । **प्रमेयेति** प्रमेयं शाब्दम् । जीवोत्पत्त्यश्रुतिरिति शब्दः । तेनोत्पत्तिश्रवणाभावः प्रमेयस्तद्बलेनेत्यर्थः । **प्रमाणेनेति** श्रुतिशब्दादिना । रामानुजाचार्या एतद्दोषभियैव श्रुतेरित्येवं पदं छिन्दन्ति । परंतु द्वितीयहेतुप्रतिपादकसूत्रांशवैयर्थ्यं नानुसंदधते । न जायते । ज्ञाज्ञौ द्वावजाविति । जीवोत्पत्तिप्रतिषेधश्रुतेरिति हेतोः सकाशात् । नित्यो नित्यानामित्यादिश्रुतिभ्यो नित्यत्वावगमस्य हेतोरनतिरेकात् । **भवतामिति** वेदव्यासमतवर्तिनां शब्दप्रधानम् । **नेदमिति** इदमश्रुतेरिति सौत्रं लिङ्गम् । **चेतनानामिति** 'एको बहूनां यो विदधाति कामान्' इति श्रुतिशेषः । **अयमिति** । पुराणे 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे' इति श्रुतिशेषः । **तथा चेति** । द्वितीयहेतुसत्त्वे प्रकारे च । एतावता ब्रह्माण्डप्रकरणं समाप्तं द्वितीयं । ब्रह्माण्डेतिव्याप्तिवारणाय । 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत' इत्यत्र 'तज्जलान्' इति लिङ्गात् । माध्वास्तु 'स इदं सर्वं विलाप्यान्तस्तमसि निलीनस्तद्विलाप्य व्युत्तिष्ठते स इदं सर्वं विसृजति विस्थापयति प्रस्थापयति आच्छादयति प्रकाशयति विमोचयति एक एव' इति श्रुतेः परमात्मापि न लीयते इति व्याख्याय सूत्रांशे श्रुतयः 'स एतस्मिन् तमसि निलीनः प्रकृतिं पुरुषं कालं चानुपश्यति नैनं पश्यति कश्चन' इति पैङ्गीश्रुतिः 'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां, स नित्यो निर्गुणो विभुः परमः परात्मा, नित्यो विभुः कारणो लोकसाक्षी परो गुणैः सर्वदृक् शाश्वतश्च' इत्यादि **श्रुतिभ्यो नित्यत्वाच्चेति** भाष्ये । 'पूर्वा विराड्लिङ्गिकाऽपरा परलिङ्गिका'इति श्रुतेरिति पदच्छेदेपि नास्वरसस्तथापि लाघवात्ताभ्य इत्यनेन चारितार्थ्यं सुवचमिति ज्ञेयम् । श्रुत्यर्थस्तु स महतः स्रष्टा इदं परिदृश्यमानं विलाप्य विशेषे लीनं ब्रह्माण्डे लीनं कृत्वा ब्रह्माण्डान्तर्मध्ये तमस्तस्मिन् निलीनो मार्तण्डरूपो द्वितीयः । तत्तमः विरुद्धं कृत्वा लात्वा रात्रिरूपं कृत्वेति, व्युत्तिष्ठते 'आविरासीत्तमोनुदः' इति मनुस्मृतेः । विशेषो विष्णोर्द्वितीयं रूपं तेन उत्तिष्ठते । विराड्व्याख्यानमिदमित्याह **इदमित्यादि** । 'विसर्गः पौरुषः स्मृतः' इति वाक्याद्विराट्पुरुषसृष्टिरेवं विस्थापयतीति विशेषस्थापनं पुरुषरूपविराट्कृतम् । प्रगतं स्थापनं च तत्कृतम् । 'दग्धगोमयपिण्डवत्' इति वाक्यात्स्वस्मिन्प्रस्थापितमाच्छादयति विराट् दग्धगोमयपिण्डवद्भातो विराट् । सूर्याविष्कारेण विराट् प्रकाशयति । सूर्यः सत्कर्मप्रेरणेन विमोचयत्येक एव । परमात्मा विराडन्तःस्थः स्मृतिप्रसिद्धब्रह्मनाम । श्रुत्यन्तरमतलयविशेषार्थम् । परो गुणैरिति महत्स्रष्टृ लिङ्गम् । 'तमसः परस्तात्', 'तमसस्तु पारे' इति च श्रुतिभ्यामिति ॥ १७ ॥

इति दशमं नात्माऽश्रुतेरित्यधिकरणम् ॥ १० ॥

गुणान्निरूपयन् प्रथमतश्चैतन्यगुणमाह ।

ज्ञोऽत एव ॥ १८ ॥ (२-३-११)

ज्ञश्चैतन्यस्वरूपः । अत एव श्रुतिभ्यो विज्ञानमय इत्यादिभ्यः ।

भाष्यप्रकाशः ।

ज्ञोऽत एव ॥ १८ ॥ सूत्रमवतारयन्ति गुणानित्यादि । गुणाँस्तद्गुणान् धर्मान्निरूपयन् प्रथमतो मुख्यतया चैतन्यगुणं, चैतन्यं गुणो यस्य तादृशं, यो यज्जनकः स तद्गुणको, यो यद्गुणकः स तदविनाभूतो, यो यदविनाभूतः स तदात्मक इति व्याप्तीनां समन्वयसूत्रे सिद्धत्वादत्र चैतन्यगुणकत्वेन चैतन्यात्मकमात्मानमाहेत्यर्थः । व्याकुर्वन्ति ज्ञ इत्यादि । ज्ञानधर्मकत्वेऽपि ज्ञानस्वरूप इत्यर्थः । ननु कप्रत्ययस्य कर्तर्यनुशासनाज्ज्ञानकर्तेति भवति, तच्च कर्तृत्वं समवायसंबन्धेनेति ज्ञानधर्मकत्वे पर्यवस्यतीति काणभुजवदङ्गीकर्तव्यं न तु सांख्यवज्ज्ञानस्वरूपइत्येतामाशङ्कां हेतुबोधितश्रुत्युपन्यासेन परिहरन्ति विज्ञानेत्यादि । तथाच वाजसनेयक छान्दोग्यप्रभृतिषु, 'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्' 'न पश्यो मृत्युं पश्यति,' 'एष हि द्रष्टा श्रोता मन्ता रसयिता'इत्यादिभिर्विज्ञातृत्वादिबोधनाज्ज्ञानधर्मकत्वेपि तैत्तिरीयादौ मयट्प्रत्ययेन ज्ञानप्राचुर्यबोधनात्, एतन्निगमनश्लोके च 'विज्ञानं यज्ञं तनुते' इत्यादिना ज्ञानस्वरूपत्वकथनाज्ज्ञानधर्मो ज्ञानस्वरूपश्च, न तु काणभुजवन्न वा कापिलवदित्यर्थः । अत्रान्येषां मतानामेकदेशितया

रश्मिः ।

ज्ञोऽत एव ॥१८॥ सूत्रमित्यधिकरणात्मकम् । **गुणानिति** । तेन द्वितीयं प्रकरणं समाप्तमिति द्योतयन्ति स्म तृतीयप्रकरणारम्भश्च । 'तृतीयं सर्वभूतस्थम्' इति वाक्यांशोक्तम् । बृहदारण्यके छान्दोग्यीयब्रह्माण्डोपासनवदणुः पन्थाः । 'अणुः पन्था विततः पुराणः' इति शारीरब्राह्मणेऽस्ति शारीरभाष्यीयः । अग्रे शब्दस्याक्षरपर्यन्तोपस्थितेस्तदंशशारीरकभाष्यं सिद्धम् । न च गौणमुख्यन्यायेन फलीभूत(पर)परं भाष्यमिति वाच्यम् । अधोक्षजत्वेन शब्दरूपन्यायस्याप्यप्रवृत्तेः । अनिदमित्थतया तु शब्दप्रवृत्तिरस्तीतीक्षत्यधिकरण उक्तम् । चैतन्यगुणमिति भाष्ये समासप्रयोजनं वदन्तः गुणानां गुणिनं विनाऽसंभवमालोच्य कर्मधारयं त्यक्त्वा बहुव्रीहिणा व्याकुर्वन्ति स्म **चैतन्यं गुणो यस्येति** । **भाष्ये** जानातीति ज्ञ इत्यत्र ज्ञानं चैतन्यस्य गुणो गृहीतस्तद्विरोधं परिजिहीर्षव आहुः **यो यदिति** । **तद्गुणेति** चैतन्यगुणकत्वेन । चैतन्यस्य गुणत्वेन गुण्यपेक्षणात् । **आहेति** आक्षेपेणाह । **ज्ञानेति** जानातीति ज्ञ इति व्युत्पत्त्या **ज्ञानं** चैतन्यं तद्धर्मकत्वेऽपि ज्ञानं चैतन्यधर्मविशिष्टं तत्स्वरूपः । **केति** । 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' इति सूत्रेण विहितस्य कर्तरि कृदिति सूत्रेण कर्तर्यनुशासनात् । **समवायेति** यद्यपि कर्ता संयोगसंबन्धेन भवति तथापि धातोर्ज्ञानार्थकत्वेन कर्तृपदमाश्रये वर्तत इति गुणगुणिनोः समवायात्समवायसंबन्धेनेत्युक्तम् । ज्ञानधर्मकत्वं जानातीत्यत्र ज्ञानाश्रय इत्यर्थात्तत्र पर्यवस्यति । सांख्यवदिति 'उपाधिभेदेप्येकस्य नानायोग आकाशस्येव घटादिभिः' इति सांख्यप्रवचनसूत्रात् । **हेत्विति अत** इति सौत्रहेत्वित्यर्थः । **वाजेति** विज्ञातारमिति श्रुतिर्बृहदारण्यके । **न पश्य** इति छान्दोग्ये । **एष** इति नृसिंहतापिनीये जीवपराः । विज्ञातृत्वादीत्यत्रादिशब्देन पश्यत्वं द्रष्टृत्वादिकं च । **ज्ञानप्राचुर्येति** धर्मात्मकज्ञानप्राचुर्यबोधनात् । **एतदिति** मान्त्रवर्णिकसूत्रेर्थः स्फुटः । **अत्रेति** संग्राह्यत्वमित्यनेनान्वयः । **अन्येषामिति** माध्वरामानुजाचार्यादीनाम् । **एकेति** औपाधिकं जीवत्वं वदतां भास्कराचार्याणां मतस्य शंकराचार्यैकदेशित्वं स्पष्टम् । विष्णु-

सर्वविप्लववादी ब्रह्मवाक्यान्युदाहृत्य सूत्रोक्तसिद्धान्तमन्यथाकृत्य श्रुतिसूत्रोल्लङ्घनेन प्रगल्भते। स वक्तव्यः। किं जीवस्य ब्रह्मत्वं प्रतिपाद्यते जीवत्वं वा निराक्रियते इति। आद्ये इष्टापत्तिः। न हि विस्फुलिङ्गोऽग्न्यंशो भूत्वा नाग्निः। द्वितीये स्वरूपनाशः। जीवत्वं कल्पितमितिचेन्न। अनेन जीवेनात्मनेति

भाष्यप्रकाशः।

भगवन्माहात्म्याविरोधितया च संग्राह्यत्वं बोधयितुं शांकरं मतं दूषणायोपक्षिपन्ति **सर्वविप्लवे**-

रश्मिः।

शिवपरत्वेन रामानुजमाध्वशैवाचार्याणां मतानामेकदेशित्वं स्पष्टम्। विज्ञानेन्द्रभिक्ष्वाचार्याणां मतस्य कृष्णाद्यवतारपरत्वम्। 'यथा मधु मधुकृतो निस्तिष्ठन्तीति सिद्धान्तश्रुतेः। द्वितीयोपदेश इत्यवतारपरत्वं अत एकदेशित्वं तन्मतस्य। परदेवतापरत्वमाचार्यमतस्येति नैकदेशित्वमिति ध्येयम्। माहात्म्यबोधकत्वं तु ईदृशी जीवरूपप्रकृतिरिति भास्कराचार्यमते गुणावतारः। स्वविषये पूर्णावतारश्चेत्यन्याचार्यस्य तेषु माहात्म्यम्। **संग्राह्यत्वमिति**। अत्र सूत्रे संग्राह्यत्वमित्युक्तम्। तदित्थम्। ज्ञानाश्रयश्चैतन्यरूप इत्युक्तम्। तत्र नानावादानुरोधि रूपं **निबन्धे** ब्रह्म। तत्र भेदाभेदवादानुरोधि जीवरूपम्। 'अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्' इति गीता। व्यापकधर्मस्य व्यापकत्वनियमानुरोधि। कारणात्मनाऽभिन्नम्। कार्यात्मना भिन्नम्। तथा च तद्भाष्यम्। जीवस्य स्वतश्चैतन्यं नास्त्यागन्तुकमेव तस्य चैतन्यं पाक्षिकमिदं घटादिविषयं विज्ञानमविज्ञानविच्छेदेन वर्तते तदेवास्य चैतन्यमिति काणादा मन्यन्ते। तत्रेदमुच्यते। जीवो ज्ञः। कस्मादत एव। श्रुतिभ्य एव 'अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिः' 'नहि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यते' 'विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्य' इति ब्रह्माङ्गत्वाच्च। विस्फुलिङ्गन्यायेन 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'इति स्वाभाविकं चास्य ब्राह्मं रूपमौपाधिकमितरदिति। इदं मतं गीतेतिहासप्रामाण्यान्निबन्धे इति एकदेशितया भगवन्माहात्म्याविरोधितया च ज्ञेयम्। विशिष्टाद्वैतवादानुरोधि जीवरूपम्। ज्ञः ज्ञानाश्रयः सन् चिदचिच्छरीरब्रह्मकार्यत्वात्। अचिज्जडा संनिरोधिका माया। तथा तद्भाष्यम्। ज्ञ एवायमात्मा। ज्ञातृस्वरूप एव, न ज्ञानमात्रम्। 'न जडस्वरूप एव। कुतः। **अतएव** श्रुतेरेवेति। श्रुतिस्तु 'न जायते म्रियते वा' इत्यादिः पूर्वोक्ता। श्रीभागवतमते मायाजीवपक्षश्चतुर्थस्कन्धे इत्येकदेशितया भगवन्माहात्म्याविरोधितया च ज्ञेयम्। द्वैतवादानुरोधि जीवरूपम्। ज्ञो जीवः अतएव परमेश्वरादुत्पद्यत इति। अत्रैवकारः शब्दात्। स च ते वा 'एते चिदात्मानो विनष्टाः परं ज्योतिर्निर्विशन्त्यविनष्टा एवोत्पद्यन्ते न विनश्यन्ति कदाचन' इति काषायणश्रुतिः। इदं मतमन्तराभूतग्रामवदिति सूत्रभाष्याज्ज्ञानोत्तरं भक्तविषयमित्येकदेशितया भगवन्माहात्म्याविरोधितया च ज्ञेयम्। शैवमते विशिष्टाद्वैतं पूर्वोक्तविशिष्टाद्वैतवत् मद्भक्तपूजाभ्यधिकेति वाक्यादाधिक्ये प्राथम्यमिति रूपं प्राथम्योपयोगि अविभागाद्वैतवादानुरोधि जीवरूपम्। विज्ञानेन्द्रभिक्षवो द्वितीयोपदेशं सिद्धान्तयन्ति यथा मधु मधुकृत इति। सा च स्वयं कृष्णस्तत्परेति नैश्चित्यं वाचि पूर्ववदिति सुबोधिनीकारिकयावतारदेशितया भगवन्माहात्म्याविरोधितया च ज्ञेयम्। नियतजन्मादिप्रकरणस्य देवत्वं माहात्म्यं तदविरोधितयेति। निम्बार्कद्वैतवादे माध्वद्वैतवत्। यथाहुः— वेदान्तसारभूतायां दशश्लोक्याम्। 'ज्ञानस्वरूपं च हरेरधीनं शरीरसंयोगवियोगयोग्यम्। अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः' इति। हरेरधीनमित्यस्यार्थः। तत्त्वं द्विविधं। स्वतन्त्रं, परतन्त्रं

भाष्यप्रकाशः ।

त्यादि । सर्वविप्लववादित्वं तु पाञ्चवचनोपन्यासेन, 'नासतोऽदृष्टत्वाद्', इत्यत्र मया प्रदर्शितम्, तादृशो, ब्रह्मवाक्यानि 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म', 'अयमात्मानन्तरो बाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञानघनः' इत्यादीन्युदाहृत्य, सूत्रोक्तसिद्धान्तमन्यथाकृत्य 'सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेन'इत्यादिसूत्रेषु सिद्धं जीवब्रह्मणोर्भेदरूपं सिद्धान्तं भेदस्य काल्पनिकत्वकथनेन संसारिस्वरूपमात्राख्यानपरतया व्याख्याय, 'अयं शारीर आत्मा प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तः प्राज्ञेनाऽऽत्मनान्वारूढः' इत्यादिश्रुतीनां उक्तसूत्राणां चार्थत्यागेन धाष्टर्यं करोतीत्यर्थः । तद् दूषयन्ति स वक्तव्य

रश्मिः ।

च । तत्र स्वतन्त्रो हरिः, अन्यदस्वतन्त्रम् । 'सत्यं स्वातन्त्र्यमुद्दिष्टं तच्च कृष्णे न वा परे । अस्वातन्त्र्यात्तदन्येषामंशत्वं विद्धि भारत'इति महाभारतेति । एवं चैतन्यस्वरूपत्वेप्याकाशशरीरं ब्रह्मेति श्रुतेः 'छद्राणीव चेतनाः प्रतीयन्त' इति सिद्धान्तमुक्तावल्याम् । तदेतत्तस्माद्वा एतस्मादित्यत्र प्रसिद्धम् । पञ्चमहाभौतिको देहः । ओषधयः केशाः, अन्नं लिक्षाः, पुरुषः यूकाः । **उपक्षिपन्ती**ति । किंचात्र भाष्ये विज्ञानमयप्रकरणस्याविज्ञानमय इति आदिशब्देनाथ सुप्तः सुप्तानभिचकाशीति । अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति । नहि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यते इत्येवंरूपा अतएवेति सूत्रांशार्थत्वेनोदाहृताः, शंकरभाष्ये तु ब्रह्मवाक्यानि वक्ष्यमाणान्युदाहृतानि तत्राप्युपक्षिपन्ति स **सर्वविप्लव**त्यादि । ब्रह्मवाक्योदाहरणे तु शाब्दापरोक्षमात्रेण कृत्यर्थं प्रति सर्वेषां धर्मार्थकाममोक्षाणां तत्साधनप्रमाणानां विप्लवः स यस्मिन्वादे स वादोऽस्यास्तीति सर्वविप्लववादी तस्य भावस्तत्त्वम् । **तादृश** इति श्रवणमात्रेण तदध्येतृतद्विचारकातिरिक्तानामपि पातित्यसंपादकमायावादवक्ता । **सूत्रोक्ते**ति । ज्ञश्चैतन्यस्वरूपः अतएव श्रुतिभ्यः विज्ञानमय इत्यादिभ्य इति भाष्येणोक्तं सिद्धान्तम् । **अन्यथे**ति । तन्मते जानातीति ज्ञ इत्यस्तिशब्दवाच्ये ज्ञानजनकसत्त्वगुणसंबन्धात्सगुणो ज्ञः । मायाविद्ययोरेकदेशविकृतत्वेनानन्यवत्त्वेऽविद्यासंबन्धाज्ज्ञो जीवः । अतएव यस्मादेव नोत्पद्यत इति । पूर्वसूत्रादनूद्यते । तथा च परमेव ब्रह्माविकृतमुपाधिसंपर्काज्जीवभावेनावतिष्ठते । उपाधी मायाविद्ये जीवसगुणयोः । प्रकृते तु जानातीत्यत्र व्युत्पत्तिस्य सर्वज्ञातृचैतन्यविशिष्टसत्त्वसंबन्धाज्जीवत्वम् । सत्त्वरूपमायासंबन्धात्पूर्वं 'जीवस्यानुस्मृतिः सती' इति वाक्यात्सोहमित्यभेदप्रतीतिः । भेदो माया । ज्ञाज्ञावित्यत्र ज्ञानजनकं 'विशुद्धसत्त्वं वसुदेवशब्दितम्' । ज्ञाज्ञौ जीवजडौ वा । अत एव श्रुतिभ्यो ज्ञप्रतिपादकश्रुतिभ्यो न ब्रह्मवाक्येभ्यः इति पूर्वसूत्रादनूद्यते । इत्यन्यथाकरणम् । अस्माकमात्मा नोत्पद्यते इति दूरानुवादापेक्षया ताभ्य इत्यस्यानुवादो हि समीप इति गुणः । सूत्रोक्तसिद्धान्तान्यथाकरणं विशदयंति स **सुषुप्ती**ति । आदिशब्देन पत्यादिशब्देभ्यः आनुमानिकाधिकरणसूत्राणि । **सिद्ध**मिति भेदरूपं सिद्धान्तं सिद्धमिममस्मदीयं बोध्यम् । तथाहि पूर्वाध्याये तृतीयपादे समासाविदमधिकरणम् । तत्र बृहदारण्यकस्थं ज्योतिर्ब्राह्मणं शारीरब्राह्मणं च विषयः । जीववाक्यं ब्रह्मवाक्यं वेति संदेहे असंसारी परमेश्वर इहोक्त इति मुक्तजीववाक्यमिदमिति शांकरसिद्धान्तं पूर्वपक्षयित्वा ब्रह्मवाक्यमिदमिति सिद्धान्तोतः कुनोदकाभावात्सिद्धस्तं भेदरूपं सिद्धान्तं भेदस्य, परमेव ब्रह्माविकृतमुपाधिसंपर्काज्जीवभावेनावतिष्ठत इति स्वभाष्ये काल्पनिकत्वकथनेनेत्यर्थः । **व्याख्याये**ति । संसारे भेदो न विरुद्ध इति । **संपरी**ति इयं सुषुप्तौ जीवं भेदेन कथयति । **प्राज्ञेने**ति । इयं श्रुतिरुत्क्रान्तौ जीवं भेदेन कथयति । **आदिश**ब्देन ब्रह्मवाक्यानाम् । **उक्ते**ति सुषुप्त्युत्क्रान्त्यधिकरणस्यानुमानिकाधिकरणस्यानाम् । श्रुतिवाक्यार्थस्तु सुषुप्त्यधिकरणे । भाष्योक्तोल्लङ्घन-

श्रुतिविरोधात्। नचानादिरयं जीवब्रह्मविभागो बुद्धिकृतः। प्रमाणाभावात्।

भाष्यप्रकाशः।

इत्यादि । द्वितीये स्वरूपनाश इति जीवत्वनिराकरणपक्षे जीवस्वरूपस्याविद्यकत्वान्मुक्तावविद्यानाशे जीवस्वरूपनाश एव स्यात्, तथाचात्महानमपुरुषार्थ इति मोक्षस्यापुरुषार्थता च स्यात्। ननु वस्तुत आत्मनो ब्रह्मत्वाज्जीवत्वं तस्य कल्पितमतो न तन्नाशे स्वरूपनाश इत्यत आहुः जीवत्वमित्यादि। अत्र हि जीवशब्दोदितस्यात्मनो जीवस्यात्मनश्चेत्युभयोर्वा नामरूपकरणत्वं श्राव्यते। तत्र यदि जीवत्वं कल्पितं स्यात् तदा ततः पूर्वं कल्पकः कश्चिद्वक्तव्यः। तत्र न तावद् ब्रह्मणस्तथात्वम्, अविद्यासंबन्धराहित्यात्। न तावज्जीवस्य, कल्पनाविषयत्वात्। सृष्ट्यादौ जीवान्तरस्याभावात्। जडस्य तु न तथात्वं, प्रत्यक्षविरोधात्। यदि तु तेजआदिदेवतायाः कल्पकत्वं शङ्क्यते तदा तस्यापि जीवत्वात् तस्य कः कल्पकः। तस्मात् कल्पकनिर्वचनाशक्त्या जीवस्याकल्पितत्वमेवास्थेयम्। अन्यथा, अनेन जीवेनेति, द्वा सुपर्णा इति श्रुत्यन्तरे द्वयोर्देहपरिष्वङ्गश्रावणानुपपत्त्या च श्रुतिविरोधः। नच बहुत्ववज्जीवत्वमपि पाश्चात्यमिति शङ्क्यम् तथा श्रुत्यभावात्। सृष्ट्यादावनेन जीवेनेति सिद्धवन्निर्देशाच्च। अतः सृष्टेः पूर्वमपि भगवदङ्गवज्जीवरूपोंऽशोऽपि भगवदविभक्तस्तादृशनामादिविशिष्टो नित्य एवास्थेयः। नन्वनादिजीवब्रह्मविभागो बुद्धिकृत इति तथेत्यत आहुः न चेत्यादि। न ह्यनादित्वे बुद्धिकृतत्वे वा प्रत्यक्षं प्रमाणीभवितुमर्हति, जीवभावस्य कल्पितत्वेन तत्प्रत्यक्षस्य स्वाप्निकमायिकपुरुषप्रत्यक्षवत्, प्रामाण्यायोगात्, अत एव नानुमानादिरपि, श्रुतयस्तु तत्र विस्फु-

रश्मिः।

मेवम्। श्रुतिसूत्रेषु कर्मकर्तृव्यपदेशोऽस्ति। ब्रह्मजीवयोरैक्ये तदुल्लङ्घनं भवत्येव। तदाहुरर्थत्यागेनेति। **प्रगल्भत** इत्यस्यार्थमाहुः **धार्ष्ट्य**मिति। **धार्ष्ट्यं** ब्रह्मसंगोपनम्। धृष्टिरसि ब्रह्म यच्छेति श्रुतेः। मा संगोपय धार्ष्ट्येनेति भावः। तत्र हेतुं परस्मैपदेनोच्यते। परप्रतारणाय धार्ष्ट्यं करोतीत्यर्थः। **स वक्तव्य** इत्यादीति। ब्रह्मवाक्यानि जीवविषये त्वयाऽऽम्नातानि जीवचैतन्यस्य नित्यत्वाय। परस्य हि ब्रह्मणः कादाचित्कं चैतन्यमुपाधिना जीवत्वे भवति नैयायिकमते तद्वारणाय। तत्र ब्रह्मवाक्यानि विस्फुलिङ्गवत्स्थितानां ब्रह्मत्वं प्रतिपाद्यते। यतो नोत्पद्यतेऽतो ज्ञो जीवः ब्रह्म प्रथमसूत्राद्ब्रह्मेत्यनुवर्त्येति वा, ब्रह्मवाक्यप्रतिपादिते चैतन्यं नित्यं तच्च व्यावहारिकमित्येवं जीवत्वं निराक्रियते इत्यर्थः। अग्रे स्पष्टम्। संभवाद्विकल्पो **भाष्ये**। **अविद्येति** बुद्ध्यादिनाशे। **जीवत्व**मित्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **नन्विति**। **तन्नाशे** कल्पितनाशे। **अनेनेति**। व्याख्येयमिदम्। व्याकुर्वन्ति स्म **अत्रेति**। 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि' इति श्रुतौ **तद्वारा** प्रवेशद्वारा। **तेन तदिति**। कल्पितेन जीवेन नामरूपव्याकरण-कार्यमिति द्वयम्। नहि रजतेन किंचित्कर्तुं शक्यत इति। **न चे**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **न चेति**। **बुद्धीति**। 'बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव, आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्टः' इति श्रुतेः। **प्रमाणेति**। व्याख्येयम्। व्याकुर्वन्ति स्म **नहीत्यादिना**। **प्रमाणीति** आराग्रमात्रजीवप्रत्यक्षं अप्रमाणं प्रमाणं भवितुमर्हतीति प्रमाणीभवितुमर्हति। कल्पितविषयकत्वाद्बुद्धिविषयकत्वाच्च। **प्रत्यक्षस्येति**। अहं ब्रह्मास्मीति प्रत्यक्षस्य तत्त्वमसीति शब्दजन्यस्य। **प्रामाण्येति**। उक्तप्रत्यक्षप्रमात्वायोगात्। भावे ल्युट्। करणेऽपि ल्युट् व्याख्येयः पूर्वत्रापि। **अत एवेति**। प्रत्यक्षभावादेव नानुमानादिः हेतुप्रत्यक्ष एवानुमानोपमानयोः प्रवृत्तिरिति भावः। शब्दोपि न मानमित्याहुः **श्रुतय** इति। अप्ययमिति पदच्छेदः। इदं सादित्वं न कदा-

'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' इति श्रुतिविरोधश्च। नच जीवातिरिक्तं

भाष्यप्रकाशः ।

लिङ्गवद्व्युच्चरणं ब्रह्मण्यप्ययं चाभिदधत्यो जीवब्रह्मविभागस्य सादित्वमेव बोधयन्ति, नच न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वादिति सूत्रे कर्मानादित्वबोधनेन विभागानादित्वं, पुण्यः पुण्येनेति तद्विषयश्रुत्या बोधितप्रायमेवेति वाच्यम्, श्रुतौ सदसत्कर्मणा सदसद्देहभवनमात्रबोधनेन विभागानादित्वस्याबोधनात् सूत्रेऽनादित्वकथनस्य कर्मसापेक्षतया करणेऽपीश्वरस्यानीश्वरत्वाभावबोधनार्थत्वावसायात् । अन्यथा, 'एष ह्येव साधु कर्म कारयती'त्यादिश्रुतिविरोधस्यापरिहाराद् वैषम्याद्यभावस्य तदनन्यत्वादेव सिद्धेश्च । नच तत्र संसारानादित्वव्याख्यानं युज्यते, तथा सतीश्वरस्यानीशत्वं, 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' इति श्रुतिविरोधश्च, संसारहेतुभूताया अविद्याया जीवानां च सत्त्वात् । एतदेवोक्तं सदेवेत्यादिना । नच सा असतीति युक्तम्, तथा सति तया संसारासंभवापत्तेः । नापि सदसद्विलक्षणेति । तथा सति ब्रह्मानतिरेकापत्तेः 'अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते' इति गीतावाक्यात् । कल्पितजीवानादित्वमप्येतेनैव निरस्तम् । अतो विभागानादित्वमप्रमाणकमेव । किंच । बुद्धिकृत इति कस्य बुद्धिकृतम् जीवस्य ब्रह्मणो वा स्वस्यैव वा । तत्र न तावदाद्यः ।

रश्मिः ।

चिदनीदृशं जगदिति जैमिनिमताख्यातॄणां शंकराचार्यमतस्थानां नास्त्यतो वक्ति **न च नेति** । अस्य प्रथमपादोपान्त इदं सूत्रम् । अर्थस्तु स्फुटः जीवेश्वरविभागजनकं कर्म । **तद्विषयेति** । ते हि वैषम्यनैर्घृण्याधिकरणं त्रिसूत्रमङ्गीकुर्वन्त्यतस्तद्विषयश्रुत्या पुण्येन कर्मणेत्यर्थात् । सिद्धान्ते तु सर्वोपेता चेत्यधिकरणं अष्टसूत्रम् । तेषां तु सर्वोपेता चेत्यधिकरणं द्विसूत्रम् । न प्रयोजनवत्त्वाधिकरणं द्विसूत्रम् । वैषम्यनैर्घृण्याधिकरणं त्रिसूत्रम् । सर्वधर्माधिकरणमेकसूत्रम् । **सद्देहेति** । मात्रया कर्मानादित्वविभागानादित्वव्यवच्छेदः । **अनादित्वपद**तात्पर्यमाहुः **सूत्र** इति । जीवानादित्वेकथनस्य । **करण** इति । जीवानां सुखिनां दुःखिनां च करणे । **अनीश्वरेति** । कर्मसापेक्षतयाऽनीश्वरत्वं प्राप्तं तन्निषेधान्नञ्भावद्वयम् । सापेक्षमपि कुर्वन्नीश्वर इति माहात्म्यमिति वैषम्यनैर्घृण्यसूत्रभाष्यात् । **अन्यथेति** । जीवेभ्यः कर्मसापेक्षसुखदुःखदानेऽनीश्वरत्वे । **एष ह्येवेति** । अत्राविद्यादीनां कर्मकारयितृत्वव्यवच्छेदस्यावश्यकत्वेन तद्बोधयितुमन्ययोगव्यवच्छेदकैवकारान्ते इतिशब्दप्रयोगः । श्रुतिस्तु 'एष ह्येव साधु कर्म कारयति' इत्यादिः । नन्वेवं सति कांश्चित्सुखिनः कांश्चिद्दुःखिनश्च कुर्वद्विषमं निर्घृणं च स्यादित्यत आहुः **वैषम्येति** । **तदनन्येति** । जगतो ब्रह्मानित्यत्वादेव ब्रह्मणि सिद्धेश्च सदेव सोम्येति भाष्यं विवरीतुमाहुः **न च तत्रेति** । सौत्रेऽनादित्वपदे । शंकराचार्याणामिति पूरणीयम् । व्याकुर्वन्ति स्म **तथा सतीति** । चकारार्थं पूर्वमाहुः **ईश्वरस्येति** । तादृशव्याख्याने तृणावर्तेवत्स्वतः कर्मणैव जगत्परिभ्रमणे ईश्वरस्य फलदातृत्वाभावादनीशत्वम् । **सदेवेति** । इतरव्यावर्तकस्यैवकारस्य विरोधः । **युक्तमिति** । तथा चासत्यतयाकल्पितैर्जीवैश्च द्वैताभावान्न श्रुतिविरोध इति भावः । न च सदसतीति वाच्यम् । द्वैतभिया सत्त्वं व्यावहारिकमिति शुक्तिरजतस्य कार्यकारित्वप्रसङ्गात् । **अप्रमाणक**मिति । न विद्यते प्रमाणमस्मिन्निति बहुव्रीहिः । केचित्तु नलोपो नञ इत्यस्य न बहुव्रीहौ प्रवृत्तिः । उत्तरपदे परतो नञो नस्य लोपः स्यादिति वृत्तावुत्तरपदशब्दस्य मुख्यसमासचरमावयव एव रूढेरित्याहुः । न च बीजाङ्कुरवत्प्रवाहस्यानादित्वादिति न कर्मसूत्रभाष्यविरोध इति

१. समासघटकपदार्थवत्त्वं ।

ब्रह्म नास्ति । सर्वश्रुतिसूत्रनाशप्रसङ्गात् । यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिः । अयमात्मा अपहतपाप्मा । अधिकं तु भेदनिर्देशादित्यादिबाधः । तस्मात् तदंशस्य तद्व्यपदेशवाक्यमात्रं स्वीकृत्य शिष्टपरिग्रहार्थं माध्यमिकस्यैवायमपरावतारो नितरां सद्भिरुपेक्ष्यः ॥ १८ ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयपादे एकादशं ज्ञोऽत एव इत्यधिकरणम् ॥ ११ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

जीवस्यैवाभावात् । द्वितीये तु बुद्धिकृतत्वाद् गतमनादित्वम् । तदानीं बुद्धिसत्त्वादद्वितीयश्रुतिविरोधश्च । तृतीये त्वसंभव एव । तस्या जडत्वात् । अबुद्धिकृतपक्षे विभागस्य कृतत्वेऽपि जीवस्य सत्त्वादद्वितीयश्रुतिविरोध एव । नचैवं विभागस्य सादित्वे विस्मृतकण्ठमणिन्यायेन विस्मृतस्वस्वरूपं ब्रह्मैव जीव इति जीवातिरिक्तं ब्रह्म नास्तीति युक्तम्, सर्वश्रुतिसूत्रनाशप्रसङ्गात् । केषां नाशप्रसङ्ग इति चेत्, यः सर्वज्ञ इत्यादीनां बाधः । स्वीकृत्येति अंशत्वत्यागेन तथात्वं स्वीकृत्य **माध्यमिकस्यापरावतार** इति भगवदाज्ञप्तशिवावतारत्वेन

रश्मिः ।

वाच्यम् । 'उपपद्यते चाप्युपलभ्यते च' इत्युत्तरसूत्रेण तत्परिहारात् । अनेन जीवेनात्मनेति सर्गादौ जीवप्रयोगादनादित्वमिति । **न** चेत्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **नचैव**मिति । **विस्मृते**ति । विस्मृतः कण्ठमणिर्येन सोऽपि पुरुष एवं विस्मृतं स्वस्वरूपं येन मायादिना तद्ब्रह्मैव जीवः । **सर्वे**ति भाष्यविवरणम् । **सर्वेति** । य इति भाष्यमवतारयन्ति स्म **केषा**मिति । विवृण्वन्ति स्म **य** इति । **बाध** इति यत्तदोर्नित्यसंबधाद्ब्रह्मवाचको यच्छब्दः । सर्वशब्दार्थान्तर्गतजीवाज्ञानात्तथा । स्वारसिकसर्वाज्ञानाच्च जीवस्य तदतिरिक्तं ब्रह्म । सर्वशब्दार्थान्तर्गतजीवस्याशक्तित्वे सर्वशक्तित्वबाधः । जीवस्य सर्वशक्तित्वं प्रमाणविरुद्धम् । अयं जीवः पाप्मवत्त्वे प्राप्तेऽपहतपाप्मत्वम् । ब्रह्मणि स्वतःसिद्धमपहतपाप्मत्वम् । दिव्यग्निचयनाभाववत् । सूत्रबाधस्त्वधिकमित्यादिसूत्राणाम् । ब्रह्म न जीवस्यात्ममात्रं किंत्वधिकं भेदेन निर्देशात् । आदिशब्देन कर्मकर्तृव्यपदेशादिति सूत्रम् । भाष्ये **तस्मा**दिति । सर्वश्रुतिसूत्रनाशात् । तदंशस्य ब्रह्मांशस्यांशइवाशस्तस्य तद्व्यपदेशो जन्ममरणव्यपदेशस्तस्य वाक्यमात्रं नोत्क्रान्त्यादिरर्थं स्वीकृत्य । तथा च जैमिनिसूत्रविरोधः । भारहारश्रुतिसंचारः । यथा गङ्गायां घोष इति गङ्गाघोषवाक्यमात्रम् तथा । यद्वा तदंशस्येति स्वसिद्धान्तानुसारेणेति नोपचारः । तद्व्यपदेशवाक्यमात्रं ब्रह्मणो व्यपदेशमात्रं 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादिषु एतादृशं ब्रह्मप्रकरणीयं जीवाप्रतिपादकं वाक्यमात्रं जीवप्रतिपादकत्वेन शिष्टा वैमनस्यं त्यजन्तो ग्रन्थं पश्येयुरित्येवं परिग्रहार्थं स्वीकृत्येत्यर्थः । तदपि शिष्टानां भक्तानां परिग्रहार्थमन्यथा जीवेशयोरैक्यं श्रुत्वा शिष्टा न प्रवर्तेरन् । बृहदारण्यके 'अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवꣳहि स देवानाम्' इति श्रुतिस्तूपास्याऽभेदविषया । वर्तते चाक्षरं जगत् । पुरुषोत्तमस्तु तत्राधेयतया स्थित इति व्यभिचारिण्या भक्त्याधेयपुरुषोत्तमप्राप्तिः सा पुष्टिः मर्यादातो विपरीता । तदुक्तम्—पुरुषोत्तमप्रकरणे । 'न माला पुष्टिरूपा स्यात् न मुद्रा न तु पौण्ड्रकम् । व्यभिचारेण या भक्तिरव्यभिचरतस्तु सा' इति ज्ञेयेत्यर्थः । अतः शिष्टेभ्यो ब्रह्मसंगोपनं तत्तु तदपरिग्रहे न स्यादतः शिष्टपरिग्रहार्थम् । **माध्यमिक** इति । बाह्यभेदेषु चतुर्थोयं सर्वशून्यवादी । शंकराचार्या अपि ब्रह्ममात्रास्तित्ववादित्वेन सर्वशून्यवादिन इत्या-

उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् ॥ १९ ॥ (२-३-१२)

अत एवेति च वर्तते । स यदास्माच्छरीरादुत्क्रामति सहैवैतैः सर्वैरुत्क्रामति । ये के चास्माल्लोकात् प्रयान्ति चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्तीति । तस्माल्लोकात् पुनरेत्यस्मै लोकाय कर्मणे । श्रुत्युक्तानामुत्क्रान्तिगत्यागतीनां

भाष्यप्रकाशः ।

प्रसिद्धे शंकराचार्ये माध्यमिकोऽप्याविष्ट इति तथा । एवं च सर्वावस्थासाधारण्येन ज्ञानधर्मा ज्ञानस्वरूपश्च जीव इति सिद्धम् । अत्रापि जीवो वैशेषिकवदङ्गीकार्यः, सांख्यवद् वेति सन्देहः । उभयथा श्रुतिः सन्देहबीजम् । यथाकथञ्चिदस्तु अभ्यर्हितत्वात् सांख्यमतमेवेति पूर्वः पक्षः । सिद्धान्तस्तूक्त एव । विचारस्तु गुणमुख एव, न तु स्वरूपमुखः । सूत्रे ज्ञशब्दप्रयोगादिति ॥ १८ ॥ इति एकादशं नोऽत एव इत्यधिकरणम् ॥ ११ ॥

उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् ॥ १९ ॥ अतः परं जीवस्य शारीरकब्राह्मणे, 'स वा एष महानज आत्मा' इति, कौशीतकिब्राह्मणे च, 'योऽयं विज्ञानमयः पुरुषः प्राणेष्वि'ति व्यापकत्वमध्यमपरिमाणयोः श्रावणात्, श्वेताश्वतरे च, 'आराग्रमात्रो ह्यवरोऽपि दृष्टः' इति, 'बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च, भागो जीवः स विज्ञेय' इत्यणुत्वश्रावणात्, संदेहे जीवस्य परिमाणं विचार्यते । तत्र सूत्रे एकं षष्ठ्यन्तं पदं, तस्य संबन्धः क्वापि न प्रतीयत इति तं बोधयन्ति अत इत्यादि कर्तव्यमित्यन्तेन । अत्र प्रथमं वाक्यं कौशीतकिब्राह्मणे प्रतर्दना-

रश्मिः ।

विष्टः क्षणिकत्वाच्चेति सूत्रेऽयं निराकृतः । स्वयं त्वीश्वरा रुद्रवत् । **तथेति** । माध्यमिकस्यैवायमपरावतार इति पाठे तु जगतो मिथ्यात्वाङ्गीकारेण प्रमाणचतुष्टयस्य लोकप्रसिद्धेश्च मिथ्यात्वाद्ब्रह्मण्यपि संदेहजननान्माध्यमिक एवेति ज्ञेयम् । **अङ्गीति** ज्ञानधर्मकं द्रव्यम् । ज्ञानाधिकरणमात्मा इति नैयायिकप्रवादात् । आगन्तुकचैतन्यः स्वतोऽचेतनः । आगन्तुकमात्मनश्चैतन्यमात्ममनःसंयोगजं जाग्रति अग्निघटसंयोगजरोहितादिगुणवदिति प्राप्तम् । नित्यचैतन्ये हि सुप्तमूर्च्छितग्रहाविष्टानामपि चैतन्यं स्यात्ते पृष्टाः सन्तो न किंचिद्वयमचेतयामहीति जल्पन्ति स्वस्थाश्च चेतयमाना दृश्यन्तेतः कादाचित्कचैतन्यत्वादागन्तुकचैतन्य आत्मेति वैशेषिका मन्यन्ते । वैशेषिकाः काणभुजाः । **सांख्यवदिति** । ज्ञानात्मा । **उभयथेति** । ज्ञाज्ञौ द्वावजाविति विज्ञानं यज्ञं तनुत इति चोभयथा श्रुतिः । **गुणमुख** इति । चैतन्यद्वारः । ज्ञः चैतन्यस्वरूप इति भाष्यादेवकारः । **स्वरूपेति** चेतनमुखः । **ज्ञशब्देति** । अन्यथा चेतनशब्दप्रयोगः कृतः स्यादिति भावः । इतिरधिकरणसमाप्तौ ॥ १८ ॥

इत्येकादशं ज्ञोऽत एवेत्यधिकरणम् ॥ ११ ॥

उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् ॥ १९ ॥ **व्यापकत्वेति** । योयमित्यत्र प्राणेष्विति सप्तमी व्यापकाधारे । जीव प्राणधारणे । विज्ञानमय इत्येकत्वविवक्षणात् । **बालाग्रेति** । वेदस्यात्मत्वाद्बालाग्रे सत्त्वेनाग्रेतनोपपत्तेः । यद्वा बालः कृष्णाजिनम् । कृष्णाजिनं ब्रह्मेति बृहत्त्वादुपपन्नम् । अथ बालोऽश्वबालेन्यापेक्षया स्थूलः भस्मीभूतस्तथा । आत्मत्वात्सर्वे शब्दा वेदे वा । यथा सौधाग्र्याः स्पृशन्ति विधुमण्डलमिति तथा । **अत इत्यादीति** । भाष्येऽनुवर्तत इत्यनुक्त्वा वर्तत इत्युक्त्या व्यासहृदि वर्तत इत्यर्थः । चकारादात्माप्यन्यथैकपदं सूत्रं न वदेदिति भावः । यद्वा धातूनामनेकार्थत्वं स्वमते

१. संहिता ।

श्रवणाद् यथायोग्यं तस्य परिमाणमङ्गीकर्तव्यम्। यद्यपि, आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्ट इति श्रुत्यैव परिमाणमुक्तं, तथापि बहुवादिविप्रतिपन्नत्वाद् युक्तिभिः साधयति। ब्रह्मवैलक्षण्यार्थमुत्क्रान्तिपूर्वकत्वमुक्तम्॥ १९॥

भाष्यप्रकाशः।

ख्यायिकायाम्। द्वितीयमपि तत्रैव गार्ग्यायनिश्वेतकेतुसंवादे। तृतीयं बृहदारण्यके शारीरब्राह्मणे। श्रवणादिति जीवे श्रवणात्। तथाच श्रुतित एवोत्क्रान्तिगत्यागतीनां जीवे श्रवणाद् यथायोग्यं उत्क्रान्त्यादिक्रियायोग्यं जीवस्य परिमाणमङ्गीकर्तव्यमित्यर्थः। सूत्रयोजना तु, जीवात्मा उत्क्रान्तिगत्यागतिसंबन्धी, अत एव, तद्बोधकश्रुतिभ्य एवेति बोध्या। अधिकरणप्रयोजनमाहुः यद्यपीत्यादि। उत्क्रान्तिशब्दः प्रथमतः किमर्थं प्रयुक्त इत्यत आहुः ब्रह्मेत्यादि। 'आसीनो दूरं व्रजति' इति ब्रह्मणोऽपि गतेरुक्तत्वात् तद्वैलक्षण्यं गतौ ज्ञापयितुं प्रयुक्त इत्यर्थः।

ननु प्रश्नोपनिषदि, 'स ईक्षाञ्चक्रे कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन् प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामि' इति 'स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीमिन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्मलोकेषु नाम च' इति सृष्टिलिङ्गात् षोडशकलस्यापि ब्रह्मत्वप्रतीतेरुत्क्रान्तेः कथं ब्रह्मवैलक्षण्यार्थत्वमिति चेत् उच्यते। नात्रोत्क्रान्तेर्ब्रह्म-

रश्मिः।

ज्ञापितमतोनुवर्तत इत्यर्थः। तृतीयमिति। पूर्वार्धं तु 'प्राप्यान्तं कर्मणस्तस्य यत्किश्चेह करोत्ययम्' इति। उत्क्रान्तीति। उत्क्रान्तिश्च गतिश्चागतिश्चेति द्वन्द्वः। उत्क्रान्तिगत्या गतयस्तत्संबन्धी। इन् तु लोकात्। संबन्धो द्विनिष्ठ इति लोकः। तस्य संबन्धत्वेनान्वयानुपपत्तिर्नास्ति। संबन्धस्य संबन्धरूपान्वयानङ्गीकारात्। संबन्धस्य संबन्धो नास्तीति लोकानवस्थाभिया। उत्क्रान्तिर्लिङ्गदेहसहितजीवस्याकर्षणं यमादिकर्तृकम्। अस्वतन्त्रा गतिरिति यावत्। गतिस्तु स्वप्नादौ लिङ्गरहितस्य हृदयादौ गतिः स्वतन्त्रा गतिः। आगतिस्तु सूक्ष्मदेहादावागमनम्। तद्बोधकेति। श्रुतयस्तूक्ता ग्राह्याः। बोध्येति। शंकराचार्या रामानुजाचार्याश्चाणुरिति श्रुतेरिति चोत्तरसूत्रादाकृष्याणुर्जीव उत्क्रान्त्यादीनां श्रुतेरिति योजयन्ति स्म तन्न। आकर्षापेक्षयानुवृत्तेर्न्याय्यत्वात्। यद्यपीत्यादीति। बहुवादीति। नैयायिकादिभिर्व्यापकत्वाङ्गीकारेणाणुत्वस्य संदिग्धत्वादिति भाष्यार्थः। युक्तिभिरिति। 'आगमस्याविरोधेन ऊहनं तर्क उच्यते' इत्यमृतबिन्दूपनिषदः विज्ञानमय इत्याद्यागमानुरोधेनोत्क्रान्त्याद्यूहनं तर्कः। यदि व्यापकत्वं स्यादुत्क्रान्त्यादिर्न स्यादिति युक्तिभिः। प्रत्येकमिति बहुवचनम्। सूत्रपरिमाणं साधयति गतेरिति। व्रज गताविति धातोः। तद्वैलक्षण्यं जीवधर्मोत्क्रान्तिसहचाराद्भविष्यति गताविति ज्ञापयितुं प्रयुक्त उत्क्रान्तिशब्दः। तेन भाष्ये सूत्रे उत्क्रान्तिपूर्वकत्वयुक्तमित्यर्थः। स ईक्षामिति। सः अमृतः षोडशकलः। षोडशेति। षोडशकलो जीवो भवति तथापीति शेषः। उत्क्रान्तेरिति उत्क्रान्तो भविष्यामीत्युत्क्रान्तिर्ब्रह्मधर्मोत इति शेषः। ईक्षण इति। कस्मिन्नित्यादीतीत्यन्तोक्तेक्षणाकारे कस्मिन्पदार्थे प्रश्ने उत्तरे प्राणे स प्राणमसृजतेति श्रुतेः। क्रान्तिविशिष्टे जातेहं षोडशकलो हि शारीरकः उत्क्रान्तिविशिष्टो भविष्यामीत्यर्थात्प्राणधर्मत्वेनैवेत्यर्थः। एवकारेण ब्रह्मधर्मत्वव्यवच्छेदः। नन्वस्तु षोडशकलस्य सृष्टिलिङ्गत्वमस्तु चेक्षा 'अणुः पंथा वितरः पुराणः' इति शारीरब्राह्मणे पठितत्वात्। तथा च श्रुतिः। शारीरे सर्वेन्द्रियैकीभावे 'तस्य हैतस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते इत्यादिना निष्क्रमणं। तस्य संज्ञानम्। स एष ज्ञ इति श्रुत्योच्यते ततः। स विज्ञानो भवतीति

भाष्यप्रकाशः ।

धर्मत्वं प्रतीयते, प्राणधर्मत्वेनैवेक्षणे प्रतीयमानत्वात्, तदुत्क्रान्त्यैव स्वोत्क्रान्तिकथनेन स्वोत्क्रान्तेरौपचारिकत्वबोधनाच्च तादृशज्ञापन एव पर्यवसानात् । नच क्वासौ पुरुष

रश्मिः ।

श्रुत्या जानातीति ज्ञ इति व्युत्पत्तिरुक्ता । ततः तं विद्याकर्मणीति समारम्भः । ततः अन्यं नवतरमिति पित्र्यादिरूपाणि तनुत इत्युक्तम् तदनन्तरम् 'स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयो वाङ्मयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमय आकाशमयो वायुमयस्तेजोमय आपोमयः पृथ्वीमयः क्रोधमयोऽक्रोधमयो हर्षमयो धर्ममयोऽधर्ममयः सर्वमयस्तद्यदेतदिदं मयोऽदोमयः' इतीति । अयमिति चैद्यादौ प्रत्यक्ष आत्मा, अततीत्यात्मेति व्युत्पत्त्याणुः । अन्यत्रापि शरीरत्वं जीवः । जातेरात्मत्वात् । वाक्यपदीये 'येनेन्द्रियेण यद्गृह्यते तेन तद्गता जातिस्तदभावश्च गृह्येते' इति जीवप्रत्यक्षम् । येनेत्युक्तव्युत्पत्तौ योगजधर्मप्रत्यासत्त्या 'अनागतमतीतं च' इति वाक्येन च यौगपद्यं बोध्यम् । तेन शोभनम् । तस्य ब्रह्मत्वोक्त्या फलप्राप्त्यायमणुः पन्थाः । यद्यप्यणुः पन्था इति श्लोकः काममय एवायं पुरुष इति स यथाकामो भवति तथा क्रतुर्भवति इति काम्यकर्मकर्ता । अथाकामयमान इत्यादिना सद्योमुक्तिस्तदग्रे वर्तत इति सद्योमुक्तिविषयः तथापि ब्रह्मत्वस्य । स वायमात्माग्रेति । तथाकामयमानस्य पुनरावृत्तिः 'तस्माल्लोकात्पुनरेत्यास्मै लोकाय कर्मणे' इति श्रुतेरत्रापि कर्मसामान्यं सर्वात्मभावं निवेश्य पथित्वं समर्थनीयम् । भूमाधिकरणे भूमा ब्रह्म तल्लक्षणं लिङ्गभूयस्त्वाधिकरणे सर्वात्मभावस्येति । अकामयमानस्य 'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते' इति ब्रह्मसमशनात्पन्थाः । अत्र शारीरब्राह्मणमित्युक्त्या शारीरोपस्थितौ शारीराणामनुमानमार्ग्यत्वं 'अत्र मां मार्गयन्त्यद्धा युक्ता हेतुभिः' इति वाक्यात् । शारीरोऽपि त्रिधा क्षराक्षरपुरुषोत्तमभेदात् । क्षरोऽस्मदादिशरीरेषु, अक्षरो ब्रह्माण्डे, पुरुषोत्तम आकाशे । आकाशशरीरं ब्रह्मेति श्रुतेः । एवं चोक्तं 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' इत्युपनिषन्मात्रवेद्यत्वविरोधः । अयं प्रमाणविरोधः । तथात्र शारीरकब्राह्मणे पितृयाणपन्थाः । 'तस्माल्लोकात्पुनरेत्य' इति श्रुतेः । एवं चावक्ष्यमाणस्य 'अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्' इति चरमसूत्रे देवयानपथो विरोधः । तदुभयनिराकणादध्यायार्थोन्व्याप्तिर्न । शाब्दप्रत्यक्षमप्यर्थमनुमानैर्बुभुत्सन्ते तर्करसिका इति हेतोः । यथा महानसो वह्निमान् धूमादिति सिसाधयिषाविरहविशिष्टसिध्यभावरूपपक्षतासत्त्वात् । एवं चात्मवादे जीवोनुमानेन शरीरे मृग्यः (मृष्टः) । तद्दिशा ब्रह्माण्डेऽक्षरः सूर्यादीनां नेत्रत्वादित्वात् । तद्दिशैवाकाशे ब्रह्मानुमानम् । वियति विहंगम इत्यत्र विहंगमस्याकाशसमवायित्वात् न तस्य तज्जनकत्वम् । एवं वायोरपि न तज्जनकत्वं आकाशाद्बहिष्ठत्वात् एवमग्न्यादीनां बहिष्ठत्वम् । तथा च आत्मा आकाशवान् उपादानत्वात् यद्यदुपादानकं तत्तद्वत् यथा मृत् । आत्मा उपादानं द्रव्यत्वात् कपालादिवत् । एवमाकाशशरीरे आत्मा मृष्टः । साध्यतावच्छेदकसंबन्धः समवायः, हेतुतावच्छेदकसंबन्धः स्वरूपः । अगत्या वृत्त्यनियामकोपि संबन्धः । उत्क्रान्तेर्ब्रह्मधर्मत्वेन प्रतीत्यभावे हेत्वन्तरमाहुः **तदुत्क्रान्त्येति** । प्राणोत्क्रान्त्या स्वोत्क्रान्तिः षोडशकलोत्क्रान्तिः । **औपचारिकेति** यद्यपि षोडशकलो जीवोणुरिति नोपचारिकत्वबोधनं तथापि शारीरब्राह्मणेऽयमात्मा ब्रह्मेति ब्रह्मत्वोक्तेरणुपथित्वेन च व्यापकत्वात् । अतएव छान्दोग्ये 'पुरुषꣳसोम्योपतापिनं ज्ञातयः पर्युपासते जानासि मां जानासि माम्' इत्याद्युपदेशः । न चोत्क्रान्त्यनन्तरं ब्रह्मत्वम् । अविद्यां गमयित्वेत्युत्क्रान्तेः पूर्वं

स्वात्मना चोत्तरयोः ॥ २० ॥

उत्क्रान्तिगत्यागतीनां संबन्धे इन्द्रियादिभिः परिष्वङ्गोऽप्यस्ति । ततः संदेहोऽपि भवेत्। किमुपाधित एतेषां संबन्धो भवेत् स्वतो वेति, उत्तरयोर्गत्यागत्योः, स्वात्मना केवलस्वरूपेण।

'ऊर्णनाभिर्यथा तन्तून् सृजते संचरत्यपि।
जाग्रत्स्वप्ने तथा जीवो गच्छत्यागच्छते पुनः' ब्रह्मोपनिषत्।

भाष्यप्रकाशः।

इति भारद्वाजप्रश्ने इहैवान्तःशरीरे सौम्य स पुरुष इति पिप्पलादेनोत्तरितत्वात् तत्र चान्तःशरीरस्थत्वलिङ्गेन जीवाभिन्न एव स पुरुष इति शङ्क्यम्, लिङ्गस्य ब्रह्मसाधारणत्वात्, गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनादित्यधिकरणे जीवब्रह्मणोरुभयोरपि गुहाप्रवेशस्य निर्णीतत्वादिति ॥ १९ ॥

स्वात्मना चोत्तरयोः ॥ २० ॥ ननु पूर्वसूत्रेणैवाणुत्वे सिद्धे अस्य सूत्रस्य किं प्रयोजनमत आहुः उत्क्रान्तीत्यादि। एतेषामिति, गत्यन्तानामर्थानाम् । स्वतो वेति एवंप्रकारिकायां शङ्कायां सूत्रमाहेति शेषः । व्याकुर्वन्ति उत्तरयोरित्यादि । अत्राप्यत एवेत्यनुवर्तते। तथाच श्रुतित एव स्वरूपेण गत्यागतिसंबन्धी प्रतीयतेऽतोऽणुरेवेत्यर्थः । ता एव श्रुतीः प्रदर्शयन्ति ऊर्णनाभिरित्यादि। आद्याया अन्यैरनुदाहृतत्वादाथर्वणप्रसिद्ध

रश्मिः।

वचनात्। अन्यथा स वा अयमात्मा ब्रह्मेत्युत्क्रमानन्तरं ब्रह्मत्वं नोक्तं स्यात्। **लिङ्गस्येति** अन्तःशरीरस्थत्वस्य। **उभयोरि**ति। ननु सामानाधिकरण्यं न लिङ्गस्य ब्रह्मसाधारणत्वे कारणमिति चेन्न। धवखदिरौ छिन्धि इत्यत्र एकद्वैधीकरणस्य उभयत्रान्वयादत्र प्रवेशस्योभयत्रान्वयात्। ननु प्रवेशस्य उभयत्रान्वय उच्यते न तु लिङ्गस्येतिचेन्न अन्तःशरीरस्थत्वस्य प्रवेशसाध्यत्वेनान्तःशरीरस्थत्वस्यापि साध्यताख्यसंबन्धरूपलक्षणया प्राप्तेः। न च प्रविष्टावित्यत्र लक्षणापत्तिरिति वाच्यम्। प्रविष्टेन्तःशरीरस्थपदप्रयोगेणान्तःस्थपदेपि लक्षणाभावात् ॥ १९ ॥

स्वात्मना चोत्तरयोः ॥ २० ॥ उत्क्रान्तीत्यादिति । **इन्द्रियादिभि**रिति लिङ्गशरीरेण, आदिशब्देन विद्याकर्मपूर्वप्रज्ञाः अहंकारश्च, मनोमयकोशेन। 'येनैवारभते कर्म तेनैवामुत्र तत्पुमान्, भुङ्क्ते ह्यव्यवधानेन लिङ्गेन मनसा स्वयम्' इति पुरञ्जनोपाख्याने वाक्यात्परिष्वङ्गोप्यस्तीत्यर्थः । **उपाधित** इति लिङ्गदेहात् । ननु स्त्रीत्वविशिष्टोत्क्रान्त्यादिविवक्षायां स्त्रीत्वविशिष्टोत्क्रान्त्यादिर्यत्र तत्राणुर्जीवो यत्र त्वन्यलिङ्गविशिष्टोत्क्रान्त्यादिस्तत्र व्यापको जीव उत्क्रान्त्यादिर्गौणीत्याकाङ्क्षायां लिङ्गाविवक्षार्थं भाष्यमेतेषामित्याशयेन विवृण्वन्ति स्म **गत्यन्ताना**मिति । शरीरविस्मरणोत्क्रान्तिगतिरूपाणां येन केन लिङ्गेन विशिष्टानां शब्दानामर्थानामित्यर्थः। अत्र गतिर्न सौत्री, अपि तूत्क्रान्त्युत्तरगमनं गृह्यते । **व्याकुर्वन्ती**ति ब्रह्मवैलक्षण्यार्थमुत्क्रान्तिपूर्वकत्वमुक्तमिति भाष्यात्तां विहाय व्याकुर्वन्तीत्यर्थः । **अन्यैः** शंकररामानुजमाध्वैर्गत्यागतिविषये श्रुतीनामनुदाहृतत्वं विज्ञाय न्यूनतापूर्त्यै आद्यायाः श्रुतेः। **आथर्वणे**ति ब्रह्मोपनिषत्**प्रसिद्धः**। जीवपदाजीवलिङ्गकः। दृष्टान्ते ऊर्णनाभिर्देहद्वारा स्वस्थितं सृजति यतः, ऊर्णा नाभौ यस्य। **सृजत** इति पदव्यत्यय एवमग्रेप्या**गच्छत** इत्यत्र। **जाग्रत्स्वप्न** इत्येकवद्भावः जाग्रत्स्वप्नयोरित्यर्थः। कर्म तु हृदयम्।

'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य' 'ब्रह्माऽप्येति' 'कामरूप्यनुसंचरन्'इति वा ।

भाष्यप्रकाशः ।

आकार उक्तः । द्वितीया छान्दोग्ये । तृतीया बृहदारण्यके । चतुर्थी तैत्तिरीयाणां भृगूपनिषदि मुक्तिप्रकरणस्था, एवं श्रुतिचतुष्टयेन जीवस्य षडवस्थाः प्रदर्शिताः । तासु जाग्रत्युपाधिपरिष्वङ्गेऽपि स्वप्न इन्द्रियाणां लयेन साक्षिण एव केवलस्य सत्त्वादुपाधिशून्यत्वं, सृष्टावप्येवमनुप्रवेशस्योपाधिसंबन्धघटकत्वादनुप्रवेशदशायां पूर्वं तदभावः । अप्ययः सुषुप्तेरप्युप-

रश्मिः ।

स एतास्तेजोमात्रा इति वक्ष्यमाणश्रुतेः । संहरतीत्यत्र संचरतीत्यपि पाठः । **आकार** इति । यथाशब्दघटितपाठो भाष्ये तु तथाशब्द इत्याकारः । भाष्ये लिखितपाठकत्वस्य दोषत्वात्तथा शब्दः । बाहुलकात् । अन्यथा दार्ष्टान्तिकान्तरापत्तिः । न तु बृहदारण्यकोक्तः । विरोधनिराकरणे वेदत्रय्याः प्रवृत्तेरात्मलिङ्गाच्च चतुर्थ आथर्वण उक्तः । बृहदारण्यकोक्तशारीरब्राह्मणसंबन्धाद्ब्रह्मोपनिषदिति भाष्यम् । बृहदारण्यकपाठस्तु 'स यथोर्णनाभिस्तन्तुनोच्चरेत् यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः' इति ब्रह्मलिङ्गकः । शंकरभाष्योक्तायां 'स एतास्तेजोमात्राः समभ्याददानो हृदयमेवान्ववक्रामति । शुक्रमादाय पुनरेति स्थानम्' इति श्रुतौ गत्यागतिप्रतिपादिकायां । 'कस्मिन्नु रेतः प्रतिष्ठितं भवतीति हृदय इति' इति श्रुतेर्हृदयाच्छुक्रमादाय तु पुनरेति स्थानमित्यागतिः । अत्र दृष्टान्ताभावाद्ब्रह्मजीवविषयकस्पष्टप्रतिपत्तिर्न स्यादतोन्योदाहृता । तेजोमात्रा इन्द्रियाणि, शुक्रं प्रकाशकमिन्द्रियग्रामम् । स्थानं जागरितं स जीव आगच्छति । अन्ववक्रामति स्वापादौ गच्छति । अत्र **भाष्ये** । **ब्रह्मोपनिषदि**त्युक्त्या शारीरकब्राह्मणाविषयत्वात्पक्षान्तरेण श्रुतित्रयमुक्तम् । प्रकृते । **तृतीये**ति श्रुतिः शारीरकब्राह्मणे अर्थस्तु 'सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेन' इत्यस्य भाष्ये । **मुक्ती**ति । नन्वत्र कर्तृसापेक्षश्रुत्युदाहरणे किं प्रयोजनमिति चेन्न । ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येतीत्युक्तेः कर्तुः पूर्वोक्तस्यानुसंधानेनैव सिद्धेः । किंच । संसारावस्था मुक्त्यवस्था वेत्यवस्थाद्वयं तत्रावस्थान्तर्भावात् । तत्र पूर्वश्रुत्योः संसारावस्थावस्थिते गत्यागती उक्ते । मुक्तौ तु श्रुतित्रयेणोच्यते ब्रह्माप्येतीति ब्रह्मप्राप्तिः । येनाशयेन चतस्रः श्रुतय उदाहृतास्तमाहुः **एव**मिति । **षडवस्था** इति जाग्रत्स्वप्नसृष्टिब्रह्मसायुज्यसुषुप्तिमुक्तिरूपाः । तासु स्वात्मनावस्थितिमाहुः **तास्वि**त्यादिना । **उपाधी**ति लिङ्गदेहपरिष्वङ्गे । **लयेने**ति 'यत्रैष सुप्तोभूद्य एष विज्ञानमयः पुरुषस्तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय एषोन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते' इति बृहदारण्यके दृप्तबालाकिश्रुतेरनुभवाच्च । **साक्षिण** इति । ज्ञानज्ञेयानामाविर्भावतिरोभावज्ञानात्स्वयमेवमाविर्भावतिरोभावहीनः स्वयंज्योतिः स साक्षीत्युच्यते तदंशोऽपि साक्षीत्युच्यते 'नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्' इति स्मृतेः । जीवस्थितिस्तूक्ता पूर्वम् । **केवलस्ये**ति । 'अत्रात्मा स्वयंज्योतिर्भवति' इति श्रुतेः । एवं जाग्रत्यपि केषांचित्केवलत्वमिति बोध्यमुक्तस्मृतेः । **सृष्टा**विति मायासंबन्धात्पूर्वं सोहमिति प्रतीतिदशासंबन्धिन्याम् । **उपाधी**ति अनुप्रवेशत्वं नाम उपाधिसंबन्धमनुनिवेशत्वम् । उपाधिर्माया इन्द्रियाणि तन्मात्राश्च । लिङ्गदेह इति यावत् । तस्य संबन्धो जन्यजनकभावः । पश्यँश्चक्षुर्भवतीति श्रुतेः । स च ब्रह्मजीवविभेदेन स्वैकीभूतलिङ्गरूपोपाधिनोपाधेयजीवादेर्जन्यजनकभावः । तथा चानुप्रवेशाय जनयितुं योग्यं यज्जन्यं तज्जनकत्वमित्युपाधिसंबन्धघटकत्वम् । घटकत्वं प्रतीकत्वम् । तथा जन्यं लिङ्गशरीरं तद्वत्तज्जन्यभिदापि भिदा 'मायामात्रमनूद्य'इति वाक्याल्लिङ्गदेहजन्या तस्याः जीवेन विशेष्यविशेषणभावः संबन्धः । अनुप्रवेशार्थं या भिदा तद्वाञ्जीव इत्युपाधिसंबन्धप्रतीकत्वम् । यद्वा ।

भाष्यप्रकाशः ।

लक्षकः, तत्राप्युपाधिलयात् कैवल्यम्, मुक्तौ तु प्राणोऽपि नास्ति बुद्धिरपि, तथाचैतच्छ्रु-

रश्मिः ।

अनुप्रवेशो भिदासाध्यः इत्यनुप्रवेशस्येच्छाया उपाधेरुक्तसंबन्धे तयोर्घटकत्वम् । घट चेष्टायां चेष्टकत्वम् । तथाहि । साकारं ब्रह्म 'यदेकमव्यक्तमनन्तरूपम' इति श्रुत्युक्तं तदभेदो जीवानां सोहमिति प्रतीत्योक्तः सोऽभेदः सदानन्दादपि । कृषिर्भूवाचकः शब्द इति श्रुतेः तस्य जगज्जन्मादिकर्त्री शक्तिः तया चित्क्रीडिषयानन्दतिरोभावः तेन जीवभावः । चिदंशस्य व्यामोहिका शक्तिः चिच्छब्दः तस्य संबन्धे व्यामोहकशक्त्याऽभेददशायां व्यामोहः । तेनाभेदतिरोभावः । किंचानुप्रवेशस्येच्छायाः उक्तोपाधिसंबन्धार्थं साकारब्रह्मणि सा चेष्टा यया सूक्ष्मदेहस्य भिदायाश्चोपादानं तेनोपाधिसंबन्धस्तस्याः कर्तृत्वम् । यथेश्वरसिसृक्षया परमाणुषु चेष्टा । इदमनुप्रवेशस्येच्छायाः उपाधिसंबन्धघटकत्वम् । तस्मादभेदतिरोभावोपि सोहमित्यत्र प्रतीतौ । भिदासंबन्धस्याभेदविघटकत्वं प्रसिद्धम् । तज्जनकलिङ्गदेहसंबन्धस्य च साकारब्रह्मणि स्वरूपभूते वार्थस्य भेदरूपेण परिणामकत्वम् । तदा तत्सृष्ट्वा तदनुप्रवेशो भवति । अन्यथाऽप्रवेश एव । किंचोक्तहेतोरनुप्रवेशदशायां तद्दशायाः पूर्वं तदभावः अभेदाभावः । लिङ्गस्य, पञ्चमहाभूतोत्पत्तेः प्रागुत्पत्तेः 'अन्तराः विज्ञानमनसी' इति सूत्रे समर्थनात् 'न वियत्' सूत्रे भाष्ये च समागमरूपजीवोत्पत्तेरुक्तत्वाच्च । अतएवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वाणि भूतानि सर्व एत आत्मानो व्युचरन्तीति बृहदारण्यके पाठक्रमः । तथा च भिन्नेष्वर्थेष्वनुप्रवेश इति तथा । अभेदोत्तरं भेदे जाग्रत्स्वप्नावित्यवस्थात्रयं । **अप्यय** इति । ब्रह्मैव सन् कूटस्थः सन्नपि:' सहस्थिते जीवे ब्रह्म कर्तृ, एति, आविर्भवतीति । अप्ययः सुषुप्त्यधिकरणे कूटस्थस्तु सर्वोपनिषदि 'ब्रह्मादिपिपीलिकापर्यन्तं सर्वप्राणिबुद्धिरष्टविशिष्टतयोपलभ्यमानः सर्वप्राणिबुद्धिस्थो यदा तदा कूटस्थ इत्युच्यते' इति श्रुत्युक्तलक्षणकः । अष्ट गीतोक्ता भूम्यादयः । संख्यातात्पर्यमष्टस्वरूपाणि । **सुषुप्ते**रिति । जीवे ब्रह्माविर्भावः जीवे सुषुप्तिरिति सामानाधिकरण्येनोपलक्षकः । सुषुप्तिर्हि स्वप्नसृष्टिविषयकज्ञानावान्तरभेदः । सुषुप्तिस्त्वकामरूपो भगवानिति भाष्यात् । तत्रात्मस्फुरणं स्वत एव 'अथ यदा सुषुप्तो भवति यदा न कस्यचन वेद हितानाम नाड्यो द्वासप्ततिसहस्राणि हृदयात्पुरीततमभिप्रतिष्ठन्ते ताभिः प्रत्यवसृप्य पुरीतति शेते' इति श्रुतेः । **उपाधी**ति 'स भूतसूक्ष्मेन्द्रियसंनिकर्षं मनोमयं देवमयं विकार्यम् । संप्राप्य गत्वा सह तेन याति विज्ञानतत्त्वं गुणसंनिरोधं तेनात्मनात्मानमुपैति शान्तमानन्दमानन्दमयोवसाने' इति द्वितीयस्कन्धादप्यये उपाधेर्बुद्ध्यादेर्लिङ्गादेर्वा **लयः** । यदा न कस्यचन वेदेत्युक्तश्रुतेः सुषुप्तौ बुद्ध्यादिलयः । बुद्ध्यादिलयोत्तरभावित्वगुणयोगादप्युपलक्षक इति भावः । **मुक्ता**विति 'मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः' इति वाक्यात्स्वरूपावस्थानं मुक्तिस्तत्र । **अपी**ति सामान्यतो बोध्यते । तत्र विशेषस्तु द्वितीयेनेत्यर्थः । मुक्तिभेदास्त्वत्र शारीरकोक्ताः । 'अयं पुरुष इद५शरीरं निहत्याविद्यां गमयित्वान्यं नवतरं कल्याणतर५रूपं तनुते पित्र्यं वा गान्धर्वं वा ब्राह्मं वा प्राजापत्यं वा दैवं वा मानुषं वान्येभ्यो वा भूतेभ्यः । स वा अयमात्मा ब्रह्म' इत्यत्र तादृशस्य ब्रह्मत्वोक्तेर्मुक्तः । तनुत इत्यस्यात्मोपनिषदात्मरूपाणि शरीराणि विस्तारयतीत्यर्थात् शास्त्ररीत्या मुक्तः । उक्तात्मा वेदान्तेविज्ञानमयः । 'मनोमात्रमिदं ज्ञात्वा' इति वाक्यान्मनोमयः स च 'मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपम्' इति

१. पदार्थसंभावनायामपिः ।

अथवा, उत्क्रान्तिगत्यागतीनां जीवसंबन्ध एव बोध्यते, नाणुत्वम्। स्वात्मना

भाष्यप्रकाशः।

त्युक्तयोर्गत्यागत्योः केवलस्वरूपसाध्यत्वात् स्वतोऽणुरेवेत्यर्थः। अस्मिन् पक्षे सूत्रस्थचकारवैयर्थ्यमित्यरुच्या प्रकारान्तरेण सूत्रद्वयव्याख्यानमाहुः अथवेत्यादि। तथाच पूर्वसूत्रे

रश्मिः।

वाक्याद्भेदे शब्दरूपः। संहितामते संबन्धी वाङ्मयः। अग्निमीळ इति अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशदिति च। यजुःसंहितायां प्रत्यक्षब्रह्म वायुमयः प्राणमयः। छान्दोग्योपकोसलविद्यायां चक्षुर्मयः। असुराणां 'तस्मै दिशे नमस्कृत्य' इति वाक्यात्। श्रोत्रविवरवृत्त्याकाशस्य दिग्देवताकत्वात् श्रोत्रमयः। वेदान्तिमते आकाशमयः आकाशशरीरं ब्रह्मेति 'छिद्रा व्योम्नीव चेतनाः' इति च सिद्धान्त**मुक्तावल्याम्**। अन्यशब्दरूपः पञ्चमहाभूतान्तर्गतवायुमयः। पञ्चमहाभूतान्तर्गततेजोमयः। छान्दोग्यचतुर्थोपदेशरूपः 'अस्य सोम्य महतो यो मूलेभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेत्' इत्यादिः। पृथिवी वा अन्नमिति श्रुतेरन्नमयः पृथिवीमयः। माया च तमोरूपेति श्रुतेश्चतुर्थस्कन्धान्मायिकः क्रोधमयः। वेदान्ते क्रोधेतरज्ञानमयोऽक्रोधमयः। नित्यलीलायां हर्षमयः आनन्दप्राधान्यात्। भीष्मस्य धर्ममयः। कंसस्याधर्ममयः। 'सर्वं सर्वमयम्' इति श्रुतेः सर्वमयः। तन्मयः कुब्जायाः। यन्मयः भक्तानाम्। एतन्मयः सर्वेषाम्। 'भवतीनां वियोगो मे' इत्यत्र स्वभावत इति वचनात्। इदंमयः शरीरमयः। इदमस्तु प्रत्यक्षे रूपमिति कोशात्। अनिर्वचनीयोदोमयः 'यतो वाचो निवर्तन्ते' इत्युक्त्वा 'आनन्दमेतज्जीवस्य यज्ज्ञात्वा मुच्यते बुधः' इति श्रुतेः। तथा च श्रुतिः 'विज्ञानमयो मनोमयो वाङ्मयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमय आकाशमयो वायुमयस्तेजोमय आपोमयः पृथिवीमयः क्रोधमयोऽक्रोधमयो हर्षमयो धर्ममयोऽधर्ममयः सर्वमयस्तद्यदेतदिदंमयोदोमयः' इतीति। अग्रे उक्तरूपेषु पुण्यपापे निरूपयति यथाकारी यथाचारी तथा भवतीत्यादिः। ननु रूपतननं शरीरातिरिक्तमपि मानुषं वेत्युक्तेः तत्किमिति चेन्न। अत्रोत्क्रान्तस्य स वा अयमात्मा ब्रह्मेत्युक्तया नादबिन्दूपनिषदुपतिष्ठते। 'प्रथमायां तु मात्रायां यदि प्राणैर्वियुज्यते। स राजा भारते वर्षे सार्वभौमः प्रजायत' इति। अत्र मात्रास्तिथयः। राजत्वादिकं यथादृष्टं पित्र्यं वा गान्धर्वं वा इत्याद्युक्तं पित्र्यादिरूपमुन्नेयम्। अग्रे 'द्वितीयायां समुत्क्रान्तो भवेद्यक्षो महात्मवान्, विद्याधरस्तृतीयायां गन्धर्वस्तु चतुर्थिकाम्'। चतुर्थिकामित्यत्र सप्तम्या लुक् अम्। चतुर्थिका अमिति पदच्छेदः। 'पञ्चम्यामथ मात्रायां यदि प्राणैर्वियुज्यते। ऊषितः सह देवत्वं सोमलोके महीयते।' ऊषितः स्त्रीभावं प्राप्त इत्याकाशवाणी। 'षष्ठ्यामिन्द्रस्य सायुज्यं सप्तम्यां वैष्णवं पदम्। अष्टम्यां व्रजते रुद्रं पशूनां च पतिं तथा। नवम्यां च महर्लोकं, दशम्यां च ध्रुवं व्रजेत्। एकादश्यां तपोलोकं द्वादश्यां ब्रह्म शाश्वतम्। ततः परतरं शुद्धं व्यापकं निष्कलं शिवम्। सदोदितं परं ब्रह्म ज्योतिषामुदयो यतः' इति। **तत्त** इति त्रयोदश्यादिषु। परब्रह्मविशेषणत्वाच्छिवं पुष्टिरूपसमर्पकम्। शिवमार्गे शिवरूपं परं ब्रह्म। तदा परस्य मायायाऽस्पष्टमतिः। शिवपदस्यान्यार्थकत्वे सोर्थः। विवृतः प्रवाहमार्गः। अग्रेऽये खल्वाहुः काममय एवायं पुरुष इतीति। तत्र ध्यातृध्येयादिसत्त्वाद्विवृतप्रवाहमार्गे तेजोबिन्दूपनिषदुपतिष्ठते। दुःप्रेक्ष्यत्वादिगुणयोगात्। न 'अशून्ये शून्यभावं च शून्यातीतमवस्थितम्, न ध्यानं न च वा ध्याता, न ध्येयो ध्येय एव च' अन्यथा स्वांशानां नातीव मोहेच्छां कुर्यात् अतः कामपरा निरीश्वरा विराजो देहं स्वान् देहांश्च बहुमन्यन्तेऽसुराः 'असत्यमप्रतिष्ठं ते' इति

चोत्तरयोरित्यणुत्वम् । 'अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात्' इति, उत्क्रमे गत्यतिरिक्ते स्वातन्त्र्याभावात् । स्वात्मना जीवरूपेण, चकारादिन्द्रियैश्च गत्यागत्योः संबन्धी जीव इत्यर्थः । अतो मध्यमपरिमाणमयुक्तमित्यणुरेव भवति ॥ २० ॥

भाष्यप्रकाशः ।

षष्ठ्यन्तपदमात्रप्रयोगाद्, उक्तश्रुतिभ्यो ज्ञ उत्क्रान्तिगत्यागतिसंबन्धीति तत्संबन्धरूप एव धर्मो बोध्यते, द्वितीये तु ज्ञः श्रुतिभ्य एव स्वात्मनापि उत्तरयोर्गत्यागत्योः संबन्धीत्यणुत्वं बोध्यते, तदुपपादयन्ति, अङ्गुष्ठेत्यादि । तथाचोक्तस्मृत्या मध्यमपरिमाणत्वेन बोधितस्य जीवस्य 'अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहंकारसमन्वितो यः, बुद्धेर्गुणेन' इति श्रुत्युक्तबुद्धि-

रश्मिः ।

वाक्यात् । अथो खल्वित्युक्त्वाग्रे 'तदेव सक्तस्सह कर्मणैति लिङ्गं मनो यत्र निषक्तमस्य । प्राप्यान्तं कर्मणस्तस्य यत्किंचेह करोत्ययम् । तस्माल्लोकात्पुनरेत्यस्मै लोकाय कर्मणे' इति तु कामयमान इतीति श्रुतिः । अत्र 'यथाकामो भवति तथाक्रतुर्भवति यथाक्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते' । तत्कर्म अभिसंपद्यते इति कर्मादिमार्गत्वान्मर्यादामार्गः 'वेदस्य विद्यमानत्वान्मर्यादापि व्यवस्थिता' इति वाक्यात् । मोक्षजनककर्मकरणान्मुक्तिरिति कर्ममार्गे मुक्तिः 'कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते' इति भगवद्वाक्यम् । कर्ममार्गेणाध्यात्मिकचित्तशुद्ध्या ज्ञानं आधिदैविकचित्तशुद्ध्या भक्तिः । अग्रे 'अथाकामयमानो योऽकामो निष्काम आत्मकाम आप्तकामो भवति न तस्मात्प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' इति श्राव्यते । अत्र निष्कामाप्तकामौ विवरणे । अत्रैवेत्यस्याहरहर्जीवगमनयोग्ये एवेत्यर्थः । ब्रह्मेति श्रुत्यर्थ उक्तः । सुबोधिन्युक्तदिशा त्वत्रैवेत्यस्य यथोक्तेऽर्थे भक्त्या यत्स्वरूपं तत्रेत्यर्थः । 'यद्धिया' इति वाक्यात् । शारीरब्राह्मणत्वादहरहर्जीवगमनयोग्येऽर्थे भावना भक्तिमार्गीयस्य । तस्य तु स्वसेवां त्याजयित्वा शरीरसंबन्धकारणाद्देहसेवाप्राप्त्या तन्निवृत्त्यर्थं शरीरनिविष्टं रूपम् । अत्र साधननिवेशे मर्यादा तदभावे पुष्टिः । हृदयाद्बहिष्ठं वा रूपम् । सद्योमुक्तिरेषा मुक्तिरुक्ता सा अक्षरप्राप्तिरूपा न पुरुषोत्तमप्राप्तिरूपेत्याह **अथायमिति** । अनस्थिको ज्योतीरहितः । प्राज्ञः प्रज्ञ एव प्राज्ञः । ज्योतिषामुदयो यत इत्यनयोक्तः । आत्मा जीवः आनन्दांशषड्गुणानां तिरोभावात् । तथापि ब्रह्मैव, परं भविष्यतीत्यत आह **लोक एवेति** । अक्षर एव न परः । परस्याशरीरवत्त्वेन शारीराविषयत्वात् । अग्रे तदप्येते श्लोकाः । 'अणुः पन्था विततः पुराणः' इत्यादि । उत्क्रान्तीत्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति स्म स्पष्टतया **तथाचेति** । अत एवेति चानुवर्तत इति भाष्ये चकारेण ज्ञ इत्यस्यावृत्तिर्द्योतिता, एवं चात एव ज्ञ उत्क्रान्तिगत्यागतीनामिति सूत्रं जातं तद्व्याकुर्वन्ति स्म **उक्तेति** । **एवेति** । अणुत्वव्यवच्छेदक एवकारः । **बोध्यत** इति । सामान्यतोऽणुत्वं विना बोध्यते तत्राणुत्वविशेषस्तु द्वितीयेनेत्यर्थः । **स्वात्मनेति** भाष्यं स्पष्टतया विवृण्वन्ति स्म **द्वितीय** इति । **श्रुतिभ्य** इति । अत्रापि 'ज्ञोऽत एव' इत्यनुवर्तते । अणुत्वमिति स्वात्मपदेन बोध्यते । ननु जीवो व्यापकोपीति चेन्न । नाणुरिति निषेधात् । व्याख्यातस्य निषेधो युक्तो नाव्याख्यातस्येति । **उक्तस्मृत्येति** । षष्ठस्कन्धे तु 'विकर्षन्तोन्तर्हृदयाद्दासीपतिमजामिलम्' इति पठ्यते । इयमान्यत्रिकी स्मृतिः । **अङ्गुष्ठमात्र** इति । यः संकल्पाहंकाराभ्यां लिङ्गतत्कार्याभ्यां समन्वितः उपलक्षणेन 'अथान्तरात्मा नाम पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशमिच्छाद्वेषसुखदुःखकाममोहविकल्पना

भाष्यप्रकाशः ।

गुणवैशिष्ट्यप्रतीतेर्गत्यतिरिक्ते उत्क्रमे स्वतो गतिसंबन्धित्वाभावात् तद्व्यतिरिक्ते ब्रह्मोपनिषदाद्युक्तस्थले स्वात्मना जीवरूपेण चकारादिन्द्रियैश्च यथासंभवं गत्यागत्योः संबन्धी जीव इत्यर्थो भवतीत्यत आत्मगुणेन चैव "आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्टः" इति पूर्वोक्तशेषात् तथेत्यर्थः ॥ २० ॥

रश्मिः ।

दिभिः स्मृतिलिङ्गैः उदात्तोनुदात्तः ह्रस्वो दीर्घः प्लुतःस्खलितगर्जितस्फुटितचिन्त्यमुदितनृत्यगीतवादित्रप्रलयविजम्भितादिभिः श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः पुराणं न्यायो मीमांसा धर्मशास्त्राणीति श्रवणघ्राणाकर्षणकर्मविशेषणं करोत्येषोन्तरात्मा नामेत्यात्मोपनिषदुक्तैः समन्वितः सोऽङ्गुष्ठमात्रस्तथापि बुद्धेर्गुणेनेत्यौपाधिकी न स्वतः स्वरूपभूतेत्यर्थः । प्रकाशे तु बुद्धेर्गुणेनेति श्रुतिस्तदुक्तं बुद्धिर्गुणवैशिष्ट्यं तस्य प्रतीतेरुत्क्रान्तेर्लिङ्गदेहविशिष्टधर्मत्वेन, गतेः केवलधर्मत्वेन गत्यतिरिक्त उत्क्रमस्तस्मिन्स्वतः लिङ्गदेहरहितः स्वरूपेणोत्क्रमसंबन्धित्वाभावात्तद्व्यतिरिक्ते उत्क्रमव्यतिरिक्त इत्यर्थः । **ब्रह्मेति** ऊर्णनाभिश्रुतौ जाग्रत्स्वप्नयोः स्वप्नस्थले आदिशब्देन छान्दोग्यस्थानेनेति श्रुत्युक्तानुप्रवेशस्थले । बृहदारण्यकस्थब्रह्माप्येतीति श्रुत्युक्तसायुज्यसुषुप्त्योः स्थले, तैत्तिरीयस्थकामरूपीत्युक्तमुक्तिस्थले च । एवं च षडवस्थासु जाग्रत्येव लिङ्गदेहसत्त्वम् । पञ्चसु लिङ्गदेहशून्यत्वमिति सिद्धम् । **चकारादिति** । सद्योमुक्तावत्र ब्रह्मसायुज्यमिति लिङ्गरहिताद्देहाज्जीवगतिः । क्रममुक्तौ तु पारमेष्ठ्यादिं यास्यतो जीवस्य लिङ्गेन सह देहाद्गतिरत इन्द्रियैश्चेत्यर्थः । तदुक्तम् 'निर्भिद्य मूर्धन्विसृजेत्परं गतः । यदि प्रयास्यन्नृप पारमेष्ठ्यं वैहायसानामुत यद्विहारम् । अष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये सहैव गच्छेन्मनसेन्द्रियैश्च'इति द्वितीयस्कन्धे द्वितीयाध्याये परं भगवन्तं गतः सायुज्यं प्राप्त इन्द्रियाणि विसृजेत् प्राणांश्च । न च 'इहैव समवनीयन्ते' इति वाक्यात्प्राणानामत्रैव स्वमूलभूतासन्यरूपेण स्थितिमिच्छन्ति तद्वाक्यं मुक्त्यन्तरपरम् । इहेति शब्दात् । अग्रेऽपि 'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते' इति शारीरकब्राह्मणे जीवन्मुक्तत्वेनापि विनिगमनात् । अत्र तु अग्रे पवनान्तरात्मत्वे तेषां प्राणानामुपयोगः । 'योगेश्वराणां गतिमाहुरन्तर्बहिस्त्रिलोक्याः पवनान्तरात्मनाम्'इत्यत्र 'यदि प्रयास्यन्नृप'इत्युक्तपारमेष्ठ्यादिगमनसामर्थ्यं जीवस्य कुत इत्याकाङ्क्षायां पवनस्यान्तः आत्मा लिङ्गशरीरं येषामिति हेतुकथनात् । **विसृजेदिति** पदाच्च न जीवन्मुक्तिः । **यथासंभवमिति** संभवमनतिक्रम्य जीवन्मुक्तिसद्योमुक्तिक्रममुक्तिषु आद्ययोः स्वात्मना तृतीयस्यामिन्द्रियैर्गतिः । आगतिस्तु स्वात्मनैव नत्विन्द्रियैरित्येवं यथासंभवं गत्यागत्योः संबन्धी जीव इत्यर्थो भवतीत्यर्थः । नन्वस्तु स्वात्मनापि गतिः तथाप्यङ्गुष्ठमात्रत्वे श्रुतिरुक्ताङ्गुष्ठमात्र इति अणुत्वे सूत्रं प्रमाणमुक्तं श्रुतिः किं प्रमाणमत आहुः **अत आत्मेति** स्वात्मनोपाधिना च गत्यागत्योः समर्थनात् । **भाष्ये स्वात्मना** केवलस्वरूपेणेत्यत्रैवकाराभावात् । **पूर्वोक्तेति** । अङ्गुष्ठमात्र इत्याद्युक्तश्रुतिशेषात् 'अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः कामाहंकारसमन्वितो यः । बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्टः' इति श्वेताश्वतरे । **तथेति** श्रौताऽणुत्वमित्यर्थः । **एवं** चात्रोत्क्रान्तिगत्यागतीनां जीवसंबन्धः पूर्वसूत्र उक्त्वा चोत्क्रान्तौ लिङ्गदेहविशिष्टत्वेऽपि उत्तरयोर्गत्यागत्योः स्वात्मनापि संबन्धात् ज्ञः आत्मगुणेन चैवेति श्रुतेरित्युक्तम् । तेन पूर्वोक्तोत्क्रान्तिगत्यागतीनां विशेष उक्तः । ननु श्रुतौ बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चेति चकारेणाङ्गुष्ठमात्रे करणत्वमुभयोरणुत्वमात्रे वा भवतु कथं विभज्यैकैककरणत्वमिति चेन्न । चकारस्त्वर्थ इत्यदोषात् ॥ २० ॥

नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारात् ॥ २१ ॥

जीवो नाणुर्भवितुमर्हति । कुतः । अतच्छ्रुतेः अणुत्वविपरीतव्यापकत्वश्रुतेः । 'स वा एष महानज आत्मा योऽयं विज्ञानमयः' इतिचेन्न ।

भाष्यप्रकाशः ।

नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारात् ॥ २१ ॥ अत्र भाष्यमतिरोहितार्थम् । विषयवाक्यं त्वाद्यं बृहदारण्यके शारीरकब्राह्मणे तत्र च प्रकरणं ब्रह्मण इति सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेनेत्यत्र व्युत्पादितमतो ब्रह्माधिकारस्थम् । द्वितीयं कौशीतकिब्राह्मणे समाप्तौ तस्मादेवंविच्छान्तो दान्त इत्यादिना आत्मन्येवात्मानं पश्येदित्युपक्रम्य पठितं, तदग्रे च इदं ब्रह्मेदं क्षत्रमित्याद्युक्त्वा, इदं सर्वं यदयमात्मेति पठ्यते अतस्तथेति । तथाचान्यत्र जीवपरोऽपि

रश्मिः ।

नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारात् ॥ २१ ॥ **अतिरोहितेति** । भाष्ये **अतच्छ्रुते**रित्यत्र नञर्थो विरोधो विपरीतशब्देनोच्यते । न तद् अणुत्वम् । अतत् अणुत्वाभावः । अणुत्वविरुद्धं अणुत्वविपरीतं यद्व्यापकत्वं तस्य श्रुतेरित्यर्थः । **इतर** इति । अत्रेतरदिति युक्तं विशेष्यनिघ्नत्वाद्यद्यपि तथापि–इतराधिकारादित्यत्रेतर आत्मा तस्याधिकारादिति पुल्लिङ्गेन समासोभिप्रेयते । तस्य च पुंस्त्वात् । स वा एष इत्यस्य बृहदारण्यकस्थत्वेनात्र 'यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्मे'त्यात्मनो विशेष्यत्वेन सूत्रप्रणयनावसरे व्यासस्यात्मन एव हृद्यारूढत्वात् । एतत्सूत्रविषयवाक्ये । न चेदं जीववाचकमिति शङ्क्यम् । 'अस्मिन्सन्देहे गहने प्रविष्टः स विश्वकृत्स हि सर्वस्य कर्ता' इति ब्रह्मलिङ्गात् रामानुजाचार्याणामपि संमतः । **सन्देहे**–सम्यग्देहे । गहने दुर्विभाव्ये । अतः पुलिग इतरशब्दः । तर्हि परं ब्रह्मेति त्यक्तुं शक्यम् । आत्मपदेनैव विशेष्यप्रदर्शनौचित्यादिति चेन्न । आत्मपदस्य कोशादौ बुद्धिमनआदिसाधारण्यादुपपादने तु गौरवम् । अतो जिज्ञासाधिकरणाधिकृतब्रह्मपदत्यागायोगात् परं ब्रह्मेत्येव विशेष्यप्रकरणेनेति । यथा शारीरकब्राह्मणे 'स यत्रायꣳ शारीर आत्मा'इति ब्रह्मप्रकरणे'नैवमेवायं पुरुष इदꣳ शरीरं निहत्य'इत्यग्रे पुरुषशब्दो ब्रह्मपर इति न तु जीवपर इति प्रतिपादितं सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेनेत्यत्र । यथा वा सर्वं जानाति देव इत्यत्र देवपदं युष्मदर्थे प्रस्तावरूपप्रकरणात् । एवमत्र विज्ञानमयशब्दो योगेन ब्रह्मपर इति नियम्यते विज्ञानं जीवस्तत्प्रचुरोत्रात्मा विज्ञानमय इति । इत्येव**मतिरोहितार्थ**मित्यर्थः । इतरः परं ब्रह्म तस्याधिकार इत्युक्तं भाष्ये स एव कथमित्यपेक्षायां स्वरूपासिद्धिवारणायाहुः **तत्र चे**ति । **व्युत्पादित**मिति । प्रथमाध्यायतृतीयपादसमाप्तौ व्युत्पादितम् । 'सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं प्रशास्ति' इति श्रुत्युक्तपत्यादिधर्माणां जीवेऽभावाद्ब्रह्मप्रकरणमिति । शांकरास्तु विरजः पर आकाशादिति श्रुतेर्ब्रह्माधिकारमाहुः । रामानुजा यस्यानुवित्त इति श्रुतेराहुः । **द्वितीय**मिति । योऽयं विज्ञानमयः प्राणेष्विति । शारीरके तु 'स वा एष महानज आत्माप्यजरोमरोभयोमृतः' इति पठ्यते । कथमत्र व्यापकत्वश्रुतिरत आहुः **तदग्र** इति । **अतस्तथे**ति । सर्वत्र जीववाचकात्मरूपत्वविधानात्तथा व्यापकत्वेन श्रुतः । कुतोऽत्र प्रकरणं ब्रह्मण इति चेन्न । आत्मन्येवात्मानं पश्येदित्युपक्रमात् । आत्मनि जीवे मनसि वात्मानमीश्वरम् । 'य आत्मनि तिष्ठन्' 'स मानसीन आत्मा जनानाम्' इति श्रुतिभ्याम् । **अन्ये**त्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति **स तथा चे**त्यादि ।

इतराधिकारात् । इतरः पर ब्रह्म तस्याधिकारे 'महानज' इति वाक्यं प्रकरणेन शब्दाश्च नियम्यन्ते । अन्यपरा अपि योगेन ब्रह्मपरा भविष्यन्ति ॥ २१ ॥

स्वशब्दोन्मानाभ्यां च ॥ २२ ॥

'स्वयं विहृत्य स्वयं निर्माय स्वेन भासा स्वेन ज्योतिषा प्रस्वपिति' इति स्वशब्दोऽणुपरिमाणं जीवं बोधयति । न हि स्वप्ने व्यापकस्य वा शरीरपरिमाणस्य वा विहरणं संभवति । 'बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य तु । भागो जीवः

भाष्यप्रकाशः ।

विज्ञानमयशब्दोऽत्र विज्ञानप्राचुर्यं बोधयन्ब्रह्मपरः । प्राणेषु स्थितिस्तु ब्रह्मधर्म एव 'यः प्राणेषु तिष्ठन्' इत्यन्तर्यामिब्राह्मणात् ।

भिक्षुस्तु ना पुरुषो जीव इति यावत्, सोऽणुः । कुतः । उत्क्रान्तिगत्यागतीनां ताभ्यः स्वात्मना विशिष्टयोर्गत्यागत्योस्ताभ्य इत्येवं पूर्वसूत्रापेक्षितसाध्यनिर्देशमत्राङ्गीचकार । तन्न । पक्षबोधकपदवैयर्थ्यप्रसङ्गात्, ताभ्य इतिवद् आत्मपदस्याप्यनुवृत्तिसौकर्यात् । अतः पूर्वोक्तमेव व्याख्यानं युक्तम् ॥ २१ ॥

स्वशब्दोन्मानाभ्यां च ॥ २२ ॥ उद्धृत्य वस्त्वन्तरं पृथक्कृत्य मानमुन्मानम् । भाष्यमत्रापि निगदव्याख्यातम् । स्वशब्दविषयवाक्यं बृहदारण्यके ज्योतिर्ब्राह्मणे । उन्मान-

रश्मिः ।

विषयवाक्ये **विज्ञाने**ति मयटा । **ब्रह्मपर** इति 'यथाग्नेः क्षुद्रा' इति श्रुत्युक्त आत्मवाचकः । **प्राणेष्विति** योयमित्यस्याग्रे तिष्ठतीति क्रियापदाध्याहारात् **स्थितिस्तु** । तिष्ठतेरध्याहारे श्रुतिमाहुः **य** इति । तथा च विज्ञानमयश्रुतिरपि न ब्रह्मप्रकरणबाधिकेति भावः । **उत्क्रान्तीति** उत्क्रान्त्यादिसंबन्धिनीभ्य**स्ताभ्यः** श्रुतिभ्यः । एवमग्रेपि । **पूर्वसूत्रेति** पूर्वसूत्रयोरपेक्षितं यत्साध्यं सोणुरित्यत्र स इति पक्षः । अणुः **साध्यं** तस्य **निर्देशम्** । उत्क्रान्तिगत्यागतीनां ताभ्य इति स्वात्मना विशिष्टयोर्गत्यागत्योस्ताभ्य इति च हेतू । सूत्रशेषं तु सर्ववत् । **पक्षे**ति नृपदवैयर्थ्येत्यर्थः **अनुवृत्ती**ति नात्माश्रुतेरिति सूत्रान्मण्डूकप्लुत्या स्वात्मनेति सूत्राद्वानुवृत्तिसौकर्यात् । न च सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्रेत्युक्तया दृष्टस्यात्मवाचकनृपदस्य सत्त्वान्नानुवृत्तिरिति **शङ्क्यं** 'स्वात्मना चोत्तरयोः' इति स्वशब्दं पश्यन्भगवान्व्यासो नृपदं न वदेदित्यत्र तात्पर्यात् । **पूर्वोक्तमिति** अणुत्वाभावसाध्यकं जीवपक्षकं अतच्छ्रुतिहेतुकम् । यन्नैवं तन्नैवं घटादिवदिति व्यतिरेक्यनुमानम् । **एवकार**स्त्वतच्छ्रुतेरिति प्रसिद्धहेतुविरोधात् ॥ २१ ॥

स्वशब्दोन्मानाभ्यां च ॥ २२ ॥ **वस्त्वन्तरमिति** । श्रौतदृष्टान्तेन तावदवयविनोऽवयवमुद्धृत्य **वस्त्वन्तरं** खर्वादिकं **पृथक्कृत्य** । **मानं** मध्यमपरिमाणं तथा बालात् जीवमुद्धृत्य मानमणुत्व **उन्मानम्** । **निगदेति** स्वशब्देन **व्याख्यातम्** । **ज्योतिर्ब्राह्मण** इति । **स्वयं निर्माये**ति । न च स्वप्ने ईश्वरः कर्तेति जीवकर्तृत्वं कथमिति चेन्न । स समानः सन् जीवतुल्यः सन् क्रीडतीति तथोक्तम् । आत्मनो जीवस्य भगवानेव ज्योतिरिति 'सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेन' इति सूत्रभाष्याच्च । 'अत्रात्मा स्वयंज्योतिर्भवति' इति श्रुतेः 'स्वेन भासा स्वेन ज्योतिषा' इति । उभयं जीवतुल्यत्वात् । **भाष्ये व्यापकस्ये**ति तद्देशमात्रावच्छेदेनेति बोध्यम् । **शरीरे**ति शरीरधर्मत्वेन । **परिमाणस्ये**ति

स विज्ञेयः' इति 'आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्टः' इति चोन्मानम्। चकारात् स्वप्नप्रबोधयोः संधावागतिदर्शनम् ॥ २२ ॥

अविरोधश्चन्दनवत् ॥ २३ ॥

अणुत्वे सर्वशरीरव्यापि चैतन्यं न घटत इति विरोधो न भवति

भाष्यप्रकाशः।

वाक्यद्वयं तु श्वेताश्वतरोपनिषदि पञ्चमाध्याये। संधावागमनदर्शनमपि ज्योतिर्ब्राह्मणे 'तस्य वा एतस्य पुरुषस्य' इत्युपक्रम्य 'संध्यं तृतीयꣳस्थानं तस्मिन् संध्ये स्थाने तिष्ठन्नुभे स्थाने पश्यतीदं च परलोकस्थानं च' इति। अत्र जीवस्याणुत्वस्थापनेन श्रुतिगीतोक्ता जीवानां शाश्वताऽपि सूचिता। तत्र हि।

'अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगता-
स्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव! नेतरथा।
अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्
सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया' ॥

इति श्लोके 'यदि सर्वगतास्तर्हि न शास्यतेति नियमः' इति तर्ककथनादणुत्वस्य भगवच्छास्यताघटकत्वबोधनेन 'ध्रुव नेतरथा' इति भगवतोऽणुत्वे जीवस्य व्यापकत्वे चोक्तनियमभङ्गव्युत्पादनार्थम् 'अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्' इति कथनाज्जीवतत्त्वं यन्मयमजनि तत् स्वकारणं ब्रह्मस्वरूपमविमुच्य किं नियन्तृ भवेदिति काक्वा नियन्तृत्वाभावबोधनेन काक्वनङ्गीकारपक्षेऽपि कारणमविमुच्य नियन्तृ भवेदिति कारणात्यागेन नियन्तृत्वाङ्गीकारे 'सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया' इत्यनेन ब्रह्म सर्वत्र सममैकात्म्यवादेन सर्वत्र सममित्येवं ब्रह्म लक्षीकृत्य जानतां यन्नियन्तृत्वं मतदुष्टतया अमतमसंमतमिति बोधनेन चाणुत्वनियमत्वे दृढीकृते इति साऽपि सूचिता। एतेन ब्रह्मस्वरूपमादायैकात्मवादो जीवस्वरूपमादाय नानात्मवाद इति सिद्ध्यति। एतदेव, 'अंशो नानाव्यपदेशात्'इत्यत्र स्फुटीभविष्यति ॥ २२ ॥

अविरोधश्चन्दनवत् ॥ २३ ॥ ननु जीवस्याऽणुत्वे जलावगाहादौ सकलशरीरव्यापिशैत्याद्यनुपलब्धिप्रसङ्ग इति शङ्कायामिदं सूत्रमित्याशयेन व्याकुर्वन्ति अणुत्व इत्यादि। तथाचैतद्दृष्टान्तेन एकदेशस्थत्वेऽपि सकलशरीरव्यापिशैत्याद्युपलब्धिः सामर्थ्यव्याप्त्या घटि-

रश्मिः।

तथा। **उन्माने**ति। तत्र **बालः** केशः। 'कृष्णाजिनं ब्रह्म' इति श्रुतेर्ब्रह्मत्वादग्रभागस्य शास्त्रदृष्ट्या बृहत्त्वादभिवृद्धिः तया शतभागे बालस्तस्य भागस्य शतधाकल्पनम्। अतोऽत्र **शतधा कल्पितस्ये**ति भागविशेषणम्। आराग्रं तु तोत्रप्रोतायःशलाका। **संधावि**ति। **भाष्ये चकारादित्यादिनोक्तम्**। **तस्य वा** इति प्रकृतस्य वै प्रसिद्धस्य द्वे एव स्थाने भवतः एकमिदं परिदृश्यमानं जन्म जाग्रत्स्थानम्। द्वितीयं तु परलोकस्थानं सुषुप्त्याख्यं, न तु जन्मान्तररूपं, तयोः संधौ स्वप्नाभावात्। एवं च जाग्रत्सुषुप्त्योः संधौ भवं **संध्य तृतीयं** स्वत्रयाणां पूरणं **स्वप्नस्थान**मित्यर्थः ॥ २२ ॥

अविरोधश्चन्दनवत् ॥ २३ ॥ **सकले**त्यादि। **उपलब्धि**र्ज्ञानं जीवे चैतन्यगुणत्वात्। तदभावोऽपि जीव इति तथा। हृदि जीवे उपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्ग इति भावः। यत्तु संयोगस्यावयविनिष्ठत्वादवयविनश्चैकत्वात्कृत्स्नत्वङ्निष्ठतामाहुस्तन्न संयोगस्याव्याप्यवृत्तित्वादतस्तेनाविरोधो न सिद्ध्यति तस्माद्व्यासैः प्रकारान्तरमन्वेषणीयं तदाहुः **सामर्थ्ये**ति। स्वभावरूप-

चन्दनवत् । यथा चन्दनमेकदेशस्थितं सर्वदेहसुखं करोति, महातप्ततैलस्थितं वा तापनिवृत्तिम् ॥ २३ ॥

अवस्थितिवैशेष्यादितिचेन्नाभ्युपगमाद्धृदि हि ॥ २४ ॥

चन्दने अवस्थितिवैशेष्यमनुपहतत्वचि सम्यक्तया अवस्थानं तस्मात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

ध्यत इत्यर्थः । अयं च दृष्टान्तः सामर्थ्येन व्याप्तिं बोधयति । चन्दनावयवानां सूक्ष्मत्वेन सर्वत्र प्रसर्पणाङ्गीकृतौ शरीरे तैले च तत्र तत्र स्थित्याऽन्यत्र मध्ये मध्ये तापोपलम्भस्य दुर्वारत्वात्, उन्मानश्रुतिशेषे वाक्ये 'स चानन्त्याय कल्पते' इति सामर्थ्यस्यैव क्लृप् सामर्थ्य इति धातुना बोधनाच्चेति बोध्यम् । अतो 'ज्वरं हन्ति शिरोबद्धा सहदेवीजटा यथा'इत्यादौ यथा प्रभावाख्येन सामर्थ्येन ज्वरं हन्तीति वैद्यकेऽङ्गीक्रियते तथा चन्दनमपीति हृदयम् ॥ २३ ॥

अवस्थितिवैशेष्यादिति चेन्नाभ्युपगमाद्धृदि हि ॥ २४ ॥ ननु चन्दनदृष्टान्तेन सामर्थ्यव्याप्तिसाधनमयुक्तम् । चन्दन एकदेशस्थायित्वस्य प्रत्यक्षतो निश्चितत्वेन तत्र व्यापनसामर्थ्यकल्पनायाः सर्वदेहव्यापिशैत्यप्रत्यक्षबलेन युक्तत्वात् । जीवे तु शरीरैकदेशस्थायित्वस्य प्रत्यक्षेणानिश्चयाद् दृष्टान्तवैषम्येण तादृशसामर्थ्यसिद्ध्यभावादित्याशङ्कायामिदं सूत्रमित्याशयेन

रश्मिः ।

वस्तुसामर्थ्येन व्याप्त्या सामर्थ्यस्य वा । ननु चन्दनावयवैरेव व्याप्तिरस्तु कृतं सामर्थ्यव्याप्त्येत्यत आहुः अयं चेति । ननु सामर्थ्येन व्याप्तिः सूत्रे गृहीता सा कुतः, पूर्वसूत्रेष्वदर्शनादित्याकाङ्क्षायां हेतुद्वयमाहुः **चन्दनेति** । **तापेति** तापोपलम्भप्रसङ्गस्य । अतः सामर्थ्यव्याप्तिः स्वीकार्या तेन च न दृष्टान्तवैषम्यमिति भावः । एवं दृष्टान्तबलेन सामर्थ्यव्याप्तिं ग्राह्यत्वेन साधयित्वा श्रुत्या साधयन्ति स्म **उन्मानेति** बालाग्रेत्यादि पादत्रयं भाष्य उपन्यस्तं **तच्छेषे** तच्चतुर्थपादात्मके **वाक्ये** । **बोध्यमिति** तेन **स च** जीव **आनन्त्याय** सकलदेहव्याप्त्यै **कल्पते** सामर्थ्यवान् भवतीति श्रुतेरर्थः । दृष्टान्ते चन्दनपदमुपलक्षकमित्याशयेन दृष्टान्तान्तरमाहुः **अत** इति । **सहदेवीति** 'सहदेवी तु सर्पाक्ष्याम्'इति विश्वः तस्या जटा । **प्रभावेति** प्रभावः स्वभावः स च परिणामहेतुः 'प्रभावो जलभूमौ स्याज्जन्मभूमौ पराक्रमे' इति विश्वः । प्रभव इति पाठेस्याविषयः । प्रभावः आख्या यस्य तेन । मणिमन्त्रौषधीनामचिन्त्यप्रभावः । **इति हृदयम्** सकलदेहव्यापिचैतन्यस्याविरोधः विरोधो न भवति । विरोधप्रतियोगिकाभावोऽस्ति । सामर्थ्यव्याप्तेः चन्दनवदित्यर्थः । यत्र यत्सामर्थ्यं तत्र तत्कार्यदर्शनाविरोध इति व्याप्तिः । घटादौ जलधारणसामर्थ्येऽपि सकलदेहगतशैत्यकार्यदर्शकत्वप्रसङ्ग इत्यतः यत्तदोरुपादानम् । अथवा । अविरोधः फलिष्यति । स च साध्यते । एवं च जीवः सामर्थ्यव्याप्तिमान्, एकदेशस्थत्वेपि सकलदेहव्यापिचैतन्याद्युपलब्धेः चन्दनवदित्यनुमानेनाविरोध इति सूत्रार्थः । अत्र साध्यतावच्छेदकः संबन्ध आश्रयता हेतुतावच्छेदकस्तु संबन्धः स्वविषयाश्रयता । तेन मनसि आश्रयतया हेतुसत्त्वेऽपि स्वमुपलब्धिस्तद्विषयश्चैतन्यादिस्तदाश्रयो जीवचन्दनादिर्न मन इति न साधारण्यम् । चैतन्यत्वेन शैत्यत्वेनेत्येवं हेतुघटकम् । अन्यथैकतरमादाय गौरश्वत्वादितिवद्दुष्टो हेतुः स्यात् । यथाश्रुतविवक्षणे त्वेकतरमादाय ह्रदो द्रव्यं धूमादितिवत्स्यात् ॥ २३ ॥

अवस्थितिवैशेष्यादिति चेन्नाभ्युपगमाद्धृदि हि ॥ २४ ॥ पूर्वोक्तानुमाने हेतौ विशेषणाभावप्रयुक्तविशिष्टाभावं मत्वा स्वरूपासिद्धिस्तां निरस्यतीत्याहुरित्याशयेन भाष्यमवतारयन्ति

त्वच एकत्वात् तत्र भवतु नाम, न तु प्रकृते तथा संभवतीति चेन्न । अभ्युपगमात् । अभ्युपगम्यते जीवस्यापि स्थानविशेषः । हृदि हि । हृदि जीवस्य स्थितिः । गुहां प्रविष्टाविति हि युक्तिः ॥ २४ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

व्याकुर्वन्ति **चन्दन** इत्यादि । **भवतु नामेति** कल्प्यमानं सामर्थ्यं भवतु नाम । **न संभवतीति** प्रत्यक्षेणैकदेशावस्थानस्यानिश्चयादनुमानेन साधने तु चैतन्योपलम्भरूपस्य कार्यस्य त्वग्वन्नभोवद्वा जीवस्वरूपव्याप्त्याऽपि संभवात् तस्य व्यभिचारितया हेतुत्वानुपपत्त्या न संभवति । **हृदीति** 'कतम आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु, हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः' 'स वा एष आत्मा हृदि' 'हृद्येष आत्मा' इत्यादिश्रुतेरित्यर्थः । **युक्तिरिति** ब्रह्मभिन्नत्वेन हृदयप्रवेशे युक्तिः । तथाच चन्दनवज्जीवस्याप्येकदेशावस्थितेः शब्दान्निश्चये तस्य त्वगादिवत् स्वरूपव्याप्तेर्वक्तुमशक्यत्वेन

रश्मिः ।

स्म **नन्विति** । **चन्दन इत्यादीति** । उपहते केशश्मश्र्वादित्वचि अवस्थितं चन्दनं न तथेति । अनुपहतत्वं त्वचि विवक्ष्यत इति भावः । किमवस्थितेर्वैशेष्यमित्यपेक्षायां तदाहुः **सम्यक्त्वयेति** । प्रत्यक्षगोचरत्वेनेत्यर्थः । तथा च प्रत्यक्षगोचरत्वं वैशेष्यमिति भावः । **न संभवतीति** प्रकृते तथा न संभवतीति प्रतीकमिदं मनःस्थितम् । **अनुमानेनेति** जीवः व्यतिरेकवान् स्वाधिकदेशवृत्तिकार्यत्वात्, अणुत्वादिमत्त्वात्, गन्धवत् । जीव एकदेशवृत्तिः कार्योपलम्भात्, चन्दनबिन्दुवत् । अत्र कार्योपलम्भत्वेनैकदेशवृत्तित्वेन व्याप्तिः । कार्यं चैतन्यचैत्यादि भाक्तं मुख्यं च । तेन दृष्टान्तेनासंभवः । हेतुतावच्छेदकसंबन्धस्तु स्वविषयाश्रयताख्यः । नैयायिकानां तु समवायाख्यः । तैरात्मनि ज्ञानोत्पत्तिरङ्गीक्रियते न मनसीति । मनोवृत्तयः कामः संकल्प इत्याद्युक्ताः । न मनोरूपाः । कामः संकल्प इत्युक्त्वा इत्येतत्सर्वं मन एवेति श्रुतौ मनोभेदान्वयेऽपि सप्तम्या लुक्स्वीकारात् । अभेदपक्षोत्र नास्ति । **त्वग्वदित्यादि** । जीवः स्वरूपेण व्यापी कार्योपलम्भात् त्वग्वन्नभोवद्वेत्यनुमानान्तरेण जीवस्य स्वरूपेण व्याप्त्या हेतौ, किंच न तु सामर्थ्येन न वा गुणेनेत्यर्थः । अत्रापि हेतुतावच्छेदकः संबन्धः पूर्वोक्त एव । अपिशब्देनोक्तमेकदेशवृत्तित्वसाध्यककार्योपलम्भहेतुकानुमाने हेतुः साधारणः । साध्यमेकदेशवृत्तित्वं तद्वान् चन्दनबिन्दुस्तदन्ययोस्त्वङ्मनसोः स्वरूपेण देहव्यापिनोः कार्योपलम्भसत्त्वात् । कार्यं स्पर्शः शब्दश्च त्वचि सकलदेहावच्छेदेन स्वविषयाश्रयतासंबन्धेन कार्योपलम्भात्स्वरूपेण व्यापित्वं दृष्टम् । एवं तत एव हेतोराकाशस्य देहव्यापित्वमिति । **तस्येति** चैतन्योपलम्भस्य सामान्यतस्तु ग्रहणे कार्योपलम्भस्य चेत्यर्थः । **व्यभिचारितयेति** साधारणतया त्वङ्मनसोः साध्याभाववद्वृत्तितया । **कतम** इति । बृहदारण्यके ज्योतिर्ब्राह्मणे । कतम आत्मेतीति पाठः विज्ञानमयः पुरुषः प्राणेष्विति पाठश्च । **ब्रह्मेति** । प्रविष्टाविति द्विवचनाद्भेदः 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य' इति वा यथालिखितपाठकस्य पाठकाधमत्वोक्तेः । भाष्ये **युक्तिरिति** सौत्रहिशब्दार्थः । यदि भिन्नः सन् प्रविष्टो न स्यादणुर्न स्यादिति । अणुत्वबोधकागमानुरोध्यन्यथाज्ञानरूपस्तर्कः । यद्वा श्रुतिः 'ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे । छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः' इति कठवल्ल्याम् । अर्थस्तु 'गुहां प्रविष्टौ' इत्यधिकरणे स्पष्टः प्रथमाध्याये द्वितीयपादे । छायातपौ सूर्यचन्द्रपृथ्वीछायाः । ज्योतिषे सूर्यचन्द्रग्रहयोः पृथ्वीछाया गच्छतीत्युक्तं पर्वणि । सूर्यचन्द्रपृथ्वीरूप**ब्रह्मभिन्नत्वेनेति** भाष्यप्रकाशार्थः । युक्तिस्तूक्तैव हिशब्दार्थः । **स्वरूपेति** जीवस्वरूपेण **व्याप्तेः** ।

गुणाद्वाऽऽलोकवत् ॥ २५ ॥

जीवस्य हि चैतन्यं गुणः । स सर्वशरीरव्यापी । यथा मणिप्रवेकस्य कान्तिर्बहुदेशं व्याप्नोति तद्वत् । प्रभाया गुणत्वमेव स्पर्शानुपलम्भात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

चैतन्योपलम्भे तत्सामर्थ्यस्य हेतुत्वोपपत्तौ दृष्टान्तवैषम्याभावात् सामर्थ्येन व्याप्तिसाधनं युक्तमेवेत्यर्थः । अत्र पूर्वसूत्रादविरोधपदस्यानुवृत्तौ हृद्यभ्युपगमादविरोध इति सूत्रान्वयो बोध्यः ॥ २४ ॥

गुणाद्वाऽऽलोकवत् ॥ २५ ॥ ननु भवत्येवं सामर्थ्येनाविरोधस्तथापि वैशेषिकः कथं मंस्यते । स हि चैतन्यगुणकमात्मानं मन्यते । तच्च सकलशरीरे सुखाद्यनुभवात् तद्व्याप्येवेति निश्चीयते, गुणश्च गुणिमात्रवृत्तीति रूपरसादिष्वनुभूतम् । अतश्चैतन्यस्य तावद्व्याप्त्या **सर्वशरीरव्यापी** जीवात्मा मन्तव्यः । यदि हि चन्दनवत् सहदेवीजटावद् वा सामर्थ्येन व्याप्नुयात् तदा तस्य चैतन्यगुणो न सर्वत्रानुभूयेत । नच श्रुतिबलात् तथापक्षपातो युक्तः । तस्या हृदयं विशेषतो जीवस्य वृत्तिलाभस्थानमित्येतत्परत्वेन नेतुं शक्यत्वात् । प्रत्यक्षस्य तु वस्तुमात्रग्राहकत्वेनान्यथा नयनमशक्यम् । अतस्तस्य प्राबल्यान्न सामर्थ्येनाविरोधः शक्यवचन इत्याशङ्कायां प्रवृत्तमिदं सूत्रमित्याशयेनोपन्यस्य व्याकुर्वन्ति **जीवस्य हीत्यादि** । अत्राप्यविरोध इत्यनुवर्तते । तथाच बहुप्रदेशव्यापिमणिप्रवेककान्तिवत् सर्वशरीरव्यापिचैतन्यगुणादविरोध इत्यर्थः । एवं व्याख्यानेन आलोकवदिति पदच्छेदो बोधितः । ननु प्रभादृष्टान्तोऽनुपपन्नस्तस्या मणिजनितविरलसजातीयद्रव्यान्तरत्वात् सूर्यादिप्रभावदित्याकाङ्क्षायामाहुः **प्रभाया**

रश्मिः ।

तत्सामर्थ्यस्येति जीवसामर्थ्योपलम्भस्य चैतन्योपलम्भस्य । सामान्यतस्तु कार्योपलम्भस्य । **अत्रेति** समाधानसूत्रांशे । **अविरोध** इति दृष्टान्ताविरोधः तथा चानुपहतत्वगवस्थितेरवस्थितिविशेषत्वात् स्थानविशेषत्वात् दृष्टान्तविरोध इति चेन्न । अनुभवेन हृद्यवस्थितेरभ्युपगमाद्दृष्टान्ताविरोधो हि युक्त्यापि स इति सूत्रार्थः ॥ २४ ॥

गुणाद्वाऽऽलोकवत् ॥ २५ ॥ **वैशेषिक** इति नैयायिकभेदः । **आत्मानमिति** द्रव्यम् । **सुखादि** सुखाद्यष्टगुणत्वमात्मनः । **चैतन्यस्येति** कार्यरूपं पूर्वमुक्तं चतुर्विधनित्यज्ञानमध्ये चतुर्थं जीवधर्मरूपमुच्यते तस्य । **सहदेवीति** 'ज्वरं हन्ति शिरोबद्धा सहदेवीजटा यथा' इति तद्वत् । नेति गुणस्य स्वाश्रयाधिकदेशवृत्तित्वाभावान्न **सर्वत्रानुभूयेत** । **न चेति** श्रुतिस्तु 'कतम आत्मा' इत्युक्ता । **तथेति** कार्यचैतन्येन जीवव्याप्ति**पक्षपातः** । **शक्यत्वा-दिति** कार्यचैतन्येन व्याप्तिबोधकपदाभावेन तथा । ननु श्रुत्यनुगृहीतप्रत्यक्षबलाद्धार्दजीवसामर्थ्येन व्याप्तिर्युक्तेत्यर्थापत्त्या कार्यचैतन्येन व्याप्तिबोधकं पदं कलयित्वा नेतुमशक्यत्वं तस्या इति चेत्तत्राहुः **प्रत्यक्षस्येति** । अस्तु तथा कार्यप्रत्यक्षेण निर्वाहोऽर्थापत्त्या परं तुशब्दस्यानाप्तोक्तत्वेन गुणानुभवस्येत्यर्थः । **वस्त्विति** । यथार्थमिति शेषः । **प्रवृत्तमिति** नैयायिकव्यापकत्वखण्डनाय प्रवृत्तम् । **बह्विति** । एतदर्थं मणिश्च कान्तिसंबन्धवान् प्रवेकश्च कान्तिगुणः कान्तित्वविशिष्टः । **अर्थ** इति भाष्यानुसारी सूत्रार्थः । **मणीति विरलत्वं** प्रसृतत्वं साजात्यं च मणित्वेनान्यथा मणेस्तेज इतिवन्मणिस्तेज इति सामानाधिकरण्यप्रतीतिर्न स्यात् । मणिरत्र सर्वत्र व्याप्तकान्तिर्न तु कान्तिमान् द्रव्यं च । एवं प्रभाद्रव्यमपि । **प्रभाया इत्यादीति** । अपां पुष्पे सूर्यश्चन्द्रमाश्च

उद्कगतौष्ण्यवत् । नच विजातीयस्यारम्भकत्वम्, प्रमाणाभावात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

इत्यादि । तथाच सूर्यादिप्रभायां स्पर्शोपलम्भाद् द्रव्यान्तरत्वमपि संदेग्धुं शक्यम् । मणेस्तु पार्थिवत्वेन तत्र किरणरूपद्रव्यजनकत्वस्य तत्प्रसारकत्वस्य वाङ्गीकारे बहुकल्पनापत्तेः । यदि जननं तदा पूर्वं मणितो बहिरागतानामवयवानां बहिःस्थत्वान्मणिपिधानदशायामपि तदनुभवापत्तिर्मणिनाशेऽपि तत्स्थित्यापत्तिस्तदसमवायिनिमित्तयोरत्यन्तापरिदृष्टयोः कल्पनापत्तिस्तन्निर्वचनाशक्तिश्च । यदि प्रसारणं तदा मणेश्चेतनत्वापत्तिः स्वत आकुञ्चनप्रसारणक्रिययोश्चेतन एव दृष्टत्वात् । नच लज्जावत्याख्य औषधविशेषे पुरुषच्छायापातमात्रेण स्वाकुञ्चनस्य तदपसरणे प्रसारणस्य च दर्शनान्नैवमिति शङ्क्यम्, तस्यापि जीवत एव तादृशक्रियावत्त्वात् । अन्यथा उत्खाय गृहानीतेऽपि तत्र तादृशक्रियापत्तेः । अतः पक्षद्वयस्याप्यसंगतत्वान्मणिप्रभाया द्रव्यत्वं न शक्यवचनम्, उद्कगतौष्ण्यवत्, यथोष्णोदके तेजोरूपानुपलब्ध्या केवलगुणनिश्चयस्तथात्र स्पर्शानुपलब्ध्येति । ननु माऽस्तु मणेः प्रभाख्यद्रव्यजनकत्वादिकम्, तत्र मणिविजातीयमेव द्रव्यमारम्भकमङ्गीकार्यम्, यथा चिन्तामण्यादेर्निमित्तान्नानावस्तूनामाकाङ्क्षितानामुत्पत्तिस्तथेति चेत् तत्राहुः न चेत्यादि । यदि तथा स्यात् तदा मणिसमवधाननिवृत्तौ

रश्मिः ।

प्रभाहीनौ **आरणात्** । 'यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्' इति वाक्यात्तत्रत्यप्रभाया गुणत्वं भगवद्गुणत्वं, एवकारेण द्रव्यत्वव्यवच्छेदः । ईश्वरस्य सावयवत्वापादकत्वात् । ननु गुणत्वे प्रभायां स्पर्शोपलम्भो न स्यात् गुणे गुणानङ्गीकारादिति चेत्तत्राहुः **स्पर्शेति** । भगवत्तेजस्येव रूपं भगवतोऽग्निरूपादुष्णत्वेनाऽशीतत्वेन मणिप्रवेके भगवत्तेजोंशसंभवे रूपमनुष्णाशीतत्वेन परिणमते न तु प्रभायां स्पर्शत्रयमस्ति रूपातिरिक्तगुणाभावात् । स्पर्शस्य वायुसूक्ष्मावस्थात्वेन तेजस्यनुपलम्भात् । तत्र दृष्टान्तमाहुः **उद्केति** । शीतस्पर्शो जल इत्यग्नितेजःसंबन्धादुष्णत्वेन परिणमत इति मन्तव्यम् । तद्वदत्राग्नितेजोऽभिन्ननिमित्तोपादानम् । द्रव्यत्वेन गुणत्वेन वैजात्यं मम तु साजात्यं कपालरूपत्वेन घटरूपत्वेनेत्येवं शङ्कामाहुः **न चेत्यादि, शङ्क्य**मिति ज्ञेयम् । **प्रमाणे**ति मनसाप्याकलयितुमशक्यरचनस्य जगतः कर्तुः स्वीयस्यैतादृशस्थले वैजात्यकरणे **प्रमाणाभावात्** । यथा स्वस्य ज्ञानरूपत्वेन गुणत्वं न द्रव्यत्वमित्येवं तेजसस्तद्गुणस्याभेदपक्षे गुणत्वम् । अन्यथाऽभेदो न स्यात् । तदेतदाहुः **तथाचे**त्यादिना । भगवदीयायां परिणत**स्पर्शोपलम्भाद्**गुणाश्रयत्वेनावयवानां गुणिनां द्रव्यान्तरत्वमपि प्रत्यक्षस्य संदेहबीजस्य सत्त्वा**त्संदेग्धुं शक्यम्** । **अपिः** श्रुत्यतिरिक्तपक्षत्वेन गर्हायाम् । **किरणे**ति **किरणरूपद्रव्यस्य जनकत्वं** तस्येत्यर्थः । बहुकल्पनां प्रपञ्चयन्ति स्म **यदी**ति । **नैव**मिति न चेतनत्वापत्तिः । **जीवत** इति क्षेत्रादिस्थस्य । **अत** इति बहुकल्पनापत्तेः । **पक्षे**ति किरणजनकत्वपक्षस्य किरणप्रसारकत्वपक्षस्य च । **उद्के**ति व्याख्येयमिदम् । **उष्णोदक** इति अग्नितेजःपरिणामे, स्वत उदकस्य शीतलत्वात् । **तेजोरूपं** भास्वरशुक्लः । **तदनुपलब्ध्या केवलस्य** रूपरहितस्योष्णत्वस्य **गुणस्य निश्चयः** । **तथात्रे**ति । मणिप्रभारूपगुणनिश्चय इति शेषः । **स्पर्शे**ति स्पर्शस्य प्रभायां द्वेधा प्राप्तिर्वायुगुणत्वात् । परान्वयात् नैयायिकमते उष्णस्तेजसि शीतो जलेऽनुष्णाशीतः पृथ्वीवाय्वोरिति । तत्र परान्वयात्स्पर्शो न स्वारसिकः । नैयायिकमतं तु परमतम् । अतः प्रभायां तेजोरूपायां **स्पर्शा-**

लोकप्रतीतिस्तु सर्वैर्वादिभिरुपपाद्या। तत्र गुणिकल्पनापेक्षया गुण एव स्थलान्तर आरभ्यत इति कल्प्यताम्। तथैव लोकप्रतीतेः । पुष्परागादेरपि प्रभारूपमेव तावद्देशं व्याप्नोतीति मणिस्वभावादेवाङ्गीकर्तव्यम्। आरम्भकस्य तेजसस्तत्राभावात्। कान्तिः प्रभा रूपमिति हि लोके पर्यायः। वाशब्दो यथालोकं युक्तिः कल्पनीयेति सूचयति।

भाष्यप्रकाशः।

प्रभा न निवर्तेत यथा चिन्तामण्यादिनिष्पन्नाः पदार्थाः। अतो मणिविजातीयद्रव्यस्यात्र प्रभारम्भकत्वं प्रमाणाभावग्रस्तमेव। ननु यद्यप्येवमस्ति तथापि गुणारम्भस्य गुणिमात्रवृत्तित्वमिति नियमो भज्येत, तथा सति रसादीनामप्यन्यत्रारम्भापत्त्या लोकप्रतीतिरपि विरुध्येतेत्याकाङ्क्षायां लोकप्रतीतिमुपपादयन्ति **लोकेत्यादि** । **तत्रेति** लोकप्रतीत्युपपादने । **तत्राभावादिति** मणावभावात् । **तथाचाप्रकृष्टगुणारम्भस्य गुणिमात्रवृत्तित्वमित्येवं लोकप्रतीतिनिर्वाहाय** कल्पनीयं तेन सर्वसामञ्जस्यमित्यर्थः । अत्र कोशस्यापि संमतिरित्याहुः **कान्तिरित्यादि** । 'शोभा कान्तिर्द्युतिश्छविः' इति, 'स्युः प्रभारुग्रुचिस्त्विड्भा'इत्यादि । वाशब्दप्रयोजनमाहुः **वाशब्द इत्यादि** । तथाच वाशब्द एवकारार्थो वाक्यालंकारे । तथाच लोकवदेव गुणाद-

रश्मिः।

नुपलब्धिस्तया । **चिन्तेति** पञ्चम्यन्तमिदम् । **तथेति** विजातीयेन द्रव्येण गुणोत्पत्तिः । **एवेति** उक्तप्रमाणव्याख्यानसंग्रहादेवकारः । **गुणीति** यथा गुणिघटादिमात्रवृत्तित्वम् । तत्प्रभाया गुणमात्रत्वे **भज्येत** । **अन्यत्रेति** स्वाश्रयाधिकदेशे **आरम्भापत्त्या** लोकप्रतीतिस्तावद्देशावच्छेदेन । **भाष्ये** । **मणिप्रवेकस्य कान्तिः**, सूर्यादेः प्रभा, पुष्परागादेः प्रभा रूपमित्याशयेनाहुः **पुष्पेति** । आदिशब्देन तेजः रूपमेवेति भास्वरं रूपं न तु स्वाश्रयाधिकदेशम् । एवं प्रभात्वसाम्येपि **शेष**मणिप्रवेककान्तिर्द्युमणिप्रभा पुष्परागस्थतेजसश्च प्रभा रूपमित्येवं विवेके स्वभावं हेतुमाहुः **मणीति** । स्वभावोऽत्रेच्छातोऽन्यस्तेन 'कालः स्वभावो नियतिः' इत्यस्या न विरोधः । **मणाविति** । 'यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा । तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसंभवम्' इत्यत्र तेजोऽनारम्भकं बोध्यम् । मणिस्तु तेजोंशसंभवोस्त्येव । अस्मिन्पक्षे नियमेऽप्रकृष्टविशेषणमाहुः **तथाचेत्यादि** प्रभाया गुणत्वे च । अप्रकृष्टत्वं कान्तिगन्धातिरिक्तत्वम् । **सर्वेति** नियमबहुकल्पनापत्तिविरह**सामञ्जस्यम्** । **अत्रेति** लोके त्रयाणामेकार्थत्वे । **भेति** भास्वरं रूपं न तु भास्वत्, **गुणे** गुणानङ्गीकारात् । भासा वरं भास्वरम् । तेजः सूर्यादिः पृथक् तद्गुणाः कान्तिप्रभारूपाणि पृथक् । **वाशब्द इत्यादीति** । विकल्पार्थकः । **सूचयति** श्रुत्यनुभवाभ्यां वेद्ये जीवे विद्वद्वैशेषिकयुक्त्याकुलिते सति द्रव्यमात्मा चैतन्यगुण इत्येवं भगवता व्यासस्य खेदलक्षणयायमर्थः प्रकाश्यते इत्यर्थः । यतो व्यासो ज्ञं चैतन्यगुणं वदन् गुणाद्वेत्यप्यसूत्रयदतो व्यासस्य वाशब्दं **प्रयुञ्जानस्य** खेदः । यथाह काव्यप्रकाशकृत् तृतीयोल्लासे 'तथाभूतां दृष्ट्वा नृपसदसि पाञ्चालतनयां **वने** व्याधैः सार्द्धं सुचिरमुषितं वल्कलधरैः । विराटस्यावासे स्थितमनुचितारम्भनिभृतं गुरुः **खेदं खिन्ने** भजति मयि नाद्यापि कुरुषु' इत्यत्र मयि भीमे न योग्यः खेदः कुरुषु योग्य इति **प्रकाश्यत इति** । **इदं** वाक्यं भीमस्य, संधिं कुर्वता युधिष्ठिरेण प्रेषितं सहदेवं प्रति । **एवकारेति** ।

ब्रह्मसिद्धान्ते तु यथैव लोके दृश्यते यथैव ब्रह्मणो जातमिति न कल्पनालेशोऽपि ॥ २५ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

विरोध इति सूत्राक्षरयोजनेत्यर्थः । ननु यद्यत्र लोकानुसारिण्येव कल्पनाऽऽद्रियते तदा पृथिव्यादीनामप्यर्थानां सजातीयादेव कारणादुत्पत्तिरङ्गीकार्या, लोके तथैव दर्शनात् । न तु विजातीयाद् ब्रह्मणः लोकविरुद्धत्वादित्यत आहुर्ब्रह्मेत्यादि । ब्रह्मण एव सर्वमुत्पद्यत इति सिद्धान्ते तु यस्मात् कारणाद् येन प्रकारेण लोके यस्योत्पत्तिर्दृश्यते तत् तेनैव प्रकारेण तत्कारणभावापन्नाद् ब्रह्मणो जातमित्युच्यते, 'तेजोऽतस्तथा ह्याह' इत्यधिकरणे तथैव व्युत्पादनात्, सजातीयस्यैवारम्भकत्वमिति त्वप्रयोजकम् । द्रव्याद् गुणोत्पत्तेस्त्वयाप्यङ्गीकारात्, द्रव्यमेव सजातीयं सजातीयेनारभ्यते इत्यपि तथा । खद्योतमात्रादप्यग्निकणान्महावनघासराश्यादिदाहे वायोरेवाम्बुत्पत्तिदर्शनात् 'यत्र क्व च शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते' इति, 'यत्र क्वचन वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवति' इति श्रुत्या निदर्शितत्वाच्च । अत्राप्यधिना भूयिष्ठपदेन च बीजापेक्षया आधिक्यं बोध्यते, एवमतीन्द्रियस्थलेऽप्यवगन्तव्यम् । अतो नात्र कल्पनालेशोऽपि । अतो ब्रह्मसिद्धान्ते दोषासंसर्गात् सुष्ठूक्तं गुणाद्वा लोकवदिति ॥ २५ ॥

रश्मिः ।

ननु विकल्पार्थकत्वे भाष्योक्तं सूचनं सुवचं कुत एवकारार्थ इति चेन्न । सूचनस्येवमर्थे स्पष्टत्वात् तथाहि । एवकारार्थोऽयोगव्यवच्छेदकः नीलं सरोजं भवत्येवेतिवत् । तथा च गुणरूपहेत्वयोगव्यवच्छेदवानविरोध इत्यर्थः । स्पष्टोऽयं विकल्पः वाशब्दार्थः । तात्पर्यार्थो वाक्यालंकारः पक्षान्तरेणैव वाशब्दार्थोपलब्धेरित्याहुः **वाक्यालंकार** इति पूर्वं सूत्रार्थ उक्तः परंतु वाशब्दार्थशून्य इति सूत्राक्षरे योजनामाहुः **तथाचेति** । **गुणादेवाविरोध** इति योजनीयम् । सिद्धान्तिनं चोदयन्ति स्म **नन्विति** । **त्वयेति** वैशेषिकेण । **एवेति** । 'वायोरग्निः' इति श्रुतेरेवकारः । छान्दोग्योपनिषत्स्थे श्रुती आहुः **यत्रेति** । **शोचते** अश्रूणि मुञ्चति । **तेजस** इति अन्तः शोकोपतापाभ्याम् । **निदर्शितेति** । विजातीयद्रव्यारम्भकत्वस्य द्रव्ये निदर्शितत्वाच्चेत्यर्थः । **बोध्यत** इति शक्त्या बोध्यते । **अतीन्द्रियेति** । श्रोत्रेन्द्रियातिरिक्तशब्दैकगम्यगुणावतारादिस्थलेऽपि ब्रह्मविद्योपनिषत्प्रसिद्धे विजातीयाद्ब्रह्मणो निर्गुणादिच्छाद्वारा सत्त्वादितनवः 'श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः' इति वाक्यात् । गुणरूपाः **ब्रह्मविद्योपनिषदि** त्वोंकारस्य शब्दस्य शरीराणि । तत्रापि पृथिव्यन्तरिक्षदिवामर्थरूपाणां सत्त्वादिविजातीयस्यारम्भकत्वम् । ॐकाररूपप्रकृतेस्त्रिगुणत्वात् । ॐकारस्य ब्रह्मविष्णुशिवानां शरीरत्वे रजआदिषु विश्रान्ते सत्त्वादिसजातीयस्यारम्भकत्वं भवति । तथा च 'सत्त्वं रजस्तमः' इत्यत्र सत्त्वात् रजसस्तमसश्च गुणादेव सत्त्वरजस्तमसां तनुत्वम् । न तु किंचिद्रूपं प्रकृतिपुरुषभेदेन द्विरूपत्वमापद्यत इति सुबोधिन्याम् ॥ २५ ॥

व्यतिरेको गन्धवत् ॥ २६ ॥

सिद्धं दृष्टान्तमाह । यथा चम्पकादिगन्धश्चम्पकव्यवहितस्थलेऽप्युपलभ्यते ।

भाष्यप्रकाशः ।

व्यतिरेको गन्धवत् ॥ २६ ॥ ननु गुणस्य स्वाश्रयाधिकदेशवृत्तित्वं क्वाप्यदृष्टं कथमत्र कल्पयितुं शक्यमिति शङ्कायामिदं सूत्रं प्रवृत्तमित्याशयेन तदवतारयन्ति सिद्धमित्यादि । सिद्धमिति लोकवेदसिद्धम् । तथाच व्यतिरेकश्चैतन्यप्रभयोः स्वाश्रयाधिकदेशवृत्तित्वं गन्धस्येव लोकवेदानुसारेणाऽवगन्तव्यमिति सूत्रार्थः । लोकानुसारं विवृण्वन्ति यथेत्यादि । नचात्रापि चम्पकाद्यवयवनिर्गमादेवोपपत्तौ न गन्धस्य स्वाश्रयाधिकदेशवृत्तित्वसिद्धिरिति वाच्यम् । विद्वन्मण्डनोक्तदिशा तद्दूषणस्यावगन्तव्यत्वात् । तथाहि दृश्यते विविधचर्मपुटवेष्टितस्यापि मृगमदस्य गन्धोपलम्भो वणिक्सार्थेषु । नहि तत्र तदवयवनिर्गमापूर्वतत्प्रवेशौ संभवतः । न चापूर्वतत्प्रवेशस्यासंभवेऽप्यवयवनिर्गमस्त्वनिवार्यः । ततो भारापगमस्यानुभवसाक्षिकत्वादिति वाच्यम् । तथा सति गन्धोपलम्भसमये प्रसारितमुखस्य तद्रसोपलम्भापत्तेः । तेषामवयवानां योग्यत्वात् । अन्यथा गन्धोऽपि नोपलभ्येत । गन्धस्यैवोपलम्भे नियामकाभावाच्च । नन्वदृष्टमेव तथेति चेत् । अहो गौरवभीतिर्वावदूकस्य, यदवयवनिर्गमं, पुनस्तदवयवपूरणं, तद्धेतोरदृष्टस्य च कल्पनं, रसाद्यनुभवप्रतिबन्धकादृष्टान्तरस्य च कल्पनं वदतोऽप्यसङ्कोचस्तुण्डस्य, गन्धातिरिक्तेतिमात्रकथने च संकोचः । ननु मास्त्वदृष्टकल्पनं, तथापि त्रुटौ रूपस्येव तेषु गन्धस्यैवोद्भूत-

रश्मिः ।

व्यतिरेको गन्धवत् ॥ २६ ॥ **अत्रेति** प्रभायाम् । **लोकेति** गन्ध आयातीति लोको वदति । वेदस्त्वग्रे 'दूराद्गन्धो वाति' इति । **लोकवेदेति** । **सिद्धं दृष्टान्तमिति** भाष्याद्विवृत्तेर्गन्धशब्दस्य सिद्धे गन्धे शक्तिः 'शक्तिग्रहम्'इति वाक्यात् । भाष्य एव कुत इति चेन्न । सिद्धासिद्धलाक्षणिकदृष्टान्तेष्वस्य ग्रहणं व्याख्यानौचित्या । यथानेकार्थसंकटे काव्यप्रकाशे औचित्या निर्णयः । यथा 'पातु वो दयितामुखम्'इति । **सांमुख्ये** इति । 'मुखं निःसरणोपाये मुखे च' इति विश्वः । तथा च लोकवेदानुसारेण सिद्धस्य गन्धस्येवावगन्तव्यमिति सूत्रार्थ इत्यर्थः । **विवृण्वन्तीति** उपलभ्यत इत्यन्तेन विवृण्वन्ति स्म । **यथेत्यादीति** । नन्वदृष्टेर्थे कथं लौकिकदृष्टान्तप्रवृत्तिरित्याशङ्कां निरस्यन्तो वेदानुसारं विवृण्वन्ति स्म **वेदोक्तत्वादिति भाष्ये** । पुण्यस्य कर्मण इत्यस्य कर्मकाण्डे कर्मब्रह्मणो जातस्य तादृशद्रव्यस्योग्रगन्धस्य लशुनादेरित्यर्थः । **अन्यथेति** भाष्यमिति संक्षेप इत्यन्तेन व्याकुर्वन्तस्तन्वते स्म **न चात्रेति** । **तत्रेति** विविधचर्मपुटवेष्टिते । **अपूर्वो** न विद्यते पूर्वं श्रवणं यस्य सोऽपूर्वः । तेषामवयवानां **प्रवेशश्च** तौ । **तत** इति विविधचर्मपुटवेष्टितमृगमदात् । इदमुपलक्षणं काष्ठाद्यावृतकर्पूरादेः । [1]कृष्णमरीचसाहित्ये तु नावयवनिर्गमः । **योग्यत्वादिति** उद्भूतगन्धवत्त्वादुद्भूतरसवत्त्वाच्च । **अन्यथेति** रसस्यानुभूतत्वाङ्गीकारे । **तथेति** रसाद्युपलम्भप्रतिबन्धकम् । **गन्धातीति इतिः** प्रकारवाची । अत्र च गुणारम्भस्य गुणिमात्रवृत्तित्वमिति नियमे गन्धातिरिक्तप्रकारमात्रकथने । तथा चोक्तगौरवापेक्षयोक्तनियमे गन्धातिरिक्तगुणारम्भस्य गुणिमात्रवृत्तित्वमित्येवं गन्धातिरिक्तविशेषणमुचितं लाघवादित्यर्थः । **त्रुटाविति** अणुके । तत्रैव नैयायिकानां त्रुटिरिति व्यवहारात् । श्रीभागवते तु त्र्यणुकत्रये

१. मेचक ।

भाष्यप्रकाशः ।

त्वं कल्प्यत इति चेन्न । यत्रोग्रगन्धस्य कस्यचित् कुसुमस्य लशुनादेर्वा स्पर्शमात्रेऽपि ततो मुहुर्मृत्स्नया क्षालनेऽपि करस्य न तद्गन्धापगमोऽनुभूयते । तत्र तेषामशक्यवचनत्वात् । स्पर्शमात्रलग्नतदवयवानां सकृत्प्रोञ्छनेऽप्यसहिष्णुत्वात् सकृत् क्षालनेऽपि न स्थितिसंभवः, कुतस्तरां मुहुस्तथाकरणे । अतो द्रव्याधिकदेशवृत्तित्वं गन्धस्य मन्तव्यम् । अतो विनश्यदवस्थगुणानामनाश्रितत्वेनाङ्गीकारो यथा तव तथा द्रव्याधिकदेशवृत्तित्वेनानुभवेऽपि कुरुष्वेत्यादि । यत्तु

'उपलभ्याप्सु चेद्गन्धं केचिद् ब्रूयुरनैपुणाः ।
पृथिव्यामेव तं विद्यादपो वायुं च संश्रितम् ॥'

इति व्यासवाक्यात् तत्र पृथिव्यवयवसत्तामङ्गीकृत्य गुणस्य साश्रयस्यैव संचारमाहुः । तन्न । पृथिवीगुणं विद्यादित्यर्थात् । केवलगुणसंचारानङ्गीकारे भेर्यादिशब्दो नान्यत्र श्रूयेत । पौराणादिमते शब्दस्य भूतपञ्चकगुणत्वात् । केवलवायूपनीतस्यान्यत्र श्रवणात् । नैयायकीय-

रश्मिः ।

त्रुटिरिति व्यपदेशः तृतीयस्कन्ध एकादशाध्याये 'त्रसरेणुत्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः' इतिवाक्यात् । विवरमरीचिस्थत्रुटौ रूपातिरिक्तानुभवाद्रूपस्येव । तेषु रसादिषु । एवेत्येवकारो रसादिव्यवच्छेदकः । अपिः समुच्चये । चिरकालधृतस्य । तेषामिति चम्पकावयवानाम् । तथेति प्रक्षालनकरणे । विनश्यदिति क्षणप्रक्रियायां वह्निसंयोगात्परमाणौ कर्म ततः परमाण्वन्तरेण विभागस्तत आरम्भकसंयोगनाशस्ततो द्व्यणुकनाशस्योत्पत्तिस्ततः परमाणौ श्यामनाश इत्यत्र विनश्यन्ती अवस्था यस्य द्रव्यस्य तस्य गुणानाम् । इत्यादीति स्पष्टो विद्वन्मण्डने आदिशब्दार्थः । उपलभ्येति । अप्सु वायौ च गन्धमुपलभ्य केचिदपो गन्धवतीर्वायुं गन्धवन्तं ब्रूयुः । तेऽनैपुणाः । कुत इत्यत आह पृथिव्यामिति अपो वायुं च संश्रितं गन्धं पृथिव्यामेव विद्यात् यतोऽप्सु वायौ च पृथिव्यवयवा अनुस्यूता इत्यर्थः । अप्सु वायौ च पृथिव्यवयवा अनुस्यूता इत्येतावानर्थस्त्याज्य इत्याहुः पृथिवीगुणमिति । स्वाश्रयाधिकदेशवृत्तित्वादिति भावः । एवार्थं इत्यन्तेनोपपादयन्ति स्म केवलेति । श्रूयेतेति । अवयवनिर्गमादिकं पूर्वं दूषितम् । भेर्यादिशब्दस्याकाशशब्दत्वेन श्रूयमाणत्वे इष्टापत्तिं मन्यमानं प्रत्याहुः पौराणेति । आदिशब्देन वादिनः । भूतेति श्रीभागवते षड्विंशाध्याये 'परस्य दृश्यते धर्मो ह्यपरस्मिन्समन्वयात् । अतो विशेषो भावानां भूमावेवोपलक्ष्यते' इति । परस्य कारणस्यापरस्मिन्कार्ये समन्वयात् । भावानामाकाशादीनां विशेषो विशेषगुणः सर्वोऽपि शब्दादिरित्यर्थः । तदुक्तम् 'नभसोथ विकुर्वाणादभूत्स्पर्शगुणोनिलः । परान्वयाच्छब्दवांश्च' इति । केवलेति 'नेतृत्वं द्रव्यशब्दयोः' इति तृतीयस्कन्धे वायुलक्षणात् । श्रवणादिति । तथाचेयं प्रक्रिया । शब्दो ह्याकाशस्य विशेषगुणः । वाय्वादीनां तु परान्वयेन प्राप्तत्वात्सामान्यः समवायिनस्तु पञ्चापि । वायुर्विशेषनिमित्तम् । तत एवान्तर्बहिश्च शब्दोत्पत्तिदर्शनात् । निमित्तत्वं तु प्रायशो वायोः कचिद्धर्षणादिनापि ध्वनिदर्शनात् । एवं च ध्वन्यादिर्यत्रोत्पद्यते ततः कियद्दूरं स्वभावत एव चतुर्दिक्षु गच्छति विसारित्वात् । तेन निकटाः शृण्वन्ति । मध्यतारादयस्तु शब्दा बहिर्वायुना नीयन्ते 'नेतृत्वं द्रव्यशब्दयोः' इति वाक्यात् । अनुवातप्रतिवातशब्दश्रवणाश्रवणाभ्यां च । वायूढः शब्दोऽपि तत्तच्छ्रोत्रेष्वंशतो लीयमान एव गच्छति 'सर्वेषां शब्दानां श्रोत्रमेकायनम्' इति श्रुतिः । सर्वांशे लीनस्त्वग्रे न श्रूयते दाह्याभावे वह्नेरिव । स्पर्श-

भाष्यप्रकाशः ।

श्रवणप्रक्रियाया अनेकशब्दतद्ध्वंसादिकल्पनया गुरुत्वात् । सिद्ध एकत्र गुणसंचारेऽन्यत्रापि

रश्मिः ।

रसगन्धरूपेषु द्रष्टव्यम् । तथाहि । घटादेर्हस्तेन स्पर्शे स्पर्शादयोऽपि स्पर्शेनैव हस्तसंबन्धिनः न तादात्म्येन । घटादिगतस्पर्शादीनां घटादिभिरेव तादात्म्यात् समवायसूत्रे समवायदूषणेन तादात्म्यस्वीकारात् । अन्यथा प्रत्यक्षविरोधात् । इदं तु ज्ञेयम् । शब्दादितादात्म्याद् द्रव्यमन्तर्बहिःशब्दाद्यतिरिक्तं न लभ्यते तदा रूपमादाय नास्तिकमते प्रवेशः । तद्वारणायान्यत्र निःशेषे रूपादिभिर्निर्वाहे द्रव्यं नावश्यकं परंतु वाय्वाकाशयोर्न द्रव्यमन्तरा निर्वाहस्तादात्म्येन शब्दस्पर्शातिरिक्तगुणाभावात् । न च ताभ्यामेव न द्रव्यापेक्षेति वाच्यम् । भूतसूक्ष्मावस्थात्वेन तयोर्द्रव्यानतिरेकात् । अत आभ्यामतिरिक्तस्थलेऽपि द्रव्यं मन्तव्यम् । विस्तरस्तु **प्रस्थानरत्नाकरादा**वस्ति । स्पर्शहस्तयोः शीतादिग्राह्यत्वचा ग्राहकयोरुभयोरिन्द्रियान्तरचाक्षुषत्वेनोभौ चक्षुषा गृह्येते । स्पर्शस्तु स्पर्शत्वेन त्वाचः संयोगत्वेन चाक्षुषः । न तु स्पर्शान्तरमपेक्षते । स्पर्शस्यैव संयोगसंबन्धत्वात् । रसहस्तयोस्तु स्पर्श एव संबन्धः । द्रव्ययोरेव स्पर्शसंबन्ध इत्यस्य न विरोधः रसद्रव्ययोरत्यन्तमिलितयोः प्रविवेकाभावेन द्रव्यमादाय हस्तस्पर्शसंभवात् । संयोगसमवायान्यतरत्वं संबन्धत्वम् । तत्र तादात्म्याभावस्योक्तत्वात् । परमेतयो रासनत्वात्प्रत्यक्षेण स्पर्शहस्तावेव गृह्येते स च स्पर्शो घटरूपहस्तानां चाक्षुषोऽपि रसहस्तयोरपि वर्तते । रसादीनां रसनादिभिरिन्द्रियैर्घटादौ निश्चयात् । न च रसहस्तयोः संयुक्तसमवाय एव संबन्धः हस्तसंयुक्ते घटे रसतादात्म्यादिति वाच्यम् । रसनेन्द्रियेण रससिद्धौ तस्य हस्तेन स्पर्शे बाधकाभावात् । द्रव्यमिश्रणात् । ज्ञानमात्रं तस्य रसनाधीनम् । एवं गन्धेऽपि हस्तस्य स्पर्शः घ्राणेन गन्धज्ञानमात्रम् । न तु संयुक्तसमवायः । रूपहस्तयोस्तु स्पर्शश्चाक्षुषः स्फुट एवेति सुधीभिराकलनीयम् । ननु नैयायिकास्तु नैवं मन्यन्त इत्याकाङ्क्षायां गौरवमाहुः **नैयायिकीये**ति । प्रक्रियात्वेवम् । शङ्खादिवायुसंयोगान्निमित्ताच्छङ्खाद्याकाशसंयोगादसमवायिकारणात्केचन ध्वनय उत्पद्यन्ते । केचन तु ध्वनयः वेण्वादौ पाट्यमाने दलद्वयविभागान्निमित्ताद्दलाकाशसंयोगादसमवायिकारणादुत्पद्यन्ते । वर्णानुभवस्य यथाकथंचिज्जातत्वेन सर्वं ज्ञानं स्मृतिप्रायं तत्र विशेषस्तु तत्तत्कालीयवर्णविषयत्वमेतत्सहकारिकारणं वायौ कर्मजनने प्रयत्नस्तस्मिन् । जानातीच्छति यतत इति प्रवादात् । एवं च । वर्णास्तु स्मृतिविशेषसहकृतादात्ममनःसंयोगादात्मनि वर्णोच्चारणेच्छायां ततः प्रयत्ने चोत्पन्ने प्रयत्नवदात्मसंयोगात्प्राणादिवायोः कर्म ततस्तेन कर्मणा ऊर्ध्वं गच्छन्प्राणादिः कण्ठताल्वाद्यभिघातान्निमित्तात्कण्ठाकाशसंयोगादसमवायिकारणादकारादिक्षकारान्तानामनुक्तानां चोत्पत्तिं करोतीति कण्ठादिस्थाने ते उत्पद्यन्ते । शब्दश्चाकाशस्यैव गुण इति तत्तदवच्छिन्ने आकाश एवोत्पद्यते । उक्तेषु द्विविधेषु ध्वनिषु वर्णेषु चाद्या एव संयोगासमवायिकारणकाः । द्वितीयादयस्तु पूर्वशब्दासमवायिकारणकाः । प्रथमतः संयोगाद्विभागाद्वैकः शब्द उत्पद्यते । स च निमित्तवाय्वाद्यनुसारेण **कदम्बगोलकन्यायाद्द**शदिक्षु दश शब्दानुत्पादयति तैश्च प्रत्येकं दश दश शब्दा उत्पद्यन्ते । **वीचीतरङ्गन्याये** तु एकैकशब्दस्यैवारम्भ इति विभुविशेषगुणानामसमवायिकारणप्रादेशिकत्वनियमेनाव्याप्यवृत्तित्वमेषामग्रिमाग्रिमशब्दनाश्यत्वं च कदम्बमुकुलक्रमेण वीचीतरङ्गक्रमेण वा कर्णशष्कुल्यवच्छिन्ने नभस्युत्पद्यमानः शब्दः श्रोत्रेण प्रत्यासन्नत्वाद्गृह्यते । भेरीशब्द एवायमिति प्रत्यभिज्ञातुं सोऽयं दीपस्तदेवौषधमित्यादाविव सजातीयत्वपुरस्कारादिति । **अनेक-**

वेदोक्तत्वादस्य दृष्टान्तत्वम् 'यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूराद् गन्धो वात्येवं पुण्यस्य

भाष्यप्रकाशः ।

तथा वक्तुं शक्यत्वात् । अतस्तस्य पृथिवीगुणत्वं विद्यादित्येवार्थः । श्रुतिरपि, **'यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूराद् गन्धो वाति'** इति । अत्र तदवयवासत्त्वनिरूपणार्थमेव दूरपदम् । यत्तु प्रसारितमुखस्य रसानुपलम्भे गन्धोपलम्भसामग्र्या एव प्रतिबन्धकत्वमिति कश्चिदाह तत् फल्गु । विजातीयगुणोपलम्भकत्वेन रूपेण प्रतिबन्धकत्वस्याशक्यवचनत्वात् । एककालावच्छेदेन नेत्रगोलकान्तस्त्वचा चक्षुषा च वह्न्यौष्ण्यरूपयोर्ग्रहणस्य सर्वजनीनत्वात् । गन्धोपलम्भकत्वेनेति चेन्न असिद्धत्वाद् वैपरीत्यस्यापि सुवचत्वाच्च । नच फलबलेन तस्याः प्राबल्यं कल्प्यत इति वाच्यम् । फलस्यासदुक्तरीत्यापि सिद्धेस्तस्या एव बलवत्त्वे नियामकाभावात् । क्षणान्तरे

रश्मिः ।

शब्दतद्ध्वंसादीति । **आदि**पदेन तत्प्रागभावविरामकल्पना । किंच । यावदन्तमेकैकशब्देन दशदशशब्दारम्भोऽप्रामाणिकत्वान्न युक्तः । अन्यच्च । अव्याप्यवृत्तित्वार्थमसमवायिप्रादेशिकत्वस्य कदम्बमुकुलादिन्यायविरुद्धत्वात् । प्रदेशान्तर एव कदम्बमुकुलयोर्वीचीतरङ्गयोर्दर्शनात् । किंच । कदम्बमुकुलन्यायेन दूरपर्यन्तमुत्पत्तौ तत्तदवान्तरदेशस्थानां शब्दानामश्रवणापत्तिः । वीचीतरङ्गन्यायेन मन्दोच्चारणेऽपि तारश्रवणापत्तिः । प्रथमवीची तदुत्तरोत्तरं द्वितीयादीनामाधिक्यदर्शनात् । शब्दे च तारत्वातिरिक्ताधिकस्याशक्यवचनत्वात् (संख्यादेर्जनकत्वेन परिमाणस्य स्वोत्कृष्टपरिमाणजनकत्वेन) एतन्निष्ठबहुदेशव्यापित्वस्य परिमाणप्रसञ्जकत्वेन द्रव्यत्वगुणत्वहान्योरापत्तेश्च परिमाणाश्रयत्वे द्रव्यत्वं गुणे गुणानङ्गीकाराद्गुणत्वहानिश्चेति भावः । किंच । आद्यमध्यमशब्देषु कार्यशब्दनाश्यत्वस्यान्तिमशब्दे च सुन्दोपसुन्दवत्परस्परनाश्यत्वोपान्त्यध्वंसनाश्यत्वयोरन्यतरस्याग्रिमानुत्पादनेन चान्तत्वस्य वक्तव्यत्वात्तन्निर्वाहायोत्पादनप्रतिबन्धकादृष्टादेश्च वक्तव्यत्वाद्गुरुतराप्रामाणिकानन्तकल्पनापत्तिरितीमे दोषाः । **एकत्रे**ति गन्धे । **संचारे** स्वाश्रयाधिकदेशवृत्तित्वे । **अन्यत्रे**ति शब्दे । अर्थस्तूक्तः । फलितार्थ उच्यते **अत** इति । **श्रुतिरपी**ति । गन्धस्य स्वाश्रयाधिकदेशवृत्तित्वे प्रमाणमित्यर्थः । **दूरे**ति । अन्यथा सद्युक्तिविरुद्धं कुतो ब्रूयादिति भावः । **एवे**ति । न त्ववयवरूपाश्रयाभावस्य प्रतिबन्धकत्वमित्यर्थः । **विजातीये**ति । रसोपलम्भसामग्री रसनारसवद्द्रव्यादिः । गन्धोपलम्भसामग्री घ्राणगन्धवद्द्रव्यादिः । एवंच घ्राणादौ घ्राणत्वादिरूपेण प्रतिबन्धकतायां कदापि रसोपलम्भानुत्पत्तिप्रसङ्गः । घ्राणत्वादीनां रसोपलम्भकालेऽपि सत्त्वात् । किंतु रूपान्तरेण तदपि न संभवतीत्याहुः **विजातीये**ति । रसत्वगन्धत्वादिना वैजात्यं बोध्यम् । एतादृशगुणोपलम्भकत्वं घ्राणादौ, नैयायिकास्त्वात्मन्याहुः तत्सर्वमागामिनि पादे प्राणवदधिकरणे स्फुटिष्यति । **ग्रहणस्ये**ति । तथा चोक्तरूपेण प्रतिबन्धकत्वे चाक्षुषं स्पार्शनं वा न स्यादिति भावः । **गन्धे**ति रूपेण प्रतिबन्धकत्वमिति बोध्यम् । तथा च त्वक्चक्षुषोर्न गन्धोपलम्भकत्वमिति चाक्षुषस्पार्शनयोरुपपत्तिरिति भावः । **असिद्धे**ति । मृगमदभक्षणे गन्धरसयोरेककालावच्छेदेनोपलम्भस्य सर्वसाक्षिकत्वेन गन्धोपलम्भकत्वेन रूपेण प्रतिबन्धकत्वस्या**सिद्धत्वात्** । पद्मशतपत्रवेधवत्पौर्वापर्याज्ञानमभ्युपगम्यते इति चेत्तत्राहुः **वैपरी**ति । वह्न्यौष्ण्यरूपग्रहणवदेककालावच्छेदेनोपलम्भस्यापि न वैपरीत्यसम्भावनेत्याशङ्कते **न चे**त्यादि । **फलबलेन** गन्धोपलम्भबलेन तस्याः गन्धोपलम्भकसामग्र्याः **प्राबल्यम्** । **असदि**ति । स्वाश्रयाधिकदेशवृत्तित्वेनापि । **तस्या** इति पूर्ववत् । **नियामके**ति । रसाश्रयावयवानां त्वन्मते सत्त्वादिति भावः । अस्मन्मते तु

भाष्यप्रकाशः ।

रसोपलम्भप्रसङ्गाच्च । नच तद्गतरसादीनामनुद्भूतत्वमिति वाच्यम् । अनारम्भकेषु तेष्वनुद्भूतरसाद्यङ्गीकारस्य प्रमाणरहितत्वादिति दिक् ।

नच मुहुः क्षालनादिना गन्धापगमतारतम्ये गन्धस्य सावयवत्वापत्तिरिति वाच्यम् । इष्टापत्तेः । नच स्पर्शवत्त्वापत्तिः । सावयवद्रव्यत्वेनैव स्पर्शवत्त्वेन व्याप्तेर्दर्शनात् । भूतसूक्ष्मरूपत्वेनेष्टापत्तेश्च । एतेनारम्भकत्वमपि दत्तोत्तरं ज्ञेयम् । गन्धेनैव चन्दनस्पृष्टवायुसंपर्कशालिशाला-

रश्मिः ।

भगवदिच्छाभावाद्गन्धोपलम्भो न रसोपलम्भः । न च स्वाश्रयाधिकदेशवृत्तित्वेऽस्मदुक्तप्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावोस्त्विति शङ्क्यम् । अवयवनिर्गमजयोग्यतायाः प्रतिबध्यत्वाभावात् । अन्यथा न कदापि गन्धग्रहसमकालिकरसोपलब्धिः स्यात् । अस्माकं तु भगवदिच्छाया नियामकत्वाद्दृष्टं सूपपन्नम् । **रसो**पेति । भोजनादौ तथानुभूतत्वादिति भावः । **तद्ग**तेति निःसृतमृगमदावयवगतेत्यर्थः । तथा च प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावापेक्षेति भावः । **अ**नेति आरम्भकपरमाणुषु तु प्रत्यक्षत्वाद्यापत्त्या तदनुपलब्ध्याख्यं प्रमाणमस्ति । किंच । कार्यगतगन्धादिदर्शनमपि प्रमाणम् । पाषाणेष्वनुद्भूतरूपगन्धे प्रमाणं परमाणुगन्धानुमानमेव, पृथिवीज्ञानजनकं च भस्मगन्धदर्शनं च हेतुः । पाषाणं गन्धवत् तत्कार्ये भस्मनि गन्धदर्शनात् । पत्रभस्मवत् । 'यद्द्रव्यं यद्द्रव्यध्वंसजन्यं तत्तदुपादानोपादेयम्' इति व्याप्तेः । **सावयवे**ति यतस्तारतम्यं क्षालनकृतयावद्यावदवयवापसारणानुरोधीति भावः । भूतसूक्ष्मत्वपक्षे त्वाहुः **इष्टे**ति । द्रव्यत्वादिति भावः । **स्पर्शवत्त्वे**ति सावयवत्वेन स्पर्शवत्त्वेन व्याप्तेस्त्र्यणुकादौ दर्शनाद् द्व्यणुके स्पर्शवत्त्वसिद्धिः । **दर्शना**दिति अणुकादौ दर्शनात् । गुणे चादर्शनाद्दृष्टान्ताभावान्न स्पर्शवत्त्वापत्तिरित्यर्थः । नन्वेवमपि स्पर्शवत्त्वापत्तिः भूतसूक्ष्मरूपत्वेन सिद्धान्ते द्रव्यत्वादिति कस्यचिदाशङ्कामुद्भाव्येष्टमापादयन्ति स्म **भूते**ति । **भूतानां** महाभूतानां **सूक्ष्माणि** रूपाणि **तत्त्वेन** । 'तामसो भूतसूक्ष्मादिः' इति तृतीयस्य पञ्चमाध्याये शब्दादिषु तत्प्रयोगः । हृदयदेशावच्छेदेन शब्दे स्पर्शोपलम्भः । न च गुणगुणिनोस्तादात्म्याच्छब्दहृदयदेशयोर्न संयोगः स्पर्शस्तु संयोगानतिरिक्त इति वाच्यम् । हृदयस्पृशः शब्दस्य भेर्याद्यत्यन्ताभिघातजन्यत्वेन भौमादित्वात्तत्तद्भौमादेस्तत्तच्छब्दस्य च तादात्म्येन हृदयतदतिरिक्तशब्दयोः संयोग एव । अन्यथा त्वनुभवो विरुध्येत । एवं रसस्य स्पर्शवत्त्वेनारम्भकत्वेन च व्याप्तिः पृथिव्यादिचतुर्षु दृष्टा शब्दादिष्वप्यापद्येत, न च द्रव्याद्यनारम्भकघटादौ साधारण्यमिति वाच्यम् । द्रव्यसमवायिकारणवृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वस्य विवक्षितत्वादित्याकाङ्क्षायामाहुः **एतेने**ति इष्टापादनेन । **दत्तोत्तर**मिति आरम्भकत्वं दत्तमिष्टापत्तिरूपमुत्तरं यस्य तादृशम् । तथा च पौराणः क्रमः । भगवान्वैकुण्ठस्थः सिसृक्षति तदा प्रकृतिं गुणत्रयसाम्यरूपामुपादत्ते, सा च भगवद्वीर्यं गृह्णन्ती महत्तत्त्वं ज्ञानक्रियात्मकं महद्द्रव्यं प्रसुनोति तत्र महत्तत्त्वमहंकारं प्रसुनोति । स चाहंकारस्त्रिविधः । सात्त्विको राजसस्तामसश्चेति । तत्र सात्त्विको मनः सात्त्विकान्देवांश्च राजस इन्द्रियाणि प्रसुनोति । तामसः शब्दं प्रसुनोति । शब्दः खम् । खं स्पर्शम् । स्पर्शोऽनिलम् । अनिलो रूपम् । रूपं ज्योतिः । ज्योती रसम् । रसोम्भः । अम्भो गन्धम् । गन्धः पृथिवीं प्रसुनोतीति । तदुक्तं तृतीयस्य पञ्चमाध्याये 'भगवानेक आसेदम्' इत्यादिना । एवं प्रातिलोम्येन लयक्रमः । एकादशे चतुर्विंशाध्याये 'अन्नं प्रलीयते मर्त्यमन्नं धानासु लीयते । धाना भूमौ प्रलीयन्ते भूमिर्गन्धे प्रलीयते' इत्यादिनोक्तः ।

कर्मणो दूराद् गन्धो वाति' इति। अन्यथा कल्पना त्वयुक्तेत्यवोचाम ॥ २६ ॥

तथा च दर्शयति ॥ २७ ॥

हृदयायतनत्वमणुपरिमाणत्वं चात्मनोऽभिधाय तस्यैव 'आलोमभ्य आनखाग्रेभ्यः' इति चैतन्येन गुणेन समस्तशरीरव्यापित्वं दर्शयति ॥ २७ ॥

भाष्यप्रकाशः।

न्तरशैत्यं निम्बतरुविशेषसंपर्कशालिवातसंसर्गजमुखतिक्तत्वमपि व्याख्यातं ज्ञेयम्। नचैवं सर्वत्रातिप्रसङ्गः शङ्क्यः। उत्कटत्वानुत्कटत्वयोरेव तद्धर्मयोर्निर्गमानिर्गमनियामकत्वादिति संक्षेपः। तदेतद् हृदि कृत्वाऽऽहुः अन्यथेत्यादि। अवोचामेति पूर्वसूत्र एवोक्तमित्यर्थः ॥ २६ ॥

तथा च दर्शयति ॥२७॥ चैतन्यस्य गुणत्वे प्रमाणं दर्शयितुमिदं सूत्रमित्याशयेनोपन्यस्य विवृण्वन्ति **हृदयायतने**त्यादि। एतद्विषयवाक्यं कौशीतकिब्राह्मणे। तत्र हि 'तं होवाचाजातशत्रुर्यत्रैष एतद् बालाके पुरुषोऽशयिष्ट यत्रैतदभूद्यत एतदागात्' इति प्रतिज्ञाय, 'हिता नाम पुरुषस्य नाड्यो हृदयात् पुरीततमभिप्रतन्वन्ति' तद् 'यथा सहस्रधा केशो विपाटितस्तावदण्व्यः

रश्मिः।

कार्यबलेनान्यत्रापि स्वाश्रयाधिकदेशवृत्तित्वमाहुः **गन्धेनैवे**त्यादि। गन्धदृष्टान्तेनैव। **व्याख्यात**मिति स्वाश्रयाधिकदेशवृत्तित्वेन व्याख्यातमुक्तप्रायमित्यर्थः। तथा च शैत्यादेः स्पर्शधर्मतया **चन्दन**स्पृष्टवायोः स्पर्शसत्त्वेन शैत्यस्पर्शवान्वायुस्तत्**संपर्कः** स्पर्शस्तच्छालि **शालान्तर**मिति तस्य शैत्यं संयुक्तसंयोगसंबन्धेन। वायुतादात्म्यापन्नेन चन्दनशैत्येन शालान्तरस्पर्शात्। एवं **निम्बतरुविशेष** उत्कटतिक्तकस्तत्संयोगशाली वात इति निम्बरससंयुक्तत्वं भवति। तस्येति दृष्टं तादृशस्य मुखे संसर्गे तद्रसो रसनेन्द्रियेण गृह्यत इति सारः। एवं च स्पर्शरसगन्धरूपेषु स्वाश्रयाधिकदेशवृत्तित्वमुक्तम्। 'गुणाद्वालोकवत्'इत्यत्र रूपस्यात्र त्रयाणामिति तत्र सर्वेषां स्पर्शादीनां स्वाश्रयाधिकदेशवृत्तित्वमनुभवविरुद्धमापणादावित्यतिप्रसङ्गस्तमाशङ्क्य वारयन्ति **न चैव**मिति। **उत्कटत्वे**त्यादि उत्कटत्वावच्छेदकस्पर्शत्वादित्वेनानिर्गमत्वेन कार्यकारणाभावः। अनुत्कटत्वावच्छेदकस्पर्शादित्वेनानिर्गमत्वेन कार्यकारणभाव इत्यर्थः। **संक्षेप इति** विस्तरस्तु रश्मिरेवान्योप्यूह्यः। न च **विद्वन्मण्डने** गन्धमात्रातिरिक्तेऽतिमात्रकथने च संकोच इत्यत्र गन्धमात्रस्य स्वाश्रयाधिकदेशवृत्तित्वमुक्तं तद्विरोध इति वाच्यम्। गन्धस्यैव बुद्धिस्थत्वात्। अत एव सूत्रकारोपि सिद्धं दृष्टान्तमाहेमां शङ्कां परिहर्तुमणुत्वसाधने व्यतिरेको गन्धवदित्युत्तरग्रन्थेऽस्य सूत्रस्यैव बुद्धिविषयत्वस्फोरणात्। अत एव ननु रूपरसादीनामप्येवमन्यत्रोपलम्भः स्यादिति चेन्न स्यादेवोपलम्भो यदि स्वाश्रयमपहायान्यत्र तिष्ठेयुरिति ग्रन्थः संगच्छते। एतदालोच्यैव गन्धेनैवेत्यादिग्रन्थ इति ज्ञेयम्। **अन्यथेत्यादी**ति। अर्वाचीननैयायिकोक्ता, पूर्वोक्ता स्वाश्रयाधिकदेशावृत्तित्वे युक्तिरूपान्यथा कल्पना **त्वयुक्ता** उक्तयुक्तेरिति भाष्यार्थः। **उक्त**मिति लोकप्रतीतिस्त्वित्यादिनोक्तम् ॥ २६ ॥

तथा च दर्शयति ॥ २७ ॥ केत्याकाङ्क्षायामाहुः **एतद्विषये**ति एष चासौ विषय एतद्विषयस्तस्य वाक्यम्। बालाके इति संबोधनम्। **अशयिष्टे**ति सुषुप्तोऽभूत्। **यत्रैत**दिति **यत्र** निमित्ते एतच्चैतन्यमभूत्। **यत** इति स्वप्नस्थानादेतच्चैतन्यम्। **पुरीतत**मिति हृदयवेष्टनं पुरीतत्। **अभिप्रतन्वन्ति** अभितो निःसरन्ति। कृत्स्नशरीरं व्याप्नुवन्त्योऽश्वत्थपर्णराजय इव बहिर्मुखाः प्रसृता इति यावत्। **विपाटितः** विभागं प्रापितः। यस्य कस्यचित्केशो येन केनापि

पृथगुपदेशात् ॥ २८ ॥

'प्रज्ञया शरीरं समारुह्य' इति करणत्वेन पृथगुपदेशाच्चैतन्यं गुणः ॥ २८ ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयपादे उत्क्रान्तिगत्यागतीनामिति द्वादशमधिकरणम् ॥१२॥

भाष्यप्रकाशः ।

पिङ्गलस्याणिम्नस्तिष्ठन्ति शुक्लस्य कृष्णस्य पीतस्य लोहितस्य च तासु तदा भवति' इति हृदयायतनत्वं तादृशनाडीषु स्थानेनाणुपरिमाणत्वं चाभिधाय तत्रैव हृदयायतनस्याणोरात्मनः, स एष प्राण एव 'प्रज्ञात्मेदं शरीरमात्मानमनुप्रविष्ट आलोमभ्य आनखाग्रेभ्यः' इति प्रज्ञात्मत्वोक्तिपूर्वकं प्रविष्टत्वकथनाच्चैतन्येन गुणेन समस्तशरीरव्यापित्वं दर्शयति । अन्यथा अणोर्व्याप्तिर्नोपपद्येत । अतोऽणुत्वबोधनपूर्वकं व्याप्तिबोधनाच्चैतन्यं गुण एवेत्यर्थः । एवमेव बृहदारण्यके दृप्तबालाकि-ब्राह्मणेऽपि, 'एष विज्ञानमयः पुरुषः' 'तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिन् शेते' इति कथनाज्ज्ञेयम् ॥ २७ ॥

पृथगुपदेशात् ॥ २८ ॥ उक्तश्रुतौ विरुद्धधर्मत्वबोधनात् सामर्थ्यमेवास्तु, न गुण इत्याशङ्कायामिदं सूत्रमित्याशयेन विवृण्वन्ति प्रज्ञयेत्यादि । इदमपि वाक्यं तत्रैवेतः पूर्वस्मि-न्निन्द्रप्रतर्दनसंवादेऽस्ति । भाष्यं तु स्फुटार्थम् ।

एतेन जीवस्याऽणुत्वं सर्वावस्थासु । सर्वशरीरगतचैतन्योपलम्भस्तु सामर्थ्याद्वा गुणाद्वेति साधितम् ॥२८॥ इति द्वादशमुत्क्रान्तिगत्यागतीनामित्यधिकरणम् ॥ १२ ॥

रश्मिः ।

प्रकारेण सहस्रधा विपाटितो भवति । यस्य विराजो वराहस्य वा । केशस्य कृष्णाजिनं ब्रह्मेति श्रुतेर्ब्रह्म-त्वाद्वा सहस्रधा विपाटनं संभवति । **पिङ्गलस्येति** पिङ्गलरूपसंबन्धिन्यः पिङ्गला इत्यर्थः । तृतीयार्थे षष्ठी वा, पिङ्गलेन शुक्लेनान्यैः पूर्णा इत्यर्थः । बृहदारण्यके ज्योतिर्ब्राह्मणे शुक्लस्य नीलस्य पिङ्गलस्य हरितस्य लोहितस्य पूर्णा इति दर्शनात् । **अणिम्न इति** अणुत्वेन षष्ठी तृतीयार्थे । तावदिति भिन्नं पदं 'सुपां सुलुक्' इति तृतीयाया लुक् । तावताणुत्वेनाण्व्य इति योजना । तावताणिम्ना तिष्ठन्तीति ज्योतिर्ब्राह्मणात् । **शुक्लस्येति** शुक्ला इत्यर्थः । एवं सर्वत्र । **तास्विति** पिङ्गलादि-गुणविशिष्टासु नाडीषु । एवं च यत्र नाडीष्वेतदभूत्तत्र पुरुषोऽशयिष्ट । यत एतदागादिदं तु रत्वा चरित्वा पुनर्नैव इवागादिति श्रुत्यन्तरादर्थः । **प्रज्ञात्मेति प्रज्ञा** चैतन्यमात्मनि यस्येति । **आत्मान-मिति** शरीरविशेषणम् । जीवं वा । **आलोमेति** लोमानि मर्यादीकृत्य, नखान्यभिव्याप्येत्यर्थः । 'पञ्चम्यपाङ्परिभिः' इति सूत्रेण पञ्चमी । **अन्यथेति** गुणत्वाभावे । चैतन्यस्य विसर्पिताभावे च स्वभावतोऽणोः । **प्राणानामिति** प्राणेन्द्रियाणां **विज्ञानं** विषयप्रकाशनसामर्थ्यम् । **विज्ञानेन** स्वचैतन्येनादाय गृहीत्वेत्यर्थः । **ज्ञेयमिति** विषयवाक्यम् ॥ २७ ॥

पृथगुपदेशात् ॥२८॥ **विरुद्धेति** तासु तदा भवतीत्यणुत्वमनुप्रविष्ट आलोमभ्य इति व्यापकत्वम् । **सामर्थ्यमेवेति** जीवस्वभाव एव । जीवत्वानन्तरं विरुद्धधर्माधारत्वाभावादेवकारः । **न गुण इति** जीवोऽव्यापकः चैतन्यं व्यापकमिति विरुद्धर्माधारत्वं स्यादतो 'अविरोधश्चन्दनवत्' इत्येव साध्विति भावः । **प्रज्ञयेत्यादीति** कर्तुः सकाशात्पृथगुपदेशादित्यर्थः । प्रज्ञाचैतन्यमिति करणतृतीययोक्तम् । **स्फुटार्थमिति** । एतत्कृतवेदान्ताधिकरणमालानुरोधे त्वत्राधिकरणसमाप्तिः । तदा त्वस्मिन्पादे षोडशाधिकरणानि[1] ॥२८

१. रश्मिकारमते पादस्यास्य पञ्चदशाधिकरणानि, प्रकाशकारैः षोडशाधिकरणैः समापितः पादः । अस्माभिश्च प्रकाशे रश्मौ च तत्प्रणेत्रभिप्रायेणाधिकरणाङ्क उपन्यस्तः ।

तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् ॥ २९ ॥ (२-३-१३)

ननु तत्त्वमस्यादिवाक्यैः परमेव ब्रह्म जीव इति कथमणुत्वमितीमामाशङ्कां निराकरोति तुशब्दः। तस्य ब्रह्मणो गुणा प्रज्ञाद्रष्टृत्वादयस्त एवात्र जीवे सारा

भाष्यप्रकाशः।

तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत्॥२९॥ [तुशब्दस्य शङ्कानिरासार्थत्वात् तद्व्याख्यानमुखेनैव सूत्रप्रयोजनं वदन्तः सूत्रं व्याकुर्वन्ति नन्वित्यादि। ननु परिमाणविषयिणी विप्रतिपत्तिस्तदा निवर्तते यदि जीवस्य ब्रह्मणः सकाशाद् भेदः संभवति स एव तु नास्ति] ननु सकलशरीरव्यापिचैतन्योपलम्भादन्यत्रानुपलम्भाच्च प्राप्ते जीवस्य मध्यमपरिमाणतयाऽनित्यत्वे तत्परिहाराय पूर्वसूत्रोक्तमणुत्वं वाऽऽदरणीयम्, अथवा, तत्त्वमस्यादिवाक्येषु ब्रह्मत्वेन व्यपदेशाद् ब्रह्मतया व्यापकत्वं वेति संदेहे नित्यत्वस्य व्यापकत्वेऽपि संभवाद्, ऋष्यन्तरैरपि भोगव्यवस्थया व्यापकत्वाङ्गीकारात् सकलशरीरगतचैतन्योपलम्भस्यान्यत्रानुपलम्भस्य च जातिवदुपपत्तेरुत्क्रान्त्यादीनामुपाधिवशादपि संभवादणुत्वाङ्गीकारे जीवमेवाभिसंधायोक्तानां तत्त्वमस्यादिवाक्यानामसामञ्जस्याच्च व्यापकत्वमेव ज्याय इति। ननु कथमसामञ्जस्यमिति चेन्मैवम्। छान्दोग्ये, 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वं, तत् सत्यम्' इति सर्वस्य ब्रह्मात्मकत्वमुक्त्वा अग्रे 'स आत्मा तत्त्वमसि' इति सर्वस्माद्भिन्नतया त्वंपदार्थस्य जीवस्य तत्पदसामानाधिकरण्यश्रावणेन कौशीतकिब्राह्मणसमाप्तौ च इदं सर्वं यदयमात्मेत्यभिधाय, स एष तत्त्वमसीत्यात्मावग्राह्यः। अहं ब्रह्मासीत्यहंग्रहश्रावणेन च तत्त्वमस्यादिवाक्यैः परमेव ब्रह्म जीव इति सिद्ध्यति तस्य च व्यापकत्वं 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादिश्रुतिशतैः सिद्धमतः कथमणुत्वमितीमामाशङ्कां परिहरतीत्यर्थः। जीवस्य ब्रह्माभिन्नतया व्यापकत्वस्यैव सिद्धत्वादिति प्राप्तम्। तत्र नित्यत्वस्याणुत्वेऽपि तुल्यत्वाज्जीवस्याणुत्वेऽपि ईश्वरेच्छयैव भोगव्यवस्थासंभवे भोगव्यवस्थया ऋष्यन्तरैरादृतस्य व्यापकत्वस्यासंगतत्वाद् अग्रे, अदृष्टानियमसूत्रे दूष्यत्वाच्च। अत एव जातिवद् व्यापकत्वस्याप्यसंगतत्वाद्, उत्क्रान्त्यादीनामप्युपाधिकृतत्वस्यापि स्वात्मना चोत्तरयोरित्यनेन निरस्तत्वात् तत्सर्वमुपेक्ष्य, तत्त्वमस्यादिव्यपदेशवाक्यान्येव विचारयन्तोवतारयन्ति नन्वित्यादि। तथा च तत्त्वमस्यादिवाक्यैः जीवस्य ब्रह्मत्वेन व्यापकत्वात् कथमणुत्वमितीमामाशङ्कां परिहरतीत्यर्थः। परिहारं व्याकुर्वन्ति तस्येत्यादि। प्रज्ञाया ब्रह्मधर्मत्वं 'प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी' इति श्वेताश्वतरे सिद्धम्। द्रष्टृत्वादीनां गार्गीब्राह्मणे 'तद्वा एतदक्षरं गार्गि अदृश्यं द्रष्टृ अश्रुतं श्रोतृ अमतं मन्तृ अविज्ञातं विज्ञातृ' इत्यादिभिः। त एवात्र जीवे सारा इति तु इन्द्रप्रतर्दनसंवादे

रश्मिः।

तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् ॥ २९ ॥ ननु परिमाणेति । तथा चेति सूत्रेणुपरिमाणं चेत्युक्तं तत्र मतान्तरेण व्यापकपरिमाणं प्राप्तं ततश्चाणुत्वमहत्त्वपरिमाणविषयकसंदेह इत्यर्थः । **छान्दोग्य इति** अष्टमप्रपाठके । **सामानेति** तत् त्वमित्येवं भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तत्वे सत्येकार्थबोधकत्वश्रावणेन । **अहमिति** अस्मत्प्रत्यय**श्रावणेन । तस्येति** परब्रह्मणः। **तस्मादिति** शिवात्। अत्र यद्यपि य एको वर्णो बहुधा शक्तियोगात् वर्णाननेका-

१. प्रकाशकारैः श्रीहस्तलिखिते पुस्तके भाष्यमधिकं विवृतं स्थलान्तरेपि तथा दृश्यते तच्च [ ] इति चिह्नान्तर्निवेश्य अत्र मुद्रितमस्ति। रश्मिकारैः विशिष्टविवरण प्रतीकानि स्वकृतौ व्याख्यातानीति तन्मुद्रणमत्रावश्यकम्।

इति जडवैलक्षण्यकारिण इति अमात्ये राजपदप्रयोगवज्जीवे भगवद्व्यपदेशः । मैत्रेयीति संपूर्णं ब्राह्मणे भगवत्त्वेन जीव उक्तः ।

ननु कथमन्यस्यान्यधर्मवत्त्वेन कथनम् । न हि निरूपणस्थल एवोपचारः

भाष्यप्रकाशः ।

'प्रज्ञया वाचं समारुह्य वाचा सर्वाणि नामान्याप्नोति प्रज्ञया प्राणं समारुह्य सर्वान् गन्धानाप्नोति' इत्यादिभिः । प्रश्नोपनिषदि गार्ग्यप्रश्ने 'एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः स परे अक्षरे आत्मनि संप्रतिष्ठितः' इत्यादिभिश्च । **सारं** प्रधानत्वं तच्च जडवैलक्षण्यकारित्वम् । अत्र यद्यपि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादौ जडेपि ब्रह्मपदप्रयोगस्तथापि भगवद्गुणानां तत्र सारत्वं नोच्यते किंतु तज्जलानिति विशेषणेन प्रत्युत कार्यत्वमेव बोध्यते अतो धर्माणामेव जडवैलक्षण्यकारित्वमितीतरवैलक्षण्याद् यथाऽमात्ये राजकार्यकर्तृतया राजपदप्रयोग एवं जीवेपि भगवद्गुणसारत्वाद् ब्रह्मपदप्रयोग इति न तेनाणुत्वनिवृत्तिरित्यर्थः । अन्यथा पदार्थब्रह्मांशत्वादीनां सर्वत्र तुल्यत्वात् केन जडवैलक्षण्यमस्य भवेत् । गौण्या व्यपदेशस्थलं स्फुटी-

रश्मिः ।

न्निहितार्थौ दधाति, तद्ब्रह्मेत्योंकारस्य ब्रह्मभेदः । 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' इति श्रुत्यन्तरादेको वर्ण ओंकार इति ब्रह्मैवोपक्रान्तं दधाति, प्रज्ञा चेत्यस्य पूर्वपादत्रये 'यदा तमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्न चासच्छिव एव केवलस्तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यम्' इत्यस्मिन् शिवोपि ब्रह्मैव तथापि यदा तम इति तमोगुणाद्गुणी रुद्रो युक्त इति न ब्रह्मधर्मे प्रज्ञेति चेन्न । गुणिनि यथावच्छब्दप्रवृत्तेः स एवोक्तः शब्दार्थयोरत्यन्ताप्रविवेकाच्च । शिवः शब्दः । श्वेतेति चतुर्थाध्याये । **अदृश्य**मिति अतीन्द्रियं पश्यतीत्यर्थः । एवमग्रेपि । **त एवे**ति कारणगुणाः कार्ये समायान्तीत्येवकारः । अक्षरः कारणं जीवास्तदंशाः । **प्रज्ञये**ति **प्रज्ञया** चैतन्यगुणेन स्वभावेन **वाचं** वैखरी**मारुह्य** शरीरत्वेन गृहीत्वा **नामान्याप्नोति** वक्तव्यत्वेन प्राप्नोतीत्यर्थः । **प्रज्ञये**ति पूर्ववत् **प्राणं** घ्राणमिन्द्रियकोशं **समारुह्य सर्वान्गन्धानाप्नो**ति, वायोर्नेतृत्वादित्यर्थः । **एष** इति परमात्मा । एतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्तीति जीवस्वापप्रश्नेति । एतत्सर्वं **परे आत्मनि संप्रतिष्ठत** इति 'एष हि' इति श्रुतेः पूर्वं पठ्यत इत्येष पर आत्मा न जीवः । **पर** इति परमे । **सारत्व**मिति सूत्रे सारत्वम् । **अन्यथे**ति पुष्पवत्सारत्वे । **सर्वत्रे**ति जीवेषु जडेषु च । **अस्ये**ति जीवस्य । **गौण्ये**ति । ननु मुख्यव्यपदेशस्थलं विहाय कुतो **गौण्या व्यपदेशस्थल**मत्र, तथा च शंकरभाष्योक्तरीत्या तुशब्दघटितं दशसूत्र्युक्तपूर्वपक्षसमाधानसूत्रमेतदिति चेन्न । नेदं स्वयुक्त्या शास्त्रं किंतु शास्त्रयुक्त्येदम् । तत्र तु 'अंशो नानाव्यपदेशात्' य आत्मनि तिष्ठन्नित्यादिष्वंशांशिभावः शरीरशरीरिभावश्च श्रुत्यन्तरं च 'यथा पक्षी च सूत्रं च नाना वृक्षरसा यथा, यथा नद्यः समुद्रश्च शुद्धोदलवणे यथा । यथा स्तेनापहार्यौ च यथा पुंविषयावपि । तथा जीवेश्वरौ भिन्नौ सर्वदैव विलक्षणौ' इति 'सत्यो जीवः सत्यो जीवः सत्यो जीवः, सत्यं भिदा सत्यं भिदा सत्यं भिदा मैवारुणिर्मैवारुणिर्मैवारुणिः' इति च श्रुतिः । 'यदधीना यस्य सत्ता तत्तदित्येव भण्यते । विद्यमाने विभेदेऽपि मिथो नित्यं स्वरूपतः' इति भारते । 'भिन्ना जीवाः परोभिन्नस्तथापि ज्ञानरूपतः । प्रोच्यन्ते ब्रह्मरूपेण वेदवादेन सर्वशः' इति स्मृतिः । एतद्युक्त्या तु गौण्या व्यपदेशः । ननु कथं भवन्नये भेद इति चेन्न । 'त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन' इति गीतायां वेदानां त्रिगुणमायाविषयत्वात् । मायाया भिदां 'मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिध्य प्रसीदति' इति वाक्याद्भेदरूपत्वम् । 'निस्त्रैगुण्यो भव' इत्याज्ञा तु भिदापगमेऽद्वैतव्याख्यानेन भवति । तदा भेद इवार्थरूपः । 'अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च

भाष्यप्रकाशः।

कुर्वन्ति मैत्रेयीत्यादि। मैत्रेयीतिपदेन संपूर्णे ब्राह्मणे। यद्यपि पूर्वस्मिन्नपि मैत्रेयीब्राह्मणे जीवस्य भगवद्व्यपदेशस्तथापि तत्र 'उक्तानुशासनासि मैत्रेय्येतावदरे खल्वमृतत्वम्'इत्येवं विद्यासमाप्तेरनुक्तत्वात् संदेहोऽपि भवेत्। द्वितीये जीव एव वस्तुतो ब्रह्मत्वेन सेत्स्यतीति तन्निराकरणायैतद्ग्रहणम्। इदं च 'वाक्यान्वय'अधिकरणस्य विषयवाक्यम्। तत्र च 'न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति' इति जीवमुपक्रम्याग्रे च तद्विज्ञानतः सर्वविज्ञानार्थं सर्वस्य तदात्मकत्वकथनेन वेदादीनां तन्निःश्वासत्वकथनादिना च ब्रह्मधर्माणां तत्र बोधनाद् भगवत्त्वेन जीव उक्तः। तत्र यथा वाक्यान्वयेन हेतुना प्रतिज्ञासिद्ध्यादिभिश्चोपक्रममनादृत्य ब्रह्मवाक्यत्वस्थापनान्निरुपधिप्रियत्वमात्रासंस्पर्शेपश्यत्वादिलिङ्गबोधिते जीवे व्यासचरणैः प्रज्ञानघनशब्दस्यार्थाद् व्यपदेशपक्ष एव स्वीकृतस्तथा तत्त्वमसीत्यत्र तत्पदेऽप्यवगन्तव्य इत्यर्थः। अत्र शङ्कते ननु कथमित्यादि। तथाच मैत्रेयीब्राह्मणेऽप्युपचारादरो न युक्त इत्यर्थः। एवमाशङ्कायां निरूपणस्थल एवोपचारस्य प्रामाणिकत्वं वक्तुं दृष्टान्तमुपन्यस्य व्याकुर्वन्ति

रश्मिः।

स्थितम्' इति गीतायां ब्रह्मस्वरूप इवार्थसन्निवेशात्। तथा चास्मन्नये भेदपदस्यैवार्थे लक्षणा करिष्यत इत्यदोषात्। मैत्रेयीब्राह्मणे संपूर्णे इत्यनुक्त्वैवमुक्तेर्विवृण्वन्ति मैत्रेयीति संबोधनमिदम्। दूरात्संबोधनाभावेन न प्लुतभावः। पदपदेनोपक्रमोपसंहाराभ्यां जीवस्य पदार्थत्वेन तद्धीद्वारमुक्तम्। इयं जीवः, अमृतत्वस्याग्र उक्तेः। अतो जीव उक्तः। परं भगवत्त्वेन रूपेण 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' इति श्रुतेः। नहि स्वात्मा स्वेन श्रोतव्यः निकटत्वात् प्राप्तत्वाच्च। 'आत्मनि वा अरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इद९ सर्वं विदितम्' इति तज्ज्ञाने सर्वविज्ञानश्रावणाच्चेति भाष्यार्थः। उपक्रमोपसंहाराभ्यां जीव उक्तः नहि तज्ज्ञानेन सर्वविज्ञानं भवति किं त्वमृता मैत्रेयीति ज्ञानेनेत्यमृतत्वेन भगवत्त्वेन जीवो मैत्रेय्युक्तः। पूर्वेति द्वितीयस्मिन्। इत्येवमिति एतावच्छब्देनामृतत्वस्येयत्ता निष्कर्षेण विद्यासमाप्तेः। संदेह इति एतावदेवामृतत्वमितोऽधिकं वेति मैत्रेय्याः संदेहो निर्णेतुर्वा संदेहोऽपि भवेत्तेन च 'अधिकं तु भेदनिर्देशात्' इति सूत्रेण जीवाधिकं ब्रह्मेति पूर्वस्मिन्निर्णीयादपि द्वितीये तु मैत्रेयीब्राह्मणे उक्तसमाप्तिवत्त्वाद्ब्रह्मत्वेन सेत्स्यतीत्यर्थः। तन्निरेति जीवब्रह्मवादनिराकरणायैतस्य द्वितीयमैत्रेयीब्राह्मणस्य ग्रहणं कथं सेत्स्यतीत्यत आहुः इदं चेति। वाक्येति समन्वयाध्यायचतुर्थपादेऽस्ति। तत्र जीवब्रह्मकारणवादनिराकरणेन प्रकृतिकारणवादो निराक्रियतेऽतो जीवस्य भगवत्त्वेनोक्तत्वात्तदतिरिक्तत्वेन सेत्स्यतीत्यर्थः। सर्वस्येति 'सर्वं तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेद' इत्यनेन वाक्येन। तन्निःश्वासेति 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः' इत्यनेन। ब्रह्मधर्माणामिति सर्वं तमित्युक्तसर्वात्मकत्वमस्य महतः इत्युक्तं वेदनिःश्वासत्वमस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानीत्युक्तसर्वनिःश्वासत्वं चेत्येतेषां ब्रह्मधर्माणाम्। वाक्येति 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' इति श्रुतेः। वेदरूपमहावाक्यान्वयेन 'न वा अरे पत्युः' इत्यस्य वाक्यस्य भगवत्येवान्वयेन। प्रतिज्ञेति 'आत्मनि वा विज्ञात इद९ सर्वं विदितम्' इति प्रतिज्ञा तस्याः सिद्धिर्जीवस्य ब्रह्मात्मकत्व एव भवतीति 'आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति' इति जीवेनोपक्रम इत्याश्मरथ्यमतं तेन आदिशब्देन मुक्तौ जीवो भगवानेव भविष्यतीत्याशयेन जीवोपक्रम इत्यौडुलोमिमतम्। कयाचिदवस्थयावस्थितं ब्रह्मैव जीव इति संसारदशायामपि जीवो ब्रह्मैवेति

संभवति तत्राह प्राज्ञवत् । 'तद्यथा प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तः' इत्यत्र, 'एवमेवाऽयꣳशारीर आत्मा प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तः' इत्यभिधाय प्राज्ञस्वरूप-

भाष्यप्रकाशः ।

तद्यथेत्यादि । इदं हि बृहदारण्यके शारीरकब्राह्मणेऽस्ति । तत्र हि जीवस्य जाग्रत्स्वप्नावस्थे पूर्व-मुक्त्वा, 'अथ यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति'इति सुषुप्तिं वदँस्तत्सामयिकं

रश्मिः ।

ज्ञापनार्थं जीवोपक्रमः । न तु प्रकृतिसंसृष्टस्य जीवस्य कारणत्वार्थमिति **काशकृत्स्नमतं** च गृह्यते । **व्यपेति** जीवे भगवानिति **व्यपदेश उक्तिस्तस्य पक्षः । तथेति** वाक्यान्वयादिहेतुभिः । **अत्रेति** जीवे भगवानिति व्यपदेशः । अत्र तत्पदेन लक्ष्यमाणा गुणाः, गुणाः प्रज्ञादयः, लक्षणाधाराधेयभावसंबन्ध-स्तथाच भगवानित्यस्य प्रज्ञादिरर्थस्तदभिन्नो जीवो 'ज्ञोऽत एव' इति सूत्रात् । ब्रह्मगुणयोरभेद इति न शङ्कनीयम् । गुणानामेवेदमित्थतया प्रमेयत्वात् 'मनसैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवम्'इति श्रुत्या धर्मिण इदमित्थतया प्रमेयत्वाभावात् । तथा च पदद्वयलक्षणातो वरमस्मद्रीत्यैकतत्पदे लक्षणेति भावः । एवं तैर्जीवस्य योगाद्गौणी यथा गौर्वाहीक इत्यत्र गोपदेन लक्ष्यमाणास्तदीया जाड्यमान्द्यादयः तैर्वाही-कस्य योगाद्गोपदे गौणी । वाहीको देशविशेषस्तत्स्थः पुरुषोऽपि वाहीकः । एवं 'तत्त्वमसि' इत्यत्र तत्पदेप्यवगन्तव्य इत्यर्थः । **ननु कथमित्यादीति** । का गौरितिप्रश्ने सास्नावती गौरिति निरूपणस्थले जाड्यादयो गौरित्युपचारः संभवत्यपि तु न युगपद्वृत्तिद्वयविरोधात् । किंतु कालान्तरे वाहीकपदसम-भिव्याहारे एवोपचारः संभवति यथा तथा प्रकृतेऽपि न संभवतीति नहीत्यादिभाष्यार्थः । **शारीरकेति** । इदं संभ्रमात् । सर्वग्रन्थटीकाकर्तृत्वेनान्यत्रमनस्त्वात् । तथा च लक्षणया ज्योतिर्ब्राह्मण इत्यर्थः । ज्योतिर्ब्राह्मणं शारीरकब्राह्मणाव्यवहितपूर्वब्राह्मणम् । **उक्तेति** 'याज्ञवल्क्य किं ज्योतिः' इत्यारभ्य 'सोऽस्य परमो लोकः' इत्यन्तेन ग्रन्थेनोक्ता । इदं तु ज्ञेयम् । 'जनकꣳ वैदेहं याज्ञवल्क्यो जगाम स मेने न वदिष्य इत्यथ ह यज्जनकश्च वैदेहो याज्ञवल्क्यो वरं ददौ स ह कामप्रश्नमेव वव्रे । तꣳहास्मै ददौ तꣳह सम्राडेव पूर्वः पप्रच्छ' इत्यत्र जगाम दिनान्तरे जगाम । एतद्ब्राह्मणात्पूर्वं जनकयाज्ञवल्क्य-समागमनिरूपणात् न वदिष्ये योगक्षेमार्थमागतोऽस्मीति न वदिष्ये । तदनु अग्निहोत्रे तन्निमित्त-मग्निहोत्रविषयकमिति यावत् । समूदतुः संवादं कृतवन्तौ ततो याज्ञवल्क्यो राज्ञो विज्ञानं समीचीन-मुपलभ्य तुष्टस्तस्मै राज्ञे वरं ददौ वरं वरयेत्युक्तवान् । स च राजा कामप्रश्नमिच्छाप्रश्नं वव्रे । प्रश्ने क्रोधाभावाय तमिच्छाप्रश्नमस्मै राज्ञे ददौ । तदीयं कृतवान् तदनु तं याज्ञवल्क्यं पूर्वः प्रश्ने पूर्वः पप्रच्छ 'याज्ञवल्क्य किं ज्योतिरयं पुरुष इति'इति । अत्र किं ज्योतिरस्य पुरुषस्य परिदृश्यमानस्यान्नमय-स्येति प्रश्न औदर्यविषयको भवितुमर्हति । न तु पूर्वोक्तात्मविषयोऽन्यैर्व्याख्यातः । तस्य ब्रह्मांशत्वे-न 'आदित्यज्योतिः सम्राडिति होवाच'इत्युत्तरविरोधात् । शारीरकब्राह्मणे जीवस्य वक्तव्यत्वाच्च 'अस्त-मित आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रमस्यस्तमिते शान्तायां वाचि किं ज्योतिरेवायं पुरुष इति'इति प्रश्ने आत्म-ज्योतिः सम्राडिति होवाचेत्युत्तरे तस्य जीवज्योतिष्ट्वकथनाच्च आत्मनैवायं ज्योतिषाऽस्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपर्येति'इति अग्रे श्रुतिस्तत्र कर्तृकरणत्वव्यपदेशाच्च । आस्त उदरे उपविशति । पल्ययते पर्ययते तदीयस्वरूपसमर्पकमूर्ध्वगमनं कुरुते कर्म कुरुते चतुर्विधान्नपाचनं कुरुते विपर्येति विपरीत-भावं प्राप्नोति कदाचिदन्नपाचनं न करोतीत्यर्थः । एवमुक्ते संदिहानो जनकः पप्रच्छ कतम आत्मेति'इति हार्दौदर्ययोः कतम आत्मा जीव इत्यर्थः । 'तयोरेकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोमयात्मिका ज्ञानं त्वन्यतमो-

माह 'तद्वा अस्यैतदतिच्छन्दोऽपहतपाप्माऽभयꣳरूपमशोकान्तरमत्र पिता अपिता भवति' इत्यादि । प्राज्ञश्च सुषुप्तिसाक्षी । न हि तस्यापहतपाप्मत्वमस्ति । ब्रह्मलिङ्गात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

जीवस्वरूपं निरूप्य, 'तद्यथा प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरम्' इति जीवब्रह्मणोर्भेददृष्टान्तनिरूपणावसरे, एवमेवायꣳशारीर आत्मा प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्त इति जीवप्राज्ञयोर्भेदमभिधाय, कः प्राज्ञ आत्मेत्याकाङ्क्षायां प्राज्ञस्वरूपमाह, तद्वा **अस्यैतदतिच्छन्दोऽपहतपाप्मे**त्यादिना । अत्रास्य **रूपमि**त्यनेन **परमेश्वरस्य** रूपान्तरमित्युच्यते, न तु परमपुरुष एवेति । नचापहतपाप्मत्वरूपाद् ब्रह्मलिङ्गाद् ब्रह्मैवेति शङ्क्यम् । **प्राज्ञश्च सुषुप्तिसाक्षी** । न हि तस्य स्वतोऽपहतपाप्मत्वमस्ति । अपहतपाप्मत्वस्य ब्रह्मलिङ्गत्वात् । **ब्रह्मलिङ्गा**दिति भावप्रधानः । अत्राऽयमर्थः । माण्डूक्ये, 'ॐमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव सर्वं ह्येतद् ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म' इत्योङ्कारस्य वाच्याभेदविवक्षया अक्षरत्वमुक्त्वा 'सर्वस्य वाङ्मयस्य तद्व्याख्यानत्वं तज्ज्ञापनाय वाच्यस्य सर्वस्योङ्कारविषयत्वं चोक्त्वा तदुपपादनाय, सर्वस्य वस्तुजातस्यैतस्य जीवात्मनश्च ब्रह्मत्वं

रश्मिः ।

भावः पुरुषः सोऽभिधीयते' इत्येकादशे चतुर्विंशे । तयोरन्यतमो भावो ज्ञानमिति द्वयोरेकतरनिर्द्धारणे डतमचोपि दृष्टत्वात् । तदनु जीव हार्दे इति निरूपयन्नवस्थानिरूपयत्यग्रे । अर्थस्तु स्वमतानुसारेणोह्यः । **तत्सामयिक**मिति सुषुप्तिसामयिकम् । 'तद्वा अस्यैतद् आत्मकाममाप्तकामꣳ रूपम्' इत्यनेन निरूप्य । **इत्यादिने**ति । इत्यस्याः 'पूर्वे न बाह्यं किंचन वेद नान्तरम्' इति श्रुतिर्बोध्या । (भाष्योक्तादिशब्दग्राह्यग्रन्थेनेत्यादिनेत्यस्यार्थः) अर्थस्तु । तद्वै प्रसिद्धमस्य परमेश्वरस्य रूपम् । कीदृक् । अतिच्छन्दः कामो यस्मात् । पुनरपहतपाप्मापहतः पाप्मा धर्माधर्मादिलक्षणो यस्मिन् । पुनश्चाभयम् नास्ति भयं यत्र । पुनरशोकान्तरं नास्ति शोकान्तरं गर्भवासो यत्र । अत्र सुषुप्तौ पिता अपितापहतपाप्मत्वादेव भवतीत्यर्थः । भाष्योक्तादिशब्देन माताऽमाता लोका अलोका इत्यादि । **अत्रास्ये**ति अत्रेति श्रुतौ । **रूपान्तर**मिति जीवावस्थान्तररूपम् । **एवेती**ति किंतु रूपान्तरमपीत्यर्थः । **प्राज्ञश्चे**ति भाष्यं विवरीतुमाहुः **न चे**ति । **ब्रह्मैवेती**ति प्राज्ञो ब्रह्मैव । तथाच न प्राज्ञेपहतपाप्मत्वादेर्नोपचार इति भावः । **प्राज्ञश्चे**ति । अतः परमेश्वरस्य रूपान्तरमेवेति सिद्धम् । **तस्ये**ति सुषुप्तिसाक्षिणो ब्रह्मशरीरस्य 'यस्यात्मा शरीरम्' इति श्रुतेः । **ब्रह्मलिङ्गे**ति 'स वा अयं पुरुषो जायमानः शरीरमभिसंपद्यमानः पाप्मभिः सꣳसृज्यते' इति ज्योतिर्ब्राह्मणात् । एवमर्थे कृत आहुः **ब्रह्मलिङ्गा**दिति । अपहतपाप्मेति ब्रह्मलिङ्गादिति भाष्यार्थे तु न भावप्रधानः । अत्र श्रुतावात्मानावुक्तौ तौ च ब्रह्मजीवाविति वक्तव्यम् । जीवयोरसंभवात् । एवं च प्राज्ञे सुषुप्तिसाक्षिणि ब्रह्मणि **नहि तस्ये**त्यादि भाष्यमनुपपन्नमिवेति प्राज्ञस्वरूपं निश्चिन्वन्तस्तत्कथनमुखेन तत्त्वमसीत्यत्र व्याख्याता गौणी श्रुत्यन्तरसिद्धेति सूचयन्तः उत्तरभाष्यार्थमप्याहुः **अत्रे**त्यादिना । पूर्वोत्तरभाष्यसंदर्भोयं बुद्धिस्थः । **त्रिकाले**ति जीवो वेदात्मकं मनश्च **त्रिकालातीतं** नित्यत्वात् । **वाच्ये**ति अत्राक्षरपदेन ग्राह्यं ब्रह्म वाचकं वाच्यम् । नातीतं भूतमित्यादिनोक्त्वा तल्लिङ्गाधिकरणस्थयावन्मुख्यपरत्वं संभवतीत्यादि भाष्याद् ज्ञेयं तद्व्याख्येति इदं सर्वमित्यादिनोक्त्वेति पूर्वेणान्वयः । तस्य व्याख्यानत्वं प्रकृतिविकृतिव्याख्यानत्वमुपोपसर्गात् । **तज्ज्ञे**ति 'स्तोः श्चुना श्चुः' इति चुत्वम् । **सर्वस्ये**ति जगतस्त्रिकालातीतस्यापि ।

भाष्यप्रकाशः ।

बोधयित्वा जडवैलक्षण्यार्थं 'सोऽयमात्मा चतुष्पात्' इत्यादिना वैश्वानरतैजसप्राज्ञतुरीयभेदेन चतुरः पादान् विवृणोति स्म । तत्र यद्यपि सोऽयमात्मेति तच्छब्दबलेन ब्रह्मणो जीवस्य चैते पादा इति वक्तुं शक्यते । उभयोः प्रकृतत्वात् । तथापि नृसिंहोत्तरतापनीयारम्भे 'अणोरणीयांसमिममात्मानमोङ्कारं नो व्याचक्ष्व' इति देवैः पृष्टः प्रजापतिः, ॐ तथेति कथनं प्रतिज्ञाय माण्डूक्यवदेव, अयमात्मा ब्रह्मेत्यन्तमुक्त्वा ततोऽहंग्रहोपासनार्थं चतूरूपमेतं चतूरूपेण ब्रह्मणैकीकर्तुं ब्रह्मणः पादानाह, 'विश्वो वैश्वानरः प्रथमः पादः' 'तैजसो हिरण्यगर्भो द्वितीयः' 'प्राज्ञ ईश्वरस्तृतीय' 'ईश्वर ग्रासस्तुरीयः' इति। ततस्तुरीयस्य न स्थूलप्रज्ञमित्यादिना प्रपञ्चोपशमत्वेनोक्तत्वात् स निर्धर्मको

रश्मिः ।

उक्त्वेति भूतमित्यादिनोक्त्वा । ब्रह्मत्वं शब्दब्रह्मत्वम् । सर्वं ह्येतदित्यादिना बोधयित्वा । **चतुष्पा**दिति चतुरंशः । **पादा**नित्यंशान् । **सोयमात्मे**ति । तदिति परोक्षमधोक्षजरूपम् 'इदमस्तु प्रत्यगं रूपम्'इति स भगवानयं जीव आत्मेत्यर्थः । **सोयमात्मे**ति अहंग्रहोपासनार्थत्वस्य वक्ष्यमाणत्वान्नात्र स प्रसिद्धः आत्मा परमेश्वर इत्यर्थः । किंतु व्युच्चरणात्पश्चान्मायासंबन्धात्पूर्वं 'जीवस्यानुस्मृतिः सती' इति वाक्योक्तः सोहमिति प्रतीतिकालीनः तेन साधनैर्मायापगमो ज्ञातव्यः । तदाहुः **तच्छब्दे**ति । **ब्रह्मण** इति शब्दब्रह्मणः । **प्रकृते**ति तदिदम्पदाभ्यां सोयमात्मेति श्रुतौ **प्रकृतत्वात्** । **अहंग्रहे**ति जीवस्य ब्रह्मांशत्वेन सोहमित्युपासनमहंग्रहोपासनं तदर्थमित्यर्थः । तमेतमात्मानमोमिति ब्रह्मणैकीकृत्य ब्रह्म चात्मनोमित्येकीकृत्य 'तदेकमजरमपरममृतमभयमोमित्यनुभूय'इति श्रुत्योक्ता । अत्रोमित्यस्योमित्यनेनेत्यर्थः । ब्रह्मविशेषणं चेदम् । कथं स्वभावेन भिन्नयोरैक्यं घटपटाद्येकीभावाभाववत् । आह । 'तदेकम्' इति तदभयमेकम् । कैर्धर्मैरैक्यं तत्राह 'अजरम्' इत्यादि । अजरादयः स्वरूपभूता जीवस्य न धर्माः । अभयं तु सुषुप्तौ भगवता तस्मै दीयते । यद्वाऽभयं भयाभावो न कस्यापि धर्मस्तेनाजरादिधर्मैः ब्रह्मसाधारणैरहंब्रह्मांशो ब्रह्मैवेत्यालोचनमहंग्रहोपासनमित्युक्तं भवति । अनुभूयेत्यस्य ब्रह्मविचारानन्तरमर्थस्तेन शाब्दानुभवोऽनुभूयेत्यत्र ग्राह्यः । अन्योपि ग्राह्य एतावताऽनारोपितरूपेण जीवोपासनोक्ता । सर्वस्योंकारत्वात् । चतूरूपमित्यवस्थात्रयं प्रत्येकं रूपत्रयम् । जीवस्वरूपा चिच्चेति चतूरूपमेनं जीवं **चतूरूपेण** वैश्वानरतैजसप्राज्ञतुरीयरूपचतूरूपेण । **एकी**ति पूर्वश्रुत्युक्ताजरादिभिर्धर्मैरे**कीकर्तुं** पूर्वं न एकः स एकः संपद्यते तथाकर्तुम् । **पादानाहे**ति जागरितेत्यारभ्य तुरीय इत्यन्तेनाह । वैश्वानरादयो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिसाक्षिणः । **निर्धर्मक** इति प्रपञ्चोपशमवान्जगज्जन्मकर्तृत्वशून्यः । ईश्वरग्रासादयश्चत्वारः । एते श्रुत्यन्तरिताः पादाः तथाहि अनुभूयेति । पूर्वोक्तश्रुतिमनु गुणोपसंहारसूत्रोक्तरीत्या ब्रह्मगुणैर्जीवोपासनोच्यते । तस्मिन्निदं त्रिशरीरमारोप्य तन्मयं तदेवेति संहरेदोमित्यनेन ग्रन्थेन । तदनु तं वा एतं त्रिशरीरमात्मानं त्रिशरीरपरब्रह्मानुसंदध्यात् । स्थूलत्वात्स्थूलभुक्त्वाच्च सूक्ष्मत्वात् सूक्ष्मभुक्त्वाच्चैक्यादानन्दभोगाच्च । 'सोयमात्मा चतुष्पाज्जागरितस्थानः स्थूलप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुक् चतुरात्मा'इति श्रुतिः । तस्यास्तस्मिन् जीवात्मनि त्रिशरीरं त्रीणि शरीराणि सत्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्मेति श्रुतेरागन्तुकानि धर्माः मुक्तजीवोपास्यप्रत्यायकाः इति सारः । 'आपो वा इदमग्र आसन् तत्सलिलमेव'इति पूर्वतापिनीयात् तत्र सत्यं जडमबात्मकं । एवं विज्ञानं जीवा उपास्यजीवातिरिक्ताः । आनन्दमन्तर्यामीत्येवं त्रीणि शरीराण्यवयवाः शरीरपदस्य यौगिकत्वादेरेण लब्धा यस्य प्रपञ्चस्य श्रीयमुनाजिद्रूपजलकार्यस्य तमारोप्यैकीकृत्य । ननु कथमेकीभावः सत्यपदार्थस्य जडस्येत्याशङ्क्याह । तन्मयमित्यादि तन्मयं जडमयमिति तदेव चैतन्यमेवेति हेतोरोमित्यस्य गुणानुप-

भाष्यप्रकाशः।

भविष्यतीत्याशङ्कानिरासाय, अथ तुरीय ईश्वरग्रासः स्वराट् स्वयमीश्वरः स्वप्रकाशश्चतुरात्मा

रश्मिः।

संहरेदिति सारोऽर्थः। अनुसंदध्यादिति विश्वात्मकत्वेन स्वस्मृतिं कुर्यात्। अहं ब्रह्मांश इति। षड्‌हेतवो मुक्तत्वसूचकास्तानाह स्थूलत्वादित्यादि। स्थूलत्वसूक्ष्मत्वे लिङ्गेशुत्वव्यापकत्वपर्यायभूते विरुद्धधर्माश्रयत्वबोधके। स्थूलभुक्त्वसूक्ष्मभुक्त्वाभ्यां हेतुभ्यां निःसंबोधो मोक्ष इति वार्यते। आनन्दभोगोऽपि वक्तव्यो भवेत् मुक्तस्य कथं तु अमुख्यो भवेत्संपद्यानाविर्भावादतो गौणमाह ऐक्यादानन्दभोगाचेति। जीवस्य ब्रह्मसायुज्याद्धेतोरानन्दभोगो ब्रह्मधर्मो जीव उपचर्यते। उपसंहरति जीवप्रकरणम्। सोयमात्मा चतुष्पादिति। सोयमिति ब्रह्मजीवौ मिथुनीकृत्य निर्देशो मुक्तजीवोपासासूचकः। अतः परं प्रकृतश्रुतीर्व्याख्याय तदनु तत्पाठात् तत्र ब्रह्मप्रकरणं निरूप्यते जागरितेत्यादि। श्रुतिस्तु 'जागरितस्थानः स्थूलप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुक् चतुरात्मा विश्वो वैश्वानरः प्रथमः पादः' एतावती व्याख्यायते। जागरितावस्थयावस्थानं यस्य स स्थूलप्रज्ञो भवति। स्थूलास्थूलविषयिणी प्रज्ञा बुद्धिर्ब्रह्मधर्मो यस्य जीवस्य स, सप्ताङ्गश्च सप्तविभक्तयोङ्गानि यस्य वेदस्य स सप्ताङ्गो वेद इत्येतावुभौ मिलित्वैकोनविंशतिमुखौ। एकवचनं समुदायापेक्षं नवद्वाराणि जीवस्याष्टौ वेदस्य सप्तविभक्तयः मनश्चेत्येकोनविंशतिमुखः समुदायः। तादृशेन्द्रियादिभिः स्थूलभुक् स्थूलान् विषयान्घटपटादीन् भुनक्तीति तथोक्तः। स चतुरात्मावस्थात्रयं स्वरूपं च मिलित्वा जीवः। गौण्या व्यपदेशोयं जीवे स्थूलभुक्त्वस्य। विश्वो जडात्मा वैश्वानरो वह्निः प्रथमः पूर्वमुत्पद्यमानत्वात्। पादोंश इत्यर्थः। तैजस इति। एवं हि श्रूयते व्यवहितश्रुतौ। 'स्वप्नस्थानः सूक्ष्मप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः सूक्ष्मभुक् चतुरात्मा तैजसो हिरण्यगर्भो द्वितीयः पाद' इति। अर्थस्तु स्वप्नावस्थापन्नो जीवः स सूक्ष्मावस्था यत्र लिङ्गदेहविषयिणी प्रज्ञा यस्य सः। लिङ्गदेहं पश्यतो जीवौ। चतुर्थचरणे स्फुटिष्यति चेदम्। सप्ताङ्गः पूर्वोक्तरीत्या वेदः। समुदायस्यैकविंशतिमुखत्वं तु प्रागुक्तरीत्यात्राप्यविरुद्धम्। सूक्ष्मभुक् सूक्ष्मैर्मनोधर्मैर्भुनक्ति स सूक्ष्मभुग्जीवश्चतुरात्मपदार्थः। चतुरात्मपदेन जीवपरामर्शस्तु चतस्रोवस्था अंशतः सार्वदिक्य इति सूचयितुं तैजस इति योगरूढं पदं राजस इति सारोर्थः। हिरण्यगर्भो ब्रह्मा। हिरण्यं सुवर्णं गर्भे यस्य। तादृशोत्र विवक्ष्यते। युक्तं चैतत्। गर्भपदमुदरे उपचर्यते। उदरे हि हिरण्मयः शकुनिर्ब्रह्मनामेति दृश्यतेऽपि तद्विद्भिः अन्तर्यामिविद्भिः। शकुनिप्रभैवानन्दमयः कोशः इति तत्रापि व्यवहार इति श्रुतं मया। आकाशवाणीवत्। चत्वारोन्ये कोशास्तु तथैव। तथाहि। विज्ञानं तु व्यष्ट्यात्मकमम्बु। व्यष्टिस्तु जीवस्वरूपम्। समष्टिस्तु तत्प्रभावः विज्ञानमयकोशात्मकः। एवं सर्वत्रोह्यम्। आनन्दमयाधिकरणे त्विदमुक्तम्। द्वितीयः पादोम्भः। द्वितीयत्वं तु पालकत्वात्। राजसत्वाच्च। इदानीं सुषुप्तिं वक्तुं तत्स्वरूपं वक्तुं संसारिजीवस्वरूपमाह यत्र सुप्तो नेत्यादि। श्रुतिस्तु। यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखश्चतुरात्मा प्राज्ञ ईश्वरस्तृतीयः पाद एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानां त्रयमेतत्सुषुप्तं स्वप्नं मायामात्रं चिदेकरसो ह्ययमात्मेति। यत्र स्थाने सुप्त उज्जीवः। तृतीयत्वं तु पालनकर्तृत्वात्। आनन्दभुगित्यादिपर्यायाः जीवस्यैव नामान्तराणि। तथा च ज्ञानस्वरूपं इयामित्युक्तं भवति। अग्रे स्फुटतरम्। इत्यन्तं प्रासङ्गिकमुक्तम्। प्रकृतमनुसरामः। ईश्वरग्रास इत्यादि। 'अथ चतुर्थश्चतुरात्मा तुरीयावसितत्वादेकैकस्यौतानुज्ञात्रनुज्ञाविकल्पैस्त्रयमत्रापि सुषुप्तं स्वप्नं मायामात्रं चिदेकरसो ह्ययमादेशो न

१. उक्तं केनचित्।

एवमेव शारीरस्यापि जीवस्य ब्रह्मधर्मबोधिकाः श्रुतयः ।

भाष्यप्रकाशः ।

ओतानुज्ञात्रनुज्ञाऽविकल्पैरित्युक्त्वा ओतादीन् विवृणोति स्म । तादृशं च विवरणं न माण्डूक्ये । अतो जीवपादेभ्यो भिन्ना एते ब्रह्मपादा एतेषु ये पूर्वे त्रयस्तान् पूर्वेषु त्रिषु जीवपादेष्वारोप्य तुरीयं च जीवस्य केवलं रूपमीश्वरग्रासेन तुरीयेण ब्रह्मरूपेणैकीकृत्याहंग्रहोपासनं कुर्यादिति सिद्ध्यति । एवं सति जीवाद्भिन्नस्येश्वरस्य सर्वसुषुप्तिसाक्षिणोऽपि ब्रह्मशरीरत्वमेव, न ब्रह्मत्वमतस्तत्र यथा ब्रह्मधर्मा बोध्यन्ते, 'एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्'इत्यनेन । एवं शारीरस्यापि जीवस्य ब्रह्मधर्मबोधिकाः श्रुतयो जीवे गौण्या ब्रह्मत्वं वदन्तीति । नन्वस्मिन् सूत्रे गौण्या व्यपदेशः सूत्रकाराभिमतः सूत्रे च तच्छब्दद्वयम् । तत्र पूर्वस्मिंस्तच्छब्दे उपाधिः परामृश्यते, द्वितीये चाणुत्वमिति जीवे उपाधिगुणसारत्वादणुत्वव्यपदेश

रश्मिः ।

स्थूलप्रज्ञं न सूक्ष्मप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं न प्रज्ञानघनमदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमलिङ्गमचिन्त्यमव्यपदेश्यमैकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवं शान्तमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स एवात्मा स एव विज्ञेय ईश्वरग्राह्यस्तुरीयस्तुरीयः' इति श्रुतेः । **विवृणोती**ति । ओतो ह्ययमात्मा यथेदं सर्वमन्तकाले कालाग्निः सूर्यस्रयीनुज्ञाता ह्ययमात्माऽस्य सर्वस्य स्वात्मानं ददाति यदि सर्वमिदं दर्शयति स्वात्मानमेव करोति यथा तमः सवितानुज्ञैकरसो ह्ययमात्मा चिद्रूप एव यथा दाह्यं दग्ध्वाग्निरविकल्पो ह्ययमात्मा वाङ्मनोगोचरत्वादित्येवं **विवृणोति स्मे**त्यर्थः । 'लट् स्मे' इति लिटः स्थाने लट् । अस्योभयपदित्वेऽपि परस्मैपदादिविचारस्यासार्वत्रिकत्वाद्भवतीत्यादौ प्रथमोपात्तस्यात्र त्यागे मानाभावाच्च परस्मैपदम् । देवैः पृष्टः प्रजापतिर्देवार्थमाहेति वा परस्मैपदं ज्ञेयम् । **तादृशं चे**ति । चोप्यर्थे । विवरणमपि नेत्यर्थः । **अत इति** । जीवपादविवरणाभावरूपात्कारणाज्जीवपादेभ्यो भिन्ना एते माण्डूक्योक्ता इत्यर्थः । उपक्रमोऽपि हेतुत्वेनानुसंधेयः । यद्यप्यणोरणीयांसमित्याद्युपक्रमो न तथा तथाप्योङ्कारं नो व्याचक्ष्वेत्युपक्रमस्तथा । 'ॐतत्सदितिनिर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः' यदि च नायमुपक्रमः । किंतु प्रश्नस्तथाप्यहंग्रहोपासनस्य वक्ष्यमाणत्वात्तस्य च ब्रह्मपादैर्विना संभवादीश्वरग्रासपदाच्च ब्रह्मपादा इत्यर्थः । **अहंग्रहे**त्यादि इयं च ज्ञान एव स्फुटा । अहंग्रहश्च भगवता भक्ताय न दीयत इत्युक्तं साधनाध्यायपादेन्तराभूतग्रामाधिकरणेऽतो नात्र वितन्यते । अत्र माण्डूक्ये च या शब्दतः सृष्टिरुक्ता सा समन्वयाध्याये तृतीयपादे 'शब्द इति चेन्नातः प्रभवात्प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्' इत्यादिसूत्रेषु वैदिकी सृष्टिरित्युक्तम् । **एवं सती**ति । जीवपादेषु ब्रह्मपादारोपणेनाहंग्रहोपासनमिति सिद्धे सति । **ब्रह्मशरीरत्वा**दिति ब्रह्मावयवत्वम् । तस्मिन्निदं त्रिशरीरमारोप्येत्यादिश्रुतिसन्निधानाच्छरीरपदमेवोक्तम् । न च निरवयवत्वशब्दकोपः । 'श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्', एवमेवेत्याद्युत्तरभाष्यार्थमाहुः **एवमि**ति । पूर्वं जीवस्य विचारितत्वाद्भाष्य एवकारः । **श्रुतय इति** तत्त्वमस्यादिश्रुतयः । **गौण्ये**ति । तथाच श्रुतिस्मृतयः । 'एष वीरो नरसिंह एव'इति नृसिंहोत्तरतापनीये । गौण्याऽविवक्षणे वीरपदमनतिप्रयोजनकं स्यात् । नरसिंहे वीरत्वविधाने सिंहो माणवक इति न्यायेनावतरति । उपासकनरसिंहगुणयोगे तु भवति । इदानीमुत्तरभाष्यं विवरीतुमाभासत्वेन व्याख्याद्वयमुपन्यस्यन्ति स्म **नन्वि**त्यादि । शंकराचार्यव्याख्यानमुपन्यस्यन्ति स्म **तत्र पूर्वस्मिन्नि**ति । **पूर्वस्मिंस्तच्छब्द** इति । **अनुस्वारस्य हल्** नकारत्वेनोल्लेखोनुस्वारभ्रमात् । वैषयिकाधारे सप्तमी । अभिव्यापकौपश्लेषिकाधार-

१. जसःस्थाने शस् छान्दसः ।

इदमत्र वक्तव्यम्। सर्वोपनिषत्सु ब्रह्मज्ञानं परमपुरुषार्थसाधनमिति तन्निर्णयार्थं भगवान् व्यासः सूत्राणि चकार। तत्र ब्रह्मसूत्रे विचारं प्रतिज्ञाय जगत्कर्तृत्वाद्यसाधारणलक्षणं ब्रह्मणः प्रतिज्ञाय समन्वयनिरूपणे जीववाक्यानि दूरीकृत्य अविरोधेपि, ऐक्येपि अहिताकरणादिदोषमाशङ्क्य, 'अधिकं तु भेदनिर्देशात्' इति परिहृत्य जीवस्याणुत्वमुपचाराद् ब्रह्मत्वमंशत्वं पराधीनकर्तृत्वादिकं प्रतिपाद्य तस्यैव दक्षिणमार्गेण पुनरावृत्तिमुक्त्वा ससाधनेन ब्रह्मज्ञानेन अर्चिरादिद्वारा ब्रह्मप्राप्तिमुक्त्वा, न स पुनरावर्तत इत्यनावृत्तिं वदञ्छास्त्रपर्यवसानेन सर्वान् वेदान्तानव्याकुलतया योजितवान्।

तत्र कश्चित् तद्व्यपदेशेन प्रोक्तानि तत्त्वमस्यादिवाक्यानि स्वीकृत्य जीवमात्रं च ब्रह्म स्वीकृत्य तदतिरिक्तस्य सर्वस्य कारणांशकार्यरूपस्य मिथ्यात्वं परिकल्प्य तद्बोधकश्रुतीनामर्थवादत्वेन मिथ्यात्वं स्वीकृत्य सुषुप्तिसंपत्त्योर्भगवता प्रकटीकृतमानन्दरूपत्वं तत्प्रतिपादकवाक्यानां सद्योमुक्तिरूपफलवाचकत्वमुक्त्वा

भाष्यप्रकाशः।

इति वा युक्तम्, उत तच्छब्दद्वयेऽपि ब्रह्मैव परामृश्यत इति ब्रह्मगुणसारत्वाज्जीवे ब्रह्मत्वव्यपदेश इति वा युक्तम्, इत्येतत् कथं निश्चेतुं शक्यमित्यत आहुः इदमित्यादि। अस्मिन् सूत्रे यदस्माभिर्व्याख्यातं तदेवाभिप्रेतम्। कुत इत्याकाङ्क्षायां हेतुं व्याकुर्वन्ति सर्वोपनिषत्स्वित्यादि योजितवानित्यन्तम्। चतुर्वेदस्थितासूपनिषत्सु, 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' 'तमेवं विद्वानमृत इह भवति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय, तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति'इत्यादिजातीयवाक्यदर्शनाद् ब्रह्मज्ञानं परमपुरुषार्थसाधनम्। जीववाक्यानि दूरीकृत्येति जीवबोधकवाक्यानि जीववाक्यानि तानि निराकृत्य, तेषु जीवबोधकवाक्यत्वं निराकृत्य अविरोध इति द्वितीयाध्याये। अविरोधेनेति तृतीयान्तपाठे तु तस्य प्रतिपाद्येत्यनेनान्वयः। ऐक्येऽपीति अंशांशिभावेनैक्येऽपि। शेषं स्फुटम्। तथाच यस्मादेवं शास्त्रार्थस्तस्मादित्यर्थः। पूर्वरीत्या व्याख्यातुः शंकराचार्यस्य तात्पर्यमाहुः तत्र कश्चिदित्यादि। स्वीकृत्येति महावाक्यत्वेनादृत्य। सर्वस्येतिपदस्यैव विवरणं, कारणांशकार्यरूपस्येति कारणरूपस्यांशरूपस्य कार्यरूपस्य चेत्यर्थः। अर्थवादत्वेनेति। गौण्या बोधकतया असदर्थवादत्वेन। प्रकटीकृतमानन्दरूपत्वं तत्प्रतिपादकवाक्याना-

रश्मिः।

भिन्नविषये वैषयिकाधार इति शब्देन्दुशेखरेऽस्ति। पूर्वाभिन्नतच्छब्दविषय उपाधिरूपोऽर्थः स परामृश्यत इत्यर्थः। उपाधीत्यादि अयमग्रे स्वयं वाच्यः। श्रीमदाचार्यव्याख्यामाहुः यदिति द्वितीयकोटिरूपम्। इत्यादिजातीयेति ऋग्वेदे 'तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथाविदः' इत्यादि। मुण्डकोपनिषद्यप्योंकारो विदितो येन स मुनिरिति। सामवेदे तलवकारशाखोक्तकेनोपनिषदि विद्यया विन्दतेऽमृतमित्यादि। अथर्वणि वेदे मुण्डकोपनिषत् 'एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सौम्य' इत्यादि इति। एवमित्यादिजातीयवाक्यदर्शनादित्यर्थः। ब्रह्मज्ञानमिति फलात्मकं ज्ञानम्। भक्तिरूपं वा सर्वात्मभावाख्यं ज्ञानं च 'पुरुषार्थोतः शब्दात्'इत्यधिकरण उक्तम्। भक्तित्वादिकमस्य तत्रैव स्फुटम्। शेषमिति। भाष्ये तस्यैवेत्यारभ्य फलाध्यायार्थ उक्तः। ससाधनेनेत्यंशेन तन्मध्ये एव साधनाध्यायार्थो दर्शितः। अयमर्थोधिकरणमालायां स्फुटतमः। पूर्वेति। प्रथमकोटिरीत्या। स्वीकृत्येति स्वीकारं कृत्वादृत्येत्यर्थः। असदिति गुणवादत्वेन त्रिष्वर्थवादेषु

क्रममुक्तिमुपासनापरत्वेन योजयित्वा वेदसूत्राणि व्याकुलीचकार। तद् वेदान्तानां ब्रह्मपरत्वं जीवपरत्वं वेति यदत्र युक्तं तत् सद्भिरनुसंधेयम्॥ २९॥

भाष्यप्रकाशः।

मिति प्रकटीकृतं यदानन्दरूपत्वं तत्प्रतिपादकानि यानि वाक्यानि 'न कंचन कामं कामयते' 'सलिल एको द्रष्टाऽद्वितीयो भवति' इत्यादीनि तेषाम्। वेदसूत्राणीति वेदसहितानि सूत्राणि। व्याकुलीचकारेति इन्द्रप्रजापतिसंवादं मुक्तिवाक्यत्वेनोपन्यस्य तदर्थमन्यथा वदन् व्याकुलीकृतवान्। तथाचैवं व्याकुलीकरणमेव तथा व्याख्यानस्य तात्पर्यमित्यर्थः। नन्वेवं विप्रतिपत्तौ कथमेकतरनिश्चय इत्याकाङ्क्षायां निश्चयोपायमाहुः तद्वेदान्तानामित्यादि। अत्रायमर्थः। 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि', 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' इत्यादिश्रुतिस्मृतिभिर्वेदमहातात्पर्यविषयं ब्रह्मैवेति वेदान्तानां ब्रह्मपरत्वमविवादम्। ब्रह्म च जगत्कर्तृत्वाद्यसाधारणधर्मैर्जीवविलक्षणमित्यपि पूर्वं सिद्धम्। अतः परं जीवस्वरूपे विचारः। तद्यदि उत्पत्त्यश्रवणात् परस्यैव ब्रह्मणः प्रवेशश्रवणात् तादात्म्योपदेशाच्च परमेव ब्रह्म जीव इति मतं तत्तु न युक्तम्। उत्पत्त्यश्रवणस्य जीवनित्यतायामप्युपपत्तेस्तस्य ब्रह्मत्वागमकत्वात्। अविद्याऽनादित्व-

रश्मिः।

यजमानः प्रस्तर इतिवत्। तथा च 'विरोधे गुणवादः स्यात्' इति मीमांसकोक्तेर्विरुद्धश्चासावर्थवादश्चासदर्थवादस्तत्त्वेन। सलिल इति सप्तम्यन्तं सलिलपदस्य नपुंसकत्वात्। तथा चैको द्रष्टाश्वः। 'उषा वा अश्वस्य शिरः' इति उपक्रम्य 'समुद्र एवास्य बन्धुः समुद्रो योनिः' इति बृहदारण्यकात्। आनन्दरूपत्वं श्रुत्युक्तयोः 'स्वाप्ययसंपत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि' इति सूत्रात्। वेदेति साहित्यं चेह स्वप्रतिपाद्यप्रतिपादकत्वेन संबन्धेन ब्रह्मसूत्राणीत्यर्थः। तथेति। पूर्वरीत्या व्याख्यानस्य तात्पर्यं प्रतीतीच्छयोचरितत्वम्। व्याकुलीकरणं व्याख्याननिष्ठं तन्निष्ठमेव तत्प्रतीतीच्छयोच्चरितत्वमित्यैक्यम्। अभेदान्वयः। इन्द्रेति। तत्स्था श्रुतिस्तु तदीयभाष्येण सहोपादीयतेऽर्थस्पष्टत्यै। यथा प्राज्ञस्य परमात्मनः सगुणेषूपासनेषूपाधिगुणसारत्वादणीयस्त्वादिव्यपदेशो 'अणीयान् व्रीहेर्वा यवाद्वा' 'मनोमयः प्राणशरीरः सर्वगन्धः सर्वरसः सत्यकामः सत्यसंकल्पः' इत्येवंप्रकारस्तद्वदिति। प्राज्ञवदित्यस्यार्थः। अत्रान्यथार्थः औपाधिकार्थः। वेदेति। अत्र सामान्यवाक्यं प्रश्नस्थमुपक्षिप्तं मध्ये प्रमाणविशेषग्राह्यत्वप्रतिपादकवाक्यमुक्त्वा पुनः सामान्यवाक्यमुक्तं तेन वेदाभिधाविषयं माहात्म्यमैक्यं च कर्म च। ज्ञानकाण्डं माहात्म्यादिज्ञानकाण्डम्। अधोक्षजत्वात्तु ज्ञानशक्तिक्रियाशक्ती प्रतिपाद्येते वेदान्ते न तु ह्यधोक्षजोप्यनिदमित्थतया। अधोक्षजो वेदतात्पर्यविषयः। तात्पर्यविषयत्वं 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' इत्याद्यवान्तरवाक्येष्वपि वर्तते परंतु, **महातात्पर्यं सर्ववेदतात्पर्यविषयम्।** वेदानामिदमेव तात्पर्यं यत्सर्वैः प्रकारैर्भगवत्कार्यं कर्तव्यमिति सुबोधिन्याम्। एवकारेण परब्रह्मेतरब्रह्मणोऽपि व्यवच्छेदः। पूर्वमिति प्रथमपादे भोक्त्रापत्त्यधिकरणे। मतमिति शंकरमतम्। अत्र जीवो ब्रह्म। उत्पत्त्यश्रवणात्। यन्नैवं तन्नैवं घटादिवदिति सिद्धम्। तत्र हेतोः साधारण्यमाहुः अविद्येति। अविद्या माया। यथाहुर्विद्वन्मण्डने जगत्कर्तृत्वादिविशिष्टनिर्विशेषयोर्भेदमङ्गीकरोष्युताभेदं भेदपक्षेऽपि तात्त्विकमतात्त्विकं वेति विकल्प्यातात्त्विकभेदपक्षदूषणावसरेऽविद्यैवोपाधिः सा चानादिरिति पक्षस्त्वसंगतः। उभयोरप्यनादित्वेनोपहितत्वस्याप्यनादितया तादृशस्यैव च त्वन्मते कर्तृत्वेनाविरतं सर्गः स्यादिति। तथा च तस्या जीवोत्पत्तेः साधारण्यमुपहितसाधारण्यमित्यर्थः। यद्वा साधारण्यं साध्यवदन्यवृत्तित्वम्। यथा पर्वतो धूमवान्वह्नेरित्यत्र साध्यवत्परं ब्रह्म तदन्यानादिरविद्यावद्वृत्ति-

भाष्यप्रकाशः ।

वादिनस्तत्साधारण्याच्च । नच भेदे अद्वैतप्रतिज्ञाविरोधान्नित्यत्वमेवाभेदे पर्यवस्यति । अनादित्वं च मिथ्यात्वे । अतो न हेतौ दोष इति वाच्यम् । प्रतिज्ञाया वक्ष्यमाणेनांशांशिभावेन, 'पराऽस्य शक्तिर्विविधैव'इत्यादिश्रुतेः शक्तिशक्तिमद्भावेन चाविरोधे नित्यत्वानादित्वयोरुक्तपर्यवसानस्यैव दुर्घटत्वात् । नचांशांशिभावे निष्कलश्रुतिविरोधः । 'श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्'इत्यत्र विरुद्धधर्माश्रयत्वाङ्गीकारेणैव परिहृतत्वात् । नापि निर्गुणश्रुतिविरोधः । तस्याः प्राकृतगुणनिषेधपरत्वात् । तस्मान्नोत्पत्त्यश्रवणस्य जीवब्रह्मतागमकत्वम् । नापि परस्यैव ब्रह्मणः प्रवेशश्रवणस्य । तथाहि । प्रवेशो नाम संयोगो वा तज्जनिका क्रिया वा । नाद्यः । कार्यसृष्टिमात्रादेवान्तर्बहिश्च तत्संभवेन पृथक् तदुक्तिवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । तत एव नामरूपव्याकरणसिद्ध्या ल्यबन्तप्रयोगानावश्यकत्वप्रसङ्गाच्च । न द्वितीयः । व्यापकत्वस्य क्रियाविरुद्धत्वात् । वस्तुतस्तु न तत्र जीवरूपेण स्वप्रवेश उच्यते, किंतु जीवसाहित्येन स उच्यते । द्वा सुपर्णादिश्रुत्यनुसारेण जीवपदगततृतीयायाः सहार्थे वक्तुं शक्यत्वात् । अन्यथा आत्मनेत्यस्य वैयर्थ्यप्रसङ्गात् । नचेतरव्यपदेशाधिकरणभाष्ये, जीवेनात्मनेत्यात्मपदस्य जीवविशेषणत्वाङ्गीकारान्नैवमिति शङ्क्यम् । तस्य पूर्वपक्षसूत्रत्वात् । तदनुरोधेन तत्र तथा व्याख्यानस्य सिद्धान्तीयत्वेन वक्तुमशक्यत्वात् । तस्मात् प्रवेशश्रवणस्यापि

रश्मिः ।

त्वमुत्पत्त्यश्रवणस्येति लक्षणसमन्वयः । प्रकृतेऽनुमानं तु जीवः ब्रह्म, उत्पत्त्यश्रवणात् । यन्नैवं तन्नैवं घटादिवदित्युक्तमाभासे । तथा च तस्य हेतोः साधारण्यं तत्साधारण्यं तस्माच्चेत्यर्थः । **भेद** इति । अंशांशिनोर्भेदे जीवः ईश्वर इति, संज्ञा भेदसाधिका पूर्वतन्त्रे सिद्धा । **नित्यत्वमिति** जीवीयं भेदप्रयोजकमपि ध्वंसाप्रतियोगित्वं नित्यत्वं ध्वंसावृत्तित्रैकालिकाबाधयोग्यत्वमीश्वराभिन्नत्वमीश्वराभेद इत्येवं पर्यवस्यति । एवकारो नित्यत्वेतरस्याभेदे पर्यवसाने नित्यत्वस्य भेदापादकत्वभिया नित्यत्वेतरयोगव्यवच्छेदकः । अनादित्वं च जीवीयनित्यत्वसमानाधिकरणमादिमत्त्वाभावः । ईश्वरीयानादित्वेन पुनरुक्तं गुरुभूतं च । एवं च गुरुत्वं पुनरुक्तिभियाऽनादित्वं मिथ्या, मिथ्यात्वमनादित्वस्य लक्षणमित्येवं मिथ्यात्वे पर्यवस्यतीत्यर्थः । **अत** इति नित्यभिन्नाभावात् । तथा च साध्यवदन्यस्याः प्रकृतेर्विशेषणाभावेन स्वतश्चात्यन्ताभावादप्रसिद्ध्या साधारण्यलक्षणानाक्रान्तत्वेन हेतोर्न हेतौ साधारण्यलक्षणो **दोष** इत्यर्थः । **प्रवेशेति** 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि'इति श्रुतौ **प्रवेशश्रवणस्य** । **संयोग** इति । फलमेव धात्वर्थ इति **मण्डनमिश्राः** । 'फलव्यापारयोर्धातुः'इति **भूषणे** । **कार्येति** मात्रच् कार्त्स्न्ये । **तत्समिति** संयोग**संभवेन** । तथा च स्मृतिः । 'बहिरन्तरपावृतम्' इति । **तदुक्तीति** । प्रवेशोक्ति**वैयर्थ्यप्रसङ्गा**त्तथा च हेतुर्दुष्ट इति भावः । प्रवेशशब्दश्च न त्यक्तुं शक्य इति च । पक्षसाध्ये पूर्वोक्ते । अनेन जीवेनेति श्रुतौ किंचिदाहुः **तत** इति अन्तर्बहिर्वर्तमानादीश्वरादेव । **व्यापकेति** आत्मनेत्यत्राततीत्यात्मेति व्युत्पत्त्या । **सहार्थ** इति । **अयमर्थः** ल्यबन्तकर्तृत्वविशिष्टस्यैव व्याकरणकर्तृत्वम् । करणार्थत्वे तु तृतीयाया जीवरूपः प्रवेशकर्ताऽस्मदर्थो व्याकरणकर्तेत्युपाधिभेदात् क्त्वाविधायकसूत्रस्य विरोध इति सहार्थे तृतीया, वदनाशक्तावेव करणतृतीयेति । **अन्यथेति** अनेन जीवेन करणेनेत्येवं जीवस्य करणत्वे **आत्मना** व्यापकत्वेन प्रवेशक्रियाविरुद्धेन विशिष्टेनेत्यर्थादनुस्यूतात्मभिन्नत्वेनास्य **वैयर्थ्यं** प्रवेशविरुद्धत्वेन चास्य वैयर्थ्यम् । न च विरुद्धधर्माश्रयत्वेनात्मनोऽपि करणत्वमिति वाच्यम् । व्याकरणकर्तृभिन्नत्वेनास्य वैयर्थ्यम् । न च शब्दमूलत्वादेवमेव साधुः प्रवेश इति वाच्यम् । शास्त्रस्यास्य न्यायत्वात् । चत्वारो वेदाः षडङ्गानि पुरातनमिति-

भाष्यप्रकाशः ।

न जीवब्रह्मतागमकत्वम् । नापि तादात्म्योपदेशस्य । तस्यांशांशिभावादप्युपपत्तेः । किंच । यदि परमेव ब्रह्म जीवः स्यात् तदा, 'यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति, एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम'इति काठकश्रुतिरपि विरुद्ध्येत । वास्तवयत्किंचिद्भेदाभावे, अस्य दृष्टान्तस्य सर्वथानुपपत्तेः । सत्संपत्त्यादिश्रुतिविरोधश्च । किंच । औपाधिकभेदाभ्युपगमपक्षे तत्त्वमसीत्यत्र, तत् त्वमितिपदद्वये भागत्यागलक्षणा । कारण अंशकार्यबोधकश्रुतीनामसदर्थवादत्वकल्पनं, कारणत्वांशत्वकार्याणां मिथ्यात्वकल्पनम्, उपासनाविषयाणां रूपाणामब्रह्मत्वकल्पनमित्येतदादयो दोषाः । जीवोंशस्तत्र ब्रह्मत्वं गौण्या व्यपदिश्यत इति पक्षे त्वेकस्मिंस्तत्पदे

रश्मिः ।

ह्यसो न्यायो धर्मशास्त्रमित्येवं चतुर्दशविद्यासु न्यायत्वेनास्यागणनात् । न च न्यायस्तर्कशास्त्रमिति वाच्यम् । तस्य गुणत्रयविवरणाध्याये पाद्मे निन्द्येषु गणनात् निन्द्यत्वे च विद्यात्वायोगात् । नेति जीवः ब्रह्म, प्रवेशश्रवणाद् बुद्धिवत् । यन्नैवं तन्नैवं घटादिवत् । अत्र हेतुर्दुष्टोऽतो नेत्यर्थः । तादात्म्येति महावाक्ये तादात्म्योपदेशस्तस्य । अंशांशीति 'यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्ति' इति मुण्डकश्रुतेरात्मनामंशत्वेन नहि स्फुलिङ्गो नाग्निरिति ब्रह्मत्वेन च जीवानां तादृशोपदेशस्योपपत्तेः । यथैतदात्म्यं जडे तथा तस्य त्वं तत्त्वमसि श्वेतकेतोइति । विजानत इति विज्ञानवतो न त्वविज्ञानवतस्तस्यैच्छिकभेदसत्त्वादिति । विरुध्येतेति कुत इत्यत हेतुमाहुः वास्तवेति । अयमर्थः । परमेव ब्रह्म यदि जीवस्तर्हि तादृकपदं विरुध्येत । तस्य तद्दृश्यते यत्रेति व्युत्पत्त्या शुद्धं तत्पदवाच्यमुदकं यत्र शुद्धे उदकादौ श्यामेऽपि आसिक्तं संयुक्तं दृश्यते वृद्धितद्गुणैर्यथा तथात्मा भवतीति वचनव्यक्तेः । जीवब्रह्मवादेस्यार्थस्य यत्किंचिदिवार्थो भेदस्तस्याभावे सर्वैः प्रकारैरस्य दृष्टान्तस्यानुपपत्तेरित्यर्थः । मायिकभेदप्रतियोगिकाभावेऽपि तथा । भेदाभेदवादानुरोधे तु यत्किंचिद्भेदः विरुद्धधर्मान्तर्गतस्तदापि तथा । यत्किंचिद्भेदो नानात्वं तदापि तथा । तथा च सर्वथा यत्किंचिदित्यन्वयः । सदिति 'सता सौम्य तदा संपन्नो भवति' इति । आदिशब्देन 'न विदुः सति संपद्यामहे' इति । औपाधिकेति विद्वन्मण्डने स्फुटमिदम् । भागत्यागेति शुद्धसत्त्वप्रधाना माया तदवच्छिन्नं चैतन्यमीश्वरः मलिनसत्त्वप्रधानाऽविद्या तदवच्छिन्नं चैतन्यं जीवः तत्र भागौ मायाविद्यात्मकौ तयोस्त्यागः शुद्धं चैतन्यं पर्यवसितम् । पदद्वये भागत्यागलक्षणा । कारण इति कारणस्याश्रयतया विवक्षितस्यालुप्तविभक्तिकस्य समासवर्तिनः कारण इत्यस्य पदत्वं श्रूयमाणविभक्तिकत्वाद्यपि । तथापि कारण अंशकार्याणि तेषां बोधकानां श्रुतीनामंशकार्ययोर्वेति समासः । अत्र कार्यान्ते 'सुप्तिङन्तं पदम्' इति सूत्रं पदत्वं विधाय क्षीणशक्ति न कारण इत्यस्य पदत्वं विधत्ते । 'गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययः' इति न्यायाच्च । ततश्च 'एङः पदान्तादति' इत्यस्य तादृशपदत्वाभावं गृहीत्वाप्राप्त्या 'एचोयवायावः' इति सूत्रेणायि कृते 'लोपः शाकल्यस्य'इति यलोपे कृते कारण अंशकार्याणीति साधुः । श्रुतयस्त्वंशो नानेत्यादिसूत्रेषु भाष्ये वक्तव्याः । असदिति । पदसंस्कारपक्षे संहितायाः अविवक्षितत्वादनुस्वारस्य न परेण संयोगः । अनुस्वारस्तु सर्वत्रैव गुणवादत्वकल्पनमिति व्याख्यातम् । कारणत्वेति । दृष्टान्तभाष्ये यथा प्राज्ञस्य ब्रह्मणः सगुणेषूपासनेपूपाधिगुणसारत्वादणीयस्त्वादिव्यपदेशो 'अणीयान्व्रीहेर्वा यवाद्वा' 'मनोमयः प्राणशरीरः सर्वगन्धः सर्वरसः सत्यकामः सत्यसंकल्पः' एवं प्रकारस्तस्मिंस्तथा । एतदादय इति हृदयायतनत्वमपि बुद्धेरेवेत्यादिस्वशास्त्रविप्लवश्चादिशब्दार्थः । गौण्येति प्रज्ञाद्रष्टृत्वादिगुणयोगेन सिंहो माणवक इतिवत् । यद्वा तत्पदस्य स्वांशे लक्षणा प्रयोजनवती । तत्पद इति । गौण्या विधेयधर्मत्वमुक्तमतोऽत्र लक्षणा प्रयोजनवती गौणी प्रस्थानरत्नाकरोत्र ।

भाष्यप्रकाशः ।

गौणी । सापि राजज्येष्ठपुत्रवदिति नासदर्थवादत्वापादिका । पूर्वकल्पोक्ताश्च न दोषाः केऽपि । एवं सति कः पक्षोऽत्र ज्यायान् को वा कनीयान् । नेतरोनुपपत्तेरित्यारभ्य जीवब्रह्मणोर्भेदं बोधयतोऽणुत्वमंशत्वादिकं च जीवस्य साधयतः सूत्रकृतश्च किं वाभिप्रेतमित्यादिकं विभावनीयम् । किंच । तद्गुणसारसूत्रे प्राथमिकतत्पदेन य उपाधिः परामृश्यते, स किमन्यथानुपपत्तिबलादध्याहृत उत क्वचित् पूर्वमुक्तः । नाद्यः । अनुपपत्त्यभावस्योपपादितत्वात् । नेतरः । अदर्शनात् । नच 'अन्तरा विज्ञानमनसी' इत्यत्रोक्तं विज्ञानं बुद्धितत्त्वात्मकं दृश्यत एवेति वाच्यम् । विज्ञानपदस्यानेकार्थत्वेनात्र बुद्धेरेव ग्रहणे नियामकाभावात् । व्याख्यात्रा विज्ञानमनसी इति द्विवचनोपपत्त्यर्थं विज्ञानपदे करणव्युत्पत्त्यङ्गीकारेण बुद्धीन्द्रिययोः संग्रहात् । कस्य वोपाधित्वं कथं वा इन्द्रियाण्यपाकृत्य बुद्धेरेव ग्रहणमित्यत्र हेत्वनुपलम्भाच्च । एतेन भास्कराचार्यव्याख्यानमपि दत्तोत्तरम् । ब्रह्मपरामर्शे तु कोऽप्ययं दोषो न भवति । नाणुरतच्छ्रुतेरिति सूत्रे इतरपदेन ब्रह्मण एवोक्तत्वेन तस्य च सन्निहितत्वेन कल्पनालेशस्याप्यभावादिति ।

यत्तु भिक्षुः—अणुत्वसाधकानि नव सूत्राणि पूर्वपक्षीकृत्य, पृथगुपदेशादिति सूत्रं सिद्धान्तत्वेनाह । तदर्थं च जीवादणुरूपाधिभूतः पृथक् । कुतः । उपदेशात् । 'स चानन्त्याय कल्पते' 'स वा एष महानज आत्मा', 'योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु' इत्यादिश्रुतिभिर्जीवस्यानणुत्वोपदेशादित्याह । तन्न । अन्त्ययोर्ब्रह्मप्रकरणस्थत्वस्य प्रागेव दर्शितत्वेन जीवाविषयत्वात् । आद्यागा अपि सामर्थ्यबोधकत्वस्योपपादितत्वेन इतः पूर्वस्मिन्नङ्गुष्ठमात्र इति श्लोके बुद्धेर्गुणेनाङ्गुष्ठमात्रत्व-

रश्मिः ।

सापीति । सापि गौण्यपि यावदात्मा ब्रह्म भवत्यानन्दांशप्राकट्येन तावदेव यथा राजज्येष्ठपुत्रे राजपदगौणी तावदेव यावद्राज्ञि वैराग्यं तदभावे तु नेति । नासदिति । यथा यजमानः प्रस्तर इत्यत्र गुणवादे प्रस्तरो यज्ञः 'यो यच्छ्रद्धः स एव सः' इति यजमानाभेदः इत्येवमर्थवादपादे विवेचितमन्यत् । उत्तरकल्पनद्वयमपि न । सदर्थवादात् । हृदयायतनत्वमपि बुद्धेर्न, मध्यमपरिमाणस्यायुक्तत्वादणुरेव जीव इति भाष्यात् । स्वशास्त्रविप्लवोऽपि न । मिथ्यात्वाभावात् । पूर्वेति । उत्पत्त्यश्रवणादयश्च न दोषाः । पूर्वसमर्थनात् । नेतर इति आनन्दमयाधिकरणे सूत्रम् । भेदमिति । 'एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय' इत्यैच्छिकं भेदम् । अणुत्वमिति 'नाणुरतच्छ्रुतेः' इत्यादिसूत्रेण । अंशत्वमिति 'अंशो नानाव्यपदेशात्' इति सूत्रेण साधयतः । आदिशब्देन कर्तृत्वम् । इत्यादिकमिति आदिशब्देन जीवे सेवानिषेधः सुबोधिन्यां श्रुतिगीते यत्तत्संगृह्यते । वेदान्तानां जीवपरत्वे तत्रोक्तः सेवाभावो विरुध्यते । विभावनीयमिति 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' इति च वाक्याभ्यां ब्रह्मपरत्वमनुसंधेयमिति हृदयम् । अन्तरेति इदं सूत्रं गतम् । 'विज्ञानमनसी' इत्यत्रेति पाठः 'ईदूदेद्द्विवचनम्' इति सूत्रात् । बुद्धीति उपाधिरूपम् । व्याख्यात्रेति गोविन्दानन्दभगवता रत्नप्रभाभाष्यटीकाकृता । एतेनेति उपाध्यर्थदूषणेन । भास्करेति उपाधिव्याख्यानं प्रथमतत्पदस्य । तदर्थमिति । पूर्वसूत्रार्थस्तु यथाभाष्यम् । प्रागिति 'नाणुरतच्छ्रुतेः' इत्यादिसूत्रे । सामर्थ्येति । 'कृपू सामर्थ्ये' इति धातुपाठात् । मुक्तावित्युक्तोपलक्षणमस्यार्थस्येत्यपि द्रष्टव्यम् । अङ्गुष्ठेति ।

'अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः कामाहंकारसमन्वितोऽपि ।
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्टः' इति श्लोके ।

भाष्यप्रकाशः ।

मुक्त्वा किं तस्य स्वीयं परिमाणमित्याकाङ्क्षापूरणार्थं आत्मगुणेन चैव ह्याराग्रमात्र इत्यनेनाराग्रमात्रत्वं स्वगुणेनैव च पुनरित्युक्ते किमाराग्रमात्रत्वमित्याकाङ्क्षान्तरे, बालाग्रेतिश्लोकान्तरस्य पादत्रयेण तन्निश्चाययित्वा तस्य परिमाणस्याणुत्वेऽपि परमत्वाभावाज्जीवस्यानित्यत्वं स्यादिति शङ्कायां कालत आनन्त्यबोधनपरत्वस्यापि वक्तुं शक्यत्वेनानणुत्वबोधकत्वादिति बोधकत्वाभावादिति । तेन यदग्रिमे तद्गुणसारसूत्रे बुद्धेर्गुणेनेति श्रुतिद्वयं व्याख्यातम्, अत्राद्यार्धेन बुद्धिसंपर्काज्जीवस्य परिच्छिन्नव्यवहारमुक्त्वा पश्चाद् द्वितीयश्लोकचतुर्थपादेन तस्य स्वत आनन्त्यं प्रोक्तमिति । तदपि श्रुत्यक्षरविरुद्धत्वादसंगतमेव । यदपि तद्गुणसारसूत्रव्याख्यानं, जीवोपाधिर्बुद्धिरणुः कार्यावस्थया परिच्छिन्नपरिमाणः । तस्य चोपाधेर्ये गुणा उत्क्रान्त्यादयस्तत्सारस्तन्मात्रगुणक एव जीवो लोकैर्दृश्यते व्यवह्रियते च । स्वतो निर्गुणत्वात् । अतो लोकानुसारेण श्रुतावपि जीवस्योत्क्रान्त्यादिव्यपदेशो न पुनर्जीवस्य स्वत उत्क्रान्त्यादिः श्रुत्या व्यपदिश्यते । विभुत्वश्रुतिविरोधात् ।

'पुमान् सर्वगतो व्यापी ह्याकाशवदयं स्थितः ।
कुतः क्वासि क्व गन्तासीत्येतदप्यर्थवत्कथम्' इति स्मृतिविरोधाच्च ।

अयं च विभागः श्रुत्यैव स्पष्टीकृतः । यथा, कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति स प्राणमसृजतेति । प्राज्ञवत् । यथा प्राज्ञ ईश्वरे मायापरमाण्वाद्युपाधिगुणसारत्वेन मायादिगुणव्यपदेशः 'सोऽकामयत, अणोरणीयान्, तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्', 'प्राज्ञेनात्मनान्वारूढ उत्सर्जंयाति' इत्यादिः तद्वदित्यर्थः । तदेवजीवस्य गमनादरौपाधिकत्वम् ।

'घटसंवृतमाकाशं नीयमाने घटे यथा ।
घटो नीयेत नाकाशं, तद्वज्जीवो नभोपमः' ॥

इति श्रुत्या, 'गतिश्रुतिरप्युपाधियोगादाकाशवत्' इति सांख्यसूत्रेण च स्पष्टमुक्तमिति । तदपि तथा । माध्यन्दिनानां बृहदारण्यके शारीरब्राह्मणे, 'तेन प्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो वा मूर्ध्नो वाऽन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्यस्तमुत्क्रामन्तं प्राणोनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे

रश्मिः ।

श्रौतचस्यार्थमाहुः च पुनरित्यादि । चकारः पुनरर्थ इत्यर्थः । बालाग्रेति बालस्य ब्रह्मत्वेन बृहत्त्वाद्बृंहणत्वादुपपन्नम् । पादेति 'बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य तु । भागो जीवः स विज्ञेयः' इत्यनेन । अनित्यत्वमिति । द्व्यणुकवत् । कालत इति 'स चानन्त्याय कल्पते' इति चतुर्थपादे । कालोऽत्र मुक्तेः । तेनेति भगवता भिक्ष्वाचार्येण । श्रुत्यक्षरेति आत्मगुणेन चैवेत्यादेः श्रुतेरक्षरं चेति तद्विरुद्धत्वात् । परिच्छिन्नेति जीवोपाधिविशेषणम् । कथमिति प्रश्न एवोत्तरपर्यवसानम् । प्राणमिति उपाधिम् । तेनोपाधिद्वारोत्क्रान्त्यादिस्तद्वद्बुद्ध्युपाधिद्वारेत्यर्थः । मायेत्यादि । आदिशब्देन महेश्वरः प्राज्ञो जीवश्च । स इत्यादि । क्रमेणोदाहरणानि । आदिशब्देन 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य' इति श्रुत्या जीवः । प्राज्ञेनेति ज्योतिर्ब्राह्मणे 'तद्यथाऽनः सुसमाहितमुत्सर्जंयायादेवमेवाय९शारीर आत्मा प्राज्ञेन' इत्यादिः । यथा अन इति पदच्छेदः सुसमाहितं पदार्थभृतम् । यायाद्बलीवर्दैः । आत्मा निरीहः । प्राज्ञेन, बलीवर्दस्थानापन्नेन । तेनेति सोऽयमात्मा

भाष्यप्रकाशः ।

प्राणा अनूत्क्रामन्ति संज्ञानमेवान्ववक्रामति स एष ज्ञः सविज्ञानो भवति तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च' इत्यत्रैष इत्यनेन सलिङ्गमात्मानमुपक्रम्य चक्षुरादीनि निष्क्रमणद्वाराण्युक्त्वा सलिङ्गस्याङ्गुष्ठमात्र इति पूर्वोक्तश्रुतौ, अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलादिति स्मृतौ च सिद्धत्वात् कथं चक्षुष्टो निष्क्रमणमिति शङ्कानिवृत्त्यर्थं, 'तमुत्क्रामन्तम्' इत्यादिना केवलस्यात्मनो निष्क्रमणानन्तरं लिङ्गभूतानां मुख्यप्राणादीनामनूत्क्रमणं मुक्तामुक्तसाधारण्येनोक्त्वा तदनन्तरं संज्ञानमेवेत्यादिना पश्चाद्बुद्धिसंबन्धज्ञ इति ज्ञानगुणकत्वं, तेन जन्यज्ञानवत्त्वं स्थूलदेहान्तरप्राप्तिसामग्रीं वक्तीति तदनाकलनात् । अङ्गुष्ठमात्रताया गुणेनोक्तत्वाद् गुणस्य चौत्कट्ये स्वाश्रयाधिकदेशवृत्तित्वस्य पूर्वं साधितत्वान्मुष्टिपिहितमणिप्रभावत् पिपीलिकादिदेहेषु बुद्धिगुणसंकोचेन गौणपरिमाणसंकोचेऽपि दोषाभावात् । एवमेव परिवर्तना-

रश्मिः ।

यस्मिन्काले जराद्युक्तहेत्वभिभूतस्तस्यैतस्य हृदयस्याग्रं प्रद्योतते यत्तेन **प्रद्योतेने**त्यर्थः । **संज्ञान**मिति बुद्धिम् । **सलिङ्ग**मिति प्रत्यक्षत्वाल्लिङ्गं तेन सह समानं वा । **चक्षु**रिति चक्षुष्ट इत्यादिना । **चक्षुष्ट** इति तसिल्प्रत्ययान्तमिदम् । **केवलस्ये**ति एतेन सलिङ्गस्यात्मनो निष्क्रमणं वदन्तः उपनिषट्टीकाकृतः परास्ताः । या बुद्धिरुत्पद्यते सैव सर्वेषु प्राणेषु संबध्नाति तम् । संबन्धस्तु स्वरूपः **स्वजन्यजनकत्वम्** स्वं बुद्धिस्तज्जन्यं ज्ञानं तज्जनकत्वं प्राणपदवाच्येन्द्रियेषु । **ज्ञानगुणे**ति । जानातीति व्युत्पत्तेः । स एष ज्ञ इत्यनेन 'सत्त्वात्संजायते ज्ञानम' इति वाक्यात्सत्त्वं बुद्धिः पूर्वोक्ता तद्गुणकत्वम् । **तेने**ति तेन सत्त्वेन जन्यं यज्ज्ञानं स्वप्नक इव शास्त्रादिना भाविदेहविषयकं तद्वत्त्वम् । यथा सेवाप्रतिबन्धे जन्मोक्तं **सिद्धान्तमुक्तावलीटीकायाम्** । **स्थूले**त्यादि 'तं विद्याकर्मणी' इत्यादिना । तं स्थूलदेहं विद्याशब्देनेह प्रमाणाप्रमाणजन्यज्ञानमात्रं विहितप्रतिषिद्धादिरूपमात्मज्ञानव्यतिरिक्तमुच्यते । शास्त्रलोकप्रभावोत्पन्नदृष्टादृष्टार्थरूपवाङ्मनःकायसाध्यसर्वकर्मशब्दार्थः । तदुत्पन्नफलभोगजनितसंस्कारो भावनाजन्यहृद्याश्रितः पूर्वप्रज्ञोच्यते । समन्वारम्भः सम्यक्प्रकारेण देहदर्शनमनु पश्चादारम्भः ज्ञानात्मकैस्त्रिभिरारम्भः 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इति **वक्ती**ति इतिः प्रकारे पूर्वोक्तप्रकारेण । **तस्य** तमुत्क्रामन्तमिति भागस्या**नाकलनात्** । तदपि तथेत्यत्र हेतुः । जीवस्य नभोपमत्व एतन्न संगच्छत इति । अङ्गुष्ठमात्रपरिमाणं पिपीलिकादिदेहेषु विरुद्धमित्याहुः **अङ्गुष्ठेति** । **पूर्व**मिति उत्क्रान्त्यधिकरणे 'अविरोधश्चन्दनवत्' इत्यादिसूत्रेषु । **गौणे**ति अणुत्वापेक्षया गौणस्याङ्गुष्ठ**परिमाणस्य संकोचे** । **परिवर्तने**ति माध्यन्दिनानां **बृहदारण्यके** 'स यत्रायꣳशारीर आत्माबल्यन्नीत्य संमोहमिव न्येत्यथैनमेते प्राणा अभिसमायन्ति स एतास्तेजोमात्राः समभ्याददानो हृदयमेवान्ववक्रामति' इति पाठः । काण्वानां तु अबल्यमिव निसमेत्य संमोहमिव नियति इति पठ्यतेऽर्थस्तु समानः । स च 'तद्यथाऽनः' इत्यादिना पूर्वब्राह्मणोपक्रान्तः सोऽयं शारीर आत्मा । यत्र यस्मिन्काले जराद्युपहतोऽबल्यं बले साधुः बल्यं न बल्यमबल्यमित्थं नितरां प्राप्य संमोहमिव वैचित्यमिवाविवेकितामिव न्येति नितरामेत्यनन्तरमेतमात्मानं प्रति प्राणा इन्द्रियाणि तैजसेन्द्रियाणां तेजोमात्राः सूक्ष्मावस्थाः सम्यक् स्वप्नवैलक्षण्येनाऽऽसमन्ताद्यथा केनाप्यंशेन तद्देहावच्छेदेन तत्कार्याणि ददानः स्वीकुर्वन्नेवकारेण गुणस्य स्वाश्रयाधिकदेशवृत्तित्वाव्यवच्छेदः क्रियते तदनु हीनमस्वतन्त्रमीश्वराधीनं यथा भवति तथा

भाष्यप्रकाशः ।

दावपि बोध्यम् । यत्तु अनुशब्दो विज्ञानमयादेः प्राधान्यद्योतको, न त्वनुक्रमद्योतक इति व्याख्यानम् । तदसंगतम् ।

अनोरप्राधान्येऽनभिधानाल्लिङ्गवियोगस्य प्राणादिपदैरेव प्राप्तेर्विज्ञानमयप्राधान्यस्योत्क्रान्तिक्रियायामेव पर्यवसानाच्च । व्यापकत्वश्रुत्यादितात्पर्यं त्वनुपदमेवाग्रिमसूत्रे वक्ष्यामः । यदुक्तमयं विभागः कस्मिन्नहमिति श्रुत्यैव स्पष्टीकृत इति । तदपि न । इयं श्रुतिस्तु ब्रह्मपरा सृष्टिकर्तृत्वलिङ्गात् । तथा ब्रह्मण उत्क्रान्तिरौपाधिकीति बोध्यते । उत्क्रान्ते प्राणे देहजीवनरूपं कार्यं भगवान्न करोतीति । जीवनं च भगवत्कार्यमेवेति,

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन ।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥

इति श्रुत्याऽवगम्यते । अतो नानया जीवोत्क्रान्तिविभागस्य स्फुटीभावः । दृष्टान्त-

रश्मिः ।

पादस्य स्वस्य विक्षेपं करोतीश्वरप्रेरितः स्वयं हृदयमागच्छति । तदनुश्रूयते । स यत्र चाक्षुषः पुरुषः पराङ् पर्यावर्ततेऽथारूपज्ञो भवतीत्यादि स हृदयस्थोऽङ्गुष्ठमात्रः यत्र यस्मिन्काले पराङ् भोक्तृभोग्येभ्यो विमुखश्चाक्षुषः उपास्यभिन्नोऽधिकदेशवृत्तिर्बुद्धिगुणात्मा पुरुषः पर्यावर्तते स्वदेवतां सूर्यं परि प्रत्यासमन्ताद्वर्ततेऽथानन्तरं सोङ्गुष्ठमात्रोऽरूपज्ञो भवति । रूपं न जानातीत्यर्थः । तथा चैवमेव पूर्वोक्तप्रकारेण परिवर्तनादौ चाक्षुषः पुरुष उक्तो यस्तत्रापि गौणपरिमाणसंकोचो बोध्यः । इतः परं तमुत्क्रामन्तमित्यादिनानुः क्रमार्थत्वेन व्याख्यातः स तदा स्थिरो भवेद्यदा परोक्तप्राधान्यद्योतकत्वमनोर्न भवेत्तदर्थमाहुः **यत्त्वित्यादि** । **विज्ञानमयेति** । तथा च श्रुतिः 'विज्ञानमयो मनोमयो वाङ्मयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमय आकाशमयो वायुमयस्तेजोमय आपोमयः पृथिवीमयः क्रोधमयोऽक्रोधमयो हर्षमयो धर्ममयोऽधर्ममयः सर्वमयस्तद्यदेतदिदंमयोदोमयः' इति । **व्याख्यान**मिति माध्यन्दिनबृहदारण्यकटीकाकृतो व्याख्यानम् । **अप्राधान्येनेति** । अनुस्तावल्लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सापाश्चात्यानुक्रमाद्यर्थेषु दृष्टो न तु तं विज्ञानमयं राजस्थानीयमुत्क्रामन्तमनुशब्देन प्रधानीकृत्य प्राणः प्रधान उत्क्रामति तं चानु प्रधानमुत्क्रामन्तं सन्तं सर्वे प्राणा वागादयः परिवारस्थानीया अनुशब्देन प्रधाना उत्क्रामन्तीति प्राधान्येन न विहित इति । तं विज्ञानमयमिति व्याख्यानं तदपि प्राणाद्युत्क्रमणयोरग्रेतनयोर्विरुणद्धीत्याहुः **लिङ्गेति** । **वियोगशब्देन** मुक्तस्य तत्त्वविद एव वार्यते प्रत्यक्षम् । **प्राणादीति** । मुक्ततत्त्वविदः प्रत्यक्षमविवक्ष्येदम् । ननु प्राणादिपदानि प्राणाद्यभिदधति लिङ्गवियोगं तात्पर्येण वृत्त्या प्रापयन्ति । स्फूर्तेरन्यानधीनतयैवकारः । **उत्क्रान्तीति** । गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययात् । **एवेति** कर्तृत्वादेवकारः । ननु विज्ञानमयोत्क्रान्तावनोरश्रवणात् प्राधान्यं कुतो लब्धमिति चेन्न । स्वातन्त्र्यरूपप्राधान्यस्यावार्यत्वात् । नन्वेतादृशप्राधान्यज्ञापनस्य किं प्रयोजनमिति चेन्न । अग्रेऽशोत्क्रमणेंऽशिसंबन्ध्यनुसरणस्य वक्तव्यत्वेन तदनुक्तौ निग्रहस्थानं भवेदिति । तदुपन्यस्तविभुत्वावेदकश्रुतिस्मृती पर्यनुयुञ्जते स्म **व्यापकत्वेति** । **श्रुत्यैवेति** श्रुतिः प्रश्नस्था । **स्पष्टीति** । तेन 'आकाशस्तल्लिङ्गात्' इति न्यायप्रसरोत्रेति ज्ञापितम् । **ब्रह्मण** इति । 'जीवेशयोर्विभेदेन मुक्तिरेकादशे द्विधा' इत्युक्ते **ब्रह्मण उत्क्रान्तिः** । जीवनकर्तृत्वे उत्क्रान्ते ब्रह्मण उत्क्रान्तिर्धर्मौ**पाधिकी**त्युपाधिर्जीवनकर्तृत्वमित्याहुः **उत्क्रान्त** इति । **श्रुत्येति** काठकश्रुत्या । 'सांख्योप्येकः सदादतः' इति

यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात् ॥ ३० ॥

ननु कथमन्यस्य नीचस्य सर्वोत्कृष्टव्यपदेशोऽपि। न हि प्रामाणिकैः सर्वथा अयुक्ते व्यपदेशः क्रियते। नचोक्ततद्गुणसारत्वाद् ब्रह्मण आनन्दांशस्य प्राकट्यादिति वाच्यम्। तथा सति प्राज्ञवत् पुनस्तिरोहितं स्यादिति तस्य तद्व्यपदेशो व्यर्थोऽयुक्तश्चेति चेत् नायं दोषः। कुतः यावदात्मभावित्वात्। पश्चाद् यावत्पर्यन्तमात्मा। नित्यत्वात्। सर्वदा आनन्दांशस्य प्राकट्यात् तस्य तथैव दर्शनमस्ति। अनावृतैश्वर्यादीनामुक्तत्वात्। प्राज्ञात् संपन्नत्वं विशेषः।

भाष्यप्रकाशः।

व्याख्याने सोऽकामयतेत्यादिश्रुतितयोपन्यासोऽप्यसंगतः। तासां ब्रह्मप्रकरणस्थत्वात्। प्राज्ञस्य परमेश्वराद्भिन्नतायाः सूत्रव्याख्यान एव दर्शितत्वादिति। सांख्यसूत्रेण गतिश्रुतेरुपाधिप्रयुक्तत्वकथनं तु व्यासविरोधमेव बोधयति। श्रौतसंदेहनिराकरणाय प्रवृत्तः कथमेवं सूत्रं न प्रणीतवानतः किमधिकं ब्रूम इति दिक्।

रामानुजा माध्वाः शैवाश्चाणुजीववादिनः। परं तु प्राज्ञब्रह्मणोर्भेदं न केऽपि विचारितवन्त इति दृष्टान्तव्याख्यानं सर्वेषामेवानादेयम् ॥ २९ ॥

यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात् ॥ ३० ॥ व्यपदेशविषय एव कंचिद्दोषमाशङ्क्य परिहरतीत्याशयेन तं दोषं प्रकाशयन्ति **नन्वित्यादि**। **अन्यस्येति** ब्रह्मभिन्नस्य। **सर्वोत्कृष्टव्यपदेश इति** उत्कृष्टत्वेन व्यपदेशः। **तिरोहितं स्यादिति** ब्रह्मगुणसारत्वं तिरोहितं स्यात्। सूत्रोक्तं परिहारं व्याकुर्वन्ति **नायमित्यादि**। हेतुं व्याकुर्वन्ति **पश्चादित्यादि**। **पश्चादिति** संसारदशोत्तरम्। **आनन्दांशस्य प्राकट्यादिति** जीवो हि भगवदंश इति तस्य याबानानन्दांशस्तत्प्राकट्यात्। **तस्येति** जीवस्य। **तथैव दर्शनमिति** ब्रह्मभावपूर्व-

रश्मिः।

निबन्धान्निरीश्वरसांख्यत्वाद्दूषयन्ति स्म **सांख्येति**। **व्यासेति** 'अविरोधश्चन्दनवत्' इति व्याससूत्रविरोधम्। **एवं सूत्रमिति**। असङ्गः पुरुष इतिवद् औपाधिका जीवा इत्येवं सूत्रम्। **दिगिति**। सांख्ययोगौ भक्त्या प्रसन्ने हरौ प्रवर्तेते न तु वेदान्तसमकाले इत्यन्यदेतत्। **भेदमिति** दार्ष्टान्तिकोपयोगिभेदम् ॥ २९ ॥

यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात् ॥ ३० ॥ **ब्रह्मभिन्नेति**। **भाष्ये नीचस्येति** 'पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययौ' इति सूत्रोक्तस्येत्यर्थः। प्रज्ञाद्रष्टृत्वादय इत्यत्रादिशब्दार्थं मनसि कृत्वा शङ्कते **न चेति**। **उक्तमिति** सर्वथाऽयुक्तत्वाभावनम्। **आनन्दांशस्येति**। प्रज्ञाद्रष्टृत्वादय इत्यत्रादिशब्दार्थोऽयम्। **उत्कृष्टत्वेनेति**। भावप्रधानो निर्देश इत्याशयेनेदं बोध्यम्। ब्रह्मत्वेनेति स्वस्येति ज्ञेयम्। स खल्विति छान्दोग्यसमाप्तावियम्। **एवमिति** धार्मिकान्विदधदित्येवम्। पार्षदेति। आदिशब्देन भगवत्सेवोपयोगिदेहो वैकुण्ठादिष्विति फलस्य ग्रहणम्। उक्तत्वादिति। कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ ईश्वर इतीश्वरलक्षणात्तथाचारस्यैश्वर्यत्वमेवमन्यदपि। तत्प्राप्तिरिति तिरोहितानन्दप्राप्तिः। आत्मानमिति पश्चाद्यावदिति भाष्योपपादितार्थः। आत्मानं पदार्थम्। अनतिक्रम्येत्यनतिवृत्ताविव्यस्यार्थः। भावित्वं योजयन्ति स्म **आनन्दांशस्येति** अर्थान्नित्यत्वादात्मनः सर्वदानन्दस्य तथा जीवस्य प्राकट्यात्। एतेन

चकारात् तस्य चानन्दः प्रकटित इति न दूषणगन्धोऽपि । व्यपदेशो वा नात्यन्तमयुक्तस्य । यावदात्मा ब्रह्म भवत्यानन्दांशप्राकट्येन तावदेव तद्व्यपदेशः राजज्येष्ठपुत्रवत् । एतदेवोक्तम् ।

भाष्यप्रकाशः ।

कांशत्वेन दर्शनमस्ति । तत्र हेतुः । **अनावृत्तेत्यादि** । तथाच छान्दोग्ये, स तत्र पर्येतीत्यादिनाऽनावृत्तैश्वर्यादीनामुक्तत्वात् तद्गुणसारत्वकृतो ब्रह्मव्यपदेशो नायुक्त इत्यर्थः । तथाचायं सूत्रार्थः । यावदिति पदार्थानतिवृत्तौ । भावित्वं वर्तनशीलत्वम् । तथाचात्मानमनतिक्रम्यानन्दांशस्य वर्तनशीलत्वान्न दोषः न तिरोधानम् । 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' इति, 'तस्य तावदेव चिरम्' इत्यादिश्रुतौ तथा दर्शनादिति सूत्रार्थो बोध्यः । नन्विदमप्रयोजकम् । 'प्राज्ञ ईश्वरस्तृतीयः पाद एष सर्वेश्वर एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्' इत्येवं प्राज्ञं प्रशस्याग्रे तुरीयव्याख्याने ईश्वरग्रासस्तुरीय इति कथनेन प्राज्ञलयस्योक्तत्वात् तस्यैवास्याप्यानन्दप्राकट्यैश्वर्यादीनामसार्वदिकत्वसिद्धेर्यावदात्मभावित्वस्य दूरनिरस्तत्वादित्यत आहुः **प्राज्ञात् संपन्नत्वं विशेष इति** । पद गतौ ये गत्यर्थास्ते प्राप्त्यर्थाः । तथाच समीचीनतया प्राप्तत्वं संपन्नत्वं, प्राज्ञस्तु ईश्वरेण ग्रस्यते, अयं तु सम्यक्तया, स्वस्वरूपेण तिष्ठतीति प्राज्ञात् संपन्नत्वं विशेषोऽतो नाप्रयोजकत्वम् । तथाच प्राज्ञस्य ब्रह्मसंपन्नत्वाभावाल्लयेन ब्रह्मधर्माणां तिरोभावः । अस्य तु संपन्नत्वेन लयाभावादैश्वर्याद्यतिरोभावोऽतः सदा तद्दर्शनमित्यर्थः । चकारप्रयोजनमाहुः **चकारादित्यादि** । तथाच यावन्तो दोषास्त आनन्दतिरोभावकृता इति तदभावे कोऽपि दोषो नेति नानर्थको व्यपदेश इत्यर्थः । नित्यत्वादित्यनुक्त्वा यावदात्मभावित्वादिति यदुक्तं तेनार्थान्तरमपि सूच्यत इत्याशयेनाहुः **व्यपदेशो वेत्यादि** । वाशब्दो वाक्यालंकारे युक्ततां व्युत्पादयन्ति **यावदित्यादि** । तथाच ब्रह्मभावोत्तरं तु ब्रह्मैवेति ततः पूर्वमेव व्यपदेशः । स च मुक्तौ ब्रह्मत्वसूचको यथा राजज्येष्ठपुत्रस्य राजत्वव्यपदेशोऽग्रे राजत्वसूचकस्तद्वत् । एतेनात्यन्ता-

रश्मिः ।

नित्यत्वादित्यादिभाष्योपपादितार्थे उक्तः न दोषतास्यार्थः । **न तिरोधान**मिति । तद्दर्शनादित्यस्यार्थमाहुः **ब्रह्म वेदेति** । भक्तिव्यापारकं ज्ञानमिदं गीतात्रयोदशोक्तम् । **चिरमिति तस्य** वेत्तुश्चिरं विलम्बः आदिना यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्य इति । इयं श्वेतकेतूपाख्यानस्था इतः पूर्वम् 'आचार्यवान्पुरुषो वेद' इति श्रुतिः तेन प्रमाणदार्ढ्यमुक्तमस्मिन्नर्थे । **प्राज्ञ** इति । नृसिंहतापिनीयस्थेयम् । **प्रशस्येति** । अवस्थात्रयपक्षे तु न प्रशंसा । **ईश्वरग्रास** इति ईश्वरं प्राज्ञं ग्रसतीति । तदेवाहुः **प्राज्ञलयस्येति** । आनन्दभुगिति प्राज्ञसाक्षिकसुषुप्तिप्रकरणश्रुतेराहुः **तस्यैवेति** । **अस्येति** 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' इत्युक्तस्य संपन्नस्य । **तद्दर्शनमिति** आनन्दांशस्य दर्शनम् । **वाशब्द इति** । पक्षान्तरे अयुक्ततामिति छेदः । वाशब्दः पक्षान्तरेऽस्ति **अयुक्ततां व्युत्पादयन्तीति यावदित्यादीति** । **भाष्ये राजेति** । आख्यायिकाध्याये सांख्यप्रवचनसूत्रम् 'राजपुत्रवत्तत्त्वोपदेशात्' इति । षष्ठ्यन्ताद्वतिः । राज्ञि वैराग्ये राजादिकृत आनन्दप्राकट्ये उपदिष्टज्येष्ठपुत्रस्येव । यद्वा । पूर्वसूत्रे व्याख्यातम् । **मुक्तावित्यादि** परममुक्तौ । जीवन्मुक्तिस्तु यद्यप्यन्यथारूपं हित्वा स्वरूपेण व्यवस्थितिः । 'नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्' इति गीतायाः । परंतु विद्यया,

व्यापकत्वश्रुतिस्तस्य भगवत्त्वेन युज्यते ।
आनन्दांशाभिव्यक्तौ तु तत्र ब्रह्माण्डकोटयः ।
प्रतीयेरन् परिच्छेदो व्यापकत्वं च तस्य तत् इति ॥ ३० ॥

भाष्यप्रकाशः ।

युक्तत्वं परिहृतं बोध्यम् । अतो नायुक्त इत्यर्थः तथा चायं सूत्रार्थः । यावदवधारणे, यावदात्माऽसंसारी, व्यपदेशस्य तावद्भवनशीलत्वान्न दोषः नायुक्तत्वं तद्दर्शनात् 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' इत्यादिष्वग्रे ब्रह्मभावस्यैव युक्तत्वादिति । पूर्वव्याख्याने जीवभावस्योत्तरावधिग्रहणमत्र तु ब्रह्मभावस्य पूर्वावधिग्रहणमिति भेदः । अत्र च 'उत्क्रमिष्यत एवं भावादित्यौडुलोमिः' इतिमतं समर्थितं भवति । एवं जीवस्य ब्रह्मभावं व्याख्याय तेन व्यापकत्वबोधकानि वाक्यानि समर्थयन्ति एतदेवोक्तमित्यादिना । उक्तमिति निबन्धेऽस्माभिरुक्तम् । अर्थस्तु–तस्य ब्रह्मभावं प्राप्तस्य जीवस्य भगवत्त्वेन व्यापकत्वश्रुतिर्युज्यते, न तु जीवत्वेन रूपेण । तत्र प्रकारमाहुः । **आनन्दांशाभिव्यक्तौ** ब्रह्मभावे सति तस्य जीवस्य तद् विरुद्धधर्माधारत्वं भवत्यतस्तत्र **ब्रह्माण्डकोटयः परिच्छेदो व्यापकत्वं च प्रतीयेरन्निति** । तथाच यथा कृष्णो भगवान् यशोदोत्सङ्गे स्थितोऽपि जृम्भणमृत्साभक्षणादौ सकलजगदाधारो दृष्टस्तथा जीवोऽणुरपि ब्रह्मभावेऽणुत्वाविरोधेनैव व्यापकः सकलजगदाधारो भवति । अत एव, 'मय्येव सकलं जातम्', 'तदेतदृषिः पश्यन् वामदेवः प्रतिपेदेऽहं मनुरभवं सूर्यश्च' इति, 'पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुः' इत्यादीनि वाक्यानि ब्रह्मभूतमेव लक्षीकृत्योच्यन्ते । तेन, 'नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः', 'व्यापकोऽसङ्गयनावृतः', 'पुमान् सर्वगतो व्यापी' इत्यादीन्यपि भाविनीमवस्था-

रश्मिः ।

पराभिध्यानतिरोहितधर्मा जीवोविद्यया पूर्वोक्तो जात इत्यविद्यया विद्योपमर्दे पराभिध्यानतिरोहितधर्मा जीवः कथमभेदभाग् भवेत् अतो न तु हीदानीं ब्रह्मत्वबोधकः । किंतु मुक्तौ ब्रह्मत्वसूचक इत्यर्थः । **आत्मेति** आत्मैव न त्वन्यशबलः । असंसारीति छेदः । अयमर्थः पदार्थानतिवृत्त्यर्थे यावति न भवतीत्यर्थः । **इत्यादीति** । आदिशब्देन 'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' इति 'सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवति' 'एष ब्रह्मलोकः सम्राडिति होवाच' इति च ग्राह्ये । **अग्र इति** । ब्रह्मैव सन्नित्यस्याग्रे 'तदेष श्लोको भवति' 'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते' इति । अत्रेति पदाद्ब्रह्मभावः । सलिल इत्यस्याग्रे 'एषास्य परमा सम्पदेषोस्य परमो लोक एषोऽस्य परम आनन्द एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' इति । एषोऽस्य परम आनन्द इत्यत्रैतदिदम्पदाभ्यां ब्रह्मभावः । अद्वैतपदालिङ्गात्सलिलपदं ब्रह्मवाचकमिति । एवं ब्रह्मभावस्योक्तत्वादित्यर्थः । एवकारस्तूक्तपदार्थबलात् । व्याख्यानान्तरप्रयोजनमाहुः **उत्तरेति** । यावदात्मा जीवस्तदुत्तरावधौ ब्रह्मभावः । उत्तरावधिवाचको यावच्छब्दस्तेनोत्तरावधिग्रहणम् । **पूर्वेति** यावदात्मैव ब्रह्मभावस्य पूर्वावधिः शुद्ध आत्मा जीवोऽसंसारीति यावत् । अत्रापि वाचकः पूर्ववत् । यावत्तावतौ साकल्यावधिमानावधारणेषु भवतस्तत्रावधौ यावद्व्याख्यातम्, यथा यावद्गन्तव्यं तावत्तिष्ठेत्यत्रावधौ । **उत्क्रमीति** सूत्रं तु प्रथमाध्यायचतुर्थपादस्थम् । **समर्थितमिति** चित्प्रधानांशांशिग्रहणेन समर्थितम् । **ब्रह्माण्डेति** ब्रह्मवैवर्ते प्रसिद्धाः । **जृम्भणेति** । 'जृम्भतो ददृश इदम्' इति सप्तमाध्याये । 'सा तत्र ददृशे विश्वम्' इत्यष्टमेऽध्याये । **जगदिति** । अर्थान्मुखद्वारा भगवति ददृश इति जृम्भत इत्यत्र सुबोधिन्याम् । **तन्मयेति** पुत्रमयतया तरवोऽभिनेदुरुत्तरं चक्रुः । **भाविनीमिति** ।

भाष्यप्रकाशः ।

मादायैव योज्यानि । अन्यथा, 'अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगतास्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रुव नेतरथा' इति वेदस्तुतिवाक्यं विरुध्येत । एवंच बिन्दुस्तोकोपनिषदि 'घटसंवृतमाकाशम्' इत्यत्र जीवगमनस्यौपाधिकत्वमुक्तम्, तदपि मुक्तजीवस्य ब्रह्मभूतस्यैव बोध्यम् ।

'एक एवात्मा मन्तव्यो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
स्थानत्रयाद्यतीतस्य पुनर्जन्म न विद्यते'

इत्यमुक्तमुक्तावात्मानावुपक्रम्य,

'एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्'

इत्यमुक्तस्योपाधिवशाद् बहुधा जाग्रदादिदेवमनुष्यादिरूपेण दर्शनमुक्त्वा, घटसंवृतमाकाशमित्यनेन मुक्तस्य नभोपमस्य जीवस्य गमनादेरौपाधिकत्वं वक्ति । तेन शुकसनकादिगमनस्यैव तथात्वं, नेतरेषामिति मन्तव्यम् । अत एवैतदग्रे

'घटवद् विविधाकारं भिद्यमानं पुनः पुनः ।
तद्भग्नं च न जानाति स जानाति च नित्यशः'

इति दधीच इव विद्वदवस्थैवोच्यत इति युज्यते । अन्यथा तस्यैवैकस्य प्रतिबिम्बत्वमवच्छेदत्वं च विरुध्येत । वस्तुतस्तु, एक एव हि भूतात्मेत्यत्र जलचन्द्रदृष्टान्तेन यथा चन्द्रस्यांशुद्वारा जलप्रवेशे नानात्वं तथा ब्रह्मणोऽप्यंशद्वारा तत्तद्देहप्रवेशे नानात्वमिति मुक्तियोग्यत्वाय ब्रह्मरूपतोच्यते अहंग्रहोपासनायाः प्राकृतत्वात् तत्र दोषाभावायाऽतो न कोऽपि शङ्कालेशः । यत्तु परैर्बुद्धिसंयोगाज्जीवभाव उच्यते । तन्न । ब्रह्मभूतानामीश्वरस्य च व्यापकत्वेन तदापि तदापत्तेः । अपि तु प्राणधारणाभिमानात् । जीव प्राणधारण इति धात्वर्थेन तथा निश्चयात् ।

रश्मिः ।

मादायैव । जाग्रदाद्यवस्थावज्जीवन्मुक्तिरप्यवस्थान्तरं ब्रह्मभावे । तनुभृत इति जीवाः । न शास्येतेति । नियमो न शास्येत, व्यापकत्वे जीवानां दासत्वं न स्यादित्यर्थः । अमुक्तेति । मुक्तामुक्ताविति चराचरग्रहणादिवन्नोक्तम् । 'धर्मादिष्वनियमः' इति सूत्रात् । मुक्तस्येति जीवन्मुक्तस्य । एवकारव्यावर्त्यमाहुः नेतरेषामिति । भग्नमिति कर्तृ । स इति द्रष्टा, ॐतत्सदितिवाक्यात् । दधीच इवेति । इन्द्रं समादिश्य हरावन्तर्हिते देवा दध्यञ्चमङ्गेभ्यो याचितवन्तः स तदा मुक्ततासूचकविशेषणविशिष्टो जातः । तदुक्तम् । 'मोदमान उवाचेदं प्रहसन्निव' इति । अतो विद्वदवस्था । अन्यस्यासंभवादेवकारः । अच्छेदत्वमिति । न विद्यते छेदो द्वैधीभावो यस्य तत्त्वम् । ननु स्वाधारस्वभावानुविधायित्वे सति संमुखस्थितार्थानुविधायित्वं प्रतिबिम्बत्वम् । तत्कार्येश्वरः प्रभावदच्छेदत्वं च तस्येति न तर्कविरोधोत आहुः वस्तुत इति । ब्रह्मरूपेति एकपदेनोच्यते । 'नासतो विद्यते भावः' इति वाक्यादिति भावः । अहंग्रहेति ब्रह्मस्वरूपमुक्त्वोच्यते । 'तदेव निष्कलं ब्रह्म निर्विकल्पं निरञ्जनम् । तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म संपद्यते ध्रुवम्' इत्यहंग्रहोपासनाया इत्यर्थः । परैरिति शंकरभास्करभिक्ष्वाचार्यैः । तदापीति ईश्वरत्वकालेऽपि बुद्धिरूपतत्त्वान्तरस्यास्मन्मते सत्त्वेन जीवत्वापत्तेः । ततश्चादृष्टफलभोगापत्त्या 'अनश्नन्यो अभिचाकशीति' इति श्रुतिविरोधः । प्राणेति अस्माद्धेतोर्जीवभाव उच्यते । तथेति प्राणधारणे सति जीवभावनिश्चयात् । ननु बुद्धि-

१. शास्येत इति रश्मौ । २. अच्छेदत्वमिति रश्मौ ।

पुंस्त्वादिवत्त्वस्य सतोऽभिव्यक्तियोगात् ॥ ३१ ॥

व्यपदेशदशायामपि आनन्दांशस्य नात्यन्तमसत्त्वम्। **पुंस्त्वादिवत्**। यथा पुंस्त्वं सेकादिसामर्थ्यं बाल्ये विद्यमानमेव यौवने प्रकाशते तथा आनन्दांशस्यापि सत एव व्यक्तियोगः ॥ ३१ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

अन्योन्तर आत्मा विज्ञानमयो योऽयं विज्ञानमयः प्राणेष्वित्यादौ तस्य विज्ञानमयत्वं तु ज्ञानांशत्वाज्ज्ञानप्रचुरत्वं, न तु बुद्धिमयत्वं, तदनभिमानेऽपि ज्ञानप्राचुर्यस्य मुक्तेषु सिद्धत्वात् । विज्ञानमयो मनोमयो वाङ्मयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमय इत्यत्र प्रायपाठबलेन विज्ञानपदस्य बुद्ध्याख्यकरणवाचकत्वेऽपि न सर्वत्र तथात्वं, गमकाभावे तथादर्तुमशक्यत्वात् । अत्रापि बुद्धिमयत्वं, बुद्धिप्रचुरत्वं, तदपि बुद्ध्यधीनव्यवहारत्वमेव । प्रायपाठेन तथा निश्चयात् । न तु बुद्धिगुणसारत्वम् । तस्य दूषितत्वात् । नापि बुद्ध्यधीनाखिलव्यवहारत्वम् । यावत्संसारमेव बुद्धिसंसर्गेण बुद्धेर्यावदात्मभावित्वाभावात् । यदपि उपाधिकल्पितस्वरूपव्यतिरेकेण न परमार्थतो जीवो नाम कश्चिदस्तीति तदप्यसंगतम् । अंशत्वस्याग्रे वक्ष्यमाणत्वादिति । तस्मात् पूर्वोक्तरीतिरेव युक्तेति दिक् ॥ ३० ॥

पुंस्त्वादिवत्त्वस्य सतोऽभिव्यक्तियोगात् ॥ ३१ ॥ ननु पूर्वमसतश्चेदानन्दांशस्य प्राकट्यं तदा जन्यत्वेन नश्वरत्वेन व्याप्तेरानन्दांशस्य तिरोधानं भविष्यतीति न तस्य यावदात्मभावित्वं वक्तुं शक्यमिति शङ्कायामिदं सूत्रं प्रववृत इत्याशयेन व्याकुर्वन्ति **व्यपदेशेत्यादि**। निगदव्याख्यातमेतत् ॥ ३१ ॥

रश्मिः ।

मयत्वं जीवस्य श्रूयते । विज्ञानमय इति, तत्राहुः **अन्योन्तर** इति । बुद्धिमयत्वं जीवत्वं मुक्तजीवेषु व्यभिचरति, बुद्धेर्लीनत्वेनाभावादित्याहुः **तदनभीति** अहं बुद्धिमानित्यभिमन्यते तस्याभावेऽप्यनात्मनो देहादीनभिमन्यते सोऽभिमानः आत्मनो बन्धस्तन्निवृत्तिर्मोक्ष इति श्रुतेः । **प्रायेति** करण**प्रायपाठबलेन** । तेषां भाष्यानुसारेणार्थे **यावदित्यादि** । बुद्ध्या अपि स्वीकारेण लयादेवकारः । **बुद्धेर्यावदिति** । जीवभावस्योत्तरावध्यात्मभावित्वाभावादित्यर्थः । **अग्र इति** । अंशो नानाव्यपदेशादित्यधिकरणे । **दिगिति** 'ममैवांशो जीवलोके' इति गीता ॥ ३० ॥

पुंस्त्वादिवत्त्वस्य सतोऽभिव्यक्तियोगात् ॥ ३१ ॥ **निगदेति** पाठमात्रेण व्याख्यातम् । **भाष्ये** सेकादीति । पूञ् पवने डुमसुन् । पा रक्षणे वा डुमसुन् । आदिशब्दार्थः । आदिशब्देन भगवत्सेवानुकूलत्वलक्षणमपि । एवकारस्तु आनन्दः व्यपदेशदशायां सन् व्यक्तियोगात् । पुंस्त्वादिवत् । अभिव्यक्तियोगादित्यपि पाठः । **एवेति** अन्यथा षण्ढादीनामपि तदुत्पत्तिप्रसङ्गादित्येवकारः । 'नासतो विद्यते भावः' इति । सौत्रस्य अस्येत्यस्यार्थमाहुः **आनन्दांशस्येति** एतेन सौत्रस्त्वर्थोऽवधारणमित्युक्तम् । एवेति वाक्यादेवकारः । **व्यक्तियोग** इति । तस्मादिति शेषः । एवं निगदव्याख्यातमित्यर्थः ॥ ३१ ॥

नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्गोऽन्यतरनियमो वाऽन्यथा ॥ ३२ ॥

ननु कथमेवं स्वीक्रियते। इदानीं संसारावस्थायां सच्चित्प्राकट्यमेव। मोक्षे त्वानन्दांशोऽपि प्रकट इति तन्निवारयति। तथा सति नित्यमुपलब्धिः स्यादानन्दांशस्य। तथा सति न संसारावस्थोपपद्येत। अथानुपलब्धिः सर्वदा तथा सति मोक्षदशा विरुद्ध्येत। अथान्यतरनियमः। जीवो निरानन्द एव, ब्रह्म त्वानन्दरूपम्। तथा सति, ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येतीति श्रुतिविरोधः। तस्मात्

भाष्यप्रकाशः ।

नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्गोऽन्यतरनियमो वान्यथा ॥ ३२ ॥ सूत्रप्रयोजनमाहुः **ननु कथमित्यादि**। **तन्निवारयतीति**। तमेतमाशङ्कोत्पादकं प्रश्नमुत्तरयति। तथाचेदं सूत्रप्रयोजनमित्यर्थः। व्याकुर्वन्ति **तथा सतीत्यादि**। सूत्रयोजना तु, अन्यथा यद्युक्तसूत्ररीत्या व्यवस्था नाङ्गीक्रियते तदा जीवे त्रयाणां नित्यं प्राकट्यं वा नित्यमप्राकट्यं वा, जीवः सच्चिद्रूप एव, ब्रह्मानन्दमेवेति वाङ्गीक्रियेत ततः पक्षत्रयेऽपि क्रमेण त्रयो दोषा इति निर्दुष्टः पूर्वोक्तप्रकार एव युक्त इति सिद्धमित्यर्थः।

रश्मिः ।

नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्गोन्यतरनियमोवाऽन्यथा ॥ ३२ ॥ ननु कथमित्यादीति। इदं भाष्यं सौत्रान्यथाशब्दव्याख्यानम्। **कथमि**ति प्रश्ने। एतादृशप्रश्नोत्थाप्यां शङ्कामाहुः **इदानी**मित्यादिना। **इतीति** इत्याशङ्का स्यादित्यर्थः। **तमेतमिति तन्निवारयती**त्यत्रानुस्वारस्य घञि परसवर्ण इति भावः। **आशङ्के**ति। इत्याशङ्का स्यादित्युक्त्वाऽऽ**शङ्कोत्पादकं प्रश्नम्**। शङ्कामध्याहृत्य योजितं प्रश्नोत्थाप्यं हेतुमिति तु नोक्तम्। इतिशब्दार्थो हेतुरध्याहारश्च न स्यादिति। पर्यायव्याख्यानत्वात्। गौरवादिदोषोद्भावनं पर्यायेषु नास्ति। अन्यथैकाक्षरीनाममालोक्तशब्दप्रयोगापेक्षयान्यत्सर्वं गौरवादिदोषग्रस्तं स्यात्। यथा घटकलशयोर्मध्ये घटप्रयोग एव स्यान्न क्वापि कलशपदं शरीरगौरवादिति। **उत्तरयती**ति प्रवृत्तिविघातानुकूलव्यापारो ह्युत्तरयतेरर्थः यो वारयतेरर्थः व्यासो वारयति। **इद**ति मिप्रश्नवारणलक्षणम्। **नाङ्गी**ति अन्येन प्रकारेणापि तु स्वीक्रियते। **भाष्ये नित्यमुपलब्धिः स्यादानन्दांशस्ये**त्यत्र प्रकटसच्चिदिति पूर्वभाष्यादित्याशयवन्त आहुः **जीव** इति संसारावस्थायां सच्चित्प्राकट्यमेवेति पूर्वभाष्योक्ते **जीवे नित्यमुपलब्धौ त्रयाणामंशानां** सच्चित्प्राकट्यव**न्नित्यं प्राकट्यम्**। **अप्राकट्य**मिति अत्रानन्दमात्रमन्वेति। **अथान्ये**त्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति **स जीवः सदि**ति। **आनन्दमिति** आनन्दोस्य ज्ञानस्यास्तीत्यानन्दम्। अर्श आद्यच्। **श्रुतिविरोध** इति। ब्रह्मैव सन्नित्यस्यानन्दः सन्नित्यर्थाच्छ्रुतिविरोधः। **तस्मा**दिति यस्मादन्यथा नाम ननु कथमित्याद्युक्तप्रकारः स्यात्तथासति नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्गोन्यतरनियमो वा स्यात्तस्मादित्यर्थः। सूत्रार्थोप्येतेनोक्तप्राय इति नोच्यते। प्रकृते। **अर्धजरतीयेने**ति यथावल्लिखामि। तथाहि। नित्योपलब्धिसूत्रमुपन्यस्य व्यक्त्यनङ्गीकारे देवानां नित्योपलब्धिरानन्दादीनाम्। असुराणां नित्यानुपलब्धिर्मनुष्याणां नित्योपलब्ध्यनुपलब्धी प्रसज्येते नित्यानन्दो नित्यज्ञानो नित्यबलः परमात्मा नैवमसुरा एवमनेवं च मनुष्या इति ह्याग्निवेश्यश्रुतिः। भविष्यत्पर्वणि च

'नित्यानन्दज्ञानबला देवा नैव तु दानवाः।
दुःखोपलब्धिभाजस्ते मानुषास्तूभयात्मकाः।

भाष्यप्रकाशः।

एतेन संसारदशायां ब्रह्मत्वव्यपदेशो गौण्या, मुक्तिदशायां तु मुख्यवृत्तः। व्यापकत्वं विरुद्धधर्माश्रयत्वं चानन्दांशप्राकट्यादिति साधितम्। माध्वा अप्यर्धजरतीयेनैवमाहुः।

शंकराचार्यभास्कराचार्यभिक्षवस्तु एतत् सूत्रमन्तःकरणसत्तासाधनार्थमित्याहुः। यदि ह्यन्तःकरणं न स्यात् तदा ह्यात्मनो व्यापकत्वादिन्द्रियविषयरूपाणामुपलब्धिसाधनानां समवधानं तस्य सार्वदिकमिति नित्यमुपलब्धिः प्रसज्येत, अथ सत्यपि साधनसमवधाने फलाभावस्ततो नित्यमेवानुपलब्धिः प्रसज्येत, अथात्मनो वेन्द्रियस्य वा विषयस्य वा उपलब्धिजनकशक्तिप्रतिबन्धोऽङ्गीकार्यः। तदपि न। आत्मनोऽविक्रियत्वेन शक्तिप्रतिबन्धासंभवात्। नापीन्द्रियस्य, पूर्वोत्तरक्षणयोरप्रतिबद्धशक्तिकस्याकस्माच्छक्तिप्रतिबन्धकल्पने प्रमाणाभावात्। अन्यथाऽनुपपत्त्या कल्पनेऽपि प्रतिबन्धकल्पनापेक्षया करणकल्पनाया लघीयस्त्वात्। अतो यत्समवधानासमवधानाभ्यामुपलब्ध्यनुपलब्धी तन्मनः। तथाच श्रुतिः। 'अन्यत्रमना अभूवं नादर्शमन्यत्रमना अभूवं नाश्रौषमिति मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति' इति। कामादयश्च तद्वृत्तय इति दर्शयति, 'कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत् सर्वं मन एव' इति। आहुश्च नैयायकाः। युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गमिति। बौद्धानां मनोऽवस्थितं नास्तीति तन्निराकरणार्थं सूत्रमिदमिति चाहुः।

रामानुजाचार्यास्तु ज्ञानमात्रः सर्वगतश्चेदयमात्मा उपलब्ध्यनुपलब्ध्योरुभयोरपि हेतुः स्यात्, तदा सर्वत्रोभयं सदा प्रसज्येत। अथान्यतरनियमस्तदाऽऽत्माऽनुपलब्धिरेव सर्वत्र सर्वदा स्यादुपलब्धिरेव वा। तस्मान्न सर्वगत आत्मा, किं तु शरीरान्तरवस्थितत्वादात्मनस्तत्रैव सर्वेषां स्वात्मन उपलब्धिर्न सर्वत्रेति व्यवस्थासिद्धिः। नचोपलब्धेः करणायत्तत्वाद्दोषसमाधानम्। सर्वेषामात्मनां सर्वगतत्वेन सर्वशरीरगैः सर्वैः करणैः सर्वदा संयुक्तत्वाददृष्टानियमादुक्तदोषस्य

रश्मिः।

तेषां यदन्यथादृश्यं तदुपाधिकृतं मतम्।
विज्ञानेनात्मयोग्येन निजरूपे व्यवस्थितिः।
सम्यक् ज्ञानं तु देवानां मनुष्याणां विमिश्रितम्।
विपरीतं च दैत्यानां ज्ञानस्यैवं व्यवस्थितिः।' इति भाष्यम्।

अत्र त्रयो दोषा नोक्ताः। अन्यदुक्तं सर्वमित्यर्धजरतीयम्। अर्धोपादानात्। अस्य न्यायस्य निरूपकमस्मद्भाष्यम्। यथा वेदान्तत्वमर्धजरतीयेन। तन्निरूपको वेदः। वेदे ब्रह्मतासिद्ध्यर्थं व्रीहीन्प्रोक्षतीति साधनमुपदिश्यात्र तु वेदान्ते ब्रह्मतोच्यते सर्वस्य न तदर्थं साधनमित्यर्धजरतीयेन वेदानामन्तत्वमिति **पश्वावलम्बने**। **इन्द्रियेति** घटं पश्यतीत्यादौ इन्द्रियं चक्षुरादि। विषयो घटादिः। रूपं नीलादि। **अन्यतरेति** भाष्यार्थेऽथेत्यादिः। **अन्यथेति** फलान्यथानुपपत्त्या। **करणेति** अन्तःकरणकल्पनायाः। **लघीयस्त्वं** बहुप्रतिबन्धककल्पनापेक्षयैकमनसः कल्पना लघीयसीति। **अन्यत्रेति** अन्यत्र मनो यस्य सोऽन्यत्रमनाः। अलुक्समासः। **सर्वं मन** इति। वृत्तिवृत्तिमतोरभेदविवक्षया प्रथमा। मन उत्तरं षष्ठ्या लुग्वा। **अयमात्मेति** जीवः। **करणेति** करणाधीनत्वात्। नन्वदृष्टमेव तथेति चेत्तत्राहुः **अदृष्टेति** अदृष्टानियमोऽग्रे व्युत्पाद्यः। **शरीरेति** शरीरस्य

पूर्वोक्त एव प्रकारः स्वीकर्तव्य इति सिद्धम् ॥ ३२ ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयपादे तद्गुणसारत्वादिति त्रयोदशमधिकरणम् ॥१३॥

भाष्यप्रकाशः।

समानत्वात्, अतो विभुत्ववादिनां दूषणायेदं सूत्रमित्याहुः । एवमेव शैवोऽपि ।

यत्तु भास्कराचार्यैरुक्तं, सर्वगतत्वेऽपि भोगस्य कर्मनिमित्तत्वाच्छरीरदेशे भोगोत्पत्तेर्न सर्वगतत्वव्याहतिरिति । तदप्यदृष्टानियमेनैव दूषितत्वान्न युक्तिसहम् । इदं सर्वं मया जीवाणुवादे सम्यक् प्रपञ्चितमतो नात्रोच्यते । न चैवं सति मनःसिद्ध्यभावः । उक्तश्रुत्या तत्तद्वृत्तिप्रत्यक्षेण च सिद्धत्वादिति ॥ ३२ ॥

इति त्रयोदशं तद्गुणसारत्वादित्यधिकरणम् ॥ १३ ॥

रश्मिः।

विद्याकर्मपूर्वप्रज्ञाजन्यत्वेन कर्मत्वांशमादाय भोगोपपत्तेरित्यर्थः । **अदृष्टेति** धर्माधर्मनियमेति । प्रपञ्चितमिति । प्रपञ्चस्तु । किंचादृष्टविशेषा····दृष्टस्य कर्मनियम्यत्वेन कर्मणश्च कर्मविशेषप्रयत्ननियम्यत्वेन प्रयत्नस्य चात्मनः संयोगनियम्यत्वेन संयोगस्य च सर्वेषामात्मनां सर्वेषु मनस्सु सत्त्वात्तयैव प्रणाड्या सर्वेष्वेव प्रयत्नजधर्माधर्मरूपाणां सर्वादृष्टानां सुवचत्वात् । न च देहाद्यवच्छिन्नविलक्षणमनःसंयोगादिना दोषः परिहर्तुं शक्यः कारणमन्तरेण देहाद्यवच्छेदमात्रेण मनःसंयोगवैलक्षण्यस्याशक्यवचनत्वात् । अथ कार्यैकोन्नेयं तद्वैलक्षण्यमिति चेदस्तु तथापि नास्तिकमिति कारणं तु वाच्यमेव । तत्रान्यस्य वक्तुमशक्यत्वादीश्वरे नैव चेद्वैलक्षण्यहेतुत्वेनाद्रियते । तदेष एव भुङ्क्तां नान्ये । अस्य कर्मणास्यैवादृष्टमुत्पद्यतां नान्यस्येत्येवमीश्वरेच्छयैव व्यापकात्मनां भोगनियमवद्देशान्तरस्थोऽयमनेन प्रकारेण भुङ्क्तामित्येवमण्वात्मवादेऽपि भोगनिर्वाहसिद्धौ देशान्तरेऽदृष्टवदात्मसंयोगाङ्गीकारेण व्यापकत्वसाधनं जघन्यमेव । यत्तु आत्मशरीरसंयोगस्याध्यासभिन्नस्य ज्ञाने कारणतैव नास्ति । प्रयोजनविरहेण तस्यास्तत्रानङ्गीकारात् । विदेहमुक्तात्मविज्ञानाद्युदयवारणाय ज्ञानादिकं प्रत्यवच्छेदकतया शरीरस्यैव हेतुत्वावधारणाच्च । अतः परशरीरे कारणाभावादेव भोगाद्यभाव इति न तत्र तदापादनमुचितमित्युक्तम् । तदपि फल्गु । ज्ञानादिकं प्रति शरीरस्य शरीरत्वे शरीरत्वेन हेतुत्वे त्वद्रीत्यापि कारणात्मत्वस्य वक्तुमशक्यत्वात् । आत्मनां विभुत्वस्यासिद्धत्वे तत्तच्छरीरत्वेन कारणताया अप्रामाणिकगौरवग्रस्तत्वाच्च । अतः कारणतानङ्गीकारेण भोगानियमसमाधानं भजतः फेनावलम्बनमेवेति दिगिति । सम्यक्त्वं चावारपारीणत्वम् । असंदिग्धान्तःकरणसत्ता न सूत्रविषयो संदिग्धश्रुतिवदित्याहुः **उक्तेति** । **तद्वृत्तीति** । मनोवृत्तीनां कामसङ्कल्पादीनां प्रत्यक्षेण मनसः सिद्धत्वात् इतिरधिकरणसमाप्तौ ॥ ३२ ॥

इति तद्गुणसारत्वादित्यधिकरणम् ॥ १३ ॥

---

१. यावदात्मा मानसीनस्तावत्प्रयत्नवान् अन्यथा मनोविनाप्यन्यत्रापि व्यापकात्मा प्रयत्नी स्यात् । तथाचेति सिद्धान्तित इतिशेषः ।

कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात् ॥ ३३ ॥ (२-३-१४)

सांख्यानां प्रकृतिगतमेव कर्तृत्वमिति तन्निवारणार्थमधिकरणारम्भः। कर्ता जीव एव। कुतः शास्त्रार्थवत्त्वात्।

भाष्यप्रकाशः।

कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात् ॥ ३३ ॥ अधिकरणप्रयोजनमाहुः **सांख्यानामित्यादि** । तथा च पूर्वं ज्ञानस्वरूपत्वे ज्ञानगुणकत्वे च सिद्धान्तिते सांख्यवदकर्तृत्वं नैयायिकवत् कर्तृत्वं च संभाव्यते, अतः संशयः । तत्र कठवल्ल्याम् ।

'हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते' ।

इत्यत्र हन्तृत्वं जानतोऽज्ञत्वश्रावणात् । गीतायामपि,

'प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते' ।
'नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति' ।
'कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते' ।

इति भगवता कथनात् पुराणेष्वप्येवंविधवाक्यदर्शनाज्जीवो न कर्ता, प्रकृतिरेव कर्त्रीति निराकरणायाधिकरणारम्भ इत्यर्थः । एवं पूर्वपक्षे सूत्रोक्तं सिद्धान्तं व्याकुर्वन्ति **कर्तेत्यादि** । **शास्त्रार्थवत्त्वादिति** । शास्त्रस्य अर्थवत्त्वं शास्त्रार्थवत्त्वं तस्मात् । शास्त्रस्य फलवत्त्वादिति यावत् ।

रश्मिः ।

कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात् ॥ ३३ ॥ भाष्ये पूर्वपक्षोक्तेस्तदाक्षेप्यमाहुः **तथा चेति** । **सिद्धान्तित** इति सतीति शेषः । तथा च प्रसङ्गसंगत्याधिकरणारम्भ इति भावः । अत्र विषय उक्तः । हन्ता चेदित्यादिः कार्येत्यादिश्च श्रुतिस्मृतिजालं पूर्वपक्ष इति वक्ष्यते । संशयः क इत्यत आहुः **सांख्येति** 'असङ्गः पुरुषः' इति सांख्यप्रवचनसूत्रात् । **नैयायिकेति** । यथाहुः 'संसारमहीरुहस्य बीजाय' इति । बीजाय निमित्तकारणाय । औपाधिकं जीवत्वमिति भाष्ये उक्तम् । **संशय** इति कर्ताऽकर्ता वेति । भाष्यं व्याकुर्वन्ति स्म पूर्वपक्षत्वेन । तत्र **कठेति** । **हन्तुमिति** स्वकर्तृकं हननम् । भावे तुमुन् । हन्तृत्वं स्वकर्तृनिष्ठमन्यकर्तृनिष्ठं च । **एवं विधेति** । यथा तृतीयस्कन्धे 'यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् । प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेषवत्' इति वाक्यम् । अत्र 'ब्रह्मवदविशेषम्' इति सुबोधिनी । अत एवंविधता । **कर्तेत्यादीति** । तथा च सिद्धान्तो विषय इत्युक्तम् । यद्वा 'तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय' इत्युपादानसूत्रे वक्ष्यमाणं विषयवाक्यम् । तत्रैव प्रकाशे विषयवाक्योपन्यासेनेत्युक्तम् । भगवद्दत्तकर्तृत्वविशिष्टः । तेन तद्गुणसारसूत्रस्थस्य तस्य ब्रह्मण इत्यादिभाष्यस्याविरोधः । अत एव जन्मादिसूत्रभाष्यम् **न चेत्यारभ्य ब्रह्मगतमेव कर्तृत्वमित्यन्तम्**। एवकारेण प्रकृतिव्यवच्छेदः। अर्थवत्त्वमनुबन्धचतुष्टयवत्त्वं प्रतिपाद्यतासंबन्धेन । जीवमेवेति वक्ष्यमाणभाष्यात् फलवत्त्वं प्रतिपाद्यतासंबन्धेन उपलक्षणमेतत् 'सिद्धार्थं सिद्धसंबन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते । शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः संबन्धः सप्रयोजनः' इति वाक्योक्तार्थानाम् ।

विहारोपदेशात् ॥ ३४ ॥

तस्यैव गान्धर्वादिलोकेषु, यद् यत् कामयते तत् तद् भवति' इति विहार उपदिष्टः। ततश्च कर्तृत्वभोक्तृत्वयोः 'साधुकारी साधुर्भवति' इति सामानाधिकरण्यश्रवणाज्जीव एव कर्ता ॥ ३४ ॥

भाष्यप्रकाशः।

नैमित्तिकात्मधर्मत्वबोधनादिति ॥ ३३ ॥

विहारोपदेशात् ॥ ३४ ॥ जीवस्य स्वतः कर्तृभावेऽपि प्रकृतिसंसृष्टत्वेन विवेकाग्रहात् तादृशकर्तृग्रहणेऽपि शास्त्रसार्थक्यमिति शङ्कायां सूत्रोक्तं हेत्वन्तरं व्याकुर्वन्ति **तस्यैवेत्यादि।** छान्दोग्ये दहरविद्यायां, 'स यदि पितृलोककामो भवति' इत्यादिना, 'यं कामं कामयते सोऽस्य संकल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन संपन्नो महीयते' इत्यन्तेन तत्तत्समुत्थानादिकथनाद् **विहारः** स्वेच्छाक्रीडात्मकभोगरूप **उपदिष्टः** स चोक्तरीत्या दहरविदः कर्तृत्वमाक्षिपति। नच तादृशस्य विवेकाग्रहः संभवत्यतस्तथेत्यर्थः। अत्र पित्रादीति वक्तव्ये गान्धर्वादीति पदं विहारस्वाच्छन्द्या-

रश्मिः।

नैमित्तिकेति । गुणनिमित्तकात्मधर्मत्वम् । तथा च नैमित्तिकसांसिद्धिकसामान्यकर्तृत्वावच्छिन्नपरं सौत्रं कर्तृपदमिति भावः। यद्वा सांख्याधिकारिणां सांख्यीयभवद्वाक्योक्तं कर्तृत्वम्। वेदान्तिनां तु जीवः कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वादित्यर्थः। इतिः सूत्रार्थसमाप्तौ ॥ ३३ ॥

विहारोपदेशात् ॥ ३४ ॥ **शास्त्रेति** मायामये वासनया शयानानां कर्तृत्वेन शास्त्रसार्थक्यम्। **हेत्वन्तरमिति** हेतुः शास्त्रार्थवत्त्वं तदन्योयं हेतुर्हेत्वन्तरस्तम्। **स** इति आत्मानमनुविद्य व्राजी। **महीयत** इति दीव्यति। **स्वेच्छेति** **स्वेच्छया क्रीडा** तदात्मको **भोग**स्तद्रूपः। **उक्तेति** जीवमेवाधिकृत्येत्यादिभाष्योक्**तरीत्या**। **तादृशस्येति** दहराधिकरणे सा दहरविद्या दृश्यते यत्रेति तादृशस्तस्य। **तथेति** विहार उपदिष्टउपदिष्टत्वप्रकारेणेत्यर्थः। **विहारेति**। **पित्रादीति** छान्दोग्यानुरोधेनोक्ते पित्रादिपारतन्त्र्यं स्यात्। अनुल्लङ्घ्याज्ञा यतस्तेषां, आदिशब्देन कर्तृत्वं स्वतन्त्रं न स्यात्ततः कर्तृलक्षणविरोधः। 'स्वतन्त्रः कर्ता' इति 'क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोर्थः कर्ता स्यात्' इति कर्तृलक्षणम्। किंचादिशब्देन गान्धर्वादीति गङ्गादिसमासः। गान्धर्वस्यादयः पितृमातृभ्रातृस्वसृसखिगन्धमाल्यान्नपानलोकाः गान्धर्वादयः। गान्धर्वः आदिर्येषां स्त्रीलोकसर्वकामानां ते गान्धर्वादयः। गान्धर्वादयश्च गान्धर्वादयश्चेत्येकशेषः। तेषां लोकेष्विति षष्ठीतत्पुरुषः। ननु गान्धर्वलोको न श्रूयत इति चेन्न। गन्धर्वाणां गीतवादित्राभ्यां संस्क्रियते गान्धर्वस्तदादीनां लोकेष्वित्यर्थात्। 'अथ यदि गीतवादित्रलोककामो भवति संकल्पादेवास्य गीतवादित्रे समुत्तिष्ठतस्तेन गीतवादित्रलोकेन संपन्नो महीयते' इति श्रुतेः। **ततश्चे**त्यादिभाष्यार्थस्तु नोक्तः स इत्थम्। नन्वदर्शनान्मास्तु जीवः कर्तेश्वरस्तु जन्मादिसूत्रात्कर्ता सिद्धः। स एवान्तर्याम्यस्तु कर्तेत्याशङ्क्याहुः **ततश्चे**त्यादि। विहाररूपभोक्तृत्वोपदेशात्। च पुनर्जीव एव कर्ता नान्तर्याम्यादिः। तत्र हेतुः **कर्तृत्वे**ति स्याद्यदि कर्तृत्वमात्रं स्यान्न त्वेवं किंतु यद्यत्कामयते तत्तद्भवतीति भोग्यभवनोक्तेः भोगकर्तृत्वं तच्चान्तर्याम्यादौ नास्ति 'अनश्नन्' इति श्रुतेः 'न तदश्नाति' इति श्रुतेश्च। किंच। **'साधुकारी'** इत्यादौ साधुकर्मकारी साधुः साधकः परकार्यस्येति साधुभोगकारी

१. मूले सामानाधिकरण्यादिति रश्मिकारसंमतः पाठः।

जीवमेवाधिकृत्य वेदे अभ्युदयनिःश्रेयसफलार्थं सर्वाणि कर्माणि विहितानि ब्रह्मणोऽनुपयोगात् । जडस्याशक्यत्वात् । संदिग्धेऽपि तथैवाङ्गीकर्तव्यम् ॥ ३३ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

'कारीर्या वृष्टिकामो यजेत', 'ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत', 'तज्जलानिति शान्त उपासीत,' 'अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथा क्रतुरस्मिल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति, स क्रतुं कुर्वीत' इत्यादिभिर्वेदेऽभ्युदयनिःश्रेयसफलार्थं सर्वाणि यज्ञादिरूपाण्युपासनारूपाणि च कर्माणि विहितानि । यदि जीवः कर्ता नेष्येत तदा स्वर्गकामादिपदानि तादृशफलेप्स्वधिकारिशून्यानि कुप्यन्ति तत्तच्छास्त्रवैयर्थ्यमेवापादयेयुः । न हि तादृशकामवत्त्वं ब्रह्मणः संभवति । आत्मकामत्वेन तत्फलानुपयोगात् । न वा जडस्य बोधाभावेन तादृशकामाभावेन चाशक्यत्वात् । अतः पूर्वोक्तवाक्यैः संदिग्धेऽपि कर्तृत्वे बहूनामनुग्रहस्य न्याय्यत्वात् तत्तत्फलकामिनां जीवानामेव कर्तृत्वमङ्गीकार्यम् । नच, हन्ता चेदित्यस्य कोपः । आत्मनो नित्यत्वेन वध्यत्वाभावात् । तादृशज्ञानस्य मिथ्यात्वबोधनेनोपपद्यमानत्वात् । 'प्रकृतेः क्रियमाणानि' इत्यादिगीतावाक्येषु पौराणिकेषु च यद् गुणानामेव कर्तृत्वं स्वस्मिन्नध्यस्यतीत्युच्यते तदपि लौकिककर्तृत्वाध्यासपरम् ।

'न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः' ॥

इति वाक्ये लोकप्रवाहपतितस्य कर्मणः प्राकृतगुणप्रयुक्तत्वबोधनात् । न तावता सर्वविधकर्तृत्वलोपः ।

'अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥
शरीरवाङ्मनोभिर्यत् कर्म प्रारभते नरः ।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तत्र हेतवः ॥
तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः' ॥

इति गीतायामेव जीवस्य कर्तृत्वं कर्तेतिपदेनोक्त्वा तस्याधिष्ठानादिपञ्चहेतुसापेक्षत्वं निरूप्य केवलस्य स्वस्य कर्तृत्वाभिमाने दुर्मतित्वबोधनेन घृतद्रवत्ववत् तस्य लौकिकस्यापि

रश्मिः ।

जीवमेवेति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **कारीर्ये**ति । कारीरीज्योतिष्टोमौ यागनामधेये । **तज्जलानि**ति सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशाधिकरणविषयवाक्यमिदम् । **इत्यादिभिः** आदिशब्देन 'पुण्यः पुण्येन' 'एष उ एव साधुकर्म कारयति यमुन्निनीषति' इति श्रुती । **वेद** इति वेदान्तानां वेदत्वं 'स्मृतेश्च'इति सूत्रे भाष्ये प्रसाधितम् । **ब्रह्मण** इति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **नहीति** । **जडस्ये**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **न वे**ति । आधिदैविकवादेन प्राप्त्यायं निषेधः । **सन्दिग्धे**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अत** इत्यादि । **पूर्वोक्ते**ति **हन्ता चेदि**त्यादिभिः । **कर्तृत्व** इति कारीर्यादिवाक्योक्ते । **अध्यस्यतीति** कर्ताहमित्येवम् । **लौकिकेति लौकिकत्वं** लोकप्रवाहपतितत्वम् । लोकशब्दाद्भवार्थे ठक् । अलौकिककर्तृत्वं तु कर्ता जीव एवेति भाष्यरश्म्युक्तम् । **पृथगि**ति दशविधम् । **अकृते**ति न **कृता** शास्त्रीया **बुद्धिर्येन सोऽकृतबुद्धि**स्तत्त्वात् । **घृते**ति घृते द्रवत्वं नैमित्तिकम् । सांसिद्धिकं जले ।

उपादानात् ॥ ३५ ॥

'तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय' इति जीवेन सर्वेषां विज्ञानमुपादीयते । तस्मादिन्द्रियादीनां करणत्वमेव । स्वातन्त्र्यादस्यैव कर्तृत्वम् ।

भाष्यप्रकाशः ।

द्विद्योतनार्थम् । यत्तु कैश्चित्, 'स ईयते पुरुषो यत्र कामम्' इति श्रुत्युपन्यासेन स्वाप्नी क्रिया विहारत्वेनादृता । तन्न रुच्यम् । लभ्यमाने ईदृशे ज्ञानिनो विहारे तादृशाज्ञानिविहारग्रहणस्यायुक्तत्वादिति ॥ ३४ ॥

उपादानात् ॥ ३५ ॥ संकल्पस्य मनोधर्मत्वाद् दहरविदोऽपि मनःसंसृष्टत्वमेवेति न केवले जीवे कर्तृत्वसिद्धिरिति शङ्कानिरासायोक्तं हेत्वन्तरं विषयवाक्योपन्यासेन व्याकुर्वन्ति तदेषामित्यादि । श्रुतिस्तु बृहदारण्यके दृप्तबालाकिब्राह्मणस्था 'यत्रैष एतत् सुप्तोऽभूद्य एष विज्ञानमयः पुरुषस्तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते' इति । अत्र अभूदित्यन्तं भिन्नं वाक्यम् । अग्रिमे तु विज्ञानेन स्वीयेन गुणेन एषां प्राणानामन्तर्बहिरिन्द्रियाणां विज्ञानं ज्ञानजनिकां शक्तिमादायेत्यर्थो बोध्यः । शेषं स्फुटम् । तत्रैव

रश्मिः ।

भवतीति पूर्वसूत्रोक्तकर्तृत्वं भोगकर्तृत्वमित्येवं **भोक्तृत्वकर्तृत्वयोः सामानाधिकरण्य**मेकाधिकरणवृत्तित्वं तस्मात् । सामानाधिकरण्यश्रवणादिति पाठान्तरम् । जीव एव न तु परमात्मा कर्तेति । **कैश्चिदिति** शंकराचार्यैः । **स** इति अमृतः त आत्मा यथेष्टमी**यते** गच्छतीति श्रुत्यर्थः । **स्वाप्नीति** । जीवप्रक्रियायां संध्ये स्थानेऽस्याः पाठात् । **ज्ञानिन** इति 'य इहात्मानमनुविद्य व्रजति'इति श्रुतेः । **अयुक्तेति** उक्तश्रुतिविरोधादयुक्तत्वम् । गौणमुख्यन्यायेनाप्य**युक्तत्वं** तस्मादिति ॥ ३४ ॥

उपादानात् ॥ ३५ ॥ **संकल्पस्येति** संकल्पादेवास्य गीतवादित्रे इत्याद्युक्तसंकल्पस्य । **मनःसंसृष्टत्व**मिति मनःशब्दः प्रकृत्युपलक्षकः भाष्यात् । सकलेन्द्रियोपलक्षकश्च इन्द्रियादीनामिति भाष्यात् । **हेत्वन्तर**मिति हेतुं विहारोपदेशरूपम् । **विषयेति** पूर्वसूत्रे सामान्यकर्तृत्वमुक्त्वा द्वितीये भोगकर्तृत्वं समर्थितम् । समर्थिते भोगकर्तृत्वे 'तन्मनोऽकुरुत' इति श्रुतिपक्षोपस्थितिः 'अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते' इतिस्मृतेः । ततश्च संशयावसरः । ननु पूर्वमेव परमात्मना संशयः कुतो नेति चेन्न । विषयवाक्यगतपदस्य पूर्वसूत्रयोरभावादत्र तूपादानपदसत्त्वात् । अतोत्र विषयवाक्योपन्यासस्तेनेत्यर्थः । **सर्वेषा**मिति प्राणपदवाच्येन्द्रियाणाम् । **तस्मा**दिति प्राणानामिति भेदषष्ठ्याः । **दृप्तेति** बलाकाया अपत्यं **बालाकिः दृप्तो** गर्वितः । अजातशत्रोर्गार्ग्यं प्रति वचनम् । यत्र यस्मिन्निमित्ते सुप्तो विशेषविज्ञानरहितोऽभूद्य एष विज्ञानमयः पुरुषस्तन्निमित्तमेतच्छृणु । इत्यस्मिन्नर्थे एकस्यैतदो रूपस्य प्रथमान्तस्य वैयर्थ्यमत आहुः **अत्रे**त्यादि । अर्थस्तु स एव । 'एकतिङ्वाक्यम्' । **स्वीयेने**ति स्वमात्मा तस्येदं चैतन्यं **गुणस्तेने**त्यर्थः । **जीवेने**ति भाष्यात् । **स्फुट**मिति । **तस्मा**दिति भाष्ये तस्यार्थः । विषयवाक्ये विज्ञानमय इत्यत्र संशयः 'विज्ञानं यज्ञं तनुते' इति श्रुत्या विज्ञानं जीवः 'बुद्धिर्विज्ञानरूपिणी' इति भागवते विज्ञानं बुद्धिः 'मनसैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवम्' इति श्रुत्या विशेषज्ञानकरणं मनः संकल्परूपम् । तत्र बुद्धेर्मनोभेदत्वेन विज्ञानपदेन जीवो वा मनो वेति संशयः । जीवस्य कर्तृत्वेन तत्संसृष्टमनसोपि कर्तृ-

यस्तु मन्यते बुद्धिसंबन्धाज्जीवस्य कर्तृत्वमिति । स प्रष्टव्यः । किं बुद्धिकर्तृत्वं जीवे समायाति अथवा जीवगतमेव कर्तृत्वं बुद्धिसंबन्धादुद्गच्छति

भाष्यप्रकाशः ।

श्रुत्यन्तरं च, 'तद्गृहीत एव प्राणो भवति गृहीता वाग् गृहीतं चक्षुर्गृहीतं श्रोत्रं गृहीतं मनः स यत्रैतत् स्वप्नयया चरति, स यथा महाराजो जानपदान् गृहीत्वा स्वे जनपदे यथाकामं परिवर्तेतैवमेवैष एतत्प्राणान् गृहीत्वा स्वे शरीरे यथाकामं परिवर्तते' इति । तथाच स्वप्नावस्थायामज्ञानबहुलायामपि प्राणानामन्तर्बहिरिन्द्रियाणां पृथग्ग्रहणकथनात् तदानीं प्राणाख्येभ्य इन्द्रियेभ्यो विविक्तस्यैव ग्रहीतृत्वमुच्यते । अतो दहरविदः संकल्पोऽप्यात्मधर्म एव ज्ञेयः । 'कामः संकल्पः' इति श्रुतिस्तु लौकिकतत्परा । अतः स्वातन्त्र्याज्जीवस्यैव कर्तृत्वमित्यर्थः । अत्र मतान्तरमनुवदन्ति दूषयितुं विकल्पयन्ति च **यस्त्वित्यादि, स प्रष्टव्य इत्यादि** च ।

रश्मिः ।

त्वम् । पूर्वपक्षस्तु जीवस्य कर्तृत्वेन तच्चैतन्यस्यापि कर्तृत्वम् । परं तु मनःसंसृष्टस्य जीवस्य 'संकल्पादेवास्य गीतवादित्रे समुत्तिष्ठतः' इति श्रुतेरिति । **तस्मादिन्द्रियादीना**मिन्द्रियमनोबुद्धीनां **करणत्वं** तृतीयान्तविज्ञानपदवाच्यत्वेन तथा । एवकारस्तु सकलप्रसिद्ध्या । ननु भाष्यीयपदसंशयः कुतो न इति चेन्न आदानघटितविषयवाक्ये तात्पर्याद् एवं स्फुटमित्यर्थः । **स्वातन्त्र्या**दिति सिद्धान्तभाष्यमित्याशयेन तद्विवरीतुमाहुः **तत्रैवे**ति, वागादिशक्तिकविज्ञानादान एव । वक्ष्यमाणप्राणपदस्योपलक्षकत्वाश्रयणादेवकारः । **तद्गृहीत** इति तत्तत्र स्वापकाले । **स** इति जीवः । **स्वप्नययेति** । स्वप्ने साध्यया मायया । 'तत्र साधुः' इति यत् । अग्र एतत्प्रपञ्चरूपा श्रुतिः । सा विस्तरभिया नोपक्षिप्ता अस्माभिर्लिख्यते । 'ते हास्य लोकास्तदुतेव महाराजो भवत्युतेव महाब्राह्मण उतेवोच्चावचं निगच्छति' इति । अर्थस्तु यत्र चरति ते लोकाः कर्मफलसूचकानि विहारादिस्थानानि तज्जीवस्तत्र स्वप्नस्थाने वा । उतेवेत्यव्यये । महाराज इव 'अनुकृतेस्तस्य च' इति सूत्रान्न तु महाराज इतीव प्रयोगः । उच्चं देवत्वादि, अवचं तिर्यक्त्वादि । **स** इति जीवः । **जानपदान्** जनपदे देशे संजातान् राजोपकरणभूतान् भृत्यादीन् । **एतत्** निमित्तम् । **प्राणा**निति इन्द्रियाणि । **अपीति** अपिना ज्ञानिनो विहारस्तस्मिन् । **विविक्तस्यैवे**ति 'अथ य इहात्मानमनुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान्कामांस्तेषाꣳ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति' इति दहरविद्याश्रुतेः । अन्यथाननुविद्य व्रजत इव सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवेत् । अत उक्तं विविक्तस्यैवेति । सर्वसंमत्यैवकारः । **संकल्प** इति संकल्पात्पित्राद्यनुत्थानाद् इह स्वप्ने पित्रादिसमुत्थानं श्रूयते 'स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति' इत्यादिना । **अत** आत्मधर्मोऽलौकिकः । **लौकिकेति** । तथा च लौकिकान्न पितृणां समुत्थानमिति भावः । **स्वातन्त्र्या**दिति 'स्वतन्त्रः कर्ता' इति सूत्रोक्तात् । **एवे**ति 'गावो वै सत्रमासीरन्' इत्यत्र तु गावो नेन्द्रियाणि किं तु प्रसिद्धा एव गाव इत्येवकारः । **मतान्तर**मिति शंकराचार्यमतम् । **विकल्पेति** **अथवे**त्यादिभाष्येण विकल्पयन्ति । **स प्रष्टव्य** इत्यादि । यथा भवति तथा विकल्पयन्तीत्यन्वयः । स प्रष्टव्य इत्यादीत्यतद्गुण-

---

१. पूर्ववत् ।

अथवा शशविषाणायितमेव कर्तृत्वं संबन्धे समायाति । नाद्यः । जडत्वात्, अनङ्गीकारात् पूर्वं निराकृतत्वाच्च । द्वितीये त्विष्टापत्तिः । उपादानविरोधश्च ।

भाष्यप्रकाशः ।

दूषयन्ति नाद्य इत्यादि । बुद्धिर्हि जडा । जडगतं कर्तृत्वं चेतने समायातीति न क्वापि दृष्टम् । विपरीतं रथाऽऽदौ दृष्टम् । अतो नाद्यः । किंच । सूत्रकृता कुत्र वा जडे कर्तृत्वमङ्गीकृतं येनात्र तदाद्रियते, यदि तथा स्यात् पूर्वं न प्रकृतेः कर्तृत्वं च रचनानुपपत्त्यादिसूत्रेषु निराकुर्यात्, अतोऽनङ्गीकारात्, पूर्वं निराकृतत्वाच्च नाद्य इत्यर्थः । द्वितीयं दूषयन्ति **द्वितीय इत्यादि** । कर्तृत्वस्य यद्यपि घृतद्रवत्ववज्जीवधर्मत्वसिद्ध्या इष्टापत्तिस्तथापि प्राणानामुपादेयतया श्रुतौ सिद्धत्वाद् बुद्धेरपि प्राणेष्वेव प्रवेशात् तत्संबन्धेनोद्गमाङ्गीकारे प्राणोपादानविरोधश्च । अतः सोऽपि नेत्यर्थः । नच जीवानां करणगोचरसाक्षात्काराभावात् तद्ग्रहणं कथमुपपद्यत इति वाच्यम् । जाग्रति स्वयंज्योतिष्ट्वाभावेन तत्साक्षात्काराभावेपि, 'अत्रात्मा स्वयंज्योतिर्भवति' इति श्रुत्या तदानीं स्वयंज्योतिष्ट्वेन करणनाडीप्रभृतिसाक्षात्कारसंभवे सुखेन तद्ग्रहणोपपत्तेः । नचैवं सति जाग्रति कदाचित् तत्स्मरणापत्तिः । निद्रया स्वयंज्योतिष्ट्वस्यैव ग्रहणादिविषयक-

रश्मिः ।

संविज्ञानः । भाष्ये **शशेति** शशविषाणमिवाचारयितं[1] वा कर्तृत्वम् । एवकारस्तु व्यावहारिकीं सत्तां व्यवच्छिनत्ति । **संबन्ध** इति शशशृङ्गं नास्तीत्यत्र शशशृङ्गाप्रसिद्ध्या प्रतियोगिरूपकारणज्ञानाभावान्नाभावज्ञानं स्यादिति प्रतियोगिप्रसिद्ध्यै शृङ्गे शशीयत्वाभाववद्बुद्धिसंबन्ध इत्यर्थः । **समायातीति** जीवे ब्रह्मणि वा । प्रकृते **जडेति** सत्त्वगुणरूपत्वात् । ज्ञानरूपा नैयायिकानाम् । **अनङ्गीति** भाष्यविवरणम् । **किं चेत्यादि** । **पूर्वमिति** द्वितीयपादारम्भे । भाष्यविवरणं **कर्तृत्वस्येत्यादि** । **घृतेति** नैमित्तिकं द्रवत्वम् । दार्ष्टान्तिके बुद्धिनिमित्तम् । **प्राणानामिति** प्राणविज्ञानानाम् । धर्मे धर्मिण आधेयतासंबन्धो लक्षणा । **बुद्धेरिति** कर्तृत्वनिमित्तायाः । **उद्गमेति** कर्तृत्वोद्गमाङ्गीकारे । **प्राणेति** जीवानां निराकारत्वेन हस्तधर्मीभूतोपादानविरोधः । गृहीतः प्राण इत्यत्र ग्रह उपादान इति धातुपाठात् । **स** इति द्वितीयः पक्षः । 'हस्तौ चादातव्यं च' इति श्रुत्या निराकारस्य हस्ताभावात्**करणा**नीन्द्रियाणि तेषां विषया **गोचरा** उपादानादयस्तेषां **साक्षात्काराः** प्रत्यक्षाणि तेषाम**भावादि**त्यर्थः । हस्ताभावाद्गोचरोपादानाभावस्तदभावात्तत्साक्षात्काराभावस्तस्मात् । **तद्ग्रहणं** प्राणोपादानम् । जानातीच्छति यतत इति तत्तत्कारणपरंपरा तदभावात्**कथ**मिति प्रश्नः । करणेत्याद्यव्यवहितग्रन्थात् । स्वप्ने निराकारत्वाभावादुपपत्तिमाहुः **जाग्रतीति** । **अत्रेति** स्वप्ने प्रकरणात् । **तदानीमिति** सुप्तस्य विज्ञानकाले । **स्वयमिति** न तु करणादिद्वारा । **करणेति** हस्तादीत्यर्थः । दृष्टानुरोधेन **साक्षात्कारसंभवे तद्ग्रहणेति** प्राणग्रहणोपपत्तेः । **तत्स्मरणेति** अनुभवस्य स्वसजातीयगोचरविषयकस्मरणजनकसंस्कारजनकत्वनियमेन चाक्षुषस्मरणवत् प्राणग्रहणस्मरणापत्तिः । तमस्त्वेन ज्ञाननाश्यत्वेन कार्यकारणभावादाहुः **निद्रयेति निद्रा** 'तमस्त्वज्ञानजं विद्धि' इतिवाक्यात्तामसी तया विषयाग्रहणरूपया । ननु स्वयंज्योतिष्ट्वं निद्रान्तर्गतं कथं निद्रया तिरस्कार्यमिति चेन्न निद्रापदेन तच्चरमवृत्तेर्विवक्षणात् । जाग्रदवस्थाप्रागभावाधिकरणक्षणस्य निद्राक्षयाधिकरणक्षणत्वात् । तथापि प्रागभावा-

1. चरितं ।

तृतीये शास्त्रविरोधः । ब्रह्मणि सिद्धत्वाच्च । असत्कार्यस्य निराकृतत्वात् । सर्वविप्लवस्तु माध्यमिकवदुपेक्ष्यः ॥ ३५ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

संस्कारस्यापि तिरस्कारात् । नच तिरस्कारे मानाऽभावः । कार्याभावेनैव तथानुमानात् । अथवा, उपेक्षाज्ञानादिव तादृशज्ञानादपि संस्कारानुत्पत्तिरुपेक्षाज्ञानवत्तदपि त्रिक्षणावस्थाय्येवेति वा श्रुतार्थापत्त्या कल्पनीयमतो न दोषः ।

नच द्वितीयस्कन्धे, 'आत्मा यथा स्वप्नजनेक्षितैकः' इत्यत्र स्वप्नादौ भगवत एव द्रष्टृत्वप्रतिपादनान्न तत्र जीवस्य द्रष्टृत्वमिति शङ्क्यम् । तत्र, 'स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्वः' इत्यत्रोक्तायाः भगवतो द्रष्टृत्वप्रतिज्ञायाः पूर्तये भगवतो द्रष्टृत्वव्युत्पादनेऽपि जीवद्रष्टृत्वस्यानिषेधात् । अन्यथा स्वप्नानुस्मरणाभावप्रसङ्गात् । इदंच मया तत्रैव व्युत्पादितमिति ततोऽवसेयम् ।

भिक्षुस्तु—यद्यपि जीवानां करणगोचरसाक्षात्कारो नास्तीति तद्गोचरा कृतिर्न संभवति, तथापि निद्रानिमित्तकारणचक्षुर्निमीलनादिद्वारैव निद्रायां कर्तृत्वं बोध्यमित्याह तन्नास्माकं रोचते । उक्तरीत्या कर्तृत्वे साक्षात्संभवति तथा कल्पनस्यायुक्तत्वादिति । तृतीयं दूषयन्ति तृतीय इत्यादि । शास्त्रे हि कर्तृत्वं प्रतिज्ञातं सूत्रकृता । यदि तच्छशविषाणायितमेव भवेत्

रश्मिः ।

धिकरणक्षणे जाग्रदवस्थाया अभावात्कथं निद्रया स्वयंज्योतिष्ट्वतिरस्कार इति चेत् स्वकारणाभेददर्शनेन जाग्रदवस्थासत्त्वादित्यवधेहि । **तिर इति** । कार्याभावादिति भावः । एतदेवाहुर्**नचे**त्यादिना । **कार्यं** ग्रहणादिविषयकसंस्कारः । **अनुमाना**दिति जाग्रदवस्था तिरस्कारवती कार्याभावात् सुषुप्तिवदिति गुरुधर्मस्यावच्छेदकत्वादुक्ते साध्यहेतुतावच्छेदके । तथापि जीवस्य साकारतापत्तिमाशङ्क्य पक्षान्तरमाहुः **अथवे**ति । **उपेक्षे**ति उपेक्षाज्ञानानास्कन्दितानुभवस्य संस्कारकारणत्वम् । अन्यथा पणप्रसारितनानापदार्थानामनुभवैर्जन्याः संस्कारास्तैः सर्वविषयकस्मरणापत्तिः । सर्वानुभवजन्यसंस्काराणां सत्त्वात् । **तदपी**ति स्वाप्निककरणनाडीप्रभृतिज्ञानमपि । **श्रुतार्थे**ति श्रुतार्थापत्तिर्दृष्टार्थापत्तिर्द्विविधा । तत्र श्रुतार्थापत्तिर्जीवन्देवदत्तो गृहे नास्तीत्यत्र । दृष्टार्थापत्तिस्तु पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते इत्यत्र । तत्र दृष्टार्थानुपपत्तेः शब्देऽभावाच्छ्रुतार्थानुपपत्तिमाहुः **श्रुतार्थे**त्यादि । श्रुतोर्थो 'विज्ञानमादाय तद्गृहीत एव प्राणः' इत्यादिस्तस्यार्थान्तरं हस्तं विनानुपपद्यमानस्योपपत्तयेऽर्थान्तरकरणनाडीप्रभृतिज्ञानवच्छ्रुतार्थो 'निराकारास्तदिच्छया' इति 'यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गाः' इति च जीवनिराकारत्वरूपस्तदुपपत्तये उपेक्षाज्ञानवत्स्वाप्निककरणनाडीप्रभृतिसाक्षात्कारतिरस्कारकल्पनं श्रुतार्थापत्तिस्तयेत्यर्थः । **दोष** इति साकारतापत्तिः । **भिक्षुरि**ति भगवान्भिक्षुः । **तद्गोचरे**ति उपादानविषयिणी । **निद्रे**ति । **निद्रायां कर्तृत्वं बोध्य**मित्यन्वयः । तच्च कर्तृत्वम् । निद्रा तामसी सुप्तस्य विज्ञानरूपा विशिष्टा सा भवति तत्र बाधितम् । जाग्रदवस्थयाऽज्ञानतिरस्कारात्सुप्तविज्ञानात्मकनिद्राऽसंभवादत आह **निद्रे**ति । निद्राया **निमित्तकारणं यच्चक्षुर्निमीलनादि** तत्पूर्ववृत्तीति **तद्द्वारा** । अन्यस्याभावादे**वकारः** । तथा च शतपत्रवेधवत् प्रागेव स्वकारणगतं कर्तृत्वं निद्रायां भवतीति भावः । भगव**द्भिक्षुमते** स्वीयमतसमाप्ताविति: । **विरोध** इति । अप्रवृत्तिपदमनुक्त्वा विरोधपदग्रहणं ब्रह्मणि शास्त्रप्रवृत्तिरस्तीति । जीवीयकर्तृत्वे शास्त्राप्रवृत्तिरित्युक्तौ गौरवमिति । समागमशशविषाणायितत्वयोर्विरोधः सहानवस्थानलक्षणो दत्तः । **ब्रह्मणी**त्यादिभाष्यमव-

व्यपदेशाच्च क्रियायां न चेन्निर्देशविपर्ययः ॥ ३६ ॥

व्यपदेशः, 'विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि च' इति । अत्र सांख्ये बुद्ध्यादीनामेव कर्तृत्वं न जीवस्येति क्रियायां यागादिकर्मसु, न तु भोगे । जीवस्य

भाष्यप्रकाशः ।

तदा तस्य समागमनासंभवात् कथं तत्प्रतिजानीयादतस्तद्विरोधः किंच । यदि तत् तथा स्याद् ब्रह्मण्यपि न स्यात् । तथा सतीक्षत्यादिसूत्रेषु न तत्प्रतिपादयेत्, अतो ब्रह्मणि सिद्धत्वादपि न कर्तृत्वस्य तथात्वम् । नच ब्रह्मणि सिद्धत्वेऽपि जीवे शुक्तिरजतवदसदेवोत्पद्यत इति युक्तम्, असत्कार्यवादस्य निराकृतत्वात् । यत्तु ब्रह्मणो निर्गुणत्वात् कार्यस्याविद्यकत्वेन कर्तृत्वमपि तथैवेति, तदयुक्तम्, सर्वविप्लावकत्वात् । सर्वविप्लवस्तु माध्यमिकवच्छून्यवाद एव पर्यवस्यतीति सर्वप्रमाणविरुद्धत्वात् तद्वदेवोपेक्ष्यः । तस्मात् तृतीयोऽपि नेत्यर्थः ॥ ३५ ॥

व्यपदेशाच्च क्रियायां न चेन्निर्देशविपर्ययः ॥ ३६ ॥ एवं श्रुतार्थापत्त्या जीवस्य कर्तृत्वं साधयित्वा साक्षाच्छ्रुत्या साधयतीत्याशयेन व्याकुर्वन्ति **व्यपदेश** इत्यादि । व्यपदेशः प्रथमाविभक्त्या कर्तृत्वेन निर्देशः, सोऽस्यां श्रुतौ जीवे वर्तते । अतः कल्पनां विना साक्षाच्छ्रुत्यैव स कर्तेत्यर्थः । सूत्रशेषं व्याकुर्वन्ति **अत्र सांख्ये** इत्यादि । अत्र अस्मामपि

रश्मिः ।

तारयन्ति स्म किंचेति । तदिति कर्तृत्वं शशविषाणायितं **स्यात्** । **ईक्षतीति** । आदिना 'आनन्दमयोऽभ्यासात्' । तदिति कर्तृत्वम् । **तथेति** शशविषाणायितत्वम् । तु अम् । पक्षव्यावृत्तिः प्रसिद्धिश्चार्थः । **असदित्यादिभाष्यं** विवरिष्यन्तः साध्यमाहुः **न चेति** । **निरेति** तर्कपादे 'नाभाव उपलब्धेः'इत्यधिकरणे **निराकृतत्वात्** । **सर्वविप्लव** इति भाष्यं विवरीतुमाहुः **यत्त्विति** । एवकारस्तन्मतयुक्त्या । **सर्वेति** सर्वेषां सन्मार्गाणां **विप्लावकत्वात्** । तदुक्तं निबन्धे शास्त्रार्थे 'महेन्द्रजालवत्सर्वं कदाचिन्माययासृजत् । तदा ज्ञानादयः सर्वे वार्तामात्रं न वस्तुतः' इति । **एवेति** गुणत्रयविवरणाध्याये 'मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्ध उच्यते' इति वाक्यादेवकारः । **सर्वप्रमाणेति** 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'तदात्मानꣳस्वयमकुरुत' 'सच्चिदानन्दमिदं सर्वम्' इत्यादीनि प्रमाणानि । 'असदेवेदमग्र आसीत्' 'सत इदमुत्थितं सदिति चेन्न नु तर्कहृतम्' इत्यादिवाक्यानि तु वैराग्यार्थं जगतो मिथ्यात्वप्रतिपादकानि पूर्वं व्याख्यातानि चेति **सर्वप्रमाणविरुद्धत्वादिति** ॥ ३५ ॥

व्यपदेशाच्च क्रियायां न चेन्निर्देशविपर्ययः ॥ ३६ ॥ **कर्तृत्वमिति** उपादानकर्तृत्वं निराकारस्य **साधयित्वा** । **श्रुत्येति** **विज्ञानं** जीवो **यज्ञं तनुते** विस्तारयति **कर्माणि** च लौकिकानि 'कायेन वाचा मनसा' इत्यादिपद्योक्तानि विस्तारयति । शंकरभाष्ये मनोमयो वेदात्मोक्तः । वेदार्थविषया बुद्धिर्निश्चयात्मिका विज्ञानं तन्मयः । विज्ञानैः प्रमाणस्वरूपैर्निर्वर्तित आत्मा विज्ञानपूर्वको विज्ञानादिस्तायत इति । स मायावादः । अस्माकं तु मतं मनोमयो वेदात्मोक्त इति समानम् । तदनु नानाविधयागादिसाधनवतः फलं विज्ञानमय इति माध्वर्णिकसूत्रभाष्योक्तप्रकारेण । तदनु वेदानन्तरं नानाविधयागादिसाधनम् । तद्वतश्चित्तशुद्धिद्वारा विज्ञानमयः विविधज्ञानवज्ज्ञानम् । ततो विज्ञानरूपेण फलेन प्रवृत्तिद्वारा

कर्तृत्वं न चेत् न । तथा सति निर्देशस्य विपर्ययो भवेत् । विज्ञानेन विज्ञानमादायेति श्रुत्यनुरोधात् । प्रकृतेऽपि तृतीयान्तता आपद्येत ।

अथ स्वव्यापारे कर्तृत्वं, तथापि पूर्वनिर्देशस्य विज्ञानमयस्य विपर्ययः स्याद् विकारित्वं स्यात् तच्चासंगतम् । त्र्यच्त्वात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

श्रुतौ विज्ञानपदेन बुद्धिरेवोच्यते । सांख्ये बुद्ध्यादीनां प्राकृतानामेव कर्तृत्वं व्यवस्थापितं न जीवस्य इति हेतोः क्रियायां यागादिषु वैदिकेषु लौकिकेषु च कर्मसु जीवस्य न कर्तृत्वम्, क्रियापदाद् भोगे कर्तृत्वं न पूर्वपक्षिणा प्रतिषिध्यते । तथाच क्रियायामेव जीवस्य कर्तृत्वं नेति चेन्न । इदं वक्ष्यमाणहेतुना सेत्स्यमानकथनम् । तथा सति विज्ञानपदेन बुद्धेरेव व्यपदेशेऽङ्गीकृते सति तथेत्यर्थः । ननु कारकमात्रस्य स्वस्वव्यापारे स्वातन्त्र्यात् स्थाली पचति काष्ठानि पचन्तीत्यादिवद् अत्रापि कर्तृत्वं शक्यवचनमतो निर्देशविपर्ययो न भविष्यतीत्याशङ्कामनूद्य तत्रापि दूषणं योजयन्ति अथेत्यादि । यद्येवं निर्देशः समर्थ्यते तथापि अयं श्लोको विज्ञानमयमुपक्रम्य पठित इत्येतदैकार्थ्यात् तत्रापि विज्ञानपदस्य बुद्धिवाचकत्वे विज्ञानमयपदस्य बुद्धिविकारवाचकत्वं स्यात् । तच्चासंगतम् । त्र्यच्त्वात् । 'द्व्यचश्छन्दसी'ति विधेर्बह्वज्व्यावृत्त्यर्थत्वात् । अतस्तत्रेवात्रापि तदनुरोधाज्जीववाचकत्वमेवाङ्गीकार्यम् । यद्यपि

रश्मिः ।

यज्ञस्तायत इति । एवेति 'बुद्धिर्विज्ञानरूपिणी' इति वाक्यदर्शनादेवकारः । **प्राकृतानामिति ।** षष्ठाध्यायसांख्यप्रवचनसूत्रे 'प्रकृतेराद्योपादानता(म)न्येषां कार्यत्वश्रुतेः' इति सूत्रात् । शाश्वत्वादेवकारः । **कर्तृत्वमिति ।** सांख्यप्रवचनसूत्रे कार्याध्याये 'अध्यवसायो बुद्धिः' 'तत्कार्यं धर्मादिः' इति सूत्राभ्यां बुद्धेः कर्तृत्वम् । **न जीवस्येति** षष्ठाध्याये 'अहंकारः कर्ता न पुरुषः' इति सूत्रात् । **भोग** इति । पञ्चमाध्याये 'भोक्तुरधिष्ठानाद्भोगायतननिर्माणमन्यथा पूतिभावप्रसक्तेः' । 'भृत्यैव भूत्वा वा स्वाम्यधिष्ठितिर्नैकान्तात्' इति सूत्रात् । **इदमिति** पूर्वोक्तं निषेधान्तम् । सिद्धवन्निर्देशभ्रमाभावायात्रैव साध्यमिदमित्याहुः **वक्ष्यमाणेति । तथा सतीति**भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तथेति** । क्रियायां यागादिकर्मसु जीवस्याकर्तृत्वे प्रकारे सति पारिशेष्याद्बुद्धित्वे प्रकारे सति यत्फलितं तदाहुः **विज्ञानेत्यादिना** । तथेति **निर्देशस्य विपर्ययो भवेत्** । प्रकृते विज्ञानं यज्ञं तनुते' इत्यत्रापि बुद्धिरूपविज्ञानस्य विवक्षितत्वे तस्य करणत्वेन 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' इति सूत्रेण तृतीयापद्येत । कुतः विज्ञानेन विज्ञानमादायेति श्रुत्यनुरोधादित्यर्थः । **स्वव्यापार** इति विवक्षिते व्यापारे । **स्वातन्त्र्यादिति** कर्तृप्रत्ययसमभिव्याहारे प्रधानीभूतधात्वर्थाश्रयत्वं स्वातन्त्र्यं तस्मादित्यर्थः । ननु स्थाल्या अधिकरणस्य कर्तृत्वविवक्षायां दृष्टान्तत्वं न करणनिष्ठव्यापारविवक्षणे दृष्टान्तत्वमत आहुः **काष्ठानीति** । **अत्रापीति** 'विज्ञानं यज्ञं तनुते' इत्यत्रापि करणस्य कर्तृत्वविवक्षया तच्छक्यवचनमतो न तृतीयापि तु 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' इति तथा । **अयमिति** विज्ञानं यज्ञं तनुत इति **श्लोकः** । 'तस्माद्वा एतस्मादात्मनो मनोमयादन्योन्तर आत्मा विज्ञानमयः' इति विज्ञानमयमुप-

१. पूर्वसूत्रादाचार्या आहुः ।

विज्ञानमादायेत्यत्र विपर्यय एव एकस्य प्रदेशभेदेनार्थभेदोऽपि । भगवति सर्वे शब्दाः स्वभावत एव प्रवर्तन्ते । औपचारिकत्वज्ञापकाभावात् । यज्ञो यजमान इति श्रद्धादीनां शिरस्त्वादिः । तस्माद् विज्ञानमयो जीव एव ।

भाष्यप्रकाशः ।

विज्ञानमादायेत्यत्र विपर्यय एव वर्तत इति तस्य न दोषत्वमिति वक्तुं शक्यते, तथापि एकस्य विज्ञानस्य जीवधर्मतया प्राणधर्मतया च **प्रदेशभेदेनार्थभेदो**पि तत्राभिप्रेत इति तत्र न विपर्ययस्य दोषत्वम् । अत्र तूभयत्राप्येक एव विज्ञानपदार्थः परामृश्यत इत्यत्र तु विपर्ययोऽदोष एवेत्यर्थः । ननु विज्ञानपदस्य जीववाचकत्वे 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इत्यत्र विज्ञानपदस्य ब्रह्मण्यौपचारिकत्वं स्यादतो नेदं साधीय इत्यत आहुः **भगवती**त्यादि । **सर्वे शब्दाः** प्रणवविकृतित्वात्प्रणववाच्ये ब्रह्मणि **स्वभावत एव प्रवर्तन्ते** । 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' इति श्रुतेश्च । अतस्तत्रौपचारिकत्वज्ञापकाभावान्न तथेत्यदोष इत्यर्थः । नन्विदं विज्ञानमयपदस्य विकारार्थत्वानुपपत्त्यनुरोधेनोक्तम् । सा तु नास्ति । छन्दसि सर्वेषां विधीनां वैकल्पिकत्वाभ्युपगमात्, नचात्र विकारप्रत्ययत्वे मानाभावः । तत्र श्रद्धादीनां मनोवागादिधर्माणां शिरआदित्वकल्पनाया एव मानत्वादित्यत आहुः **यज्ञ** इत्यादि । सत्यमस्ति कल्पना, परंतु न तस्या

रश्मिः ।

क्रम्य । **बह्व**जिति । 'द्व्यचश्छन्दसि' इत्यस्य सूत्रस्य छन्दसि चेद्विकारे मयड्भवेद् द्व्यच एवेति सूत्रार्थात् । **जीवे**ति विज्ञानपदस्य । भोक्त्रापत्तिसूत्रे 'अणुः पन्था विततः पुराणः' इति बृहदारण्यकादेवकारः । **विज्ञानमादाये**ति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **यद्य**पीति । **विपर्यय** इति द्वितीयाश्रुत्या कर्तृत्वविपर्ययः । 'विज्ञानं देवाः सर्वे ब्रह्मज्येष्ठमुपासते' । 'विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति' इति श्रुतिभ्यामेवकारः । **तस्ये**ति विपर्ययस्य । **जीवे**ति जीवतीति जीवः । जीवयतीति जीवः परमात्मा तस्य **धर्मतया** । **प्राणे**ति प्राणानामिन्द्रियाणां **धर्मतया** च । प्रदेशभेदस्तु हृदि जीवो हृदि प्राणः प्रतिष्ठितः ईश्वरश्च । तत्र प्राणो वेदशास्त्रीयः । ब्रह्मजीवौ समानवृक्षे भवतः । 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति' तस्य चैतन्यगुणविशिष्टो जीव इति हृद्यपि । प्राणास्त्विन्द्रियाण्यपि तेषां प्रदेशाः नासाग्रजिह्वाग्रादय इत्येवं सः । अथवेति भाष्यविवरणम् । **अर्थभेद** इति तेन । अर्थभेदस्तु प्राणादिसंज्ञया । **तत्रे**ति एकविज्ञाने । **तत्रे**ति उक्तश्रुतिषु । कर्तृत्व**विपर्ययस्य दोषत्वं** तृतीयान्ततापत्तिः । **अत्रे**ति विज्ञानेन विज्ञानमादायेत्यत्र । **एकः** ज्ञानजनकशक्तिरूपः । टीकाग्रन्थादेवकारः । **अत्र त्वि**ति विज्ञानेनेति श्रुतौ तु । तृतीयान्तकर्तृत्वविपर्ययोऽ**दोष एव** । अदोष इति छेदः । टीकाग्रन्थादेवकारः । **सर्व** इति सर्वान्तर्गतत्वं 'सत्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इति श्रुतेः पद्मपुराणेन श्रीयमुनाजित्परत्वात् । **स्वभावत** इति अभिधातात्पर्याभ्याम् । अर्थमात्रात्मके कृष्णे तात्पर्यवृत्तिः । मण्डूकश्रुतेरेवकारः । **आमनन्ती**ति म्ना अभ्यासे अभ्यस्यन्तीत्यर्थः । पुनः पुनः कथनमभ्यासः । **अदोष** इति औपचारिकत्वं दोषो न । **अभ्युपे**ति । 'विभाषा छन्दसि' इति सूत्र इति शेषः । **तत्रे**ति विज्ञानमये । **मन** इति श्रद्धा मनोधर्मः । 'कामः संकल्पः' इति बृहदारण्यकात् । ऋतसत्ये **वाग्धर्मौ** । तत्प्रतिपाद्यत्वात् । योग आत्मा धर्मोऽपि । महर्लोकः स्वर्लोकधर्मस्तत्प्रतिष्ठितत्वादिति । **कल्पने**ति **कल्पना** विकार इति भावः । प्रसिद्धेरेवकारः ।

जडस्य च स्वातन्त्र्याभावान्न कर्तृत्वम् ॥ ३६ ॥

भाष्यप्रकाशः।

विकारप्रत्यये मानत्वम्। श्लोके तस्य यज्ञकर्तृताया वक्तव्यत्वात्। श्रुत्यन्तरे च यजमानभागप्राशनप्रशंसायाम् 'एतावान् वै यज्ञो यावान् यजमानभागो यज्ञो यजमानो यद्यजमानभागं प्राश्नाति यज्ञ एव यज्ञं प्रतिष्ठापयति' इति यज्ञस्वामित्वेन यजमानस्य यज्ञतायाः कल्पनया उपदिष्टत्वाद्यजमानधर्माणां श्रद्धादीनां शिरस्त्वादिः यज्ञशिरःप्रभृतिरूपत्वं कल्पनयोच्यते। पञ्चाग्निविद्यायां श्रद्धाहोमकथनात् तस्या यज्ञाङ्गतया तद्धर्मत्वम्, ऋतसत्ये प्रमीयमाणानुष्ठीयमानौ धर्मौ। योगश्चात्मचिन्तनसाधनत्वाद्योगशिखाद्युपनिषत्सु विहितत्वाच्च धर्म एव। महर्लोकोऽप्याधारतया योगयज्ञाङ्गम्। इदं च तृतीयाध्यायेन संगतम्। अत इयं कल्पना यज्ञत्वार्थेति नास्या विकारप्रत्ययसाधकत्वमित्यर्थः। सिद्धमाहुः तस्मादित्यादि। ननु भवत्वेवं तथापि यज्ञादिकर्तृत्वं शरीरविशिष्टस्यैवेति बुद्धावेव कर्तृतायाः पर्यवसानमित्यत आहुः जडस्येत्यादि।

रश्मिः।

श्लोक इति 'विज्ञानं यज्ञं तनुते कर्माणि तनुतेऽपि च। विज्ञानं देवाः सर्वे ब्रह्मज्येष्ठमुपासते' इति श्लोके। **तस्य** विज्ञानमयस्य। **श्रुत्यन्तर** इति। श्रुतिस्तु संहिताप्रथमाष्टके सप्तमप्रश्नस्था। **एतावानिति**। स्वचिक्रीडिषया यजमानभक्षणकाल एतावानाविर्भावितः विद्वन्मण्डनोक्तदिशा सर्वशक्तित्वाद्ब्रह्मणः। श्रुतित्वाद्वा इति। **यज्ञो यजमानो** 'यो यच्छ्रद्धः स एव सः' इति स्मृतेः सामानाधिकरण्यम्। **प्राश्नातीति**। यदेव विद्ययेति श्रुतेर्ज्ञानपूर्वकमशनं प्राशनम्। **यज्ञ** इति सप्तम्यन्तमपि। **कल्पनयेति** स्मृत्याज्ञारूपसामर्थ्येन। **यज्ञेति** यज्ञस्य शिरःप्रभृतयस्तद्रूपत्वम्। किमेतावतेत्यतोऽत्रैकरूपतया यज्ञरूपं विज्ञानं विकारव्यतिरिक्तमित्याहुः **पञ्चाग्नीति**। इयं रंहत्यधिकरणस्था। **तस्या** इति 'यथा पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति' इति श्रुतेः। अम्रूपश्रद्धाया यज्ञस्य कर्तृरूपाङ्गतया तद्धर्मत्वम्। 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' इति धर्मलक्षणात्कर्तृधर्मत्वम्। **धर्माविति** अनुष्ठीयमाने मन्त्रकर्मणी। **आत्मेति**। 'अयं हि परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्' इति स्मृतेः। समाधौ ह्यात्मदर्शनसाधनत्वं तस्मात्। यद्वा। आत्मचिन्तनं तत्साधनं चिन्तनसाधनं तस्मात्। पञ्चमस्कन्धे चतुर्थाध्याये। 'द्रव्यदेशकालवयःश्रद्धर्त्विग्विविधोद्देशोपचितैः सर्वैरपि क्रतुभिर्यथोपदेशं शतकृत्व इयाज' इत्यत्र द्रव्यदेशकालाः, वयो युवा, यजमानस्येति कर्तोक्तः। विविधोद्देशपदेन परमधर्मसाधनत्वाद्योगो धर्म इति प्रथमपक्षे लक्षणापत्त्याऽरुच्या हेत्वन्तरमाहुः **योगशिखेति**। **धर्म एवेति**। **धर्म** इति योगयज्ञे द्रव्यस्थानीयत्वेन धर्म एव चोदनालक्षणाक्रान्तत्वेनैवकारः। **योगयज्ञेति**। योगो यज्ञ इति कर्मधारयः। तस्याङ्गमिति षष्ठीतत्पुरुषः। देशरूपाङ्गम्। **इदमिति** श्रद्धादीनां शिरस्त्वादि। **तृतीयेति** तृतीयान्तं पदम्। **कल्पनेति** स्मृतिसामर्थ्येन शिरस्त्वादिकल्पना श्रद्धादीनाम्। **विकारेति**। तथा चोक्तं केदारेभ्य इत्यत्र **सुबोधिन्याम्**। ज्ञानशक्तिक्रियाशक्तियुक्तो हि भगवान्। ज्ञानक्रिययोर्गतयोरपगच्छतीव। प्राकट्यं तु विवर्तत एवेत्यलम्। अविकृतत्वमुपादानस्य। समन्वयाधिकरण उपपादनात्। **तस्मादित्यादीति** एवकारेण भाष्ये बुद्धिव्यवच्छेदः। **बुद्धाविति** बुद्धेर्गुणेनाङ्गुष्ठमात्रत्वात्। सांख्यप्रसिद्ध्यैवकारः। **पर्यवेति** तत्रापि श्रुतिपथमनुसरतो 'बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि'अङ्गुष्ठमात्रो दृष्ट इति 'अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः अङ्गुष्ठं च समाश्रितः'

उपलब्धिवदनियमः ॥ ३७ ॥

ननु जीवस्य कर्तृत्वे हिताकरणादिदोषप्रसक्तिरिति चेन् न। उपलब्धिवदनियमः। यथा चक्षुषेष्टमनिष्टं चोपलभते, एवमिन्द्रियैः कर्म कुर्वन्निष्टमनिष्टं वा प्राप्नोति ॥ ३७ ॥

भाष्यप्रकाशः।

तथाच कर्तृलक्षणस्य बुद्धावघटमानत्वान्न बुद्धेः कर्तृत्वं किंतु जीवस्यैवेत्यर्थः ॥ ३६ ॥

उपलब्धिवदनियमः ॥ ३७ ॥ सूत्रमवतारयन्ति नन्वित्यादि। जीवस्य कर्तृत्वे स्वातन्त्र्यं प्राप्तम्। स्वतन्त्रत्वे च हितमेव स्वस्य कुर्यान्न त्वहितादि, दृश्यते तु तदपि, अतो हिताकरणादिदोषप्रसक्तिर्जीवकर्तृत्वबाधिकेति बुद्धेरेव कर्तृत्वमित्यर्थः। समाधिं व्याकुर्वन्ति नेत्यादि। सांख्यमते भोक्तृत्वस्याङ्गीकाराद् भोगस्य च सुखदुःखसाक्षात्कारात्मकत्वात् तत्र स्वातन्त्र्यं त्वस्य वक्तव्यम्, तथा सति उपलब्धिरूपे कार्ये तत्करणभूतानि चक्षुरादीनि व्यापारयन् यथा चक्षुषा इष्टमनिष्टं चोपलभते, एवं क्रियारूपेऽपि कार्ये तत्करणानामिन्द्रियाणां व्यापारणादिन्द्रियैः कर्म कुर्वन्निष्टमनिष्टं वा प्राप्नोतीति समः समाधिरित्यर्थः।

रामानुजाचार्यास्तु—यथा, नित्योपलब्धिसूत्रे आत्मनो विभुत्व उपलब्ध्यनियमो दोष उक्तस्तथात्र आत्मनोऽकर्तृत्वे प्रकृतेश्च कर्तृत्वे दोष उच्यते। यदि प्रकृतिरेव कर्त्री स्यान्नात्मा, तदा तस्याः सर्वपुरुषसाधारणत्वात् सर्वाणि कर्माणि सर्वेषां भोगाय स्युर्नैव वा, न तु कस्यचित्। नच य आत्मा यत्सन्निहितस्तस्य तद्भोग इति सन्निधानाद् व्यवस्था।

रश्मिः।

इति। 'अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात्' इति चाङ्गुष्ठमात्रे कर्तृत्वमावश्यकम्। शरीरे कर्तृत्वं यद्यप्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां वर्तते तथापि गौरवानेकप्रागभावध्वंसादिकल्पनापेक्षयैकत्राङ्गुष्ठमात्रे पर्यवसानं वक्तव्यम्। न च जीवे तस्याणुत्वेनानुद्भूतकर्तृत्वाङ्गीकारापत्तेः। अतः **पर्यवसान**पदम्। **कर्त्रि**ति 'स्वतन्त्रः कर्ता' इति कर्तृलक्षणं स्वातन्त्र्यम्। **बुद्धा**विति। अहंकारकार्यत्वेन सात्त्विकबुद्धित्वेन च जडत्वम्। बुद्धिर्ज्ञानमिति नैयायिकाः। **इत्यर्थ** इति। यद्यपि काष्ठानि पचन्तीति बुद्धावपि कर्तृलक्षणं जाघटीति बुद्ध्यायं पदार्थाञ्जानातीति प्रत्ययात्। तथापि गौणमुख्यन्यायेन प्रसिद्धप्रयोगापेक्षोयं भाष्यप्रकाशः। तथा च नियतयत्नार्थकत्वे प्रत्ययस्य शरीराङ्गुष्ठमात्रयोस्तदनाधारत्वेन लक्षणाप्रसङ्गः। अत एव नानुद्भूतकर्तृत्वं दोषो नापि गौरवादिर्दोष इति ज्ञेयम् ॥ ३६ ॥

उपलब्धिवदनियमः ॥ ३७ ॥ **हितेति** आदिशब्देन कारणे हिताकरणापत्तिः। **भोक्तृत्वस्ये**ति पूर्वसूत्र उक्तम्। **चक्षुरि**ति चक्षुषोर्ज्ञानेन्द्रियत्वेन कारणे लौकिके एव हिताकरणाङ्गीकारेण न कारणे हिताकरणापत्तिरित्युक्तम्। **इष्टमित्यादि इष्टं** भगवल्लिङ्गदर्शनादि। **अनिष्ट**मुद्यदादित्यदर्शनादि 'नेक्षेतोद्यन्तमादित्यम्' इति श्रुतेः। ज्ञानेन्द्रियाण्युक्त्वा कर्मेन्द्रियाण्याहुः **एवमिति**। **कर्मे**ति सामान्यतः **कर्म कुर्वन्**। **सम** इति वैषम्यनैर्घृण्यसूत्रसमाधिना **समः**। 'घोः किः क्यन्तं स्त्रियाम्' इति सूत्राभ्यां समेत्यपेक्षितम्। तथापि स्मार्तोयं प्रयोगः। तथा **च स्मृतिः** 'समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम्' इति। 'आङो नाऽस्त्रियाम्' इति ना। **कस्यचिदि**ति

शक्तिविपर्ययात् ॥ ३८ ॥

नन्वीश्वरवत् स्वार्थमन्यथा न कुर्यादिति चेच्छक्तिविपर्ययात्। तथा सामर्थ्याभावात्। इत एव दैवादहितमपि करोति ॥ ३८ ॥

समाध्यभावाच्च ॥ ३९ ॥

जीवस्य क्रियाज्ञानशक्ती योगेन सिध्यतः। समाध्यभावाच्छक्त्यभाव इत्यर्थः। चकारात् तादृशमन्त्राभावोऽपि।

भाष्यप्रकाशः।

आत्मनां विभुत्वाभ्युपगमेन सर्वेषां सन्निधानस्याविशिष्टत्वात्। अत एव नान्तःकरणादिनापि व्यवस्थासिद्धिरित्याहुः। तदपि युक्तम् ॥ ३७ ॥

शक्तिविपर्ययात् ॥ ३८ ॥ सूत्रमवतारयन्ति **नन्वित्यादि**। अयमर्थः। चक्षुषा अनिष्टोपलब्धिर्या जायते सा न स्वप्रयत्नसंपाद्या। प्रमाणवस्तुपरतन्त्रत्वेन दैवाज्जायमानत्वात्, कर्म तु न तथा, स्वयत्ननिष्पाद्यत्वात्, अतः कर्मजनितेष्टानिष्ट उपलब्धिदृष्टान्तो न युक्तः। अतो यदि जीवः स्वतः कर्ता स्यात् तदा स्वार्थमनिष्टं न कुर्यात्। यथा ईश्वरः स्वार्थमनिष्टं न करोति तद्वत्। दृश्यते च तत्। अतो न जीवः कर्तेति। अत्र समाधिं व्याकुर्वन्ति **तथेत्यादि**। विपर्ययोऽभावः। तथाच शक्त्यभावादनिष्टकरणम्। ईश्वरे तु शक्तिरस्तीति न स दृष्टान्तः, अतोऽनिष्टकरणं न साहजिककर्तृत्वबाधकमित्यर्थः ॥ ३८ ॥

समाध्यभावाच्च ॥ ३९ ॥ शक्त्यभाव एव कुत इत्याकाङ्क्षायामेतत्सूत्रं प्रवृत्त इत्याशयेन विवृण्वन्ति **जीवस्येत्यादि**। स्पष्टम्। **तादृशमन्त्राभाव** इति सामर्थ्यसाधक-

रश्मिः।

भोगाय स्युरित्यन्वयः। **अत एवेति** आत्मनां विभुत्वेत्याद्युक्तहेतोरेव। हेत्वन्तरव्यवच्छेदायैवकारः। **नान्तरिति अन्तःकरणेन** विषयोपसेवनं क्रियते न विषयव्यवस्था क्रियते। **आदिशब्देन** धर्मः। तेनापि विषया उपस्थाप्यन्ते न व्यवस्थाप्यन्ते इति तथा। **तदपीति** सूत्राणां सारवद्विश्वतोमुखत्वात्कर्तृत्वसाधनप्रकरणे प्रकृतिकर्तृत्वखण्डनं प्राप्नोतीति। **अपि**र्गर्हायाम्। अपि स्तुयाद्वृषलमितिवत् ॥ ३७ ॥

शक्तिविपर्ययात् ॥ ३८ ॥ **स्वेति** स्वं जीवः। **प्रमाणेति**। **वस्तु** विषयः। **दैवादिति** अधर्मात्, प्रमाणवस्तूपस्थापकात्। **तथेति** प्रमाणवस्तूपस्थापकत्वेन प्रकारेण। **स्वयत्नेति** जनिका क्रिया यत्नः। आत्मनिष्ठेति नैयायिकाः। अधर्मोऽदृष्टमपूर्वम्, कर्म तु तज्जनकमिति भेदः। **न युक्त** इति कार्यकारणयोर्दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्निर्विष्टत्वात्। **न कुर्यादिति**। बलवदनिष्टाननुबन्धीष्टसाधनताज्ञानस्य सहकारिप्रवर्तकस्याभावात्। **न करोतीति** 'कृष्णायाक्लिष्टकारिणे' इति श्रुतेः। **शक्त्यभावादिति**। शक्तिः सामर्थ्यं ज्ञानक्रियाशक्त्यभावात्। **न स दृष्टान्त** इति स ईश्वरो न दृष्टान्तः। इत्यर्थ इति ज्ञानक्रिययोः सामर्थ्यस्याज्ञानं कारणमित्यर्थः ॥ ३८ ॥

समाध्यभावाच्च ॥ ३९ ॥ **स्पष्टमिति**। 'जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः' इति कैवल्यपादस्थयोगसूत्रात्समाधिरूपयोगजसिद्धी शक्ती इत्यर्थः। एवं **स्पष्टमि**त्यर्थः। **सामर्थ्येति**

नच सहजकर्तृत्वे अनिर्मोक्षः । पराधीनकर्तृत्व एवैतत् । ब्रह्मवत् । सांख्यस्य तन्मतानुसारिणो वान्यस्य भ्रम एव । कर्तृत्वे न मुक्तिरिति ।

भाष्यप्रकाशः ।

मन्त्राभावः । यथा 'भूमिर्भूम्ना द्यौर्वरिणेत्याहाशिषमेवैतामास्ते' 'सर्पा वै जीर्यन्तोऽमन्यन्त स एतं कसर्णीरः काद्रवेयो मन्त्रमपश्यत्ततो वै ते जीर्णास्तनूरपाघ्नत' इति । अत्र सांख्यास्तदनुसारिणो मायावादिप्रभृतयश्च जीवस्य बुद्धिसंबन्धादौपाधिकं कर्तृत्वमङ्गीकुर्वन्तः स्वाभाविके जीवस्य कर्तृत्वे यथा वह्नेरौष्ण्यान्न निवृत्तिस्तथा जीवस्य कर्तृत्वान्न निवृत्तिः स्यात् । तदनिवृत्तौ च मोक्षोऽपि न स्यात् कर्तृत्वस्य दुःखरूपत्वादित्याहुः तद् दूषयन्ति **नचेत्यादि । पराधीनकर्तृत्व एवैतदिति** । आध्यासिक एव कर्तृत्वे अनिर्मोक्षस्तस्यैव दुःखरूपत्वात् । **ब्रह्मवदिति**, वैधर्म्ये दृष्टान्तः । तथाच पराधीनकर्तृत्ववादिनस्तवैवायं दोषो, नास्माकमित्यर्थः । ननु शुद्धबुद्धमुक्तात्मनः प्रतिपादनात् तादृशे आत्मनि मोक्षसिद्धिरभिमता । तादृगात्मप्रतिपादनं च न स्वाभाविके कर्तृत्वे अवकल्पते, अत उपाधिधर्माध्यासेनैवात्मनः कर्तृत्वं न स्वाभाविकमिति वदतः प्रत्याहुः **सांख्यस्येत्यादि । कर्तृत्वे नेति** । अत्र नेति भिन्नं पदम् । भ्रमत्वे

रश्मिः ।

पूर्वसूत्रे शक्तिरुक्ता तामनुवर्त्यैकसंबन्धिज्ञानमपरसंबन्धिस्मारकमिति न्यायेन साधकमन्त्रोपस्थितिरभावेऽन्वयः । मन्त्रेण सामर्थ्ये दृष्टान्तमाहुर्यथेति । इयं श्रुतिः पञ्चमप्रश्ने चतुर्थानुवाके प्रथमाष्टकेऽस्ति । माधवाचार्यभाष्यानुसरणे तु पञ्चमप्रपाठके । श्रुत्यर्थस्तु **भूमा** परमात्मा **वरिणा** मेघेन यः कश्चिदाह स मन्त्र **आशिषमेवैतामादत्ते** आसमन्ताद्ददाति । उदाहरणमाह **सर्पे**त्यादिना । जॄ वयोहानौ । **अमन्यन्त** ज्ञातवन्तः । **एतम्** । **कसर्णीर** इति गरुडनाम । **काद्रवेयः** कद्रोरपत्यम् । मन्त्रदर्शनं जायते स ऋषिदेवताकान्मन्त्रान् **वै** निश्चयेन ते **जीर्णाः** सन्तोऽपि तनूर्नागकञ्चुकी**रपाघ्नत** अपत्यक्तवन्त इति । **माये**ति मायावादिनः शंकराचार्याः । भेदाभेदवादिनो भास्कराचार्याः । अविभागाद्वैतवादिनो विज्ञानेन्द्रभिक्षवः । प्रभृतिपदार्थौ **आहुरि**ति **यथे**ति वक्ष्यमाणसूत्र आहुः **न चेत्यादी**ति । **सहजकर्तृत्वं** व्युच्चरणकर्तृत्वम्, यथाग्नेरिति श्रुतेः तस्मिन् । **अनिर्मोक्ष** इति स्वरूपेणावस्थितिर्मोक्षः । अनात्मनो देहादीनभिमन्यते सोऽभिमान आत्मनो बन्धस्तन्निवृत्तिर्मोक्ष इति श्रुतेः । नाहं किंचित्करोमीति स्मृतेश्च । **एतदि**ति भाष्येव्ययमित्याशयः । यद्वा । समीपतरवर्तिबन्धककर्तृत्वं भाष्येर्थ एतदित्यस्य । **एवे**ति स्वाभाविककर्तृत्वव्यवच्छेदः । **दुःखे**ति द्रव्याद्वैतविरुद्धमविदुषां कर्तृत्वं बन्धकत्वाद्विदुषां दुःखरूपं तत्त्वात् । सहजं तु सुखरूपम्, ब्रह्मधर्मत्वात् । **ब्रह्मवदि**ति । षष्ठ्यन्ताद्वतिः । **वैधर्म्य** इति ब्रह्मणः पराधीनकर्तृत्वाभावादनिर्मोक्षाभाव इवेति जीव**विरुद्धो धर्मः** । स्वार्थे ष्यञ् । स एव **वैधर्म्यं** तत्र **दृष्टान्तः** । यद्वा जीवद्वारा ब्रह्मण आध्यासिककर्तृत्वम् । चतुष्पदो ब्रह्मणो विश्वस्य पादत्वात् । पादे मे सुखं पादे मे वेदनेति प्रसिद्धेः । **अयमि**ति अनिर्मोक्षः । **अभी**ति ननु ज्ञानान्मुक्तिप्रतिपादनादिति चेन्न । प्रतिपादनेन शाब्दज्ञानस्य विवक्षणात् । वेदान्तविज्ञानेति श्रुतेः । **कर्तृत्व** इति शरीरवत्त्वसमानाधिकरणे अवेति । शुद्धत्वादिविरुद्धत्वात् । **अत** इति कर्तृत्वस्य उक्तशुद्धत्वादिविरुद्धशरीरवत्त्वापादकत्वात् । **सांख्यस्येत्यादी**ति सांख्यमस्या-

नपुंसक एवमुच्येतेति बाह्यवत्। निरिन्द्रियस्यैव समाधिरित्यपि। करणत्वेन बुद्धिं

भाष्यप्रकाशः।

हेतुः **नपुंसक** इत्यादि। नपुंसक इति स्वातन्त्र्यादिसर्वपुरुषधर्मशून्यः इति बाह्यवदिति, अयमभ्युपगमो बाह्यानामिव प्रमाणरहितः। तथाच प्रमाणराहित्यादस्य भ्रमत्वमित्यर्थः। अत्र हेतुस्तु मुक्तानामपि शुकसनत्कुमारादीनामुपदेशकर्तृत्वदर्शनम्। भूमविद्यायां 'तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राणः' इत्यारभ्य, 'आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेदं सर्वम्' इत्यन्तेन पश्यस्य संकल्पादीनामात्महेतुकत्वश्रावणं च बोध्यम्। यदुक्तं, समाध्यभावश्च शास्त्रार्थवत्त्वेनैव परिहृतो यथाप्राप्तमेव कर्तृत्वमादाय समाधिविधानादिति तद् दूषयन्ति **निरिन्द्रियस्यैव समाधिरित्यपीति** अध्यासशून्यतया इन्द्रियाद्यभिमानरहितस्यैव समाधिर्मुख्य इत्यपि बोध्यमित्यर्थः। अत्रापि भूमविद्यास्थं वाक्यमेव हेतुः। ननु कैवल्यात् पूर्वं जीवन्मुक्तस्यापि लिङ्गसद्भावाद् बुद्धिसंबन्धोऽस्त्येवेति कथं निरिन्द्रियत्वमत आहुः **करणत्वेनेत्यादि**।

रश्मिः।

स्तीति सांख्यः पुरुषस्तस्य। **भ्रम** इति। परप्राप्तिकर्तृत्वसमानाधिकरणमुक्त्यभावाभावरूपमुक्तिमति ब्रह्मविदि कर्तृत्वसमानाधिकरणमुक्त्यभावप्रकारकं ज्ञानं भ्रमः। तदभाववति तत्प्रकारकं ज्ञानं भ्रमः। दशगणीमध्ये यस्याः कस्याश्च कृतेर्यस्य कस्य व्यापारस्यावर्जनीयत्वात्। कृतिमत्त्वं कर्तृत्वम्। धातूपात्तव्यापाराश्रयत्वं वा कर्तृत्वम्। **अत्रे**ति तथा च सति सप्तम्याः सामानाधिकरण्यमर्थः। कर्तृत्वसमानाधिकरणमुक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव इति भाष्यार्थः। **स्वातन्त्र्यादी**ति **आदिशब्देन** कामक्रोधावशत्वम्। **प्रमाणे**ति तथा च जन्यजनकभावसंबन्धेन **प्रमाणराहित्याद**तद्वाक्यजन्यज्ञानस्य **भ्रमत्वमित्यर्थः**। आप्तवाक्यं प्रमाणं, पदसमूहे नाप्तवाक्यत्वं दोषः। तथाचाप्रमाणसाहित्यादस्य भ्रमत्वमित्युक्तम्। **इति बाह्यवदि**त्युक्त्यातियौक्तिकत्वादभ्युपगमे युक्तिः। **नपुंसक** ऊर्ध्वरेताः कामवशेन सर्वसह इति। ननु 'पितृ रेतोतिरेकात् पुरुषो मातृ रेतोतिरेकात् स्त्री उभयोर्बीजतुल्यत्वान्नपुंसकम्' इति श्रुतेरन्यविधं नपुंसकत्वं कुतो नोक्तमिति चेत्सत्यम्। वेदबाह्यग्रन्थत्वान्नोक्तम्। **अत्रे**ति कर्तृत्वसमानाधिकरणमुक्तत्वे। **उपे**ति स्पष्टं श्रीभागवते। मुक्तस्य सर्वेन्द्रियलये कर्तृत्वसमर्पिकां श्रुतिं वक्तुमाहुः **भूमे**ति। अर्थस्तु लिङ्गभूयस्त्वाधिकरणे तृतीयाध्याये भाष्ये स्पष्टः। **पश्यस्ये**ति ज्ञानिनः। **यदुक्त**मिति शंकराचार्यैर्यथेति वक्ष्यमाणसूत्रभाष्ये यदुक्तम्। **समाधी**ति। द्रष्टव्य इति समाधिः। 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' इत्यत्र वेदान्तश्रवणपरित्यक्तोपाधेरकर्तृत्वेन यः समाध्यभावः समाध्यभावप्रसङ्गस्तस्मादिति सूत्रार्थः। कर्तृत्वं जीवस्य शास्त्रार्थवत्त्वमुच्यते **यथे**ति। यत्र हि द्वैतमिव भवतीत्यादिशास्त्रेण यथावत्प्राप्तम्। **एवकारस्तु** तद्युक्तिभिः। **समाधि**रिति समाधिपादस्थे निर्बीजसबीजसमाधी योगसूत्रे शंकराचार्योक्तसमाधिर्विभूतिपादे सूत्रांशोर्थत्वेन व्याख्यातः। सूत्रं तु 'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः' इति सूत्रे तद्ध्यानं तदेव ध्यानमेवेत्यर्थः। **मुख्य** इति। ननु मुख्यपदं भाष्ये नास्ति। नैष दोषः। गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसंप्रत्ययमालोच्योक्तं समाधिपदम्। **बोध्य**मिति 'नैव किंचित्करोमि'इति वाक्यात्। भ्रम एवेति नान्वेत्यतो बोध्यं दूषणत्वेनेत्याक्षेपः। ननु मानसीसेवायां कथं कर्तृत्वं 'ता नाविदन्मय्यनुषङ्गबद्धधियः' इति वाक्यात्। अत्राहुः **अत्रापी**त्यादि। 'आत्मत आविर्भावतिरोभावौ'इति निरुच्यात्मतो बलमिति श्रुतेः। अत्र पूर्वत्र 'बलं वा व विज्ञानाद्भूयः' इत्युपक्रम्य

चदुप्त केनापि दृश्यते । तस्माज्जीवस्य स्वाभाविकं कर्तृत्वम् । ध्यायतीव लेलायतीवेत्यपि परधर्मानुकरणम् । अयमप्येको धर्मः ।

भाष्यप्रकाशः ।

तथाच बुद्धिसंबन्धस्तु केवलस्य ब्रह्माभेदेऽप्यनिवार्यः । बुद्धेः पारमार्थिके व्यावहारिके च सत्यत्वे विभुन आकाशस्येव सर्वसंबन्धत्वात् । अध्यासस्तु नास्ति, येन संबध्येत । तस्माज्जीवस्य स्वाभाविकमेव कर्तृत्वमित्यर्थः । एवं मुक्तस्य स्वाभाविकं कर्तृत्वं प्रतिपाद्य संसारिणोप्याहुः **ध्यायतीवेत्यादि** । तदुक्तमेकादशस्कन्धे द्वाविंशे,

'नृत्यतो गायतः पश्यन् यथैवानुकरोति तान् ।
एवं बुद्धिगुणान् पश्यन्ननीहोप्यनुकार्यते' ॥ इति ।

गुणैर्भगवता चेति बोध्यम् । तथा चानुकरणेऽपि गुणादीनां प्रयोजकत्वमेव, **धर्मस्तु** जैव एव बुद्धिगुणद्रष्टृत्वकथनादिति बोध्यम् । अत एवैकादशे द्वितीयाध्यायेऽपि योगीश्वरवाक्ये

रश्मिः ।

'कर्ता भवति' इति श्रुतेः । अत एव भगवत्सेवोपयोगिदेहो वैकुण्ठादिष्वित्यत्रादिशब्द उक्तः । तेनात्रापि । अन्यथा ज्ञानमार्गे इवात्रापि 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्' इत्यापत्तिस्तद्व्यवच्छेदक एवकारः । **केवलस्येति** मयट्प्रत्ययशून्यस्य विज्ञानमात्रस्य परमाणोर्जीवस्य । **अनिवार्य** इति बुद्धिस्तत्त्वान्तरं तथापि सहजकर्तृत्वार्थमपेक्षते । कर्तृत्वस्य कृतिरूपत्वेनेच्छाजन्यत्वमिच्छाया ज्ञानजन्यत्वम् । ज्ञानस्य बुद्धिजन्यत्वादनिवार्यः । बुद्ध्या पदार्थाञ्जानातीति प्रयोगात् । तदेवाहुर्बुद्धेरिति विज्ञानात्मिकायाः । **आकाशस्येति** आकाशं तस्य । **तस्मादिति** भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तस्मादिति** युक्तिसत्त्वात् । **एवेति** अप्यर्थे । अस्मिन्नेव विचारे औपाधिककर्तृत्वव्यवच्छेदक **एवकारः** । **संसारिण** इति लिङ्गदेहविशिष्टत्वं संसारित्वम् । **ध्यायतीवेत्यादीति** । इयं श्रुतिर्ज्योतिर्ब्राह्मणस्था 'कतम आत्मेति योयं विज्ञानमयः पुरुषः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः स समानः सन्नुभौ लोकौ संचरति ध्यायतीव लेलायतीव' इति । श्रुत्यर्थस्तु बुद्ध्यादिषु बहुष्वात्मा कतम इति प्रश्नः कृतो जनकेन ततो याज्ञवल्क्य उत्तरमाह योयमित्यादिना । विज्ञानमयो जीव इति व्याख्यातम् । प्राणेष्विन्द्रियादिषु स आत्मा समानः । वक्ष्यमाणवाक्येन बुद्धिसमानो गुणैरुभाविहलोकपरलोकौ संचरति । तदेव दर्शयति **ध्यायतीव** ध्यानं व्यापारवती बुद्धिः । तद्गुणं ध्यानं पश्यन् ध्यानं करोतीव जीवो भवति । **लेलायति** चलति । बुद्ध्यादिकारणेषु प्राणादिवायुषु चलत्स्वित्येवाचार्याशयगोचरो न तु **परधर्माणामनु** पश्चात्**करणं** भ्रान्त्या करणे चतुष्कोणलोहपिण्डावभासकचतुष्कोणाग्निवत् चलत्यां नावि तत्स्थप्रतीततीरस्थतरुचलनवच्चेत्यर्थ इति वक्तुमुपष्टभ्नन्ति **तदुक्तमिति** । तथा च ध्यायतीवेत्यस्य बुद्धिर्ध्यायति जीवोत्र तद्गुणध्यानं करोतीव । एवं लेलायति बुद्धिर्जीवो लेलायति चलतीवेत्यर्थः । **अनीहः** करणाभावान्निराकारत्वात् । **अनुकार्यते** जीवोनुकरोति अहंकारेण स्वस्मिन्नध्यस्यति । बुद्ध्या त्वध्यास्यते जीवः । बुद्धिः सात्त्विकी राजसी तामसी चेति गुणैरित्याहुः **गुणैरिति** । 'परात्तु तच्छ्रुतेः' इति सूत्रादाहु**र्भगवतेति** । तथा च **पर**शब्देन भाष्ये मनः । बुद्धेर्मनोधर्मत्वादित्युक्तम् । **अयमिति परधर्मानुकरणं** विधेयलिङ्गम् । श्रुतौ दर्शनात् । **धर्म** इत्यन्तभाष्यतात्पर्यार्थमाहुः **तथा** चेति कर्तृत्वधर्मे सति च । **एवेति** वक्ष्यमाणार्थादेवेति । **धर्मस्त्विति** धर्मः कर्तृत्वलक्षण **एवेति** श्रीधर्या

स्वाप्ययसंपत्त्योर्ब्रह्मव्यपदेशं पुरस्कृत्य सर्वविप्लवं वदन्नुपेक्ष्यः ॥ ३९ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

'कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वाऽनुसृतस्वभावात् ।
करोति यद् यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत् तत्' ॥

इत्यत्र कायाद्युपाधितोऽन्य आत्माऽपि कर्तृत्वेनोक्तः । तस्मान्न शङ्कालेश इति दिक् । यत्तु, नान्योऽतोऽस्ति, द्रष्टेत्यादिश्रुतेः परस्मादन्यो जीवो नाम कर्ता भोक्ता न विद्यते । आविद्यकत्वात् कर्तृत्वभोक्तृत्वयोरिति तत्राहुः स्वाप्ययेत्यादि । उक्तं पुरस्कृत्य स्वाग्रहेण तथा कुर्वन्नुपेक्ष्यः । अयमर्थः । उक्तश्रुतेर्जीवान्तर्यामिणोः शरीरशरीरिभावकथनोत्तरमेव पाठेन तद्भेदानिषेधकतया तादृशद्रष्ट्रन्तरनिषेधपरत्वम् । यत्र हि द्वैतमिवेत्यस्या अपि समानप्रकरणे

रश्मिः ।

'यथाम्भसा प्रचलता तरवोपि चला इव । चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते भ्रमतीव भूः' इति वाक्येनानीहे भूतरुस्थानीये बुद्धिगुणकर्तृत्वं चलत्वभ्रमणवत् भ्रमेण प्रतीयते । तथा च जीवो निरीहः कर्तृत्वं भ्रमप्रतिपन्नम् । तद्यदि बुद्धिः सत्त्वगुणरूपा तदा सांख्यरीत्या कर्तृत्ववती भवति । तत्कर्तृत्वं शुक्तिरजतवज्जीवे आरोपितमिति वक्तुं शक्यं तदेव तु न वाक्यस्य लौकिकभाषात्वात्परमतभाषात्वाद्वार्थान्तरवत्त्वम् । तथा चायमप्येको धर्मः सहजकर्तृत्वाबाधक इति न भ्रमप्रतिपन्नोत उक्तमेवेति । शास्त्रभेदात् । धर्मान्तरस्य तथात्वेनास्यापि सत्यत्वमित्याहुः **बुद्धीति** । पश्यतीति द्रष्टा कर्तरि तृच् । **अपीति** जीवधर्मकर्तृत्वमुक्तम् । **कायेनेति** क्रियाद्वैतप्रतिपादकमिदं वाक्यं वास्यार्थो व्याख्याने स्मार्तीये स्पष्टः । **कायादीति** कायादिकरणेभ्यः । **आत्मापीति अपिशब्देन** बुद्धिः । सर्वथा निर्गुणत्वाभावात् । 'प्रवर्तते यत्र रजः' इत्यत्र शुद्धसत्त्वस्य वैकुण्ठाङ्गीकारादतो न द्वैतम् । जीवत्वावच्छिन्नकर्तृत्वं यत्तत्समर्थयन्ति स्म **यत्त्वित्यादिना** । **अत इति** अन्तर्यामिणस्तादृशस्य । **आदिशब्देन** 'नान्योतोऽस्ति श्रोता नान्योतोऽस्ति मन्ता नान्योतोऽस्ति विज्ञातैष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽन्यदार्तं ततो होद्दालक आरुणिरुपरराम' इति ग्राह्यम् । **उक्तमिति** भाष्योक्तम् । **तथेति** । द्वितीयालुक् 'अव्ययादाप्सुपः' इति सूत्रेण । सर्वविप्लवप्रकारं कुर्वन् । **उक्तेति** 'नान्योतः' इति श्रुतेः । **शरीरेति** 'य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयति स त आत्मान्तर्याम्यमृतः' इत्यनया **शरीरशरीरिभावकथनोत्तरम्**, **एवेति** पूर्वान्वयव्यवच्छेदकः । **पाठेनेति** अन्तर्यामिब्राह्मणे पाठेन जीवान्तर्यामिभेदानिषेधकतया नान्य इति पदाभ्यां तादृशस्य जीवान्तर्यामिरूपद्रष्टुरन्यस्य द्रष्टुर्निषेधपरत्वमित्यर्थः । बोध्यमिति ज्ञेयम् । तद्भेदस्तु 'द्वा सुपर्णा' इति श्रुतेः सामानाधिकरण्यसंबन्धात् । तथा च शास्त्रं 'यत्र हि द्वैतमिव' इत्यादिशंकराचार्यभाष्यं पराकुर्वते स्म **यत्र हीत्यादिना** । इयं श्रुतिर्मैत्रेयीब्राह्मणेऽस्ति । द्वितीयस्मिन्मैत्रेयीब्राह्मणे 'यत्र वा अन्यदिव स्यात्' इति पठ्यतेऽर्थस्तूभयोर्ब्राह्मणयोः समानस्तट्टीकायामानन्दाश्रमविरचितायां तथादर्शनादत उभयमेकीकृत्यार्थः । तत्र हि संसारिप्रकरणे समाने यत्र हि द्वैतमिवेत्यस्याः **समाने प्रकरणे** । अत्रायमाशयः । मैत्रेयीति संपूर्णे ब्राह्मणे 'ब्रवीतु भगवान्' इत्यन्तमुपोद्घातप्रकरणम् । 'इद९सर्वं विदितम्' इत्यन्तं भक्तिप्रकरणम् । 'यदयमात्मा' इत्यन्तमभेदप्रकरणं फलम् । 'निःश्वसितानि' इत्यन्तं प्रमाणप्रकरणम् । 'इति होवाच याज्ञवल्क्यः' इत्यन्तं लयप्रकरणम् । 'इदं विज्ञानाय' इत्यन्तं प्रासङ्गिकं पूर्वप्रकरणान्तर्गतम् । यत्र हि

भाष्यप्रकाशः।

अपश्यस्त्वादिकं प्रतिपाद्य विभक्तत्वनिषेधेनाविभागानुसंधानदशायां द्वितीयस्य विभक्तत्वेन

रश्मिः।

द्वैतमिवेत्यारभ्यासमाप्ति संसारिप्रकरणम् । तस्य समानं प्रकरणं द्वितीयमैत्रेयीब्राह्मणे यद्वै तन्न पश्यतीत्यारभ्यासमाप्ति संसारिप्रकरणम् । तत्र षष्ठ्यन्तस्योभयत्रान्वयः । **अपश्यस्त्वेति** । यद्वै तन्न पश्यतीत्यपश्यत्त्वम् । **अपश्यस्त्वादिकमिति** पदच्छेदः । आदिना पश्यत्त्वम् 'पश्यन्वै तद्द्रष्टव्यं न पश्यति' इति श्रुतेः । तदुभयं प्रतिपाद्य 'नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात्' इत्यनया प्रथमप्रतिज्ञाहेतुमुखेनापश्यत्त्वं **प्रतिपाद्य** 'न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोन्यद्विभक्तं यत्पश्येत्' इत्यनया विशेषप्रज्ञानाभावरूपद्वितीयप्रतिज्ञाहेतुमुखेन पश्यत्त्वं च तत्र द्वितीयं प्रमातृ, अन्यच्चक्षुरादिकम्, विभक्तं प्रमेयम्, एतत्रयं प्रमातृप्रमाणविषयचैतन्यात्मकम् । परंतु चकाराभावाच्चैतन्यविभ………… दुरूह इति बोध्यम् । क्त्वान्तः प्रयोगः **प्रतिपाद्येति** । अतस्ततोन्यद्विभक्तमित्यादेरार्थिकार्थ उच्यते **विभक्तत्वेत्यादिना** । ततस्तत इत्यस्य द्रष्टृदृष्टिभ्यामित्यर्थस्तत्र **विभक्तत्वनिषेध** आर्थिकस्तेनेत्यर्थः । **अविभागेति** । न त्वभेदानुसंधानदशायामतोन्यशब्दो गौणोपि नेत्यपि भावः । अयमर्थः । भेदाभेदवादे एवं च परममुक्तिदशायामपीत्यादिनेयं श्रुतिरुपन्यस्ता तत्र च द्वैतदृष्टिनिवृत्त्या 'यथोदकं शुद्धे निषक्तं तादृगेव भवति एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम' इति काठकश्रुत्यां भेदप्रतीत्यभावरूप एवाभेदो न भेदाभावरूप इत्यभेदो भेदप्रतीत्यभावरूपोऽवतारितः । स यथा 'यद्वै तन्न पश्यति पश्यन्वै तद्द्रष्टव्यं न पश्यति नहि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येत्' इति श्रुत्यामन्यादर्शने पश्यत एवादर्शनस्य हेतुत्वं पश्यन्वा इत्यादिना निरूप्य तत्रैव द्वितीयत्वाभावस्य हेतुत्वं नन्वित्यादिना निरूप्य तत्रैव विभागाभावस्य हेतुत्वं ततोऽन्यत्वाभावस्यार्थिकस्य हेतुत्वं निरूपितम् । अग्रे च यत्र वाऽन्यदिव स्यादित्यादिना वैलक्षण्यहेतुकमन्यदर्शनमनूद्य यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येदित्यादिना स्वस्य द्रष्टृत्वाविभागेनाविज्ञाने तं केन विजानीयादित्यनेन ज्ञानकरणाभावं हेतुत्वेन वक्तीत्यतो भेदप्रतीत्यभावरूप एवाभेदो न तु भेदात्यन्ताभावरूप इति । अत एव मङ्गलमाचेरुः 'ब्रह्माभेदोपासनाज्ज्ञानतो वा ब्रह्मात्मैक्येप्यङ्गताममत्यजन्तः । यस्यैश्वर्यादासते यन्नियम्यास्तं श्रीकृष्णं देवदेवं नमामि' इति । अत्र किंचिद्विमृश्यते । ब्रह्माभेदोपासनं न भक्तिमार्गे 'अन्तरा भूतग्रामवत्स्वात्मनः' इत्यत्र भाष्ये तथोपपादनात् । कदाचित्तु जायते व्यतिहारसूत्रे तथोपपादनात् । ज्ञानमार्गे तावद्भलते तेनावरणभङ्गो भवति । ज्ञानमार्गस्तु माहात्म्यज्ञानेन भक्तिद्वारा भगवत्प्राप्तिः 'भगवान्ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया' इति वाक्यात् । तदुक्तं सप्तमे ज्ञानविज्ञानयोगाध्याये 'ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः' इत्युपक्रम्य 'बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते । वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः' इति । वासुदेवः सर्वमिति न ज्ञानस्वरूपं प्रपत्तिस्वरूपमिति व्याख्यातं **भक्तिमार्तण्डे**ऽपि । अपरं च त्रयोदशे 'क्षेत्रक्षेत्रज्ञनिर्देशयोगाध्याये ज्ञानस्वरूपमप्यस्ति तत्र 'क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम' इति वाक्यात् । क्षेत्रक्षेत्रज्ञविषयकं ज्ञानं नातोधिकम् । परं सविकारं ज्ञानमुदाह्रियते 'अमानित्वमदम्भित्वमहिंसाक्षान्तिरार्जवम् । आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः । इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च । जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् । असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहा-

भाष्यप्रकाशः ।

दर्शनं निषिध्य सर्वस्यात्मभावबोधनपूर्वकमन्यदर्शननिषेधात् सजातीयदर्शनपरत्वं वा, विज्ञात्रविज्ञातृदर्शनपरत्वं वा । न तु द्रष्टृत्वादिनिषेधनपरत्वम्, पश्यत्त्वादीनां विनाशेनाविनाशित्व-

रश्मिः ।

दिषु । नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु । मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी । विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि । अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् । एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा' इति । अत्रापि तत्त्वज्ञानार्थदर्शने कृते सत्यभेदः । तथापि यथा सेव्यसेवकभावस्तथोपपादितं **भक्तिरत्नटीकायाम्** । नन्वत्र मयि चेत्यत्रास्मत्पदेन क्षेत्रज्ञबोधात्कथं भक्तिः प्रभुपर्यवसायिनीति चेन्न । 'पुरुषत्वे च मां धीराः सांख्ययोगविशारदाः । आविस्तरां प्रपश्यन्ति सर्वशक्त्युपबृंहितम्' इति भगवद्वचनेनैक्यात् । पुनश्चतुर्दशे गुणत्रयविभागयोगाध्याये 'परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्' इति प्रस्तुत्य 'मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्' इत्यादिभिर्माहात्म्यं देवस्वरूपं भणितवान्भगवान् । ज्ञानस्य विजातीयसंवलितत्वे मार्गत्वं, केवलत्वे ब्रह्मधर्मत्वमित्येकादशस्कन्धसुबोधिन्यामस्ति । ननु माहात्म्यज्ञाने चतुर्दशोक्ते ब्रह्माभेदोपासना नास्ति । मम योनिरिति जीवसमूहाक्षरात्षष्ठ्या भेदोक्तेः । अस्ति तु भावाद्वैतमतेन । तदुक्तं सप्तमस्कन्धे शिवमतेन 'कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्षणं पटतन्तुवत्' इत्यादिना । तत्र परममुक्तौ[1] यदि भेदो वर्तते तदा तत्प्रतीत्यभावः कथम् । यदि तत्र[2] भेदात्यन्ताभावाभावः कथमिति प्रश्ने पर्यवसितिमात्रमतो नान्य इति निषेधबलात्फले परममुक्तौ भेदोऽवश्यं पर्युदासार्थकनञादिभिर्वक्तव्यः । आदिना भेदार्थकनञादिभिः । उक्तश्चास्थूलमनण्वित्यस्याः श्रुतेर्व्याख्याने **विद्वन्मण्डनो**पन्यस्तायाः **सुवर्णसूत्रे** पर्युदासे नञ् । एवंच फले मायिकभेदभिन्नतद्भेदसदृश आधिकारिकमण्डलस्थभेद इति लीलान्तरेच्छया भेदप्रतीत्यभावरूपो भेदो न भेदात्यन्ताभावरूपः 'अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्' इति ब्रह्मस्वरूपपरगीतायां विभक्तमिव कथनादित्यलं विमर्षाय । अतोऽन्तर्यामिब्राह्मणेन नियम्यानां इवशब्देनाविभागानुसंधानं न त्वविभागस्तस्य दशायामित्यर्थः । अभेदज्ञानफलं भक्तिः 'नृप स्वात्मैव वल्लभः' इति वाक्यादित्युपपादितमाकरे नृसिंहोत्तरतापिनीयटीकायामप्येतैः । **द्वितीयस्येत्यादि** । **द्वितीयस्य** दृष्टिरूपदर्शनस्य **विभक्तत्वेनार्थान्निषिध्य** । अयमर्थः । तत्रैवाग्रे 'यत्र वा अन्यदिव स्यात्तत्रान्योन्यत्पश्येदन्योन्यज्जिघ्रेत्' इत्यादिना यत्र संसारिदशायां मायिकभेदेनान्यदिव ब्रह्मभावात्तत्रान्यो नेत्रादिरन्यद्विभक्तं पश्येदर्थाद्दृष्टिरूपं दर्शनं नान्यद्विभक्तं च तस्य द्वितीयस्य विभक्तत्वेनेत्यर्थः । **सर्वस्येत्यादि** 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्तत्केन कं जिघ्रेत्' इत्यादिना**न्यदर्शननिषेधात्** । अन्यत्वं विजातीयत्वं **तद्दर्शननिषेधात्** । पश्यन्वा इति श्रुतेश्च यत्सिद्धं तदाहुः **सजातीयेत्यादि** । विजातीयत्वं च सत्त्वमनीश्वरत्वं वेत्याशयेनाहुः **विज्ञात्रित्यादि** । विज्ञाता द्रष्टाऽविज्ञातृ दृष्टिरूपं दर्शनं करणम् । तद्व्यापारानपेक्षया न जानातीत्यविज्ञातृ भवति । न तु **द्रष्टृत्वादीत्यादि** । तथा च द्रष्टृत्वादिनिषेधपरं शंकराचार्यभाष्यं विद्यावस्थायां ते एव कर्तृत्वभोक्तृत्वे निवारयन्ति स्म 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्' इति । **अविनाशित्वेत्यादि** । 'यद्वै तन्न पश्यति' इत्यस्याः श्रुतेः पूर्वं

१. परममुक्तावपि । २. जीवः ।

भाष्यप्रकाशः ।

बोधनपीडाप्रसङ्गात्, अतः स्वाग्रहेण तत् सर्वं विद्रावयन्ननपेक्ष्य इत्यर्थः । एवंच यत्तैरुच्यते विधिशास्त्रं तु यथाप्राप्तं कर्तृत्वमादाय कर्तव्यविशेषमुपदिशति, न कर्तृत्वमात्मनः प्रतिपादयति । कर्ता विज्ञानात्मा पुरुष इत्याद्यपि शास्त्रमनुवादरूपत्वाद् यथाप्राप्तमाविद्यकं कर्तृत्वमनुवदिष्यति । एतेन विहारोपादाने परिहृते, तयोरप्यनुवादरूपत्वात् । यत् पुनः संध्ये स्थाने परिवर्तनविहारः प्राणानामुपादानं चोक्तम् । तत्राप्यन्येषां प्राणानां विरमणं, न तु धियोऽपि । 'सधीः स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रामति'इति धीसंबन्धश्रावणात् । उपादाने यद्यपि करणे कर्मकरणविभक्तिनिर्देशस्तथापि तत्संपृक्तस्यैवात्मनः कर्तृत्वं द्रष्टव्यम् । केवले कर्तृत्वासंभवस्य दर्शितत्वात् । यथा लोके योधा युध्यन्ते, योधै राजा युध्यत इति तथात्रापि । किंचास्मिन्नुपादाने करणव्यापारोपरममात्रं विवक्षितं, न स्वातन्त्र्यम् । कस्यचिदबुद्धिपूर्वकस्यापि स्वापे करणव्यापारोपरमदर्शनात् । तस्मादात्मनः कर्तृत्वमुपाधिनिबन्धनमेवेति । तदपि फल्गु । सनत्कुमारादीनां चङ्क्रमणादिदर्शनेन भूमविद्यास्थवाक्येन च निरध्यासानामात्मतः एव सर्वकार्यकर्तृत्वे सिद्धे तदनुसारेणान्यद्रष्टृत्वान्यदर्शननिषेधकश्रुत्यर्थ उक्तरीत्योक्तयुक्तिभिश्च प्राञ्जले स्वाभाविककर्तृत्वनिषेधकप्रमाणाभावाद् विधिशास्त्रमनुवादकशास्त्रं विहारोपादानशास्त्रं च प्रतिपादयिष्यत्यनुवदिष्यति च । एवंच संध्ये स्थाने, धियो विरमणाभावेऽपि न कश्चिद्दोषः । धीसाहित्येऽपि तदानीं तस्या उपाधितागमकस्याभावात् । करणत्वेन संबन्धस्येष्टत्वात् करणगतविभक्तिकोपाभावात् तदानुकूल्याच्च । योधदृष्टान्तेन धियः कर्तृत्वसाधनमात्मनस्तन्निराकरणं चाप्यसंगतमेव । योधानां चेतनत्वेन करणानां चाचेतनत्वेन राज्ञश्च प्रयोजकत्वेनात्मनश्च प्रयोजककर्तृताया अप्यनुपगमेन दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकवैषम्यात् । अतोऽस्मिन्नुपादाने जीवस्य स्वातन्त्र्यं ब्रह्मणाप्यभेद्यमिति दिक् ।

रश्मिः ।

पठ्यते मैत्रेयीं प्रति याज्ञवल्क्यवचनम् । 'न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यविनाशी वा अरेऽयमात्मानुच्छित्तिधर्मा' इति । तत्र पुनरुक्त्यभावायानुच्छित्तयो धर्मा यस्य सोनुच्छित्तिधर्मेति समासात्तथेत्यर्थः । **इत्यर्थ** इति एवं च 'नान्योतः' इति श्रुतौ द्रष्ट इत्यस्य जीवान्तर्यामिभ्यामित्यप्यर्थः । वेदान्तविषयमुक्त्वा वेदविषयमाहुः **एवं चेति** । **यथाप्राप्तमिति** बुद्ध्युपाधिप्राप्तम् । **अनुवादेति** अर्थवादरूपानुवादरूपत्वादित्यर्थः । श्रुतिः प्रत्यक्षसिद्धमर्थमनुवदतीति । यथा 'अग्निर्हिमस्य भेषजम्' इति श्रुतिः पूर्वतन्त्र उक्ता । **विहारेति** । विहारोपादानसूत्रयोरुक्ते एते । **परीति** संध्ये स्थाने प्रसुप्तेषु करणेषु स्वे शरीरे यथाकामं परिवर्तत इति शंकरभाष्यश्रुतेः परिवर्तनं च तद्विहार इति समासः । **करण** इति करणे विज्ञाने । 'तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय' इति श्रुतौ कर्मेत्यादिः । **तत्समिति** बुद्धिसंपृक्तस्य । **एवकारः** केवलव्यवच्छेदकः । **दर्शीति** स्वाप्ययेत्यादिभाष्याभासे दर्शितत्वात् । **अत्रापीति** बुद्धिः पदार्थाञ्जानाति बुद्ध्या पदार्थाञ्जानातीति प्रयोगात् । धियः कर्तृत्वमात्मनस्तन्निराकरणं च । **स्वातन्त्र्यमिति** जीवस्य स्वातन्त्र्यं कर्तृत्वम् । **अबुद्धीति** न बुद्धिर्जीवकर्तृत्वनिर्वाहिका, **पूर्वं** करणव्यापारोपरमात्पूर्वं यस्य पुंसः स तथोक्तस्तस्य । स्वातन्त्र्याभाववत इत्यर्थः । **चङ्क्रमणादीति** । **आदिना** प्रवचनम् । **अनुवदिष्यतीति** न चानधिगतार्थगन्तृत्वरूपप्रमाणविरोधः । आत्मत्वेन वेदस्यावेदेप्यनुकृतेः । **तदेति** विभक्त्यानुकूल्यात् । **एवेति** दृष्टान्ताभावादुक्ता । **स्वातन्त्र्यमिति** जीवः प्राणानां

भाष्यप्रकाशः ।

यदपि विज्ञानपदस्य बुद्धौ प्रसिद्धत्वान्मनोनन्तरपाठाच्च, 'विज्ञानं यज्ञं तनुते' इत्यत्रापि बुद्धेरेव कर्तृत्वमुच्यते 'विज्ञानं देवाः सर्वे ब्रह्मज्येष्ठमुपासते' इति वाक्यशेषोऽपि बुद्धेरेव प्रथमजत्वं विषयीकरोति । ज्यैष्ठ्यस्य प्रथमजत्वरूपस्य बुद्धौ प्रसिद्धत्वात् 'स एष वाचश्चित्तस्योत्तरोत्तरिक्रमो यद् यज्ञः' इति श्रुत्यन्तरे यज्ञस्य वाग्बुद्धिसाध्यत्वावधारणादित्युक्तं तदपि मन्दम् । प्रकरणापेक्षया प्रसिद्धेर्दुर्बलत्वात् 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'इति ब्रह्मण्यपि प्रसिद्धेस्तुल्यत्वात् । योगरूढ्यपेक्षया केवलयोगस्यापि निर्बलत्वात् । अवयववाक्येन मनोमयस्य वेदरूपतावगमात्तदुत्तरं जीवस्यैव युक्तत्वात् । श्रद्धादीनां शिरस्त्वादिकल्पनतात्पर्यस्य प्रागेवोक्तत्वात् ज्येष्ठशब्दोऽपि ब्रह्मपदसमभिव्याहाराद् ब्रह्मण इव ज्यैष्ठ्यं वक्ति । ब्रह्मज्येष्ठा वीर्याणीत्यादिवत् । वाग्बुद्ध्योरुत्तरोत्तरिक्रमस्तु बुद्धेः करणत्वेऽपि तुल्यः तस्मान्न किंचिदेतत् ॥ ३९ ॥

रश्मिः ।

विज्ञानेन विज्ञानमादाय शेत इत्यत्र शयनोपादानयोः कर्तृत्वमित्यर्थः । दिक्त्वनिरूपकं यत्किंचिदुच्यते । कस्यचिदित्याद्युक्ता युक्तिः प्रकृतेप्यनुकूलेति । यथा बुद्ध्यभावात्तन्निबन्धनं जीवकर्तृत्वं न विवक्षितमिति वक्तुं शक्यते तथा तादृशस्थले बुद्ध्यभावात्सर्वत्रापि न तन्निबन्धनं कर्तृत्वमपि तु स्वाभाविकमित्यपि वक्तुं शक्यत इति । **मनोनन्तरेति** शंकरभाष्यव्याख्याने द्रष्टव्यम् । वाग्बुद्ध्योः पूर्वोत्तरक्रमान्मनोरूपवेदरूपवागनन्तरं विज्ञानरूपबुद्धेः पाठात् । **वाक्येति** विज्ञानं बुद्धिर्मतभेदेन जीव इति केन व्याख्यानेन भाव्यमिति विमर्शे विज्ञानं देवा इति **वाक्यशेषः** प्रवर्तते । **एवेति** जीवानां प्रथमजत्वाभावादेवकारः । **प्रसिद्धेति** 'ब्रह्मा देवानां प्रथमं संबभूव'इति कोशे ब्रह्मात्मबुद्धिमनसामैकार्थ्यात् । **उत्तरेति** उत्तरं च उत्तरमस्यास्तीत्युत्तरि चोत्तरोत्तरिणी तयोः क्रम इत्यर्थः । **यज्ञ** इति ब्रह्मविचाररूपो यज्ञः । **वाचो** ब्रह्म **चित्तं** बुद्धिः । **वाच** इति श्रुतौ षष्ठी । स्वप्रतिपाद्यविषयत्वं चित्ते संबन्धः । **चित्तं** बुद्धिः । **वागिति** लक्षणया **वाग्बुद्धिसाध्यत्वावधारणात्** । **प्रकरणेति** ब्रह्मवित्प्रकरणम् । 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इत्युपक्रमात् । **दुर्बलेति** श्रुत्यादिषट्प्रमाणान्तर्गतत्वेन तथा । स्वमते वेदान्ते योगः पूर्वमीमांसाभाष्यकारिकाव्यञ्जितोऽपि परस्य नेत्याशयवन्त आहुः **योगेति** । **निर्बलेति** विज्ञानपदे । रूढिर्योगमपहरतीति प्रसिद्धेः । योगरूढिस्तु ब्रह्मणि न तु बुद्धाविति भावः । **अवयवेति** 'तस्य यजुरेव शिरः' इत्यादिश्रुतिवाक्यैनैकत्वमविवक्षितम् । **उत्तरमिति** ग्राह्यस्य ग्राहकापेक्षायाः 'स एष जीवो विवरप्रसूतिः' इति वाक्यादुत्तरम् । मनोमयं रूपं ग्राह्यं, जीवो ग्राहकः । आनन्दमयाधिकरणे मान्त्रवर्णिकसूत्रोक्तसंगत्योत्तरमित्यादिरित्यपि । **एवकारो** बुद्धिव्यवच्छेदकः । यद्यपि यज्ञः श्रुतौ वाचश्चित्तस्येत्युक्तस्तथापि 'मनः पूर्वरूपं वागुत्तररूपम्'इति श्रुत्यन्तरात्प्रवचनं यज्ञः पूर्वोक्तोऽपि यज्ञः । यज्ञानां गीतायां बहुविधत्वात् । **प्रागिति** आनन्दमयाधिकरणे । **ब्रह्मण** इति । तथा च ब्रह्म इव ज्येष्ठं ब्रह्मज्येष्ठम् । मयूरव्यंसकादिसमासः । **ब्रह्मज्येष्ठेति** जसो डा । ब्रह्मज्येष्ठानीत्यर्थः । **आदिना** भवन्तीति श्रुतिशेषः । **वाग्बुद्ध्योरिति** । यणूघटितबुद्धिशब्दो न तु पवर्गादिः स ध्वनयति । बकारवकारयोर्बहुषु शब्देषु विपर्यय इति । यद्यपि बुरिति लेखनेप्येवं भवति तथापि 'काञ्चनीकरणे शक्तो मणिर्धातुगणस्य यः । तस्याश्मनां तथाभावाकरणेऽपि न हि क्षतिः' इति न्यायो द्रष्टव्यः । **उत्तरोत्तरी** व्याख्यातम् । **तुल्य** इति यन्मनसा ध्यायतीति करणत्वपक्षः तत्र श्रुत्योर्विरोधे विकल्पाश्रयणादुभयोर्वादिनोस्तुल्य इत्यर्थः । **एतदिति** औपाधिकं जीवत्वम् ॥ ३९ ॥

यथा च तक्षोभयथा ॥ ४० ॥

ननु कर्मकराणां कर्तृत्वभोक्तृत्वभेदो दृश्यते तथा कर्तृत्वभोक्तृत्वयोर्भेदो भविष्यतीति चेन्न । यथा तक्षा रथं निर्माय तत्रारूढो विहरति, पीठं वा । स्वतो वा न व्याप्रियते वास्यादिद्वारेण वा । चकारादन्येऽपि स्वार्थकर्तारः । अन्यार्थमपि करोतीति चेत् तथा प्रकृतेऽपि सर्वहितार्थं प्रयतमानत्वात् । नच कर्तृत्वमात्रं दुःखरूपम् । पयःपानादेः सुखरूपत्वात् । तथाच स्वार्थपरार्थकर्तृत्वं कारयितृत्वं च सिद्धम् ॥ ४० ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयपादे कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वादिति चतुर्दशमधिकरणम् ॥१४॥

परात्तु तच्छ्रुतेः ॥ ४१ ॥ (२-३-१५)

कर्तृत्वं ब्रह्मगतमेव तत्संबन्धादेव जीवे कर्तृत्वं तदंशत्वादैश्वर्यादिवत् । न तु जडगतमिति । अतो, 'नान्योऽतोऽस्ति' इति सर्वकर्तृत्वं घटते । कुत एतत् ।

भाष्यप्रकाशः ।

यथा च तक्षोभयथा ॥ ४० ॥ सूत्रमवतारयन्ति नन्वित्यादि । भेद इति भिन्ननिष्ठत्वम् । सूत्रोक्तं समाधिं व्याकुर्वन्ति नेत्यादि । तथा च उक्तो भेदः प्रायिको, न तु नियत इति न कर्मकरदृष्टान्तेन तयोर्भिन्ननिष्ठत्वसिद्धिरित्यर्थः । उभयथेति पदं व्याकर्तुमाहुः अन्यार्थमित्यादि । पूर्वपक्षिणोक्तमङ्गीकुर्वन्ति तथेत्यादि । प्रकृत इति शास्त्रप्रणयने । तथाच व्याख्यातान् सर्वान् प्रकारान् क्रोडीकर्तुमयं दृष्टान्तो, न तु स्वतोऽकर्ता, करणद्वारैव कर्तेत्येतावन्मात्रांशे, प्रमाणाभावादित्यर्थः । शेषमुत्तानार्थम् ॥ ४० ॥

इति चतुर्दशं कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वादित्यधिकरणम् ॥ १४ ॥

परात्तु तच्छ्रुतेः ॥ ४१ ॥ जीवे कर्तृत्वं स्वाभाविकमित्यवधारितम् । तत् किं जीवस्य स्वातन्त्र्येण, उत ब्रह्माधीनतयेति विचारणीयम् । 'पुण्यः पुण्येन' इति, 'एष उ एव' इति विरुद्ध-

रश्मिः ।

यथा च तक्षोभयथा ॥ ४० ॥ **भिन्नेति** भिन्नौ पाचकपाचयितारौ **तन्निष्ठे** कर्तृत्वभोक्तृत्वे तन्निष्ठो भेद इत्यर्थः । **तयोरिति** कर्तृत्वभोक्तृत्वयोः । **शास्त्र इति** । स्वयमप्याविर्भूय मुक्तिं लोकान् शिक्षयितुमङ्गीकरोतीत्येकादशनिबन्धे स्फुटम् । नामसृष्टिर्मुक्तिशास्त्रत्वादुक्ता । **तथा चेति** प्रकृतस्य शास्त्रप्रणयनार्थत्वे च । **एवेति** जीवदृष्टान्तादेवकारः । **करणं** बुद्धिः । **शेषमिति** प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्, अनुकूलवेदनीयं सुखं तत्रेत्येवमुत्तानार्थम् । यद्यप्यानन्दो भोक्ता, तेजः पातृ तथापि तदुभयमात्मेत्यदोषः ॥ ४० ॥

इति त्रयोदशं[1] कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वादित्यधिकरणम् ॥ १३ ॥

परात्तु तच्छ्रुतेः ॥ ४१ ॥ पादार्थसंगमनायाधिकरणसंगत्यै चाहुः **जीव इति** । 'सर्वे जीवा व्युच्चरन्ति' इति मुण्डकश्रुत्या साकं 'नान्योतोऽस्ति द्रष्टा' इत्यादिसर्वकर्तृत्वनिषेधकश्रुतिविरोधस्तस्य परिहारात् पादार्थसंगमनं हेतुतासंगतिरधिकरणस्येत्याहुः **तत्किमिति** । **पुण्यः पुण्येनेति** । अत्र पूर्वोक्तानि कारीर्यादिवाक्यानि विषयवाक्यम् । संशयमाहुः **पुण्य इति** । **विरुद्धेति** तेन श्रुत्योर्विरोधपरिहारादत्र

१. रश्मिकारमते त्रयोदशमिदम् ।

तच्छ्रुतेः । तस्यैव कर्तृत्वकारयितृत्वश्रवणात् । 'यमधो निनीषति तमसाधु कारयति' इति 'सर्वकर्ता सर्वभोक्ता सर्वनियन्ता' इति । सर्वरूपत्वान्न भगवति दोषः ॥४१॥

कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः ॥ ४२ ॥

ननु वैषम्यनैर्घृण्ययोर्न परिहारः । अनादित्वेन स्वस्यैव कारयितृत्वादिति

भाष्यप्रकाशः ।

श्रुतिद्वयदर्शनेन संदेहात् । तत्र ईश्वराधीनत्वे जीवस्य दुःखभोगासंभवात् कर्मानादित्वस्य च कर्तृत्वाधीनत्वात् तदप्यनाद्येवेति स्वातन्त्र्येणैव कर्तृत्वमिति शङ्कायामिदं सूत्रमित्याशयेन सूत्रमुपन्यस्य व्याकुर्वन्ति कर्तृत्वमित्यादि । ब्रह्मगतमेव कर्तृत्वं ब्रह्मतादात्म्यादेव जीवे भासते । तादात्म्यं चांशत्वान्नतु कार्यत्वात् अत ऐश्वर्यादिकं यथा भगवत्कृपया पार्षदादिषु पुंस्त्वादिवत् प्रकटीभवद्भासते तथा कर्तृत्वमपि । अत एव मुक्तानां तत्तत्कार्यकर्तृत्वं श्रूयते, 'इमांल्लोकान् कामान्नीकामरूप्यनुसंचरन्' इत्यादि । यद्यपि ब्रह्मवादे जडेष्वप्यंशत्वमविशिष्टं, तथापि जडजीवयोः परस्परवैलक्षण्यार्थं तत् तत्र न भगवता प्रकटीक्रियते, यथा पृथिव्यामेव गन्धो न जलादिष्विति । अतो ब्रह्मधर्मस्यैव जीवे संक्रान्तत्वेन जीवस्य दर्शनादिकर्तृत्वात् 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा'इत्यादिश्रुत्युक्तमन्यनिषेधेन ब्रह्मण एव दर्शनादिसर्वकार्यकर्तृत्वं घटते, सर्वकर्मेति श्रुतिरप्यसंकोचेन ब्रह्मणि संगच्छते । एवंच, 'न कर्माविभागात्' इति सूत्रे यत् कर्मानादित्वमभ्युपगतं तदपि ब्रह्मधर्मत्वादेवोपपन्नमित्यर्थः । हेतुं व्याकुर्वन्ति तस्यैवेत्यादि । 'स विश्वकृत्, स हि सर्वस्य कर्ता' इति, 'ईशः सर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणाति विश्वभुक्' इति, 'सर्वमिदं प्रशास्ति,' 'अन्तःप्रविष्टः शास्ता जनानाम्' इत्यादिश्रुतिभिः 'सर्वकर्ता सर्वभोक्ता सर्वनियन्ता' इति । कारयितृत्वश्रुतिस्तूक्तैव । नन्वेवं सर्वकर्तृत्वाद्यङ्गीकारे असमीचीनं प्रत्यपि ब्रह्मण एव कर्तृत्वात् क्लिष्टकर्मत्वाद्यापत्तिरित्यत आहुः सर्वेत्यादि । तथाच,

'किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः ।
गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः' ॥

इत्येकादशस्कन्धे भगवदुक्तान्न्यायान्न दोष इत्यर्थः ॥ ४१ ॥

कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः ॥ ४२ ॥ तुशब्दव्याख्यानमुखेन सूत्रमवतारयन्ति नन्वित्यादि । पूर्वं कर्मानादित्वमीश्वरस्य तत्सापेक्षत्वं चाङ्गीकृत्य

रश्मिः ।

पादार्थसंगमनं बोध्यम् । स्वातन्त्र्येण ब्रह्माधीनतया च कर्तृत्वप्रतिपादनाद्विरुद्धत्वम् । पूर्वपक्षमाहुः तत्रेति । दुःखेति । फलसाधनयोरेकवृत्तित्वनियमादिति भावः । कर्तृत्वेति कर्तृत्वं कृतिमत्त्वं कृतिमत्त्वं च कृतिरेवेति तथा । एवेति 'कर्मैके तत्र दर्शनम्' इति जैमिनिसूत्रादेवकारद्वयम् । एवेति 'कर्ता कारयिता हरिः' इति श्रुतेरेवकारः । एवेति । 'अंशो नाना' इति वक्ष्यमाणसूत्रादयम् । श्रूयत इति तैत्तिरीयके । न जडेत्यादिभाष्यमवतार्य विवृण्वन्ति स्म तत्तत्रेति । अंशत्वं जडे । अत इति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म अत इति । इत्यादीति । आदिना 'कर्ता कारयिता' इति श्रुतिः । न दोष इति न हि स्वदद्भिः स्वजिह्वां दशन् स्वाङ्गैः स्वाङ्गानि ताडयन् दुष्टो भवति तत्राप्यज्ञानजन्योपि नेत्यर्थः ॥ ४१ ॥

कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः ॥ ४२ ॥ कर्मेति । 'तदेजति

पक्षं तुशब्दो निवारयति । प्रयत्नपर्यन्तं जीवकृत्यम्, अग्रे तस्याशक्यत्वात् स्वयमेव कारयति । यथा पुत्रं यतमानं बालं पदार्थगुणदोषौ वर्णयन्नपि तत्प्रयत्नाभिनिवेशं दृष्ट्वा तथैव कारयति । सर्वत्र तत्कारणत्वाय तदानीं फलदातृत्वे या इच्छा तामेवानुवदति 'उन्निनीषति, अधो निनीषति' इति । अन्यथा विहितप्रतिषिद्धयो-

भाष्यप्रकाशः ।

वैषम्यनैर्घृण्ययोः परिहारः कृतः । स तु न युज्यते । कर्मानादित्ववत् स्वस्य यत्कारयितृत्वं तस्याप्यनादित्वादित्यर्थः । समाधिं व्याकुर्वन्ति प्रयत्नेत्यादि । अयमर्थः । तैत्तिरीय आनन्दमयप्रशंसाप्रसङ्गे, अथातोऽनुप्रश्ना इत्यादिना अविद्वद्विदुषोः समानैव ब्रह्मप्राप्तिरुत कश्चिद्भेद इति प्रश्ने उत्तरत्वेन, 'सोऽकामयत' इत्यादिना स्वस्यैव बहुभवनेनोच्चनीचरूपेण सर्वसृष्टिमुक्त्वा तत्रानुप्रवेशेन स्वस्यैव, 'सच्च त्यच्चाभवत्' इत्यादिना अनेकविधं द्वैधीभावं चोक्त्वा, 'सत्यमभवत्' इति समाप्तौ ब्रह्मरूपत्वं निगमयामास तथा सति सर्वस्य ब्रह्मरूपत्वे अविशिष्टेऽपि मध्ये, 'स तपोऽतप्यत' इत्यादिना तपोरूपस्यालोचनस्यापि सृष्टौ कारणत्वेन कथनाद् यथाधिकारं तत्तत्फलं तत्तदधिकारश्च नानाविधस्तत्र कारणं, तस्यापि कारणं नानाविधः स्वभाव इति तत्र फलति । एवं सत्यालोचनानुसारेण वक्ष्यमाणप्रणाड्या प्रयत्नपर्यन्तं जीवकृत्यं, तदपेक्षः सन्, अग्रे बाह्यकृतावुपकरणबाहुल्यमपेक्षितं, तच्च जीवेन केवलेन संपादयितुमशक्यमतस्तत्संपादनद्वारा स्वयमेव कारयति । तत्र दृष्टान्तो यथाबालमित्यादि । एवं सति कार्यमात्रं प्रति

रश्मिः ।

तन्नेजति' इति श्रुतेर्निःप्रतियोगिककर्मानादित्वम् । 'अनुच्छित्तिधर्मा' इति श्रुत्या धर्माणां तौल्यं वदन्तोऽ**नादी**त्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **कर्मानादी**ति । अत्र कृतप्रयत्नापेक्षस्तु वैषम्यनैर्घृण्यदोषरहितो भगवान्कारयिता, फलाय जीवः करोति तं जीवं कारयतीति फले प्रयोजकः इच्छाद्वारा, तत्र हेतु**र्विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्य** इति । अन्यथा विहितप्रतिषिद्धयोः कर्मणोर्वैयर्थ्याद्यापत्तेः । अतो न वैषम्यनैर्घृण्ये, दोषौ नेत्यर्थाज्जीवप्रयत्न एव फलपर्यन्तमस्तु कृतं भगवतेत्याशङ्कायां **प्रयत्नपर्यन्तं जीवकृत्यं** विशदयन्ति स्म **अयमर्थ** इति । **अविद्वदि**ति विद्वच्छब्दः तेन नञ् समासः । **तथा सती**ति । उक्तप्रकारेण सर्वेषां ब्रह्मत्वे सति । **आलोचनस्ये**ति ननु नवमेध्याये द्वितीयस्कन्धस्य तप संतापे इत्यस्य धातो रूपं श्रुतौ तु सोकामयेतेत्यस्यामिच्छाशरीरे एतदेतत् कर्म कारयित्वैतदेतत्फलं दास्यामीति प्रतिजीवं विचारितवानित्यस्मिन्नालोचनं निविष्टमित्येकवाक्यतावस्थितमनेन कथमिति चेन्न । अत्रालोचनस्य संतापात्मकत्वात् । एकवाक्यतया तथावसायात् । **यथे**ति आलोचनशरीरनिविष्टत्वेन यथेत्यादिः । **तत्रे**ति सृष्टौ । **कारण**माविर्भावकशक्त्याधारत्वात् अनन्यथासिद्धत्वे सति कार्यनियतपूर्ववृत्तित्वाच्च । **स्वभाव** इति परिणामहेतुः । फलाधिकारयोः परिणामः । ननु गुणाः कुतो नोक्ता इति चेन्न । गुणव्यतिकरकारककालप्रसङ्गाभावात् । कर्तृविशेषणं पूरयन्तो**ऽग्रे** इत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तदपेक्ष** इति । **उपकरणे**ति गीतोक्तकर्तृपञ्चकम् । **केवलेने**ति पञ्चसु कर्तृषु गीतोक्तेषु केवलेन । **तत्स**मिति कर्तृपञ्चकत्वसंपादनद्वारा । **यथा बाल**मिति । **बालस्य** इति दृष्टान्तस्य, वृद्धिर्यथाबालम् । यथा यथावत् भाष्ये बालदृष्टान्तस्य पुत्रदृष्टान्तेन वृद्धिर्यथावद् अव्ययीभावः । 'अव्ययं समीपसमृद्धिवृद्धि' इति सूत्रेण समासः । यथाबालमिति दृष्टान्तद्वयमादिर्यस्य तद्भाष्यं

वैयर्थ्यापत्तेः । अप्रामाणिकत्वं च । फलदाने कर्मापेक्षः । कर्मकारणे प्रयत्नापेक्षः । प्रयत्ने कामापेक्षः । कामे प्रवाहापेक्ष इति मर्यादारक्षार्थं वेदं चकार । ततो न

भाष्यप्रकाशः ।

भगवानेव कारणमिति सर्वत्र तत्कारणत्वाय तदानीं प्रयत्नोत्तरकाले फलदातृत्वाभिव्यापिका या इच्छा आलोचनाकारान्तःपातिनी तामेव श्रुतिरनुवदति, 'उन्निनीषत्यधोनिनीषति' इति । अतो गुणदोषकथनपूर्वकं बालेच्छानुसारिसामग्रीसंपादके पितरि यथा न दोषः, किंतु बालस्वभावे, तथा ब्रह्मण्यपि न दोषः, किंतु जीव एवेत्यर्थः । ननूक्तदृष्टान्तन्यायेनैव कारयतीत्यत्र किं गमकमित्याकाङ्क्षायां सूत्रोक्तं, विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्य इति हेतुं विवृण्वन्ति अन्यथेत्यादि । यद्युक्तन्यायं विहाय केवलं जीवकृतकर्मापेक्षः कारयतीत्येवाङ्गीक्रियते तदा विहितप्रतिषिद्धयोर्यागादिब्राह्मणहननादिरूपयोः कर्मणोर्वैयर्थ्यं स्यात् । पूर्वपूर्वजैवकर्मानुसरणे ईश्वरस्य तदधीनतया तेषामेव प्राधान्यात्तत एव दुःखवदप्रार्थितस्य सुखस्यापि सिद्धेः । आदिपदादप्रामाणिकत्वं च । इदं विहितमिदं निषिद्धमिति बोधकस्य प्रमाणव्यापारस्य वैयर्थ्यात् । अतो विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यप्रमाणव्यापारावैयर्थ्यप्रामाणिकप्रेक्षावत्कृतप्रमाणानुसरणेभ्यो हेतुभ्य इदं ज्ञायते, यत् फलदाने कर्मापेक्ष इत्यादिमर्यादारक्षार्थं तज्ज्ञापकं स्वनिःश्वासरूपं वेदं प्रकटीचकार, यथा लोके राज्यमर्यादारक्षकं नीतिशास्त्रम् । ततो, 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'

रश्मिः ।

यथाबालमित्यादि अज्ञमित्यर्थः । एवमिति कारणेषु स्वेन पञ्चकत्वे संपादने कृते **सति** । **एवे**ति 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इति श्रुतावेवकार इत्येवकारः । **तदानी**मित्यस्य विवरणं **प्रयत्ने**ति । फलदातृत्वे या इच्छा तामनुवदतीत्यत्र भाष्येऽभिव्यापकाधारे सप्तमीत्याशयेनाहुः **फले**ति । आलोचनाकारः 'बहुस्यां प्रजायेय'इत्यत्र बहुस्यामिति सोन्तःपाती यस्याः सा **आलोचनाकारान्तःपातिनी** उक्तेच्छा । **सर्वे**त्यादि भाष्यप्रयोजनमाहुः **अत** इति । **न दोष** इति । ननु बालदोषः पितुः स्मर्यतेऽतः कथं न दोष इति चेन्न नात्र बालः स्तनन्धयोऽपितु पूर्वव्यतिरिक्त इति न दोषः । **एवे**ति मुण्डके 'सर्व एव आत्मानो व्युच्चरन्ति' इति श्रावणाज्जीवस्यांशत्वाद्यथा लोकशरीरांशे दोषो न त्वंशिनि शरीरे तथेत्येवकारः । **एवे**ति एवकारः कर्माधीनेश्वरं व्यवच्छिनत्ति । **तत** इति पूर्वजीवकर्मभ्यः । **एवे**ति गौणमुख्यन्यायात् । **दुःखे**ति । तदुक्तं श्रीभागवते 'तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः । यल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा' इति । **अप्रामाणिकत्व**मितिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **आदी**ति सूत्रीयादिपदात् । पदशब्दप्रयोगः समासावयवसुपोर्लुका लुप्तत्वे पदत्वाभावेऽपि शब्दे पदत्वारोपात् व्यपेक्षालक्षणसामर्थ्ये । **अप्रमाणिकत्व**मिति भाष्ये प्रमाणेन प्राप्यत इति प्रामाणिकं विहितं प्रतिषिद्धं च कर्म । शैषिकः प्रत्ययः, न प्रामाणिकमप्रामाणिकम् नञ्तत्पुरुषः । तस्य भावोऽप्रामाणिकत्वमित्याशयेनाहुः **इद**मित्यादि । **इति बोधकस्ये**ति । इत्येवंप्रकारेण विहितत्वनिषिद्धत्वप्रकारको यो बोधः प्रमा तत्कर्तुः प्रमाणस्येति वक्तव्ये बोधयतीत्यत्र व्यापारनिष्ठव्यापारविवक्षया प्रमाणव्यापारस्येत्युक्तम् । व्यापारेण व्यापारिणो नान्यथासिद्धत्वमिति नाङ्गीकृतम् । अन्यशास्त्रत्वात् । **हेतुभ्य** इति त्रिभ्य इत्यर्थः । **फले**ति । फलदाने कर्मापेक्ष इत्यादिर्या मर्यादेत्यादिः । अत्र प्रवहणं प्रवाहः सर्गपरंपराया अविच्छेदः । **तज्ज्ञापकं** मर्यादाज्ञापकम् । **नीती**ति तच्च

ब्रह्मणि दोषगन्धोऽपि । नचानीश्वरत्वम् । मर्यादामार्गस्य तथैव निर्माणात् यत्रान्यथा स पुष्टिमध्य इति ॥ ४२ ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयपादे परात्तु तच्छ्रुतेरिति पञ्चदशमधिकरणम् ॥ १५ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

इति न्यायेन जीवकृतप्रयत्नानुसरणान्न ब्रह्मणि वैषम्यादिदोषगन्धः । नाप्यनीश्वरत्वम् । मर्यादामार्गस्य तादृशापेक्षावैशिष्ट्यपूर्वकत्वेन स्वयमेव निर्माणादिति । नन्वयमपि न नियमः । 'अहृयापृतम्' इति, 'ते नाधीतश्रुतिगणाः' इत्यादिवाक्येषु तदनपेक्ष्यैव गोकुलस्थेभ्यः फलदानकथनाच्छ्रुतावपि, 'सुहृदः पुण्यकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम्' इति कथनादित्यत आहुः यत्रेत्यादि । तथाचेदमपि लोकवत्तु लीलेति न्यायादेव समाहितम् । लोके राज्ञामपि कृपापात्रेषु तथा दर्शनादिति ।

विद्वन्मण्डने तु, 'स वै नैव रेमे' इति श्रुत्यनुसारेण, यती प्रयतन इतिधात्वर्थमादाय भगवत्कृतो यः क्रीडार्थमुद्यमः सोऽत्र प्रयत्नशब्दे गृहीतः । सिद्धान्तस्तूभयत्राप्येक एव । तेनात्रेदं सिद्धम्, फलदाने भगवान् जीवकृतप्रयत्नापेक्षोऽपि न स्वातन्त्र्याद्धीयते । तथैवालोचितत्वात्, आलोचनानुसारेण विविधं फलं जीवेभ्यो ददद‌पि, न वैषम्यादिदोषभाग् भवति, सर्वरूपत्वात् । कर्मणामप्यनादित्वं भगवद्धर्मत्वात् । क्वचिन्मर्यादां भिनत्त्यपि, स्वतन्त्रत्वात् । तथोक्तं द्वितीयस्कन्धसुबोधिन्याम्

> यत्किंचिद् दूषणं त्वत्र दूष्यं चापि हरिः स्वयम् ।
> विरुद्धपक्षाः सर्वेऽपि सर्वमत्रैव शोभते ॥ ४२ ॥ इति

इति पञ्चदशं परात्तु तच्छ्रुतेरित्यधिकरणम् ॥ १५ ॥

रश्मिः ।

बृहस्पत्यादिस्मृतिरूपम् । इयं वक्ष्यमाणप्रणाडी । तत इति भाष्यं विवृण्वन्ति स तत इति । **नचेति** भाष्यविवरणं **नापीति** । **मर्यादेति** भाष्यविवरणं **मर्यादेति** । माध्वभाष्यश्रुतिमाहुः **श्रुताविति** 'तस्य पुत्रा दायमुपयन्ति सुहृदः पुण्यकृत्याम्'इत्यादिः । अस्याः पुष्टिमार्गीयत्वं तु भगवदनुगृहीतस्य पुण्यकृत्यायाः भोगाभावेऽपि सुहृद्गामिनीत्वं पापकृत्याया भोगाभावेऽपि द्विषद्गामिनीत्वमितरेषां त्वेतयोर्भोगादेव क्षय इति न भोगाभावे मोक्षः । **तथेति** । इष्टदेशप्रापणप्रकारदर्शनादिति मतं भेत्तुमाहुः **विद्वन्मण्डन** इति । **गृहीत** इति । तेन सुबोधिन्यनुसारिप्रयत्नः न तु वेदव्यासमतवर्तिवल्लभमतप्रयत्न इति न मतभेदोप्यस्ति । **सिद्धान्त** इति वैषम्यनैर्घृण्यदोषपरिहाररूपः । **यत्रेति** भाष्यतात्पर्यमाहुः **क्वचिदिति** । पुष्टिप्रसङ्गात्किंचिदाहुः **यत्किंचिदिति** । **अत्रेति** अत्रशब्दयोः पुष्टिमार्ग इत्यर्थः । **स्वयमिति** तदात्मानमिति श्रुतेः । **एवकारस्तु** 'तदात्मान९ स्वयमकुरुत'इति श्रुतेः पुष्टिमात्रविषयत्वात् ॥ ४२ ॥

इति [1]चतुर्दशं परात्तु तच्छ्रुतेरित्यधिकरणम् ॥ १४ ॥

१. रश्मिकारमते चतुर्दशमधिकरणम् ।

अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके ॥ ४३ ॥ (२-३-१६)

जीवस्य ब्रह्मसंबन्धिरूपमुच्यते । जीवो नाम ब्रह्मणोंऽशः । कुतः । नानाव्यपदेशात् । 'सर्व एवात्मानो व्युच्चरन्ति कपूयचरणा रमणीयचरणाः' इति च ।

ननु ब्रह्मणो निरवयवत्वात् कथं जीवस्यांशत्वमिति वाच्यम् । न हि ब्रह्म निरंशं सांशमिति वा क्वचिल्लोके सिद्धम् । वेदैकसमधिगम्यत्वात् । सा च

भाष्यप्रकाशः ।

अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके ॥ ४३ ॥ अधिकरणमवतारयन्ति जीवस्येत्यादि । स्वसंबन्धि तु, 'ज्ञोऽत एव' इति सूत्रे ज्ञानरूपत्वबोधनादुक्तम् । इदानीं 'यो यदंशः स तं भजेत्'इति भजनयोग्यत्वं वक्तुं मतान्तरवद् अन्यत्वं परिहर्तुं मुक्तिदशायां ब्रह्मत्वव्यपदेशस्य मुख्यवृत्तत्वे हेतुं बोधयितुं ब्रह्मानेकत्वं च परिहर्तुं ब्रह्मसंबन्धिरूपकथनार्थमिदमारभ्यत इत्यर्थः । सूत्रं विवृण्वन्ति जीवो नामेत्यादि । नानाव्यपदेशादिति नानात्वेन व्यपदेशो नानाव्यपदेशस्तस्मात्, श्रुतौ बहुत्वसंख्याविशिष्टत्वेन कथनाद् ब्रह्मणः सकाशाद् विस्फुलिङ्गवद् विभागकथनाच्चेत्यर्थः ।

विद्वन्मण्डने तु नानाविधो व्यपदेशो नानाव्यपदेशः, क्वचिद् ब्रह्मत्वेन, क्वचिद्विभक्तत्वेन, क्वचिदज्ञत्वेन, क्वचिच्चिद्रूपत्वेन, क्वचिदीशितव्यत्वेन, क्वचिदणुत्वेन, क्वचिद् व्यापकत्वेनेत्येवंरूपः । 'अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः', 'सर्व एवात्मानो व्युच्चरन्ति', 'ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशौ', 'विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय', 'क्षरात्मानावीशते देव एकः', 'एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः,' 'तद्वज्जीवो नभोपमः' इत्यादिषु । तस्माद् ब्रह्मणोंऽश एव जीवः, न ह्येवं विरुद्धधर्माश्रयत्वं कार्यस्य संभवतीत्यपि व्याख्यातम् ।

अत्रैकदेशिभिर्दर्शनान्तराभिमानिभिश्च कृतामाशङ्कामनूद्य निषेधन्ति ननु ब्रह्मण इत्यादि ।

रश्मिः ।

अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधीयत एके ॥ ४३ ॥ अत्रेति एककार्यत्वसंगत्यावतारयन्तीत्यर्थः । तामेवाहुः स्वेति । किमन्यजीवसंबन्धिरूपमिति जिज्ञासयाधिकरणावतरणात् । ज्ञोऽत इति । अन्याधिकरणानामेतन्मूलत्वादव्यवहितमधिकरणं परित्यज्यैतदुपात्तम् । स्वं जीवः जीवत्वविशिष्टः विशिष्टे शक्तं जीवपदं तत्संबन्धः समवायोस्यास्तीति जीवसंबन्धिरूपमित्यर्थः । स्वं स्वीयं जीवत्वं वा संबन्धस्तु स एवान्यत्पूर्ववत् । जीवो नामेत्यादीति । भाष्ये ब्रह्मणोंऽश इति छान्दसप्रयोगो बाहुलकात् । नानेति सूत्रे भावप्रधान इत्याशयेनाहुः नानात्वेनेति । बोधनार्थं त्वलं तेन समासविग्रहो न तु समासघटकः । सर्व इति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म श्रुताविति मुण्डकश्रुतौ । इत्यर्थ इति भाष्ये कपूयचरणा इत्यस्याः निन्दिताचरणा इत्यर्थः । रमणीयचरणाः आत्मानः । नानाविध इति विध इति बोधनार्थं न समासघटकम् । एवेति अत्र मायिकजीवव्यवच्छेदक एवकारः । चतुर्थस्कन्धे मायिको जीव इति अन्यभाषा । तदुपबृंहितं क्रोधमय इति शारीरकब्राह्मणमप्यन्यभाषा । एवं विरुद्धेति अणुत्वव्यापकत्वरूपविरुद्धेत्यर्थः । अपि व्येति । सूत्राणां सारवद्विश्वतोमुखत्वात्पदार्थसंभावनायामपिः । ननु ब्रह्मण इत्यादीति । अनेनाभासे

श्रुतिर्यथोपपद्यते तथा तदनुल्लङ्घनेन वेदार्थज्ञानार्थं युक्तिर्वक्तव्या । सा चेत् स्वयं नावगता, तपो विधेयम् । अभिज्ञा वा प्रष्टव्या इति । न तु सर्वविप्लवः कर्तव्यः । तत्रैषा युक्तिः—

'विस्फुलिङ्गा इवाग्नेर्हि जडजीवा विनिर्गताः' ।
'सर्वतःपाणिपादान्तात् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखात्' ।
'निरिन्द्रियात् स्वरूपेण तादृशादिति निश्चयः' ।

भाष्यप्रकाशः ।

निषेधे हेतुं व्युत्पादयन्ति न हि ब्रह्मेत्यादि । युक्तिर्वक्तव्येति यथा न्यग्रोधफलमाहरेत्यादिः । तपो विधेयमिति 'तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व' इति श्रुतेः । अभिज्ञा वा प्रष्टव्या इतीति 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' इत्यादिश्रुतेः । इति प्रकारे एवं श्रौतेन प्रकारेण ब्रह्म ज्ञातव्यं, न त्वेकदेशमादाय सर्वश्रुतिविप्लवः कर्तव्यः । 'योऽन्यथा सन्तमात्मानम्' इति श्रुत्युक्तदोषप्रसङ्गादित्यर्थः । एवं हेतुकथनावश्यकत्वं व्युत्पाद्य श्रुतिसिद्धयुक्तिरूपमंशपक्षाङ्गीकारे हेतुमाहुः तत्रेत्यादि । 'जडजीवा विनिर्गताः' इति व्युच्चरणश्रुतौ 'एतस्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि' इत्युक्त्वा, 'सर्व एवात्मानो व्युच्चरन्ति' इति कथनात् ते परस्परविलक्षणतया निर्गताः । सर्वत इत्यादि । श्वेताश्वतरे, 'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोहस्त उत विश्वतस्पात्, संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः' इति, 'सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्, सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति,' 'सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्' इति श्रावणात् तथा ।

रश्मिः ।

निषेधन्तीत्युक्त्या नन्विति भाष्ये नोश्चार्थे प्रयोग इति ध्वनितम् । न न्विति शब्दद्वयं नकारो निषेधार्थः । नु स्तुतौ । 'निस्तु नेतरि नुः स्तुत्यां नौस्तर्यां पस्तु पातरि । पवनजलपाने च फो झञ्झानिलफेनयोः' इत्येकाक्षरीनाममालायाममर आह । तथा च ब्रह्मणो निरवयवत्वाज्जीवस्यांशत्वं स्तुतिरूपमर्थवादरूपं कथं केन प्रकारेणेति न वाच्यमिति, न चार्थयोर्नन्विति च्छान्दसो वा क्वचिदन्यदेवेति बाहुलकस्य काप्यदर्शनादत्र कल्पनम् । ब्रह्मवादत्वात्तु मान्यम् । 'वदेदुन्मत्तवद्विद्वान्' इति वाक्यात् । चेदिति लिखितव्ये वाच्यमित्यन्यत्र भावे मनसो वा ज्ञापकम् । अनाग्रहो वा 'अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्रदर्शनम्'इत्येतेषामाचार्याणां वाक्याद्भगवदिच्छायां कृतः । परं व्याख्यातोऽस्माभिः । 'यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि' इति भावेन भागवतमतीयानामनाग्रहो वा बोध्यः । लेखकप्रमादो वा । न्यग्रोधेति । 'श्वेतकेतुर्हारुणेयः' इत्यष्टमे प्रपाठकेऽस्ति । न्यग्रोधफलमत आहरेत्यपि पाठः । श्रोत्रियमिति । 'श्रोत्रियश्छन्दोधीते' । ब्रह्मणि निष्ठा भक्तिर्यस्य तं ब्रह्मनिष्ठम् । इत्यादीति आदिना 'अथ ते यदि कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः युक्ता आयुक्ताः अलूक्षा धर्मकामाः स्युः यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः' इत्यस्याः संग्रहः । श्रुतेरित्येकत्वमविवक्षितम् । उपलक्षणं वोक्तश्रुतेः । इतिरिति 'अव्ययादाप्सुपः' इति सूत्रेण न लुक् तत्र कारणमनुकृतिशब्दत्वम् । श्रुतिसिद्धेति । ननु श्रौतं सर्वं तथैव परं तु युक्तिस्तु काचिद्वक्तव्येत्याकाङ्क्षायां तथा । संमिति बाहुभ्यामग्निसूर्याभ्यां धमति । ध्मा अग्निसंयोगे । 'पाघ्राध्मा' इति धमादेशः । पतत्रै रश्मिभिः ।

'सदंशेन जडाः पूर्वं चिदंशेनेतरे अपि ।
अन्यधर्मतिरोभावान्मूलेच्छातोऽस्वतन्त्रिणः' इति ॥

ब्रह्मवादे अंशपक्ष एव ।

ननु अंशत्वे सजातीयत्वमायाति । श्रुत्यन्तरे पुनर्ब्रह्मदाशा ब्रह्मेमे कितवा उत । अत्र सर्वस्यापि ब्रह्मविज्ञानेन विज्ञानप्रतिज्ञानाद् दाशादीनामपि ब्रह्मत्वं प्रतीयते । तत्कार्यत्व एव स्यादिति चेन्न । अन्यथा चापि प्रकारान्तरेणापि

भाष्यप्रकाशः ।

एवं सृष्टिं कारणस्वरूपं चोक्त्वा जडजीववैलक्षण्ये हेतुमाहुः सदंशेनेत्यादि । वैलक्षण्ये क्रमे च विस्फुलिङ्गश्रुतिरेव प्रमाणमिति वैलक्षण्यरूपात् कार्यादेवं कारणविभागोऽनुमीयते । 'स इममेवात्मानं द्वेधाऽपातयत् ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्' इति श्रुत्यन्तरे तथा दर्शनात् । जडजीवयोर्विरुद्धधर्माधारत्वाभावे युक्तिमाहुः अन्येत्यादि । अन्य आनन्दांशस्तस्य धर्मो विरुद्धधर्माश्रयत्वं तस्य तिरोभावो येषु तादृशाः । तत्र हेतुर्मूलेच्छा, 'प्रजायेय' इतीच्छा ततः । अस्वतन्त्रिण इति स्वतन्त्रो ब्रह्मभावस्तद्वन्तः स्वतन्त्रिणस्तद्भिन्ना ब्राह्मेभ्यो देहादिभ्यो मुक्तेभ्यो जीवेभ्यश्च भिन्ना इत्यर्थः । तथाचैवं श्रुतौ लोकविरुद्धस्य सर्वतःपाणिपादत्वादेः श्रावणेन ब्रह्मणि निरंशेऽपि लोकविरुद्धस्य सांशत्वस्य व्युच्चरणादिश्रुतिबलेनाङ्गीकर्तुं शक्यत्वाद् विरुद्धधर्माश्रयत्वं युक्तिरिति तया श्रुतिमूलकयुक्त्या ब्रह्मवादे अंशपक्ष एवाद्रियते, तं विहाय केवलं निष्कलश्रुतिं पुरस्कृत्यौपचारिकांशत्वकल्पनया सर्वश्रुतिविप्लवो न कर्तव्यः । ब्रह्मणो लोकविलक्षणत्वादित्यर्थः । अंशत्व एव किंचिदाशङ्क्य सूत्रांशेन परिहरतीत्याशयेनाहुः नन्वित्यादि । अत्रेति अस्यां श्रुतौ । तत्कार्यत्व एव स्यादिति तेषां ब्रह्मत्वं ब्रह्मकार्यत्व एव युज्येत, घटमृदोरिव दाशादिब्रह्मणोर्वैजात्यस्य स्फुटत्वात् । तथाच व्युच्चरणश्रुत्युक्तानां प्राणलोकादीनामिवात्मनामपि

रश्मिः ।

जडजीवेति । व्युच्चरन्तीत्यत्र वि विशेषेण वैलक्षण्येन । अनुमीयत इति कार्यं विभक्तं वैलक्षण्यात्, घटपटादिवत् यन्नैवं तन्नैवं अनेकघटवदित्येवमनुमीयते । स इममिति बृहदारण्यके पुरुषविधब्राह्मणेऽस्ति । अपातयदित्यत्र पतनं विभागानुकूलो व्यापार इति तथा । जडेति कारणधर्मयोग्ययोः । तद्भिन्ना इति । अस्वतन्त्रिण इत्यत्र भेदो नञर्थ इति भावः । 'स्वतन्त्रः कर्ता' इति न व्याख्यातम् । अन्वयासंभवादतस्तिरोहितस्यानन्दस्याविर्भावो ब्रह्मभावस्तद्वान्भक्तिलाभे सति स विचिकीर्षितः कर्तृत्वे मुख्यो मुख्यत्वप्रयोजकः सर्वात्मभावस्ततोपि मुख्य इति सोर्थ उक्तः । युक्तिरिति 'आगमस्याविरोधेन ऊहनं तर्क उच्यते' इत्यमृतबिन्दूपनिषदः । ऊहनं विरुद्धधर्माश्रयत्वस्येति विरुद्धधर्माश्रयत्वपदं स्वोहने लाक्षणिकम् । विरुद्धधर्माणामाश्रय आश्रयणं यत्रोहन इति बहुव्रीहिर्वा । ब्रह्मवाद इति भाष्यविवरणं ब्रह्मवाद इति । एवेति । अनेकभूतभौतिकदेवतिर्यङ्मनुष्यानेकलोकाद्भुतरचनायुक्तब्रह्माण्डकोटिरूपस्य मनसाप्याकलयितुमशक्यरचनस्यानायासेनोत्पत्तिस्थितिभङ्गकरणं न लौकिकमिति भाष्येऽशक्यरचनस्येत्युक्त्यानिर्वचनीयकर्तृत्वाद्युक्तेरेवेति अन्यथा नित्याणुपरिमाणकभगवत्संबद्धो जीवोत्र कुत उत्पद्येत । लोकेति अनिर्वचनीयत्वात् । इम इति प्रत्यक्षगेन प्रयोगेण । एवेति केवलानां जीवानामप्रत्यक्षत्वात-

एके शाखिनो दाशकितवादित्वमधीयते शरीरत्वेन, अंशत्वेन च स्वरूपतः कार्याभावेऽपि प्रकारभेदेन कार्यत्वात् । तथाच न साजात्यम् । आनन्दांशस्य तिरोहितत्वात् । धर्मान्तरेण तु साजात्यमिष्टमेव ॥ ४३ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

कार्यत्वमेवाङ्गीकार्यं न त्वंशत्वमिति शङ्कार्थः । प्रकारान्तरं विवृण्वन्ति एक इत्यादि । स्यात् कार्यत्वं, यदि दाशादीननूद्य ब्रह्मत्वं विधीयेत विधीयते तु विपरीतम्, अतो ब्रह्मण एव शरीरत्वं तन्निविष्टत्वं च इम इत्यनेन सजीवानामेव देहानां परामर्शात् । तन्निविष्टत्वं चांशद्वारैव संभवति यथा चन्द्रमसो जलादिषु वह्नेरयःपिण्डादिषु । अत एके शाखिनो ब्रह्मणो दाशकितवादित्वं शरीरत्वेन अंशत्वेन चाधीयते अतस्तान्दाशाननूद्य विधेयभावान्यथानुपपत्त्या अंश एव जीवः । नच साजात्याभावो बाधक इति वाच्यम् । जीवस्य स्वरूपतो जन्माभावेन कार्यत्वाभावेऽपि ब्रह्मणः सकाशाद् विभागे शरीरप्रवेशतः प्रकारभेदेन कार्यत्वात् । तथाच स्थूलसूक्ष्मशरीराऽभिमानान्न साजात्यम् । अभिमानश्चानन्दांशस्य तिरोहितत्वात् तत्तिरोधानस्य च तदर्थप्रयत्नानुमेयत्वात् । अतोऽपि न साजात्यम्, धर्मान्तरेण चित्स्वरूपत्वनित्यत्वादिना तु साजात्यमिष्टमेव, 'सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः' इति मुण्डके श्रावणात् । अतः साजात्याभावस्यान्यहेतुकत्वाद् वस्तुतः साजात्यस्य सत्त्वादेतच्छ्रुतिविचारेऽप्यंश एव जीव इति परिहारग्रन्थाशयः ॥ ४३ ॥

रश्मिः ।

ह्यवच्छेदक एवकारः । एक इति........। एवेति व्याकृतः । **स्वरूपत** इति भाष्यं विवरीतुमाहुः न चेत्यादि उपपादितः **साजात्याभावः** स चांशत्वेन शरीरत्वेन ब्रह्मसाजात्यं नास्तीति प्रत्ययगम्यः अंशत्वे **बाधकः** सजातीयविजातीयस्वगतद्वैतवर्जिते विजातीयसत्त्वाभावात् । भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **जीवस्ये**ति । **विभाग** इति व्युच्चरणरूपे सति । **प्रकारे**ति 'अनित्ये जननं नित्ये परिच्छिन्ने समागमः' इत्यत्र समागमरूपप्रकारभेदेन तथेत्यर्थः । **स्थूले**ति । अस्माद्धेतोरंशत्वेन शरीरत्वेन च न ब्रह्मसाजात्यम् । **अभिमान** इति । ननु विद्वन्मण्डने आनन्दांशतिरोभावस्तु जीवभावप्रयोजक उक्तोऽत्र त्वभिमानः प्रयोजक उक्त इति चेन्न । अनुभवानुरोधादुक्तम् । ज्ञानतिरोभावाद्देहाद्यहंबुद्धिरिति विद्वन्मण्डनं तु शास्त्रानुरोधात् 'नाहं किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्'इति शास्त्रम् । **अनुमेये**ति । अनुमातुं योग्यमनुमेयम् । जीवः आनन्दतिरोभाववान्, तदर्थप्रयतनात्, देवदत्तवदिति । **अतोऽपी**ति अपिशब्देन प्रकारभेदो ग्राह्यो य उक्तः । **चिदि**ति आदिना सत्त्वं 'सदेव सौम्य'इति श्रुतेः । द्वितीयस्कन्धनवमेध्यायेप्युक्तम् । **एवे**ति सर्वसंमतत्वादेवकारः । **सरूपा** इति समानरूपाः सजातीया इत्यर्थः । पादार्थसंगमनायापि साजात्यासाजात्यबोधकश्रुतिविरोधं परिजह्रुः **अत** इति । **अन्ये**त्यादि एके शाखिन इत्युक्त्यान्यद् अंशत्वं शरीरत्वं तद्धेतुकत्वात् । **एतच्छ्रुती**ति तयोः 'यथाग्नेः क्षुद्राः' 'ब्रह्मदाशाः' इत्येतयोः श्रुत्योर्विचारे इत्यर्थः । **एवे**ति उक्तभाष्यादेवकारः । तेन मुण्डकस्था यथाग्नेरित्यादि ब्रह्मदाशा इत्यादि च **विषयवाक्यम्** । जीवा अंशा वा सशरीरा वेति संशयः सशरीरा जीवा औपाधिकजीवत्वादिति **पूर्वपक्षः** । सिद्धान्तस्तु एतच्छ्रुतिविचारेप्यंश एव जीव इति ॥ ४३ ॥

मन्त्रवर्णात् ॥ ४४ ॥

'पुरुष एवेदꣳ सर्वम्' इत्युक्त्वा, 'पादोऽस्य विश्वाभूतानि' इति भूतानां जीवानां पादत्वं, पादेषु स्थितत्वेन वा अंशत्वमिति ॥ ४४ ॥

अपि स्मर्यते ॥ ४५ ॥

वेदे स्वतन्त्रतया उपपाद्य वेदान्तरेऽपि तस्यार्थस्यानुस्मरणम्, 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः' इति ॥ ४५ ॥

प्रकाशादिवन्नैवं परः ॥ ४६ ॥

जीवस्यांशत्वे हस्तादिवत् तद्दुःखेन परस्यापि दुःखित्वं स्यादिति चेन्न । एवं परो न भवति । एवमिति प्रकारभेदः । द्विष्टत्वेनाऽनुभव इति यावत् ।

भाष्यप्रकाशः ।

मन्त्रवर्णात् ॥ ४४ ॥ श्रुत्यन्तरसंमतिं दर्शयितुं हेत्वन्तरं वदतीत्याशयं स्फुटीकुर्वन्ति पुरुष एवेत्यादि । पुरुषसूक्तव्याख्यानाऽध्याये, 'पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः' इति व्याख्यानात् पक्षान्तरमाहुः पादेष्वित्यादि ॥ ४४ ॥

अपि स्मर्यते ॥ ४५ ॥ अर्थस्तु स्फुटः ॥ ४५ ॥

प्रकाशादिवन्नैवं परः ॥ ४६ ॥ एवं त्रिभिर्जीवस्यांशत्वं निर्द्धार्यांशत्वे प्राप्तान् दोषान् परिहरतीत्याशयेन सूत्रं व्याकुर्वन्ति जीवस्येत्यादि । अंशत्वे हस्तादिवदिति । हस्तादिवदंशत्व इत्यन्वयः । परिहारं व्याकुर्वन्ति । एवं पर इत्यादि । अत्र, नैवं पर इति निषेधेन प्रकारभेदो बोध्यते, तेन तद्धेतुभूतः प्रकारोऽपि भेदकत्वेन सूच्यते, तथाच यस्मात् परो जीववन्न तस्माज्जीववद् दुःखी नेति । तथा सत्येवमिति जीवनिष्ठः प्रकारभेद उच्यते । स च दुःखे द्विष्टत्वेनानुभवरूपः । स तु परस्य नास्ति, किंतु प्रियत्वेनानुभवरूपः । अतः परोऽन्यथा ।

रश्मिः ।

मन्त्रवर्णात् ॥ ४४ ॥ **पादत्वमंशत्वमिति श्रुत्यन्तरेत्यादिः । पुरुष एवेत्यादीति** । **इदं** परिदृश्यमानं जगत् **अस्य** पुंसः **पादो विश्वानि भूतानी**त्यर्थः । **पुरुषेति** श्रीभागवते द्वितीयस्कन्ध इत्यादिर्बोध्यः । **पादेष्विति** । अत्र विशेषो ज्योतिश्चरणाधिकरणे विवृतः । **पक्षेति** पादाधिकरणपक्षमाहुः ॥ ४४ ॥

अपि स्मर्यते ॥ ४५ ॥ **स्फुट** इति । भाष्ये **वेदान्तर** इति इतिहास इत्यर्थः । 'इतिहासपुराणं वेदानां पञ्चमो वेदः' इति श्रुतेरित्येवं स्फुट इत्यर्थः ॥ ४५ ॥

प्रकाशादिवन्नैवं परः ॥ ४६ ॥ ननु भाष्य एव **परो** नेति परे नकारान्वयो भातीत्येवमिति । **प्रकारभेद** इति भाष्यं कथमित्याकाङ्क्षायामाहुः **अत्र नैवं पर** इति । नकारार्थो भेदः एवमार्थप्रकारस्तस्य प्रकारस्य प्रतियोगितासंबन्धेन नकारार्थेऽभेदेऽन्वयः । एवं प्रकारभेदस्तदाहुः **प्रकारेति । तद्धेत्विति** नकारार्थभूताभावहेतुभूतः । अभावज्ञानस्य प्रतियोगिज्ञानाधीनत्वात् । **भेदकत्वेन** ब्रह्मणः सकाशाद्भेदकत्वेन । **एवमितीति** व्याख्येयम् । **एवमिति** जीवनिष्ठः प्रकारस्तस्य भेद इत्येकदेशान्वयः चैत्रस्य गुरुकुलमितिवत् । नकारार्थस्य प्रकारप्रतियोगित्वं भाष्ये तु परप्रतियोगित्वं नकारार्थस्येत्याशङ्कापास्ता । नैवं पर इत्यन्वयाङ्गीकारात् । **स चेति** प्रकारभेदः । **द्विष्टत्वेनेति** प्रतिकूलवेदनीयत्वेन । भेदेन सहानुभवाभेदान्वयासंभवाद्रूपान्तम् ।

अन्यथा, सर्वरूपत्वात् । कुत एवं तत्राह । प्रकाशादिवत् । 'नाग्नेर्हि तापो न हिमस्य तत् स्यात्' इति । प्रकाशग्रहणं धर्मत्वद्योतनाय । दुःखादयोऽपि ब्रह्मधर्मा इति । अतो द्वैतबुद्ध्या अंशस्यैव दुःखित्वं, न परस्य । अथवा प्रकाशः प्रकाश्यदोषेण यथा न दुष्टः । रूपस्यापि तदंशत्वादिति ॥ ४६ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

तत्र हेतुः **सर्वरूपत्वादिति** । तथाच पूर्वसूत्रे यथा दाशकितवादिरूपस्तथात्र दुःखरूपोऽपि, अतो दुःखे दुःखत्वेन भानरहितत्वात् परो नैवमित्यर्थः । न हि स्वस्य स्वस्मिन्नप्रियत्वं भासते । ननु कुत एवमवगम्यते, तत्राह **प्रकाशादिवदिति** । यथा प्रकाशशैत्यादयो धर्मा नाग्निहिमादीनां दुःखद्विष्टत्वबुद्धिजनकास्तथा दुःखमपि परस्य न दुःखजनकं, न वा द्विष्टत्वानुभवजनकमित्यर्थः । वाक्यं तु एकादशस्कन्धे भिक्षुगीतास्थम्, 'कालस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत् किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ । नाग्नेर्हि तापो न हिमस्य तत् स्यात् क्रुध्येत कस्मै न परस्य द्वन्द्वम्' इति अत्र परस्येतिपदस्यांशिन इत्यर्थो बोध्यः । दुःखादीनां ब्रह्मधर्मत्वमानन्दतिरोभावरूपत्वात् । 'आविर्भावतिरोभावौ शक्ती वै मुरवैरिणः' इति वाक्येन तिरोभावस्य भगवद्धर्मत्वादिति । ननु तर्ह्यग्न्यादिवदिति कुतो नोक्तं तत्राहुः **प्रकाशेत्यादि** । तथाचाग्न्यादिवदित्युक्ते सामर्थ्यविशेषादेव प्रकारभेदो बुध्येत, न तु धर्मधर्मिभावात्, अतस्तद्बोधनार्थं तथा नोक्तमित्यर्थः । एतस्य पक्षस्य दुरूहत्वेन क्लिष्टत्वात् पक्षान्तरमाहुः **अथवेत्यादि** । रूपस्य प्रकाशांशत्वं तु, 'सूर्यश्चक्षुस्तथा रूपं ज्योतिषो न पृथग् भवेत्' इति द्वादशस्कन्धे उक्तम्, तथाच सौरः प्रकाशो रूपप्रकाशकः प्रकाश्यं रूपमपि तदंशस्तथापि तद्दोषेण यथा प्रकाशस्य न दुष्टत्वं तथा जीवस्याभिमानादिदोषग्रासेऽपि न परस्य तद्दोषवत्त्वमित्यर्थः । क्वचित्तु पापस्यापि तदंशत्वादिति पाठः । तदा त्वादिपदेन सूत्रे पापं ग्राह्यम् । तथाच 'धर्मः स्तनोऽधर्मपथश्च पृष्ठः' इति वाक्यात् पापं विराजोंऽशः । तस्माद् यथा विराजो न दुःखं तद्वदित्यर्थो वाच्यः ॥ ४६ ॥

रश्मिः ।

द्विष्टत्वेन योनुभवो द्विष्टज्ञानं तेन रूप्यते व्यवह्रियते उक्तज्ञानविषय इत्यभेदान्वयः । यद्वा प्रकारभेदः प्रकारविशेषः । 'भेदो द्वैधे विशेषे स्यात्' इति विश्वात् । भेदोऽभाव इति नैयायिकाः । तेनानुभवेनाभेदान्वयः सुष्ठु भाष्ये संगच्छते । यद्वा तद्धेतुभूत इत्यस्य प्रकाशस्थस्य प्रकारविशेषहेतुभूतः प्रकारः, सामान्यप्रकार इत्यर्थः । भेदकत्वेनेत्यस्य विशेषकत्वेनेत्यर्थः । भिदिर् विदारणे । यत्किंचिदज्ञानविदारणे विशेषक इति यावत् । 'विशेषकः स्यात्तिलके विशेषावाहकेपि च' इति विश्वः । **अन्यथेत्यादि** भाष्यं विवरीतुमाहुः **स त्विति** । अन्यथेति भाष्यं व्याकुर्वन्ति स्म **अत** इति । **अन्यथेति** । **इदं** भाष्यं । प्रियत्वेन द्विष्टानुभवः प्रकारः परस्य सर्वसमत्वात् न द्विष्टत्वेन द्विष्टानुभवः । ईश्वरे द्विष्टानुभावस्तु नास्ति । 'ऋतं तपः सत्यं तपः' इति श्रुतेः । द्वितीयस्कन्धनवमाध्याये तप संताप इत्यस्य ग्रहणात् । **अत** इति समत्वात्सर्वरूपत्वाद्वा इति । **कुत** इत्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **ननु कुत** इति । **प्रकाशेति** आदिशब्देन विषम् । **अग्निर्हिमेति** आदिना सर्पः । **दुःखेति** दुःखे द्विष्टत्वबुद्धेर्जनका । **इत्यर्थ** इति अर्थः श्रीधर्यां स्फुटः । **सामर्थ्येति** स्वभावमिह सामर्थ्यं वदन्ति । **धर्मेति** तद्वृत्तित्वं धर्मत्वम् । **अत** इति दधिदुग्धवद्रूपघटवच्चेति दृष्टान्तसत्त्वाच्च । **पापस्येति** पाठः । रूपस्येति पठित्वा व्याचख्युः **रूपस्येति** । **विराजोंश** इति परंपरया बोध्यः पृष्ठांशत्वात् ॥ ४६ ॥

स्मरन्ति च ॥ ४७ ॥

स्मरन्ति च सर्वेऽपि ऋषयोंऽशिनो दुःखसंबन्धं स्मरन्ति ।

'तत्र यः परमात्मा हि स नित्यो निर्गुणः स्मृतः ।
न लिप्यते फलैश्चापि पद्मपत्रमिवांभसा' ॥ इति ।
'कर्मात्मा त्वपरो योऽसौ मोक्षबन्धैः स युज्यते' ।
'एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः' । चकारात्,
'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति' ॥ ४७ ॥

अनुज्ञापरिहारौ देहसंबन्धाज्ज्योतिरादिवत् ॥ ४८ ॥

ननु जीवस्य भगवदंशत्वे विधिविषयत्वाभावात् कर्मसंबन्धाभावेन कथं

भाष्यप्रकाशः ।

स्मरन्ति च ॥ ४७ ॥ स्मरन्ति च ऋषय इति ग्रहणकमग्रे व्याख्यानम् । निर्गुण इति प्राकृतसंसर्गशून्यः । एकस्तथेति श्रुतिस्तु कठवल्लीस्था । एतत्पूर्वार्द्धं तु, 'सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः' इति । द्वितीया श्वेताश्वतरस्था । एतत्पूर्वार्द्धं 'द्वा सुपर्णा' इत्यादि । तया विरुद्धधर्मवत्त्वं भेदश्च जीवपरमात्मनोः सिद्ध्यति । एवं सूत्रद्वयेन एको दोषः परिहृतः । पूर्वश्रुतौ चाक्षुषैरित्यस्य तत्तच्चक्षुःसंबन्धिभिस्तिमिरादिभिरित्यर्थः ॥ ४७ ॥

अनुज्ञापरिहारौ देहसंबन्धाज्ज्योतिरादिवत् ॥ ४८ ॥ पुनर्दोषान्तरमाशङ्क्य परिहरतीत्याहुः नन्वित्यादि । अयमर्थः । 'कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात्' इत्यत्र ब्रह्मण आप्तकामत्वेन फलानुपयोगाज्जडस्य च ज्ञानाद्यभावेन कर्मकरणस्याशक्यत्वाद् विधिनिषेधशास्त्रमनर्थकं स्यादिति, तत्परिहारार्थं जीवस्य विधिनिषेधविषयतया कर्तृत्वमङ्गीकृतम् । अंशत्वे तद्विरुध्यते । भगवत इव जीवस्यापि तथात्वस्याऽवश्यवक्तव्यत्वेन कथं फलसंबन्धः । तथाच विधिनिषेधवैयर्थ्य-

रश्मिः ।

स्मरन्ति च ॥ ४७ ॥ ग्रहणकमिति वार्तिकमेवेदं भाष्यप्रकाशम् । घञन्तं पुंसीत्यस्य लौकिकत्वात् सूत्रापेक्षितं ग्रहणयतीति ग्रहणकं सूत्रशेषमिति यावत् । अग्र इति । ननु झेर्विवरणमृषय इति तत्कुतो न व्याख्यानमिति चेत्सत्यम् । व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि संदेहादलक्षणमित्यभियुक्तोक्तेर्न व्याख्यानम् । **प्राकृतेति** प्राकृतगुणशून्यः । गौणश्चेन्नात्मशब्दात्' इति सूत्रात् । **एक** इति । ननु स्मृत्युपन्यासे कुतः श्रुत्युपन्यास इति चेन्न, सर्व इत्युक्तत्वेन सर्वज्ञानस्याभावात् सर्वस्मृतिमूलश्रुत्युपन्यासमन्तरा निर्वाहाभावात् । **चक्षुरिति** आधिदैविकम् । **बाह्येति** दुष्टस्थलशवरजस्वलादिदर्शनभाषणजदोषैः । **द्वा सुपर्णेति** । 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते' इति । **विरुद्धेति** पुरुषत्वसुपर्णत्वरूपविरुद्धर्मवत्त्वम् । अन्यपदेन भेदश्च । **अभिचाकशीति** पश्यति । **एक** इति दुःखसंबन्धित्वरूपः । **तिमिरेति** आदिशब्देन दुष्टस्थलेत्यादिदोषास्तेन दुष्टेत्यादिना पूर्वमुक्ताः ॥ ४७ ॥

अनुज्ञापरिहारौ देहसंबन्धाज्ज्योतिरादिवत् ॥ ४८ ॥ **तथात्वस्येति** कर्म-

फलसंबन्धः । जीवस्य च पुनरनेकदेहसंबन्धात् कः शूद्रः, का भार्येति ज्ञानमप्यशक्यमतः कर्ममार्गस्य व्याकुलत्वात् कथं जीवस्यापि दुःखित्वमित्याशङ्क्य परिहरति ।

अनुज्ञापरिहारौ विधिनिषेधौ, जीवस्य देहसंबन्धाद् यो देहो यदा गृहीतस्तत्कृतौ । यथा शवाग्निश्चण्डालभाण्डस्थमुदकं तद्घटादिश्च परिह्रियते । एवमुत्कृष्टं परिगृह्यते । तथा जीवेऽपि देहसंबन्धकृतः । संबन्धश्चाध्यासिको भगवत्कृतश्च । आध्यासिको हि ज्ञानान्निवर्तते । द्वितीयो भगवतैव । जीवन्मुक्तानामपि व्यवहारदर्शनात् । श्रुतिस्तु भगवत्कृतसंबन्धमेवाश्रित्याग्निहोत्रादिकं विधत्ते । अन्यथा विद्यां स्वज्ञानं च बोधयन्ती कर्माणि न विदध्यात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

तादवस्थ्यात् तत्सूत्रव्याघातः । किंच । शास्त्रस्य जीवाधिकारकत्वाज्जीवस्य चानेकदेहसंबन्धात् को जीवः शूद्रः, का भार्येति ज्ञानमप्यशक्यम् । तदज्ञाने, 'ऋतौ भार्यामुपेयात्', 'न शूद्राय मतिं दद्यात्' इत्याद्यनुज्ञापरिहारविषयज्ञानाभावः । अतः कर्ममार्गस्य व्याकुलत्वाद् विहितनिषिद्धाव्यवस्थितौ कथं जीवस्यापि निषिद्धफलभूतं दुःखित्वमिति द्वयमाशङ्क्य परिहरतीति । परिहारं व्याकुर्वन्ति अनुज्ञेत्यादि । सत्यं, जीवस्य यद्यपि भगवदंशत्वान्न स्वरूपतो विधिनिषेधविषयत्वं, तथापि तत्तद्देहसंबन्धकृतमागन्तुकं तद् भवत्येव, यथाग्न्युदकपृथिवीनां स्वतो विध्याद्यविषयत्वेऽपि शवादिसंबन्धान्निषेधविषयत्वं, श्रोत्रियादिसंबन्धाच्च विधिविषयत्वं, तद्वदस्यापि देहसंबन्धाज्जाते तस्मिंस्तत एव तत्फलसंबन्धस्यापि सौकर्येण तयोरपि सार्थक्ये सति न शास्त्रार्थवत्त्वसूत्रव्याहतिर्न वा कर्ममार्गव्याकुलता येन दुःखित्वाद्यनुपपत्तिरित्यर्थः । ननु देहसंबन्धेन विधिविषयत्वे देहसंबन्धस्याज्ञानकृतत्वाच्छास्त्रस्याप्यज्ञाधिकारकत्वं सिद्ध्यति, अज्ञानं च बुद्ध्युपाधिकस्यैव, न तु स्वत इति, शास्त्रार्थवत्त्वसूत्रव्याहतिर्न परिहृता भवतीत्याशङ्कायामाहुः संबन्धश्चेत्यादि । स्वज्ञानमिति 'साङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च'

रश्मिः ।

संबन्धाभावस्य । स्वस्येति लोकाश्रयणात् । तथेत्येतावतैव चारितार्थ्यात् । तत्सूत्रेति कर्ता शास्त्रेति सूत्रस्य व्याघातः । जीवस्येतिभाष्यं हेतुपूर्वकं विवृण्वन्ति स्म किं चेत्यादि । द्वयमिति जीवस्य दुःखित्वमपिना भगवतो दुःखित्वं चेति द्वयम् । श्रोत्रियेति श्रोत्रियश्छन्दोधीते यः सः । तस्मिन्निति विधिविषयत्वे । बुद्धीति जीवो विशेष्यम् । निरुपाधिकव्यवच्छेदक एवकारः । न परीति । बुद्धौ कर्तृत्वस्य पर्यवसानाज्जीवे चापर्यवसानाच्छास्त्रार्थवत्त्वस्य बुद्ध्यवसितत्वेन न परिहृता भवतीत्यर्थः । संबन्धश्चेत्यादीति जीवन्मुक्तानामपि देहेन समं व्यवहारदर्शनादाहुः भगवत्कृतश्चेति अध्यासाख्यसंबन्धाभावेपि भगवत्कृत ऐच्छिकः । ज्ञानादिति नाहं किंचित्करोमीत्याद्युक्तज्ञानात् । व्यवहारेति प्रवचनादिव्यवहारदर्शनात् । एवेति आध्यासिकसंबन्धव्यवच्छेदकः । श्रुतीनामात्मत्वेनाध्यासाभावात् । अन्यथेति देहाद्यध्यासरहितानां

शाब्दज्ञानस्य पूर्वमेव सिद्धत्वात् । कथं सिद्धवद् यावज्जीवं विदध्यात् । न्यासोऽपि देहसंबन्ध एव ॥ ४८ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

इत्यादिभिः स्वार्थज्ञानम् । **पूर्वमेव सिद्धत्वादिति** अध्यापनाध्ययनविधिभ्यां कृतेऽध्ययने तत्काल एव सिद्धत्वात् । तथाच कामाधिकारको विधिर्विश्वासोपजननार्थोऽज्ञाधिकारको भवतु नाम, यावज्जीवादिरूपो नित्यविधिस्तु नाज्ञाधिकारकः, अतो न शास्त्रार्थवत्त्वव्याघात इत्यर्थः । ननु यावज्जीवविधिश्चेज्ज्ञानिपरस्तदा, 'यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्' इत्यादिसंन्यासविधिवैयर्थ्यम् । अतो नेयं व्यवस्था युक्तेत्यत आहुः **न्यासोऽपीत्यादि** । तथाच जरामर्याग्निहोत्रस्य तत्रापि संभवान्न वैयर्थ्यम् । ये पुनर्ब्रह्मभूता आदितः साधनसंपत्त्या वा देहसंबन्धं नानुसंदधते, 'दैवादपेतमुत दैववशादुपेतम्' इति न्यायेन देहं धारयन्ति पूर्णा एव ज्ञानिनस्तेषां तु शुकादिवत् स्वत एव तत्र तत्र प्रवृत्तेर्न विधिनियतत्वम् । अत एव, 'यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यम्' इति, 'पश्चषड्ढायनार्भाभाः' इति, 'स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमानाः' इति 'योगेश्वरस्य भवतो नाऽऽम्नायोऽपि नियामकः' इत्यादीनि वाक्यानि, दत्तात्रेयस्य च मार्कण्डेयपुराणे स्वैराचरणमिति सर्वं संगच्छते । अतो, न कोऽपि दोष इत्यर्थः ॥ ४८ ॥

रश्मिः ।

भगवत्कृतसंबन्धवतां कर्माकरणे । **स्वार्थेति** । **स्वज्ञानमिति** भाष्ये स्वशब्द आत्मीयवाचक इति भावः । भाष्ये जीवन्मुक्तानां शाब्दज्ञानेनाध्यासनिवृत्त्या श्रुतिः कर्माणि बोधयिष्यतीत्याशङ्कायामाहुः **शाब्देति** । प्रकृते । **तत्काल** इति अदृष्टादिनाध्ययनाध्यापनकाले । तदुक्तं परस्पराभिनन्दनेनार्थः स्फुरतीति । **एवेति** 'अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः युक्ता आयुक्ताः अलूक्षा धर्मकामाः स्युर्यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः' इति श्रुतेरेवकारः । 'अलौकिको हि वेदार्थः' इति श्रुतेर्विमर्शिनः परमात्मप्रसादवन्तः । 'किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने' इति वाक्यात् विमर्शनार्थज्ञानमिति । भाष्ये **कथमित्यादि** । उक्तहेतोर्निवृत्ताविद्याकर्मणां कथं श्रुतिस्त्वित्याद्युक्तप्रकारातिरिक्तप्रकारेण सिद्धवदित्यादिः । निवृत्ताविद्याकर्मणां साध्याविद्याकर्मप्रसाधनं विना यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयादिति विरुद्धं यावजीवं कर्म विदध्यादित्यर्थः । अग्निहोत्रं जुहोतीत्यनयाग्निहोत्रविधानेन यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयादिति नापूर्वविधिरपि तु गुणविधिर्यावज्जीवत्वविधिः दध्ना जुहोतीतिवत् । अतः श्रुतिस्तु भगवत्कृतसंबन्धमित्यादिः । **तथा चेति** कर्मणां विद्याधीनत्वेयम् । **कामेत्यादि** । प्रवृत्तं च निवृत्तं च तत्र पूर्वं प्रवृत्तम् 'फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचनं परम्' इति वाक्यात् । तमाहुः **विश्वासेति** । **ज्ञानिपर** इति ज्ञानिकर्मपरः । अत्र देहसंबन्धो भगवत्कृतो ग्राह्यः । अपिनाग्निहोत्रादिरिति व्यवस्थोपपन्नेत्याहुः **तथा चेति** । जरामर्याग्निहोत्रं महानारायणोपनिषद्यन्ते 'तस्यैवं विदुषो यज्ञस्यात्मा यजमानः' इत्युपक्रम्य 'एतद्वै जरामर्यमग्निहोत्रꣳ सत्रम्' इति श्रुतेः । **तत्रापीति** संन्यासेपि । **संभवात्** अयमर्थः । महानारायणोपनिषद्यस्मात्सूत्रात्पूर्वं 'वसुरण्वोविभूरसि' इति संन्यासप्रकरणस्थश्रुतिपर्यालोचनया **संभवात्** । श्रुतेः संन्यासप्रकरणस्थत्वं तु द्वितीयस्कन्धद्वितीयाध्याये 'स्थिरं सुखम्' इत्यत्र सुबोधिन्यामस्ति । **विधीति** विधिविषयत्वम् । **योपीति** योपि वर्तते सोपि नियामक इत्यर्थः । **स्वैरेति** यथाचार्याणाम् । **न कोपीति** प्राणाग्निहोत्रोपनिषदुक्तप्राणाग्निहोत्रस्य स्वैरचारिषु संभवाद्यावज्जीवश्रुतिविरोधरूपदोषोऽपि नेत्यर्थः । अत्रापि विरुद्धयोः 'यावज्जीवम्' 'यदहरेव' श्रुत्योर्विरोधपरिहार इति पादार्थः ॥ ४८ ॥

असंततेश्चाव्यतिकरः ॥ ४९ ॥

ननु देहस्यापि बाल्यकौमारादिभेदात् कथं कर्मकाले ब्राह्मणत्वादि, जीवैक्यादिति चेद् देहान्तरेऽपि स्यादिति, तत्राह देहान्तरे संततिरपि नास्ति। बाल्यादिभेदे पुनः संततिरेका। अतः संततिभेदान्न कर्मणां सांकर्यमिति ॥ ४९ ॥

आभास एव च ॥ ५० ॥

ननु सच्चिदानन्दस्य ब्रह्मणोंऽशः सच्चिदानन्द एव भवेदतः कथं प्रवाहे प्रवेशो भगवतश्च सर्वकार्याणि तत्राह आभास एव जीवः। आनन्दांशस्य

भाष्यप्रकाशः।

असंततेश्चाव्यतिकरः ॥ ४९ ॥ सूत्रमवतारयन्ति नन्वित्यादि। यदत्र देहसंबन्धेन विधिनिषेधव्यवस्थापनं तदयुक्तम्। यस्मिञ्जन्मनि यो देहो गृहीतस्तस्य देहस्यापि नित्यप्रलयेन बाल्यकौमारादिभेदादाधानादिकर्मकाले तस्य देहस्याभावेन ब्राह्मणत्वादिकं कथं वक्तव्यम्, तदभावे च, 'वसन्ते ब्राह्मण आदधीत', 'न ब्राह्मणं हिंस्यात्' इत्यादिविधिनिषेधव्यवस्था दुरुपपादा। अतः कर्मव्याकुलत्वमसमाधेयम्। अथ जीवैक्यान्नानुपपत्तिरित्युच्यते चेत् तस्य देहान्तरेऽपि तुल्यत्वात् तस्याप्याधानाद्यापत्तिरिति शङ्कायां समाधिमाहेत्यर्थः। समाधिं व्याकुर्वन्ति देहान्तरे इत्यादि। अर्थस्तूत्तानः। तथाच देहसंबन्धेन समाधौ न कोऽपि दोष इत्यर्थः ॥ ४९ ॥

आभास एव च ॥ ५० ॥ पुनः किंचिदाशङ्क्य परिहरतीत्याशयेन सूत्रमवतारयन्ति नन्वित्यादि। भगवतश्च सर्वकार्याणीति अत्रापि कथमिति पदं संबध्यते सर्वाणि

रश्मिः।

असन्ततेश्चाव्यतिकरः ॥ ४९ ॥ भाष्ये प्रवाह इति प्रवहणं प्रवाहः सर्गपरंपराया अविच्छेदः। नित्येति द्वादशस्कन्धोक्तचतुर्विधप्रलयेऽयमपि। 'नित्यदा ह्यङ्गभूतानाम्' इति वाक्योक्तेन। बाल्येति आदिना यौवनवृद्धावस्थे। आधानादीति। आदिनाग्निहोत्रादि·············ब्राह्मणत्वादीति आदिना क्षत्रियत्ववैश्यत्वनिषादस्थपतित्वानि। ब्राह्मणत्वादिकं न जातिः। 'त्रिभिर्नश्यति ब्रह्मत्वं हालाहलहलाहलैः' इति वाक्यात्। अतो देहेन सह ब्राह्मणत्वादिनाशः। आदधीतेति अग्निमादधीत। कर्मेति देहभेदेऽपि कर्मव्याकुलत्वम्। ब्राह्मण्याभावात्। जीवेति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म अथेति। देहान्तर इति नित्यप्रलयविषयातिरिक्ते शूद्रादिदेहे। व्याकुर्वन्तीति सूत्रार्थकथनेन व्याकुर्वन्ति। उत्तान इति। भाष्ये संततिः क्षणिकदेहसंततिः। नञत्यन्ताभावार्थकः चोऽप्यर्थकः। न संततेः असंततेरिति परिनिष्ठितविभक्तया नसमास इत्याशयेन सूत्रव्याकरणं संततिरपीत्यादिना हेतुपञ्चम्या व्यापारेणान्वयः। संततिब्राह्मणत्वोभयप्रतियोगिकात्यन्ताभावनिष्ठसत्तानुकूलव्यापारादित्यर्थः। बाल्यादीति। विशेषार्थो भेदः। एकेति एकदेहनिष्ठत्वादेका। संततिभेदात् संततिविशेषात्। अव्यतिकर इति सूत्रांशं व्याकुर्वन्ति स्म न कर्मणामिति। कर्मणामनुज्ञापरिहारविषयाणाम्। अनुज्ञापरिहारावित्यनुवर्तते। विभक्तिविपरिणामेन स्वविषयलक्षणयान्वयः। सांकर्यं व्यतिकरः शूद्रादित्वेप्याधानाद्यापत्तिः। शूद्रत्वादिभिराधानादिसांकर्यं सामानाधिकरण्यमिति यावत्। इत्युत्तान इत्यर्थः। न कोऽपीति सांकर्यदोषोपि न ॥ ४९ ॥

आभास एव च ॥ ५० ॥ 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इति श्रुतेः सर्वाणीत्यस्यार्थमाहुः

तिरोहितत्वात् । चकारादाकारस्याप्यभावः । न तु सर्वथा प्रतिबिम्बवन्मिथ्यात्वं जलचन्द्रवदित्येकस्यानेकत्वे दृष्टान्तः । तथा सत्यध्यासश्च स्वस्य न स्यात् । तत्र वृत्त्यादिदोषप्रसङ्गश्च । अतो न मिथ्यात्वरूप आभासोत्र विवक्षितः ॥ ५० ॥

भाष्यप्रकाशः ।

जडरूपाणि कार्याणि भगवत एवोपादेयानीत्यपि कथमित्यर्थः । कार्येऽप्यंशत्वस्य सत्त्वेन प्रसङ्गादेतदुक्तम् । समाधिं व्याकुर्वन्ति **आभास** इत्यादि । **आकारस्येति** चतुर्भुजादिरूपस्य भगवदाकारस्य । तथाच यथाऽनाचारी ब्राह्मणो ब्राह्मणाभासः, सूत्रधारकत्वेऽपि ब्राह्मण्याख्यदेवतायास्ततस्तिरोहितत्वात् तथा जीवोऽपि एवं जडेऽपि ज्ञेयम् । मायावादिभिर्हि जलसूर्यकादिवद् ब्रह्मप्रतिबिम्बरूप आभासः स्वीक्रियते, तदसंगतत्वान्निषेधन्ति **न त्वित्यादि** । ननु प्रतिबिम्बत्वानङ्गीकारे, 'एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्' इति श्रौतदृष्टान्तविरोध इत्यत आहुः **जलेत्यादि** । इदं वाक्यं यावदात्मभाविसूत्रे विचारितमिति, न पुनरनूद्यते । नन्वस्य प्रतिबिम्बरूपत्वाङ्गीकारे को दोष इत्यतस्तमाहुः **तथा सतीत्यादि** । मिथ्याभूतस्याध्यासायोगात् तथेत्यर्थः । निबन्धोक्तानि दूषणानि च स्मारयन्ति **तत्रेत्यादि** । 'तत्र वृत्तेर्द्वासुपर्णाश्रुतेरपि विरुद्ध्यते' इत्यादिकारिकासूक्तानि स्वयमेव व्युत्पादितानि च, तत्प्रकाशे, तानि तानि चाऽऽवरणभङ्गे विद्वन्मण्डनविवरणे च मया सम्यग्विवेचितानीति ततोऽवगन्तव्यानि । अनेन केवलसदंशस्फूर्तावाभासत्वम् । यथाऽनाचारिब्राह्मणे ब्राह्मणाऽऽभासत्वं देहादिभिन्नत्वेन चेतनात्मज्ञाने बहूनां ब्रह्मधर्माणां भानात् प्रतिबिम्बत्वम् । आनन्दांशस्यापि स्फूर्तौ तु त्रितयप्राकट्यान्मुक्तिदशायां तु ब्रह्मत्वमित्यपि बोधितम् । **मिथ्यात्वरूप इति** मिथ्यात्वं स्वरूपं यस्य तादृश इत्यर्थः ॥ ५० ॥

रश्मिः ।

जडरूपाणीति । जडेषु रूपाणीति वा । रूपशब्दोऽजहल्लिङ्गः । अधिकरणेऽस्य सूत्रार्थस्य संगतिमाहुः **कार्येपीति** सर्वाणि कार्याणीति भाष्योक्तकार्ये स्मृतस्याभासस्योपेक्षानर्हत्वरूपप्रसङ्गात् । **आभास** इत्यादीति आसमन्ताद्भासत इत्याभासः पचाद्यच् अज्ञ इत्यर्थः । एवकारेणानन्दव्यवच्छेदस्तमाहुः **आनन्दांशस्येति** । 'आनन्दांशस्तु पूर्वमेव तिरोहितो येन जीवभावः' इति विद्वन्मण्डनात् । विस्फुलिङ्गादिवर्तुलाकारसत्त्वादाहुः **चतुर्भुजेति** । आदिना द्विभुज आकारो मात्स्याद्याकाराश्च । अत्र 'यदेकमव्यक्तमनन्तरूपं विश्वं पुराणं तमसः परस्तात्' इति श्रुतेः सर्वरूपस्याभ्यर्हितरूपाण्युपादत्तानि । **ब्राह्मण्येति** ब्राह्मण्यादिदेवतावाद उपपादितम् । **तथेत्यस्यानन्दतिरोभावादित्यर्थः** । जीवोऽपि ब्रह्माभासोऽज्ञ इत्यर्थः । **एवमिति** । जडे तर्वादिप्रतिबिम्बेपि । तेन चिदानन्दयोर्व्यवस्था । **सच्चिदानन्दस्ये**त्यादिभाष्ये उक्ता सदंशस्य नोक्ता साप्युक्तप्राया । सदेवेति श्रुतेः सत्कार्यत्वावश्यकत्वात् । **आभासः** प्रतिबिम्बः । इत्यादौ स्वाद्युत्पत्तये अस्त्यादिप्रयोगस्यावश्यकत्वात्तेन चाभासनिष्ठा सत्ता प्रतिबिम्बनिष्ठा सत्तेति बोधावश्यकत्वात् । अतः परमवशिष्यते भगवतश्च सर्वकार्याणीति भाष्योत्तरम् । तदप्येवम् । साक्षात्कार्यत्वे न तु सर्वथा प्रतिबिम्बवन्मिथ्यात्वमिति । **जलेति** । आदिना चन्द्रः । **तमिति** दोषम् । **विवेचितानीति** । स्वयं विविक्तानि मया विवेचितानि । प्रयोजकणिच् । धातुरनिट् । **मिथ्यात्वरूप इति**

अदृष्टानियमात् ॥ ५१ ॥

ईशित्वाय नैयायिकाद्यभिमतं जीवरूपं निराकरोति । नानात्मानो व्यवस्थात इति भोगव्यवस्थया जीवनानात्वमङ्गीकृतम् । तत्रादृष्टस्य नियामकत्वं तन्मते सिद्धम् । देशान्तरवस्तूत्पत्त्यन्यथानुपपत्त्या व्यापकत्वं चाङ्गीकृतम् ।

एवंच क्रियमाणे मूल एव कुठारः स्यात् । सर्वेषामेव जीवानामेकशरीरसंबन्धात् कस्यादृष्टं तद् भवेत् । नच मिथ्याज्ञानेन व्यवस्था । तत्रापि तथा । नचानुपपत्त्या परिकल्पनम् । श्रुत्यैवोपपत्तेः । एतेन विरोधाद् ऋषिप्रामाण्यमपि निराकृतम् ॥ ५१ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

अदृष्टानियमात् ॥ ५१ ॥ सूत्रप्रयोजनमाहुः **ईशित्वायेत्यादि**, ईशो नियामको-ऽस्मान्योऽस्तीतीशित्वायेत्यर्थः । ननु जीवस्य ईश्वरनियम्यत्वं नैयायिकादिभिरप्यङ्गीक्रियत एवेति कुतस्तदर्थं तन्मतनिराकरणमित्याकाङ्क्षायां तत्र तदनुपपत्तिबोधनाय तन्मतमनुवदन्ति **नानेत्यादि** । **तत्रेति** भोगव्यवस्थायाम् । **सिद्धमिति** कार्यमात्रं प्रति जीवादृष्टस्य कारणत्वाङ्गीकारात् सिद्धम् । **देशान्तरेत्यादि** सामग्रीसमवधाने हि कार्यमुत्पद्यते । तत्र सामग्रीमध्ये अदृष्टमपि प्रविष्टमिति देशान्तरे यद्भोगार्थं यद्वस्तूत्पद्यते तत्र तददृष्टमवश्यं वक्तव्यम्, अदृष्टं चात्मसमवेतं गुणत्वात्, अतस्तत्रात्माभावे तद्वस्तूत्पत्त्यभाव इति तदन्यथानुपपत्त्या तस्मिन् देशे तददृष्टवदात्मसत्ताऽऽवश्यकीति तेषां व्यापकत्वमङ्गीकृतमित्यर्थः । एवमनूद्य दूषयन्ति **एवं चे-त्यादि** । भोगव्यवस्थयैतत्सर्वाङ्गीकारे जीवनानात्वव्यापकत्वसाधनहेतुभूतायां भोगव्यवस्थायामेव तच्छेदकदूषणपात इत्यर्थः । अत्र हेतुमाहुः **सर्वेषामित्यादि** । **मिथ्याज्ञानेनेति** शरीरेऽह-मित्यभिमानेन । **तत्रापि तथेति** । सर्वेषामेकस्मिन् शरीरे संबन्धतौल्ये कथमेकस्यैवात्मनोऽहं-ममेत्यभिमानः । **विरोधादिति** श्रुतिविरोधात् । तथाचाभिमानकारणस्य निर्वक्तुमशक्यत्वे

रश्मिः ।

भाष्यमपेक्षितमत आहुः **मिथ्यात्वमिति** । **स्वरूपमिति** रूपव्याख्यानं न विग्रहघटकम् । अत्र 'ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत' इति भागवतोक्तमायापक्षो नास्ति । तस्य लक्ष्मणभट्टात्मजवल्लभविरचितत्वेनाधिदैविकमतत्वात् । अस्य वेदव्यासमतवर्तिवल्लभाचार्यमतत्वेनाधिभौतिकत्वात् । एतेनापरितोषे श्रीभागवतकरणात् । निबन्ध आध्यात्मिकमतं विष्णुस्वामिमतवर्तिवल्लभाचार्यविरचितत्वात् । यमुनाष्टकादि तु स्वमतं निर्गुणं युक्त्या परमार्थस्तत्प्रतिपादकं मुख्यं च । स्वनाम्ना तु मुख्यत्व-मित्यभियुक्तोक्तेः । इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं यमुनाष्टकं संपूर्णमितीतिश्रीकथनात् ॥ ५० ॥

अदृष्टानियमात् ॥ ५१ ॥ **ईश इति** । **अन्य इति** न विग्रहघटकं किंतु नियामके ईशार्थेऽन्यत्वमात्रमावेदयेत् । मूलं प्रपञ्चयन्ति स्म **भोगव्यवस्थेत्यादिना** । **एवे-त्यादि** विवृण्वन्ति स्म **तच्छेदकेति** । मूलभूतभोगव्यवस्थाछेदककुठारस्थानीयदूषणपात इत्यर्थः । एवकारेण नानात्वव्यापकत्वदूषणव्यवच्छेदः । **सर्वेषामित्यादीति** । यथा वियति विहङ्गम इति दृष्टान्तः । 'आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः' इति वाक्यात् । एकशरीरं विह-

अभिसंध्यादिष्वपि चैवम् ॥ ५२ ॥

ननु मनःप्रभृतीनां नियामकत्वात् तेषामीश्वरेच्छया नियतत्वान्न दोष इति चेन्न। पूर्ववदेव दोषप्रसक्तिः। तादृशेश्वरकल्पना च पूर्वमेव निराकृता ॥५२॥

भाष्यप्रकाशः।

तेन शरीरेण तत्तदिन्द्रियेण तत्तन्मनसा कृतं कर्म सर्वेषां संबन्धतौल्यात् सर्वकृतं सत् सर्वेषामेव तद्भोजकादृष्टं जनयत् सर्वेषां तद्वस्तुभोगाय स्यात्, एवं सर्वत्रेति भोगव्यवस्थाभङ्गान्न तया जीवनानात्वव्यापकत्वयोः सिद्धिरित्यर्थः ॥ ५१ ॥

अभिसंध्यादिष्वपि चैवम् ॥ ५२ ॥ विलक्षणमनःसंयोगेनाऽदृष्टव्यवस्थामाशङ्क्य परिहरतीत्याशयेन सूत्रमुपन्यस्य व्याकुर्वन्ति **नन्वित्यादि**। ननु विलक्षणसंयोगोत्पादकानां मनःप्रभृतीनामभिमाननियामकत्वात् तेषां चेश्वरेच्छया नियतत्वान्नादृष्टानियमदोष इति **चेन्न**। कुतः। अभिसंधिः पूर्वोक्तोऽभिमानस्तस्यादिभूतानि कारणानि, तेष्वपि, एवं पूर्ववदेव विभूनामात्मनां विलक्षणमनःसंयोगस्यापि तुल्यत्वान्नियमाऽसंभवदोषप्रसक्तिः। नचेश्वरेच्छया समाधानम्, निमित्तभूतेश्वरकल्पनायाः पूर्वमेव निराकृतत्वात्। अभ्युपगमेऽपि अनया प्रणाड्यास्यैवादृष्टमुत्पद्यतामितिवदयमेवं भुङ्क्तामित्यण्वात्मवादेऽप्याकारेण तस्यास्तुल्यत्वान्न व्यापकात्मसिद्धिरित्यर्थः ॥ ५२ ॥

रश्मिः।

ङ्गमस्येति। **शरीरेहमिति**। तथा च विहङ्गमशरीरे विहङ्गमाभिमानवद्देहाभिमानिनोदृष्टवदात्मनोभिमानेन व्यवस्थेति भाष्यार्थः। ज्ञानाधिकरणमात्मेत्याहुः **सर्वेषामिति** ॥ ५१ ॥

अभिसंध्यादिष्वपि चैवम् ॥ ५२ ॥ **अभिसंधिः** संकल्पः, संकल्पोभिसंदधाति कार्यमभिमानरूपमिति। अभिसंपूर्वकडुधाञ् धारणे धातुः। घोः किः। तथा च श्रुतिः। 'वाक्संधिः' इति 'मनःपूर्वरूपं वागुत्तररूपम्'इति। अभिपूर्वकस्य शब्दसृष्टं संकल्परूपं मन इत्यर्थः। आदिनेच्छादयोभिमाननियामका इत्याशयेनाहुः। यद्वाभिसंधिः पूर्वभाष्योक्तोभिमानस्तस्यादिषु मनःप्रभृतिष्वपि पूर्ववद्दोषप्रसङ्ग इत्याशयेनाहुः **विलक्षणेति** वैलक्षण्यमभिशब्दार्थवैदिकसृष्टिमध्यपातित्वं मनोविशेषणम्। यद्वा **विलक्षणो** यो **मनःसंयोगस्तेन**। **विलक्षणेति विलक्षणस्य मनसः संयोगस्योत्पादकानाम्**। **मन** इति। **प्रभृतिशब्देनेच्छादयः**। **तेष्वपीति**। यद्वाभिसंधिः पूर्वाभासोक्तमनस्तदादिषु चैवं पूर्ववदेव दोषप्रसक्तिः। **पूर्ववदिति** भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **एवमिति**। सूत्रीयैवमित्यस्यार्थः। **पूर्ववदिति**। सौत्रापिशब्दार्थ एवेति। सौत्रचकारार्थमनुक्तसमुच्चयमाहुः **विभूनामित्यादि**। **विलक्षणेति विलक्षणो मनःसंयोगस्तस्य**। यद्वा विलक्षणं यन्मनस्तस्य संयोगस्तस्य। **तादृशेत्याद्यपि** भाष्यं चकारार्थ इत्याशयेन विवरीतुमाहुः **न चेति**। विद्वन्मण्डनानुसारीच्छावाद उक्तः। विवृण्वन्ति स्म **निमित्तेत्यादि** निमित्तमात्रज्ञानाधिकरणेश्वर**कल्पनायाः पूर्वमेव** तर्कपाद एव नैयायिकमतनिराकरणसमये। तथा च परमाणुकारणवादे निराकृतेऽभिन्ननिमित्तोपादानभूतेश्वरो न निमित्तभूतेश्वरः। अभिन्ननिमित्तोपादानेश्वरेच्छा तु नियामिकास्त्येव। अत्र तुमनुक्त्वा चकारोक्त्यान्यानुक्तसमुच्चयोऽद्योति स चोक्तः सूत्रारम्भरश्मौ अभिसंधिरित्यादिना। तर्काप्रतिष्ठानसूत्रादाहुः **अभ्युपगम** इति। यथाहुः अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरसंकेतः शक्तिरिति। संकेत इच्छा। **न व्यापकेति** श्रुत्यैवोपपत्तेस्तथा ॥ ५२ ॥

प्रदेशादिति चेन्नान्तर्भावात् ॥ ५३ ॥

आत्मनो विभुत्वेऽपि प्रदेशभेदेन व्यवस्था। आत्मनि तादृशः प्रदेशविशेषोऽस्ति येन सर्वमुपपद्यत इति चेन्न। अन्यस्यापि प्रदेशस्तत्रान्तर्भवति। तस्यैव वा देहस्य देशान्तरगमने पूर्वदेशस्य त्यक्तत्वात् सोंऽशोऽन्तर्भवेत् तिरोभवेदिति ॥ ५३ ॥

इति द्वितीयाध्याये तृतीयपादे अंशो नानाव्यपदेशादिति षोडशमधिकरणम् ॥१६॥

इति श्रीवेदव्यासमतवर्तिश्रीवल्लभाचार्यविरचिते ब्रह्मसूत्राणुभाष्ये द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ २ ॥ ३ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

प्रदेशादिति चेन्नान्तर्भावात् ॥ ५३ ॥ आत्मनां विभुत्वेपि प्रदेशभेदाङ्गीकारेण दोषसमाधिमाशङ्क्य परिहरतीत्याहुः **आत्मन** इत्यादि । **अन्यस्ये**त्यादि । तथाच पूर्ववदेव दोषप्रसक्तिरित्यर्थः । नन्वन्यस्य प्रदेशे स विशेषो नास्तीत्यदोष इत्यत आहुः **तस्यैवे**त्यादि । **सोंऽश** इति । विशेषत्वेनाङ्गीक्रियमाणो विशेषणांशः, देशान्तरे तस्य प्रदेशस्याभावात् तत् आत्मनस्तिरोहितो भवेत् ततश्च तस्य भोगस्यासंभव इति न प्रकृतसिद्धिरित्यर्थः ।

शंकराचार्यमते जीवो ब्रह्मैव, उपाधिभेदादेव भेद इत्यंशत्वमौपचारिकम् । तन्मतं तु प्रागेवासकृन्निरस्तम् । किंच । अविद्याभ्रान्तं ब्रह्मैव जीव इति । यथा संक्षेपशारीरके । 'आश्रयत्वविषयत्वभागिनी निर्विभागचितिरेव केवला' इति । क्वचिदविद्यावच्छिन्नं चैतन्यं जीव इति । क्वचिद् अविद्यायां प्रतिबिम्बितं चैतन्यं, क्वचिद् अन्तःकरणे प्रतिबिम्बितं, क्वचिद् अङ्गुल्यादिसंपर्काच्चन्द्रादिद्वैताभासवदविद्यातो ब्रह्माप्यनेकवदाभासमानं द्वित्र्यादिसंख्यायोगि

रश्मिः ।

प्रदेशादिति चेन्नान्तर्भावात् ॥ ५३ ॥ **आत्मन इत्यादी**ति । भाष्यत्वाय स्वोक्तं वर्णयन्ति स्म **आत्मनी**ति । **तादृश** इति तच्छब्दार्थं आत्मा दृश्ये यत्र तादृशः **प्रदेशः** दिशामाकाशे ब्रह्मशरीरेऽन्तर्भूतानां संबन्धी देशः प्रदेशस्तस्य विशेषोऽतादृशात् । **उपपद्यत** इति 'आकाशो ह वै नामरूपयोर्निर्वहिता' इति श्रुतेरुपपद्यते । **अन्यस्येत्यादी**ति । **अन्यस्याकाशस्य** 'आकाशशरीरं ब्रह्म' 'आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः' इति श्रुतिस्मृतिभ्याम् । **दोषे**ति आत्मनो नामरूपे । शरीरभूताकाशस्य नामरूपे इति द्वित्वदोष**प्रसक्तिः** । **स विशेष** इति आत्मवैशिष्ट्यरूपविशेषः । **तस्यैवे**त्यादीति एवकारेणान्यदेहव्यवच्छेदः क्रियते । **सोंऽश इती**ति सोंऽशः **अन्तर्भवे**दिति स्मार्तः प्रयोगः सूर्यनारायणप्रयोगो वा । **विशेषणे**ति **तादृशः प्रदेशविशेषोऽस्ती**ति भाष्ये प्रदेशविशेषनिष्ठा सत्तेति बोधात्तथा । **तत** इति तदनन्तरम् । **आत्मनः** पूर्वदेश**स्तिरोभवेत्** । **तस्ये**ति पूर्वदेशस्य । **न प्रकृते**ति प्रकृतं सर्वोपपत्तिरूपं वस्तु । **उपाधी**ति बुद्धिभेदात् । **प्रागेवे**ति दहराधिकरणादौ । **भ्रान्त**मिति जीवोपाधिभूताऽविद्यया तमोरूपया यो भ्रमो जीवत्वाभाववति जीवत्वप्रकारकं ज्ञानं तद्विषयं ब्रह्म जीव एवेत्यत्र ब्रह्म जीव एवेति योजना । **संक्षेपे**ति ग्रन्थान्तरमिदम् । **आश्रयत्वे**ति कारिकार्धं एकादशाक्षरी जातिः । **क्वचिदि**ति । तत्त्वानुसंधाने ग्रन्थे । **क्वचिदि**ति वेदान्तपरिभाषायाम् । **क्वचिदि**ति उक्तग्रन्थान्तरे । **क्वचिदि**ति शंकर-

भाष्यप्रकाशः ।

जीवपदवाच्यमिति । ततश्चाव्यवस्थादोषोऽपि । एते च सर्वेऽपि पक्षा विद्वन्मण्डने दूषिताः । मया च तट्टिप्पणे सम्यग्विवेचिता इति, नेह पुनर्दूष्यन्ते ।

भास्कराचार्यास्तु—सौत्रोऽन्तःशब्द उपाध्यवच्छिन्नस्याऽनन्यभूतस्य वाचकः । तथाच यथा आकाशस्य पार्थिवाधिष्ठानावच्छिन्नं कर्णच्छिद्रं, यथा च वायोः पञ्चवृत्तिः प्राणो, यथा च मनसः कामादयो वृत्तयस्तथा ब्रह्मणो जीवः । स च ब्रह्मणो भिन्नाभिन्नः । तस्याऽभिन्नत्वं स्वाभाविकं, भिन्नत्वमौपाधिकम् । निरवयवस्य ब्रह्मणोंऽशाङ्गीकारस्तु विस्फुलिङ्गदृष्टान्तश्रुतेरित्याहुः । तत्रांशत्वं तु युक्तं भिन्नाभिन्नत्वं च । श्रौतत्वात् । भिन्नत्वस्यौपाधिकत्वं त्वसंगतम् । श्रौतदृष्टान्तविरोधात् । पादोऽस्येति मन्त्रवर्णस्य च विरोधात् । मन्त्रवर्णसूत्रविरोधात्, श्रुतौ पुराणेषु च श्रोत्रेन्द्रियस्य दिग्देवताकत्वेनातिरिक्तस्यैव सिद्धत्वात् तस्य चाभासत्वादरेण दृष्टान्तस्याप्ययुक्तत्वात् । प्राणमनोदृष्टान्तयोरप्यश्रौतत्वेन श्रौतदृष्टान्तविरुद्धत्वेन चायुक्तत्वादिति ।

भिक्षुस्तु—वास्तवमेवांशत्वं भेदाभेदश्रुतिभ्यामुपगम्य भेदाभेदावुभावपि स्वाभाविकौ मन्यते । तथाच यथा पितापुत्रयोरग्निविस्फुलिङ्गयोश्च विभागेनाभिव्यक्तिलक्षणः कार्यकारणभावस्तथा जीवब्रह्मणोरपीत्युपपद्यते । अभिव्यक्तिश्च स्वव्यापारारूढता । नच भेदाभेदौ विरुद्धौ कथमेकत्र संभवेतामिति शङ्क्यम् । अन्योन्याभावलक्षणस्य भेदस्याविभागलक्षणेनाभेदेनाविरोधाद् विभागाविभागरूपयोर्भेदाभेदयोः कालभेदेन व्यवहारपरमार्थभेदेनाविरोधाच्च । नचाऽयमभेदो गौण इति वाच्यम् । लवणं जलमभूत्, दुग्धं जलमभूत्, 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्', 'आप एवेदमग्र

रश्मिः ।

भाष्ये 'आभास एव च' इति सूत्रे । **दोषोऽपी**ति अपिना प्रागेवासकृन्निरस्तम् । **विवेचिता** इति अन्यत्र विविक्ता टीकायां मया विवेचिताः । **पञ्चवृत्ति**रिति पञ्च वृत्तयो भेदा यस्येति पञ्चवृत्तिः । **श्रौते**ति श्रुतिस्तु श्रीपुरुषोत्तमजित्कृतभेदाभेदवादे द्रष्टव्या । भेद इवार्थक इति युक्तम् । माध्वभाष्येऽपि 'सत्यं भिदा सत्यं भिदा सत्यं भिदा सत्यो जीवः सत्यो जीवः सत्यो जीवः मैवारुणिर्मैवारुणिर्मैवारुणिः' इति श्रुतेः । **श्रौते**ति विस्फुलिङ्गदृष्टान्तविरोधात् । **श्रुता**विति 'स शृणोत्यकर्णः' इत्यस्यां·······पुराणं प्रसिद्धम् । **दिग्देवते**ति प्रस्थानरत्नाकरे ज्ञानेन्द्रियनिरूपणे श्रोत्रलक्षणम् 'नभसो गुणविशेषत्वेन शब्दग्राहकमिन्द्रियं वात्र दिग्देवताकं वा श्रोत्रम्' इति । **एवे**ति चक्षुश्रवसः श्रवणानुपपत्तेरेवकारः । 'स शृणोत्यकर्णः' इति श्रुतिः । **अश्रौते**ति जीवव्युच्चरणे दृष्टान्तांशेऽश्रौतत्वप्रदर्शनात् । अत एवाहुः **श्रौतदृष्टान्ते**ति श्रुतिर्विस्फुलिङ्गश्रुतिस्तत्र व्युच्चरणं विभागानुकूलो व्यापारः । पञ्चवृत्तिः प्राणः पञ्चाधिष्ठानः पञ्चधात्मानं विभज्य बाणावष्टम्भकः शरीरधारको यद्यपि दृष्टान्तस्तथापि वायोः पञ्चवृत्तिप्राणः पञ्चोपाधिक इति विरुद्धः । तथा मनसः कामादयो वृत्तयः स्वाधिष्ठानोपाधय इति दृष्टान्तविरुद्धत्वं तेन । **भिक्षु**रिति भगवान्भिक्षुः । **पिते**ति 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इति श्रुतेः । **स्वे**ति यथाग्नेः स्वव्यापारारूढत्वे विस्फुलिङ्गत्वाभिव्यक्तिः । **अविरोधा**दिति । यथाग्निविस्फुलिङ्गयोरविभागदशायामविभागलक्षणोऽभेदः स्वव्यापारारूढेन विस्फुलिङ्गेन त्वग्निर्विस्फुलिङ्गो नेति भेदस्तद्वत् । कालभेदं स्पष्टयति स्म **व्यवहारे**त्यादिना । व्यवहारकाले भेदः । अव्यवहारकालेऽभेद इति । **लवण**मिति । यथा सैन्धवखिल्य इत्यत्र छान्दोग्ये सिद्ध्यतीदम् । **दुग्ध**मिति महति जलाधारे क्षिप्तं दुग्धमिति लौकि-

भाष्यप्रकाशः ।

आसुः', 'वायुर्भूत्वा धूमो भवति' इत्यादिलोकवेदयोः प्रयोगबाहुल्येन अविभागस्यापि मुख्याभेदत्वाद्भिदिर् विदारण इत्यनुशासनाच्च

'परमात्मा जगद्रूपी सर्वसाक्षी निरञ्जनः ।
भिन्नाभिन्नस्वरूपेण स्थितोऽसौ परमेश्वरः' ॥

इत्यादिस्मृतिशतादपि भेदाभेदयोर्विरोधोऽप्रामाणिक इति । ननु भवत्वेवं भेदाभेदयोरविरोधस्तथापि ब्रह्मणो निरवयवत्वाज्जीवस्य मुख्यं ब्रह्मांशत्वं न संभवतीति चेन्न । अंशत्वं हि सजातीयत्वे सति कदाचिदविभक्तत्वमेव वाच्यम्, अन्यथा पुत्रचेतने पितृचेतनांशव्यवहारानुपपत्तेः । विभागश्च लक्षणान्यत्वम् । अभिव्यक्तधर्मभेद इति यावत् । ईदृशश्चांऽशो निरवयवस्यापि संभवतीत्यदोषः । यदि चावयवत्वमेवांशत्वमिष्यते तथापि सजातीयाविभक्तत्वगुणेनैव जीवेंऽशशब्दो गौणो युक्तो, न तु घटाकाशादिवत् प्रकारान्तरेण गौणः । भेदग्राहकश्रुत्यादिबलेनाग्निविस्फुलिङ्गादिदृष्टान्तानामेवादर्तव्यत्वादिति चाह, एतमर्थं मोक्षधर्मीयैर्वैशम्पायनवाक्यैश्चोपष्टम्भयन् व्याससंमतत्वमस्य दृढीचकार । तदस्माकमपि संमतमेव । एतावान् परं विशेषो यदस्मत्सिद्धान्ते श्रुतीनामेव मुख्यत्वात् तयैव विरुद्धधर्माश्रयत्वं कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थत्वमद्भुतकर्मत्वं महामहिमशालित्वं च निश्चित्य ब्रह्मसामर्थ्येनैव भेदाऽभेदाविरोधोऽखण्डत्वं सांशत्वमन्यच्च यदनुपपद्यमानं लौकिकप्रमाणैस्तत् सर्वं समर्थ्यते । अनेन तु युक्तिभिः समर्थ्यत इति ।

रामानुजाचार्यास्तु—'ज्ञाऽज्ञौ द्वावजावीशनीशौ' इत्यादिश्रुतेरत्यन्तभिन्न इति माध्वमतम्, उत परमेव ब्रह्माविद्यया भ्रान्तं जीवः, 'तत्त्वमसि', 'अयमात्मा ब्रह्म' इत्यादिश्रुतेरिति शांकरमतम्, अथवा ब्रह्मैवानाद्युपाध्यवच्छिन्नं जीवः, तत्त्वमस्यादिवाक्येभ्यः, उपाधिश्च सत्य इति

रश्मिः ।

कमुदाहरणम् । वायुरिति 'तस्माद्वा एतस्मात्' इत्यत्र 'आकाशाद्वायुः' 'वायुर्भूत्वा धूमो भवति' तस्मादग्निः । 'पार्थिवाद्दारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः' इति वाक्यात् । दारु निमित्तम् । समवाय्याकाशः कार्यं वायुः । विदारण इति विदारणं विभाग इत्याशयः । सजातीयेति आत्मत्वेन साजात्यम् । कदाचिदिति सृष्टिपूर्वकाले मोक्षकाले च । लक्षणेति लक्षणादन्यत्वम् । लक्ष्यतेऽनेनेति लक्षणमन्यत्वं भेद इत्याह । अभीति अभिव्यक्तेन धर्मेण भेदः । ईदृश इति अभिव्यक्तेन धर्मेण भेदो दृश्यते यत्र भिन्न इत्यर्थः । अदोष इति अंशत्वासंभवदोषो न । सजातीयेति सजातीयेनाविभक्तत्वमीश्वरगुणेनैव सिंहो माणवक इतिवत् । जीवो ब्रह्मांश इति जीवेंऽशशब्दो गौणः । घटेति आदिना मठाकाशः । प्रकारान्तरमौपाधिकं, जीवत्वमौपाधिकमिति तेन । भेदेति 'द्वा सुपर्णा'इति 'य इह नानेव पश्यति' इति श्रुती 'परमात्मा जगद्रूपी' इत्युक्तस्मृतिश्च तदादिबलेन । अग्नीति आदिना पितापुत्रदृष्टान्तः । अन्योपि जलतरङ्गादिः वैशंपायनेति द्रष्टव्यं तत्र । ननु कथमेवकारो दीयते भिदां 'मायामात्रमनूद्य' इति भेदो माया, सा 'न यत्र माया' इति 'प्रवर्तते यत्र रजस्तमः' इति वाक्याभ्यां निषिध्यते तत्राहुः एतावानिति । अन्यच्चेति । चकारेण भेदस्यैन्द्रियकत्वं मायिकत्वेऽपि । भ्रान्तमिति व्याख्यातम् । अयमात्मा जीवः । आदिना 'नेह नानास्ति

भाष्यप्रकाशः ।

भास्करं मतं चोपन्यस्य स्रष्टृत्वसृज्यत्वनियन्तृत्वनियम्यत्वादिरूपादुभयथाव्यपदेशात् तत्त्वमस्यादावभेदेन व्यपदेशाच्च जीवो ब्रह्मणोंऽशः । नच भेदव्यपदेशानां प्रसिद्धार्थत्वेनान्यथासिद्धत्वं शङ्क्यम् । ब्रह्मसृज्यत्वतन्नियम्यत्वतच्छरीरत्वादीनां प्रत्यक्षाद्यप्रसिद्धार्थानां कथनेन सिद्धस्य भेदस्यान्यथासिद्धताया वक्तुमशक्यत्वात् । अत एव जगत्सृष्ट्यादिवादिनीनामपि, न मिथ्यार्थोपदेशपरत्वमपीत्येवं पूर्वं दूषितमपि शांकरं भास्करं च मतं संक्षेपेण दूषयित्वा, ततः, 'प्रकाशादिवन्नैवं परः' इति सूत्रे प्रकाशादिवज्जीवः परमात्मनोंऽशः, यथा भास्वतोऽग्न्यादेर्भारूपः प्रकाशोंऽशो भवति । यथा गवाश्वादीनां गोत्वादिविशिष्टानां गोत्वादिकं विशेषणमंशः । यथा वा देहिनो देवमनुष्यादेर्देहोंऽशस्तद्वत् । अंशत्वं चैकवस्त्वेकदेशत्वम् । अतो विशिष्टस्यैकस्य वस्तुनो विशेषणमंश एव, तथाच विवेचका विशिष्टे वस्तुनि विशेषणांऽशोऽयं विशेष्यांऽशोऽयमिति व्यपदिशन्ति, विशेषणविशेष्ययोरंशांशित्वेपि स्वभाववैलक्षण्यं दृश्यते, एवं जीवपरयोर्विशेषणविशेष्ययोरंशांशित्वं स्वभावभेदश्चोपपद्यते । तदिदमुच्यते नैवं पर इति । एवंच जीवपरयोर्विशेषणविशेष्यत्वकृतं स्वभाववैलक्षण्यमादाय भेदनिर्देशाः प्रवर्तन्ते अभेदनिर्देशास्तु पृथक्स्थित्यनर्हविशेषणानां विशेष्यपर्यन्तत्वमादाय मुख्यत्वेनोपपद्यन्त इति व्याचक्रुः ।

शैवस्तु—'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
अस्यावयवभूतेन व्याप्तं सर्वमिदं जगत्' ॥

इति श्वेताश्वतरश्रुतिमुपन्यस्य प्रकृतिविशिष्टस्य ब्रह्मणोंऽशो जीव इत्याह । अंशत्वं च पूर्ववद् आह । अत्रापि सिद्धान्तादियान् भेदः । एतैर्विशेषणविशेष्ययोर्भेदस्तयोः स्वभावभेदश्च नैसर्गिक एवाङ्गीक्रियते । सिद्धान्ते तु 'प्रजायेय' इतीच्छाहेतुकः । नैसर्गिकपक्षेऽपि विरुद्धधर्माधारत्वात् सामर्थ्यादेव नैकत्वादिविरोध इति शुद्धाद्वैतं निरवद्यम् । अतो ये वादा यानि च दर्शनानि तानि सर्वाण्येतदेकदेशावलम्बीनीति बोध्यम् ।

माध्वास्तु—अंशान् द्विविधान् वदन्ति । केचिदभिन्नाः करचरणादिवत्, केचिद्भिन्नाः पुत्रादिवत् । तत्राद्या मत्स्याद्यवताराः । द्वितीया जीवाः ।

वनमालिदासस्तु—तद्भिन्नत्वे सति तत्सदृशत्वमंशत्वम् । यथा चन्द्रमण्डलाच्छतांशो गुरुमण्डल इति भिन्नांशस्वरूपमाह ।

रश्मिः ।

किंचन' इति श्रुतिः । **व्यपदेशादिति** 'अंशो नानाव्यपदेशात्' इति सूत्रस्य व्यपदेशानुवादोऽयम् । **अंश** इति सूत्रस्यांशपदानुवादोयम् । **अन्यथेति** श्रुतिभिन्नप्रकारेण सिद्धम् । **ब्रह्मसृज्येत्या**द्यन्तर्यामिब्राह्मणे । **आदिना**न्तरत्वावेद्यत्वे । प्रत्यक्षा**दी**ति **आदिना**नुमानम् । **अशक्येति** । अनधिगतार्थगन्तृत्वप्रामाण्यास्कन्दिवेदबोधितत्वेन । **सृष्ट्यादी**ति भेदनिबन्धनानाम् । **अपीति** व्यावहारिकसत्तासमयेऽपि । **विशिष्ट** इति भास्वानग्निरित्यादौ । **पूर्वमिति** ।..............

............**विशेष्येति** । 'प्रकाशाश्रयवद्वा' इति न्यायेन । **शैव** इति भगवान् । **मायामिति** मायाशब्देनाचित् । मायिशब्देन चिदचिद्विशिष्टम् । अवयवभूतेन चिद्वस्तुना । **पूर्ववदिति** रामानुजमतवत् । **विशेषणेति** चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर इत्यत्र । **शुद्धाद्वैत**मिति इदं द्वेधा भवति । यदा सर्वं ब्रह्मातिरिक्तं माया, यदा वा सर्वं ब्रह्मातिरिक्तं कार्यं ब्रह्मेति । **अत** इति शास्त्रार्थीयब्रह्मप्रकरणानुरोधेन सर्वक्रोडीकरणात् । **एतदिति** स्वमार्गीयांशांशिभावैक**देशावलम्बीनि** ।

भाष्यप्रकाशः ।

तेन प्राचीनमाध्वमते राश्येकदेशत्वमंशत्वं फलति । वनमालिमते तु सादृश्याल्पत्व-बोधनार्थत्वादौपचारिकमंशत्वं फलति 'प्रकाशादिवन्नैवं परः' इति सूत्रव्याख्याने च, यथा तेजोंऽशयोः कालाग्निखद्योतयोर्जलांशयोरमृतसमुद्रमूत्रयोः पृथिव्यंशयोर्मेरुपुरीषयोस्तत्तदंशत्वा-विशेषेऽपि यथा नैकप्रकारता, किंतु सदसत्तया विवेकस्तथा मत्स्यादीनां स्वरूपांशानां भिन्नांशानां जीवानां च, एवं चांशत्वे तुल्येऽपि कालाग्नितेजसोरभिमानिदेवतैक्यं खद्योतं चाभिमानिभेद इति तत्कृतं वैलक्षण्यमित्याहुः ।

अत्रेदमवधेयम् । सूत्रे, 'नैवं परः' इत्यनेन यत्प्रकारको जीवस्तत्प्रकारकत्वं परस्मिन्निषिध्यते प्रकाशादिदृष्टान्तेन । भवद्भिस्तु परस्वरूपविचारेण स्वरूपांशानां तथात्वं साध्यते । तत्तु सिद्धे परस्य तथात्वे अर्थादेव सेत्स्यतीत्यपार्थः प्रयासः । परस्य निर्दोषत्वं तु न भवदुदितरीत्या सिद्ध्यति । तेजोजलभुवां कालाग्न्यमृतसमुद्रमेरूणामेवैकाभिमानित्वं नान्येषामित्येवं विभागस्य पुराणादिष्वदर्शनात् । पृथिव्याः सर्वसहात्वेन दोषसंबन्धस्य सिद्धतया दृष्टान्तस्य विरुद्धत्व-प्रसङ्गाच्च । तेषां स्वांशराश्यभिमानित्ववदीश्वरेऽपि जीवराश्यभिमानित्वप्रसङ्गाच्च । अनभिमानित्वे तु भिन्नत्वस्य भवद्भिरेवोपगतत्वादंशत्वस्यैवासंभवः । अथ राशिवदंशित्वं विभाव्यते, तदा तु तस्य साजात्यमात्रे पर्यवसानात् ततो भिन्नस्यैकदेशस्य दूषणे राशौ दूषणसंसर्गस्य लोकेऽप्य-भावात् परिहारस्यैव वैयर्थ्यम् । एवं पितृपुत्रभावेपि, पुत्रे काणे पितरि तदभावात् परिहारवैयर्थ्यमेव । नच तद्बोधकश्रुत्याद्यनुपपत्तिः । अस्मद्रीत्यापि तदुपपत्तेः । किंचैवं

रश्मिः ।

गुर्विति बृहस्पतिभम् । प्राचीनेति वनमालिदासापेक्षया प्राचीनमाध्वमते । राशीति द्वादश राशयो मीनादयश्च तेषु चन्द्रश्चरत्यतो दिनसार्धत्रयं शतांशः दिनदशकपलानि च राश्येकदेशः तत्त्वम् । सादृश्येति सादृश्येनाल्पत्वेत्यर्थः । चन्द्रवन्मुखमित्यत्रेव । औपचारिकमिति । भेदघटितत्वात् । करचरणादिकं मुख्यमभिन्नत्वात् । तेज इति तेजसोंशयोः । एवमग्रेऽपि । कालेति कालाग्नी रुद्रः कालाग्निरुद्रोपनिषत्प्रसिद्धः । अमृतसमुद्रो मूत्रं च । अमृतं जलं समुद्रो मूत्रं प्रसिद्धम् । सदसदिति मुख्यौपचारिकतया । अभीति उभयोरीश्वरत्वात् । अभीति 'मृदब्रवीदापोऽब्रुवन्' इतिवत् । तथात्वमिति अंशत्वं सत्त्वं वा । तेज इति अंशांशिनामभेदः । एवेति एवकारेण घटा-दिव्यवच्छेदः । एकेति तेजोजलभूनिष्ठोऽयं धर्मः । नान्येषामिति । कालाग्न्यमृतसमुद्रमेरुभ्यो भिन्नानां घटादीनामित्यर्थः । दोषेति चाण्डालादिसंसर्गदोषाः । अथवा 'सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः' पञ्च दोषाः । विरुद्धत्वेति 'यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोमात्रेन्द्रियासवः' इति वाक्यात् । तेषामिति तेजोजलभुवाम् । स्वांशाः कालाग्न्यमृतसमुद्रमेरवस्तेषां राशयो द्वादश त एव कालत्वादभिमानिनो येषां तत्त्ववत् । अंशत्वस्येति अभेदसाध्यत्वेनासंभवः । राशिव-दिति द्वादश राशयोंशाः । तस्येत्यंशित्वस्य । अंशित्वमवयवित्वं तच्च साजात्यं भेदेप्यंशत्वे । तत इति तदनन्तरम् । साजात्यानन्तरम् । राशित्वेन साजात्यं ब्रह्मत्वेन साजात्यं च । दूषण इति असत्त्व-लक्षणे । अभावादिति तथा च दूषणाभावे दूषणपरिहारस्यैव वैयर्थ्यम् । परिहारस्याभावरूपत्वेन प्रतियोगिज्ञानसापेक्षत्वात् । तद्बोधकेति अवतारानवताराणां भेदाभेदयोर्बोधकश्रुत्यादीत्यर्थः ।

भाष्यप्रकाशः ।

नैसर्गिके भेदे अवान्तरसृष्टाविवादिसृष्टावपि पूर्वमीश्वरे जीवानां पिण्डीभाव एव वाच्यो, न त्वैक्यम् । तथा सति तेषां भिन्नत्वेन, 'बहु स्याम्' 'नामरूपे व्याकरवाणि'इत्याद्युक्तं स्वस्य बहुभवनं नामरूपव्याकर्तृत्वमुत्तमपुरुषप्रयोगश्चोपरुध्येत । अभिमानित्वे जीवतौल्यं चापद्येतेति ।

प्रकृतमनुसरामः ॥ स्मृतौ सूत्रे चांशशब्द उक्तः, श्रुतौ च पादशब्दः । उभावप्यनेकार्थत्वात् संदिग्धौ । अंशशब्दस्तावदवयवे पुत्रे खण्डे विशिष्टवस्त्वेकदेशे राश्येकदेशे च प्रसिद्धः । श्रुतौ तु पत्न्यामपि परंपरया, 'अर्धो वा एष आत्मनो यत् पत्नीः' इति । 'स आत्मानमेव द्वेधाऽपातयत् ततः पतिश्च पत्नीश्चाभवतां तदेतदर्धं बृगलमिव' इति तस्या अर्धत्वकथनादर्धशब्दस्य च कोशे 'पुंस्यर्धोऽर्धं समेंऽशके' इत्यंशविशेषे शक्तेः । पादशब्दोऽप्यवयव एकदेशे च । अवयवे तु प्रसिद्धः । एकदेशे तु 'विश्वो वैश्वानरः प्रथमः पादः' इति । यद्यप्येतेषु यस्य कस्याप्यर्थस्य ग्रहणे लक्षणादोषसंसर्गो न भवति, तथापि श्रुतावूर्णनाभतन्त्वोरग्निविस्फुलिङ्गयोश्च दृष्टान्तकथनात् तदनुकूल एवांशांशिभावो ग्राह्यः । तथा सति खण्डावयवादिरूपस्तन्नित्यत्वादिबोधकश्रुत्यनुरोधादविकृतस्वरूप एवांशः सिद्ध्यति, न नित्यभिन्नः केवलविशेषणरूपो वा । प्रलयदशायामविभागेन पिण्डीभाव ऐक्ये वा श्लिष्टत्वेनैव सत्त्वात् तदालिङ्गितस्य ब्रह्मणः स्वस्मिन्नहमितरभिन्न इति प्रतीतेरर्थसिद्धत्वात् सृष्टिप्राकाले 'बहु स्याम्' इत्येकत्वबुद्धिपूर्वकस्य संकल्पस्य पीडाप्रसङ्गात् ।

रश्मिः ।

श्रुतयस्तु 'तत्त्वमसि' इत्यवताराभेदबोधिका । 'सत्यं भिदा ३ सत्यो जीवः ३ इति जीवेशयोर्भेदे । 'ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशौ' इति च । **अनीश**शब्दस्याकारलोपः । **आदिना** स्मृतयः । तास्तु 'कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्' इत्यभेदे । 'जीवा भिन्नाः परो भिन्नस्तथापि ज्ञानरूपतः । प्रोच्यते ब्रह्मरूपेण वेदवादेषु सर्वशः' इति । 'परमात्मा जगद्रूपी'इत्यादिश्च । **अस्मदिति** । भेदस्य तद्धटकस्याचिन्त्यानेकविरुद्धधर्मत्वे मायिकत्व इवार्थत्वे च प्रवेशरूपया । अभेदस्य च भक्तिकारणत्वेन प्रवेशरूपया । 'नृप स्वात्मैव वल्लभः' इति वाक्यात् । 'भजनस्यैव सिद्ध्यर्थं तत्त्वमस्यादिकं तथा' इति वाक्याच्च । भेदाभेदोपपत्तेः । **पिण्डीभाव** इति । सिकतायां तैजसानां पिण्डीभाववत् । **उत्तमेति स्यामि**त्युत्तमपुरुषप्रयोगश्च जीवानां भिन्नानां बहुभवनेनोपरुध्येत । **अभीति** जीवराश्यभिमानित्वे । **परमिति** ईक्षाविशिष्टस्येच्छयेतीच्छा**परंपरया** । पुरुषविधब्राह्मणे । **पत्नीरिति** पत्नीत्यपि पाठः । 'हलङ्याब्भ्यो दीर्घात्' इति सूत्रात् । **स** इति ईक्षाविशिष्ट इच्छावान् । **पत्नीश्चेति** । पत्नीचेत्यपि पाठः । **अर्धेति** अर्धखण्डितमिव । **तस्या** इति पत्न्याः । न चार्धनारीश्वरत्वं शङ्क्यम् । तम ग्लानौ तम अभिकाङ्क्षायामेतयोरेकतराभावेन तत्त्वस्याशक्यवचनत्वात्किंतु 'यथा स्त्रीपुमांसौ संपरिष्वक्तौ' इत्यस्यां श्रुतौ 'स इममेवात्मानम्' इति श्रुतेः पूर्वस्यां स्त्री जगत् पुमान् ईक्षाविशिष्ट इच्छावानिति क्वार्धनारीश्वरप्राप्तिः । तथा च यथा स्त्रीपुमांसावित्यस्याः पूर्वं श्रुतिः । 'स द्वितीयमैच्छत्' 'स हैतावानास' इति । एतावान्समीपतरवर्ती प्रपञ्चः । **लक्षणेति** । 'अंशो नानाव्यपदेशात्' इति सूत्रेंऽशपदे । **तन्नित्यत्वेति** । 'अविनाशी वा अरेऽयमात्मानुच्छित्तिधर्मा' इति श्रुतिः । आदिना 'यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गाः' इति श्रुतिरंशत्वबोधिका । **केवलेति** जीवराश्यभिमानीश्वर इत्यत्र । **अर्थेति अर्थ** आक्षेपः, अन्यथानुपपत्तिरिति यावत्, तत्सिद्धत्वादित्यर्थः ।

भाष्यप्रकाशः ।

तथा एकत्वबुद्धेर्भ्रमत्वप्रसङ्गेन महोपप्लवप्रसङ्गाच्च । असत्पक्षे तु मोक्षेऽपि चरण एवैक्यम् । 'वैधे च सात्वतपतेश्चरणं प्रविष्टे' इत्यादिवाक्यात् । अतोंऽशांशिभावः स्वामिसेवकभावो, 'यो यदंशः स तं भजेत्', 'नाऽरुद्रो रुद्रमर्चयेत्' इत्यादिवाक्यान्यैक्यं चेति सर्वं प्राञ्जलमुपपद्यते । एवं जीवानामंशत्वे जीवस्वरूपविचारेण नानात्मवादो, भगवत्स्वरूपविचारेण चैकात्मवाद इत्यपि प्राञ्जलमेव सिद्ध्यति । हस्तपादादीनां परस्परभेदपुरुषाभेदयोर्लोकेऽपि दर्शनात् । एवंच मुक्तौ जीवानां भगवदैक्येऽपि तेषां तत्तदङ्गेष्वेव प्रवेशाद्भेदसहिष्णुरेवाभेदः । भगवन्नियम्यता च प्राञ्जलैव । यथा हस्तादीनां तत्तन्नामकत्वं तद्वज्जीवानामंशानां जीवनामकत्वमात्मनामकत्वं च निर्बाधम् । स्वगतद्वैतं तु न दोषाय । भेदसहिष्णोरेवाभेदस्य सिद्धान्तेऽङ्गीकारात् । अत एव श्रीवसुदेवभगवत्संवादेऽपि, 'आत्मा ह्येकः स्वयंज्योतिः' इति श्लोके नानात्वदृष्टेरौपाधिकत्वेन भ्रान्तत्वं निरूप्य स्वजीवस्वरूपयोर्विचारेणैकात्म्यं बोधयता भगवता,

> 'खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु यथाशयम् ।
> आविस्तारोऽल्पभूर्येको नानात्वं यात्यसावपि' ॥ इति ।

श्लोके खादिपञ्चमहाभूतदृष्टान्तेनैकात्म्येऽपि नानात्वस्य वास्तवत्वमुपाधिव्यञ्ज्यत्वं च बोधितम् । अन्यथा पूर्वश्लोके एव नानात्वदृष्टेर्गुणोपाधित्वेन भ्रान्तत्वे बोधिते तत एव नानात्वस्य निवृत्तत्वात् खादिपञ्चमहाभूतदृष्टान्तेन नानात्वं न स्थापयेत् । केवलाकाशदृष्टान्तेनापि घटाकाशमहाकाशवदेकत्वस्यौपाधिकनानात्वस्य च सिद्धौ सांशानि भूतानि भूतान्तराणि न दृष्टान्तीकुर्यात् । अतोंऽशत्वेन नानात्वस्य विद्यमानत्वात् परापरभावघटित एवैकात्म्यवादो भगवदभिमत इति सिद्ध्यति । तेन परममुक्तिदशायामैक्याभिव्यक्तावपि पुरुषस्य स्वाङ्गेष्विव भगवतो जीवेषु नियम्यता न विरुद्ध्यते । ननु परममुक्तेष्वैश्वर्यादिवत्त्वे सिद्धे नियम्यतया किं वा कार्यमिति शङ्क्यम् । स्वस्य मुक्तोपसृप्यत्वात् स्वसेवास्वप्राकट्येच्छायां स्वसेवार्थं स्वेन सह तत्प्राकट्यमित्यादि बोध्यम् । नचैवं सति नानात्वनिन्दाबोधकश्रुतिविरोधः शङ्क्यः । तत्र हि 'प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुः' इत्युपक्रम्य सर्वाधिदैविकत्वं वदन्, 'नेह नानास्ति किंचन' इति स्वरूपे नानात्वं निषेधति । तेन यथा जीवे प्राणादयो भिन्नाः स्वयं जीवस्तेभ्यो भिन्न इत्येवं नानात्वं, न तथा ब्रह्मणि, किंतु सर्वाधिदैविकत्वात्, 'प्राणन्नेव प्राणो भवति' इत्यादिश्रुत्युक्तं प्राणादिकार्य

रश्मिः ।

पीडेति जीववास्तविकभेदे **पीडाप्रसङ्गात् । भ्रमत्वेति** एकत्वाभाववति ब्रह्मणि जीवपिण्डिते एकत्वबुद्धेर्भ्रमत्वम् । तदभाववति तत्प्रकारकत्वात् । **महेति** ईश्वरस्य भ्रान्तत्वापत्त्या नामसृष्ट्यविश्वासेऽनिर्मोक्ष इत्यादिः । विधिनिषेधके वाक्ये आहुः यो यदंश इत्यादि । एतदग्रे **तस्मादयमेव पक्षो निर्दुष्ट** इत्येतावान्ग्रन्थः । एवं जीवानामंशत्वमित्यारभ्य संभवादित्यन्तो ग्रन्थः सम्यगायातो भेदाभेदवादोयं भास्कराचार्याणां शोभत इति सोऽपि व्याक्रियते अचिन्त्यानन्तशक्तिमद्विरुद्धसर्वधर्माश्रययुक्तयगोचरत्वेन ब्रह्मण आहुः **एवं जीवानामिति** । इदं न सजातीयद्वैतं किंतु स्वगतद्वैतमित्याशयेनाहुः **स्वगतेति** । **भेदसहीति** भेदस्तु मायिको विरुद्धधर्मान्तर्गत इवार्थो वेत्यसकृदुक्तम् । **परापरेति परः** पुरुषोत्तमः, **अपरोक्षरः** जीवसंघकः । **मुक्तेति** 'मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात्' इति व्याससूत्रम् । भक्तपक्षपातेन **स्वसेवास्वप्राकट्येच्छायां स्वेन सह ब्रह्मणो** गौणत्वम् । 'सोश्नुत' इति श्रुतेः । **इत्यादीति** आदिना तत्तदधिकारिण्यां लीलायां

भाष्यप्रकाशः ।

स्वयं स्वरूपेणैव कुर्वन्नाना नेति नानात्वं निषिध्य तादृशे यः प्राणादिनानात्वं पश्यति तस्य निन्दा क्रियते । तेन भ्रान्तप्रतिपन्ननानात्वस्य दर्शन एव निन्दापर्यवसानं, न तु कार्यभेदेन प्राप्ते तस्मिन् 'प्राणन्नेव प्राणो भवति' इति श्रुत्यैव नानात्वस्याङ्गीकारात् । यथैकः पुरुषः पाचनपाठनादीनि नानाकार्याणि कुर्वन्नाना न भवतीति तद्वद् ब्रह्मापीत्यदोषात् । एतेनैव, 'न ह्यस्ति द्वैतसिद्धिरात्मैव सिद्धोऽद्वितीयो मायया ह्यन्यदिव' इत्युत्तरतापनीयोक्तं समर्थितं ज्ञेयम् । अंशांशिभावेनैव नानाकार्यकरणेऽपि स्वरूपैक्यानपायात् । इदं च मत्कृतनृसिंहतापनीव्याख्याना-देवावगन्तव्यमिति नेह प्रपञ्च्यते । नच, 'यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति'इति श्रुतिविरोधः । अत्र भेददर्शने दोषस्यानुक्तत्वात्, कुरुते इति पदेन तथा निश्चयात् । क्रियासाध्यस्य तस्य भेदस्योपमानादिकरणे एव संभवात् । तस्मादयमेव पक्षो निर्दुष्ट इति ॥५३॥

इति षोडशं अंशो नानाव्यपदेशादित्यधिकरणम् ॥ १६ ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणनखचन्द्रनिरस्तहृदयध्वान्तस्य पुरुषोत्तमस्य कृतौ भाष्यप्रकाशे द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ २ ॥ ३ ॥

रश्मिः ।

पातयित्वा तत्तदधिकारानुसारिणी क्रीडेति । **नानात्वं पश्यतीति** । ननु नानात्वं भेदस्तमिव पश्यतीत्युक्त्येवार्थो भेद इति श्रुतिविरुद्धमिति चेन्न । भेदस्यैवार्थत्वात् । इव इव पश्यतो दोषात् । इव इवात्यन्ताभेदः । 'अविभक्तं च भूतेषु' इति गीताविरोधात् । **भ्रान्तेति** भ्रान्ता नैयायिकादयः । तैः प्रतिपन्नं नानात्वं तद्यथा । 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इत्यत्र श्रुत्यां यः नाना इव पश्यति तस्य मृत्युर्भवति न तु नाना नामभेदं पश्यत इति । तथा नानेव पश्यति तस्य मृत्योर्मृत्युर्भवति किं पुनर्नानानामभेदं पश्यत इति । तस्य दर्शन इत्यर्थः । **पर्येवेति** नहि श्रुतिः श्रुत्येकशरणव्याख्यानं निन्दति किंतु स्वबाह्यवर्तमानानां स्वार्थवादत्वमङ्गीकुर्वतां च व्याख्यानमिति **पर्यवसानपदम्** । **तस्मिन्निति** भेदे । 'कार्यकारण-वस्त्वैक्यमर्षणम्' इति वाक्यात् । एवेति । गौणप्रमाणव्यवच्छेदः । **अन्यदिवेति** भेदवदिव । **स्वरूपेति** तत्त्वमस्यादिवाक्येभ्यः । उत् अरं स्वल्पमपि अन्तरं भेदम् । **कुरुत** इति करणार्थक-धातुपदेन । **अभावादीति** आदिना दुःखनाशौ । **अयमिति** मुख्यांशांशिपक्षः ॥ ५३ ॥

इति पञ्चदशं अंशो नानाव्यपदेशादित्यधिकरणम् ॥ १५ ॥

इति श्रीविट्ठलेश्वरैश्वर्यनिरस्तसमस्तान्तरायेण श्रीगोविन्दरायपौत्रेण संपूर्णवेत्त्रा विट्ठलरायभ्रात्रीयेण गोकुलोत्सवात्मजगोपेश्वरेण कृते भाष्यप्रकाशरश्मौ द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः पादः संपूर्णतामगमत् ॥ २ ॥ ३ ॥

१. रश्मिकारमते ।

श्रीकृष्णाय नमः ।

श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ।

श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।

श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम् ।

भाष्यप्रकाश-रश्मि-परिबृंहितम् ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।
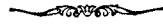
चतुर्थः पादः ।

तथा प्राणः ॥ १ ॥

जीवशरीरमध्यवर्तिनां प्राणादीनां विचारार्थं पादारम्भः ।

भाष्यप्रकाशः ।

तथा प्राणः ॥ १ ॥ पूर्वपादे जीवस्य स्थूलशरीरनिष्पादकानां भूतानामुत्पत्तिक्रमादिकं विचार्य ततो जीवस्वरूपं विचारितम् । इन्द्रियादीनां तु स्वरूपादिकं न विचारितमिति तुरीये पादेऽवसरसंगतिं बोधयन्तः पादप्रयोजनमाहुः जीवशरीरेत्यादि । जीवस्थूलशरीरमध्यवर्तिनां लिङ्गशरीरघटकानामन्तर्बहिरिन्द्रियाणां प्राणानां च विचारार्थं पादारम्भ इत्यर्थः । अत्रैतेषां शरीरान्तरवर्तित्वोक्त्या शरीरान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वं दर्शितम् । तत्र द्वयी विधा संभाव्यते । शरीरवदुत्पत्तिनाशशालित्वं वा जीववदुत्क्रान्त्यागतिशालित्वं वा । आद्यायां वियदादिवद् ब्रह्मकार्यत्वम् । द्वितीयस्यां जीववद् ब्रह्मांशत्वम् । सर्वविज्ञानप्रतिज्ञायास्तूभयथाऽपि सिद्धिरतोऽत्रोभयोर्मध्ये किं विवक्षितमित्याकाङ्क्षायां प्राणादिनित्यतागमकस्य श्रुतावनुपलम्भाद्, 'एतस्माज्जायते प्राणः' इत्यत्र जन्मोपलम्भाच्च कार्यत्वमेव विवक्षितमिति पूर्वपक्षे प्रवृत्तमिदं सूत्र-

रश्मिः ।

तथा प्राणः ॥ १ ॥ अवसरेति । ततः सम्यग्वेदार्थविचारायैव वैदिकपादार्थानां क्रमस्वरूपविचारः पादद्वयेनेत्यध्यायारम्भभाष्यात्प्रतिबन्धकीभूता जिज्ञासा वेदमुख्यप्राणस्य विचारे जीवस्य स्थूलशरीरनिष्पादकानां भूतानामुत्पत्तिक्रमादिकं किं जीवस्वरूपं च किमित्येवंविधा तन्निवृत्तौ तृतीयपादे सत्यामवश्यवक्तव्यत्वं प्राणादीनामित्यवसरसंगतिमित्यर्थः । प्रतिबन्धकीभूतजिज्ञासानिवृत्तौ सत्यामवश्यवक्तव्यत्वमवसर इत्यवसरसंगतिलक्षणात् । **बहिरिति** त्वगादयः । प्राणा दशेन्द्रियाणि तेषांच चक्षुराद्यधिकरणेषु विचारार्थम् । तथा चेमानि विषयवाक्यानि वक्ष्यमाणानि च । **शरीरेति** शरीरे सतीन्द्रियाणि मनश्च शरीराभावे इन्द्रियाणां मनसश्चाभाव इत्यन्वयव्यतिरेकौ तत्पश्चाद्विधायित्वं प्रतीतत्वम् । तत्र संशयपूर्वपक्षौ वक्तुमाहुः **तत्रेति** तत्रेत्यादिभाष्यादित्याशयेन विवरणम् । **द्वयीति** द्वाववयवौ यस्याः सा द्वयी 'संख्याया अवयवे तयप्' । तयपोऽयच् । ततः ङीप्रत्ययः । असमस्तं द्वयी विधेति । **आद्यायामिति** कोटौ । **सर्वेति** प्रतिज्ञाहानिसूत्रोक्तायाः । **उभयथेति** ।

तत्र जीवं निरूप्य तादृशधर्मवत्त्वं प्राणे अतिदिशति । प्राणशब्दप्रयोगः प्रियत्वाय, प्राणा इन्द्रियाणि ।

भाष्यप्रकाशः ।

मित्याशयेन व्याचक्षते तत्र जीवमित्यादि । अतीतपादान्ते अदृष्टानियमेन परमतं निराकृतम् । यद्यपि तत्संनिहितं तथापि तद्वत् प्राणानां निराकार्यत्वाभावेनादृष्टधर्मस्यातिदेष्टव्यत्वाभावात् ततः पूर्वं प्रकृतो यो जीवः स एव वियदाद्यपेक्षया सन्निहित इति जीवसमानधर्मवत्त्वं प्राणेऽतिदिशतीत्यर्थः । नन्वान्तराणां सर्वेषामत्र विचार्यत्वात् तथा करणानीति वक्तव्ये कथं प्राण एवात्रोक्त इत्यत आहुः प्राणशब्देत्यादि । ननु तथापि मुख्ये तद्वाचके पदेऽनुक्ते कथं तेषामवगम इत्यत आहुः प्राणा इन्द्रियाणीति । 'अथ ह प्राणा अहं श्रेयसि व्यूदिरे' इत्यादिश्रुतौ प्राणशब्द इन्द्रियेषु प्रसिद्ध इति सोऽपि मुख्यप्राय इति ततोऽपि सुखेनावगम

रश्मिः ।

कार्यत्वेंशत्वे वा । संशयमुक्त्वा पूर्वपक्षमाहुः प्राणादीति । परमतमिति नैयायिकमतम् । अध्यायार्थसंगत्यर्थमुक्तम् । अत्रापि पूर्वपक्षादौ परमतं सिद्धान्तेन तन्निराकरणं च बोध्यम् । अधिकरणसंगतिः प्रसङ्गरूपेति च स्फुटिष्यति । 'स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः' इति वाक्यात् । तदिति परमतनिराकरणम् । तद्वदिति परमतवत् । नच शक्यतावच्छेदकाननुगम इति शङ्क्यम् । दार्ष्टान्तिकान्वयानुरोधेन शक्यतावच्छेदकभेदाङ्गीकारात् । स एवेति एवकारेण परमंत तन्निराकरणं वा व्यवच्छिद्यते । सन्निहित इति । ननु सन्निहितत्वस्यातिदेशकत्वं क्व सिद्धम् । पूर्वतन्त्रे तावल्लिङ्गाङ्गसादृश्यादीनामतिदेशकत्वमुक्तमिति चेत्सत्यम् । त्यदादीनामुत्सर्गतः प्रधानपरामर्शकत्वात्सूत्रे तथेति त्यदादेरुद्देशाख्याकरणरीत्योक्तं सन्निहित इति न तु पूर्वतन्त्रोक्तरीत्येति । तेनादिशब्देन पूर्वतन्त्रेपि ज्ञेयम् । पूर्वतन्त्रे त्वष्टमस्य चतुर्थेधिकरणे भाट्टमतेनाधिकरणमालायां पञ्चमे, 'पशौ च लिङ्गदर्शनात्' इत्यधिकरणे एकसूत्रे । 'न पशावैष्टिकं स्याद्वा न कपालाद्यभावतः । स्याद्व्यक्तद्रव्यदेवत्वप्रयाजस्रुच्यसाम्यतः' इति चिन्त्यते । पशावग्नीषोमीये किं दार्शपौर्णमासिको विध्यन्तः उत सौमिक इति संशयः । ऐष्टिको विध्यन्तो नास्ति । कुतः पूर्वाधिकरणवदत्र निर्वापकपालादिलिङ्गाभावादिति पूर्वपक्षे आग्नेयमष्टाकपालमित्यत्रोत्पत्तिवाक्ये यथा द्रव्यदेवते व्यक्ते तथाग्नीषोमीयं पशुमित्यत्रापि । न तु सोमेन यजेतेत्यत्रेव देवताया अव्यक्तत्वम् । तदेतद्व्यक्तद्रव्यदेवत्वमेकं लिङ्गम् । एकादशप्रयाजान्यजतीति प्रयाजवत्त्वं द्वितीयम् । स्रुच्यामाधार्य जुह्वा पशुमनक्तीत्याघाराञ्जने लिङ्गान्तरे आलम्भो लिङ्गान्तरम् । इष्टावपीषामालभत इति दर्शनात् । तदस्ति पशावैष्टिक इति । तद्वत्प्रकृतेप्यतिदिशति । वियदाद्यव्यक्तधर्मातिदेशमवकृत्य जीवसमानधर्मत्वमित्यर्थः । इत्यर्थ इति तेन 'अन्यत्रैव प्रतीतायाः कृत्स्नाया धर्मसन्ततेः अन्यत्र कार्यतः प्राप्तिरतिदेशेऽभिधीयते' इति लक्षणात् प्राणे जीवसमानधर्मत्वस्य प्राप्तिं करोतीत्यर्थः । कर्ता भगवान्व्यासः सूत्रं वा । कार्यत इत्यस्यापूर्वात् प्रीतदेवताया वेत्यर्थः । अथ 'प्राकृतात्कर्मणो यस्मात्तत्समानेषु कर्मसु । धर्मप्रवेशो येन स्यात्सोतिदेश इति स्मृतः' इति लक्षणाद्व्यासो भगवानतिदेशेन 'तथा प्राणः' इति सूत्रात्मकवाक्येन प्राणे जीवसमानधर्मत्वं करोतीत्यर्थः । तथा च तैर्जैवैः प्रकारैरुत्क्रान्त्यादिप्रज्ञाद्रष्टृत्वादिभिः प्राणो विशिष्टः कर्तव्य इति सूत्रार्थः । तथेति तथा प्राण इत्यत्र तथा प्राणानीति वक्तव्ये । व्यूदिर इति विवादं कृतवन्तः । श्रुताविति छान्दोग्यसप्तमप्रपाठकश्रुतौ । स इति ।

मनसो मुख्यत्वादेकवचनम्। उत्क्रान्तिगत्यागतीनामित्यारभ्य सर्वोपप-

भाष्यप्रकाशः।

इत्यर्थः। तर्हि कथमेकवचनप्रयोग इत्यत आहुः **मनस** इत्यादि। लिङ्गशरीरे तस्यैव प्राधान्यात् तथेत्यर्थः। ननु प्राणेषु वियदादिधर्मातिदेशे, 'स प्राणमसृजत' इति श्रुत्युक्तं सृज्यत्वरूपं जन्यलिङ्गमतिदेशकम्, जीवधर्मातिदेशे किमतिदेशकमित्यत आहुः **उत्क्रान्ती**त्यादि। 'स यदाऽस्माच्छरीरादुत्क्रामति सहैवैतैः सर्वैरुत्क्रामति यथा महाराजो जानपदान् गृहीत्वा स्वे जनपदे यथाकामं परिवर्तेत एवमेवैष एतत्प्राणान् गृहीत्वा स्वे शरीरे यथाकामं परिवर्तते। स यदा प्रतिबुध्यते यथाऽग्नेर्ज्वलतः सर्वा दिशो विस्फुलिङ्गा विप्रतिष्ठेरन्नेवमेवैतस्मादात्मनः प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते' इत्यादिषूक्ता जीवसहभावावबोधिका या सर्वा उपपत्तिः सैव, 'विप्रतिषिद्धधर्मसमवाये भूयसां स्यात् स्वधर्मत्वम्' इति पूर्वतन्त्रोक्तन्यायाज्जीवसमानधर्मा-

रश्मिः।

प्राणशब्दार्थः। **मुख्ये**ति वेदाद्गृहीतेन्द्रियेषु प्राणशब्दशक्तिः। ननु कथं प्रायशब्दः। उच्यते। शक्तिग्रहो व्याकरणनिरुक्तकोशाप्तवाक्यादिभ्यो भवति। वेदात्त्वनेकत्र प्राणशब्दशक्तिरिति प्रायशब्द इति। **तथे**ति एकवचनत्वप्रकारेणैकवचनं कृतम्। ननु भाष्यान्तरेषु प्राणा इति पठ्यते। सत्यम्। प्रसिद्धसूत्रपुस्तके तु ह्येकवचनान्तं प्राणपदान्तं सूत्रम्। भाष्यमप्युक्तम्। **स प्राण**मिति प्रश्नोपनिषदन्तिमप्रश्नस्था श्रुतिरियम्। **स** इति 'यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्ति' इति। छान्दोग्यीयाष्टमोपदेशोक्तः। **असृजते**ति। परिद्रष्टृत्वात्। **अतिदेशक**मिति 'अन्यत्रैव प्रतीतायाः' इत्युक्ते नियामकमतिदिशतीत्यतिदेशकम्। कर्तरि ण्वुल्। लिङ्गमतिदिशति यदा तदायं साधुः। लिङ्गमतिदेशकं पूर्वतन्त्रेऽष्टमस्य तृतीयपादे गणनोदनाधिकरणेऽस्ति। प्रथमपादे 'यस्य लिङ्गमर्थसंयोगादभिधानवत्' इत्यधिकरणेस्ति। **स यदे**ति **स** जीवः। **भाष्ये** सर्वशब्दात्स्वप्रश्रुतिमाहुः **यथे**ति। **जीवसहे**ति प्राणस्य **जीवसहभावबोधिका**। **सर्वै**ति यद्येतैरिति सहार्थे तृतीया न स्याद्यदि प्राणान्गृहीत्वेत्यत्रैतैः सहेति पूरणं न स्याद्यदि चात्मनः प्राणा इत्यत्र तेनात्मना सहेति पूरणं न स्यात्तदा जीवप्राणयोः सहभावो न स्यादित्येवंविधा सर्वोपपत्तिर्युक्तिरन्यथाज्ञानमित्यर्थः। एवं च जीवप्राणयोः साहित्यं श्रौतमिति सादृश्यं सिद्धम्। सहभावोत्र प्रामाणिकस्थानिको ग्राह्यः स्वाभाविकोऽन्यो वागन्तुकः तेन चन्द्रवन्मुखमित्यादौ साहित्ये सति सादृश्यम्। न कल्पितघटपटादिसाहित्येन घटपटादिसादृश्यम्। नन्वात्मनः प्राणा इत्यत्रोक्तसहभावस्य किं प्रयोजनमिति चेन्न। 'यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते' इत्यादिश्रुतिभ्यः प्राणप्रेरकसहभावौचित्याज्ज्ञापकत्वाच्च। ननु यथाग्नेरित्यादिश्रुत्योत्पत्तिरप्युक्तेति चेन्न। प्राणेऽपि बाधकाभावादस्त्विति। ननु तथापि सृज्यत्वलिङ्गेन वियदादिधर्मातिदेशोस्तु किमङ्गसमनया युक्त्येत्यत्र जैमिनिसूत्रं स्वोक्ते प्रमाणयन्ति स्म **सैवे**त्यादिना। **विप्रतिषिद्धानां** तुल्यबलविरुद्धानां **धर्मसमवाये भूयसां** धर्माणां **स्वधर्मत्वं स्यादि**ति सूत्रार्थः। द्वादशस्य द्वितीयचरणेस्त्यधिकरणात्मकं सूत्रम्। विप्रतिषिद्धधर्माणां समवाये भूयसां स्यात्सधर्मत्वमिति पाठान्तरम्। एतदनुरोधेन जीवसमानधर्मेत्याग्रे भाष्यप्रकाशः। समानस्य सादेश इति। **पूर्वे**ति। ननु न्यायशब्दोक्तिरनुपपन्नाधिकरणान्ते ग्रमन्यत्रापीत्यनुक्तेरिति चेन्न। स्वमतानुसारेण तथोक्तेः। यथाहुः शंकराचार्यास्तत्प्राक्सूत्रे 'तथा स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धामित्यत्रापि प्राणे श्रुता सृजतिः परेष्वप्युत्पत्तिमत्सु श्रद्धादिष्वनुषज्जते' इत्युक्त्वा

त्तिरत्रातिदिष्टा, चिदंशस्यापि तिरोभाव इति पृथङ् निरूपणम् । ननु तद्गुणसारत्वादयः कथमुपदिश्यन्त इति चेन्न । सत्यम्, अस्ति तत्रापि, 'ये प्राणं ब्रह्मोपासते' इति ॥ १ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

तिदेशकत्वेनोपदिष्टेत्यर्थः । ननु सर्वोपपत्तिसाम्ये जीवधर्मातिदेशस्यार्थादेव सिद्धेरिदं सूत्रं पूर्वपाद एव प्रणीतं स्यात् पृथक्पादान्तरे विचारस्य किं प्रयोजनमत आहुः **चिदंशेत्यादि** । तथाच जडत्वाद्वियदादितुल्यत्वं संभाव्येतेति तन्निवृत्त्यर्थं पृथग्विचार इत्यर्थः । अत्र जीवसाम्यममन्वानः पृच्छति **नन्वित्यादि** । ननु सर्वोपपत्तिमध्ये तद्गुणसारत्वतद्व्यपदेशौ गुणानां यावदात्मभावित्वमन्ये च धर्माः प्रविष्टास्ते च प्राणविषयका न प्रसिद्धास्ते कथमुच्यन्ते इत्यर्थः । अत्र समादधते **नेत्यादि** । अयं पर्यनुयोगो न कार्यः । बृहदारण्यके, 'प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम्' इति श्रुत्युक्तं सत्यमस्ति । तैत्तिरीये तत्र प्राणेऽपि 'ये प्राणं ब्रह्मोपासते' इति व्यपदेशोऽस्ति । एवं षडाचार्यब्राह्मणे 'प्राणवाक्चक्षुःश्रोत्रमनोहृदयेषु प्राणो वै ब्रह्म वाग् वै ब्रह्म' इति व्यपदेशोऽस्ति । 'न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन इतरेण तु जीवन्ति

रश्मिः ।

'यत्रापि पश्चाच्छ्रुत उत्पत्तिवचनः शब्दः पूर्वैः संबध्यते तत्राप्येष एव न्यायः' इति । उदाहरणमपि 'यथा सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्तीत्ययमन्ते पठितो व्युच्चरन्तिशब्दः पूर्वैरपि प्राणादिभिः संबध्यते' इति । अस्माद्भूयंपदघटितान्न्यायाद्भूयसां जीवधर्माणां स्वधर्मत्वविधानाज्जीवसमानधर्मातिदेशकत्वेनोपपत्तिस्तथाशब्देन सूत्र उपदिष्टेत्यर्थः । यद्यपि धर्मवदुपपत्तिरतिदेष्टुं शक्या, तथापि धर्मेष्वतिदिष्टत्वं तथाशब्दे सौत्रेतिदेशकत्ववदुपदेशकत्वस्याप्यतिदेशकत्वाविरुद्धस्य वक्तुं शक्यत्वं मन्वानैरेवमुक्तम् । एतदेवाशङ्कामुखेनाहुः **नन्विति** । **सर्वोपपत्तीति** प्राणस्य जीवसर्वोपपत्ति**साम्ये** । **जीवधर्मेति** । न तूपपत्त्यतिदेशस्य । भाष्य उपपत्तिरतिदिष्टा धर्मातिदेशफलिका । **अर्थादिति** आक्षेपात् । **एवकारेण** पृथग्विचारो व्यवच्छिद्यते तदर्थम् । **पूर्वेति** जीवनिरूपणात् । **एवकारस्तु** । 'अयमात्मा ब्रह्म' 'ये प्राणं ब्रह्मोपासते' इति श्रुत्योर्विरोधस्य परिहारेण पादार्थसंगतेः । तेन प्राथमिकतद्गुणसारत्वं समर्थितम् । **वियदादीति आदिनाऽदृष्टम्** । **अन्य** इति पुंस्त्वादिसूत्रोक्ताः । **प्रविष्टा** इति अष्टमे पूर्वतन्त्रे हविर्गणाधिकरणे देवतासामान्यरूपं सादृश्यमतिदेशकमत्र धर्मैः सादृश्यरूपा सर्वोपपत्तिरित्येवं प्रविष्टा इत्यर्थः । **उच्यन्त** इति उपासनार्थमुपदेश्यत्वेन तथेति शब्देनोच्यन्त इत्यर्थः । **उपदिश्यन्त** इति भाष्ये उपदेशविषयाः क्रियन्ते यद्यपि तथाप्यन्यधातुनापि विवरणदर्शनादुच्यन्त इति विवरणमुक्तम् । सत्यमत्रार्धाङ्गीकारे, नेत्याहुः । **बृहदिति** मूर्तामूर्तब्राह्मणे समाप्तौ । **तेषामिति** प्राणानाम् । **सत्यमस्तीति सत्यमुपासनम्** । सति साधुत्वात् । ननु प्राणानामेष सत्यमित्यत्रैतच्छब्देन समीपतरवर्त्युक्तः नोपासनमिति चेत्सत्यम् । तर्हि प्राणा वै सत्यमित्युक्तं सत्यमस्तु । प्राणानामुपासनं सत्यम् । 'आत्मानं रथिनं विद्धि' इत्युक्त्वा 'सदश्वा इव सारथेः' इत्युक्तेः । इन्द्रियेषु सत्त्वमुपासने साधुत्वं दैवीसंपत्त्वमिति यावत् । **व्यपदेश** इति तद्व्यपदेशः ब्रह्मत्वव्यपदेश इति यावत् । **षडाचार्येति** प्राणादयः षडाचार्याः । ननु मिताक्षरायां बृहदारण्यकटीकायां षडाचार्यकूर्चब्राह्मणमिति कथनात्तद्विरोध इति चेन्न । कूर्चब्राह्मणमेतस्याग्रेऽस्ति तेन षडाचार्यकूर्चब्राह्मणमित्युक्तेः । सर्वान्तरगतानां गुणानां यावदात्मभावित्वं प्रपञ्चयन्ति स्म **न प्राणेनेति** ।

गौण्यसंभवात् ॥ २ ॥

ननु उत्क्रान्त्यादिश्रुतिर्गौणी भविष्यति। न। गौण्यसंभवात्। सा श्रुति-गौणी न संभवति। एकैव श्रुतिर्जीवे मुख्या प्राणे गौणीति कथं संभवति ॥ २ ॥

भाष्यप्रकाशः।

यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ' इति सर्वप्राणनरूपो ब्रह्मगुणः प्राणेऽस्ति। 'चक्षुषश्चक्षुः श्रोत्रस्य श्रोत्रम्' इति तेषां स्वस्वकार्यक्षमत्वमपि ब्रह्मगुण एव तत्तदिन्द्रियेष्वस्ति। स एव च तेषु सारभूतो जडान्तरेभ्यो वैलक्षण्यसंपादकत्वात्। स च धर्मो यावत्तत्स्थिति तेषु तिष्ठतीति कार्यबलादेवावगम्यते। इन्द्रियवधस्तु कार्याक्षमत्वमेव, न नाशः। पुनः शरीरान्तरेऽपि संनिधानात्। अतस्तद्गुणसारत्वादयस्तत्रोपदिश्यन्ते इति न पर्यनुयोगावकाशः। तथाच जीवधर्माणां भूयस्त्वात् तेषामेवातिदेशो युक्तो न वियदादिधर्माणामित्यर्थः ॥ १ ॥

गौण्यसंभवात् ॥ २ ॥ अतिदेशकमाक्षिपति **नन्वित्यादि**। ननु नित्यत्वस्याश्रवणादुत्क्रान्त्यागतिश्रुतिर्नाशोत्पत्तिपरतया सत्यत्वादिश्रुतिश्चोपासनापरतया गौणी भविष्यतीति न तासामतिदेशकत्वमित्यर्थः। अत्र समाधत्ते **नेत्यादि**। कुतः **गौण्या असंभवो गौण्यसं-**

रश्मिः।

एताविति प्राणापानौ। एतदुक्तं भवति आश्रयगुण एव प्राणापानयोरिति तदाहुः **सर्वप्राणने**ति। **इति तेषामि**ति। श्रुत्युक्तप्रकारेण चक्षुःप्रकाशनसामर्थ्यमेवमादि व्यष्टिः। समष्टिमाहुः **स्वे**ति। **तत्स्थिती**ति तत्स्थितिमनतिक्रम्य यावत्स्थिति। तच्छब्देन कनीनिकादिकम्। **कार्यबला**दिति दर्शनादिबलात्। एवकारेणेच्छावादे औषधादिव्यवच्छेदः। **इन्द्रिये**ति। वैलक्षण्याच्चेति वक्ष्यमाणसूत्रे स्पष्टः। मात्रापातसंभावनायां तु हीन्द्रियवेधो भेदाच्चेति सूत्रेऽस्ति। इदं च शंकरभाष्ये। अस्मद्भाष्ये तु प्राणवदधिकरणीये द्रष्टव्यः। यद्वा 'वेधाद्यर्थभेदात्' इत्यत्र द्रष्टव्यः। **पुन**रिति जाग्रदवस्थायां **शरीरान्तरेऽपि** शरीरस्य क्षणिकत्वात्। अष्टमोपदेशे यत्र लीनानीन्द्रियाणि। तस्यानुप्रवेशे तु **शरीरान्तरेऽपि**। **तद्गुणे**ति आदिना पूर्वोक्ता एव। कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वाधिकरणोक्तकर्तृत्वं तु नास्ति। इन्द्रियेषु न कर्तृत्वम्। तस्मादिन्द्रियादीनां करणत्वमेवेत्युपादानसूत्रभाष्यात्। अभ्युदयनिःश्रेयसफलककर्मकर्तृत्वं जीवानामेव बोध्यम्। तेनान्यविधकर्तृत्वं प्राणेस्तीन्द्रियाणि सन्ति। प्रश्नोपनिषदि 'प्राण उवाच मा मोहमापद्यथाहमेतत्पञ्चधात्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामि' इति 'वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रं ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयाम' इत्यत्र न कर्तृत्वदोषः परात्तु तच्छ्रुतेः इत्यधिकरणं कर्तृत्वे प्रवर्ततेऽतो नात्र विचारणा 'अंशो नानाव्यपदेशात्' इत्यधिकरणे 'विस्फुलिङ्गा इवाग्नेर्हि जडजीवा विनिर्गताः' इत्यादिनांशत्वं प्राणानामप्युक्तप्रायम्। **वियदादी**ति भाष्ये स्पष्टाः ॥ १ ॥

गौण्यसंभवात् ॥ २ ॥ तद्गुणसारत्वादीनप्रसिद्धान्विचार्योत्क्रान्त्यादिषु किंचिद्विचारयन्तीत्याशयेनाहुः **अती**ति सादृश्यम्। **आक्षिपती**ति उत्क्रान्त्यादिश्रुतिर्जीवे मुख्या प्राणे गौणीति सादृश्यं नास्तीत्याक्षिपति। जीवे तु श्रवणादिति भावः। उत्क्रान्त्यागतीति पाठः। **नाश** इति। उत्क्रान्तिर्नाशः। **आगति**रुत्पत्तिः स्वप्नान्त आगतिर्नास्ति। **सत्यत्वे**ति छान्दोग्यश्रुतिरुक्ता। **गौणी**ति सिंहो माणवक इतिवत् सत्यत्वगुणयोगादित्यर्थः। 'प्राणा वै सत्यम्' इति प्राणेषु सत्यत्वम्। **अती**ति श्रुतिनिष्ठं सादृश्यं तत्प्रतिपाद्येष्वपि धर्मेषु। **गौण्या** इति न वियदधिकरणे गौणी,

भाष्यप्रकाशः।

भवस्तस्मात्। अत्र तथेति पूर्वस्मादनुवर्तते। एवमग्रेऽपि। तेन बुद्धिस्थहेतुशुद्ध्यर्थानि चत्वार्यग्रिमाणि सूत्राणीति फलति। असंभवं व्युत्पादयन्ति एकैवेत्यादि। स यदाऽस्मादित्यत्र द्वितीया। उत्क्रामतीति श्रुतिस्तु सर्वेषां सहभावं विधातुं पूर्वामेवोत्क्रान्तिमनुवदत्यतः पूर्वोक्तैकैव श्रुतिर्जीवे मुख्या प्राणेषु गौणीति युगपद्वृत्तिद्वयविरोधाश्च संभवतीति न तासामतिदेशकत्वहानिरित्यर्थः। एतेनैव जीवे गौणी, प्राणेषु मुख्येति वदन्त एकदेशिनोऽपि प्रत्युक्ताः। वैरूप्यस्य तौल्यादिति बोध्यम् ॥ २ ॥

रश्मिः।

असंभवादिति व्याख्यातम्, पूर्वपक्षसूत्रत्वात्। इह तु सिद्धान्तसूत्रत्वात्समासेन व्याकुर्वन्ति स्म गौण्या इति। तेनेति तेनानुवर्तनेन करणेन बुद्धिस्थो हेतुरतिदेशकसद्भावरूपस्तच्छुद्ध्यर्थानि तर्करूपाणीत्यर्थः। तथाहि। अतिदेशिकमाक्षिपतीत्युक्तया तथा प्राण इति वाक्यमुत्क्रान्त्यादिवाक्योक्तधर्माणां नातिदेशकम्, गौण्यसंभवात्, यन्नैवं तन्नैवं घटोस्तीति वाक्यवत्। इत्याक्षेपग्रन्थीयानुमानम्। समाधानग्रन्थे तु अतिदेशकं, गौण्यसंभवात्, प्रकृतिवद्विकृतिः कर्तव्येतिवत्। न च पूर्वेणास्य विरुद्धत्वं साध्याभावसाधकहेतुमत्त्वादिति वाच्यम्। साध्यासामानाधिकरणत्वं विरुद्धत्वमिति लक्षणेनात्र तदभावव्याप्यवत्ताज्ञानस्याप्रतिबन्धकत्वात्। यथा गौरश्वत्वादित्यत्र गोत्वाभावव्याप्यवत्ताज्ञानमश्वत्वेऽप्रतिबन्धकमनुमानासत्त्वे तथात्र सदनुमाने बोध्यम्। सदनुमानेऽगृहीताप्रामाण्यकस्यैव विरोधिज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वेनात्रैतत्सूत्रेण पूर्वानुमाने गृहीताप्रामाण्यकत्वात्तदभावव्याप्यवत्ताज्ञानस्य न प्रतिबन्धकत्वमिति पूर्वानुमानमपि सदनुमानं दृष्टान्तभेदात्। तथा च गौण्यसंभवहेतुर्दृष्टान्तानुरोधेनोभयसाधकः। द्वितीयं विरुद्धलक्षणं साधारणासाधारणयोरतिव्याप्तं तथाप्युपाधिभेदाद्भेद इति **मञ्जर्याम्**। तदनु प्राणः तथाऽतिदिष्टधर्मवान्। अतिदेशकसद्भावाद्विकृतिवदित्यनुमानम्। अत्रातिदेशकं तथेति सौत्रम्। अतिदेशकसद्भावो व्यासबुद्धिस्थो हेतुर्ज्ञेयः। तच्छुद्धिप्रकारस्तु मीमांसाष्टमाध्याये तृतीयपादेऽतिदेशप्रयोजका धर्मा उद्दिष्टाः लिङ्गसादृश्यादयः। तेषु जीवतुल्यता सूत्रेषु चतुर्षूपनिपद्यते इत्यतिदेशकसद्भावरूपो हेतुः शुद्धः अन्यथा त्वशुद्धः। प्राणेषु जीवतुल्यताया अभावेनातिदेशकसद्भावरूपहेतोः स्वरूपासिद्धत्वात्। स्वरूपासिद्धिस्तु पक्षे व्याप्यत्वाभिमतस्याभावः। ह्रदो द्रव्यं धूमादित्युदाहरणम्। तथा चातिदेश्यधर्माश्रयजीवतुल्यतासमानाधिकरणमतिदेशकसद्भावरूपं लिङ्गं भवेत्तदभावे तु प्राणेषु लिङ्गं न भवेदतश्चत्वारि सूत्राण्यतिदेश्यधर्माश्रयतुल्यतासमर्पकाणीति। तेष्विदं प्रथमं सूत्रं लिङ्गस्य समर्पकमतिदेशकसद्भावरूपस्य। उत्क्रान्त्यादिवाक्येषु गौण्यभाव एव तदुक्तधर्माणां गौणत्वाभावस्तस्मिन्सति न गौणधर्मातिदेशकतथेतिशब्दसद्भाव इति। **द्वितीयेति**। एकतिङ् वाक्यमिति वैयाकरणवाक्यलक्षणाच्छ्रुतिद्वयमित्याशयः। **विधातुमिति** कर्तुम्। वेधा इत्यत्र तथादर्शनात्। **युगपदिति**। न च 'एकयोक्त्या पुष्पवन्तौ दिवाकरनिशाकरौ' इति कोशे पुष्पवच्छब्दो गङ्गायां मत्स्यघोषौ स्त इति प्रतीतौ गङ्गाशब्दो वैकत्र मुख्य एकत्र गौण इति न युगपद्वित्तिद्वयविरोधो न दोष इति वाच्यम्। एकत्र कोशस्यान्यत्र प्रत्यक्षस्य प्रमाणत्वमिवात्रालाभात्। इत्तीति इति हेतोः प्राणादिपूत्क्रान्त्यादिकस्य गौणत्वाभावात्। **अतिदेशकत्वेति**।

१. तथेति वाक्यम्।

तत्प्राक्श्रुतेश्च ॥ ३ ॥

जडत्वेनाधिकविचारोऽत्र क्रियते । सृष्टेः पूर्वमपि प्राणादीनां स्थितिः श्रूयते 'असद् वा इदमग्र आसीत् तदाहुः, किं तदसदासीदित्यृषयो वा व तेऽग्रे असदासीत् तदाहुः, के ते ऋषयः, प्राणा वा ऋषयः' इति। ननु 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्' इति विरोध इति चेत् । न । स्वरूपोत्पत्तिरेवात्र

भाष्यप्रकाशः ।

तत्प्राक्श्रुतेश्च ॥ ३ ॥ अत्रापि तथेत्यनुवर्तते । सूत्रप्रयोजनमाहुः **जडत्वेनेत्यादि** । जडानां भूतानां चिरस्थायित्वदर्शनात्तावतैव प्राणानामप्युत्क्रान्त्यादिः संभाव्यत इति तदभावाय प्राणानां नित्यत्वविचारः क्रियत इत्यर्थः । तमेवाहुः **सृष्टेरित्यादि** । श्रुतिस्तु वाजिनामग्निप्रकरणस्था । अत्र प्राणा इति बहुवचनमिन्द्रियाणां गमकम् । छान्दोग्यविरोधमाशङ्क्य परिहरन्ति **नन्वित्यादि** । **नेत्यादि** च । तथा च न तस्याः श्रुतेर्विरोधो, नाप्यनित्यत्वमित्यर्थः ।

रश्मिः ।

सौत्रतथेतिशब्दार्थसादृश्यप्रयोज्योत्क्रान्त्यादिश्रुतिप्रतिपाद्यधर्मानतिदिशन्तीति ण्वुल् कर्तरि । यद्यपि तथेतिनिष्ठमतिदेशकत्वं तथापि श्रुतिनिष्ठव्यापारविवक्षा काष्ठानि पचन्तीतिवत् । **एतेनेति** युगपद्वृत्तिद्वयविरोधेन । **एकदेशिन** इति गौण्यसंभवसूत्रानुरोधेनेदं व्याचक्षाणा इत्यर्थः । यथाहुः शंकराचार्यभाष्ये वियदधिकरणस्थगौण्यसंभवसूत्रानुरोधेन त्विहापि गौणी जन्मश्रुतिरसंभवादिति व्याचक्षाणैः 'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति' इत्येकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं प्रतिज्ञाय तत्साधनायेदमाम्नायते 'एतस्माज्जायते प्राणः' इत्यादि । सा च प्रतिज्ञा प्राणादेः समस्तस्य जगतो ब्रह्मविकारत्वे सति प्रकृतिव्यतिरेकेण विकाराभावात्सिद्ध्यति । गौण्यां तु प्राणानामुत्पत्तिश्रुतौ प्रतिज्ञेयं हीयेतेति । **वैरूप्यस्येति** युगपद्वृत्तिद्वयविरोधरूपं वैरूप्यं तस्येत्यर्थः ॥ २ ॥

तत्प्राक्श्रुतेश्च ॥ ३ ॥ अतिदेशकसद्भावस्य स्वरूपोपयोगि गौण्यसंभवसूत्रमुक्तमिदं तु कथमु[१]रोधकमित्याकाङ्क्षायां सादृश्यवाचकमनुवर्तत इत्याहुः **तथेत्यन्विति** अत्रातिदेशप्रयोजका धर्मा अतिदिष्टास्तथेत्यतिदेशकेन तत्र सादृश्यं भूयोधर्मघटितमिति नित्यत्वं भूयोधर्मान्तर्गतमुद्दिष्टं वक्ष्यमाणभाष्यात् तत्प्राणेषु नास्ति । नाप्यनुक्तसिद्धं जडत्वात् । अतः सादृश्योपयोग्यधिकविचार इत्यतिदेशकसद्भावहेतुशोधकमिदमपि सूत्रम् । तथा च । ननु प्राणः नातिदेशकसद्भाववान् अनित्यत्वाद् घटवदित्यनुमानेन हेतोरतिदेशकसद्भावरूपस्य स्वरूपासिद्धत्वमिति चेन्न । प्राणो नित्यः तत्प्राक्श्रुतेः । यन्नैवं तन्नैवं घटादिवदित्यनुमानेनानित्यत्वस्य त्वस्यैव हेतोः स्वरूपासिद्धत्वात् । ततश्च प्राणः तथाऽतिदिष्टधर्मवान्, अतिदेशकसद्भावादिति बुद्धिस्थो हेतुः शुद्धः । इत्येवं तथेत्यनुवर्त्य योजनीयमित्यर्थः । **संभाव्यत** इति । न तु नाश इति भावः । एतावतैव जीवतुल्यत्वं भवतु न तु नित्यत्वेनापीति न तेषां प्राणानां नित्यत्वमिति । चिरकालस्थायित्वमात्रेण जीवतुल्यताभावाय प्राणानां नित्यत्वेत्यादिः । **अग्नीति** । असदित्यस्यार्थः पूर्वमुक्तः 'असदिति चेन्न प्रतिषेधमात्रत्वात्' इत्यत्र प्रथमपादे । असन्मृत्युरिति वा । **नन्वित्यादीति** । अविरोधोऽध्यायार्थस्तस्य संगमनम् । पादार्थस्तु जीवशरीरमध्यवर्तिनां प्राणादीनां विचारः । आशङ्काग्रन्थत्वेप्युत्तराविरोधात् । **नेत्यादीति** । **एवेति** । 'प्राणा वै सत्यम्' इति श्रुतेरेवकारः ।

---

१. (प्रश्नं कृत्वा ।)

निषिध्यते जीववत्। न तूद्गमः। उद्गमात् पूर्वं तु सदेवेति श्रुतिः। चकारान्मोक्षे

भाष्यप्रकाशः।

चकारप्रयोजनमाहुः चकारादित्यादि। यथा सृष्टेः प्राक् स्थित्या नित्यत्वं लभ्यते तथा मोक्षे तदीयप्राणादेर्ब्रह्मसंपत्तिः श्रूयते शारीरब्राह्मणे 'न तस्मात् प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति' इति। 'अत्रैव समवनीयन्ते' इति। उत्क्रमहेतूनामविद्याकामकर्मणां निवृत्तत्वाद् ब्रह्मण्येव संपद्यन्ते इत्यर्थः। नचेयं जीवन्मुक्तव्यवस्थेति शङ्क्यम्। तत्रोत्क्रमशङ्काया एवाभावेन तदभावानुवादवैयर्थ्यप्रसङ्गात्। अग्रे अहिनिर्ल्वयनीदृष्टान्तदर्शनेन स्थूलदेहत्यागस्यैव तत्र लाभाच्च। अतोऽनित्यत्वार्थं साऽपि संगृह्यत इत्यर्थः। श्रुत्यन्तरपीडामाशङ्क्य परिहरन्ति

रश्मिः।

श्रुतिरिति। तेन प्राणानां सत्त्वमसत्त्वं चेति विरुद्धधर्माश्रयत्वं पुरुषविधे इति। तदीयेति। संसारप्रकरणस्य विच्छिन्नत्वादसंसारीयस्य प्राणादेरित्यर्थः। एतेन तस्येति भाष्यं विवृतम्। प्राणा इति श्रौतबहुवचनेन प्राणादेरित्यादिशब्दघटितेन तदीयप्राणादिपदेनेति बोध्यम्। न तस्मादिति 'अथाकामयमानः' इत्यादिश्रुतेरकामात्पुरुषात्। निवृत्तेति 'योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो भवति न तस्मात् प्राणा उत्क्रामन्त्यत्रैव समवनीयन्ते' इति श्रुतेर्निवृत्तत्वात्। भाष्यीयमोक्षपदस्वारस्यमाहुः न चेयमिति। जीवदिति। यथाहुष्टीकायाम्। अथाकामयमान इति श्रुत्याऽथशब्दः संसारप्रकरणविच्छेदार्थ इति। एवाभावेनेति दूरत्वादिकारणस्थानापन्नाविद्याकामकर्मणां निवृत्तत्वादेवाभावेन। तस्योत्क्रामन्तिपदप्रतिपाद्यस्योत्क्रमकर्तुरभावस्यानुवादस्य वैयर्थ्यप्रसङ्गादित्यर्थः। ननूत्क्रमाभावस्य तच्छब्देन परामर्श उचितः। त्यदादीनामुत्सर्गतः प्रधानपरामर्शकत्वादिति चेन्न। धात्वर्थस्य प्रत्ययार्थोपसर्जनत्वेनोपस्थितस्य नञर्थेनान्वयायोगात्। नह्यन्योपसर्जनमन्येनान्वेति। मा राजपुरुषमानयेत्यादौ राज्ञ आनयनान्वयित्वं ततश्च नञर्थस्य न धात्वर्थेनान्वयः। आरुण्यस्यैवैकहायन्या। नापि तस्मादित्यनेनान्वेति। अव्यवहितत्वेपि कारकोपसर्जनतयोपस्थितत्वेन भिन्नपदस्य नञर्थेनान्वयायोगात्। एकहायन्या इवारुण्येन। अत एव प्राणैर्नान्वेति। कारकोपसर्जनत्वात्। अतश्चान्यैरन्वयायोगान्नञर्थः प्रत्ययार्थेन संबध्यते। न तस्मात्प्राणा उत्क्रामन्तीत्यत्र वाक्ये कर्तुः प्राधान्यात्। क्रयभावनयेवारुण्यादीनि। नञश्चैष स्वभावो यत् स्वसंबन्धिप्रतिपक्षबोधकत्वम्। नास्तीत्यत्र अस्तीति सत्त्वशब्देन संबन्धीत्यन्वितो नञ् सत्त्वप्रतिपक्षमसत्त्वं गमयतीत्यन्यत्र मीमांसायां निषेधनिरूपणे विस्तरः। तथाचाकृतौ विशिष्टे वा शक्तेरुत्क्रमकर्तृत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिकाभावोत्र। श्रुतिमनुकूलयन्त्यग्र इत्यादिना। अहीति। अहिर्निलीयते यस्यां साहिऽनिर्लयिनी। सर्वधातुभ्य इनितीन्, गुणः, व वर्णागमः, ऋन्नेभ्यो ङीप्। अहिनिर्ल्वयनीत्यपि पाठः। नन्द्यादिल्युश्छान्दसः। अस्थूलेति एवकारेण स्थूलशरीरत्यागव्यवच्छेदः। सिद्धान्ते तस्य चावस्थानात्। यद्यपि स्थूलास्थूलत्यागं टीकाकृतो मन्यन्ते तथापि दृष्टान्तानुरोधेनैवमिति भावः। पुष्टिमार्गव्यतिरिक्तस्थले स्थूलवतः सूक्ष्मस्याप्यदर्शनादियं दृष्टान्तीकृता। लाभाच्चेति। तथा च मोक्षप्रकरणमिदं न तु जीवन्मुक्तिप्रकरणम्। तदुपपादितं तुरीयद्वितीयपादे वाग्भ्रमोधिकरणे। अतोऽनित्येति अनित्यत्वार्थमिति पदच्छेदः। सेति न

तस्यापि संपत्तिः श्रूयते स्थलान्तरे । 'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च' इति श्रुतिर्विस्फुलिङ्गसदृशी ॥ ३ ॥

तत्पूर्वकत्वाद् वाचः ॥ ४ ॥

'मनः पूर्वरूपं वागुत्तररूपम्' इति । 'तस्य यजुरेव शिरः' इति । तथाच

भाष्यप्रकाशः ।

एतस्मादित्यादि । तथा च विस्फुलिङ्गवाक्ये यथा व्युच्चरणं तथाऽत्र प्रादुर्भाव इति तत्सादृश्यम् । स्वरूपोत्पत्तेरपि विभागानन्तरभावित्वात् खाद्युत्पत्तेरपि न विरोधोऽतो न तस्या अपि पीडेत्यर्थः । विसर्गस्यापि विभागरूपत्वादयमेव न्यायः स प्राणमसृजतेत्यत्रापि द्रष्टव्यः । एतेन श्रुत्यविरोधप्रतिपादनरूपत्वादध्यायसंगतिरपि स्मारिता ज्ञेया ॥ ३ ॥

तत्पूर्वकत्वाद्वाचः ॥ ४ ॥ ननु सृष्ट्यादौ प्राणस्थितिश्रुतेरवान्तरप्रलये प्रागवस्थितप्रजापतिप्राणसत्ताप्रतिपादनेनाऽप्युपपद्यमानत्वान्न तया प्राणनित्यत्वसिद्धिरिति शङ्कायामिदं सूत्रमाहेत्याशयेन व्याकुर्वन्ति **मन इत्यादि** । पूर्वया श्रुत्या मनोवाचोः पूर्वोत्तरभावेऽन्यया च मनोमयस्य

रश्मिः ।

तस्मात्प्राणा इत्यादिः श्रुतिः । **प्रादुरिति** जनी प्रादुर्भाव इति धातुपाठादिति भावः । **तत्सादृश्यं** जीवसादृश्यम् । विभागानन्तरभावित्वेन सादृश्यमाहुः **स्वरूपेति** अनित्ये जननरूपा । जीवे नित्ये परिच्छिन्ने समागमरूपाऽपिना गृह्यते । **खादीति** आदिना तादृशोऽन्यः । **न वीति** स्वरूपोत्पत्तित्वं स्त्रीपुंसयोरन्यवत् सद्योऽविभागेपीति **न विरोधः** । एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात् । **विसर्गस्येति** । 'विसर्गः पौरुषः स्मृतः' अपिशब्देन सर्गोऽपि । सर्गः कारणतत्त्वजन्मदो विभागः । तद्वत्पौरुषविभागो विसर्गः । **अयमिति** विभागन्यायो व्युच्चरणरूपः । मञ्जूषादौ संयोगन्यायः । मृत्पिण्डविभागस्यान्यथासिद्धत्वम् । 'इमामगृभ्णन्नशनामृतस्य' इत्यलौकिकं नान्यथा सिद्धं गर्दभरशनाग्रहणम् । **स प्राणमिति** । तथा च विस्फुलिङ्गवाक्ये यथा व्युच्चरणं तथात्र विसर्ग इति तत्सादृश्यमिति भावः । **द्रष्टव्य** इति । मनोग्रे वाच्यम् । **श्रुत्यवीति** । असद्वा इदमित्यादीनां सदेव सोम्येत्यादिश्रुतीनां चाविरोधेत्यादिः । 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादिश्रुत्यविरोधेत्यादिर्वा । **अध्यायेति** प्रथमाध्यायेनाविरोधाध्यायस्य हेतुतासंगतिः प्रसङ्गो वेत्यर्थः । सदसत्त्वरूपविरुद्धधर्माश्रयत्वं प्राणेषु न तु सति प्राणे जगज्जन्मादिकर्तृत्वस्यातिव्याप्तिरिति जन्माद्यधिकरणाविरोध इति । तेन न तृतीयपादार्थस्यात्रातिव्याप्तिः ॥ ३ ॥

तत्पूर्वकत्वाद्वाचः ॥ ४ ॥ पूर्वसूत्रसंगत्या आभासमाहुः **प्राणेति** । तथा च तथाशब्दार्थसादृश्येंशतो वैगुण्यमित्यतिदेशकसद्भावरूपो हेतुरंशतः स्वरूपासिद्ध इति भावः । वाङ्मनोरूपप्राणयोर्नित्यत्वेन स्वरूपासिद्ध्यभावः फलिष्यति । अतो हेतुः शुद्धः । प्राणेष्विन्द्रियेषु मनो मुख्यो वाक् नित्या वैयाकरणानामपीति मुख्यत्वात्ताभ्यां रूपाभ्यां प्रथमं निरूपणं कृतम् । **आहेति** तथा च भूयोधर्मान्तर्गतनित्यत्वं प्राणेषु पूर्वसूत्रोक्तमाक्षिप्तं तेन च मनोवाचोर्नित्यत्वमाक्षिप्तप्रायमेव मनस्त्वनिन्द्रियत्वपक्षेपि तेन च सादृश्यविरहात्सादृश्यार्थं पूर्वसूत्रशेषोयमधिकविचार इति भा॰ः । **पूर्वयेति** उक्तश्रुतिपूर्वया श्रुत्या । **अन्यथेति** आर्थक्रमवत्त्वे । शब्दसृष्टिः ॐ वेदः । इत्यार्थक्रमापेक्षा । एकरसत्वेन पूर्वोत्तरभावान्यथाभावाभावात् । ततश्च मनोमयत्वरूपमनः-

१. रश्मौश्वादीति प्रतीकमस्ति ।

वेदानां स्वत उत्पत्त्यभावात् तत्पूर्वरूपमनसः कथमुत्पत्तिः ॥ ४ ॥

सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च ॥ ५ ॥

'तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति' इति । इति पूर्वोक्तानां चक्षुरादीनाम्, 'अथारूपज्ञो भवतीत्येकीभवति न

भाष्यप्रकाशः ।

वेदात्मकत्वे बोधिते मनोवाचोर्वृत्तिभेदादेव भेदो, न तु स्वरूपत इति सिद्धौ, निश्वसितश्रुत्या, वाचा विरूप नित्ययेति श्रुत्या च वेदानां निश्वासरूपतया नित्यतया च स्वरूपत उत्पत्त्यभावादुद्गममात्रमेव । तथा सति तत्पूर्वरूपस्य मनसः कथमुत्पत्तिः संभवति । तस्मान्न तस्याप्युत्पत्तिः किंतूद्गममात्रमेवातस्तयोर्नित्यत्वसिद्धिरित्यर्थः । नन्वेवं भगवन्मनोवाचोर्नित्यत्वे जैवानां कथं नित्यत्वसिद्धिरिति चेदु उच्यते । तद्व्यष्टित्वात् सिद्धिरिति । अत एवाग्रे 'श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि' इत्युक्तम् । इदमेव चैकादशस्कन्धे 'स एष जीवो विवरप्रसूतिः' इत्यादिश्लोकत्रये स्फुटम् । तत एवाचार्यैरपि निबन्धे ।

'अस्मदादिमुखेनापि क्रीडार्थं सर्वतो हरिः ।
शब्दभेदं वितनुते रूपेष्विव विनिश्चयः' ॥ इत्युक्तम् ॥ ४ ॥

सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च ॥ ५ ॥ एवं प्राणमनोवाक्ष्वतिदेशिकाया उपपत्तेः सिद्धावपि चक्षुरादिषु न सा स्फुटेत्यतस्तदर्थं हेत्वन्तरं वदतीत्याशयेन व्याकुर्वन्ति तमित्यादि । एताभ्यां

रश्मिः ।

प्रचुरत्वाभावाद्वाच ओङ्काररूपाया मनोमयत्वाभावे न श्रुतिविरोधः । अन्ययेति पाठे बोधित इत्यनेनान्वयः । श्रुत्या बोधित इति पूर्वपाठेऽन्वयः । वृत्तीति । एवकारस्तु पूर्वोत्तरभावबोधकभाष्यश्रुत्या 'एकादशामी मनसो हि वृत्तयः' । 'वाचोभिधायिनी नाम्नाम्' इति वाग्व्यापारोभिधा । एवेति श्रुतिमतत्वात् । संभवतीति । एतच्च प्रथमस्य तृतीये तदुपर्यपीत्यधिकरणे शब्द इति चेन्नातः प्रभवादिसूत्रेषु ह्युपपादितम् । तथा च स्वरूपलक्षणे सत्यं मनः 'तस्मात्केनाप्युपायेन' इति वाक्यात् । 'तन्मनोनुकुरुत' इति बृहदारण्यकाच्च । ज्ञानं ब्रह्म 'ज्ञानमात्रं परं ब्रह्म' इति वाक्यात् । गीतोक्तं ज्ञानं स्वयंप्रकाशं गोकुलाष्टके स्पष्टम् । तदुक्तमात्मबोधोपनिषदि । 'अनन्तं वाक्' । 'अनन्ता वै वेदा' इति श्रुतेः । एवेति । स्वरूपलक्षणे त्रयोक्तेः । एवकारेण जननरूपोत्पत्तिर्व्यवच्छिद्यते । तयोर्मनोवाचोः । वैदिक्यां शब्दसृष्टौ नित्यत्वमुपपाद्य तद्भिन्नायां रूपसृष्टावपि प्रसङ्गात्कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वादित्यधिकरणोक्तरीत्या जैवानां पृच्छति नन्वेवमित्यादिना । यतो व्यष्टित्वेनाविद्वद्दशायामपि न भेदोतोग्रे मैत्रेयीति ब्राह्मणे उभयपरत्वेन श्लोका इत्यादिः । स्फुटमिति । जीवयतीति जीवः परमेश्वर इति श्रैधरं व्याख्यानम् । रूपेष्विति रूपेषु भेदमिव ॥ ४ ॥

सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च ॥ ५ ॥ एवं प्राणेति । प्राणत्वं सामान्यं मनस्त्वं वाक्त्वं च विशेषजातिः । **अतिदेशिकाया** इति अतिदेशकत्वं तथाशब्दस्य सौत्रस्योक्तम् । व्यापारस्यानेकविधत्वेनोत्क्रान्त्यादिवाक्यवदुत्पत्तेरप्यतिदेशकत्वम् । 'तथा प्राणः' इति सूत्रभाष्यीयसर्वोपपत्तिपदव्याख्याने व्याकृतैषोपपत्तिः । **स्फुटेति** गतसूत्रे प्राणनित्यत्वमाक्षिप्य प्राणमनोवाक्षु प्रसाधितम्, अन्येषु विशेषरूपेण चक्षुरादिप्राणेषु न प्रसाधितेत्यस्फुटा । **हेत्वन्तरमिति ।** प्राणः

पश्यतीत्याहुः' इत्यादिभिर्जीवगतिः सप्तानां गतिभिर्विशेष्यते । सप्तगतयस्तेन विशेषिता एकीभवतीति । अतो जीवसमानयोगक्षेमत्वाज्जीवतुल्यतेति ।

भाष्यप्रकाशः ।

वाक्याभ्याम् । अथारूपज्ञ इत्यादिषु पूर्ववाक्येषूक्तानां चक्षुरादीनां सप्तानां मुख्यप्राणगत्युत्तरं **गतिरुच्यते** । सा सप्तगतिः । यद्यपि पूर्ववाक्येष्वष्टावुक्तास्तथापि मनोबुद्ध्योर्वृत्तिभेदोऽन्तःकरणत्वेन ऐक्यमतः सप्तत्वमिति सप्तगतिः । किं च 'तेन प्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो वा मूर्ध्नो वा' इत्यादिना उत्तरवाक्येन वक्ष्यमाणा या जीवगतिः सा, अथारूपज्ञ इत्यादिषु पूर्ववाक्येषु **सप्तानां गतिभिर्विशेष्यते एकी भवतीति** सप्तगतयो वा तेन जीवगमनेन **विशेषिता एकीभवतीति** विशेषितत्वम् । **अतः** अनश्वरभावस्याजन्यत्वेन तथेत्यर्थः । चकारसूचितं हेत्वन्तर-

रश्मिः ।

अतिदिष्टधर्मवान्, अतिदेशकसद्भावात्, प्रकृतिवद्विकृतिः कर्तव्येतिवत् । इत्यत्र हेतावतिदिष्टधर्मेषु चक्षुरादिचेतनतुल्यत्वमस्फुटमित्यप्रसिद्ध्यातिदेशकसौत्रतथापदेऽशतः स्वरूपासिद्धिरतो हेत्वन्तरं सूत्ररूपं वदतीत्यर्थः । **वाक्याभ्यामिति** 'एकतिङ् वाक्यम्' इति वाक्यलक्षणम् । श्रुतयः शारीरकब्राह्मणस्थाः । **इत्यादिष्विति** । 'अथारूपज्ञो भवत्येकीभवति न पश्यतीत्याहुरेकीभवति न जिघ्रतीत्याहुरेकीभवति न रसयतीत्याहुरेकीभवति न वदतीत्याहुरेकीभवति न शृणोतीत्याहुरेकीभवति न मनुत इत्याहुरेकीभवति न स्पृशतीत्याहुरेकीभवति न विजानातीत्याहुः' इत्येतासु । **मनोबुद्ध्योरिति** । न विजानातीत्याहुरित्यरूपां अथाज्ञानज्ञो भवतीति पूर्वानुसारेण संभवाद्बुद्धिलाभः । **वृत्तीति** । एकस्या मननात्मिका द्वितीयस्याः विज्ञानात्मिका । न मनुते न विजानातीति श्रुतिभ्याम् । **उत्तरेति** एकार्थीभावाद्रेफमाश्रित्य णत्वम् । **वक्ष्यमाणेत्यत्र** टिड्ढाणञित्यनेन ङीबभावः स्त्रीप्रत्यये सिद्धान्तकौमुद्यां साधितः । **गतिभिरिति** निरुक्ताभिः । **विशेष्यत** इति सप्तगतिवाक्यानां तस्य हैतस्येति महावाक्यस्य च या हेतुतासंगतिस्तत्रोपसंहरणं जैवमुत्तयोच्यते तस्य हैतस्येत्युत्क्रमणव्यापार इति हेतुता तया विशेष्यविशेषणीभावः । तथाहि । तस्य लिङ्गोपाधिकस्य ह एतस्य प्रकृतस्योपसंहृतकरणस्य मुमूर्षोर्हृदयस्याग्रं हृदयाग्रं नाडीमुखं प्रद्योतते स्वप्न इव चैतन्यज्योतिषा, प्राप्यदेहविषयबुद्धिवृत्त्यात्मना प्रकाशते तेन प्रद्योतेन प्रद्योतित एष लिङ्गोपाधिक आत्मा निष्क्रामति निर्गच्छतीत्यर्थो जैवमुपसंहरणमपेक्षते यत इति । कथं विशेष्यत इत्यत आहुः **एकीभवतीति** । चाक्षुषैक्यवानरूपज्ञः शारीर आत्मेत्येवं विशेष्यत इति भावः । 'स यत्रैष चाक्षुषः पराङ् पर्यावर्ततेऽथारूपज्ञो भवत्येकीभवति' इति श्रुतेः । **सप्तेति** भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **सप्तेति** । वेत्यवधारणे । अत्र पूर्वं जीवगतिः सप्तानां गतिभिर्**विशेष्यते** विशेष्यं क्रियत इति भाष्ये उक्तम् । एवं च विशेष्यपरामर्शकस्तच्छब्दस्तथा च भाष्ये **तेनेत्यस्य** विशेष्येणेत्यर्थः । तदाहुर्**जीवगमनेनेति** विशेष्यानुकूलं पदम् । **तेनेति** सामान्ये नपुंसकं वा । जीवगत्येत्यर्थः । **विशेषिता** इति विशेषणं विशेषः तदिताः । तारकादिभ्य इतच् । तारकादिराकृतिगणः । विशेष्यन्ते विशेषणीक्रियन्त इति विशेषिताः कर्मणि क्तः । यद्यपि विशेष्यत इति विशेषः क्रियत इत्येवार्थस्तथापि विशेषो विशेष्यरूपो विशेषणरूपो वेत्यविशेषः । **एकीभवतीति** घ्राणाद्यैक्यवान् शारीर आत्मेत्येकीभावः । न जिघ्रतीत्याहुरेकीभवतीत्याद्युक्तश्रुतिभ्यः । एतदेवाहुः **विशेषितत्वमिति** घ्राणाद्येकेन शारीरात्मनो विशेषितत्वं । शारीर आत्मा विशेष्यत इति कर्मणि क्तः । **अत** इति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अत** इति ।

चकारात् तत्तदुपाख्यानेषु चक्षुःप्रभृतीनां देवतात्वं संवादश्च । अतश्चेतनतुल्यत्वम् ॥ ५ ॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्थपादे प्रथमं तथा प्राण इत्यधिकरणम् ॥ १ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

माहुः **चकारादित्यादि** । **तत्तदुपाख्यानेष्विति** व्रतमीमांसाप्रभृतिषु । **चेतनतुल्यत्वमिति** । स्वरूपतोऽचेतनत्वात् । 'तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय' इति धर्मरूपज्ञानस्य श्रावणाच्च चेतनतुल्यत्वम् । एवमत्र प्राणपदवाच्यानां जीवतुल्यत्वं समर्थितम् । एतस्य सूत्रस्यो-

रश्मिः ।

अत अनेत्यादिः स्मार्तः प्रयोगः । **तथेत्यस्य** पञ्चम्या लुका **जीवसमानयोगक्षेमत्वादित्यर्थः** । तत्रापि हृ अत इति सार्वविभक्तिकस्तसिरिति तृतीयान्तेन विवरण**मनश्वरेत्यादि** । जीवसमानयोगक्षेमत्वं चक्षुरादीनामजन्यत्वेनानश्वरभावत्वेन व्याप्तेर्वागादौ सिद्ध्या चक्षुरादिष्वप्युक्ताजन्यत्वेनानश्वरभावत्वसिद्धिः । चक्षुरादिः अनश्वरभावः, अजन्यत्वात्, वागादिवदिति । यद्वा सिद्धमूचुः अत अनश्वरेत्यादिना । इदं वाक्यमतपसा भाष्यीयशब्दानुकरणं वा (प्रातिशाख्यप्रसाध्यमपि) अनश्वरभावस्य चक्षुरादिरूपस्याथारूपज्ञो भवतीत्यादिश्रुत्युक्तस्याजन्यत्वेन तथानित्यकत्वमित्यर्थः । अत्र ननु चक्षुरादिर्नातिदेशसद्भाववानित्यत्वाद्धटवदित्यनुमानेन हेतोरतिदेशसद्भावरूपस्य स्वरूपासिद्धत्वमिति चेन्न चक्षुरादिर्नित्यः सप्तगतेर्विशेषितत्वात् । यन्नैवं तन्नैवं घटादिवदित्यनुमानेनानित्यत्वस्यैव हेतोः स्वरूपासिद्धत्वात् । ततश्च चक्षुरादिस्तथातिदिष्टधर्मवानतिदेशसद्भावात्प्राणादिवदिति बुद्धिस्थो हेतुः शुद्ध इत्येवमत्रापि तथेत्यनुवर्त्य सूत्रार्थो योजनीयः । तेन जीवसमानधर्मत्वं प्राणेषु प्रसाधनाय गौण्यसंभवसूत्रे उत्क्रान्त्यादिवाक्येष्वतिदेशकत्वं प्रसाध्य सादृश्यमतिदेशकत्वे नियामकमित्यतिदेशनियामकसिद्ध्यर्थं त्रिषु सूत्रेषु प्राणादीनां नित्यत्वमसाध्नुवन्सादृश्यार्थम् । यद्यपि 'तथा प्राणः' इत्यत्र प्रकाशेऽतीतपादान्तेदृष्टानियमेन परमतं निराकृतम् । यद्यपि तत्सन्निहितमित्यादिना सन्निहितत्वस्यातिदेशनियामकत्वं प्रोक्तम् । तथाप्युपलक्षणविधया पूर्वमीमांसोक्तमप्युक्तं सादृश्यादि ह्यतिदेशनियामकम् । यद्वा सन्निहितत्वमतिदेशकं परत्र सादृश्याद्यसमानाधिकरणमतः पूर्वमीमांसामुपाक्षिप्तमहम् । **चकारेति** पुनरर्थकश्चकारः समुच्चये वा । अतोऽतिदेशकसद्भावरूपो हेतुः शुद्धः । अत उक्तं चकारसूचितमिति हेत्वन्तरं जीवतुल्यंतायाम् । **व्रतेति** बृहदारण्यके सप्तान्नब्राह्मणेऽस्ति व्रतमीमांसा । 'अथातो व्रतमीमांसा प्रजापतिर्हि कर्माणि ससृजे तानि सृष्टान्यन्योन्येनास्पर्धन्त वदिष्याम्यहमिति वाग्दध्रे द्रक्ष्याम्यहमिति चक्षुः श्रोष्याम्यहमिति श्रोत्रमित्येवमन्यानि कर्माणि यथा कर्म' इति श्रुतेः । **प्रभृतिशब्देन** तृतीयस्कन्धेन्द्रियप्रसङ्गः संगृह्यते । तथाचायं सूत्रार्थः । **जीवगतिः** सप्तानां गतिः सप्तगतिस्तस्याः, एकत्वमविवक्षितम् । हेतौ पञ्चमी न तु ल्यब्लोपादाविति । सप्तानां गतिभिर्विशेष्यत इति विशेषिता तस्या भावः विशेषितत्वम् । टापो ह्रस्वः पञ्चमीति । नन्वेतस्य सूत्रस्योत्तराधिकरणे संबन्धेऽतिदेशकसद्भावरूपस्य हेतोः स्वरूपासिद्धत्वमक्षुण्णम् । सूत्रस्य नित्यत्वासाधकत्वेनानित्यत्वेन चक्षुराद्यसादृश्यादंशतः सौत्रतथाशब्दार्थसादृश्याभावे हेतुघटकातिदेशकसूत्रार्थांशाभावात् । ततश्चक्षुरादौ सादृश्याद्यभावाहितातिदिष्टधर्मवत्त्वाभावेन 'तादृशधर्मवत्त्वं प्राणेतिदिशति' इत्यादि सूत्रभाष्योक्तप्रतिज्ञाया न्यूनता । एतदनुरोधेन पूर्वाधिकरणमात्रशेषत्वे तु गौण्यसंभवसूत्रीये तेन बुद्धिस्थहेतुशुद्ध्यर्थानी-

केचिदिदं सूत्रमुत्तरसूत्रपूर्वपक्षत्वेन योजयन्ति । तत्रायमर्थः । ते प्राणाः कतीत्याकाङ्क्षायां, 'सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्ताऽर्चिषः समिधः सप्त जिह्वाः'। 'अष्टौ ग्रहा अष्टावतिग्रहाः' इति । 'सप्त वै शीर्षण्याः प्राणा द्वाववाञ्चौ' इति । 'नव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दशमी' । 'दश वै पशोः प्राणा आत्मैकादशः' इत्येवमादिषु

भाष्यप्रकाशः ।

त्तराधिकरणे संबन्धे तु, एते हेतवो व्याख्यातरीत्या उत्सूत्रमेव बोध्याः । तेन न कापि न्यूनता ।

अत्र सर्वेऽपि वियदाद्यतिदेशमङ्गीकृत्य इन्द्रियाणामुत्पत्तिं वदन्ति । सन्निहितजीवाति-देशानङ्गीकारे तु केचन जीवस्यानुत्पत्तिराख्याता, प्राणानां तूत्पत्तिराचिख्यासितेत्यसंबद्धत्वं हेतुं वदन्ति ।

अपरे तु, उत्पत्त्यनुत्पत्तिबोधकयोः श्रुत्योः सद्भावेऽप्युत्पत्तिबोधकश्रुतीनां भूयस्त्वात् पूर्वतन्त्रे च 'विप्रतिषिद्धधर्मसमवाये भूयसां स्यात् सधर्मत्वम्' इति निर्णयं हेतुमाहुः ।

अन्ये तु, असद्वेति वाजिश्रुतिमपि ब्रह्मपरत्वेन व्याकुर्वन्तः, प्राणा वा ऋषय इति बहु-त्वश्रुतिं च गौणीं वदन्तः, 'सदेव सोम्य' इति श्रुतेर्ब्रह्मातिरिक्तस्य प्रागवस्थानासंभवमेव हेतुमाहुः । इतरे तु, 'एतस्माज्जायते प्राण' इति श्रुतिमेव हेतुमाहुः ।

रश्मिः ।

त्यादिभाष्यविभागे न्यूनतेत्याकाङ्क्षायामाहुः **एतस्येति** । **संबन्ध** इति पूर्वपक्षत्वेन हेतुतासंबन्ध इत्यर्थः । सिद्धान्तपूर्वपक्षयोर्हेतुतासंबन्धात् । **हेतव** इति गौण्यसंभवादयः सूत्ररूपाः । **उत्सूत्र-मिति** सूत्राणि विहायोपरिष्टात्कर्तव्याः । **उद्** अधिकाः समीपे सूत्राणां **बोध्याः** । 'अव्ययं विभक्ति समीप' इति सूत्रेणाव्ययीभावः । कृष्णस्य समीपमुपकृष्णमितिवत् । तत्समृद्धौ वा, मद्राणां समृद्धिः सुमद्रमितिवत् । **एवेति** भाष्यादेवकारः । **न्यूनतेति** भाष्यभाष्यविभागयोर्न्यूनता । **वियदादीति** । यथाहुः शंकरभाष्ये । यथातीतानन्तरपादादावुक्ता वियदादयः परस्य ब्रह्मणो विकाराः समधि-गतास्तथा प्राणा अपि परस्य ब्रह्मणो विकारा इति योजयितव्यमिति सूत्रार्थ इति । **केचनेति** शंकराचार्याः । **आचीति** आसमन्तात्कथयितुमिष्टा । **अपर** इति भास्कराचार्याः । **उत्पत्तीति** यथाहुः या पुनरग्निप्रकरणश्रुतिः सा मुख्यार्था न । कथमवान्तरप्रलये ह्यग्निसाधनानां शर्करादीनां सृष्टिर्वक्तव्येति तदर्थोऽसावुपक्रमः । तत्राधिकारी पुरुषः प्रजापतिरविनष्ट एव । त्रैलोक्यमात्रं प्रलीन-मतस्तदीयान्प्राणानालोक्य श्रुतिः प्रवृत्तेत्यनुत्पत्तिबोधकश्रुत्यविरोधः । अनुत्पत्तिबोधिका श्रुतिस्तु तत्प्राक्श्रुतिसूत्रे उक्ता । उत्पत्तिबोधिकाः श्रुतयस्त्वेवमुदाजहुः । 'पुरुष एवेदं विश्वं कर्मतपोब्रह्म-परामृतम्' इति 'ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्' इति । 'आत्मनो दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्' इति । 'उत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवति' इति यदा मुख्यार्थसंभवेपेक्षितार्थत्वेनान्यथा कल्पनमयुक्तमिति । **हेतुमिति** जीवातिदेशानङ्गीकारे हेतुम् । **अन्य** इति रामानुजाचार्याः । असद्वा इदमित्यग्निप्रकरणस्था तत्प्राक्श्रुतिसूत्र उक्ता । **व्याकुर्वन्त** इति । यथाहुः असद्वा इदमग्र आसीदित्यादिवाक्येपि 'प्राणशब्देन परमात्मैव निर्दिश्यते' इति तथा प्राण इति सूत्रे । **गौणी-मिति** । यथाहुः सूत्रद्वयमेकीकृत्यर्षयः प्राणा इति बहुवचनश्रुतिर्गौणी बह्वर्थासंभवाद्ब्रह्मण एकत्वे-

नानासंख्या प्राणानां प्रतीता । तत्र श्रुतिविप्रतिषेधे किं युक्तमिति संशये सप्तैवेति प्राप्तम् । कुतः । गतेः । सप्तानामेव गतिः श्रूयते । 'सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त' इति । किंच । विशेषितत्वाच्च जीवस्योत्क्रमणसमये सप्तानामेव विशेषितत्वम् । अन्ये तु पुनरेतेषामेव वृत्तिभेदाद् भेदा इत्येवं प्राप्ते उच्यते ।

भाष्यप्रकाशः ।

तत् सर्वमरोचिष्णु । श्रुत्या व्युच्चरणस्य जीवप्राणादिसाधारण्येनोक्तत्वात् तस्य स्वरूपोत्पत्तिरूपत्वाभावेन तैत्तिरीये, 'तोयेन जीवान् व्यससर्ज भूम्याम्' इति जीवेऽपि केवलविसर्गश्रावणात् तस्यापि पृथक्करणरूपतया व्युच्चरणानतिरेकेण जीववत् प्राणानामप्युत्पत्त्यभावाज्जीववत् प्राणानामनुत्पत्तेरेवाचिख्यासिततया आद्यपक्षोक्ताया असंबद्धताया अभावात् । असद्वेति वाजिश्रुतौ मध्यप्राणेद्धान्यप्राणकृतसप्तपुरुषसृष्ट्यनन्तरं तदैक्यनिष्पादितस्यैकस्य पुरुषस्य प्रजापतित्वकथनेन तस्य प्राणानन्तरभावितया प्राणेषु तदीयत्वस्य वक्तुमशक्यत्वेन तद्विरोधानपायाद् द्वितीयपक्षोक्तपूर्वतन्न्यायस्यास्तत्पक्षेऽप्यविरोधाच्च । एवं च, सदेव सोम्येति श्रुतिर्व्युच्चरणात् पूर्वं कालं परामृशति । व्युच्चरणोत्तरं भूतोत्पत्तेः पूर्वं कालं वाजिश्रुतिः परामृशतीति तयोर्विरोधाभावेन एतदग्रिमस्य योऽयं मध्यप्राण इत्यादिग्रन्थस्य विरोधेन च तृतीयपक्षोक्तायाः प्राणा वा ऋषय इत्यत्र गौण्या अप्यप्रयोजकत्वात् । एतस्माज्जायत इत्यस्यास्तुरीयपक्षोपन्यस्तायाः श्रुतेरपि व्युच्चरणश्रुतितुल्यत्वाच्च । सन्निहितजीवातिदेशानङ्गीकारे बीजानुपलम्भेन सर्वेषामेव शिथिलत्वादिति । तस्माद् भूतोत्पत्तेः पूर्वं जीवानामिन्द्रियाणां च व्युच्चरणं, न तूत्पत्तिरिति सिद्धम् ।

भिक्षुस्तूत्पत्तिक्रमविचारायैतदधिकरणम् । अतिदेशस्तु 'अन्तरा विज्ञानमनसी' इति

रश्मिः ।

नेति गौण्यसंभवादित्यंशस्यार्थः । अपरांशार्थमाहुः **सदेवे**त्यादि । यथाहुः तस्यैव परमात्मनः सृष्टेः प्रागवस्थानश्रुतेरेवेति तत्प्राक्श्रुतेश्चेत्यर्थम् । एवकारोऽन्यहेतुव्यावर्तकः । **हेतु**मिति जीवातिदेशाऽनङ्गीकारे हेतुम् । **इतर** इति माध्वाचार्याः । एवकारेण श्रुत्यतिरिक्तव्यवच्छेदः । जीवातिदेशानङ्गीकारे हेतुं **मध्यप्राण** इति । रामानुजमतेऽग्रे दूषणे स्फुटिष्यति **अन्ये**ति । 'यथा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह, बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्' इति काठकोपनिषदि श्रुतिस्तस्यां सप्तपुरुषश्रुतिः । शरीरान्तश्चरणं विहाय मोक्षार्थं गमनं परमा गतिरत्रास्ति । **तस्ये**ति प्रजापतेः । **तदीयत्वे**ति प्राजापत्यत्वस्य । अपि तु प्रजापतौ प्राणीयत्वस्य वक्तुं शक्यत्वेनेत्यर्थः । **अविरोधा**दिति । जीवलिङ्गबाहुल्यस्य प्राक् 'तथा प्राणः' इति सूत्रे उपपादनादिति भावः । तत्प्राक्श्रुतेश्चेति सूत्रभाष्यानुसारेणाहुः **एवं चे**ति । **पूर्व**मिति अवान्तरसृष्टौ पूर्वं कालम्, मध्यप्राण इति रामानुजभाष्ये । **विरोधेने**ति प्राणेषु तदीयत्वं न प्रजापतौ प्राणीयत्वमित्युक्तविरोधात् । **अप्रयोजके**ति विरोधपरिहारार्थं गौणी स तु पूर्वं कालमित्यादिनैवोपहत इत्यप्रयोजकत्वात् । **व्युच्चरणे**ति तुल्यत्वं जनी प्रादुर्भाव इति धातुपाठात् । अवान्तरसृष्टौ प्रजापतौ प्राणीयत्वादाहुः **तस्मा**दिति । **विज्ञाने**ति । तथा च प्राणः तथा विज्ञानमनसी इवेति सूत्रार्थः । क्रमस्तु गतपादस्थं सूत्रद्वयात्मकमधिकरणं नवमं यत्र स भगवान् सिद्धान्तरीत्या क्रममङ्गीचकारेति ततोऽवसेयः । **अनयो**रिति 'अन्तरा विज्ञानमनसी क्रमेण तल्लिङ्गादिति चेन्नाविशेषात्' 'तथा प्राणः' इत्यनयोः ।

हस्तादयस्तु स्थितेऽतो नैवम् ॥ ६ ॥ (२-४-२)

पूर्वसंबन्धे उत्सूत्रं पूर्वपक्षः । तुशब्दः पूर्वपक्षं व्यावर्तयति । हस्तादयः सप्तभ्योऽधिकाः 'हस्तौ चादातव्यं च, उपस्थश्चानन्दयितव्यं च, पायुश्च विसर्जयितव्यं च, पादौ च गन्तव्यं च' इति । चक्षुरादिगणनायामेतेऽपि चत्वार इन्द्रियत्वेन गणिताः । स्थिते सति श्रुतौ गणनया चक्षुरादितुल्यत्वे सति । अतो हेतोः सप्तैवेति न, किंत्वेकादश । अवान्तरगणनासूचनयाऽसंभवाभिप्राया

भाष्यप्रकाशः ।

सूत्रस्थयोर्विज्ञानमनसोरित्याह । तन्मन्दम् । अनयोरेकतरसूत्रस्य वैयर्थ्यापत्तेः । विज्ञानमनसी इत्यत्रोपलक्षणविधया अन्येषामपि प्राणानां ग्रहीतुं शक्यत्वात् । अत्रापि प्राणमध्ये तयोरपि निविष्टत्वाच्चेति ॥ ५ ॥

इति प्रथमं तथा प्राण इत्यधिकरणम् ॥ १ ॥

एवमेतेनाधिकरणेन प्राणानां जीवतुल्यत्वं समर्थितम् । अतः परं तेषां संख्या निर्धार्यते । तत्र सप्तगतिसूत्रस्य संबन्धं केचन वदन्ति तदाहुः केचिदित्यादि । भाष्यं तु निगदव्याख्यातम् ।

हस्तादयस्तु स्थितेऽतो नैवम् ॥ ६ ॥ ननु सप्तगतिसूत्रस्य पूर्वाऽधिकरणशेषत्वे एतस्याधिकरणस्य कथं सिद्धिरित्यत आहुः पूर्वेत्यादि । उक्तप्रकारक एव पूर्वपक्षः, सूत्रं विहाय उपरिष्टात् कर्तव्यस्ततः सिद्धिरित्यर्थः । व्याकुर्वन्ति तुशब्द इत्यादि । अत इति चक्षुरादितुल्यत्वात् । ननु तर्हि सप्तादिगणनायाः किं प्रयोजनमत आहुः अवान्तरेत्यादि । सप्तगणना, चक्षुस्त्वग्घ्राणरसनश्रवणमनोवाचामितरेन्द्रियापेक्षया बहूपकारकत्वेन प्राधान्यसूचनया । अष्टगणना ग्रहपदकथनाद् बन्धकत्वसूचनया । नवगणना अनावृतनवद्वारसूचनया । दशगणना केवल-

रश्मिः ।

ननु तथा प्राण इत्यत्र सर्वे प्राणाः, अन्तरा विज्ञानमनसी इत्यत्र द्वौ प्राणावित्यसामञ्जस्यमित्यत आहुः विज्ञानेति । ग्रहीतुमिति लाघवेनेति भावः । अत्रापीति 'तथा प्राणः' इति सूत्रेऽपि । तयोरिति विज्ञानमनसोः । अत एकरूपत्वादनयोरेकतरसूत्रस्य वैयर्थ्यापत्तिरिति ॥ ५ ॥

इति प्रथमं तथा प्राण इत्यधिकरणम् ॥ १ ॥

सप्त, केचनेति शंकररामानुजमाध्वादयः । निगदेति सप्त प्राणा इति मुण्डकेऽस्ति । अष्टाविति श्रुतिरार्तभागब्राह्मणेऽस्ति । एवमग्रेऽपि । सप्तानामिति मुण्डकेऽस्ति । एवेति श्रुतिसत्त्वादेवकारः । विशेषितेति । शारीरकब्राह्मणे । स यत्र चाक्षुष इत्यादिद्वितीयकण्डिकायां सप्त प्राणाः । तृतीयकण्डिकायां तस्य हैतस्येत्यादिरूपायां जीवस्योत्क्रमणमिति पूर्वापरयोर्विशेष्यविशेषणभावाद्विशेषितत्वम् । अन्य इति प्राणाः । एवं निगदव्याख्यातम् ॥ ५ ॥

हस्तादयस्तु स्थितेऽतो नैवम् ॥ ६ ॥ श्रुतिस्तु प्रश्नोपनिषदि । प्राधान्येति द्वितीयमुण्डके 'सप्त प्राणाः' इत्यादिश्रुतिः 'सप्त शीर्षण्याः' तत्र प्राधान्यसूचनया । क्वचिच्च सप्त जिह्वा इत्यत्र सप्त होमा इति पाठः । बन्धकत्वेति । मृत्युस्वरूपकथने ब्राह्मणेऽष्टौ ग्रहा अष्टा-

अधिकसंख्याऽन्तःकरणभेदादिति । एकादशैवेन्द्रियाणीति स्थितम् ॥ ६ ॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्थपादे द्वितीयं हस्तादय इत्यधिकरणम् ॥

भाष्यप्रकाशः ।

द्वारमात्रसूचनयेत्येवं संभवाभिप्राया । संभवन्ति ह्येकादशसंख्यायामेताः संख्या इत्यभिप्राया । चतुर्दशसंख्या त्वन्तःकरणस्य चतुर्विधत्वात् तदभिप्राया । तथाचैतज्ज्ञापनं प्रयोजनमित्यर्थः । तर्ह्येकादशैवेति कथं निर्णय इत्यत आहुः एकादशेत्यादि । गीतायां क्षेत्रकथने, 'ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् । ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः' इत्युक्त्वा, 'महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च' इत्यहंकारादीन् भिन्नतयोक्त्वा, 'इन्द्रियाणि दशैकं च' इति कथनाद् ब्रह्मसूत्रपदेष्वेकादशैवेन्द्रियाणीति निर्णीतमित्यर्थः । नच पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणीति दशोक्ताः एकं चेति भिन्नतया कथनात् संख्यापूरणस्य चानिन्द्रियेणापि मनसा, 'यजमानपञ्चमा इडां भक्षयन्ति' इतिवत् संभवान्न मनस इन्द्रियत्वमिति वाच्यम् । अनिन्द्रियत्वसिद्धेः पूर्वं तथा संख्यापूरणस्यापादयितुमशक्यत्वात् । भेदेन कथनस्य तूभयेन्द्रियनायकतयोत्कर्षबोधनार्थत्वात् । अन्यथा पूर्वार्धे बुद्ध्यादिभिः सहैव क्रमापत्तेः ।

यत्तु 'इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था ह्यर्थेभ्यश्च परं मनः' इति, 'बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च', 'इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्' इत्यादिश्रुतौ इन्द्रियेभ्यः परं मनः । 'इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः', 'मनसश्चेन्द्रियाणां च ऐकाग्र्यं परमं तपः' इत्यादिस्मृतौ च भेदेन

रश्मिः ।

वतिग्रहा इत्यत्र श्रुतौ ग्रहत्वं च बन्धनभावो गृह्यते । बध्यते क्षेत्रज्ञोऽनेन ग्रहसंज्ञकेन बन्धनेन । तथा च स्मृतिः 'पुर्यष्टकेन लिङ्गेन प्राणाद्येन स युज्यते । तेन बद्धस्य वै बन्धो मोक्षो मुक्तस्य तेन वा' इति । पुरि देहे । प्राण आद्यो यस्य स जीवः । तेन प्राणाद्यष्टकेन । अनावृतेति । नाभेर्द्वारस्यान्यस्य च ब्रह्मरन्ध्रस्य रूपद्वारस्य मूर्ध्न्यावृतत्वाद्विशेषणम् । सप्त वै शीर्षण्याः प्राणा द्वाववाञ्चाविति श्रुतौ शीर्ष्णि भवाः सप्त चक्षुरादिरूपाः प्राणाः द्वौ पायुमेढ्ररूपाववाञ्चावधोभागगताविल्यर्थः । केवलेति आवृतानावृतद्वारमात्रसूचनया । अत्र नाभेर्दशमत्वम् । 'नव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दशमी' इति श्रुतेः । चतुर्दशेति । मुण्डके सप्त इमे लोका इत्यस्यां श्रुतौ सप्त सप्तेति श्रावणाच्चतुर्दशसंख्या । शंकरभाष्ये तु प्रतिपुरुषाभिप्रायेणेयं वीप्सा प्रतिपुरुषं सप्त सप्त प्राणा इति पूर्वपक्षग्रन्थेऽस्ति । गुहाशयपदस्य बुद्धिं वाच्यामाहुर्माध्वाः । गुहायां हृदयाकाशे शेरत इति गुहाशया इत्युपनिषद्भाष्ये शंकराचार्याः । अत्र तु गुहाशयादिति पञ्चम्यन्तमिवास्ति । शंकरभाष्येपि । चतुरिति मनोबुद्धिचित्ताहंकारैश्चतुर्विधत्वात् । एवेति सप्तादिव्यवच्छेदकः । वेदेषु विशये गीतासंशयापहेत्याशयवन्त आहुः गीतायामिति । ब्रह्मसूत्रेति । यत्तु गीताभाष्यादौ ह्युक्तं तत्तु 'अनागतमतीतं च' इति वाक्यादर्शनात् । एवेति । श्रीभागवते 'श्रोत्रं त्वग्दर्शनं घ्राणं जिह्वेति ज्ञानशक्तयः । वाक्पाण्युपस्थपाय्वङ्घ्रिः कर्माण्यङ्गोभयं मनः' इति संवादात् । यजमानेति । अत्र नृत्वेपि यजमानस्य पञ्चत्वसंख्यापूरकत्वमस्ति । यजमानः पञ्चमो येषामृत्विजामिति । इडापदस्य यागनामधेयत्वं पूर्वमीमांसायामस्ति । तथेति अनिन्द्रियत्वप्रकारेण । आपादेति । यदि मनसोऽनिन्द्रियत्वं स्यात्तदा पञ्चमसंख्यापूरकत्वं न स्यादित्यापादयितुम् । अन्यथेति । अनिन्द्रियत्वार्थं भेदेन कथने सप्तम्या लुक् तथाशब्दात् । क्रमेति मनसः क्रमापत्तेः । अर्था इति

भाष्यप्रकाशः ।

निर्देशान्मनो नेन्द्रियम् । क्वाचित्कमेकादशवचनं तु मनस इन्द्रियप्रवर्तकत्वेनोपचारात् । नचे-न्द्रियेभ्यः परा इत्यादिषु गोबलीवर्दन्यायेन पृथग्वचनमिति वाच्यम् । इन्द्रियलक्षणस्य बुद्ध्यादाव-संभवात् । किं तल्लक्षणमिति चेद् एकजातीयमात्रव्यापारकरणत्वमेव । अन्यथा शरीरादीना-मपीन्द्रियत्वप्रसङ्गात् । अन्तःकरणस्य तु चाक्षुषादिवचनादिरूपनानाजातीयज्ञानकर्म प्रति करण-त्वेनाऽस्य लक्षणस्यान्तःकरणे अभावादिति भिक्षुराह तन्न । उक्तश्रुतिस्मृतीनां मनसो बलव-त्त्वबोधनेनाप्युपपत्तेः । गीतायाम्, 'इन्द्रियाणां मनश्चास्मि' इति वाक्येन, पञ्चमस्कन्धे पुरञ्जनो-पाख्याने च, 'एकादशेन्द्रियचमूः पञ्चसूनाविनोदकृत्' इति वाक्येन च मनस्यपीन्द्रियत्वसत्ताया निश्चयात् । नच लक्षणाभावः । देहस्थत्वे सति ज्ञानक्रियान्यतरकरणत्वं वा, तथात्वे सति

रश्मिः ।

विषयाः । **विषयानि**ति देशान् । **भेदेने**ति इन्द्रियेभ्यो भेदेन । **क्वाचित्क**मिति । 'दश वै पशोः प्राणा आत्मैकादश' इत्यादिश्रौतम् । **उपचारादि**ति इन्द्रियपदस्य स्वप्रवर्तके लक्षणा प्रवर्तकत्व-संबन्धरूपा तद्रूपात् । **गोबली**ति गोपदवाच्यत्वेपि बलीवर्दस्य पृथग्वचनं किंचिन्निमित्तेन तन्न्यायेन । **असंभवा**दिति तथा च न गोबलीवर्दन्यायप्रवृत्तिरिति भावः । **एकजातीये**ति संयोगसंयुक्तसमवायत्वादि**जातीयमात्रव्यापाराः** संयोगादयस्तत्प्रयुक्तं **करणत्वमेव** । शब्देतरो-द्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयत्वमिन्द्रियत्वमित्यस्यात्मन्यतिव्याप्तेरेवकारः । **एकजातीयमात्रे**ति विशेषणकृत्यमाहुः **अन्यथे**त्यादि । उक्तप्रकाराद् व्यापारे भिन्ने प्रकारे सति शरीरस्य विभक्तपदार्थान्तर्गतमायांशसंवलितत्वेन प्रवृद्धसत्त्वस्यादिपदेन तादृशसत्त्वस्य रजसस्तमसश्च ग्रहणम् । तत्र चाक्षुषादिज्ञानानि प्रति वचनादिकर्माणि प्रति च करणत्वेन व्यापारा अपि संयोगत्वसंयुक्तसमवायत्वादिभिरनेकजातीया इति नातिव्याप्तिः । सत्त्वशुद्धिरपि भवति व्यापारः । नानाप्रकारे द्वितीयपक्षेपि बोध्यम् । **बलवत्त्वबोधनेने**ति श्रौतस्मार्तपरपदैर्बलवत्त्वस्य बोधनेने-त्यर्थः । परत्वं सर्वत्र प्रसिद्धं नियामकत्वमेकवाक्यताया इति भावः । उपपत्तेर्जाघन्यं मन्यमानं प्रत्याहुः **गीतायामि**त्यादि । गीताया वेदार्थसंदेहे मतल्लिकात्वस्य सर्वाचार्यसंमतत्वादिति । तद्विस्ताररूपं भागवतमप्याहुर्दार्ढ्यार्थम् । **पञ्चमे**त्यादि । माभूत्तल्लक्षणसंचारः सभागवतलक्षणं संचरत्वित्याहुः **देहस्थत्व** इत्यादिना । अत्र प्रथमं लक्षणं तृतीयस्कन्धे षड्विंशे **सुबोधिन्यां** विशेषणरहितमस्ति । तत्र सर्वेन्द्रियगुणाभासेऽतिव्याप्तिः । तस्य सर्वेन्द्रियविवर्जितत्वेनेन्द्रियत्वाभावात् । तथा च गीता 'सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्' इति । तथा च विराजोत्र प्रकरणाद्देहस्थत्वमिति लभ्यतेऽत उक्तं **देहस्थत्वे सती**ति । तथा च **सुबोधिनी** 'तैजसानीन्द्रियाण्येव' इत्यत्र ज्ञान-क्रियान्यतरकरणमिन्द्रियमिति । करणमतीन्द्रियमिति वेति । देहस्थत्वं प्राणादावतिव्याप्तमितो विशेष्यम् । जन्यज्ञानकर्मणोर्मनआदौ स्थितेर्देहस्थत्वे सतीन्द्रियत्वं स्यादतो विशेष्यम् । विशेष्ये ज्ञानक्रिये विवक्षिते ग्राह्ये अतो जन्यज्ञानक्रिययोरविवक्षितत्वान्न लक्षणस्यातिव्याप्तिः । द्वितीयस्कन्ध-पञ्चमाध्यायसुबोधिन्यां द्वितीयलक्षणमस्ति । खानीन्द्रियाणि तत्फलानि चाक्षुषज्ञानादीनि तैरात्माऽस्तीति ह्यात्मसत्तां ज्ञापयन्तीति लक्षणसमन्वयः । तथा च **सुबोधिनी** 'तैजसात्तु विकुर्वाणात्' 'इत्यत्र इन्द्र आत्मा ईयते अनेनेतीन्द्रियम्' इति उपपादितं च तत्रैव । 'आत्मा हि न चाक्षुषः, नाप्यन्येन्द्रियग्राह्यः । व्यवह्रियते च देवदत्तस्त्वं यज्ञदत्तस्त्वमिति । स चात्मा पश्यति

भाष्यप्रकाशः।

स्वफलेनात्मसत्ताज्ञापकत्वं वेति लक्षणस्य संभवात्। यद्वा इन्द्रियत्वमनिन्द्रियत्वं चेत्युभयमप्यस्तु। नच भावाभावविरोधः। अनिन्द्रियत्वस्य अविद्यावद्धर्मान्तरत्वेनाप्युपगन्तुं शक्यत्वात्। यमे देवत्वपितृत्वयोरिव मनसि क्रियाज्ञानमयत्वयोरिवैतयोरप्युभयोर्निवेशे बाधकाभावात्। विशेष-

रश्मिः।

शृणोतीत्येवं प्रतीयते' इति। इदं लक्षणं देहेऽतिव्याप्तम्। स्वं देहः तस्य फलं भवाय नाशाय च कर्मकरणं तेनोपाध्यवच्छिन्न आत्मास्तीत्यात्मसत्तां ज्ञापयति सः। अतोऽप्युक्तम्। **तथात्वे सती**ति विशेषणम्। देहस्थत्वं प्राणादावतिव्याप्तमतो विशेष्यम्। अथापि देहस्थत्वे परमात्मनः सत्त्वे कारणत्वे च सत्यप्यकरणत्वान्न तत्रातिव्याप्तिः। **प्रस्थानरत्नाकरे** व्यापारवदसाधारण-कारणस्य करणत्वात्। आविर्भावकशक्त्याधारस्य च कारणत्वात्। अनन्यथासिद्धत्वे सति कार्य-नियतपूर्ववर्ति कारणमिति लक्षणस्यान्योन्याश्रयग्रस्तत्वम्। पूर्ववर्तित्वस्य कार्यसापेक्षत्वात् कार्यस्य च नियतपश्चाद्भावित्वात्। बाह्यात्मान्तरात्मपरमात्मलक्षणान्यात्मोपनिषदि विद्यन्ते। ननु लक्षणद्वयस्य किं प्रयोजनमिति चेन्न। एकस्य सर्वसिद्धान्तान्तर्गतत्वाद्द्वितीयस्य शास्त्रार्थवत्त्वात्। 'सर्वसिद्धान्त-गुम्फिता' इति तृतीयस्कन्ध**सुबोधिन्य**न्ते तृतीयस्कन्धविवृतिविशेषणात्। 'भक्तेषु शास्त्रहृदयेषु निवेदयामि शास्त्रार्थतो यदि हरिर्भवतामभीष्टः' इति द्वितीयस्कन्धान्ते कारिकायाः। ज्ञान-क्रियेत्यादिलक्षणद्वयं तु 'तत्त्वानि दशापि भिन्नानीति नैकं लक्षणं निर्दिष्टम्' इति तत्रैव **सुबोधिनी**-प्राप्तस्वरसम्। इदानीमेकादशैवेन्द्रियाणीति भाष्यमिन्द्रियत्वांशपरं वाक्येषु द्वैविध्यात्तथैव स्व-**प्रस्थानरत्नाकरे** प्रत्यपादि ह्यत आहुः **यद्वे**ति। **अविद्यावदि**त्यादि। यथाऽविद्याऽज्ञानं न ज्ञानाभावः, किंतु ज्ञानविरुद्धा संपत्तद्वदनिन्द्रियत्वस्येन्द्रियविरुद्धसंपद्भावरूपत्वे**नोपगन्तुं शक्य-त्वा**दित्यर्थः। **यम** इत्यादि श्रीभागवते। **क्रिये**त्यादि। ज्ञानकर्मेन्द्रियनियामकत्वात् क्रिया-ज्ञानमयत्वे मनसो बोध्ये। 'उभयं मनः' इति भगवद्वाक्यात्। **विशेषे**त्यादि। प्रमेयप्रकरणे तैजसाहंकारोपादेयत्वे सति ज्ञानक्रियान्यतरकारणमिन्द्रियमिति गौणलक्षणमुक्त्वा देहसंयुक्तत्वे सति स्वफलेनात्मज्ञापकत्वं मुख्यं लक्षणमुक्तम्। साक्षाद्भ्रूचरणेपि सत्त्वात्। तत्र तैजसाहंकारोपादे-यत्वाभेदेन पूर्वलक्षणस्य गौणत्वात्। मीमांसकास्तु यत्संप्रयुक्तेऽर्थे विशदवभासं ज्ञानं जनयति तदिन्द्रियमिति। संप्रयुक्ते संयोगादिसंबन्धेन संबन्धिन्यर्थे विशत्। तैजसवेशः प्रवेशः प्रसिद्धः। तद्वत्तदिन्द्रियस्येत्येवमन्यत्रोन्नेयम्। नैयायिकास्तु शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञान-कारणमनःसंयोगाश्रयत्वमिन्द्रियत्वमाहुः। तदनन्तरविशेषलक्षणानि। तत्र व्यवहारजनकमिन्द्रियं वह्निदेवताकमिन्द्रियं वा वाक्। शिल्पजनकमिन्द्रियमिन्द्रदेवताकमिन्द्रियं वा दोः। आनन्दजनक-मिन्द्रियं प्रजापतिदेवताकमिन्द्रियं वा मेढ्रम्। गतिजनकमिन्द्रियं विष्णुदेवताकमिन्द्रियं वाङ्घ्रिः। विसर्गजनकमिन्द्रियं मित्रदेवताकमिन्द्रियं वा पायुः। गोलकान्येषां प्रसिद्धानि। एतावान्परं विशेषः। दोरादिचतुष्कमन्यदेवतावच्छेदेनापि कार्यं जनयति। अन्यथा मल्लविद्याकुशलानां खञ्जानां च हस्ताभ्यां चलनम्। विषयेन्द्रियसंयोगाच्चक्षुरादिष्वानन्दः। पद्भ्यां तालादिवादनम्। नेत्राभ्यामश्रु शरीरे च स्वेदरोमहर्षादयो न स्युः। वागिन्द्रियं तु न तथेति। ज्ञानेन्द्रियलक्षणानि कर्मेन्द्रियेभ्यः पश्चात्। तत्र नभोगुणविशेषत्वेन शब्दग्राहकमिन्द्रियं वा दिग्देवताकमिन्द्रियं वा श्रोत्रम्। वायुविशेषगुणविशेषत्वेन स्पर्शग्राहकमिन्द्रियं वायुदेवताकं वा त्वक्, एवमग्रेपि। पार्थिवेषु

अणवश्च ॥ ७ ॥ (२-४-३)

सर्वे प्राणा अणुपरिमाणाः । गतिमत्त्वेन नित्यत्वे अणुत्वमेव । परिमाणप्रमाणाभावात् पुनर्वचनम् ॥ ७ ॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्थपादे तृतीयं अणवश्चेत्यधिकरणम् ॥

भाष्यप्रकाशः ।

विचारस्तु प्रस्थानरत्नाकरे मया कृत इति नेह प्रपञ्च्यते । तस्मादन्येषां वृत्तिभेदत्वेनान्तःकरण एव निवेशादेकादशैवेन्द्रियाणीति सिद्धम् ।

अन्येऽपि सर्वे एकादशपक्षमेवाद्रियन्ते ।

माध्वास्तु । बुद्धिं निवेश्य द्वादशप्राणपक्षमङ्गीकुर्वन्ति । श्रुतिं च कांचिल्लिखन्ति । इन्द्रियाणि कतीति न विचारयन्ति । तत्रोदासीना वयम् ॥ ६ ॥

इति द्वितीयं हस्तादय इत्यधिकरणम् ॥ २ ॥

अणवश्च ॥ ७ ॥ संख्यां निर्धार्य परिमाणं निर्धारयतीत्याशयेन व्याकुर्वन्ति सर्व इत्यादि । सर्वेषां प्राणानां पूर्वोक्तरीत्या नित्यत्वे सिद्धे गतिमत्त्वेनाणुत्वमेवेत्यर्थः । अयं च हेतु-

रश्मिः ।

गन्धस्य सामान्यत्वाद् गन्धलक्षणेऽपि न विशेषपदवैयर्थ्यम् । गन्धग्राहकमिन्द्रियमश्विनीकुमारदेवताकं वा घ्राणम् । रूपग्राहकमिन्द्रियं सूर्यदेवताकमिन्द्रियं वा चक्षुः । रसग्राहकमिन्द्रियं वरुणदेवताकं वा रसनम् । सिद्धमाहुः **तस्मादिति** । **अन्येषां** बुद्धिचित्ताहंकाराणाम् । **एकादशैवेति** । माध्वोपन्यस्तश्रुतेः पाक्षिकत्वादन्योपन्यस्तानामविरोधादेवकारः । **सिद्धमिति** भाष्यीयस्थितपदव्याख्यानात्स्थितमित्यर्थः । तेन च सौत्रस्य **स्थितपदस्य** सिद्धमित्यर्थ इत्यजिज्ञपन् । **शंकराचार्य**भाष्ये तु हस्तादयस्त्वपरे सप्तभ्योतिरिक्ताः प्राणाः श्रूयन्ते । हस्तौ वै ग्रहः स कर्मणातिग्रहेण गृहीतो हस्ताभ्यां हि कर्म करोतीत्येवमाद्यासु श्रुतिषु स्थिते सप्तत्वातिरेके सप्तत्वमन्तर्भावाच्छक्यते संभावयितुमित्येवं स्थितपदं व्याख्यातम् । तद्वद्वा मुण्डकश्रुतौ सप्तत्वे स्थिते वाच्यतयेति व्याख्येयं सिद्धपदस्य स्थितपदव्याख्यानत्वाभावे । स्थिते शरीरस्थिते जीवे हस्तादयोपि सन्त्येवातो नैवम् । हस्तादयो न सन्तीत्येवं न मन्तव्यमित्यर्थ इति **रामानुजाचार्याः** । **अन्य** इति माध्वाचार्यव्यतिरिक्ताः । **कांचिदिति** सप्तगतिसूत्रे आभासे 'द्वादश वा एते प्राणा द्वादश मासा द्वादशादित्या द्वादश राशयो द्वादशश्च ग्रहाः' इति कौण्डिन्यश्रुतिम् । **न विचारयन्तीति** द्वादशप्राणपक्षमङ्गीकुर्वन्ति परं तर्करूपं विचारं मनोभेदो बुद्धिरिति न कुर्वन्तीत्यर्थः । **उदासीना** इति । मतस्य श्रौतत्वेन विकल्पपर्यवसानात्पक्षनिवेशकान्तर्भावात्तन्मतादुत् उपरिष्टात् **आसीना** गीतोपदृब्धत्वेन स्वमतस्येत्यर्थः ॥ ६ ॥

इति द्वितीयं हस्तादय इत्यधिकरणम् ॥ २ ॥

अणवश्च ॥ ७ ॥ परिमाणमिति । व्यापीन्यणूनि वाक्षाणि, सांख्या व्यापित्वमूचिरे । वृत्तिलाभस्तत्र देहकर्मवशाद्भवेत् । देहस्य वृत्तिमद्भागेष्वेवाक्षत्वं समाप्यतामिति सांख्यपूर्वपक्षे उत्क्रान्त्यादिश्रुतेस्तानि ह्यणूनि स्युरदर्शनादित्येवमणुपरिमाणमित्यर्थः । **गतिमत्त्वेनेति**

---

१ वर्ति ।

भाष्यप्रकाशः ।

रतिदेशात् प्राप्तश्चकारेण सूचितः । सूचनप्रयोजनमाहुः **परिमाणेत्यादि** । सप्तान्नब्राह्मणे, 'त एते सर्व एव समाः सर्वेऽनन्ताः' इति यदानन्त्यश्रवणं तत्तु कालत एव तथात्वबोधकम् । अनन्तमेव स लोकं जयतीति फलोक्त्या तथाऽवसायात् । अतो जीवे यथाऽऽराग्रमात्रत्वं तथा प्राणेष्वश्रवणात् पुनर्वचनमित्यर्थः । एतेन शरीरपरिमाणत्वं संकोचविकाशशालिपरिमाणत्वं व्यापकत्वं च निवारितम् । तेन चक्षुर्मनोवाचां दूरगमनम् । त्वचः सर्वशरीरव्याप्तिश्च सामर्थ्येन वा

रश्मिः ।

उत्क्रान्त्यादिश्रुत्युक्तेन । **अयमिति** गतिमत्त्वरूपो **हेतुः** । जीवधर्मातिदेशेन **प्राप्तः** सौत्रेणानुक्तस्य हेतोः समुच्चायकेन **चकारेण** द्योतकेन सूचितः । **अतीति** । तथा प्राण इत्यत्रोक्तः । **सूचनेति** परिमाणासिद्धिरूपम् । अन्यथान्येनासौत्रेणानुक्तस्य हेतुना प्राणेष्वेवाणुत्वं सिद्ध्येत् । हेतुमात्रस्यातिदेशानङ्गीकारे बाधकाभावात् । सूत्रेऽसूचनात् । उद्दिष्टनातिदिष्टबाधदर्शनाच्च । **त एत** इति वागादयः **समाः** । केन रूपेणेत्यपेक्षायामाह **सर्व** इति । आधिदैविकरूपेणाशेषजगद्व्याप्तिमन्त इत्यर्थः । **कालत** इति मुक्तिकालत इत्यर्थः । **एवकारेण** देशव्यवच्छेदः । तथा चाणव एवानन्ता अनन्तकालावस्थायिनः । परमाणुवदन्यनये । **अनन्तमेवेति** 'स यो हैतानन्तवत्तया सोऽन्तवन्त५ लोकं जयत्यथ यो हैताननन्तानुपास्ते' इत्युक्त्वोच्यतेऽनन्तमेवेत्यादिश्रुतिः । देशत आनन्त्ये सिद्धस्य लोकस्य साधनरूपो जयोऽनन्वितः स्यादिति भावः । **अवसायादिति** । **माध्वास्तु** 'अणुभिः पश्यत्यणुभिः शृणोति प्राणा वा अणवः प्राणैरेतद्भवति' इति कौण्डिन्यश्रुतिमाहुः । **रामानुजाचार्यास्तु** उपास्यप्राणबहुत्वानुरोधिनीं श्रुतिमाहुः । तेन 'गोविन्दान्मृत्युर्बिभेति' इति गोपालतापिनीयं समर्थितम् । न तु कार्यलक्षणस्येन्द्रियेष्वतिव्याप्तिः । पुरुषविधब्राह्मणसत्त्वात् । **शरीरेति** । शंकराचार्यमतमिदं सूक्ष्माः परिच्छिन्नाश्चैते प्राणा इति भाष्यात् । नैयायिकानां च । तत्र त्वचि स्पष्टम् । सकलशरीरावच्छेदेन स्पर्शोपलम्भात् । **संकोचेति** । मुक्तावल्यां मनोनिरूपणे पूर्वपक्ष्याशयोयम् । यथाहुः मनसोणुत्वोक्त्यनन्तरम् । न च दीर्घशष्कुलीभक्षणादौ नानावधानभाजां च कथमेकदा नानेन्द्रियजन्यज्ञानमिति वाच्यम् । मनसोतिलाघवाज्झटिति नानेन्द्रियसन्निधानान्नानाज्ञानोत्पत्त्योत्पलशतपत्रभेदादिवद्यौगपद्यप्रत्ययस्य भ्रान्तत्वात् । न च मनसः संकोचविकाशशालित्वादुभयोपपत्तिरस्त्विति वाच्यमिति । समाधानं तु नानावयवतन्नाशकल्पनागौरवादिति । **व्यापकत्वमिति** व्यापकधर्मस्य व्यापकत्वनियमाद्गोविन्देन्द्रियाणां व्यापकत्वे क्रीडाप्रतिबन्धात् 'मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि' 'श्रीमद्गोकुलदक्तारा' इत्यादिवाक्यविरोधान्निर्धारितम् । 'सर्वतः पाणिपादान्तम्' इत्यत्रान्तशब्दाज्ज्ञानमार्गीयत्वाच्च न दोषः । उपासनादिभिर्व्यापकत्वम् । दूरश्रवणदर्शनादिकं तु यमपुरुषेष्वपि । **तेन चेति** अणुत्वव्यवस्थापनेन च । चक्षुर्दूरगमनं तावत्प्रत्यक्षखण्डे **प्रस्थानरत्नाकरे** उक्तम् । वृत्तिरूपेण चाक्षुषे तु नयनकिरणा विषयपर्यन्तं गच्छन्तीन्द्रियान्तरे तु किरणाभावादिन्द्रियेण सह विषयं मनः प्राप्नोति तदा क्रमेण सहैव वा निर्विकल्पकं सविकल्पकं च तत्तदिन्द्रियसंसृष्टे मनस्युत्पद्यते । ज्ञानद्वयेपि विषयेन्द्रियस्पर्शादिकं व्यापारः । अनेनार्चीरूपाणां किरणानां सूर्यकिरणानां सूर्यमण्डलाद्भेदस्य 'आदित्यो वा एष एतन्मण्डलं तपति' इत्यनुवाके श्रावणात्तैरखिलमेरूत्तरदेशैर्व्याप्नुवानस्यादित्यमण्डलस्य दशसहस्रयोजनपरिमाणस्मरणेन तेषां तत्परिमाणाबाधकत्ववत्सूर्याध्यात्मिकचक्षुषः किरणानामपि तथात्वेन

भाष्यप्रकाशः ।

गुणव्याप्त्या वेति बोधितम् । मोक्षे च तेषामपि सत्संपत्तिरिति च बोधितम् । नन्वेतेषां को वा गुणो यो बहिः प्रसरतीति वक्तव्यम् । यदि न वक्तुं शक्यते तर्हि मिथ्यैवायमुद्यम इतिचेन्न । चक्षुर्मनोवाचां तेजोमयदेवताधिष्ठितत्वात् तदंशत्वाच्च रूपमेवेति वदामः । 'तेजोमयीवाग्' इति श्रुतेश्च । त्वचस्तु स्पर्श एव । अथवा । 'यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः' इति षष्ठस्कन्धे नारदकृत उपदेशे मनःप्रभृतीनां ब्रह्मकर्मकस्पर्शज्ञानयोर्निषेधमुखेन तेषु स्पर्शज्ञानयोरङ्गीकारात् स्पर्श एव सर्वत्र यथोचितो भवतु । नच तस्य प्रत्यक्षापत्तिः शङ्क्या । अणुगुणत्वेनातीन्द्रियतया कार्यैकानुमेयत्वात् । इन्द्रियाणां प्राप्यप्रकाशकारित्वस्य नियतत्वादिति । यत् पुनः

रश्मिः ।

श्रुत्यविरोध उक्तः । 'मनसैवानुद्रष्टव्यम्'इति श्रुत्या चन्द्रदेवताकत्वेन मनसो नानाकिरणशालिन ईक्षत्यधिकरणभाष्योक्तप्रकारेण कामवर्जितातिशुद्धस्य **दूरगमनं** ब्रह्मपर्यन्तगमनम् । तथा वाचां दूरगमनं वीचीतरङ्गन्यायेन प्रसिद्धम् । त्वचः सर्वशरीरव्याप्तिस्त्वाचप्रत्यक्षे । **सामर्थ्येन** वेति देवतासामर्थ्येन । तथा प्राण इत्यधिकरणे प्राणे जीवधर्मातिदेशस्य सिद्धान्ताङ्गीकारात्सर्वशरीरे जीवचैतन्येनेव । वाकारद्वयार्थः क्वचित्पूर्वतन्त्रे प्रसिद्धः । 'सेवायां वा कथायां वा' इतिवत् । **मोक्ष** इत्यादि । इदं च तत्प्राक्श्रुतेश्चेति सूत्रे चकारान्मोक्ष इत्यादिभाष्ये स्पष्टम् । गुणव्याप्तिं प्रपञ्चयन्ति स्म **नन्वेतेषा**मित्यादिना । **अयमिति** अणुत्वप्रसाधनलक्षणः । तेजोमयेत्याद्यं ज्योतिराद्यधिष्ठानाधिकरणेऽत्रैवाग्रे स्फुटम् । **रूपमेवे**ति । तेजस्तन्मात्रत्वस्य तल्लक्षणत्वादिति भावः । एवकारेण चक्षुषः सूर्यदेवताकत्वेन तद्रश्मयो व्यवच्छिद्यन्ते । मनसस्तु कामसंकल्पादिनानावृत्तयो व्यवच्छिद्यन्ते । वाचस्तु व्यवहारजनकत्वरूपवृत्तिर्व्यवच्छिद्यते । **प्रस्थानरत्नाकरे** तु गुणाद्वालोकवदिति सूत्रे आलोकस्य गुणत्वाङ्गीकारात्तैजसस्य चक्षुष आलोकरूपगुणव्याप्त्याङ्गीकारेप्यदोष इत्युक्तम् । चक्षुषस्तैजसत्वस्य नैयायिकादिसकलप्रसिद्धस्य माऽपलापो हि भूत् । मनोवाचोस्त्वप्रसिद्धं मन्वानं प्रत्याहुः **तेज** इत्यादि । तथा च वाक्पूर्वरूपस्य मनसः कथमतैजसत्वमिति चन्द्रदेवताकस्य तैजसत्वम् । अतस्त्रिसृणां रूपं तन्मात्रेति भावः । **त्वच** इत्यादि । त्वचो वायुदेवताकस्य स्पर्श एव बहिः प्रसरति न तु रूपं तदभावादित्यर्थः । **प्रस्थानरत्नाकरे** तु देवतासामर्थ्यमप्युक्तम् । लाघवेन सकलसाधारणस्पर्शमाहुः **अथवे**त्यादिना । **ब्रह्मकर्मके**त्यादि । वाक्यान्तर्गतयच्छब्दार्थो ब्रह्मेति भावः । **निषेधे**ति **निषेधमुखं** निषेधोपायः निषेधरूपो ब्रह्मातिरिक्ते स्पर्शप्रापकोपायः । **तेष्विति** । मनोबुद्धीन्द्रियासुषु । **स्पर्शे**ति ब्रह्मातिरिक्तं स्पृशन्ति विदुरिति । एवेति । स्पृशन्ति विदुरित्येतयोर्मनोबुद्धीन्द्रियासुकर्तृकत्वेन स्पर्शज्ञानानुकूलव्यापारो मनआदिनिष्ठ इति । **सर्वत्रे**ति । मनोबुद्धीन्द्रियासुषु स्पर्शानुकूलो व्यापारः । आकाशं स्पृशन्ति विदन्ति । एवं वायुमग्निमपः पृथिवीमोषधिमन्नं पुरुषम् । एतेभ्यः प्रयोगेभ्यः । आकाशादिषु स्पर्शज्ञाने । कर्मत्वात् । तत्रापि सूक्ष्मास्परंपरयेत्यर्थः । इदमेवोक्तं **यथोचित**पदेन । आकाशस्य मांसरूपस्य स्पर्शः । ननु त्वग्विषयकज्ञानादौ तस्याणुप्राणादिगुणस्य स्पर्शस्य प्रत्यक्षापत्तिरित्याशङ्कामपनुदन्त आहुः **न चे**त्यादि । **कार्यैके**ति । अणूनीन्द्रियाणि स्पर्शवन्ति । प्राप्यप्रकाशकारित्वात् । यन्नैवं तन्नैवं परोक्षघटवदित्यनुमेयत्वात् । कार्यं प्राप्यप्रकाशस्तद्घटितहेतुनानुमेयत्वं कार्यैकानुमेयत्वं तस्मात् । **नियतत्वा**दिति । ज्ञानेन्द्रियाणि वस्तुप्राप्यप्रकाशकारीणि । सौगतास्तु श्रोत्रस्याप्राप्यप्रकाशकारित्वं

भाष्यप्रकाशः ।

सकलदेहव्यापिकार्यानुपपत्तिप्रसङ्गादणुत्वं मध्यमपरिमाणबोधकत्वेन व्याख्यातं तदप्येतेनैव निरस्तं ज्ञेयम् । ज्ञानवत्ता तु तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादायेति श्रावणाद् देवतात्वाच्च युक्तैवेति न कोऽपि शङ्कालेशः । भिक्षुस्त्वत्राणुपदेन तन्मात्राणि व्याख्याय तेषां पृथगुत्पत्तिविचारमत्राङ्गीचकार तन्न । मैत्रेयोपनिषदि, पञ्च तन्मात्राणि भूतशब्देनोच्यन्ते । अथ

रश्मिः ।

वदन्ति तदन्ये दूषयन्ति स्म यथाह **शास्त्रदीपिकाकारः** । अप्राप्यकारित्वे हि सन्निकृष्टविप्रकृष्टस्थितौ युगपच्छब्दमुपलभेयाताम् । तयोस्तु क्रमेणोपलब्धिर्न कथंचिदप्राप्यकारित्वे समर्थयितुं शक्या । तस्मान्नाप्राप्यकारित्वं श्रोत्रस्य संभवति । वृत्तेस्तु ज्ञानावस्थात्वमेवेति व्युत्पादितं **प्रस्थानरत्नाकरे** वृत्तिनिरूपणेन । श्रोत्रस्य शब्दो वृत्तिरिति प्राप्यकारित्वम् । न चातिभागब्राह्मणे 'श्रोत्रं वै ग्रहणकः शब्देनातिग्रहेण गृहीतः श्रोत्रेण शब्दाञ्छृणोति'इति तत्र श्रोत्रे ग्रहणकशब्दोन्येष्विन्द्रियेषु ग्रहशब्दा इत्यप्राप्यप्रकाशकारित्वमितिवाच्यम् । मैत्रेयीब्राह्मणे 'स यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य न बाह्यांञ्छब्दाञ्छक्नुयाद्ग्रहणाय शङ्खस्य तु ग्रहणेन शङ्खध्मस्य वा शब्दो गृहीतः' इत्यत्र बाह्यानिति शब्दरूपग्रहणकर्मविशेषणादबाह्येतरशब्दग्राहकत्वेन प्राप्यकारित्वात् । न चैवमपि मनआदिश्रोतृत्वं भवतु पुरुषविधब्राह्मणे 'मन एवास्यात्मा वाग्जाया प्राणः प्रजा सौम्यं चक्षुर्मानुषं वित्तं चक्षुषा हि तद्विदन्ति श्रोत्रं दैव५ श्रोत्रेण हि तच्छृणोति' इति श्रुतेरिति शङ्क्यम् । यत्किंचित्साक्षाद्ग्रहणेन श्रोत्रस्य प्राप्यकारित्वात् । कर्मेन्द्रियेषु तु तत्तत्क्रियैव व्यापारः । 'सर्वेषामानन्दानामुपस्थ एकायनम्'इत्यादिश्रुतेः । तज्जन्या स्थूलशरीरक्रिया च फलमिति । अन्ये तु घ्राणरसनश्रवणानां द्रव्यग्राहकत्वं नेच्छन्ति तन्नास्मभ्यं रोचते । तमसि रसनया दुग्धादेर्घ्राणेन चम्पकादेः, श्रवणेन भेर्यादेरनुभवस्य व्याप्तिज्ञानविधुराणामपि दर्शनात् । अत्र व्यवसायविरोधेन स्मृतिरूपत्वस्य तत्र वक्तुमशक्यत्वाच्च । न चोपनीतं भानं तदिति वाच्यम् । तथात्वे मानाभावात् । घ्राणादीनां द्रव्याग्राहकत्वस्याभ्युपगमैकशरणत्वादिति दिक् । तथा च सुरभि चन्दनमित्यत्रेव घ्राणादीनां द्रव्यादिग्रहणे सामान्यलक्षणाज्ञानलक्षणे प्रत्यासत्ती ज्ञेये । सिद्धान्तमुक्तावल्यां स्पष्टम् । एवं नियतत्वं तस्य बोध्यम् । **व्याख्यात**मिति शंकराचार्यैर्व्याख्यातम् । तथा च भाष्यम् । **अणवश्चै**ते प्रकृताः प्राणाः प्रतिपत्तव्याः । अणुत्वं चैषां सौक्ष्म्यपरिच्छेदो न परमाणुतुल्यत्वम् । कृत्स्नदेहव्यापिकार्यानुत्पत्तिप्रसङ्गादिति । **एतेने**ति पूर्वग्रन्थेनैव । **एव**कारस्तु पूर्वग्रन्थस्य विस्तृतत्वात् । **ज्ञाने**ति । ननु ह्यणुषु विषयप्रकाशनसामर्थ्यमयुक्तं संहननातिरिक्तसामर्थ्याप्रसिद्धेः परमाणुष्विवेत्याशङ्क्याहुः **ज्ञानवत्ते**ति । चकारेणाणुत्वसंग्रहः । तथा चेन्द्रियाणां परमाणुत्वेऽयं दोषो न त्वणुत्व इति भावः । **न कोपी**ति । परमाणुत्व इन्द्रियाणां द्विगोलके दोरादौ मल्लविद्यायां हस्ताभ्यां चलने विष्णुदेवताकृतावच्छेदेन गतिजनकत्वं न शिल्पजनकत्वम् । पशूनां चक्षुरिन्द्रियस्य नासिकाविवरावच्छेदेनाश्विनीकुमारकृतावच्छेदेनेक्षितृत्वमपि विषयेन्द्रियसंयोगाच्च् चक्षुरादौ कदेवतावच्छेदेनानन्दजनकत्वमपि । पद्भ्यामिन्द्रदेवतावच्छेदेन तालवादनं न तु गतिजननम् । नेत्राभ्यां मित्रदेवतावच्छेदेनाश्रुविसर्गोऽपि तथा शरीरे रोमस्वेदहर्षादिविसर्गोपि । तत्र पादादीन्द्रियाणां हस्तादिगोलकावच्छेदेन कार्यजननमनुपपन्नम् । अयमपि शङ्कालेशो नेति कोपीत्युक्तम् ॥ सामर्थ्याद्वा गुणव्याप्तेर्वेति । **अङ्गीचकारे**ति । माध्वास्तु ह्यत्र 'दिवीव चक्षुराततम्' इति 'अणुभिः पश्यति'इति श्रुति-

श्रेष्ठश्च ॥ ८ ॥ (२-४-४)

मुख्यश्च प्राणो नित्यगतिमान् अणुपरिमाणश्च । चकारादतिदेशः । नासदासीदित्यत्र, 'आनीदवातं स्वधया तदेकम्' इति अननात्मकस्य पूर्वसत्ता प्रदर्शिता ॥ ८ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

महाभूतानि भूतशब्देनोच्यन्ते इत्युक्त्या श्रुतौ भूतपद उभयसंग्रहस्य बोधितत्वेन पूर्वपादीय-वियदाद्युत्पत्तिविचारादेव चारितार्थ्येन पृथग्विचारप्रयोजनाभावात् ॥ ७ ॥

इति तृतीयं अणवश्चेत्यधिकरणम् ॥ ३ ॥

श्रेष्ठश्च ॥ ८ ॥ इन्द्रियाणि विचार्येदानीं मुख्यप्राणं विचारयति । तत्र मुख्यप्राणनित्य-तायाः स्फुटमश्रवणात् प्रश्नोपनिषत्प्रभृतिषु, 'मा मोहमापद्यथा अहमेवैतत्पञ्चधात्मानं प्रविभज्यै-तद्बाणमवष्टभ्य विधारयामि'इत्यादिरूपे प्राणानां संवादे शरीरस्थितिहेतुतया श्रेष्ठत्वेन निर्णीत-त्वाच्च संदेहे श्रैष्ठ्यस्य नित्यतागमकत्वे मानाभावादनित्य इति प्राप्ते आहेत्याशयेन व्याकुर्वन्ति **मुख्य इत्यादि** । मुख्यः प्राणोपि नित्यो गतिमानणुपरिमाणश्च । तत्र हेतुरतिदेशप्राप्तश्चकारादेव **पूर्ववत् सूच्यते** । नन्वस्य सृष्टेः पूर्वं सत्तायां किं मानमत आहुः **नासदित्यादि** । तथाचैवं

रश्मिः ।

विगानेन प्राणाः किं व्याप्ता उताणव इति संदेहे व्याप्ता इति पूर्वपक्षेऽणव एवेति सिद्धान्तयन्ति स्म । **रामानुजास्तु** त एते सर्वे समाः सर्वेऽनन्ता इत्यानन्त्यश्रावणाद्विभुत्वं प्राणानामिति प्राप्तेऽभि-धीयते । प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्तीत्युत्क्रान्त्यादिश्रवणात्परिमितत्वे सिद्धे सत्यु-त्क्रान्त्यादिषु पार्श्वस्थैरनुपलभ्यमानत्वादणवश्च प्राणाः । आनन्त्यश्रुतिस्तु 'अथ यो हैताननन्तानुपास्ते' इत्युपासनश्रवणादुपास्यप्राणविशेषभूतकार्यबाहुल्याभिप्रायेति सिद्धान्तयन्ति स्म । **श्रुताविति** अव्यव-हितपूर्वोक्तायाम् । **पूर्वेति** । एवकारस्तु पञ्चतन्मात्राणां महाभूतधर्मातिदेशस्योक्तत्वात्तत्र निविष्ट-त्वात्तन्मात्राज्ञाने तादृशमहाभूतरूपविशेषणाज्ञानप्रयुक्ततद्धर्मातिदेशाज्ञानापत्तेः । न च तूष्णीमति-देशमुक्तमितः परं विविच्य विचार इति वाच्यम् । सूत्राभावात् ॥ ७ ॥

इति अणवश्चेत्यधिकरणम् ॥ ३ ॥

श्रेष्ठश्च ॥ ८ ॥ **मुख्येति** । **प्राणपदस्य** भाष्ये प्रियत्वाय व्यवस्थापनात् प्रियत्वेन स्मृतस्य मुख्यप्राणस्योपेक्षानर्हत्वात्तं प्रसङ्गसंगत्या विचारयति भगवानाचार्यः । विषयादिकमाहुः **तत्रेत्यादिना** । मुख्यप्राणो विषयः स नित्यो जीवधर्मवांश्चानित्यस्तद्धर्माभाववान्वेत्याकारकसंशयस्तु स्पष्ट एव । **अश्रवणेति** । 'एतस्माज्जायते प्राणः' इत्यत्रोत्पत्तेः प्रादुर्भावरूपत्वस्यापि शक्यवचनत्वा-त्स्फुटपदोक्तिः । **प्रश्नेति** । प्रभृतिपदार्थोऽग्रे स्फुटः । मा मोहमित्यादि बाणधारकत्वाय मुह्यमान-प्राणान्प्रति प्राणवाक्यात् । बाणं देहम् । **इति प्राप्त** इति पूर्वपक्षे प्राप्ते । **मुख्यश्चेति** भाष्ये **चकारोप्यर्थ** इत्याशयेनाहुः **मुख्य इति** । **चेति** अयं समुच्चये । चकारादिति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तत्रेत्यादिना** । **हेतुरिति** । सौत्रचकाराद्धेतुवाचकपञ्चम्या लुग्बोधितः । स च गतिमत्त्वेन नित्यत्वे अणुत्वमेवेति भाष्ये गतिमत्त्वं हेतुः । अतिदेशप्राप्तोऽतिदिष्टश्चकारात्तद्वाचकात् । **एवेति** किमत आहुः **पूर्ववदिति** पूर्वसूत्रवत् । तथा च पूर्वसूत्रप्रामाण्यादेवकार इति भावः । **सूच्यत**

न वायुक्रिये पृथगुपदेशात् ॥ ९ ॥

ननु मुख्यः प्राणो वायुरेव भविष्यति, इन्द्रियाणां क्रिया वा । एवं हि श्रूयते । 'यः प्राणः स वायुः । एष वायुः पञ्चविधः प्राणोऽपानो व्यान उदानः समानः' इति । 'सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च' इति । तन्त्रान्तरीया आचक्षते । तदुभयमपि न । कुतः पृथगुपदेशात् । 'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वे-

भाष्यप्रकाशः ।

सृष्टिप्राक्काले वातरूपतानिषेधपूर्वकमानीदिति कथनाद्भगवतोऽननात्मको यो धर्मः स एव मुख्यः प्राण इति तेन रूपेण सत्तायां सिद्धायाम्, एतस्माज्जायते प्राण इत्यत्रापि जीववद् व्युच्चरणमेव, न तूत्पत्तिः । सदेवेति श्रुतिस्तु ततोऽपि पूर्ववृत्तान्तपरेति श्रुतिविरोधलेशस्याप्यभावादयमपि जीवसमानयोगक्षेमत्वादंश एवेत्यर्थः ॥ ८ ॥

न वायुक्रिये पृथगुपदेशात् ॥ ९ ॥ प्राणस्वरूप एव किंचिदाशङ्क्य परिहरतीत्याशयमस्याहुः नन्वित्यादि । तन्त्रान्तरीयाः सांख्याः, सामान्येति तेषां सांख्यसप्ततौ कारिका । अर्थस्तु पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि, पञ्च कर्मेन्द्रियाणि बाह्यानि । मनोबुद्ध्यहंकारास्त्रय आन्तराः । एवं त्रयोदशविधं करणम् । तस्य त्रयोदशविधस्यापि करणस्य या साधारणी वृत्तिः प्राणाद्या प्राणनादिरूपा । भावे घञ् । सैव पञ्च वायवः प्राणादय इति व्यवह्रियन्ते इत्यर्थः । तथाचोभयोर्मध्ये यत्किंचिदादर्तव्यं, न तु पृथग्विचारस्तस्य युक्त इत्याशङ्काशयः । परिहारं व्याचक्षते तदुभयमपि नेत्यादि । नन्वेवं वायोः सकाशाद्भेदोऽस्तु, इन्द्रियक्रियातः कथं भेद इत्यत

रश्मिः ।

इति भाष्यार्थस्तु श्रेष्ठः प्राणश्चकारसूचितार्थादतिदेशादिति । सृष्टेरिति पञ्चम्यन्तमिदम् । नासदित्यादीति । नासदासीन्नो सदासीदित्यत्रानीत् लुङन्तं, अवातं, स्वधया, तद्, एकम् । एकं तद् ब्रह्म कर्तृ, स्वधया स्वधाशब्देन अवातं अप्राणं जगत् आनीत् प्राणानुकूलभूतकालिकव्यापारवत् । अवातं प्राणयुक्तमकार्षीत् । स्वधापदेन पितृसृष्टिरुक्ता । सा च सामवेदप्राधान्यापेक्षया । 'वेदानां सामवेदोस्मि' इति । मनुस्मृतौ 'ऋग्वेदो देवदैवत्यः' इत्यत्र साम्नः पितृदेवत्वमुक्तम् । स्वधा पितृदाने । वातेति 'वातः प्राणः' इति बृहदारण्यके । अननेति । भगवत्संबन्ध्यननानुकूलो व्यापार इत्यर्थादिति भावः । एतदुपपादितं प्राक् । ततोपीति । तस्य तमःपदार्थकस्य समाधिकरणोक्तरीत्या तमःशब्दार्थादप्रच्यावनपक्षेऽवान्तरकारणपक्षे इदं बोध्यम् ॥ ८ ॥

न वायुक्रिये पृथगुपदेशात् ॥ ९ ॥ एवेति इन्द्रियव्यवच्छेदकः । नन्वित्यादीति । वायुतः पार्थक्यस्यासन्यपदेन बोधनादाहुर्भाष्ये इन्द्रियाणामित्यादि । एतच्च क्वचित्प्रसिद्धम् । शंकरभाष्येपि न वायुः प्राणो नापि करणव्यापार इति । श्रूयत इति । तत्रेति । इन्द्रियाणां क्रिया वेति कोटौ स्वाभिप्रायमाचक्षत इत्यर्थः । तत्रान्तरीयाभिप्रायात्समस्तकरणवृत्तिः प्राण इति शंकरभाष्यात् । कारिकेति । इदमुपलक्षणं सांख्यप्रवचनसूत्रस्य । सांख्यप्रवचनसूत्रवृत्ताविदं सूत्रं प्रधानकार्याध्यायेस्ति । सामान्या चासौ करणवृत्तिरिति कर्मधारयं व्याचक्षते । पञ्चबुद्धीति । ननु 'प्राणितीति प्राणः' एवमादिविग्रहेषु प्राणनादिरूपाः कथमत आहुः भाव इति । प्राणादिपदेषु । इत्याशङ्केति इति आशङ्का यस्य स इत्याशङ्कः, तस्याशय इत्यर्थः । इन्द्रियत

न्द्रियाणि च, खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी' इति प्राणवाय्वोः पृथगुपदेशात् । वृत्तिमतोरभेदेन ततोऽपि पृथगुपदेशाच्च ॥ ९ ॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्थपादे चतुर्थं श्रेष्ठश्चेत्यधिकरणम् ॥

भाष्यप्रकाशः ।

आहुः वृत्तीत्यादि । ततोऽपीति इन्द्रियतोऽपि । तथाच पदार्थान्तरमेव मुख्यः प्राणः । नच पदार्थान्तरत्वे, 'यः प्राणः स वायुः', 'स एष वायुः पञ्चविधः' इति श्रुत्योर्विरोधः शङ्क्यः । तस्य भूतात्मकवायुव्यतिरिक्तभगवत्प्राणात्मकवायुपरत्वात् । नचात्र मानाभावः । बृहदारण्यक उद्गीथब्राह्मणे, अथ हेममासन्यं प्राणमूचुरित्यत्र नस्यप्राणादपि वैलक्षण्यश्रावणात् । नचाध्यात्मापत्त्या न वैलक्षण्यमिति वाच्यम् । तस्याः नस्यप्राणेऽपि सत्त्वात् । अतोऽपहतपाप्मत्वरूपाद् वैलक्षण्यात् तत्त्वान्तरमेव । वायुसमानाकारत्वं च तस्य मैत्रेयोपनिषदि द्वितीयप्रपाठके, 'सोऽमन्यतैतासां प्रबोधनायाभ्यन्तरं विविशामीति स वायुरिवात्मानं कृत्वाऽभ्यन्तरं प्राविशत् स एको नाशकत् स पञ्चधात्मानं विभज्य' इत्यादिप्रजापतिमुपक्रम्य पठ्यते । अतो न विरोध इत्यर्थः । अन्ये त्विदं सूत्रमग्रिमाधिकरणे योजयन्ति ॥ ९ ॥

इति चतुर्थं श्रेष्ठश्चेत्यधिकरणम् ॥ ४ ॥

रश्मिः ।

इति । समान्यकरणवृत्तिरित्यत्र वृत्तिः वृत्तिमत्करणं तयोरभेदेन वृत्तिमदिन्द्रियतः । पञ्चमाध्यायसुबोधिन्यनुसारेण द्वितीयस्कन्धस्य 'तैजसात्तु विकुर्वाणादिन्द्रियाणि दशाभवन्' इति समाधातुमुपक्रमन्ते न चेत्यादि । विरोध इति सूत्रभाष्येण विरोधः । तस्येति भाष्यस्य । अध्यात्मेति भावप्रधानः । सूत्रोक्तः श्रेष्ठः । भौतिकवायुसंबद्ध आध्यात्मिको भगवदिच्छया गुहां प्रविशति । 'स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः' इति वाक्यात् । न वैलक्षण्येति । 'यस्तु आध्यात्मिकः प्रोक्तः सोसावेवाधिदैविकः' इति वाक्यात्सूर्यचक्षुरभिमानिवत् । तस्या इत्यादि आध्यात्म्यापत्तेः । तस्य श्रेष्ठस्य प्राणे भगवति 'प्राणस्य प्राणः' इति श्रुतेः । तथा चाध्यात्म्यापत्तेर्वैलक्षण्यप्रतिबन्धकत्वे ईश्वरावैलक्षण्यापत्तिरिति भावः । अस्त्वेवमिति चेत्तत्राहुः अत इति । अपहतपाप्मत्वं प्राणस्य प्राणे प्रसिद्धम् । एवमाधिदैविकत्वादिभिर्वैलक्षण्यमिति भावः । एवेति उक्तयुक्तेः । प्रसिद्धेर्विरोधाद्वा । स इति प्रजापतिः । एतासामिति शक्तीनाम् । योजयन्तीति । तथाहि वायुतत्त्वान्तरत्वे प्राणस्य प्रतिषिद्धे 'वायुरेवायमध्यात्ममापन्नः पञ्चव्यूहो विशेषात्मनावतिष्ठमानः प्राणो नाम भण्यते' इति सुसिद्धेऽध्यात्मपञ्चत्वे स्यादेतत्प्राणोऽपि तर्हि जीववदस्मिन्शरीरे स्वातन्त्र्यं प्राप्नोति श्रेष्ठत्वादित्यादिप्रकारेण शंकराचार्याः । 'क्रियावति द्रव्येऽवस्थान्तरमापन्ने वायावेव प्राणशब्दप्रसिद्धेर्न वायुर्नापि क्रियामात्रं प्राणः । किमयं प्राणो वायोर्विकारः सन्नग्निवद्भूतान्तरं नेत्याहेत्येवं प्रकारेण रामानुजाचार्याः । माध्वास्तु न चेष्टा वायुक्रिये पृथगुपदेशादिति पठन्ति । 'चेष्टायां बाह्यवायौ च मुख्यप्राणे च गीयते प्राणशब्दः' । 'स प्राणमसृजत खं वायुर्ज्योतिरापस्तपोमन्त्रः कर्मे'ति पृथगुपदेशात् । 'भूतानि चेष्टा मन्त्राश्च मुख्यप्राणादिदं जगत्'इति स्वतन्त्रः प्राण इत्युक्त्वा चक्षुरादिवदिति सिद्धान्तयन्ति स्म ॥ ९ ॥

इति श्रेष्ठश्चेत्याधिकरणम् ॥ ४ ॥

चक्षुरादिवत्तु तत्सहशिष्ट्यादिभ्यः ॥ १० ॥ (२-४-५)

स प्राणः स्वतन्त्रः, परतन्त्रो वेति विचारे स्वतन्त्र इति तावत् प्राप्तम् । सुप्तेषु वागादिषु प्राण एको मृत्युनानाप्तः प्राणः संवर्गो वागादीन् संवृङ्क्ते प्राण इतरान् प्राणान् रक्षति मातेव पुत्रानिति ।

इमामाशङ्कां निराकरोति तुशब्दः । चक्षुरादिवदयमपि प्राणोऽस्वतन्त्रः । मुख्यतो भगवदधीनः । व्यवहारे जीवाधीनः । कुतः तत्सहशिष्ट्यादिभ्यः ।

भाष्यप्रकाशः ।

चक्षुरादिवत्तु तत्सहशिष्ट्यादिभ्यः ॥ १० ॥ अधिकरणान्तरत्वं बोधयितुं संशयादिकमाहुः **स प्राण** इत्यादि । **संवृङ्क्ते** इति संगृह्णाति संग्रसति च । **इमामिति** एतासु श्रुतिषु मृत्युना अनाप्तत्वस्य वागादिसंवर्गत्वस्य इतरप्राणरक्षकत्वस्य च श्रावणात् प्राणः स्वतन्त्र इत्येताम् । सिद्धान्तं व्याकुर्वन्ति **चक्षुरादिवदि**त्यादि । **मुख्यत** इति आसन्यत्वात् । **कुत** इति उक्तश्रुतिभिः स्वतन्त्रता तु सिद्धा, अस्वातन्त्र्यं कस्मात् प्रमाणादुच्यत इत्यर्थः । **इन्द्रियजयवदि**त्यादि । श्वेताश्वतरे,

> 'त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य ।
> ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ।
> प्राणान् प्रपीड्येह स युक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोः श्वसीत' इति ।

इन्द्रियाणां हृदि सन्निवेशनेन जयवत् प्राणान् प्रपीड्येति प्राणायामेन तज्जयस्यापि श्रुतावेव

रश्मिः ।

चक्षुरादिवत्तु तत्सहशिष्ट्यादिभ्यः ॥ १० ॥ चक्षुराद्यधिकरणं न तु न वायुक्रियाधिकरणम् । आसन्यस्य प्रसिद्धत्वात्तदुपयोगिविचारस्य न वायुक्रिये इतिसूत्रेणावश्यकत्वात् । तुशब्देन ततु समन्वयात्, इत्यधिकरणवच्चक्षुरादिवत्पदलभ्यपूर्वपक्षस्यास्मिन् सूत्रे वक्तुं शक्यत्वाच्चक्षुराद्यधिकरणान्तरत्वं बोधयितुमित्यर्थः । **स प्राण इत्यादी**ति । 'प्राणादिदं जगदाविरासीत्प्राणो धत्ते प्राणे लयमभ्युपैति न प्राणः किंचिदाश्रितः' इत्यग्निवेश्यश्रुतिर्बीजं प्रथमकोटौ, द्वितीयकोटौ तु 'प्राणस्यैतद्वशे सर्वं प्राणः परवशे स्थितः । न परः किंचिदाश्रित्य वर्तते परमो यतः' इति च पैङ्गिश्रुतिर्बीजम् । **अमृते**ति । सोऽर्दो । **अनाप्तो**ऽव्यापकः । यदाऽमृतेन मृत्युनाऽनाप्तोऽव्याप्तः । संवर्गपदव्युत्पत्तिरप्येतेन कृता भविष्यतीति वक्तुं प्रतीकमाहुः **संवृङ्क्ते इती**ति । तेन संवृङ्क्ते इति संवर्गः इति व्युत्पत्तिरपि बोधिता । **एतामि**ति समीपतरवर्तिनीमिमां प्रत्यक्षगामित्यर्थः । तेनेमामितिभाष्यस्य न विरोधः । भावप्रधान इत्याशयेन व्याकुर्वन्ति स्म **आसन्ये**ति । भाष्येऽव्ययं प्रयुक्तम् । **पुराण** इति । एकादशस्कन्धे जडत्वादय इति अप्राप्तं भाष्ये आदिशब्देन गृहीतम् । आदिनाऽप्राप्तं गृह्णन्ति स्म **आदी**ति । स एष जीव इति वाक्यात् । आदिना तान्वरिष्ठः प्राण उवाच 'मा मोहमापद्यथाहमेवैतत्पञ्चधात्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामि' 'प्राणेन रक्षन्नवरं कुलायम्'इति च । 'यस्मात्कस्माच्चाङ्गात्प्राण उत्क्रामति तदेव तच्छुष्यति' 'तेन यदश्नाति यत्पिबति तेनेतरान्प्राणानवति' इति च 'कस्मिन्वाहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति स प्राणमसृजत' इति च । स जीवः । रामानुजैस्तु प्राणशब्दपरिगृहीतेषु करणेषु अस्य विशेष्याभिधानमादिशब्देनोच्यते ।

चक्षुरादिवत् सह शासनात् । इन्द्रियजयवत् प्राणजयस्यापि दृष्टत्वात् । आदिशब्देन जडत्वादयः ॥ १० ॥

अकरणत्वाच्च न दोषस्तथाहि दर्शयति ॥ ११ ॥

ननु प्राणस्य जीवोपकरणत्वे तदुपकारकव्यापारवत्त्वमपेक्ष्यते ; तत्रै-कादशैव वृत्तयस्तन्त्रान्तरेऽपि सिद्धाः ।

'एकादशामी मनसोऽहि वृत्तय आकूतयः पञ्च धियोऽभिमानः ।
मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां वदन्ति चैकादश वीर भूमीः'

इति । तथा कश्चित् प्राणस्य व्यापारोस्तीति चेत् ।

भाष्यप्रकाशः ।

दृष्टत्वात् । 'जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः' इति पुराणेऽपि दृष्टत्वात् । जडत्वादय इति । आदिशब्देन जीवोपकरणत्वं प्राणसंवादादिषु सह शासनं सर्वैर्व्याख्यातं संगृह्यते । तथाच प्रश्नोपनिषदि प्राणोत्पत्त्युत्क्रमस्थितीनां ब्रह्माधीनत्वश्रावणादासन्यत्वेऽपि ब्रह्मतन्त्रः व्यवहारे पूर्वोक्तश्रुतिभ्यो वागादिनियामकत्वेप्येतेभ्यो हेतुभ्यो जीवतन्त्र इत्यर्थः ॥ १० ॥

अकरणत्वाच्च न दोषस्तथाहि दर्शयति ॥ ११ ॥ उपकरणत्वं प्राणस्य कथमि-त्याकाङ्क्षायां किंचिदाशङ्क्य परिहरंस्तत् समर्थयतीत्याशयेन व्याकुर्वन्ति नन्वित्यादि । तन्त्रा-न्तर इति योगशास्त्रे । श्लोकस्तु पञ्चमस्कन्धे जडभरतवाक्येषु, अर्थस्तु आकूतयो विसर्गा-

रश्मिः ।

अथ ह एवायं मुख्यः प्राणः सोऽयं मध्यमः प्राण इत्यादिषु विशेष्याभिधानादित्यभाणि । सर्वैरिति प्राणसंवादादिषु 'अथ ह प्राणा अहंश्रेयसि विवदमाना व्यूदिरे' इत्युपक्रम्य 'यस्मिन्नुत्क्रान्त इदं शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्यते स वः श्रेष्ठः' इति चोपन्यस्य प्रत्येकं वागाद्युत्क्रमणे तद्वृत्तिमात्रहीनं यथापूर्वं जीवनं दर्शयित्वा प्राणोच्चिक्रमिषायां वागादिशैथिल्यापत्तिं शरीरघातप्रसङ्गं दर्शयन्ती श्रुतिः प्राण-निमित्तां शरीरेन्द्रियस्थितिं दर्शयतीति शांकरैरेवं रामानुजैर्माध्वैरपीति । प्राणोत्पत्तीति 'आत्मतः प्राणो जायते' इत्युपक्रम्य 'तदेषः श्लोकः 'उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पञ्चधा (बाह्यं) । अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुते' इति श्रुतेः । एतेभ्य इति तत्सहशिष्टयादिभ्यो जीवतन्त्रः 'स एष जीवः' इत्यत्र सहार्थेऽप्रधाने इति तृतीयया ॥ १० ॥

अकरणत्वाच्च न दोषस्तथाहि दर्शयति ॥ ११ ॥ नन्वित्यादीति । जीव इवोप-करणत्वं जीवोपकरणत्वं तस्मिन् । उपकरणत्वं प्राणधारकत्वम्, प्राणधारणानुकूलव्यापारवत्त्वम्, तस्य प्राणधारणस्योपकारको व्यापारस्तद्वत्त्वम् । अपेक्ष्यत इति 'जीव प्राणधारणे' इति धातु-पाठादतिदेशेनापेक्ष्यते । योगेति कचिद्द्रष्टव्यम् । अथवा । 'सांख्ययोगौ पृथग् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः' इति वाक्यात्पातञ्जले योगशास्त्रे 'अथ योगानुशासनम्'इत्यारम्भके मुख्यप्राणैकादशे-न्द्रियाभावेपि कापिलसांख्यप्रवचनसूत्रवृत्तौ प्रधानकार्याध्याये 'दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकार-संज्ञा वैराग्यम्' इत्यारम्भकेस्ति । 'कर्मेन्द्रियैर्बुद्धीन्द्रियैरान्तरमेकादशकम्' इति सूत्रम् । भागवतवाक्यप्रयोजनमाहुः श्लोकस्त्विति तुः पूर्वपक्षव्यावर्तकः । अतोऽपि पदार्थसूचितार्थ-वाचकः श्लोक इत्यर्थः । विसर्गेति विसर्गश्चानन्दनश्चादानं चागमनं च वचनं च विसर्गानन्दाना-

नैष दोषः। कुतः, अकरणत्वात्। करणस्यैव हि व्यापारोऽपेक्षितः। अन्यस्य कार्यमात्रमपेक्षितम्। तत्राह तथाहि कार्यवत्त्वं युक्तं तच्छ्रुतिरेव दर्शयति। 'तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे' इत्यादिश्रुतिभिः। प्राणनिमित्तैव शरीरस्थितिरिति। तस्माद् व्यापाराभावेऽपि स्वरूपस्थितिमात्रेण तस्योपकारित्वम्॥ ११॥

पञ्चवृत्तेर्मनोवद् व्यपदिश्यते॥ १२॥

व्यापारव्यतिरेकेणोपकारित्वमसमञ्जसमितिचेत् तत्राह पञ्चवृत्तेः। 'अहमेवैतत् पञ्चधात्मानं विभज्यैतद् बाणमवष्टभ्य विधारयामि' इति। यथा

भाष्यप्रकाशः।

नन्दनादानगमनवचनाख्यकर्मजनका बाह्यप्रयत्नाः पञ्च, धियः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धज्ञानानि पञ्च। एता दश सद्वारकस्य मनसो वृत्तयः, अभिमानोऽहंममेति स्वीकारात्मकः साक्षान्मनसो वृत्तिः एवमेकादश मनसो वृत्तयः, द्वारभूतानामिन्द्रियाणां तु प्रतिनियता एकैकजातीयाः। मात्राणि शब्दादयो धियां भूमयो विषयाः। कर्माणि विसर्गादीनि आकूतीनां भूमयो विषयाः। पुरं शरीरं, तच्च स्वसंबन्धिनामप्युपलक्षकम्। तद् अहंममेत्यभिमानाख्यमनोवृत्तेर्विषयः। एवमेकादश तासां वृत्तीनां भूमीर्वीर वदन्तीति। तथाच यथैता जीवोपकरणभूतानां करणानां तत्तद्भोगरूपकार्यार्थं व्यापारा आकूत्यादयः सन्ति तथा प्राणस्य जीवभोगसाधकः कश्चिद् व्यापारो नास्तीति कथं तस्य जीवोपकरणत्वमित्यर्थः।

समाधिमत्राहुः नैष इत्यादि। एष इति व्यापाराभावः। तत्राहेति तादृशापेक्षाभेदे प्रमाणमाह तथा हीत्यादि। अकरणत्वे कार्यवत्त्वमात्रं युक्तं, न तु सव्यापारं, तच्छ्रुतिरेव दर्शयतीत्यर्थः। श्रुतिमाहुः तस्मिन्नित्यादि। प्रश्नोपनिषदि, 'तस्मिन्नुत्क्रामत्यथैते सर्व एवोत्क्रमन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रतिष्ठन्ते तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रमन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रतिष्ठन्ते' इति। उपकारित्वमिति। तथाचोपकारित्वादुपकरणमित्यर्थः॥ ११॥

पञ्चवृत्तेर्मनोवद् व्यपदिश्यते॥ १२॥ पुनः किंचिदाशङ्क्य परिहरतीत्याशयेन व्याकुर्वन्ति व्यापारेत्यादि। परिहारं विशदयन्ति यथेत्यादि। तथाच व्यपदेशप्रामाण्येन

रश्मिः।

दानगमनवचनानि। विसर्गानन्दनादानगमनवचनानि आख्या येषां कर्मणां तेषां जनकाः। एता इति। एता उक्ता दश। सद्वारेति। ननु कामसंकल्पादीनां श्रद्धाधृतिधीभीप्रायपाठेन सद्वारत्ववद्विचिकित्साऽश्रद्धाऽधृतिप्रायपाठेनासद्द्वारकस्यापि मनसो वृत्तयः सन्त्विति चेन्न। मुख्ये संप्रत्ययात्। तेन कामादयः सन्तोत्र। साक्षादिति एकधातुप्रयोगात्। प्रतीति विसर्गादयः शब्दादयश्च। जातयो विसर्गत्वादयः तादृशैकैकजातीयाः। जीवभोगेति जीवभोग इव साधकः जीवभोगसाधकः। तादृशेति व्यापारवत्त्वाव्यापारवत्त्वाभ्यामपेक्षाया भेदे। सव्यापारमिति करणम्। तस्मिन्निति आसन्ये प्राणे। उपकारित्वमुपकारः स चोपकरणमित्याहुर्भाष्यीयोपकारित्वसूत्रीयसूचितोपकरणपदसामानाधिकरण्याय। उपकारीति। तथा चोपकारित्वमालोच्य सूत्रे तत्समानाधिकरणमुपकरणं व्यञ्जनयोक्तमिति भावः॥ ११॥

पञ्चवृत्तेर्मनोवद् व्यपदिश्यते॥ १२॥ व्यापारेत्यादीति तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनको व्यापारः। व्यपदेशेति विशेषेणापदेशः कथनं व्यपदेशस्तस्य प्रामाण्येन।

मनसो द्वारभेदेनैवैकादशवृत्तयः स्वरूपत एव । एवमेव प्राणस्यापि पञ्चधात्मानं विभज्य कार्यकारणं व्यपदिश्यते ॥ १२ ॥

अणुश्च ॥ १३ ॥

अतिदेशेन प्राप्तमप्यणुत्वं 'पञ्चधात्मानं विभज्य' इति वचनात् संदिग्धं पुनर्विधीयते । आसन्योऽप्यणुः । चकारात् पूर्वोक्तसर्वसमुच्चयः ॥ १३ ॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्थपादे पञ्चमं चक्षुरादिवदधिकरणम् ॥ ५ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

यथा मनसि इन्द्रियद्वारा साक्षाच्च वृत्तिस्वीकारस्तथा प्राणेऽपि व्यपदेशप्रामाण्येन साक्षादेव वृत्तिस्वीकारः । अतः कार्यमात्रात् स्वरूपत एवोपकारादुपकरणत्वमित्यर्थः । एतेन यत् परैः 'प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः' इति योगसूत्रानुसारेण मनसः पञ्चवृत्तित्वमङ्गीकृत्य पञ्च-वृत्तिकत्वांशेऽपि मनोवदिति दृष्टान्त इत्युक्तम्, तदपि परास्तम् । उक्तवाक्य एकादशत्वस्य कण्ठोक्तत्वात् । योगोक्तवृत्तीनां तृतीयस्कन्धे, 'संशयोऽथ विपर्यासः' इत्यत्र बुद्धिवृत्तित्वस्वीका-राच्च । श्रुत्युक्ताः कामादयस्त्ववान्तरवृत्तित्वेनैकादशस्वेव प्रविशन्ति । योगसूत्रं तु निरोध्यत्वेन ताः वक्तीति, न त्वन्या निराचष्ट इति न कोऽपि दोषः ॥ १२ ॥

अणुश्च ॥ १३ ॥ पूर्वोक्तसर्वसमुच्चय इति । उत्क्रान्त्यादिवृत्त्यन्तधर्मसंग्रहः । तथाच

रश्मिः ।

साक्षादिति अहंकाररूपा **वृत्तिः । साक्षादेवेति** । व्यपदेशेऽहमेवेत्येवकारेणेन्द्रियरूपद्वारव्यवच्छेदकेन तथा । **यथेत्यादीति** । **द्वाराणीन्द्रियाणि** । **तद्भेदश्चक्षुष्ट्वादिनाभिमानत्वेन** च । **वृत्तयो** ज्ञानानि धीशब्दवाच्यानि । 'कामः संकल्पः' इति श्रुत्युक्ताः कामादयः धीविशेषा एव । 'मनोमात्रमिदं ज्ञात्वा' इति वाक्यात् । **एवकारस्तु** द्वारप्रकाराभावं व्यवच्छिनत्ति । स च 'स्वसृष्टमिदमापीय'इत्याद्युक्तः । **अत इत्यादि** । **कार्यं** वृत्तिरूपं **तन्मात्रात्** । मात्रप्रत्ययेनावधारणार्थकेनानुव्यवसायव्यवच्छेदः । स्वरूपतो वृत्तिस्वरूपतो न तु व्यापारतोपीत्येवकारो व्यापारव्यवच्छेदकः । अतः स्वरूपत एव कार्य-मात्रेणोपकारादुपकरणत्वमिति योजना । **योगेति** । समाधिपादेस्तीदम् । योगसांख्ययोरनुपष्टम्भकत्वस्यो-पपादितत्वादुपष्टम्भकमाहुः **उक्तेति** । ननु प्रमाणवृत्तेः कथमेकादशस्वन्तर्भाव इति चेन्मनोभेद-बुद्धिवृत्तित्वप्रकारेणेत्याहुः **योगोक्तेत्यादिना** । **तृतीयेति** षड्विंशे 'संशयोथ विपर्यासो निश्चयः स्मृतिरेव च । स्वाप इत्युच्यते बुद्धेर्लक्षणं वृत्तितः पृथक्' इति । एतेन विकल्पः संशयो निद्रा स्वाप इति योगसूत्रे व्याकृतम् । श्रुतिशास्त्रयोर्विरोधं परिहरन्ति स्म **श्रुत्युक्ता** इति । 'कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव'इति श्रुत्युक्ताः । **योगेति** । समाधि-पादस्थम् । **निरोध्यत्वेनेति** 'अथ योगानुशासनम्' इत्यधिकृत्य 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' इति निरोध उपक्रान्तः । समाप्तौ च 'तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधः' इति सूत्रेणोपसंहारान्निरोध्यत्वेनेत्यर्थः । **ता** इति पञ्चवृत्तीः । **अन्या** इति पञ्चभिन्नाः । **कोपीति** श्रुतिसूत्रविरोधरूपः ॥ १२ ॥

अणुश्च ॥ १३ ॥ भाष्ये । संदिग्धमिति । अणुपरिमाणस्य परमाणुनिष्ठस्य निरवयवत्वेन न पञ्चधा विभागः । द्व्यणुकनिष्ठस्य विभागार्हत्वात्संदेहः । **प्रकृते पूर्वोक्तेति** । अत्रातिदेशेन श्रेष्ठश्चेति सूत्रीयचकारेणातिदेशेन प्राप्तं सकलधर्मवत्त्वं विषयः अणोरेकधा द्विधा वात्मविभागो न पञ्चधा

भाष्यप्रकाशः ।

स्वसामर्थ्याद् वृत्तयो वृत्तिसामर्थ्यात् सर्वशरीरव्याप्तिः । बहिर्भूयस्त्वेन प्रत्ययस्तु त्रिवृत्करणोक्तरमद्भिः पोषणादुपपन्नः । तस्मादणुरेवासन्यः प्राण इति सिद्धम् । यत्पुनः प्राणमुपक्रम्य 'सम एभिस्त्रिभिर्लोकैः समोऽनेन सर्वेण' इति विभुत्वमुद्गीथब्राह्मणे श्रावितम् । यच्च 'प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्' इति सर्वाधारत्वं प्रश्नोपनिषदि श्रावितं 'सर्वं हीदं प्राणेनावृतम्' इति च श्रुत्यन्तरे तत्तु, उत्क्रान्त्यादिश्रुतिभिर्निश्चिते परिच्छिन्नत्वे सर्वस्य प्राणिजातस्य प्राणायत्तस्थितिकत्वेनोपपद्यते इति **रामानुजाचार्याः** । तेन व्यापककार्यकरणात् तत्सिद्धिनिबन्धना गौणी तत्र फलति ।

शंकराचार्यभास्कराचार्याभ्यां तु आधिदैविकेन समष्टिव्यष्टिरूपेण हैरण्यगर्भेण प्राणेन सूत्रात्मना तद्विभुत्वमिति न विरोध इत्युक्तम् । अस्माकमपीदमेव संमतं किंचिद्वैलक्षण्येनेत्यग्रिमाधिकरणे सेत्स्यति ।

भिक्षुस्तु अणुशब्देन तन्मात्रकार्यं स्थूलमहाभूताणुं वैशेषिकप्रतिपन्नत्र्यणुकस्थानीयं योगभाष्यानुसारेणाङ्गीकृत्य ततः स्थूलमहाभूतोत्पत्तिमङ्गीचकार । तदपि व्यासानभिप्रेतमेव । अत्र तत्प्रसङ्गादर्शनात् । यदि हि तानणूनभिप्रेयात् तदा पूर्वपाद एव विपर्ययसूत्रात् पूर्वमेव तानपि विचारयेत् । यदि च तत्र प्रामाणिकत्वमभिप्रेयात्, श्रुतेरिति वा स्मृतेरिति वा हेतुं च

रश्मिः ।

संभवत्यतो यथाकथंचिद्द्वितीया कोटिः । 'पञ्चधा प्रविभज्य' इति श्रुतिविरोधान्नाणुः । सूत्रं तु प्राणव्यतिरिक्तेन्द्रियपरमिति पूर्वपक्षे, आसन्योप्यणुरिति सिद्धान्तः । अत्राशङ्काग्रे निराकरिष्यते । **बहिर्भूय** इति भगवतो व्यापकत्वेन प्राणाद्बहिर्भूयस्त्वेन प्रत्ययः संभवति मुख्यत्वात् । जीववद्व्यतिरिक्तेपि पञ्चानामेतत्समानस्य व्यानरूपेण अमृतबिन्दूपनिषदि प्रसिद्धम् । **अन्यदप्याहुः त्रिवृदि**त्यादि । 'पुरुषं प्राप्य त्रिवृत् त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीहीति' इति छान्दोग्यश्रुतेः । **अद्भि**रिति । 'आपोमयः प्राणः' इति छान्दोग्यश्रुतेः । **उद्गीथे**ति छान्दोग्येस्ति । **व्यापके**ति सर्वेण समत्वरूपं **व्यापककार्यं तत्करणात्** । सर्वधारकत्वं च व्यापककार्यम् । सर्वावरकत्वं च व्यापककार्यम् । एवं च सिंहो माणवक इतिवद्विभुः प्राण इत्येवं विभुत्वगुणयोगाद्गौणी व्यापककार्यकरणविभुत्वगुणसिद्धिनिबन्धना । **तत्रे**ति **सम एभि**रित्यादिवाक्येषु । एभिः समः प्राण इत्यत्र प्राणे सर्वमित्यत्राधारेण समः प्राणः । **सर्वं ही**त्यत्र सर्वावरकेण समः प्राण इत्यत्र समपदप्रयोगो गौणोणुपदप्रयोगोऽणुश्चेत्यत्र मुख्यः । **इदमेवे**ति । गीतायाम् 'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव' इत्यस्यैकवाक्यता 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यनयेत्येवकारः । **अग्रिमे**ति समनन्तराधिकरणे । अत एव प्राण इत्यतिदेशाधिकरणेन विभुत्वमिति नोक्तम्, दुरूहे जिज्ञासोदयात् । **तन्मात्रे**ति द्व्यणुकमात्र**कार्यम्** । **स्थूले**ति । पीलुपाकवादिमतेन प्रसिद्धम् । द्व्यणुकपरमाण्वोरप्रत्यक्षादाहुः **वैशेषिके**ति । पीलुपाकवादिनां त्र्यणुकप्रत्यक्षादुक्तम् । अभिप्रेतत्वव्यावर्तक एवकारः । तत्र हेतुं तर्कौ चाहुः **अत्रेत्यादिना** । परमाणुभ्यः सृष्टिप्रसङ्गस्यादर्शनात् । तर्कावाहुः **यदी**ति । अन्यज्ञानं तर्कः । **तानि**ति समवायिनः परमाणून् । क्व प्रसङ्ग इति चेत्तत्राहुः **पूर्वपाद** इति । पूर्वप्रकरणादेवकारः । **पूर्व**मिति स्थूलमहाभूतकारणत्वेन । **तान्** लाघवप्राप्तेरेवकारः । सारवद्विश्वतो मुखात् सूत्रादुच्यत इति चेत्तत्राहुः **प्रामाणिक**मिति । सूत्रं प्रमाणं सौत्रमित्यर्थः । **अभिप्रेया**द्व्यासो भगवान् । **श्रुते**रिति ।

ज्योतिराद्यधिष्ठानं तु तदामननात् ॥ १४ ॥ (२-४-६)

वागादीनां देवताधिष्ठानवतां प्रवृत्तिः, स्वत एव वा, जीवाधिष्ठानब्रह्मप्रेरणयोर्विद्यमानत्वादिति संशयः । विशेषकार्याभावान्न देवताऽपेक्षेति पूर्वपक्षं निराकरोति तुशब्दः । वागादीनां ज्योतिरादि अग्न्यादिरधिष्ठानमवश्यमङ्गी-

भाष्यप्रकाशः ।

वदेत् । योगभाष्ये तदुक्तिस्तु तत्सूत्रानुसारिणीति न तेषां श्रौतत्वं स्वाभिप्रेतत्वं वा आपादयितुं शक्नोतीति वृथाडम्बर इति दिक् ॥ १३ ॥

इति पञ्चमं चक्षुरादिवदधिकरणम् ॥ ५ ॥

ज्योतिराद्यधिष्ठानं तु तदामननात् ॥ १४ ॥ संशयाद्युपन्यासमुखेन सूत्रप्रयोजनं बोधयन्ति वागादीनामित्यादि । नच जडानां स्वतः प्रवृत्त्यदर्शनाद् देवताधिष्ठानमर्थाक्षिप्तमिति संशय एव न घटत इत्यत आहुः जीवेत्यादि । अत्र जीवाधिष्ठानं द्वितीयकोटौ हेतुः । ब्रह्मप्रेरणं प्रथमकोटौ । अन्तर्यामिब्राह्मणे देवताधिष्ठितानामेव यमनस्योक्तत्वादिति । तुशब्दव्याख्यानमुखेन पूर्वपक्षमाहुः विशेषेत्यादि । अन्तर्यामिब्राह्मणोक्तस्य यमनस्याण्डसृष्टिरूपविशेषकार्यार्थतायाः 'यः पृथिव्यां तिष्ठन्' इत्यादिवाक्यसमभिव्याहारेणावगमादत्र च तदभावेन देवताप्रयोजनाभावात्, भोगमात्रकार्यस्य तु प्रतिनियततया जीवाधिष्ठानमात्रादेव सिद्धेर्न देवतापेक्षेति पूर्वपक्षमित्यर्थः । अधिष्ठानमिति नन्द्यादित्वात् कर्तरि ल्युः । नपुंसकं तु सामान्ये । तथाच शरीरेऽपि प्राणानां सर्वेषां स्वस्वकार्यार्थं ज्योतिरादिरधिष्ठाताऽवश्यमङ्गीकार्य

रश्मिः ।

वाकारद्वयं पूर्वतन्त्रानुसारि । **वदेदिति** सूत्रे, 'दुर्बुद्धेस्तु ततो द्वयम्' इति तदर्थम् । **तदुक्तिरिति** परमाणुसृष्ट्युक्तिः । **तत्सूत्रेति** सूत्रं तु 'नाणुनित्यता तत्कार्यश्रुतेः' इति । अन्यद्वा । **तेषामिति** कारणभूतानां परमाणूनाम् । **श्रौतत्वमिति** 'एतेन योगः प्रत्युक्तः' इति सूत्रेण श्रौतत्वं नेत्यर्थः । **स्वेति** मूलाधीनत्वात्तथा, योगभाष्यकृदभिप्रेतत्वं वा । 'प्रकृतेराद्योपादानतामन्येषां कार्यत्वश्रुतेः' इति सूत्रात् । **आडम्बर इति** प्रारम्भः । 'आडम्बरः समारम्भे घनगर्जिततूर्ययोः' इति विश्वः । **दिगिति** । नैयायिकानामेतच्छोभनमिति दिक्शब्दप्रयोगः ॥ १३ ॥

पञ्चमं चक्षुरादिवत्त्वित्यधिकरणम् ॥ ५ ॥

ज्योतिराद्यधिष्ठानं तु तदामननात् ॥ १४ ॥ **सूत्रेति** । अत्राधिकरणपदानुक्तेस्तात्पर्यमनुसंधेयम् । सूत्राधिकरणशब्दयोः पर्यायतारूपम् । **न चेत्यादि** न चेत्याहुरित्यन्वयः । निषेधं पुनराहुः, एवेति पूर्वपक्षव्यवच्छेदकः, संशयैककोटेः पूर्वपक्षत्वात् । **जीवेति** विसर्पिचैतन्यगुणो जीवशब्दवाच्यः । ननु देवताधिष्ठानवतां प्रवृत्तौ हेत्वभावादुभयं द्वितीयकोटौ हेतुरस्त्विति चेत्तत्राहुः **अन्तर्यामीति** । **देवतेति** । 'यो वाचि तिष्ठन् वाचोन्तरो यं वाङ् न वेद यस्य वाक् शरीरं यो वाचमन्तरो यमयति' इत्यनया । अन्यथार्थासंभवादेवकारः । न वेदेत्यस्याधिष्ठात्री न वेदेति विवरणाच्च । **अण्डेति** अन्यथा क्रीडारूपप्रयोजनाभावात्स्वनियमनं न घटेत । तथा चान्तर्यामिब्राह्मणं महतः स्रष्टुर्द्वितीयरूपपरमिति भावोऽद्योति । **अत्रेति** । अन्यथा पृथिव्यादीनां सिद्धवत्कारेणोद्देशो न स्यात् । **अधिष्ठानमितीति** भाष्येऽग्न्यादिरिति पुंस्त्वमधिष्ठानस्य पुंस्त्वान्नोपध इति सूत्रेण । नपुंसकत्वं त्वग्रे प्रतिवक्तव्यम् । **नन्द्न** इतिवन्नोपध इति सूत्रेण पुंस्त्वप्राप्त्यामनधिष्ठानत्वनिवृत्तिमात्रार्थः स्वादत्राधिष्ठानपदप्रयोगान्नपुंसकत्वं छान्दसमपि स्वीकुर्युरित्याहुः **नपुंसकमिति** । **अपीति** अपि-

कर्तव्यम् । कुतः, तदामननात् । तथाम्नायते 'अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत्' इत्यादि । अयमर्थः—

'योऽध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः ।
यस्तत्रोभयविच्छेदः स स्मृतो ह्याधिभौतिकः' ॥

भाष्यप्रकाशः ।

इत्यर्थः । तदामननादिति तस्य देवतारूपस्याधिष्ठातुः श्रुतौ कथनात् । 'अग्निर्वाग्भूत्वा' इति श्रुतिस्तु ऐतरेयोपनिषदि लोकानां लोकपालानां च सृष्टिमुपक्रम्याद्भ्यः पुरुषोद्धरणमुक्त्वा तत आलोचनान्तरेण तस्य मुखनिर्भेदं मुखाद्वाङ्निर्भेदं वाचोऽग्नेर्निर्भेदमुक्त्वा तथैव नासिकाक्षि-कर्णत्वग्हृदयनाभिशिश्नानां सेन्द्रियाणां सदेवानां निर्भेदं, ततस्तासां देवतानां प्रलयमहार्णवे पातम्, अशनापिपासाभ्यां तासामावरणं, ताभिः स्वान्नभोगार्थं स्थानप्रार्थनं, ततो भगवता तासां स्थित्यर्थं पुरुषशरीरानयनं चोक्त्वा ततो भगवता यथायतनं प्रविशतेत्युक्ते, 'अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद् वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्' इत्येवं तस्यास्तस्या देवतायास्तत्तदिन्द्रिय-रूपभवनेन तत्तद्गोलके प्रवेशं वक्ति, तस्मादित्यर्थः । ननु तासां देवतानां विराट्पुरुषशरीरीय-तत्तद्गोलके प्रवेशः स्वस्वान्नभोगार्थो, न तु कार्यार्थः । अथेन्द्रियरूपेण भवनात् कार्यार्थ-स्तदापि विराडिन्द्रियाणामेव कार्यार्थो न सर्वेषामतोऽनया श्रुत्या कथं सर्वत्र देवताधिष्ठान-सिद्धिरित्याकाङ्क्षायां तां व्युत्पादयन्ति अयमर्थ इत्यादि । अयमर्थ इति अयं वक्ष्यमाणः सौत्रतात्पर्यगोचरोऽर्थः । योऽध्यात्मिक इति द्वितीयस्कन्धीयः श्लोकः । पुराणं च वेदोपबृंहण-मतस्तदनुसारेणाव्याकुलत्वाय श्रुतिर्विचार्यते । अर्थस्तु आत्मनीत्यध्यात्मं तत्र भव आध्यात्मिकः । एवमन्यावपि । उभयोराध्यात्मिकाधिदैविकयोर्विच्छेदो द्वैधीभावो यस्मात् स उभयविच्छेदः । तथाच श्रुतौ मुखादिनिर्भेदोत्तरमेवेन्द्रियदेवतयोर्निर्भेदकथनादेतच्छ्लोकोक्तमाध्यात्मिकादिस्वरूप-

रश्मिः ।

पदार्थसंभावनायाम् । तेन विराट् वेदान्तार्थश्च । 'सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्' इत्यधिकरणे । 'इदमेव पुराणेषु विराट्त्वेनोपासनम्' इति भाष्यात् । अत एव वृत्तिकृच्छ्रीकृष्णचन्द्राः । 'अध्यात्मसंस्थितानां वागादीनां देवताधिष्ठानवतां प्रवृत्तिरुत स्वत एवेति संदेहे इदमधिकरणं प्रवर्तयांबभूवुः' इति । कथनादिति पुनः पुनः कथनात् । म्ना अभ्यास इति धातुपाठात् । पुनः पुनः कथनमभ्यास इति । वाच इति पञ्चम्यन्तम् । नासिकेति गोलकानाम् । सेन्द्रियाणामिति साध्यात्मिकानाम् । सदेवानामिति साधिदैविकानाम् । ताभिरिति देवताभिः । इत्येवमिति सूर्योऽक्ष्यभिमानी भूत्वाऽक्षिणी प्राविशदित्यादिप्रकारेण । उत्तरभाष्यसंगत्यर्थमाहुः अयमित्यादि । सौत्रेति । सौत्रं यत्तात्पर्यं तस्य गोचरः । द्वितीयेति । ननु द्वितीयस्कन्धवाक्यश्लोकेन कथं निर्णय इति चेन्न । 'भक्तेषु शास्त्रहृदयेषु निवेदयामि शास्त्रार्थतो यदि हरिर्भवतामभीष्टः । तत्पश्यतात्र विवृतिं भगवद्गुणानां संदेहवारणविचारणतः प्रसन्नाम्' इति सुबोधिनीसमाप्तिस्थवाक्याच्छास्त्रार्थसमर्पणे हरेरुपयोग्यमिति । अतस्तदनुसारेणेति वक्ष्यन्ति । श्रुतिरिति 'अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्' इत्यादिः । अव्ययीभावं कृत्वा तद्धितं व्याचक्षते स्म आत्मनीति । 'अव्ययं विभक्ति' इति सूत्रेण समासो विभक्त्यर्थ-काव्ययेन । 'तत्र भवः' इति तद्धितसूत्रम् । अध्यात्मं भव आध्यात्मिकः । एवेति पूर्वं व्यवच्छिनत्ति । आध्यात्मिकादीति आधिदैविकाध्यात्मिकयोर्देवतेन्द्रिययोर्धर्माः प्रवर्तकत्व-

इत्याध्यात्मिकादीनां स्वरूपं, वागादयश्चाणुरूपा नित्याः। तत्र यदि त्रैविध्यं न कल्प्येत तदैकस्मिन्नेव शरीरे उपक्षीणं शरीरान्तरे न भवेत्। कल्प्यमाने तु अग्निर्देवतारूपोऽनेकरूपभवनसमर्थो वाग्रूपो भूत्वा सर्वत्र प्रविष्ट इति संगच्छते। ते चाग्न्यादयश्चेतना भगवदंशास्तिरोहितानन्दाः सामर्थ्ययुक्ता इति कार्यवशादवगम्यन्ते।

भाष्यप्रकाशः।

माधिभौतिकोत्तरभाष्येवाभिप्रेतम् । नचाऽयं श्लोको जीवात्मपरमात्मानौ शरीरं चेति त्रयमभिप्रेत्य तत्रोक्त इति कथमत्रैतस्य योजनमिति शङ्कनीयम् । तत्र यथा जीवपरमात्मानावणू नित्यौ तथाऽत्र **वागादयोऽप्यणुरूपा नित्यास्तत्र यदि त्रैविध्यं न कल्प्येत तदैकस्मिन् शरीरे उपक्षीणं वागादिकं शरीरान्तरे न संबद्धं भवेत्**। कल्पमाने तु त्रैविध्ये **अग्निर्देवतारूपः** परमात्मवदनेकरूपभवनसमर्थो **वाग्रूपो भूत्वा** सर्वेषु शरीरेषु **प्रविष्ट इति संगच्छते**। अतोऽर्थापत्त्यात्रापि तद्योजनम् । जीवशरीरान्तरवर्तिविषयतया सामानाधिकरण्याच्च । नचाग्न्यादिषु तादृशसामर्थ्याभावादिकं शङ्कनीयम्। **ते चाग्न्यादयश्चेतनाः**, लोकपालकत्वालोचनेनोवुगमितत्वात् । **भगवदंशाः**, कारणत्वेन भगवत एवोपक्रान्तत्वात् । **तिरोहितानन्दाः**, अन्नभोजनप्रार्थनाकारित्वात् । **सामर्थ्ययुक्ताः**, वागादिरूपेण भवनादित्येवंप्रकारकाः प्रवेशरूपकार्यवशादवगम्यन्ते । नन्वेवं सदा देवतासाहित्यं चेद् 'एतस्माज्जायते' इत्यत्र

रश्मिः।

विषयग्रहणादय इत्येतेषामुभयेषां विच्छेदो देहे तत्तद्गोलक इत्याध्यात्मिकादिस्वरूपमित्यर्थः । आशङ्कामुखेन **वागादय** इत्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **न चेति**। **तत्रेति** द्वितीयस्कन्धे । **अत्रेति** आधिदैविकादिषु । **एतस्येति** श्लोकस्य । **उपेति** अणुत्वात्क्षीणमिव । उपमार्थे उपः । 'उप सामर्थ्यदाक्षिण्यदोषाख्यानात्ययेषु च । आश्चर्यकरणे दाने नाभावारम्भपूजयोः। तद्योगेपि च लिप्सायां रमणार्थोपमार्थयोः। उपादानेधिके प्रोक्तमासन्नेषु प्रकीर्तितम्' इति विश्वात् । तथा च क्षीणोपममित्यर्थः । क्षयकर्मीभूतं यदुपमानं तदुपमेयाभिन्नं वागादिकमित्यर्थः । उपेत्यस्योपमावाचकस्योपमायोग्ये लक्षणा। **कल्प्यमान** इत्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **कल्प्यमान** इति । **अर्थापत्त्येति** । प्रत्यक्षेण शब्देन वा प्रमितस्यार्थस्यार्थान्तरं विनानुपपद्यमानस्योपपत्तयेऽर्थान्तरकल्पना । सात्र सकलशरीरेषु प्रत्यक्षेण प्रमितस्यार्थस्याणुनित्यवागादिरूपस्यार्थान्तरं त्रैविध्यं विनानुपपद्यमानस्योपपत्तयेऽर्थान्तरस्य त्रैविध्यस्य कल्पनेति लक्षणसमन्वयः। अर्थापत्तिर्द्विविधा श्रुतार्थापत्तिर्दृष्टार्थापत्तिश्च तयोर्दृष्टार्थापत्तिरत्र । **कार्यवशादवगम्यन्ते** इति भाष्यात् । इन्द्रियकार्याणां प्रत्यक्षत्वात् । जीवन्देवदत्तो गृहे नास्तीतिवत् । यदा तु सकलशरीरेषु शब्देन प्रमितस्यार्थस्याणुनित्यवागादिरूपस्येत्यग्रे पूर्ववत् । 'पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते' इति दृष्टान्तः । अतोर्थापत्त्येति सामान्यवचनम् । **जीवेति** जीवश्च शरीरं चान्तर्वर्ती च जीवशरीरान्तर्वर्तिनस्तैः क्षराक्षरपुरुषोत्तमैर्विशेषेण सिनोति बध्नातीति विषयः श्लोकः । एरच् । तत्तया सामानाधिकरण्यमक्षरस्य जीवेन्द्रियरूपत्वादन्तर्वर्तिनः पुरुषोत्तमत्वाद्भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तत्वे सत्येकार्थबोधकत्वलक्षणं तस्माच्चेत्यर्थः । **ते चे**त्यादिभाष्यं शङ्कामुखेन विवृण्वन्ति स्म **न चेति**। **लोकेति** पूर्वमुक्तमैतरेयश्रुतौ। **तिरोहितो** विद्यत **आनन्दो** येषामित्यभिप्रायेणाहुः **अन्नेति**। आनन्दभुगिति श्रुतेः । निराकारत्वादिति नोक्तम् । साकारत्वात्कदाचित् । **प्रवेशेति** प्रवेशरूप-

---

१. अनुमितार्थापत्तिः ।

आध्यात्मिकाधिदैविकयोरेकत्वाद् वदनादिकार्यार्थमाध्यात्मिका एव निरूपिताः। उद्गमने, 'एतस्माज्जायते प्राण' इत्यादिषु वागादीनां नियमेन तत्तज्जीवसान्निध्यं, स्वतश्चानिर्गमनं मृत्युरूपश्रमेण तत्र लयः पुनरुद्गमनं समष्टिव्यष्टिभावश्च अन्यथा नोपपद्येत।

भाष्यप्रकाशः।

देवोद्गमः कुतो नोक्त इत्यत आहुः आध्यात्मिकेत्यादि। तथाच साक्षादनुक्तावपि भङ्ग्यन्तरेणोक्त एवेत्यर्थः। नन्वेवं दृष्टार्थापत्तौ वागादिष्वेव तादृशं सामर्थ्यं कल्प्यम्। आध्यात्मिकादिस्मृतिवाक्ययोजनेनाधिष्ठातृकल्पने किं मानमत आहुः **वागादीनामित्यादि**। अन्यथा यद्येवं न कल्प्येत तदा आर्तभागब्राह्मणोक्तं ग्रहातिग्रहभावेन प्राणवागादीनां जीवसान्निध्यं 'तमुत्क्रामन्तं प्राणोनूत्क्रामति' इत्यादिवाक्यावगतं स्वतोऽस्माज्जीवदेहादनिर्गमनं, व्रतमीमांसायां 'तानि मृत्युः श्रमो भूत्वोपयेमे' इत्यादिनोक्तमृत्युरूपश्रमेणावगम्यमानः शरीरे लयः पुनरुद्गमनं, भुज्युब्राह्मणे 'वायुरेव व्यष्टिर्वायुः समष्टिः' इत्यनेन बोधितो य आसन्यस्य समष्टिव्यष्टिभावश्चकारात् तत्र तत्रोक्तं चेतनतुल्यत्वम्, एतत् सर्वं नोपपद्येत। तथाच श्रुतार्थोप-

रश्मिः।

कार्यप्रत्यक्षश्रवणवशात्। ज्ञानानुकूलव्यापारार्थकस्यावगम्यत इत्यस्य भाष्ये प्रयोगात्। **भङ्गीति** भङ्गोऽस्यास्तीति भङ्गिपदं भग्नपरम्। अन्यद्भङ्गि भङ्ग्यन्तरं तेनेत्यर्थः। तथा चैतस्माज्जायत इति श्रुतौ तावत्सर्वेन्द्रियाणीति पदं भङ्गि भवति। यावदाद्याह सर्वाणि दशेन्द्रियाणि तावदैतरेय्याह सर्वाणीत्यस्य पदस्याधिदैविकादिपरत्वमभिमृश्य देवतासहितानीन्द्रियाणीति। पूर्वभग्नपदसहितं भङ्ग्यन्तरं यथा। **काव्यप्रकाशे** नवमउल्लासे 'नारीणामनुकूलमाचरसि चेज्जानासि कश्चेतनो, वामानां प्रियमादधाति हितकृन्नैवाबलानां भवान्। युक्तं किं हितकर्तनं ननु बलाभावप्रसिद्धात्मनः, सामर्थ्यं भवतः पुरन्दरमतच्छेदं विधातुं कुतः' इति। अत्र नारीणामित्याद्य आह। अपरस्तु न अरीणामित्येवं पदं भङ्क्त्वाह नारीणामित्यादि। आद्य आह। कश्चेतन इत्यादि। वामानां प्रतिकूलानाम्। अपि तु न कोपि प्रियमादधातीति। अपर आह। वामानां स्त्रीणामित्येवं वामपदस्य स्त्रीपरत्वमभिमृश्य हितकृदित्यादि। अपरस्तु हितकृत्पदे कृती छेदने धातुमुररीकृत्याह युक्तमित्यादि। पुनराद्यस्तु बलाभावपदे बला असुरास्तेषामभावरूप इन्द्रः स चासौ प्रसिद्धात्मा च तस्येत्येवं बलपदस्यासुरपरत्वमभिमृश्याह सामर्थ्यमित्यादि। प्रकृते नारीणामित्यादिजानासीत्यन्तः प्रथमः पदभङ्गो नास्त्यत उक्तम्। **भङ्ग्यन्तरेणेति**। एवेति अनुक्तं व्यवच्छिनत्ति। भाष्ये एवकारेणाधिदैविकव्यवच्छेदः। प्रत्यक्षमात्रप्रमाणवादी चार्वाकः प्रत्यक्षानुमानवादी वैशेषिको वा शङ्कते **नन्वेवमित्यादि**। **दृष्टार्थेति**। ननु यौक्तिकावेतौ कुतोणुप्राणदर्शनमङ्गीचक्रतुरिति चेन्न 'अनागतमतीतं च' इति वाक्याद्योगिप्रत्यक्षसंभवात्। दृष्टार्थापत्तावनुमितार्थापत्ताविति वा। **आध्यात्मिकेति** या आध्यात्मिक इत्यादिस्मृतीत्यर्थः। **समष्टीति**। नन्वल्पाच्तरं पूर्वं श्रुतिपाठक्रमश्च कुतस्त्यक्तो भाष्य इति चेन्न। लघ्वक्षरं पूर्वमित्यस्याल्पाच्तरं पूर्वमित्यतो बलीयस्त्वबोधनार्थत्वात्। श्रुतिस्त्वङ्गाधीना न समासे पाठक्रमं बोधयति स्म। **तत्र तत्रेति** सप्तगतिसूत्र उक्तम्। एवेति दृष्टार्थापत्तिव्यवच्छेदक एवकारः। अणुप्राणदर्शनस्य कलनासाध्यत्वात्।

---

१. कार्योऽनुमान।

आधिभौतिककृतश्चायं भेद इत्यग्रे व्यक्तीकरिष्यते । एवमेव ब्रह्मणोऽपि । 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य' इत्यपि निःसन्दिग्धं द्रष्टव्यम् यदज्ञानात् सर्वविप्लववादिव्यामोहः ॥ १४॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्थपादे षष्ठं ज्योतिराद्यधिष्ठानाधिकरणम् ॥ ६ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

त्तिरेव मानमित्यर्थः । समष्टिव्यष्टिपदयोरर्थस्तु, अशूङ् व्याप्तौ, सम्यग् एकेन रूपेण अनुगता अष्टिर्व्याप्तिर्यस्यासौ समष्टिः । विविधा नानारूपेण अष्टिर्व्याप्तिर्यस्यासौ व्यष्टिरिति । यद्यपि तत्र समष्टिव्यष्टिभावः प्राणस्यैवोक्तस्तथाप्यणुत्वादिसामान्यात् प्राणान्तरेऽपि तुल्य इति न कोपि संदेहः । एतस्य श्रौतस्य समष्टिव्यष्टिभावस्य पौराणिकाध्यात्मिकादिभावानुगृहीतत्वेनात्रोक्तं त्रैविध्यं सृष्टिदशायां सार्वत्रिकं सर्वत्रैवोपयुज्यत इत्येतन्निबन्धे सर्वनिर्णये 'आनन्त्येपि हि कार्याणाम्' इत्यादिकारिकाभिस्तद्व्याख्यया च प्रपञ्चितमिति ततोवगन्तव्यम् । एतस्य व्यासाशयगोचरत्वं स्फुटीकुर्वन्ति **आधिभौतिके**त्यादि । चोऽवधारणे । **भेदो** विभागः । **अग्रे** वैशेष्यसूत्रे **व्यक्तीकरिष्यते** । तत्र मनआदीनां तत्त्वान्तरत्वस्थापनात् तेषामेवैतरेयेऽन्वयः पुरुषसमुद्धारं प्रकृत्य तस्य मुखादिगोलकनिर्भेदोत्तरं मुखादिभ्यो वागादीन्द्रियाणामिन्द्रियेभ्योऽग्न्यादिदेवानां निर्भेदस्य तदुत्तरं देवानामन्नभोजनार्थं यथास्थानं तत्तद्गोलके प्रवेशस्य च श्रावितत्वात् तत्सारणेन स्फुटीकरिष्यत इत्यर्थः । अयमर्थः संज्ञामूर्त्तिसूत्रेऽप्यस्तीति बोधयितुं तद्विषयवाक्यमुपन्यस्यन्त एवमाध्यात्मिकाधिदैविकभावं ब्रह्मण्यप्यतिदिशन्ति **एवमेव ब्रह्मणोऽपी**ति । यथैतेषामाधिभौतिके प्रवेशोत्तरमाध्यात्मिकाधिदैविकत्वम्, एवमेव ब्रह्मणोऽपि तिसृषु देवतासु, 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य' इति प्रवेशकथनादत्रापि श्रुतौ निःसंदिग्धं द्रष्टव्यम् । 'तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत्'इति श्रुत्यन्तरे प्रवेशोत्तरमेव द्वैधीभावश्रावणात् । उक्तश्रीभागवतश्लोकस्याप्याश्रयरूपं परं ब्रह्मैव प्रकृत्य पठितत्वाच्च । यस्य भगवत्सामर्थ्यकृतस्याध्यात्मिकाधिदैविकभावस्याज्ञानात् सर्वविप्लवजनकमायावादरूपव्यामोहः । एवं ब्रह्मसामर्थ्ये-

रश्मिः ।

भाष्यं तु श्रुतार्थापत्तिपक्षेपि तुल्यम् । **पौराणिके**ति । आधिदैविकः समष्टिः आध्यात्मिकोऽपि, आधिभौतिको व्यष्टिरिति । **विभाग** इति । तथाच विश्वः 'भेदो द्वैधे विशेषे स्याद्' इति । **एवे**ति उक्तश्रुतेरेवकारः । **अनेने**त्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति **स्म तिसृष्वि**ति । छान्दोग्ये 'तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्याण्डजं जीवजमुद्भिज्जमिति । सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवणीति तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीति सेयं देवतेमास्तिस्रो देवता अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत्तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोद्यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवेत्तन्मे विजानीह हि' इतिश्रुतिः । अत्र सा अव्याकृता । तिस्रस्तेजोबन्नात्मिकाः । **अत्रापी**ति सूत्रेपि'अग्निर्वाग्भूत्वा'इति **श्रुतौ** । **एवे**ति प्रवेशपूर्वं व्यवच्छिनत्ति । उपष्टम्भो न तु स्वबुद्धिपरिकल्पित एषोर्थ इत्याहुः **उक्ते**ति । **ब्रह्मैवे**ति । जीवात्मपरमात्मनोः शरीरस्य चायं व्यवच्छेदकः । सर्वं माया, ब्रह्मवैवर्तं पुराणमिति वादस्तेन रूपं स्वरूपं यस्य व्यामोहस्य स सर्वविप्लवजनको भवति । स च यस्य ब्रह्मणो विशेषवर्तनलक्षणसामर्थ्याज्ञानादिति वदन्तो **यदज्ञानादि**त्यादिभाष्यार्थमाहुः **यस्ये**ति । **व्याख्येयमिदं** पदम् । **सर्वविप्लवे**ति भाष्यं मध्यमपदलोपिसमासेन व्याकुर्वन्ति **स्म सर्वविप्लवे**ति । भवतीति क्रियापदम् । तथा च तेषां भाष्यम् । श्रेष्ठश्रे-

प्राणवता शब्दात् ॥ १५ ॥ (२-४-७)

यदधिष्ठानमग्न्यादि तत् किं स्वत एव, अन्यसहितं वेति संदेहः । किं तावत् प्राप्तम् । स्वत एवेति । पूर्वोक्तन्यायेन तावतैव सिद्धेरनवस्थानाच्च देवतात्वव्याघातश्चेत्येवं प्राप्ते उच्यते । प्राणवता अधिष्ठितं वागादि । कुतः । शब्दात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

ऽवधारित उच्चनीचभावस्य जडचेतनभावस्य बन्धमोक्षव्यवस्थायाः शुद्धब्रह्माद्वैतस्य च सुखेन संभवादित्यर्थः ॥ १४ ॥

इति षष्ठं ज्योतिराद्यधिष्ठानाधिकरणम् ॥ ६ ॥

प्राणवता शब्दात् ॥ १५ ॥ अत्रापि पूर्ववत्सूत्रप्रयोजनं बोधयितुं संशयादिकमाहुः **यदित्यादि** । **स्वत एव, अन्यसहितं वेति** स्वत एव वागादीनधितिष्ठति, मुख्यप्राणेन सहितं वा सद् अधितिष्ठतीति संदेह इत्यर्थः । पूर्वपक्षे युक्तिमाहुः **पूर्वोक्तेत्यादि** । ज्योतिराद्यधिकरणेऽग्न्यादीनामेवाधिष्ठातृत्वसाधनात् तदधिष्ठानमात्रादेव वागादीनामिन्द्रियाणां व्यापारस्य सर्वजीवसान्निध्यादेः सिद्ध्या इतरसाहित्यप्रयोजनाभावात् तदङ्गीकरणे च तस्याप्यधिष्ठात्रन्तरापेक्षासंभावनेनाऽग्रेऽप्यपेक्षानुपरमेणाप्रामाणिकानवस्थानाच्च । किंचाधिष्ठेयत्वे तेषां देवतात्वव्याघातश्च । अधिष्ठातृत्वस्यैव देवतात्वादित्यर्थः । सिद्धान्तं विवृण्वन्ति **प्राणवतेत्यादि** । मुख्यप्राणसहितेनाग्न्यादिनाऽधिष्ठितं वागादीत्यर्थः । नन्वनेन शब्देन कथं प्राणसाहित्य-

रश्मिः ।

त्यादिसूत्रीयम् । मुख्यश्च प्राण इतरप्राणवद्ब्रह्मविकार इत्यतिदिशति । न चाविशेषेणैव सर्वप्राणानां ब्रह्मविकारत्वं व्याख्यातम् । 'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च' इति सेन्द्रियमनोव्यतिरेकेण प्राणस्योत्पत्तिश्रावणात् । 'स प्राणमसृजत' इत्यादिश्रवणेभ्यश्च । किमर्थं पुनरतिदेशः । अधिकशङ्कानिरासार्थः । 'नासदासीत्' इति ब्रह्मप्रधाने सूक्ते मन्त्रवर्णो भवति । 'न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः । आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास' इत्यादि । **बन्धमोक्षे**ति । 'बन्धाय विषयासक्तंमु क्तं निर्विषयं स्मृतम् । अतो निर्विषयस्यास्य मनसो मुक्तिरिष्यते' इति अमृतबिन्दूपनिषत् । 'अभिमान आत्मनो बन्धस्तन्निवृत्तिर्मोक्षः' इति हंसोपनिषत् । **सुखेने**ति 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इति श्रुतौ परिणामवादमाश्रित्य कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्षणेन घटो मृदितिवत्सुखेन । वेदस्तुतावपीदं **सुबोधिन्यां** स्पष्टमिति ॥ १४ ॥

इति षष्ठं ज्योतिराद्यधिष्ठानाधिकरणम् ॥ ६ ॥

प्राणवता शब्दात् ॥ १५ ॥ **सूत्रे**ति । पूर्वं सूत्रं यथा देवताधिष्ठितानामेव यमनं स्थापयति तथेदमपि प्राणवताधिष्ठितं वागादि न स्वत एवेति स्थापयतीति प्रयोजनं बोधयितुम् । पूर्वोक्तन्यायमेवकारान्तं स्पष्टमाहुः **ज्योतिरादी**ति । **एवे**ति अन्यसहितपक्षव्यवच्छेदक **एवकारः** । **तदधी**ति । भाष्ये **तावते**त्यव्ययं पञ्चम्यन्तमिति भावः । कोशेऽव्ययेषु पाठात् । चादिस्वराद्योराकृतिगणत्वात् । अधिष्ठात्री देवतेत्येतावत्या वेदपुराणप्रसिद्ध्या तदधिष्ठातृत्वमेव देवतात्वं तन्मात्रात् । **एवकारो**न्यसहितदेवताव्यवच्छेदकः । **इतरे**ति मुख्यप्राणेत्यर्थः । **किं चाधी**ति । देवतान्तराधिष्ठेयत्वं तेषामग्न्यादीनाम् । **एवे**ति प्रतिपाद्यव्यवच्छेदकः । घटः पट इत्यादौ व्यभिचारात् । **अनेने**ति सूत्रीयेण ।

'सोऽयमग्निः परेण मृत्युनाऽतिक्रान्तो दीप्यते' इत्यादि। अयमर्थः। 'द्वया ह प्राजापत्या' इत्यत्राधिष्ठातृत्वमग्नीनामुक्तम् । देवा इत्यविशेषेणेन्द्रियाधिष्ठात्र्योऽन्याश्च। तेषां प्रतिबन्धकाऽसुरातिक्रमेण स्वर्गलोके गमनेच्छा बभूव। तत्र 'यज्ञेनैव स्वर्गः' इति। तत्र 'जनको ह वैदेहः' इति ब्राह्मणे 'केनाक्रमेण यजमानः स्वर्गं लोकमाक्रमत इति' 'उद्गात्रर्त्विजा वायुना प्राणेन' इति उद्गात्रैवाक्रमणमिति सिद्धम्। तत्रान्योन्योद्गातृत्ववरणे तथोद्गाने 'यो वाचि भोगस्तं देवेभ्यः' इत्याम्नातम्। तदनुश्रमरूपपाप्मना वेधानन्तरमप्रतिरूपं वदतीति निरूपितम्। सोऽपि दोषो देवानां

भाष्यप्रकाशः।

सिद्धिरित्याकाङ्क्षायां तद्विवृण्वन्ति अयमर्थ इत्यादि। इदं वाक्यमुद्गीथब्राह्मणस्थम्। तत्र हि द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्चेत्युपक्रम्यासुराणां प्राबल्यं देवानां नैर्बल्यं तेषां एषु भूर्लोकेषु वसतां स्पर्द्धा चोक्ता। सा तु चेतनधर्म इत्युभयेऽपि चेतनाः। तत्र, के देवा इत्यपेक्षायां, ते ह वाचमूचुरित्यादिभिरग्रिमवाक्यैर्वागाद्यधिष्ठातार इति ज्ञायते। तेनात्राधिष्ठातृत्वमग्न्यादीनामुक्तम्। यद्यपि तत्र वाग्घ्राणचक्षुःश्रोत्रमनसामेव देवता उक्तास्तथापि अत्र देवा इत्यविशेषेण कथनादुपलक्षणविधया इन्द्रियाधिष्ठात्र्योऽन्या अपि बोध्याः, तेषां च देवानां प्रतिबन्धकासुरातिक्रमेण स्वर्गलोके गमनेच्छा बभूव। तत्रेच्छायां सत्यां, 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिश्रुतेर्यज्ञेनैव स्वर्ग इति विचार्य यज्ञं चक्रुरिति बोधनाय, 'ते ह देवा ऊचुः, हन्ताऽसुरान् यज्ञ उद्गीथेनात्ययाम' इत्युक्तम्। तत्र कथमुद्गीथेनैवातिक्रम इत्यपेक्षायां 'जनको ह वैदेह' इति वक्ष्यमाणे ब्राह्मणे 'यदिदमन्तरिक्षमनारम्बणमिवाथ केनाक्रमेण यजमानः स्वर्गं लोकमाक्रमेत' इत्याश्वलेन प्रश्ने कृते याज्ञवल्क्येन 'उद्गात्रर्त्विजा वायुना प्राणेन' इति कथनादुद्गात्रैवाक्रमणमिति सिद्धम्। तत्र प्रकृते अन्योन्यस्य वागादेरुद्गातृत्वेन वरणे तथोद्गाने, 'ते ह वाचमूचुः त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्यो वागुदगायद् यो वाचि भोगस्तं देवेभ्य आगायद् यत्कल्याणं वदति तदात्मने' इत्यनेन यथेदानीं ज्योतिष्टोम उद्गात्रा त्रिषु स्तोत्रेषु यजमानार्थमुद्गानं क्रियते, नवसु

रश्मिः।

प्राबल्यमिति 'कनीयसा एव देवा ज्यायसा असुराः' इति श्रुतेः। नैर्बल्यमिति समनन्तरोक्तश्रुतेः। स्पर्धेति 'त एषु लोकेषु अस्पर्धन्त' इति श्रुतेः। उभय इति उभयशब्दस्य द्विवचनं नास्तीति कैयटः। देवासुराः। देवा इतीति भाष्यं विवृण्वन्ति तत्र क इति। इति देवाः। ते इत्यादिभिरिति 'अथ ह प्राणमूचुः' 'अथ ह चक्षुरूचुः' इत्यादि। तेषामित्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म तेषां चेति। तत्र यज्ञेनेति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म तत्रेच्छायामिति। इच्छेति 'हन्तासुरान्यज्ञ उद्गीथेनात्ययाम' इति श्रुत्वा वक्ष्यन्तीच्छाकारम्। उद्गीथेनेति उद्गात्रा। अतीति अतिक्रम्य, अय गतौ वयमयामः, विसर्गलोपश्छान्दसः। तत्र जनक इति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म तत्र कथमित्यादि। अनारम्बणमिति अनालम्बनम्। लोद्रच्छान्दसः। आक्रमणेति करणे ल्युट्। आक्रमणसाधनेन। उद्गात्रैवेति एवकारो वाग्वृत्विजोर्व्यवच्छेदकः। उद्गात्रा ऋत्विजेति छेदः। तत्रान्योन्येति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म तत्र प्रकृत इति। यो वाचीति भाष्यं विवृण्वन्ति स्म ते हेत्यादिना। यो वाचीति। श्रुत्यर्थोऽग्रे वक्ष्यते। स्तोत्रेष्विति स्तोत्राणि पूर्वतन्त्रे प्रसिद्धानि। नवस्विति स्तोत्रेषु। द्विविधमुद्गानं

प्राप्नोति । तच्छ्रुतिविप्रतिषिद्धम् । 'न ह वै देवान् पापं गच्छति' इति । तदनु प्राण एवोद्गाता सिद्धः । तेनान्येषामपि पापसंबन्धो निवारितः । ततः 'परेण मृत्युमतिक्रान्तो दीप्यते' इति । अतो दीप्यमानस्यैवाधिष्ठातृत्वात् प्राणवतैवाधिष्ठानमिति सिद्धम् ॥ १५ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

स्वार्थं तद्वत् तत्रापि द्विविधमुद्गानम्, तत्र यो वाङ्निमित्तको भोगः सुखविशेषस्तं देवेभ्य आगायद् आसमन्ताद् गानेन प्रापयितुमारेभे । यत् पुनः कल्याणं समीचीनं शास्त्रानुसारि वदति तदात्मने स्वार्थमागानेन प्रापयितुमारेमे इत्याम्नातम् । तदा तेऽसुरा विदुरनेन वै न उद्गात्रात्येष्यन्तीति तमभिद्रुत्य पाप्मनाऽविध्यन् । तत् ते असुरा ज्ञात्वा तथा वेधं कृतवन्तस्तत्र स पाप्मा को वेत्याकाङ्क्षायां, 'स यः स पाप्मा' इति स वेधकरणभूतो योऽग्रे व्रतमीमांसायामुच्यमानः श्रमरूपः स एव पाप्मेति सामान्यत उक्त्वा तदनुश्रमरूपपाप्मना वेधानन्तरं तत्परिचायनाय यदेवेदमप्रतिरूपं वदति स एव पाप्मेति निरूपितम् । तथा च वेदाध्ययनभगवद्गुणगानादिष्वेव श्रमो न पुनर्लौकिकदुर्वार्तादिकथन इति तत्परिचायकं निरूपितम् । सोऽप्येवं परिचायितो द्वितीयो दोषोऽपि देवानां प्राप्नोति । क्रमेण सर्वेषामेवोद्गातृत्वात्, तद् दोषरूपं पापं श्रुतिविप्रतिषिद्धं, 'न ह वै देवान् पापं गच्छति' इति श्रुत्यन्तरे पापासंसर्गश्रावणात् । तदनु इन्द्रियाधिष्ठातॄणां पापसंसर्गोत्तरम्, 'अथ हेममासन्यं प्राणमूचुः' इत्यादिना मुख्यः **प्राण एवोद्गाता सिद्धः** । तं यदा पाप्मनाऽविध्यंस्तदा यथाश्मानं प्राप्य लोष्टो विध्वस्तो भवति तथा सर्वेऽप्यसुरा नष्टा इति तेन प्राणकृताऽसुरनाशनेनान्येषामपि पापसंबन्धो निवारित इति द्वितीयदोषनाशाच्छ्रुतिविप्रतिषेधोऽपि निरस्तः । ततः 'सा वा एषा देवता एतासां देवतानां पाप्मानं मृत्युमपहत्याथैनां सा यदा मृत्युमत्यवहवत्, स वै वाचमेव प्रथमामत्यवहत्, सा यदा मृत्युमत्यमुच्यत सोऽग्निरभवत्, सोऽयमग्निः **परेण मृत्युमतिक्रान्तो दीप्यत**' इत्यादिना मुख्यप्राणाश्रयवशाद्देवानां वागाद्यधिष्ठातॄणां मृत्युरूपश्रमात्मकपाप्मनिवृत्त्या प्रतिबन्धकासुरातिक्रमेण दीप्यमानत्वादिकमुक्तम् । अतः स्वस्वकार्यक्षमत्वेन **दीप्यमानस्यैवाधिष्ठातृत्वात्**

रश्मिः ।

स्पष्टयन्ति स्म **तत्र य** इति । **आरेभ** इति । तात्पर्यार्थमिदं गानमकरोदिति विवरणम् । **तदन्विति** भाष्यं विवरितुमाहुः **तदा न** इति । **न** इति अस्मान् । विवृण्वन्ति स्म **तदन्विति** । **तत्परीति** श्रमपरिचायनाय । **वेदेति** आदिना यागादि । **श्रम** इति पाप्मा । **लौकिकेति** श्रम इत्यन्वयः । तेन श्रेयःप्रतिबन्धकाभावान्नासुरकृतस्तद्वेध इत्यर्थः । **सोपीत्यादि** भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **सोपीति** । **द्वितीय** इति । स्पर्धा प्रथमः । **सर्वेषामिति** वाग्घ्राणचक्षुःश्रोत्रमनसाम् । **तदित्यादि**भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तत्तदिति** । **तदन्वित्यादि** भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तदन्विति** । **अथेत्यादि** असुरजयार्थम् । **अविध्यन्निति** । अन्तर्भावितसनर्थोयं शब्दः । अविध्यत्सन्नित्यर्थः । **लोष्टेति** । लुषस्तेये भ्वादिः परस्मैपदी अनिट्ट तृच् । **सा वा** इति प्राणरूपा । **देवतेति** । प्रकृतिभावश्छान्दसः । **एतासां** वागादिनां देवतानाम् । **मृत्युम्** श्रमम् । **एना** देवताः । सुपांसुः डा वा । **अमृत्युं** अश्रममत्यन्तविस्मृत्यभावम् । **स्वरूपमत्यवहत्** प्रापितवती । **सेति** वाक् । **परेणेति** मुख्यप्राणेन । **इत्यादिनेति** 'अथ प्राणमत्यवहत् । स यदा मृत्युमत्यमुच्यत स वायुरभवत्सोयं वायुः परेण मृत्युमतिक्रान्तः पवते' एवं चक्षुःश्रोत्रमनसां मृत्यवतिक्रमः । **दीप्येति** । **आदिनाथप्राणमत्यवहदित्याद्युक्त-**

तस्य च नित्यत्वात् ॥ १६ ॥

अभ्यादेः प्राणसंबन्धो नित्य इति सर्वदाधिष्ठातृत्वम् । प्राणस्य तत्संबन्धस्य चेति चकारार्थः । प्राणसहायेनैव यथोचितवर्णोद्गम इति ।

भाष्यप्रकाशः ।

प्राणवतैवाभ्यादिना वागाद्यधिष्ठानं न केवलेनेति सिद्धम् । तथाचाधिष्ठातॄणामेव पापाभावो, न त्वधिष्ठेयानामस्मदादीन्द्रियाणामपीत्यतो, न किंचिच्चोद्यमित्यर्थः । इयं श्रुतिः परैरन्यथा व्याख्यायते, तत्कल्पनाबाहुल्यादसंगतं व्याख्यानमिति बोध्यम् ॥ १५ ॥

तस्य च नित्यत्वात् ॥ १६ ॥ सर्वदा प्राणसंबन्धे हेतुं वदतीत्याशयं स्फुटीकुर्वन्ति **अभ्यादेरित्यादि** । प्राणस्य नित्यत्वं, 'श्रेष्ठश्च'इत्यधिकरणे निर्णीतम् । संबन्धनित्यत्वं तु छान्दोग्ये प्राणानामहंश्रेयसि विवादेऽन्येषां प्राणानां मुख्यप्राणं विना स्थातुमशक्त्या निर्णीयते । तस्माद्-भ्यादेरासन्यस्य तत्संबन्धस्य च नित्यत्वात् प्रतिकल्पमनयैव रीत्याऽधिष्ठातृत्वमित्यर्थः । इदानी-मपि प्रतिशरीरं प्राणसहायेनैव कार्यक्षमत्वमित्यत्र गमकमाहुः प्राणेत्यादि । एवमिन्द्रिया-न्तरेऽपि समानन्यायाद् बोध्यम् । नन्वत्र प्राणावच्छब्देन प्राणी जीवो व्याख्यायते । उचितं

रश्मिः ।

पवनतपनभानानि । एवेति एवकारो वाचं व्यवच्छिनत्ति । **केवलेनेति** अभ्यादिना । **किंचिदिति** अस्मदाद्यप्रतिरूपवदनादौ चोद्यमित्यर्थः । ननु तस्यां श्रुतौ यदि परेणेति सहार्थे तृतीया स्यात्तदेवं युज्यन्तु प्राणवतेति सूत्रं, श्रुतिस्त्वन्यथा व्याख्यातेति चेत्तत्राहुः इयमित्यादि, भाष्ये शब्दरूपा प्रत्यक्षा । **परैरिति** । उपनिषद्भाष्यकारैरन्यथा परेण मृत्युं मृत्योः परस्ताद्दीप्यत इत्येवम् । **कल्पनेति** द्वितीयान्तमृत्युपदस्य पञ्चम्यन्तत्वकल्पना तृतीयान्तस्य परपदस्य प्रथमान्तत्वकल्पना । पर इति परस्तात् । स्वार्थेऽस्तातिप्रत्ययः ॥ १५ ॥

तस्य च नित्यत्वात् ॥ १६ ॥ **छान्दोग्य** इति । 'ॐ यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद' इत्यारभ्य 'अथ ह प्राणा अह१९श्रेयसि व्यूदिरेऽह१९श्रेयानस्म्यह१९श्रेयानस्मि इति । ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन्को नु श्रेष्ठ इति तान् होवाच यस्मिन्नुत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्यते स वः श्रेष्ठः' । तदनन्तरं वागाद्युत्क्रमणेऽपि पापिष्ठतरत्वे 'अथ ह प्राण उच्चिक्रमिषन् स यथा सुहयः पड्वीशशङ्कून्संखिदेदेवमितरान्प्राणान् समखिदत्' इत्यादिना तथा निर्णीयत इत्यर्थः । पदनशीलाः पादाः पदवः तेषां संहतिः पड्वी । छान्दसत्वादकारस्य उकारे ह्रस्वत्वे बिन्दौ च जाते पड्वीशा इति जातम् । पड्व्या ईशा नियामकाश्च ते शङ्कवः पादबन्धनकीलकास्तान् । **अनयेति** पूर्वसूत्रोक्तरीत्या । **इन्द्रियेति** इन्द्रियं वर्णोद्गमो वाक् ततोन्यदिन्द्रियं चक्षुरादीन्द्रियान्तरं तस्मिन् । **व्याख्यायत** इति शंकराचार्यादिभिर्व्याख्यायते । तथाहि । सतीष्वपि प्राणाधिष्ठात्रीषु देवतासु प्राणवता कार्य-करणसंघातस्वामिताशारीरेणैवैषां प्राणानां संबन्धे 'अथ यत्रैतदाकाशमनुविषण्णं चक्षुः स चाक्षुषः पुरुषो दर्शनाय चक्षुरथ यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा गन्धाय घ्राणम्' इत्येवं सजातीयकायाः श्रुतेरित्यर्थः पूर्वसूत्रस्य । द्वितीयस्य तावत्, तस्य शारीरस्यास्मिञ्शरीरे भोक्तृत्वेन नित्यत्वं पुण्यपापलेप-संभवान्न देवतानामित्यर्थ उच्यते ।

भास्कराचार्यैरप्येवम् द्वितीयस्यार्थस्तु तस्य करणजातस्य शारीरं प्रति नियतत्वात्तमु-त्क्रामन्तमिति श्रुतेरिति ।

लोके स्वामिभृत्यन्यायेन जीवे भोगः फलिष्यति ॥ १६ ॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्थपादे सप्तमं प्राणवतेत्यधिकरणम् ॥ ७ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

च तत् । जीवभोगप्रकारबोधनार्थमेव तत्परिकरविचारस्य प्रकृतत्वात् । अत्र च तस्याधिष्ठातृत्वे अव्याख्याते तस्य भोगासिद्धौ विचारवैयर्थ्यापात इत्याशङ्कायामाहुः लोक इत्यादि । श्रुत्यन्तरे, 'स यथा महाराजो जानपदान् गृहीत्वा' इति दृष्टान्तेन मुख्यप्राणांशभूतासत्प्राणानामपि जीवपरिकरत्वेन स्वामिभृत्यन्यायसिद्धेस्तेन न्यायेन जीवे भोगो मुख्यामात्यरूपप्राणाधिष्ठानादपि फलिष्यतीति न विचारवैयर्थ्यम् । तथा च करणत्वांश एव तस्य तासां चाधिष्ठातृत्वं, भोक्तृत्वेन तु जीवस्यैवाधिष्ठातृत्वमित्यर्थः ॥ १६ ॥ इति सप्तमं प्राणवतेत्यधिकरणम् ॥७॥

अथात्र प्रसङ्गाज्ज्ञानप्रक्रियां वदामः । तत्र गीतायाम् 'अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् । विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् । शरीरवाङ्मनोभिर्यत् कर्म प्रारभते नरः । न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तत्र हेतवः' इति भगवता जीवक्रियमाणकार्यं प्रति पञ्चहेतव उक्ताः । तत्राधिष्ठानं शरीरम् । कर्ता जीवः, करणं बाह्यमान्तरं च नानाविधं, चेष्टाः

रश्मिः ।

रामानुजाचार्यैस्तु ज्योतिरादिसूत्रमेतच्च सूत्रमेकमङ्गीकृत्य ज्योतिरादीनां प्राणवता जीवेन च प्राणविषयमधिष्ठानं परमात्मन आमननात्संकल्पात् कुत एतदन्तमिति ब्राह्मणरूपाच्छब्दादित्यर्थः ।

माध्वैस्तु जीवानां करणान्याहुः प्राणानिति । 'ब्रह्मणो वा एतानि करणानि चक्षुः श्रोत्रं मनो वागिति' इति श्रुत्योर्द्वितीयस्या गतिः प्राणवदादिसूत्रद्वयेनेति । **प्रकृतेति** । ज्योतिराद्यधिकरणे स्वतन्त्रा देवतन्त्रा वा वागाद्याः स्वतन्त्रता 'नो चेद्वागादिजो भोगो देवानां स्यान्न चात्मनाम् । श्रुतमग्न्यादितन्त्रत्वं भोगोऽग्न्यादेस्तु नोचितः । देवदेहेषु सिद्धत्वाज्जीवो भुङ्क्ते स्वकर्मणा'इत्यधिकरणमालायां श्रुतमित्यादौ राद्धान्तः परमभोगस्य सिद्धत्वात् । **तस्येति** जीवस्य । **मुख्येति** जीव प्राणधारण इति धातुपाठात् । ननु साक्षात्कुतो नेति चेन्न । 'नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्'इत्यादिजिज्ञासाधिकरणोक्तगीतावाक्येभ्यः । 'अपश्यत्पुरुषं पूर्णं मायां च तदपाश्रयाम् । यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् । परोपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते' इति च । **एवेति** सूत्रे तृतीययैवकारः । **तस्येति** श्रेष्ठवतो जीवस्य । **तासामिति** इन्द्रियाधिष्ठात्रीणां देवतानाम् । **एवेति** प्राणव्यवच्छेदकः । तथा च श्रुतिः 'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः' इति । अत्रात्मोक्तः प्राणसहितो नोक्तः । न तु प्राणप्रयोजनमस्ति । 'ज्ञोत एव' इति सूत्रात् । तथाच गीता 'श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च । अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते' इति ।

इति सप्तमं प्राणवतेत्यधिकरणम् ॥ ७ ॥

नित्यज्ञाननिरूपणेनेन्द्रियतदधिष्ठातृनिरूपणेन च स्मृतं जन्यज्ञानं निरूपयितुमुपक्रमन्ते स्म **अथात्रेति** । **ज्ञानेति** वेदान्तपरिभाषादौ दर्शनात्स्वराद्धान्तीयाम् । उक्तश्रुत्यर्थं सोपबृंहणं वक्तव्यमित्याशयवन्त आहुः **तत्र गीतायामिति** । **अधिष्ठानं** विषयविधया कारणम् । घटवद्भूतलमित्यादिस्थले । अधिष्ठानकारणं हेतुरित्यन्ये । यद्यपि तथाप्यभिव्यक्तिस्थानं शरीरमिति मुख्यतया व्याकरिष्यते । **कर्ता करणं च** 'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः' इत्युक्तश्रुतेः । आत्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेण इन्द्रियमर्थेन ततः प्रत्यक्षमिति नैयायिकाः । मानसप्रत्यक्षसंग्रहाय श्रुतौ नोक्तम् । **पृथग्विधं** चक्षुरादिना । **चेष्टा** व्यापारः तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनको

भाष्यप्रकाशः ।

प्राणादिवायुकर्माणि, शारीराणि च, दैवं कालकर्मभगवदिच्छा, अन्तर्यामी, मुख्यप्राणसहाया इन्द्रियाधिष्ठातारश्च । एवं सति ज्ञानजनकमनःसंयोगादिहेतुभूतक्रियायामप्येतान्येव यथासंभवं कारणानि । तत्रायं क्रमः । पूर्वं भगवदिच्छया ईश्वरांशेनान्तर्यामिणा कालकर्मसाचिव्यादन्तःकरणं प्रेर्यते । तच्चतुर्विधम् । तत्राहंकारदेवता रुद्रः, तस्य च 'हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम' इति वाक्यादेकादशस्थानानीति रुद्राधिष्ठितोऽहंकारो दैहिकेषु तेष्वभिमतिं जनयति । बुद्धिदेवता ब्रह्मा, तेनाधिष्ठिता बुद्धिर्ज्ञानेन्द्रियाण्यनुगृह्णाति । चित्तं तु सुषुप्तौ अभेदेनात्मानं गृह्णात्यन्यदा तु लीनम् । मनस्तु चन्द्राधिष्ठितं तच्चोभयविधेन्द्रियनायकं तत्तदिन्द्रियप्रेरणाय तेन तेन तत्तद्देवताधिष्ठितेनेन्द्रियेण संसृज्यते । तदा तानि स्वस्वकार्यं कुर्वन्तीति साधारणी प्रक्रिया । ज्ञानेन्द्रियाणि तु मनःप्रेरितानि स्वस्वविषयैः संसृज्य स्वसंसृष्टे मनसि पूर्वं निर्विकल्पकमुत्पादयन्ति । तदा इन्द्रियदेशे मनसो वृत्तिर्भवति । सा यदा बुद्ध्या वृत्तिद्वाराऽनुगृह्यते तदा सविकल्पकं भवति तच्च प्रमेयानन्त्यादनन्तविधम् । तत्रापि कारणान्तरसमवधाने संशयविपर्यासप्रमाणस्मृतिभेदा जाग्रति भवन्ति यथासंभवं स्वप्नेऽपि । सविकल्पकजन्यहानोपादानबुद्धौ तु विशेषः ।

'इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः ।
चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्बस्तोयमिव ह्रदात्' ॥

रश्मिः ।

व्यापारोऽत्र । **दैवं** अदृष्टम् । एवकारोऽन्यव्यवच्छेदकः । **शारीरे**ति । कायवाङ्मनसां साधनत्वं कायिकवाचिकमानसिकसाधनानीति । कर्म, ज्ञानोपलक्षकम् । **कर्मे**ति । स्वभावोऽपि द्रष्टव्यः । **भगवदिच्छे**ति । इच्छावादात् । अन्तर्यामी अण्डसंस्थितः । त्रिषु द्वितीयं रूपम् । **मुख्ये**त्याद्युक्तं प्रथमे महत्स्रष्टरीदमित्थतयाऽज्ञातं, द्वितीये रूपे ज्ञातं, तृतीये सर्वभूतस्थे व्यष्टयः । **एव**मिति सोपष्टम्भकश्रुत्युक्तत्वे सति । **ज्ञाने**ति । एवं च श्रुत्वा आत्मा मनसा युक्तः, मन इन्द्रियेण युक्तं, संयोगसमवायादिसंबन्धेन भोक्तेत्यर्थ इति बोधितम् । **आदि**शब्देन संयुक्तसमवायादिर्ज्ञानेन्द्रियेण कर्मेन्द्रियेण समवायसमवेतसमवायादिः । **ईश्वरे**ति पुरुषरूपद्वितीयरूपेण । **काले**ति । तेन ज्ञानप्रक्रियाज्ञानसृष्टिरिति सूचितम्, सृष्टौ कालकर्मस्वभावानां कारणत्वात् । **प्रेर्यत** इति । सूर्योदये सति रश्मिद्वारा प्राणप्रवेशे सर्वप्रवृत्तिदर्शनात् । तेनान्तर्यामी मार्तण्ड उक्तः । **तत्राह**मिति । तृतीयस्कन्धे स्पष्टः । **तेष्वि**ति हृदादिषु । **अभी**ति । सर्वोपनिषच्छ्रुतेः । **अन्वि**ति । तृतीयस्कन्धे षड्विंशे । **अभेदे**नेति । सुषुप्तिश्रुतेः । **लीन**मिति कार्याभावेऽणोरभिव्यक्त्यभावाल्लीनम् । **मनसी**ति 'कामः संकल्पः' इत्यादिश्रुतेर्मनसि न त्वात्मनीत्यर्थः । **निर्विकल्पकम्** निष्प्रकारकं ज्ञानम् । **इन्द्रिये**ति गोलके । **वृत्ति**र्ज्ञानरूपा विषयाकारा । **से**ति वृत्तिः । **बुद्ध्ये**ति कर्त्र्या । **वृत्तिद्वारे**ति वृत्तिः स्वयमेव द्वारं यस्याः सा । द्वारान्तरनिवर्तनार्थम् । **सविकल्पक**मिति । अयमर्थः । इन्द्रिययुक्तेनार्थेन घटघटत्वे इति निर्विकल्पकं बुद्धिमन्तरापि । बुद्ध्या तु समवायं निश्चित्य घटत्वविशिष्टो घट इति सविकल्पकं ज्ञानं जन्यत इति । **प्रमेये**ति घटपटकुड्यकुसूलादिप्रमेयम् । **कारणे**ति सत्त्वादिगुणाः कारणानि । प्रमाणं निश्चयः । भावे ल्युट् । प्रमेत्यर्थः । **अपी**ति । सुषुप्तौ तु सुखमहमस्वाप्सं न किंचिदवेदिषमिति प्रत्ययान्न ज्ञानम् । **सविकल्पके**ति सविकल्पकज्ञानेन जन्यायां हानोपादानबुद्धावित्यर्थः । इदमसंगतमतोत्र सविकल्पकज्ञानोत्तरभाविन्यामित्यर्थः । अतः सविकल्पकज्ञानजनकबुद्धौ सविकल्पकज्ञानजन्यत्वमुक्तलक्षणम् । तदभिव्यक्तिस्तु सविकल्पकज्ञानानन्तरम् ।

भाष्यप्रकाशः।

इति चतुर्थस्कन्धे द्वाविंशे वाक्याद्विषयैरिन्द्रियाकर्षस्ततस्तैर्मनसस्तच्च कामादिहतमिति तत्र कामोत्पत्तावुपादानबुद्धिः। तादृशे मनसि द्वेषोत्पत्तौ तु हानबुद्धिः। नचात्र ध्यायतामिति पदात् स्मृतानामेव विषयाणामिन्द्रियाकर्षकत्वं न प्रत्यक्षाणामिति वाच्यम्। कामिनीकुचकुम्भदर्शनादौ चक्षुषः, शीतादिकालेषूष्णादिना त्वचो, रागादियुक्तगीतेन श्रवणस्य, चन्दनादिगन्धेन घ्राणस्य, भक्षितस्यापि दध्यादेः पुनरास्वादनेन रसनस्य, तैश्च मनस आकर्षस्यानुभवसिद्धत्वात्। तेषामेव विषयाणां किंचित्प्रत्यक्षान्तराये तेषामेव स्मृतत्वस्य संभवाच्च। मनसश्च रूपद्वयं बाह्यमान्तरं चेति तृतीयस्कन्धे तत्त्वस्तुतौ, 'पराहृतान्तर्मनसः' इत्यसु स्वबोधिन्यां स्थितम्। तत्रान्तरं येन विषयेणेन्द्रियद्वाराऽऽकृष्यते तद्विषयिणी हानोपादानबुद्धिर्भवति, येन तु नाकृष्यते तद्विषयिण्युपेक्षाबुद्धिरिति युगपन्नानाबुद्धिसत्त्वम्। न च तत्र वेगाद्यौगपद्याभिमान एवेति वाच्यम्। ऐकाग्र्यदशायां पुस्तकदर्शने युगपन्नानाऽक्षरापेक्षाज्ञानस्थले वेगाङ्गीकारस्यानुभवविरुद्धत्वात्। अतो रूपद्वयमेव युक्तमिति। यदा मनसोऽनाकर्षस्तदोपेक्षाबुद्धिः। अत एव तस्या न स्थिरत्वम्। अभ्यासाद्यभावात्। अन्यासां तु स्थिरत्वमिति। बुद्ध्याऽननुग्रहे तु निर्विकल्पकमेव। इन्द्रियाणि तु प्राप्यप्रकाशकारीणि। तत्र चक्षुरिन्द्रियं स्वकिरणैर्वा, स्वाधिष्ठात्रादित्यसामर्थ्याद्वा, स्वगुणेन रूपेण वा, स्पर्शेन वा विषयदेशं प्राप्नोति। तथैव तदारूढं मनोऽपि। तदा विषयदेशावच्छेदेन घटो भूमौ, व्योम्नि तारा इत्यादिज्ञानमुत्पद्यते। तत्र किरणपक्षे नयनकिरणा विषयपर्यन्तं गच्छन्ति। इन्द्रियान्तरे तु किरणाभावादिन्द्रियेण सह विषयं मनः प्राप्नोति। तदा क्रमेण सहैव वा निर्विकल्पकं सविकल्पकं च तत्तदिन्द्रियसंसृष्टे मनसि उत्पद्यते। ज्ञानद्वयेऽपि विषये विषये-

रश्मिः।

तद्विषयहानोपादानाभ्यां भवतीति नासंगतम्। हानं त्यागः। **ध्यायतामिति**। ध्यै चिन्तायाम्। चिति स्मृत्यामिति धातुपाठः। **एवकारस्तु** धातुपाठप्रामाण्यात्। **कामिनीति**। **आदिना** भगवदालयादिदर्शनम्। **तेषामित्यादि**। **एवकारेणे**तरविषयव्यवच्छेदः। **किंचिदिति**। मनसश्चञ्चलत्वाद् अन्यत्रमना अभूवं नापश्यमित्यदर्शने पुनः केनाप्युपायेन भक्तिरूपेण तद्दर्शने तेषामेव विषयाणां स्मृतत्वं स्मृतिविषयत्वं तस्य संभवात्। तथा च ध्यायतामिति स्मृत्यर्थकप्रयोगो न विरुद्धः। सर्वस्य स्मृतिकत्वाज्ज्ञानस्य हानोपादानाभ्यां तयोर्भेदमाहुः **तत्रेति**। **आकृष्यत** इति मन आकृष्यते। **येनेति** ज्ञातेनेति बोध्यम्। **हानेति** ज्ञानकारणीभूताया ज्ञानोत्तरमभिव्यञ्जिकावुपाधी। **येनेति**। ज्ञातेन द्विष्टेन। **उपेक्षा** त्यागः। **तस्या** इति उपेक्षाबुद्धेः। **अभीति**। **आदिना** मनोरमत्वम्। **एवेति**। बुद्ध्यायं पदार्थाञ्जानाति बुद्धिमानयं पदार्थाञ्जानातीति ज्ञानविषयत्वेन घटघटत्वयोः प्रवेशवद्विषये संबन्धस्य हानोपादानयोश्च प्रवेशे करणत्वादिबुद्धेर्न स्यादित्येवकारः। **स्पर्शेनेति** संयोगेन। **प्रस्थानरत्नाकरे** स्पष्टम्। **प्राप्नोतीति** आत्मा तु न प्राप्नोति। 'नैव किंचित्करोमि'इति वाक्येभ्यः। 'मायासंमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकं। परोपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं' **च** प्राप्नोति। **तदारूढ**मितीन्द्रियारूढम्। **तदेति** विसर्पिगुणत्वेप्यणोर्मनसोण्विन्द्रियारोहेण विषयदेशप्राप्तिकाले। **आदिना** घटवद्भूतलमिति ज्ञानम्। **क्रमेणेति** बुद्ध्यभिव्यक्तौ क्रमेण। संबन्धग्राह्यभ्यासवतस्तु सहैव। अनुभवादेवकारः। **मनसीति** पूर्ववत् न त्वात्मनि। **ज्ञानेति** सविकल्पकं निर्विकल्पकं चेति **ज्ञानद्वये**।

भाष्यप्रकाशः ।

न्द्रियस्पर्शादिकं व्यापारः । नच नयनानां किरणाङ्गीकारे चक्षुषां व्यापकत्वापत्त्या 'अणवश्च' सूत्रविरोधः शङ्कनीयः । अर्चीरूपाणां किरणानां सूर्यमण्डलाद्भेदस्य, 'आदित्यो वा एष' इत्यनुवा श्रावणात् तैरखिलमेरूत्तरदेशान् व्याप्नुवानस्यादित्यमण्डलस्य दशसहस्रयोजनपरिमाणस्मरणेन तेषां तत्परिमाणाबाधकत्ववत् सूर्याध्यात्मिकचक्षुषः किरणानामपि तथात्वेन सूत्राऽविरोधात् । 'तथा प्राणः' इत्यत्र प्राणेषु जीवातिदेशस्य सिद्धान्तेऽङ्गीकारात् सर्वशरीरे जीवस्येव सामर्थ्याद्वा गुणाद्वा, व्याप्त्यङ्गीकारस्य वक्तव्यत्वात् । 'गुणाद्वाऽऽलोकवत्' इति सूत्रे आलोकस्य गुणत्वाङ्गीकारात् तैजसस्य चक्षुष आलोकरूपगुणव्याप्त्यङ्गीकारेऽप्यदोषः । एवमपि सूत्राविरोधचाक्षुषरूपकार्यसिद्ध्योः संभवात् । अत एव त्वचः सकलशरीरव्यापित्वमपि देवतासामर्थ्यस्पर्शगुणाभ्यां युज्यते । अन्यथा तु सूत्रविरोधसार्वत्रिकस्पर्शानुभवबाधयोरन्यतरदापद्येतैव । तस्मान्नयनकिरणगमनादिद्वारिकैव प्रत्यक्षप्रक्रिया साधीयसी । या पुनरालोकेन मायाकार्यतमोजननप्रतिबन्धे कृते ज्योतीरूपसूर्यदेवतया तदात्मकचक्षुषि सन्मुखाव्यवहितदेशस्थपृथुबुध्नोदराकारविशिष्टरूपे प्रापिते सत्त्वप्रधानबुद्धेरन्तरेव तदाकारतासंपत्तौ अणुरूपं जीवं प्रति ज्ञानाश्रिताध्यात्मिकघटाभिव्यक्तेरेव चाक्षुषम् । दूरस्थगन्धशब्दयोस्तु वायुना घ्राणश्रोत्रसमीपप्रापणेऽन्तःसत्त्वात्मकबुद्धेस्तदाकारतासंपत्तौ ज्ञानाश्रिताध्यात्मिकगन्धशब्दाभिव्यक्तिरेव घ्राणजं श्रावणं च प्रत्यक्षमिति । आध्यात्मिकाधिभौतिकयोरभेदान्न बाह्यघटाग्रहणनिबन्धनो दोष इति केषांचित् प्रत्यक्षप्रक्रिया । तत्रालोकेन तमोजननप्रतिबन्धकथनमयुक्तम् । 'यदा हि भानोरुदयो नृचक्षुषां तमो निहन्याद्' इत्येकादशस्कन्धीयभगवद्वाक्ये तमोनिहन्तृत्वकथनात् । एवं ज्योतीरूपसूर्यदेवतायाः पुरुषचक्षुषि विषयनिष्ठरूपप्रापकत्वकथनमपि तथा । बहुषु पश्यत्सु तांस्तान् प्रतिरूपे प्रापिते विषयस्य नीरूपताप्रसङ्गेन पाश्चात्यानां तददर्शनप्रसङ्गात् । तद्दर्शनार्थं तस्मिन् विषये पुना रूपान्तरोत्पादनाऽऽनयनादिरूपाऽप्रामाणिककल्पनप्रसङ्गाच्च । संध्यायामस्तं गते सूर्ये रूपप्रापकदेवताया गतत्वात्तदानीं घटाद्यदर्शनापत्तेश्च । न च 'निशि नेतिचेन्न संबन्धस्य यावद्देहभावित्वात्' इति तार्तीयीके सूत्रे, अथ 'या एता हृदयस्य नाड्यः' इति नाडीरुपक्रम्य, 'अमुष्मादादित्यात् प्रतायन्ते ता आसु नाडिषु सृप्ता आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽमुष्मिन्नादित्ये सृप्ता' इति दहरविद्यास्थश्रुत्या

रश्मिः ।

स्पर्शेति । आदिना पश्चान्ये संबन्धाः । **तथात्वेनेति** अबाधकत्वेन । **गुणत्वेति** भास्वरशुक्लरूपत्वेन तथाङ्गीकारात् । **एवेति** युक्त्यन्तराभावादेवकारः । **नयनेति** । **आदिना** नयनसंयोगः । एवकारोन्यप्रक्रियाव्यवच्छेदकः । **सन्मुखेत्यादि** गुणरूपे । **सत्त्वेति** तिसृषु । **अन्तरित्यादि** करणान्तः । **एवकारस्तु** बाह्याध्यात्मिकघटव्यवच्छेदकः । **तदाकारता** पृथुबुध्नोदराकारता तस्याः **संपत्तौ** । **जीवं प्रतीति** जीवभोगाय । वृत्तिरूपज्ञानेनाश्रित आधिभौतिकघटो यदा भवति तदा वृत्तिगुणरूप **आध्यात्मिकघटो** भवति तस्याभिव्यक्तिः । एवकारस्तु तद्युक्तया 'युक्तयः सन्ति सर्वत्र' इति वाक्यात् । **एवेति** तद्युक्त्यैवकारः । **बाह्येति** उक्तगन्धशब्दाश्रयीभूतघटाग्रहणनिबन्धनो दोष इत्यर्थः । **तम** इति नृचक्षुस्तमोजननप्रतिबन्धकथनम् । **विषयेति** । रूपमत्र पृथुबुध्नोदराकारः । **नीरूपतेति** निराकारताप्रसङ्गेन । **तददर्शनं** विषयादर्शनं तस्य **प्रसङ्गात्** । **रूपान्तरेति** । पृथुबुध्नाद्याकारोत्पादनेत्यादिः । **प्रतायन्त** इति तनु विस्तारे । **सृप्ता इति** । सृप्लृ गतौ ।

भाष्यप्रकाशः ।

रात्रावप्यादित्यरश्मिसंबन्धस्योक्तत्वात् तदानीं संध्यायां च नाडीसूत्ररश्मिभिर्विषयरूपप्रापणाभ्न घटाद्यदर्शनप्रसङ्ग इति वाच्यम् । नाडीसूत्ररश्मीनां हृदयाग्रप्रद्योतनजीवोत्क्रमणमात्रकार्यार्थताया एव श्रावणेन तद्रश्मीनां रूपप्रापकताया वक्तुमशक्यत्वात् । तदानीमपि रूपप्रापकत्वाङ्गीकारे तदानीं तत्सत्त्वात् 'अस्तमिते आदित्ये, किंज्योतिरयं पुरुषः' इत्यादिज्योतिर्ब्राह्मणविरोधस्य प्रत्यक्षविरोधस्य च दुष्परिहरत्वात् । अतो 'नेतृत्वं द्रव्यशब्दयोः'इतिवदादित्यादिरश्मीनां रूपप्रापकत्वस्याशब्दगोचरत्वात् सूर्यरूपदेवताया रूपप्रापकत्वाङ्गीकारः सर्वथा न युक्तः । किंच । चक्षुषि रूपप्राप्तिश्च प्रतिबिम्बभवनरूपैव । सा तु मायया 'ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत'इति वाक्यात् । तस्या विक्षेपकत्वाच्च । एवं च बुद्ध्याकारसमर्पकत्वमपि प्रतिबिम्बस्यैव । आध्यात्मिकरूपमपि मायामयम्, मनोमयत्वात् । तस्य च न सत्यता, अर्थक्रियाकारित्वमात्रं परम् । आधिदैविकं तु शब्दैकनिष्ठं भगवदात्मकं तत्सत्यमेव । आधिभौतिकं तु प्रपञ्चात्मकम् । तस्य तु कार्यरूपत्वेऽपि कारणरूपेणैव सत्यत्वं, न तु स्वेन रूपेण विकाराणां वाचाऽऽरब्धत्वात्, सदसद्ग्रन्थिरूपत्वाच्च । तदेव च लौकिकव्यवहारविषय इत्येवं चाक्षुषे बोध्यम् । स्पार्शने तु त्वगेव स्वगुणेन स्पर्शेन सर्वं शरीरं व्याप्नोति, न तु ततोऽग्रे गच्छति । घ्राणरसनश्रवणानि तु स्वस्वगोलके स्थित्वा सर्वस्मिन् शरीरे यथोचितं कार्यं स्वगुणद्वारा वा स्वदेवतासामर्थ्यादेव वा कुर्वन्ति । कर्मेन्द्रियेषु तु वाचः स्पर्शो बहिर्गच्छति । अत एव 'न कंचिन्मर्मणि स्पृशेत्'इत्यादीनि वाक्यानि । माहागुलीयत्रशब्दे विद्युच्छब्दे च तत् स्पर्शेन हृदयकम्पभित्तिपातादिकं युज्यते ।

रश्मिः ।

तत्सत्त्वादिति आकाररूपरूपसत्त्वात् । इदं पुरुषे बोध्यम् । **चकारः** प्रत्यक्षविरोधसमुच्चायकः । **नेतृत्व**मिति वायुनिष्ठम् । **अशब्दे**ति शब्दस्य गोचरः शब्दगोचरः, तस्य भावः शब्दगोचरत्वम्, न शब्दगोचरत्वमशब्दगोचरत्वं, तस्मात् । **प्रती**ति बुद्धेः **प्रतिबिम्बभवनरूपा** । बुद्धेस्तत्त्वान्तरत्वात्करणानां शुद्धत्वात् । **एवकारस्तु** सन्मुखाव्यवहितदेशस्थत्वात् । **से**ति प्रतिबिम्बभवनरूपा । **ऋत** इति द्वितीयस्कन्धनवमाध्यायवाक्यम् । प्रतिबिम्बस्य बुद्धेर्वावरणाभावादाहुः **तस्या** इति रजोरूपायाः । बुद्धिविक्षेपकत्वं करणे । **एवं चे**ति मायया चक्षुषि विक्षिप्तबुद्ध्याकारप्रतिबिम्बे च । **एवे**ति सूर्यदेवताव्यवच्छेदः । ननु कथं प्रतिबिम्बस्य बुद्ध्याकारसमर्पकत्वम् । स्वस्य स्वाकारसमर्पकत्वाभावादिति चेन्न । मायात्वेन स्वाकारसमर्पकत्वं प्रतिबिम्बत्वेन तु बुद्ध्याकारत्वं, प्रतिबिम्बे रूपद्वयात् । **आध्यात्मिके**ति ज्ञानाश्रितेत्यादिग्रन्थेन पूर्वमुक्तम् । **मनोमये**ति । बुद्धेर्मनोभेदत्वादिति भावः । **अर्थे**ति **अर्थेन** पदार्थेन **क्रिया** स्वविषयकज्ञानं **तत्कारित्वम्** । मात्रचा घटादिभिर्जलाहरणादिकारित्वव्यवच्छेदः, शुक्तिरजतवत् । **आधी**ति विशुद्धसत्त्वं तत्सत्त्वप्रधानबुद्धेराधिदैविकं भवति । **शब्दैके**ति 'शब्द इति चेन्नातः'इति सूत्रात् । द्वितीयस्कन्धनवमे ....**भगवद**िति । भगवानात्मा यस्य विशुद्धसत्त्वस्य । तावता नित्यम् । **एवकारस्तु** ज्योतिषे 'वासुदेवः परं ब्रह्म एष छन्दसि पठ्यते' इति वाक्यात् । **सदसदि**ति **सत्** कारणरूपमसद्विकाररूपम् । **ग्रन्थिरै**क्यकः । **तदि**ति सदसद्ग्रन्थिरूपम् । **एवकारेणा**धिदैविकव्यवच्छेदः । **लौकिके**ति षड्सन्निकर्षजन्यो **लौकिको व्यवहारस्तस्य विषयः** । **एवे**ति स्वगुणव्यवच्छेदकः । वाकारद्वयं पूर्वतन्त्रात् । **इत्यादीनी**ति प्रसिद्धम् । **हृदये**ति । **आदिना** गर्भपातः ।

भाष्यप्रकाशः ।

पायूपस्थहस्तपादास्तु घ्राणादिवदेव स्वस्वगोलके स्थित्वा सर्वस्मिन् शरीरे यथोचितं कार्यं कुर्वन्ति । अत एव हस्ताभ्यां चलनं, पद्भ्यां तालादिवादनं, शिश्नेन मूत्रादिविसर्ग इत्यादिकं, द्विगोलकानामुभयत्रापि स्थितिश्च संगच्छते । इदं च सर्वं ज्ञानं कर्म च अन्तःकरणाद्यध्यासाज्जीवात्मा स्वस्मिन्नभिमन्यत इत्यतो लौकिकानां नैयायिकादीनां ज्ञानेच्छादिष्वात्मधर्मत्वप्रवाद इति । अन्तःकरणाध्यासस्तु हृदयदेशे जीवस्यान्तःकरणानां च स्थितत्वात् तेषु तत्प्रतिबिम्बे तस्य प्रतिबिम्बस्येन्द्रियेषु प्रतिबिम्बान्तरे इन्द्रियाध्यासस्तस्य देहे प्रतिबिम्बे देहाध्यासश्च भवति । प्रतिबिम्बश्च तत्प्रकाशस्य तेषु क्रमेण भवति सूर्यस्येव, न तु मुख्यस्येव सन्निधिमात्रेणेति निर्णीतम्, 'यथा जलस्थ आभासः' इत्यत्र तृतीयसप्तविंशाध्याये । एवंच पूर्वकृतस्य प्रारब्धकर्मणः पक्वस्य जाग्रति फलभोगे क्रियमाण आहारश्रमादिभिर्यदा निद्रा भवति तदा स्वापः स्वप्नवृत्तिः तत्रायं हृदयदेशान्निःसृत्य हिताभिधानासु शुक्लनीलहरितलोहितपीतरसभृतासु केशसहस्रभागवदण्वीषु नाडीषु द्वासप्ततिसहस्रसंख्यासु तस्यां तस्यां क्वचिदीश्वरेच्छादिवशेनान्तर्बहिःकरणान्यादाय परिवर्तते । तदा चैतन्यसंकोचनेन बहिरिन्द्रियेषु मनसि च प्रकाशासंक्रमात् प्रतिबिम्बो न भवति । बुद्ध्यहंकारयोरेव तु भवति । तदा बुद्धिसहितोऽहंकाराध्यासेन स्वाप्नं सुखदुःखादि भुङ्क्ते । तत्र प्रकाशो भगवतो, विषयश्च मायिकः । भोगे बुद्धिः करणं, भोगश्चाहंकारे । यदा पुनर्निद्रायां

रश्मिः ।

पार्थिवत्यादि । आध्यात्मिका ग्राह्या न गोलकरूपाः । **द्विगोलकानामिति** विशेषणस्य वक्ष्यमाणत्वात् । **तालादीति** आदिना मर्दलः । **मूत्रादीति** आदिना रेतः । **द्विगोलकेति** आदानचलनकर्मणोर्हस्तौ गोलकौ । पादौ चेति द्वयोः कर्मणोर्गोलकौ । ननु हस्तगोलके न पादगोलकभेदः पादगोलके न हस्तगोलकभेद इति कथमैक्यं प्राप्य गोलकद्वयमिति चेन्न । द्वौ गोलकौ येषां चलनतालादिवादनानामिति समासात् । भेदेपि गोलकान्तरे स्थितौ बाधाभावात् । चक्षुःश्रवसि गोलकान्तरस्थितिवत् । एवमन्यत् । **उभयत्रेति** हस्तपादयोः एवमन्यत्र । **आभीति** पश्याम्यहमहं गृह्णामीत्यादिप्रत्ययेभ्योभिमन्यते । **नैयायिकेति** । **आदिना** वैशेषिकमायावादिनौ । **ज्ञानेच्छेति** । **आदिना** यत्नः । आत्मेति न तु जन्यज्ञानस्य **मनोधर्मत्वप्रवादः** । **तेष्विति** प्रतिबिम्बयोग्यशुद्धत्वादिति भावः । **तस्येत्यादि** । **प्रतीति** चैतन्यगुणप्रतिबिम्बः प्रतिबिम्बान्तरं तस्मिन् । प्रतिबिम्बसंबन्धेनाहं पश्यामीतीन्द्रियाध्यासः परस्मिन्परावभासः । **तस्येति** जीवस्य । देहाध्यासोऽहं स्थूल इति । ननु देहस्याशुद्धत्वात्कथं प्रतिबिम्ब इत्यत आहुः **प्रतिबिम्बश्चेति** । **मुख्यस्येति** सन्मुखस्थितार्थस्य । **आहारेति** । **आदिशब्देन** मन्दता । **स्वप्नवृत्तिः** स्वप्नविशेषः । **ईश्वरेच्छेति** । **आदिनाऽदृष्टम्** । **प्रतिबिम्ब** इति प्रकाशसंक्रमस्वरूपकः । **एवेति** चित्तमनसोर्व्यवच्छेदकः । **बुद्धिसहित** इति । प्रयोजनं विशेषणस्य भोगः, अन्यथा निराकारः कथं भुञ्ज्यात् । तथा च श्रुतिः 'अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः कामाहंकारसमन्वितो यः । बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यपरोपि दृष्टः' इति । अहंकारोऽनात्मनो देहादीनभिमन्यते सोभिमान इति श्रुत्युक्तः । तदध्यासोहं बद्ध इति । यद्यप्यहं बद्धः इति प्रत्ययः । तथापि कादाचित्कः । कंसः पाप इतिवत् । **सुखेति** । **आदिना** मरणम् । अत्रात्मा स्वयंज्योतिर्भवतीति श्रुतेराहुः **तत्र प्रकाश** इति । **तत्र** स्वप्ने । **प्रकाशो** ज्योतिः । **करणमिति** शुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य बुद्धेर्गुणेन सहितत्वात् । **भोगश्चेति अहंकारे** सति **भोगो** भवति ।

भाष्यप्रकाशः ।

तमस उद्रेक ईश्वरेच्छादिवशात् तदाऽयं तैः सर्वैः सह पुरीतति प्रविशति । पुण्डरीकाकारो मांसपिण्डो हृदयं, तद्वेष्टिता नाड्यः पुरीतच्छब्देनोच्यन्ते । तदा सुषुप्तिः । कदाचिद्भगवदिच्छया तस्य हृदयस्थान्तर्यं आकाशशब्दवाच्यः परमात्मा तत्र संपद्य शेते । द्विविधायामपि सुषुप्तौ कर्मासंसर्गाद् दुःखाभावः । द्वितीयस्यां परमानन्द इति विशेषः । ततः पुनर्भगवदिच्छादिवशेन परमात्मनः सकाशात् सर्वेषां प्राणादीनामात्मान्तानां व्युच्चरणम् । ततो जागरणे स्वस्थानस्थितिः पूर्वोक्तरीत्या तत्तदनुभवादिश्चेति ।

नैयायिकास्तु—आत्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेण इन्द्रियमर्थेनेति क्रमेणाऽऽत्मन्येव ज्ञानमुत्पद्यत इत्यात्मधर्मत्वं जन्यज्ञानस्याहुः । तत्तु श्रुतिविरोधादेवापास्तम् । विभोर्निरवयवस्यात्मनः संयोगं प्रति कर्तृत्वायोगाच्च । नचान्यतरकर्मज एव संयोगस्तत्रास्त्विति वाच्यम्, मनस एव कर्तृत्वापातात् । तस्यैव क्रियाश्रयत्वात्, जीवे गुणाधीनत्वे कर्तृत्वायोगादिति ।

मायावादिनस्तु—ब्रह्मात्मकमेकमेव ज्ञानं स्वीकृत्य बुद्धौ तस्य प्रतिबिम्बे तस्यैव व्यावहारिकज्ञानत्वं चाङ्गीकृत्य चिदुपरागावरणभङ्गाभेदाभिव्यक्तिपक्षान् जीवस्य किंचिज्ज्ञत्वायाहुः तदप्यसंगतम् । प्रतिबिम्बस्य वक्तुमशक्यत्वात् । ब्रह्मणो नीरूपत्वात् । बुद्धेश्चास्वच्छत्वात् । दर्पणवत् किंचिद्देशावच्छिन्नस्वच्छत्वमङ्गीकृत्याकाशस्येव ब्रह्मणः प्रतिबिम्बाङ्गीकारेऽपि ब्रह्मणः सच्चिदानन्दरूपत्वेन[1] सदानन्दयोरपि प्रतिबिम्बापातात् । न चेष्टापत्तिः । ज्ञानवत् तयोरपि भानापत्तेः । सर्वदा सर्वेषामन्तःशरीरस्थसर्वज्ञानापत्तेश्च । प्रतिबिम्बाधारत्वयोग्यायां बुद्धौ ज्ञानस्यैवान्तराणां नाड्यादीनां सन्निहितत्वेन तत्प्रतिबिम्बेऽपि बाधकाभावात् । किंचाविद्यायां ब्रह्मप्रतिबिम्बभूतानां जीवानां व्यापकतया स्वतः सर्वपदार्थसंसृष्टत्वाद् बाधकाभावेनाविद्यायामपि सर्वप्रतिबिम्बसंभवेन तत्तत्संसर्गे द्विगुणीकृत्य जाते सर्वतादात्म्या-

रश्मिः ।

बुद्धिगुणे । **तमस** इति तमोवृत्तित्वान्निद्रायाः । **परमेति** । सुखमहमस्वाप्सं न किंचिदवेदिषमिति प्रत्ययात् । **प्राणादीनामिति** उक्तप्रत्ययालीनानाम् । **स्वस्थानेति** 'पुनर्नव इव समायाति' इति श्रुतेः । **पूर्वोक्तेति** ज्ञानप्रणाड्या । **आदिना** स्मरणम् । **आत्मन्येवेति** मनोव्यवच्छेदक एवकारः । **श्रुतीति** 'कामः संकल्पः' इत्यादिश्रुतौ धीशब्देन ज्ञानमतो धर्मत्वोक्तेस्तस्याः विरोधात् । **एवेति** प्रमाणमूर्धन्यत्वादेवकारः । **कर्तृत्वेति** आत्मा मनसा संयुज्यत इत्यत्र । विभोरात्मन उत्तरदेशसंयुक्तस्य तदनुकूलत्वस्य कृतावभावात् सिद्धसाधनदोषापत्तेः । **अन्यतरेति** अणुविभ्वोरन्यतरत् कर्म तज्जः । एवकारेण कर्तृकृतेर्व्यवच्छेदः । **तस्यैवेति** मनस एव न त्वात्मन इत्येवकारः आत्मव्यवच्छेदकः । **क्रियेति** । धातूपात्तव्यापाराश्रयत्वं कर्तृत्वमिति कर्तृलक्षणमिति । **जीव** इति देहपरिमाणपरिमाणके । परिमाणगुणाधीनत्वे सति 'स्वतन्त्रः कर्ता' इति सूत्रेण कर्तृत्वायोगात् । **एकमेवेति** 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इति श्रुतेरेवकारः । **बुद्धाविति** जीवोपाधिभूतायाम् । **चिदुपरागेति** **चिदुपरागश्चावरणभङ्गश्च भेदाभिव्यक्तिश्च, चिदुपरागावरणभङ्गाभेदाभिव्यक्तयः,** तासां पक्षान् । **अविद्यायामिति** । 'माया चाविद्या च स्वयमेव भवति' इति नृसिंहतापिनीयात् । **सर्वेति** सर्वेषां जीवानां **प्रतिबिम्बसंभवेन । तत्तत्प्रतिबिम्बसंसर्गे** यस्मिन्कस्मिंश्चिदाधाराधेयभावेऽपि । ब्रह्मप्रतिबिम्बो

१. ब्रह्मणः सच्चिदानन्दाभिन्नत्वात्सर्वलक्षणानां प्रतिबिम्बः स्यादिति भावः । तन्न दृश्यते ।

भाष्यप्रकाशः।

परब्रह्मण इव तेषामपि सर्वसंसृष्टत्वात् साक्षित्वाच्च वृत्तिं विनैव स्वरूपचैतन्येन सर्वावभासकतायाः शक्यवचनत्वेन ब्रह्मवत् सर्वेषां सर्वज्ञता स्यात् । नचान्तःकरणभेदेन प्रमातृभेदात् तदनापत्तिः । व्यापकत्वेन सर्वेषां सर्वान्तःकरणसंसृष्टतया प्रमातृभेदस्याप्यकिंचित्करत्वात् । संसर्गतौल्ये एकस्यैवैकान्तःकरणवैशिष्ट्यं, नापरस्येत्यत्र हेत्वभावात् । अदृष्टादीनां हेतुताकल्पनस्याप्यनेनैव न्यायेन निरसितुं शक्यत्वात् । ननु दूषणग्रासान्मास्तु व्यापकानेकजीववादः, किंतु व्यापकैकजीववादोऽस्तु । तथाच तस्य सर्वज्ञतायामिष्टापत्तिरितिचेत्, सत्यमिष्टापत्तिः स्याद् यद्येकत्रैव सर्वज्ञता स्यात् । नत्वेवम् । अविशेषेणैकस्यैव सर्वशरीराधिष्ठाने सर्वत्राविद्योपहितसाक्षिण एकत्वात् सर्वत्रोपाधौ सर्वप्रतिबिम्बेषु सृष्टत्वाच्च ब्रह्मण इव जीवस्यापि सर्वेषु प्रतिबिम्बेषु सर्वज्ञतायां बाधकाभावात् । नच ब्रह्माप्येकत्रैव सर्वज्ञं न सर्वत्रेति वाच्यम् । ब्रह्मविष्णुशिवादिशरीरावच्छेदेन सर्वज्ञताप्रतिपादकशास्त्रविरोधापातात् । नचाविद्योपाधौ सर्वप्रतिबिम्बेऽप्यन्तःकरणभेदेन प्रमातृभेदात् तन्निकटस्थस्यैव ज्ञानं प्रमातुर्भविष्यतीति न सर्वत्र सार्वज्ञापत्तिरिति वाच्यम् । प्रमात्रभेदे करणभेदस्येव साक्ष्यभेदे प्रमातृभेदस्याप्यप्रयोजकत्वात् । सर्वत्र साक्षिण एव भासकत्वात् नच तस्याविद्योपहितरूपेण न साक्षित्वं, किंतु अन्तःकरणोपहितरूपेण । तथाच रूपभेदेन साक्षिभेदान्न सार्वज्ञापत्तिरिति वाच्यम् । अप्रयोजकत्वात् । तथा सत्यपि हृदयनाडीप्रभृतीनामान्तराणामन्तःकरणे प्रतिबिम्बितानां ज्ञानं तस्य निर्बाधमित्यान्तरसर्वज्ञताया दुर्वारत्वात् । ननु सर्वेषां प्रतिबिम्बो नास्माभिरङ्गीक्रियत इतिचेन्मैवम् । यदयं न स्वीक्रियते कस्तत्र हेतुः । न तावदसन्निधिः । अविद्याया व्यापकत्वात् । नापि बिम्बालोकसंयोगाभावः । सूर्यादेर्विद्यमानत्वात् । अन्तःकरणस्थलेऽप्यन्तःकरणस्यान्तरसन्निहितत्वात् । अन्तर्गृहगतदर्पणप्रतिबिम्बितसूर्यप्रकाशेनाऽऽन्तरवस्तूनां प्रतिबिम्बदर्शनादिहापि जीवचैतन्यप्रकाशितान्तःकरणसंसृष्टेष्वान्तरबिम्बेष्वालोकान्तरसंयोगानपेक्षणात् । जीवचैतन्येऽन्येनान्तरप्रकाशानङ्गीकारे साक्षात्संसृष्टान्तःकरणतद्धर्मादीनामप्यनवभासप्रसङ्गात् । मते च तदवभासे तद्वदेव तत्संसृष्टानामप्यवभासादहंकारादिवद् हृदयनाडीप्रभृतीन्यप्यनुसंधीयेरन् ।

रश्मिः ।

जीवप्रतिबिम्ब इत्येवं संबन्धिनोर्द्वयत्वेन द्विगुणीकृत्य जात इत्यर्थः । स्वप्रमात्रिति । स्वेषां जीवानां प्रमातृ अन्तःकरणविशिष्टचैतन्यम्, अन्तःकरणं वा तस्य भेदात् । तदनापत्तिरणुना भोग्यादृष्टवशात्तावन्मात्रग्रहणात् । एवेति प्रमातृभेदव्यवच्छेदकः । अन्तरिति । भावप्रधानोन्तःकरणोपहितशब्दः प्रमातृत्वरूपेणेत्यर्थः । अप्रेति रूपान्तरग्रहणं । प्रति संन्यासरूपनिग्रहस्थानात्तथा । सूर्यादेरिति । आदिनाऽलोकसंयोगः । अन्तःकरणस्येति आन्तरसन्निहितत्वादिति पदच्छेदः । प्रतिबिम्बितेति प्रतिबिम्बोत्र गौणो न मुख्यः । आन्तरेति । दर्शने सूर्यप्रकाशस्य कारणस्य सत्त्वादिति भावः । अनवेति अदर्शनप्रसङ्गात् । आलोकेति जीवलोकादन्य आलोक आलोकान्तरः तस्य यः संयोगस्तस्यानपेक्षणात् तद्वदिति साक्षात्संसृष्टान्तःकरणवत् । एवकारोऽन्यदृष्टान्तव्यवच्छेदकः । तत्संसृष्टानामिति । साक्षात्संसृष्टसंसृष्टानाम् । अन्विति । यथाहङ्कारादहं धीमानिति साक्षादन्तःकरणधर्मेष्वनुसंधानवदहंकाराद्वेष्टनादिनाडीधर्माननुसंधीयेरन् जीवाः । अहं वेष्टयामीति ।

भाष्यप्रकाशः।

संस्काराधायकस्यावभासस्य तुल्यत्वात् । अथैकप्रतिबिम्बावरुद्धे दर्पणादावन्यस्य प्रतिबिम्बादर्शनाद् व्यापकजीवावरुद्धेऽविद्यादावितरेषां प्रतिबिम्बो न भविष्यतीत्यवरोध एव प्रतिबिम्बाभावे हेतुरिति विभाव्यते । तदप्यसंगतम् । एकप्रतिबिम्बावरुद्धेऽन्यप्रतिबिम्बस्तदा न भवति यदा बिम्बान्तरं पूर्वबिम्बव्यवधेयं भवति । इह तु ब्रह्मणो व्यापकत्वेन परिच्छिन्नानां सर्वेषां ब्रह्मान्तर्वर्तित्वेन तद्व्यवधेयत्वाभावान्न जीवेन तत्प्रतिबिम्बावरोध इति दुर्वार एव सर्वेषां प्रतिबिम्ब इति । ननु भवतु सर्वेषां प्रतिबिम्बस्तथापि न जीवस्य सर्वज्ञतापत्तिर्भवित्री । जीवसाक्षिवादस्यानङ्गीकारात् तथा सति कूटस्थचैतन्यं वा, जीवाभिन्नं सर्वप्रत्यग्भूतं शुद्धं ब्रह्मैव वा परमेश्वरस्यैव रूपान्तरं वा साक्षी भविष्यति, तस्य तु सर्वज्ञत्वेऽप्यदोषः । जीवस्तु यथा सर्वगतं गोत्वसामान्यं स्वभावादश्वादिसंगित्वाभावेऽपि सास्नादिमद्व्यक्तौ संसृज्यते, तथा विषयादौ सन्नपि जीवः स्वभावादन्तःकरण एव संसृज्यते । यदा चान्तःकरणपरिणामो वृत्तिरूपो नयनद्वारेण निर्गत्य चक्षूरश्मिवज्झटिति दीर्घप्रभाकारेण परिणम्य विषयं प्राप्नोति तदा समुपारुह्य जीवस्तं विषयं गोचरयति । केवलाऽन्यदाहस्य तृणादेरयःपिण्डसमारूढाग्निदाह्यत्ववत् केवलजीवचैतन्याप्रकाश्यस्यापि घटादेरन्तःकरणवृत्त्युपारूढतत्प्रकाश्यत्वं युक्तमिति चिदुपरागार्थत्वेन वृत्तिनिर्गममपेक्ष्य वृत्तिसंसृष्टविषयमात्रावभासकत्वात् तस्य किंचिज्ज्ञत्वमुपपत्स्यत इति चेन्मैवम् । एवं स्वभाववादेन समाधानेऽपि जीवस्य प्रकाशप्रतिबिम्बत्वादवच्छिन्नत्वे च ज्ञानरूपत्वात् स्वप्ने स्वयंज्योतिष्ट्वप्रतिपादनाच्च प्रकाशरूपत्वेन स्वप्न इव परोक्षवृत्ताविव च पूर्वपूर्वानादिसंस्कारवशादेवेन्द्रियं विनैव वृत्त्युपपत्तेर्ज्ञानेन्द्रियाणि वृथैव स्युः । किंच । अयःपिण्डसमारोहण दाहकस्याऽग्नेः साक्षात्संसृष्टदाहकत्वदर्शनाद् वृत्त्युपारोहेण प्रकाशकस्य जीवस्य साक्षादन्तःकरणसंसृष्टप्रकाशकत्वं सुतरां सुवचमित्यन्तः-

रश्मिः।

अनुसंधानं स्मरणं संस्कारं विना न भवतीति संस्कारोद्बोधकमाहुः **संस्कारेति** । एतेनाहं वेद्ध्यामीत्यत्र तेषामेव विषयाणां किंचित्प्रत्यक्षान्तराये तेषामेव स्मृतत्वं द्योतितम् । संस्कारस्याधायकं सहकारिकारणं तस्यावभासस्यालोकसंयोगस्य । किंचाविद्यायामित्युक्ते किंचिदाशङ्कतेऽसर्वज्ञतायै ! **अथेति** । **अविद्यादाविति** । **आदिनेन्द्रियाणि** । **पूर्वेति** यथा देवदत्तबिम्बो विष्णुमित्रबिम्बव्यवधेयः । **एवेति** । एकधा बहुधेति श्रुतेरेवकारः । घटत्वावच्छिन्नं चैतन्यं विषयचैतन्यमन्तःकरणावच्छिन्नं प्रमातृचैतन्यम् । अन्तःकरणवृत्त्यवच्छिन्नं प्रमाणचैतन्यम् । अन्तःकरणवृत्त्यभिव्यक्तचैतन्यं फलचैतन्यमित्येवं विषयादौ सत् । **केवलेति** चित् । केवल इति पाठे जीवः । **अन्यदेति** । तदा तमुपारुह्येत्युक्तकालान्यकाले । केवलजीवचैतन्येनाप्रकाशो यस्य घटादेः । **चिदुपेति चितो** जीवस्योपरागः संबन्धस्तदर्थत्वेन । **वृत्तीति** वृत्तिसंसृष्टो यो विषयस्तदितरानवभासकत्वे सति **वृत्तिसंसृष्टविषयावभासकत्वात्** । **प्रकाशेति** स्वयंप्रकाशेश्वरप्रतिबिम्बत्वात् । **पूर्वेति** । व्यवहारे वयं भाट्टा इति वदतां प्रपञ्चानादित्वात्तथा । **संस्कारोऽदृष्टम्** । इन्द्रियव्यवच्छेदकैवकारः । ब्रह्मप्रतिबिम्बात्पूर्वमिन्द्रियाभावात् । **एवेति** । एकदेशविकृतत्वादेवकारः । बिम्बः प्रतिबिम्ब इति । **साक्षादिति** । बहिरपि वह्निदर्शनादिति भावः । **अन्तःकरणेति अन्तःकरणसंसृष्टाः** नान्योपि तेषां **प्रकाशकत्वम्** । सामान्ये नपुंसकम् । एवकारो जीवप्रकाशसत्त्वेन सहकारिसत्त्वात् । अविद्याप्रतिबिम्बितप्रकाशादधिकमन्तःकरणप्रतिबिम्बितप्रकाशः ।

भाष्यप्रकाशः ।

करणे प्रतिबिम्बितानां प्रकाशोऽस्य स्यादेवेत्यधिकं तत्रानुप्राविशत् । वस्तुतस्त्वेवमपि गोत्वस्य सकलगोव्यक्तिष्विवैकस्यैव जीवस्य सर्वान्तःकरणसंसर्गस्य वक्तव्यत्वात् तथा सति तत्तदन्तःकरणवृत्तिनिर्गमेण तत्तद्विषयप्राप्तौ तत्तद्वृत्त्युपारूढस्य जीवस्यापि तत्तद्विषयोपराग-संभवात् सर्ववृत्तिसंसृष्टविषयाणां गोचरीकरणे बाधकाभावेन किंचिज्ज्ञत्वस्यानुपपन्नत्वमेव । अतो विषयविषयिभावो वा, विषयसन्निहितजीवचैतन्यतादात्म्यापन्नवृत्तिविषयसंयोगद्वारको जीवविषययोः परम्परासंबन्धो वा, अन्तःकरणवृत्त्युपादानस्य जीवस्य वृत्तिविषयसंयोगजनितः कार्याकार्यसंयोगात् कारणाकारणसंयोगात्मा साक्षात्संयोगो वा, अन्तःकरणोपहितस्य विषया-वभासकचैतन्यस्य विषयतादात्म्यापन्नं ब्रह्मचैतन्याभेदाभिव्यक्तिद्वारा विषयतादात्म्यसंपा-दनं वा, अन्यद्वा यत्किंचन चिदुपरागत्वेनाभिधित्सितं तस्य सर्वस्य वृत्तिसंसर्गजनितत्वेन वृत्तिजनकानां च अन्तःकरणानां सर्वशरीरव्यापकजीवसंसृष्टत्वेन सर्वैस्तैः सर्वज्ञतापत्तिरनिवार्यैव । तत्राप्यनुपदोक्ते विषयतादात्म्यसंपादनपक्षे मैत्रस्य चैत्रदर्शने, अहं चैत्र इत्याद्याकारकज्ञानापत्ति-रधिकायातीति फल्गून्येवैतानि कल्पनानि ।

अथ जीवः सर्वगतोऽप्यविद्यावृतत्वात् स्वयमप्रकाशमानतया विषयाननवभासयन् विषय-विशेषे वृत्त्युपरागादावरणतिरोधानेन तत्रैवाभिव्यक्तस्तमेव विषयं प्रकाशयतीत्यावरणभङ्ग-

रश्मिः ।

तत्रेति सर्वज्ञतायाम् । विषयेति वृत्तेर्ज्ञानत्वात्तथा । विषयेति । विषये सन्निहितं यज्जीव इव चैतन्यं तेन तादात्म्यापन्ना या वृत्तिस्तस्याः विषयसंयोगद्वारकः परम्परासंबन्धः । अन्तरिति । अन्तः-करणस्य जडत्वेन तद्वृत्तेर्ज्ञानरूपाया उपादानं जीवस्तस्य । वृत्तीति वृत्तिविषयचैतन्ययोस्तादात्म्यं वृत्तिविषययोस्तु संयोग एव । कार्येति कार्यं वृत्तिः । अकार्यं विषयः । अविद्याकार्यत्वेन जीवकार्य-त्वाभावात् । तयोः संयोगात् । कारणं जीवो वृत्त्याः, अकारणं विषयः, विषयविधया कारण-त्वानङ्गीकारात्, तयोः संयोग आत्मा स्वरूपं यस्यैतादृशः । यथा यत्र कपालक्रियया कपालतरुसंयो-गस्ततः कुम्भतरुसंयोगः । तत्र कपालक्रियाया एव तरुसंयोगं प्रति कारणताभावः । अथासिद्धत्वात् कपालतरुसंयोगस्यैव कारणत्वम् । अयं कारणाकारणसंयोगात्मा । कार्यं कुम्भतरुसंयोगोऽकार्यं कुम्भ-क्रिया तस्मात्संयोगात् । ल्यब्लोपे पञ्चमी । तादृशसंयोगं कार्यमालोच्य तथा कारणाकारणसंयो-गात्मेत्यर्थः । यद्वा । अत्र कुम्भक्रियया कुम्भतरुसंयोगः कारणं कुम्भक्रियाऽकारणं कपालतरुसंयोगं प्रति कपालक्रियां प्रति चेति विपरीतं स्वीक्रियते । अतः कार्याकार्यसंयोगाद्धेतोः कारणाकारणसंयो-गात्मेत्यर्थः । विषयेति प्रमातृचैतन्याद्वयस्य । विषयेण पीतः शङ्ख इतिवत् करणदोषेण तादात्म्या-पन्नं यद्ब्रह्मचैतन्यं तस्याभेदाभिव्यक्तिद्वारेत्यर्थः । विषयेण तादात्म्यस्य संपादनं प्रमातृचैतन्यस्येति ज्ञेयम् । अन्यद्वेति अनिर्वचनीयाविद्याजन्यत्वेन यथादृष्टं चिदुपरागो वेति । वृत्तीति वृत्ति-विषयसंसर्गजनितत्वेन सर्वैस्तैः शरीरैः । एवकारस्तु दहराधिकरणे जीवब्रह्मवादात् । मैत्रस्येति । मैत्रवृत्तिरूपदर्शनस्य चैत्ररूपविषयतादात्म्यात् । वृत्तिवृत्तिमतोरभेदात् । एवं चिदुपरागपक्षं दूषयित्वा-ऽऽवरणभङ्गपक्षं दूषयितुमाहुः । अथेति भिन्नप्रक्रमे । विषयान् अनवभासयन्निति पदच्छेदः । विषय-विशेषः स्वस्वभोग्यादृष्टोपस्थापितस्तस्मिन्घटादौ वृत्त्युपरागाज्ज्ञानसंबन्धात् अज्ञानजावरणस्य तिरोधा-नेन । आवरणस्य तमोरूपमायाकार्यत्वात् । तत्रैवेति अन्तःकरण एव । 'ईश्वरः सर्वभूतानाम्' इति

भाष्यप्रकाशः।

पक्षः किंचिज्ज्ञत्वार्थमालम्ब्यते। तदाप्यावरणस्य वृत्त्युपरागतिरोभाव्यत्वाज्जाते वृत्त्युपरागे तेनावरणभङ्गे सर्वान्तःकरणसंसृष्टो जीवस्तत्तद्विषयेष्वभिव्यक्तस्तं तं विषयं प्रकाशयेदेवेति न किंचिज्ज्ञत्वोपपत्तिः। एवंच चैतन्यमात्रावरकाज्ञानस्य खद्योतप्रकाशेन महान्धकारस्येव ज्ञाने-नैकदेशाज्ञाननाशो वा, पटवत् संवेष्टनं वा, भीतभटवदपसरणं वा, चैतन्यमात्रावरकस्याप्य-ज्ञानस्य तत्तदाकारवृत्तिसंसृष्टावस्थविषयचैतन्यानावरकत्वस्वाभाव्यं वा, मूलाज्ञानावस्थाभेदरूपा-ज्ञानान्तरनाशो वा, अन्यो वा यः कश्चनावरणभङ्गो निरुच्यतां स सर्वोऽपि वृत्त्युपरागजन्य एवेति जाते वृत्त्युपरागे पूर्वोक्तरीत्या सकलान्तःकरणसंसृष्टस्य जीवस्य सर्वज्ञतैवायातीति नैतेऽपि रोचिष्णवः पक्षाः।

नन्वेकस्मिन्नपि जीवे जन्मान्तरमापन्ने पूर्वजन्मानुसंधानादर्शनाच्छरीरभेदस्य सुखाद्यन-नुसंधानप्रयोजकत्वं क्लृप्तमिति स एव किंचिज्ज्ञताया अपि प्रयोजको भवतु। तथाच व्यापक-स्यापि जीवस्य शरीरान्तरे शरीरान्तरीयान्तःकरणवृत्त्यादिभिर्ज्ञानं न भविष्यतीति न सर्वेषां सार्वज्ञ्यापत्तिरिति चेन्न। शरीरभेदस्याननुसंधानप्रयोजकताया योगिकायव्यूहे जातिस्मरे भूतादौ च व्यभिचारेण तस्य किंचिज्ज्ञतायामप्यतन्त्रत्वात्। एतेनैव भोगायतनभेदस्य विश्लिष्टोपाधि-भेदस्य चाननुसंधानप्रयोजकत्वं परास्तं बोध्यम्।

'उद्यदायुधदोर्दण्डाः पतितस्वशिरोऽक्षिभिः।
पश्यन्तः पातयन्ति स्म कबन्धा अप्यरीन् युधि'॥

इति भारते भूतार्थवादाच्च। नच योगिप्रभृतिषु प्रभावविशेषेणानुसंधानेऽपि

रश्मिः।

वाक्यादेवकारः। **तमिति** विषयविशेषम्। दृष्टत्वादेवकारः। **जात** इति निर्विषयकज्ञानस्या-भावाद्यावद्विषयविशेषे जाते वृत्तिसंबन्धे। एवकारो विषयप्रकाशस्य दृष्टत्वात्। ननूक्तं विषयविशेषे वृत्त्युपरागात्तावदावरणतिरोधानमिति चेन्मास्तु नानाजीवपक्षे सर्वज्ञतैकजीवपक्षे तु स्यादित्याहुः **एवं** चेत्यादि। कार्त्स्न्ये मात्रच्। **पटवदिति** ज्ञानेनेत्येव। **चैतन्यमात्रावरकाज्ञानस्येत्यपि**। अग्रेप्येवम्। **अपीति** एकदेशाज्ञानान्यपिना गृह्यन्ते। **तत्तदिति** तत्तद्घटपटाद्याकारा या **वृत्तिस्तया** संसृष्टा अवस्था यस्य विषयावच्छिन्नचैतन्यस्य। **अनावरकत्वं स्वभावो** यस्य तादृशत्वम्। **मूलेति** मूलं यदज्ञानं तमोरूपं तस्य ये अवस्थाभेदा अवस्थाप्रकारास्तद्रूपाण्यज्ञानान्तराणि तेषां नाश इत्यर्थः। **अन्य** इति। अनिर्वचनीयाविद्याजन्यत्वेन यथादृष्टं नाशो वेत्यावरणभङ्गः। **पूर्वोक्तेति**। तदापीत्यादि-नोक्ताऽव्यवहितपूर्वोक्तरीत्या। सकलानि अन्तःकरणानि तैः संसृष्टस्य जीवस्य एकत्वं विवक्षितम्। **अन्तःकरणेति**। आदिना वृत्तिविषयसंयोगः फलचैतन्यं च। **जा(ग)तिस्मर** इति तस्येदं कर्मणः फलमिति फलस्मरणं तस्मिन्। **व्यभिचारेणेति**। जीवः पूर्वजन्मीनसुखाद्यननुसंधानवान् शरीरभे-दात् देवदत्तवदित्यनुमाने। साध्याभाववति योगिकायव्यूहे जा(ग)तिस्मरे भूतादौ च शरीरभेदरूपहेतु-सत्त्वाद्व्यभिचारः। **किंचिदिति**। जीवः किंचिज्ज्ञः शरीरभेदात्। देवदत्तवदिति। जीवः न किंचिज्ज्ञः शरीरभेदात्। कायव्यूहवत्। **गतिस्मरभूतादिवच्चे**त्यनुमानाभ्यां तस्य शरीरभेदरूपहेतोः। **अतन्त्रत्वा-**द्विरुद्धत्वात्। **एतेनेति** अतन्त्रत्वेन। एवकारोऽन्यहेतुयोगव्यवच्छेदकः। **भोगायतनेति** भोगा-यतनं शरीरमुक्तं तथापि तद्भोगायतनं साधारणम्। इदं तु भोगायतनं पृथगुपात्तम्। तस्य यो भेदस्तस्य। विश्लिष्टा उपाधयोन्तःकरणरूपास्तेषां भेदस्य। **परास्तमिति** योगिकायव्यूहादौ साधार-ण्यात्परास्तम्। **पश्यन्त** इति यथा पल्लीपुच्छस्य छिन्नस्य क्रियावत्त्वं तथादृष्टत्वम्। **भूतेति** पूर्वजातमर्थं प्रकाशयति यः स भूतार्थवादः यथेन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छदिति। **योगीति**। **प्रभृति-**

भाष्यप्रकाशः ।

पूर्वोक्तोपाधीनामुत्सर्गतस्तथात्वाज्ञानानुसंधानप्रयोजकत्वहानिरिति वाच्यम् । बहुषु व्यभिचारदर्शनात् । एकत्र तथादर्शने ह्यौत्सर्गिकाननुसंधानतन्त्रत्वाद् विघातः प्रभावविशेषसमवधानवशात् कल्पयितुं शक्यते, न तु बहुषु तथादर्शने । अतो मनुष्यविशेषेषु भूतेषु मनुष्यादुत्कृष्टयोनिषु सर्वेषु च पूर्वजन्मीनज्ञानस्य तत्र तत्रोक्तेः शास्त्रस्य प्रामाण्याच्च, न पूर्वोक्तोपाधीनामननुसंधानतन्त्रत्वं साधीयः । नाप्यन्तःकरणभेदस्य तथात्वम् । दृष्टिसृष्टिवादे पूर्वपूर्वस्यान्तःकरणस्य नष्टत्वेनाग्रिमाग्रिमस्य तस्य भिन्नत्वात् पूर्वदृष्टानुसंधानाभावप्रसङ्गात् । साक्ष्यैक्येन तत्समर्थने तु अन्तःकरणभेदस्याप्रयोजकत्वात् तत्तदन्तःकरणैरस्य सर्वज्ञताया एवापत्तिः । अन्तःकरणवैजात्येन समर्थनं तु मज्जत्फेनालम्बनकल्पत्वात् कदर्यमेव । पादेन स्पृशामि कर्णाभ्यां शृणोमि, चक्षुषा पश्यामीति बाह्यकरणभेदेऽप्येकस्य ज्ञानवत् तेन तेनान्तःकरणेन तत्तज्जानामीत्यादिज्ञानस्यान्तःकरणवैजात्येऽपि सुवचत्वात् । सृष्टदृष्टिवादमालम्ब्यान्तःकरणैक्याङ्गीकारेण समर्थनेऽपि बहिःकरणवैजात्यस्येवान्तःकरणवैजात्यस्याप्यप्रयोजकत्वादुक्तदूषणं निर्बाधमेव । नच फलबलान्नान्तःकरणभेदस्याऽप्रयोजकत्वमिति वाच्यम् । फलबलस्य साधनभेदकल्पनामात्रप्रयोजकत्वेनान्तःकरणभेदकल्पने अप्रयोजकत्वात् । फलबलेन जीवभेदकल्पनेऽपि दोषाभावात् । अतो व्यापक एकः प्रतिबिम्बो जीव इति पक्षे कथमपि न सर्वज्ञतापत्तिपरिहारः ।

ननु तर्ह्यस्तु नानाणुजीववादः तथा सत्यन्तःकरणे प्रतिबिम्बितचैतन्यरूपस्य जीवस्य परिच्छिन्नत्वेन सर्वसंसर्गाभावान्न सर्वज्ञतापत्तिर्भवित्री । विषयप्रकाशस्तु विषयसंसृष्टवृत्तिद्वारा तडागसलिलस्य कुल्याद्वारा केदारसलिलैक्यवज्जीवस्य विषयावच्छिन्नब्रह्मचैतन्यैकीभावात्मिकायामभेदाभिव्यक्तौ भविष्यतीति किंचिज्ज्ञत्वमुपपत्स्यत इति चेत् नेदं युक्तं भाति ।

रश्मिः ।

शब्देन कायव्यूहगतिस्मरभूतादिसंग्रहः । **पूर्वोक्तेति** शरीरभेदभोगायतनभेदविशिष्टोपाधिभेदरूपोपाधीनाम् । त्रयाणामुपाधित्वे हेतुत्वेपि । **तत्र तत्रेति** । श्रीभागवते चित्रकेतुपुत्रो मनुष्यविशेषस्तस्य पूर्वजन्मीनज्ञानम् । जीव उवाच । 'कस्मिञ्जन्मन्यमी मह्यं पितरो मातरोऽभवन्' इति । कृष्णावतारस्य पूर्वोक्तं गोकर्णस्य पूर्वोक्तं श्रीभागवतमाहात्म्ये भूतेषु तत्रैव धुन्धुकारी, पद्मपुराणे उत्तरखण्डे माघमाहात्म्ये विंशतितमेऽध्याये प्रेतकथा । पुनः श्रीभागवते मनुष्यादुत्कृष्टयोनिषु नारदधनदात्मजयोश्च पूर्वोक्तम् । लोके सर्वेषु इदानींतनभूताविष्टेषु । ननु न दृष्टमिदमित्यत आहुः **शास्त्रस्येति** । **तथात्वमिति** । सुखाद्यननुसंधानहेतुत्वम् । **दृष्टिसृष्टीति** दृष्टेः सृष्टिः ज्ञानात् सृष्टिः सांख्यानां तद्वत् । 'उपरागात्कर्तृत्वं चित्सान्निध्यात् चित्सान्निध्यादिति' सूत्रम् । तदेवाहुः **पूर्वपूर्वस्येति** । **नष्टत्वेनेति** । अन्तःकरणस्य द्वित्वापत्त्या तथा दृष्टिसृष्टेस्त्रिक्षणावस्थायित्वाद्वा । **तत्तदिति** । करणे तृतीया नत्ववच्छेदकेऽविधानात् । **एवेति** अवच्छेदकाभावादेवकारः । **मज्जदिति** । अन्तःकरणानामवच्छेदकत्वाभावात् । **पादेनेति** । पादस्पृष्टोऽहिर्यथेति दर्शनात् । **सृष्टदृष्टीति** सृष्टस्य दृष्टिर्ज्ञानम् । **अन्तरिति** । **ऐक्यमविजातीयत्वं** । **एवेति** ऐक्याङ्गीकारस्य वैजात्यनिवृत्तिमात्रप्रयोजकत्वेनोक्तदूषणपरिहाराप्रयोजकत्वादेवकारः । **साधनेति** । यथाहुः साधनवैजात्ये फलवैजात्यमिति । अन्तःकरणस्य साधनत्वे त्वाहुः **फलबलेनेति** किंचिज्ज्ञत्वबलेन । तथा च जीवभेदवदन्तःकरणभेदस्याप्यन्यथासिद्धत्वान्न साधनत्वमिति भावः । ज्ञानस्य चाक्षुषत्वात् । अभेदाभिव्यक्तिपक्षं दूषयन्ति स्म **ननु तर्हीति** । **कुल्येति**

भाष्यप्रकाशः।

'सलिल एको द्रष्टा भवति' इति श्रुत्या सुषुप्तावेव जीवब्रह्मणोरेकीभावश्रावणात् तदितरत्र तदुपगमे श्रुतिविरोधाज्जाग्रदादौ व्यावर्तकोपाधेर्विद्यमानत्वाच्च दर्पणसत्त्वे बिम्बयोरिव जीवब्रह्मणोरभेदस्याशक्यवचनत्वात्। किंच। जीवब्रह्मणोरिदानीमभेदेऽन्योन्यधर्मविनिमयाद् ब्रह्मणोऽल्पज्ञताऽन्यस्य सर्वज्ञता चापत्स्यत इति नोक्तदूषणोद्धारसंभवः। यदि च बिम्बभूतं विषयाधिष्ठानचैतन्यमेव साक्षादाध्यासिकसंबन्धलाभाद् विषयप्रकाशकमित्याध्यासिकसंबन्धोपलक्षितचैतन्यात्मना जीवैकीभावो, न तु बिम्बत्वविशिष्टरूपेणेति भेदस्यापि सद्भावान्नोक्तदूषणापत्तिरिति विभाव्यते, तदापि विषयतादात्म्यापन्नब्रह्मत्वैकीभावो जात एवेति अहं घट इत्याकारकज्ञानापत्तिः। अध्यासेनान्तःकरणतादात्म्यापत्त्याहमिति ज्ञानवत्। अन्तःकरणधर्माणां सुखादीनां स्वस्मिन्नभिमानवद् विषयधर्माणामप्यभिमानप्रसङ्गः। अयं घट इत्यादिज्ञानाभावश्च स्यात्। यदि च विषयावच्छिन्नं ब्रह्मचैतन्यं विषयसंसृष्टाया वृत्तेरग्रभागे विषयप्रकाशकं प्रतिबिम्बमर्पयति तस्य प्रतिबिम्बस्य जीवेनैकीभावोऽभेदाऽभिव्यक्तिस्तस्यां सत्यां विषयप्रमितिरिति विभाव्यते तदा तु सुतरामसंगतम्। वस्त्वन्तरावरुद्धे दर्पणादौ प्रतिबिम्बादर्शनाद् विषयसंसृष्टेऽग्रभागे प्रतिबिम्बायोगाद्विषयप्रकाशस्यैवाभावप्रसक्तेः। किंच। प्रतिबिम्बार्पकं चैतन्यं यदि विषयाद् बहिस्तदा तस्य वृत्तिसंसृष्टत्वात् प्रतिबिम्बायोगः। यदि च विषयान्तस्तदापि विषयेण व्यवधानात् तथा। यदि विषयादूरवर्ति तदा विषयावच्छिन्नत्वस्यैवायोगः। किंच। अन्तःकरणोपाधिपरिच्छिन्नप्रतिबिम्बस्याणुत्वादूर्ध्वदर्शने वृत्तिद्वारा तस्य निर्गमात् प्राणानामपि निर्गमापत्तिः 'तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति' इति श्रुतेः। किंचैवं कल्पनैकशरणत्वे गोलकद्वारा तैजसस्य वेगवतो वृत्तिरूपपरिणामस्य निर्गमादेव प्रमातृवृत्तिविषयचैतन्या-

रश्मिः।

'कुल्याल्पा कृत्रिमा सरित्'। **सुषुप्ताविति**। सलति। सल गतौ। सलिकलीतीलच्। यौगिकः सलिलशब्दो वेदान्ते। जले योगरूढः। **एवकारेण** जाग्रत्स्वप्नौ व्यवच्छिद्येते। **जाग्रदादाविति**। **आदिना** स्वप्नः। जाग्रति तत्त्वमस्यादिवाक्यव्यवस्थामाहुः **दर्पणे**त्यादिना। **शक्येति** जाग्रतिशक्यवचनत्वात्। **विषयेति**। यस्मिन्नेतत्कल्पितम्। **एवकारो**न्यचैतन्यव्यवच्छेदकः। साक्षात्त्वं यथा शुक्तिरजतं तथाध्यासिकसंबन्धलाभात्। अहंवृत्तिं विशेषेण सिनोमीति विषयाध्यासः। अध्यासेन संसृष्टोध्यासिकः। तेन संसृष्ट इति ठक्। विषयो घटादिः। विषयकं विषयाधिष्ठानचैतन्यम्। अज्ञाते कः। तस्य प्रकाशकं प्रमातृचैतन्यम्। **अहमितीति**। अस्मत्प्रत्ययगोचरत्वमन्तःकरणावच्छिन्नस्यैवेति। **विषयेति** घटत्वजडत्वादीनाम्। **इत्यादीति** मया दृश्यत इत्यादिशब्दार्थः। घटमहं जानामीत्यनुव्यवसाय आदिशब्दार्थो वा। भेदसंबन्धघटितप्रत्ययो न स्यादित्यर्थः। **प्रतिबिम्बमिति**। वृत्तेः स्वच्छत्वादिति भावः। अयं प्रतिबिम्बश्चतुर्थ्यः प्रमात्रादिप्रतिबिम्बेभ्योधिकः। **एकीभाव** इति। **अभेदाभिव्यक्तिरिति** पदच्छेदः। **विषयेति** विषय**संसृष्टो** यो वृत्त्य**ग्रभागस्तस्मिन्**। **प्रतिबिम्बेति**। विषयावरुद्धत्वादिति भावः। एवकारोन्याभावप्रसक्तिं व्यवच्छिनत्ति। **अभावेति**। जीवविषयचैतन्ययोरैक्याभावादिति भावः। **वृत्तीति** अन्तःकरणपरिणामभूताया जडायाः संसर्गात्। जडेऽस्वच्छे प्रतिबिम्बायोगः। **एवेति** एवकारः प्रतिबिम्बायोगं व्यवच्छिनत्ति। **निर्गमादिति** विषयचैतन्यैक्यार्थं निर्गमात्। **श्रुतेरिति**। तथाच मृतावस्थया जीवनदर्शनानुपपत्तिरिति भावः।

भाष्यप्रकाशः ।

भेदसिद्ध्या विषयप्रकाशसंभवे गोलकातिरिक्तेन्द्रियकल्पनापि वृथा स्यात् तस्मादनादरणीया एवैते पक्षाः । एतेन प्रमाणचैतन्यस्य विषयावच्छिन्नचैतन्याभेदो ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वप्रयोजक इत्यपि निरस्तम् । किंच । यत्र भ्रमद्घटो गृह्येत तत्र वृत्त्युपरञ्जकस्य भ्रमणविषयनिष्ठत्वाभावेन ततश्चिदुपरागायोगात् तदग्रहणापत्तिः । नच तत्रानिर्वचनीयं तज्जन्यत इति सुखेन तद्ग्रहणसंभव इति वाच्यम् । वृत्त्या घटाकारिकया आवरणाभिभवेन भ्रमणांशे विक्षेपस्याशक्यवचनत्वात् । किंच । वृत्त्या विषयचैतन्याभेदाभिव्यक्तावपि विषयप्रकाशके ब्रह्मचैतन्ये तदभावान्नयनप्रदेशे तदननुभवेनेन्द्रियेऽपि तदभावाद् वृत्तिमात्रजनकस्येन्द्रियसंप्रयोगस्य विषयकारणत्वाक्लृप्तेश्च संप्रयोगेणापि विषये तदाधानायोगादन्तःकरणावच्छिन्नेऽप्यहं भ्रमामीत्यननुभवात् स भ्रमः सर्वत्रालब्धसत्ताको घटेऽपि न स्यात् । यस्मात् क्वाप्यसन् घटदेशेऽनुभूयते, तस्मात् तद्देशावच्छेदेन जायमाने मनोधर्मरूपे ज्ञानेऽस्ति तच्चेत् प्रमातृविषयचैतन्याभिन्नं स्यात् तदा स भ्रमः सर्वानुभवगोचरः स्यात् । यस्मान्नैवं तस्मात् तज्ज्ञानं कार्यरूपं भिन्नमेवेति निश्चयः । नच शुक्तिरजतादिस्थले इदमाकारवृत्तौ सत्यामपि रजताध्यासदर्शनादंशत एवावरणनाश इत्यंशान्तरेण भ्रमविक्षेपोऽपि भविष्यतीति न तदननुभवानुपपत्तिरिति वाच्यम् । विषये तत्सत्त्वेऽन्येषामपि तदनुभवापत्तेः । अन्येषां घटद्रष्टॄणां प्रमाणवृत्त्या तदंशावरणनाशादस्यापि तदनुभवापत्तेश्च

रश्मिः ।

निरस्तमिति वृत्त्यैव निर्वाहेऽन्तःकरणवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्यपर्यन्तानुधावनस्य गौरवग्रस्तत्वात् । **वृत्ती**ति । वृत्तिमुपरञ्जयति यद्भ्रमणं स्थिरत्वं तस्य भ्रमणविषयघटस्तन्निष्ठत्वस्याभावस्तदभावरूपत्वात्तेनेत्यर्थः । **अनिर्वचनीय**मिति वृत्त्युपरञ्जकस्य भ्रमणाभावरूपस्य भ्रमणविषयनिष्ठत्वं ततोऽपि रजःप्रधानं भ्रमणं माया रजोरूपमिति विरुद्धधर्माधारत्वेनानिर्वचनीयम् । तदिति विषयचैतन्यम् । **आवरणे**ति आवरणं माया तमःकार्यम् । **विक्षेपो** रजस्तस्य । रजस्तमसी न स्त इत्युक्तम् । अतः सत्त्वरूपाविद्येति निश्चयविषयो भ्रमद्घटो नानिर्वचनीय इत्यर्थः । **विषये**ति भ्रमरूपायाम् । **विषयप्र**ेति । विषयाधिष्ठानचैतन्ये । **तदभावात्** भ्रमाभावात् । ननु शुक्तिकारजतवद्भ्रमोऽस्त्येवेति चेन्न । वृत्त्याऽभेदाभिव्यक्तिरूपतदभावात् । **तदनन्वि**ति वृत्त्याऽभेदाभिव्यक्तिरूपभ्रमाननुभवेन । वृत्त्याभेदाभिव्यक्तिरूपभ्रमाभावात् । **वृत्ती**ति । अन्तःकरणवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्ये वृत्तिमात्रेत्यादिः । **संप्रयोगः** संबन्धः । **विषये**ति । किं तु विषयकारणक्लृप्तिस्तु सगुणस्यैव । **तदाधाने**ति वृत्त्याविषयचैतन्याभेदाभिव्यक्तिरूपभ्रमाधानायोगात् । **अन्त**रिति प्रमातरि, अहं भ्रमाश्रय इत्य**ननुभवात्** । किंतु भ्रमेमीत्यनुभवात् । भ्रमामीत्यत्र प्रत्ययार्थ आश्रयः । यद्वा अहं भ्रमं करोमीत्येवार्थः । सर्वस्यापि कारणे पुरुषव्यापृतिः । तदत्र वृत्तिसंपादने प्रमाणसंपादने वा पुरुषकृतिसाध्यत्वमिति भाष्यात् । **न स्या**दिति तदभाववति तत्प्रकारकज्ञानस्य भ्रमत्वमित्यत्र तत्प्रकारकेत्यत्रान्यत्रलब्धसत्ताकप्रकारकज्ञानस्येत्यर्थो**न्न स्या**दित्यर्थः । **मन** इति । 'कामः सङ्कल्पः' इति बृहदारण्यके धीग्रहणादिति भावः । **तज्ज्ञान**मिति । भ्रमद्घटज्ञानम् । अन्येभ्यो भगवतश्च **भिन्नम्** । **रजते**ति । अध्यासो नाम परस्मिन्परावभासः । **अंशत** इति सार्वविभक्तिकस्तसिः । इदमंशेन । **भ्रमे**ति भ्रमेण कार्येण निमित्तेन **विक्षेपः** सात्त्विकबुद्धेर्विक्षेपश्चलनम् । यद्वा भ्रमो भ्रमणं तद्रूपो विक्षेपः भ्रमविक्षेपः । **तदनन्वि**ति । लब्धसत्ताकत्वस्य भ्रमेऽननुभवेन घटे भ्रमानुपपत्तिः । **तत्सत्त्व** इति भ्रमसत्त्वे शुक्तिरजतवत् । **तदंशे**ति विषयांशावरणनाशात् ।

भाष्यप्रकाशः ।

विषयाश्रितावरणपक्षस्यैव दुष्टत्वात् पुरुषाश्रितपक्षे तूक्तरीत्या प्रमातरि प्रमाणे प्रमेये च वक्तुमशक्यत्वेन घट्टकुटीप्रभातवदननुभवस्य सर्वाऽनुभवगोचरत्वस्य वापाताच्छुक्तिरजतस्याऽप्येतत्तुल्यत्वात् । एवं मूलाज्ञानावस्थारूपाज्ञानानां नानात्वमङ्गीकृत्य घटावरकाज्ञानस्य घटाकारकवृत्त्या निवृत्तावपि नैश्चल्यावरकस्यानिवृत्त्या भ्रमविक्षेपादरणेऽपि पूर्वोक्तरीत्या पुरुषनिष्ठतैव तस्य वाच्येति चैतन्याभेदस्य पूर्ववदेवासिद्धेः । वृत्तेर्ज्ञानात्मकत्वमात्रकल्पनया तस्योत्पत्तिनाशशालित्वमात्रेण निर्वाहे विषयावरणतन्नानात्वकल्पनयोर्गुरुत्वादप्रामाणिकत्वाच्च । एतेनैव घटावरकाज्ञानगतावरणशक्तिमात्रनिवृत्तिर्न तु विक्षेपशक्तिनिवृत्तिरपीति पक्षो निरस्तो बोध्यः । नैश्चल्यावरणमन्तरेण भ्रमणविक्षेपासंभवादावरणशक्तिनिवर्तकतया अप्रयोजकत्वाच्च । जलप्रतिबिम्बितवृक्षाधोऽग्रत्वभ्रमे तु प्रतिबिम्बपदार्थस्यातिरिक्तत्वेन मूलसमीपवर्तिनि जले मूलस्य ततो विप्रकृष्टेऽग्रस्य प्रतिबिम्बात् प्रतिबिम्बत्वेनैवावगाहाद् भ्रमत्वस्यैव दुर्वचत्वेन

रश्मिः ।

दृष्टान्तबलेनेति भावः । **अस्येति** भ्रान्तस्यापीदमंशस्थानीयानुभवापत्तेः । **विषयाश्रितेति** शुक्तिरजतादिस्थल इत्यादिना पूर्वमुक्तस्य । विषयाश्रितं यच्चैतन्यं तदा**वरणपक्षस्य** । **एवेति** । षष्ठ्यन्तम् । अवधारणस्य । **उक्तेति** चिदुपरागपक्षदूषणावसरोक्तरीत्या । प्रमातर्यन्तःकरणावच्छिन्नचैतन्ये पुरुषपदवाच्ये । प्रमाणेऽन्तःकरणवृत्त्यवच्छिन्नचैतन्ये । तत्राप्यन्तःकरणचैतन्यं पुरुषः । प्रमेये विषयावच्छिन्नचैतन्ये विषयचैतन्याभेदेन वर्तमानः पुरुषः । **घटकुटीति** । 'घटः समाधिभेदेभ-शिरःकूटकुटेषु च'इति विश्वः । स्यात्कुटी कुम्भदास्यां च शरायां चित्रगुच्छक इति च । तथा च यथा कस्यचित्संन्यासिनः स्तेयकृतो वा स्वस्थाने व्याकुलस्यान्यत्र स्निग्धस्य घटकुट्याः समाधिभेदकुम्भदास्या निर्गतस्य संन्यासिनो योगिरूपस्योपनिषदमावर्तयेत् । आरणमावर्तयेदिति सं[न्या]सिधर्मेषु पाठात् । यथा वा तथा घटकुट्याः इभशिरःकुम्भदास्याः निर्गतस्य स्तेयकृतो गजकुम्भमुक्तान्यस्तेयकामस्यान्यदलभमानस्य तत्रैव प्रभातं तथा तवाननुभवसर्वानुभवगोचरत्वाभ्यां निर्गतस्यानुभवयत्किंचिदनुभवगोचरत्वकामस्य युक्तीरलभमानस्य तत्रैव अननुभवसर्वानुभवगोचरत्वयोः प्रभातम् । ननु यथा दृष्टं शुक्तिरजतवदिदमंशे आवरणभङ्गरजतांशेनेत्येवं किंचिज्ज्ञत्वदृष्टानुसारी चेत्तत्राहुः **शुक्तीति** । प्रमातृप्रमाणप्रमेयाणां तत्रापि सत्त्वात्तुल्यत्वम् । **मूलेति** मूलस्याज्ञानस्यावस्थारूपाण्यज्ञानानि तेषाम् । **भ्रमेति** । भ्रमरूपो विक्षेपस्तस्यादरणे । **पूर्वोक्तेति** । विषयावरणपक्षस्य दुष्टत्वपुरःसरं द्वितीयपक्षरीत्या । **एवकारेण** विषयनिष्ठता व्यवच्छिद्यते । **तस्येत्या**वरणस्य । **वाच्येति** इतिर्हेतौ । **पूर्ववदिति** नेदं युक्तं भातीत्यादिग्रन्थोक्तदूषणेनैव । **एवकारस्तु** न शुष्कतर्केभिनिवेशः कर्तव्य इत्यधिकयुक्तिव्यवच्छेदकः । **ज्ञानात्मेति** । मात्रच्प्रत्ययेन विषयावरणतन्नानात्वकल्पनयोर्व्यवच्छेदः क्रियते । **नन्विति** । आवरणशक्तिमात्रनिवृत्त्या घटावरकाज्ञानसत्त्वात्तस्य रजःशक्तेर्विक्षेपिकायाः सत्त्वान्नतु विक्षेपशक्तिरपीत्यर्थः । **भ्रमणेति** भ्रमणरूपविक्षेपस्तस्यासंभवात् । **जलेति** । कनीनिकादर्पणविशेषयोरपि प्रतिबिम्बितेत्यादिर्बोध्यः । प्रतिबिम्बत्वेनेत्येवकारो भ्रमविषयत्वेनावगाहव्यवच्छेदकः । **एवेति** । [प्र]तिबिम्बत्वेनानु-

१. चैतन्यस्य ।

भाष्यप्रकाशः ।

तत्रावरणादिकल्पनाया एवायोगाच्चेति दिक् ।

अतो जन्यज्ञानस्येन्द्रियान्वयव्यतिरेकानुसंधानदर्शनाच्छक्तिग्राहकेषु कोशादिषु, 'प्रेक्षोपलब्धिश्चित्संवित्' इति चिदादिभिः सह बुद्धेरैकार्थ्येन वृत्तेर्ज्ञानात्मकत्वनिश्चये तत्र ज्ञानोपचारपक्षस्यायुक्तत्वाच्च जन्यज्ञानमतिरिक्तमेव । तदुत्पत्तिप्रणाडी च पूर्वोक्तरीतिकैवेति निश्चयः । भगवत्साक्षात्कारे तु नैषा प्रणाडी । तस्य प्रमेयबलादेव भवनात् । नायमात्मेति श्रुताावितरसाधननिरासेनोपलक्षणविधया निरस्तत्वात् । उत्तरार्धे वरणस्य लाभसाधनत्वकथने स्वस्यैव तनुविवरणसाधनत्वोक्तेश्च । वरणं वाऽनुग्रहः । स च धर्मान्तरमेव, न तु फलदित्सा । 'यस्यानुग्रहमिच्छामि' इति वाक्यात् । स च भक्तिबीजभूतः । अतो 'भक्त्या मामभिजानाति', 'भक्त्या त्वनन्यया शक्यः', 'भक्त्याऽहमेकया ग्राह्यः' इत्यादिषु न विरोधः । अवतारदशायां तु मां सर्वे पश्यन्त्वित्याकारिकया सामान्येच्छयापि दर्शनम् । तत्रापि नानाविधाभिः यथा 'मल्लानामशनिः' इत्यादौ ।

रश्मिः ।

भवव्यवच्छेदकः । **आवरणादी**ति । एवकारो वृत्त्यावरणभङ्गव्यवच्छेदकः । **दि**गिति कुतर्काभिनिवेशनिषेधादिक्मात्रमुक्तमित्यर्थः । **अन्वये**ति । प्रसिद्धम् । **चिदादिभि**रिति चित् आदी चिदादी । चित् आदिर्यस्याः सा चिदादिः । चिदादी च चिदादिश्च चिदादयः, ताभिश्चिदादिभिः । **ज्ञानात्मके**ति ।

> 'यन्मायया बहिः क्षिप्ता ख्यायते बुद्धिरर्थवत् ।
> निवर्तते च यद्बोधात्तं नमामि जनार्दनम्' ॥ इति ।

ख्यातिवादमङ्गलाचरणाद्बहिःक्षेपविषयत्वेन बुद्धिरूपज्ञानात्मकत्वनिश्चये । **तत्रे**ति वृत्तौ । **एवकार**स्तु ज्ञानस्य जन्यत्वमीश्वराभेदविरुद्धमपि 'अजायमानो बहुधा विजायते' इति श्रुत्यविरुद्धमित्यनतिरिक्तत्वव्यवच्छेदकः । **पूर्वोक्ते**ति । ज्ञानप्रक्रियारम्भे तत्रायं क्रम इत्यादिनोक्तरीतिकैव । **एवकारेण** 'नैषा तर्केण मतिरापनेया' इति श्रुतेः श्रुत्यविरुद्धत्वाच्छ्रुतिविरुद्धपक्षो व्यवच्छिद्यते । **एवे**ति । एवकारः करणविषयव्यवच्छेदकः । तदेवाहुः **नाय**मिति । **उत्तरे**ति । 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्' इत्युत्तरार्धे । **स्वस्यै**वेति । आत्मपदेन कर्तृवाचकेन तथोक्तेश्च । 'तस्यैष आत्मा' इति जीवभेदकथनाज्जीवव्यवच्छेदक एवकारः । **नत्वि**ति । इच्छाया इच्छाकर्मत्वाभावात् । भक्तिलभ्यो वरणलभ्यो वेति विरोधमेकविषयत्वेन परिहरन्ति स्म **स चे**ति । श्रुत्युक्तोऽनुग्रहः । **न विरोध** इति भक्त्यनुग्रहयोः सहानवस्थानलक्षणो विरोधो न । **तत्रापी**ति सामान्येच्छायामपि । नानाविधा मल्लाः मामशनित्वेन पश्यन्तु, नरो मां नरवरत्वेन पश्यन्तु । स्त्रियो मां मूर्तिमत्स्मरत्वेन पश्यन्तु, गोपाः मां स्वजनत्वेन पश्यन्तु, असत्क्षितिभुजो मां शास्तृत्वेन पश्यन्तु । स्वपितरौ मां शिशुत्वेन पश्यताम् । भोजपतिर्मृत्युत्वेन पश्यतु । अविद्वांसो विराट्त्वेन पश्यन्तु । योगिनस्तत्त्वेन पश्यन्तु, वृष्णयः परदेवतात्वेन पश्यन्तु इत्येवंरूपाः । **मल्लाना**मिति ।

> '**मल्लानामशनि**र्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
> गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
> मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
> वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः ॥' इति श्लोकः ॥

भाष्यप्रकाशः ।

एवं च, भक्त्या सामान्येच्छया वेति द्वेधा दर्शनम् । उभयथाऽपि प्रमेयबलमेव कारणमिति न विरोधः । स्वसाधनसामग्र्यादिभिर्दर्शनज्ञानं त्वभिमानमात्रात् । अत एव 'अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्' इत्यादिश्रुतिः संगच्छते । 'मनसैवानुद्रष्टव्य' इत्यादावपि प्रमेयबलानुगृहीतमेव तदभिप्रेतमिति श्रुत्यन्तराऽविरोधायानुसंधेयमिति शुभम् । प्रकृतमनुसरामः ॥ १६ ॥

इति सप्तमं प्राणवतेत्यधिकरणम् ॥ ७ ॥

रश्मिः ।

एवं चेति । अवतारानवतारभेदेन पूर्णसाक्षात्कार उक्ते च । एवेति 'यतो वाचो निवर्तन्ते' इति श्रुतेरेवकारः । **न विरोध** इति कार्यकारणभावाद्भक्तिसामान्येच्छयोः सहानवस्थानलक्षणो विरोधो न । एवमवतारानवतारयोर्दर्शनप्रणाड्यावुक्त्वा स्वसेव्यविषय आहुः स्वेति । साधनानि तनुवित्तजा मानसीसेवा तद्रूपाणि । **आदि**नान्यानि श्रेयांसि । 'श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते' इति वाक्यात् । दर्शनज्ञानं तु परस्यैव । तत्राभिमानः कारकत्वाभावात् । स्वसेव्यज्ञानं तु नाभिमानमात्रात् । तत्र श्रुतिमाहुः **अत एवेति** । अभिमानमात्रादेव **विजानता**मिति । अभिमान-मात्रं नापितु यथार्थज्ञानमिति ज्ञानवताम् । 'यतो वाचो निवर्तन्ते' इति श्रुतिविरोधादविज्ञातम् । विज्ञातं यथार्थज्ञानाविषयत्वेन ज्ञातं यैस्तैः, तेऽविजानन्तस्तेषाम् । ननु दर्शनज्ञानस्याभिमानमात्रत्वे कदाप्यनिर्मोक्षप्रसङ्ग इति चेन्न । स्वसाधनेत्याद्युक्तमर्यादामार्गीयाणां व्यभिचारिण्या भक्तया तत्प्राप्तेः ।

'तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुश९समान आयुः प्रमोषीः' इति ।

तत् तच्छब्दवाच्यं त्वा त्वां यामि प्राप्नोमि । पद्भ्यां सेवे च । कीदृशं त्वां ब्रह्मणा प्रत्यहं मानसीसेवां कुर्वता वन्दमानं । सुपां सुः । वन्दनं सेवासमाप्तिद्योतकम् । तद् यजमान आशास्ते न तु तनुजादिसेवाविषयं करोति । हविर्भिर्विविधोपचारैः अहेडमानः हेड अनादरे । सेवायामादरं कुर्वन् । वरुण इहबोधी उरु शंसमानो यजमानः ज्ञानवान् कीर्तनभक्तिमांश्च । आयुःकालं प्रकर्षेण सूर्यात् मोषीः चोरितवान् छान्दसप्रयोगः प्रमोषीत् । 'आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तमयन्नसौ । ऋते तं यः क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तया' इति वाक्यात् । 'मनसैवानुद्रष्टव्यम्' । 'मानसी सा परा मता' । 'तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्' इति । एवंविधेषु न भक्तिर्नेच्छा न प्रमेयबलमिति तेषां संगतिमाहुः **मनसैवेति** । आदिशब्दार्थ आभासोक्तः । **प्रमेयेति** प्रमेयं भगवान् तस्य बलं भक्ति-स्तस्यानुगृहीतं मनः । संबन्धश्च निवेश्यता । तथा च प्रमेयबलनिवेश्यमनुगृहीतम् । 'तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्'' यथा भक्त्येश्वरे मनः' इति वाक्याभ्याम् । एवकारेणाननुगृहीतमशुद्धं मनो व्यव-च्छिद्यते । **तदिति** मनः । **श्रुत्यन्तरेति** । सा च 'भक्तिरस्य भजनं तदिहामुत्रफलभोगनैराश्येनामुष्मि-न्मनःकल्पनमेतदेव च नैःकर्म्यम्' इति । तथा चैतादृशमनोग्राह्यमिति भावः । श्रीकपिलवाक्यमपि 'मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोम्बुधौ । लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्' इति ॥१६॥

तदिन्द्रियाणि तद्व्यपदेशादन्यत्र श्रेष्ठात् ॥ १७ ॥ (२-४-८)

इदमत्र विचार्यते । इन्द्रियाणां प्राणाधीनसर्वव्यापारत्वात् तन्नामव्यपदेशाच्च प्राणवृत्तिरूपाणीन्द्रियाणि, तत्त्वान्तराणि वेति संशयः । तत्त्वान्तराण्येवेति सिद्धान्तः । तानीन्द्रियाणि तत्त्वान्तराणि । कुतः । तद्व्यपदेशात् । इन्द्रियशब्देन व्यपदेशात् । 'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च' इति भिन्नशब्दवाच्यानां क्वचिदेकशब्दवाच्यत्वेऽपि नैकत्वम् । आसन्येऽपि तर्हि भेदः स्यादित्यत आह अन्यत्र श्रेष्ठात् । तस्य ते यौगिकाः शब्दा इति ॥ १७ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

तदिन्द्रियाणि तद्व्यपदेशादन्यत्र श्रेष्ठात् ॥ १७ ॥ सूत्रप्रयोजनमाहुः इदमित्यादिना, सिद्धान्त इत्यन्तेन । पूर्वाधिकरणे इन्द्रियाणां प्राणाधीनसर्वव्यापारकत्वं सिद्धम् । श्रुतौ च मुख्यं प्राणमिन्द्रियाणि चोपक्रम्य, हन्तास्यैव सर्वे रूपं भवामःइति त एतस्यैव सर्वे रूपमभवंस्तस्मादेत एतेनाख्यायन्ते प्राणा इति' तन्नामव्यपदेशाच्च प्राणवृत्तिरूपाणीन्द्रियाणि उत रूपभवनप्राक्कालेऽपि सत्त्वात् तत्त्वान्तराणि वेति संशयः । तत्र पूर्वं तत्त्वान्तरत्वेऽपि पश्चादेतद्रूपभवनश्रावणेन जन्मान्तरवत् पूर्वरूपत्यागालाभात् पूर्वोक्तयुक्तिभ्यां चेदानीं प्राणवृत्तिरूपाण्येवेति प्राप्ते, तत्त्वान्तराण्येवेति सिद्धान्त इत्यर्थः । तद् व्युत्पादनाय सूत्रं व्याकुर्वन्ति तानीत्यादि । सूत्रे तदिति लुप्तविभक्तिकं पदं तानीत्यनेन व्याख्यातम् । अन्ये तु त इति पठन्ति । इन्द्रियशब्देनेत्यादि । तथाच यथा श्रुतौ इन्द्रियाणीति व्यपदेशस्तथेदानीमपि लोके शास्त्रे च व्यपदेशः । अतो नात्र जन्मान्तरन्यायः संभवति किंतु भृत्यानां स्वामिस्वभावानुसरणमिव प्राणस्वभावानुसरणमेव तद्रूपभवनम् । नच प्राणशब्दव्यपदेशविरोधः । द्रोणकर्णादिषु कुरुशब्दव्यपदेशवद् गौण्यापि तत्संभवात् । अतो भिन्नशब्दवाच्यानां क्वचिदेकशब्दवाच्यत्वेपि नैकत्वमिति सिद्धमित्यर्थः अत्राशङ्कते । आसन्येऽपीत्यादि । समादधते तस्य ते इति ।

रश्मिः ।

तदिन्द्रियाणि तद्व्यपदेशादन्यत्र श्रेष्ठात् ॥ १७ ॥ सिद्धमिति । प्राणवताशब्दादित्यत्रस्पष्टम् । श्रुताविति सप्तान्नब्राह्मणे । 'तानि ज्ञातुं दधिरेऽयं वै श्रेष्ठो यः संचरंश्चाचरंश्च न व्यथतेऽथो नरिष्यति । हन्तास्यैव सर्वे रूपं भवामेति त एतस्यैव सर्वे रूपमभवंस्तस्मादेत एतेनाख्यायन्ते प्राणा इति तेन हवाव तत्कुलमाख्यायन्ते यस्मिन्कुले भवति य एवं वेद य उहैवं विदा स्पर्धतेनुशुष्य हैवान्ततो म्रियत इत्यध्यात्मम्' इति श्रुतौ । अस्यैवेति प्राणस्य । भवामेति शंकरभाष्ये पाठः । एत इति प्राणाः । एतेन प्राणपदेनाख्यायन्ते । प्राक्काल इति तच्छ्रुतावेव । पूर्वोक्तेति । हन्तास्यैवेत्याद्युक्तयुक्तिभ्याम् । इतीति इति पूर्वपक्षे प्राप्ते । लुप्तेति । अव्ययमित्यर्थः । अन्य इति । शंकराचार्यादयः ते मुख्येतरे प्राणा इति व्याचक्षते । श्रुतिविरोधाभासं परिहरन्ति स्म अत इत्यादिना श्रुतिलोकशास्त्रेभ्यः । शास्त्रं तु भवाम, अभवन्नित्यत्र भूसत्तायामिति न तु भूउत्पत्ताविति । जन्मान्तरेति । पूर्वं तत्त्वान्तरत्वेपीत्याद्युक्तः । कुर्वित्यादि । कौरवसैन्यसागरमित्यत्र । कुरोरिदं कौरवं सैन्यं तदेव सागरस्तमित्यर्थात् । भाष्ये चेतीत्यत्रेतिशब्दो हेता-

भेदश्रुतेः ॥ १८ ॥

यत्रापि प्राणशब्दप्रयोगस्तत्रापि भेदेन श्रूयते। तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्तीति ॥ १८ ॥

वैलक्षण्याच्च ॥ १९ ॥

वैलक्षण्यं च प्राणस्य चेन्द्रियाणां च। सुप्तेषु वागादिषु प्राणो जागर्ति। स्वामिसेवकवच्चानेकं वैलक्षण्यम् ॥ १९ ॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्थपादे अष्टमं तदिन्द्रियाधिकरणम् ॥ ८ ॥

संज्ञामूर्तिक्लृप्तिस्तु त्रिवृत्कुर्वत उपदेशात् ॥ २० ॥ (२-४-९)

भूतभौतिकसृष्टिः परमेश्वरादेवेति निर्णीय नामरूपव्याकरणमपि परमेश्वरादेवेति निश्चयार्थमधिकरणारम्भः। लोके नामरूपकरणं कुलालादिजीवेषु प्रसिद्धमिति। अलौकिकेऽपि स्थावरजङ्गमे मयूरादिसंज्ञां मूर्तिं च जीवादेव हिरण्यगर्भादेर्भविष्यतीति वह्न्यादिदेवानां जीवरूपाणामेव वागादिरूपेणानुप्रवेशात् तत्साह-

---

भाष्यप्रकाशः।

आसन्यस्य प्राणापानसमानव्यानोदानशब्दाः पाचकपाठकादिशब्दवद्यौगिका अतो न भेदका इत्यर्थः। उक्तोपोद्बलनाय सूत्रद्वयमित्याशयेनाहुः ॥ १७ ॥

भेदश्रुतेः ॥ १८ ॥ वैलक्षण्याच्च ॥ १९ ॥ एतत्सूत्रद्वयं तु निगदव्याख्यातेनैव भाष्येण व्याख्यातम्। प्राणस्य जागरणं तु 'प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरुषे जाग्रति' इति प्रश्नोपनिषदि श्रावितम्। स्वामिसेवकवत् स्थितिस्तु प्राणवतेत्यधिकरण एव सिद्धेत्यनवद्यम् ॥ १८ ॥ १९ ॥

इत्यष्टमं तदिन्द्रियाणि तद्व्यपदेशादित्यधिकरणम् ॥ ८ ॥

संज्ञामूर्तिक्लृप्तिस्तु त्रिवृत्कुर्वत उपदेशात् ॥ २० ॥ अधिकरणप्रयोजनमाहुः भूतभौतिकेत्यादि। नन्वत्र कुतः संशयो येनायमारम्भ इत्यत आहुः लोक इत्यादि। तथाच नामादिव्याकरणस्य उभयत्रापि शक्यवचनत्वात् संशय इत्यर्थः। तुशब्दव्याख्यानमुखेन पूर्वपक्षमाहुः। वह्न्यादीत्यादि। नामव्याकरणं वाक्साध्यं, रूपव्याकरणं क्रियासाध्यम्, उभयमप्य-

रश्मिः।

वित्याशयेन भिन्नेत्यादि भाष्यं विवृण्वन्ति स्म अतो भिन्नेति। अत इति संज्ञाशब्दत्वाभावात्। पूर्वतन्त्रे संज्ञा भेदिकेति सिद्धम्। उक्तेति। तत्त्वान्तरत्वोपोद्बलनाय ॥ १७ ॥

भेदश्रुतेः ॥ १८ ॥ वैलक्षण्याच्च ॥ १९ ॥ निगदेति। निगदं व्याख्यातं येन भाष्येण। व्याख्यातं व्याख्यातप्रायम्। एवकारस्तु प्रकाशव्यवच्छेदकः। जाग्रतीति बहुवचनान्तं तिङन्तम्। एवेति अन्याधिकरणव्यवच्छेदक एवकारः ॥ १८ ॥ १९ ॥

इत्यष्टमं तदिन्द्रियाणि तद्व्यपदेशादित्यधिकरणम् ॥ ८ ॥

संज्ञामूर्तिक्लृप्तिस्तु त्रिवृत्कुर्वत उपदेशात् ॥२०॥ भूतभौतिकेत्यादीति। भूतानि महाभूतानि भौतिकानि शरीराणि। यद्वा। 'आकाशशरीरं ब्रह्म इति श्रुतेः सर्वं भौतिकम्। एवकारद्वयं प्रकृतिव्यवच्छेदकम्। उभयत्रेति। प्रकृतौ पुरुषे च। 'शुकाश्च हरिता येन हंसाश्च धवलीकृताः' इति वाक्यात्। भाष्ये मयूरादिसंज्ञामित्यादि। वह्न्यादीत्यादीति जीवादशक्यं समाहितम्।

षर्येण नामरूपयोरपि जीव एव कर्ता भविष्यतीत्याशङ्कां निराकरोति तुशब्दः।

संज्ञामूर्त्योः कृप्तिर्नामरूपयोर्निर्माणम् । त्रिवृत्कुर्वतः यस्त्रिवृत्करोति तस्मात्। 'सेयं देवतैक्षत हन्ताऽहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति। तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकं करवाणि' इति त्रिवृत्कर्ता परमेश्वरः । स एव नामरूपयोरपि कर्ता । कुतः । उपदेशात्। उप समीपे

भाष्यप्रकाशः ।

नुप्रवेश उक्तस्तथैव तेन तेन रूपेणान्येषां च। तत्र यद्यपीन्द्रो नोक्तस्तथापि समानन्यायात् सोऽपि बलरूपेण प्रविष्टो बोध्यः। एवं सति तेषां जीवानां तत्तत्कार्यार्थमेवानुप्रवेशात् तत्साहचर्येण नामरूपव्याकरणयोरपि स स जीव एव कर्ता। अथैकवचनव्याकोपान्नेदं रोचते, तदा जीवसमष्टिरूपो हिरण्यगर्भ एव तत्कर्ताऽस्तु। ईक्षणप्रकारान्तःप्रविष्टा जीवेनेति तृतीया तु, चारेण परबलं प्रविश्याकलयामीतिवदुपपत्स्यते। अतः परमेश्वरः प्रयोजको भवतु। कर्ता तु तयोर्जीव एव प्रवेष्टृत्वादित्याशङ्कां निराचष्टे तुशब्द इत्यर्थः। सिद्धान्तं वक्तुं सूत्रं व्याकुर्वन्ति संज्ञेत्यादि। सत्यं जीवेऽपि लोकन्यायेन सामर्थ्यवशान्नामरूपव्याकर्तृत्वं वक्तुं शक्यते, तथापि श्रुतौ त्रिवृत्करणेन सहैव पूर्वं नामरूपव्याकरणमुपदिष्टं, तदा न जीवस्य शरीरसंबन्ध इति तदानीं

रश्मिः ।

एवकारश्छान्दोग्यात्। हिरण्यगर्भादेरिति। पूर्वपक्षत्वाज्जीवत्वम्। आदिना शिवविष्णू। अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति छान्दोग्यादाहुः नामेति । क्रियेति । यथा गोवर्धनोद्धरणरूपव्याकरणं गोवर्धनोद्धरणक्रियासाध्यम् । ईश्वरस्यैव सर्वरूपत्वात् । अन्येषामिति देवानाम्। तथैवेति एवकारः प्रकारान्तरव्यवच्छेदकः। वह्न्यादीत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म एवं सतीति। एवेति समानन्यायादेवकारः । जीव एवेति छान्दोग्ये जीवपदादेवकारो ब्रह्मव्यवच्छेदकः। एकेत्यादि सेयं देवतैक्षतेत्येकवचनव्याकोपात् । रोचत इति तुभ्यं सिद्धान्तिने रोचते। जीवेति स्वराट्। एवकारो ब्रह्मव्यवच्छेदकः। अनेन जीवेनात्मनेत्यादीक्षणप्रकारः । चारेणेति चर एव चारो द्यूतप्रभेदस्तेन परबलं प्रविश्याहं राजाकलयामि तद्वदनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे अहं व्याकरवाणीत्यन्तःकरण उपपत्स्यत इत्यर्थः। यद्वा। चरति परबलं प्रविश्येति चरः। अच्। चर एव चारः। लोकेऽत्र चारकर्तृकमेव सैन्यसंकलनं हेतुकर्तृत्वाद्राजात्मन्यध्यारोपयति। आकलयामीत्युत्तमपुरुषप्रयोगात्। एवं जीवकर्तृकं सन्नामरूपव्याकरणं हेतुकर्तृत्वाद्देवतात्मन्यध्यारोपयति व्याकरवाणीत्युत्तमपुरुषप्रयोगात्तद्वदित्यर्थः। जीव एवेति दृष्टान्तसत्त्वादेवकारः। प्रवेष्टृत्वादिति। ब्रह्म तु प्रयोजककर्त्रिति भावः। सिद्धान्ते साध्यं भाष्यं स्फुटम्। साधनभाष्ये उप समीप इत्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म सत्यमित्यादि । अत्र विवरणं कर्तृत्वादित्यन्तस्यार्थं पिण्डीकृत्य वर्णनम्। लोकेति लोके नामेत्याद्युक्तेन तेन । जीवेनात्मनेति पदयोः सामर्थ्यवशात् । सामर्थ्यं शक्तिः। त्रिवृत्करणेन सहैवेति एकवाक्य इति भाष्यस्यार्थः। एकस्मिन् वाक्य इति भाष्यार्थः। वाक्यं तूक्तम्। उपदिष्टमिति। प्रतिज्ञानादिति भाष्यार्थः। हेतुपञ्चमीरहितम्। उपदेशः सामान्यवाक्यम्। प्रतिज्ञा विशेषवाक्यम्। स एव नामरूपयोरपि कर्तेति । यथा साध्यवत्तया पक्षवचनं पर्वतो वह्निमानिति। भाष्येपि। स एवेति पक्षः नामरूपयोरपि कर्तेति साध्यमिति साध्यवत्तया

एकवाक्ये उभयकरणस्य प्रतिज्ञानात् । जीवस्य तु त्रिवृत्करणानन्तरं शरीरसंबन्धे कर्तृत्वात् । तस्मान्नामरूपप्रपञ्चस्य भगवानेव कर्तेति सिद्धम् ॥ २० ॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्थपादे नवमं संज्ञामूर्तिक्लृप्तीत्यधिकरणम् ॥ ९ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

जीवस्य तत्कर्तृत्वं न वक्तुं शक्यते । शरीरसंबन्धोत्तरमेव तस्य बाह्यक्रियाकर्तृत्वस्य दृष्टत्वात्, त्रिवृत्करणसमये हिरण्यगर्भस्याप्यनुत्पन्नत्वात् । यत्पुनः पुराणेषु

'नाम रूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः' ॥ इति
'सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः ।
विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक्' ॥

इति पठ्यते । तदपि पाश्चात्यमेव वृत्तम् । 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै' इति श्रौतलिङ्गात् । वेदपाठनात् पूर्वमेव ब्रह्मनामरूपयोः करणात् । अत्रापि तेजोऽबन्नदेवतानां प्रागेव करणाच्च । नच ब्रह्मणः प्रवेशाभावः शङ्क्यः । द्वा सुपर्णादिश्रुतिसिद्धत्वात् । नापि व्यापकत्वस्य बाधकत्वं शङ्क्यम्, विरुद्धधर्माधारत्वस्य प्रागेव साधितत्वात् । नच प्रवेशो ज्ञानेच्छाकृतिरूपमायावृत्त्यौपाधिक इति शङ्क्यम् । शब्दादेवानुपपत्तिपरिहारेणौपाधिकत्वे मानाभावात् ।

रश्मिः ।

पक्षवचनमस्त्येव । स कर्ता । **उपदेशात्** प्रतिज्ञानात् । यन्नैवं तन्नैवं घटवत् । **जीवस्येत्यादि**भाष्यार्थमाहुः **तदेति** । **कृत्यानामिति** जीवकृत्यानां धर्मादीनाम् । **स** इति हिरण्यगर्भः । **अहमिति** ब्रह्मा । **तस्मा** इति ब्रह्मणे । **श्रौतेति** श्रुतिर्हि गोपालतापिनीये । श्रुत्या गृह्यते श्रौतं शैषिकोण् श्रौतं क्रमलिङ्गं तस्मात् । तथा च पुराणेषु यतः प्राप्तनामरूपः सः नामरूपं चेत्यादि चकारेत्यर्थः । तमेवाहुः **वेदपाठनादिति** । **पूर्वमेवेति** । अन्यथा श्रुत्युक्तक्रमेण पौराणक्रमबाधापत्तेर्बोधव्यवच्छेदक एवकारः । **तेजोबन्नेति** । 'तत्तेज ऐक्षत' । 'ता आप ऐक्षन्त बह्व्यः स्याम प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्तेति तिस्रो देवता भवन्ति । हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य'इति श्रुतेः । **प्रागेवेति** 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इत्युपक्रम्य 'तत्तेजोऽसृजत' इत्यादिश्रुतेः । एवकार उत्तरकरणं व्यवच्छिनत्ति । 'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति' इति । अभिचाकशीति पश्यति । **ब्रह्मणः प्रवेशेति** अनेन जीवेनात्मनेति सहार्थतृतीयया प्रविश्येत्यत्र ब्रह्मणोपि कर्तृत्वात्प्राप्तो ब्रह्मप्रवेशस्तस्याभावः । **द्वेति** 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते' । **बाधकत्वमिति** परिच्छिन्नत्वं प्रवेशे कारणं तदभावो व्यापकत्वं बाधकं तत्त्वम् । **प्रागेवेति** सर्वोपेत्रधिकरणे । **एवकारोप्यर्थे** । उभयव्यपदेशाधिकरणेपि विरुद्धधर्माधारत्वस्य साधितत्वात् । श्रुतिव्याख्यानं दूषयितुमुपचिक्षिपुर्नच **प्रेत्यादिना** । ज्ञानं सत्त्वमिच्छा राजसी कृतिस्तामसी तद्रूपाः याः मायाया वृत्तयः । तदौपाधयस्तत्र भवः । **शब्दादेवेति** द्वा सुपर्णेति **शब्दादेव** प्रमितेना**नुपपत्तिपरिहारेणे**त्यर्थः । अनेन श्रुत्यर्थोपि जीवेनेति सहार्थतृतीयामभिप्रेत्य व्याकृत इव बोध्यः । **गोविन्दानन्देन** तु पादान्वयस्य पादार्थयोग्यताधीनतया जीवरूपेण प्रविश्याहमेव व्याकरवाणीत्यन्वय इति **रत्नप्रभायामुक्तम्** । एवकारेण प्रत्यक्षादिव्यवच्छेदः । **तस्मादित्यादि** भाष्यं विवृण्वन्ति

मांसादि भौमं यथाशब्दमितरयोश्च ॥ २१ ॥ (२-४-१०)

इदमिदानीं विचार्यते । 'अन्नमशितं त्रेधा विधीयते । तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत् पुरीषं भवति, यो मध्यमस्तन्मांसं, योऽणिष्ठस्तन्मनः । आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते । तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं, यो मध्यमस्तल्लोहितं, योऽणिष्ठः स प्राणः । तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते । तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति, यो मध्यमः सा मज्जा, योऽणिष्ठः सा वाक् । अन्नमयं हि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वाक्' इति । तत्र संशयः । वाक्प्राणमनांसि किं भौतिकानि आहोस्वित् स्वतन्त्राणीति ? 'एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च' इति श्रुतिविप्रतिषेधात् संशयः । त्रिवृत्करणप्रसङ्गेनोदितामाशङ्कां निराकरोति ।

भाष्यप्रकाशः ।

अतः, 'सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते' इति श्रुत्यन्तराच्च भगवानेव पूर्वं नामरूपकर्ता । जीवानां तु पश्चादेव भगवदाविष्टानां तथात्वम् । न चादिसृष्टौ भगवतैव तत्करणे तदानीं जीवप्रवेशवैयर्थ्यम् । तस्य भोक्तृत्वात् तदर्थमेवैतत्करणेन तस्यावश्यकत्वादिति । तस्माद् भगवानेव नामरूपप्रपञ्चस्य कर्तेति सिद्धमित्यर्थः ॥ २० ॥

इति नवमं संज्ञामूर्त्यधिकरणम् ॥ ९ ॥

मांसादि भौमं यथाशब्दमितरयोश्च ॥ २१ ॥ अधिकरणप्रयोजनमाहुः इदमित्यादि । इदमिति वक्ष्यमाणं वाक्यम् । संशयं तद्बीजं चाहुः तत्रेत्यादि । नन्विन्द्रियविचार एवेदं विचारणीयम्, इहास्य कुतो विचार इत्यत आहुः त्रिवृदित्यादि । उक्तश्रुति-

रश्मिः ।

स्म अत इति । श्रुत्यन्तरादिति श्रुतिः 'यो ब्रह्माणम्' इति पूर्वमुक्ता तस्या अन्या श्रुतिः श्रुत्यन्तरं तस्मात् । महानारायणेऽस्ति । एवेति हिरण्यगर्भव्यवच्छेदकः । जीवानामिति । तुर्हिरण्यगर्भादिव्यावर्तकः । पश्चादेवेति क्वापि जीवत्वस्य पूर्वमश्रवणादेवकारः पूर्वव्यवच्छेदकः । भगवदिति । अनेन जीवेनात्मनेति सहार्थे तृतीयायाः । मय्येव सकलं जातमित्यादिषु दृष्टानाम् । आदीति पुरुषविधब्राह्मणे 'आत्मैवेदमग्र आसीत्'इत्युपक्रम्य 'द्वितीयाद्वै भयं भवति'इत्यन्तमादिसृष्टिः । न च भयाहंकारापहतपाप्मत्वभयसृष्टिर्न तु जगदुपयोगिनीति वाच्यम् । कारणगुणाः कार्यगुणानारम्भन्ते इति नैयायिकप्रवादात् । आत्मैवेत्यत्र सूक्ष्मतत्त्वाङ्गीकारात् । अन्यथा प्रपञ्चेऽष्टादशतत्त्वानि न प्रतीयेरन् । एवेति सृष्टेः कारणरूपत्वेन जीवानामक्षरकार्यत्वेनाभावादेवकारः । मुक्तजीवानां भगवत्त्वादन्येषामक्षरात्मकत्वात् । तस्येति जीवस्य । तदर्थमेवेति एवकारेण ब्रह्मव्यवच्छेदः । 'न तदश्नोति कश्चन न तदश्नोति कंचन'इति श्रुतेर्ब्रह्मणोऽशनाभावात् । भक्तमनोरथपूरकत्वेन संभोगप्राप्तिरिति चेन्न वैशेष्यादित्यत्र संभोग उक्तो भगवतः । तस्येति प्रवेशस्य ॥ २० ॥

नवमं संज्ञामूर्तिरित्यधिकरणम् ॥ ९ ॥

मांसादि भौमं यथाशब्दमितरयोश्च ॥ २१ ॥ वाक्यमिति वाक्ये तेजोघृतादि । 'तेजो वै घृतम्' इति श्रुतेः । तत्रेत्यादीति । ननु भौतिकत्वं स्पष्टम्, कुतः संशय इत्यत आहुः

तत्र पूर्वपक्षमाह । **मांसादि भौमं,** पुरीषमांसादि तेजोऽबन्नप्रकृतिकम् । कुतः । **यथाशब्दम् ।** अन्नमशितमित्यादिश्रुतितो निःसंदिग्धं प्रतिपादनात् । किमतो यद्येवं तदाह **इतरयोश्च ।** वाचि तुल्यत्वान्न संदेहः । इतरयोर्मनःप्राणयोरपि भौतिकत्वं यथाशब्दम् । उद्गमश्रुतिस्तु स्तुतित्वेनानुवादपरा भविष्यति । उपपादकश्रुतिबाधात् । तस्माद् भौतिकान्येव मनःप्रभृतीनीत्येवं प्राप्ते ॥ २१ ॥

उच्यते—

भाष्यप्रकाशः ।

विप्रतिषेधजनितामाशङ्कां त्रिवृत्करणप्रसङ्गेनेदानीं निराचष्ट इत्यर्थः । तत्रेति सूत्रे । ननु सूत्रे तद्बोधकपदाभावात् कथमस्यैतद्विषयत्वमित्याकाङ्क्षायां **मांसादीत्यादिपदेन** तत्संग्रहादेतस्य विषयत्वावगम इत्याशयेन व्याकुर्वन्ति **मांसादीत्यादि** । 'भूमिः स्थितौ स्थानमात्रे' इति कोशाद् भौमपदं स्वोत्पत्तिस्थानजन्यत्वपरम् । तथाचात्रोक्तं तथेत्यर्थः । वाचीत्यादि । अत्र 'तेजोमयी वाक्,' ऐतरेये, 'अग्निर्वाग् भूत्वा' इति श्रुतिद्वयेऽपि वाचि तेजोमयत्वस्य तुल्यत्वान्न संदेहः । इतरयोर्मनःप्राणयोस्तु ऐतरेये, वायुः प्राणो भूत्वेति चन्द्रमा मनो भूत्वेत्यन्यथा श्रावणेऽपि भौतिकत्वं छान्दोग्योदितं शब्दमनतिक्रम्यैव मन्तव्यम् । नचोद्गमश्रुतिविरोधान्न भौतिकत्वमिति शङ्क्यम् । सा तु मुण्डके अक्षरात् परं स्तोतुं प्रवृत्ता, न तु वागादीनां स्वरूपं

रश्मिः ।

एतस्मादिति, ब्रह्मणः । **श्रुतिविप्रती**ति श्रुतितुल्यबलविरोधादित्यर्थः । 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' । तुल्यबलविरोधे परं कार्यं स्यादित्यत्र तथार्थात् । **आशङ्का**मिति । स्वजनकसंशये लाक्षणिकं पदम् । भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **त्रिवृ**दित्यादि । **त्रिवृत्करणप्रसङ्गेनो**दितामाशङ्कां पूर्वपक्षरूपामिदानीं **निराचष्ट** इत्यर्थः । **अस्यै**तदिति सूत्रस्य, **एतद्विषयत्वम्** पूर्वपक्षविषयत्वम् । **मांसादीत्यादि** मांसादीत्यादि यस्य पदस्य तेन भौमपदेनेत्यर्थः । **तदि**ति पूर्वपक्षसंग्रहात् । भाष्येऽग्रे स्पष्टम् । **एतस्ये**ति भौममिति पूर्वपक्षस्य । **कोशा**दिति विश्वात् । स्थितिस्थले क्वचित्क्षितिरिति पाठः । **भौमे**ति भूमौ जातं भौमम् । 'तत्र जातः' इत्यण् । भौमं च तत् पदमिति कर्मधारयः । **स्वं** मांसादि **तदुत्पत्तिस्थानं** भूम्यप्तेजोरूपं तज्जन्यत्वपरम् । कालाविवक्षया जातार्थत्वम् । **तथा चात्रे**ति **अत्र** श्रुतावुक्तं **तथा** पूर्वपक्षत्वेन ज्ञेयम् । **मांसादी**ति भाष्ये सौत्रं पदम् । मांसस्यादि छान्दोग्योक्तं पुरीषम् । मांस आदिर्यासां मनआदीनां ता मांसादयः मांसादि च मांसादयश्चैतेषां समाहारो मांसादीत्येकशेषम् । सूत्रे न्यूनता निग्रहस्थानं दोषं पुरीषादीति वक्तव्ये मांसादीत्युक्ते प्राप्तं परिहर्तुं व्याख्यायते **तेजोबन्नप्रकृतिक**मिति भाष्यात् । तेन तथेत्यर्थ इत्यर्थः । **यथाशब्द**मिति शब्दमनतिक्रम्येति यथाशब्दम् । अव्ययीभावः । शब्दानतिक्रमस्तु निःसंदिग्धप्रतिपादने भवति । यथा 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इत्यत्र, संदिग्धप्रतिपादने तु शब्दातिक्रमो भवति । यथा सामान्यापत्तिसूत्रे । अतो यथाशब्दमित्यत्र शब्दो निःसंदिग्धप्रतिपादको गृह्यते तमनतिक्रम्य यथाशब्दम् । **भूत्वे**ति मुखं प्राविशदित्यन्वयः । **भूत्वे**ति श्रुतिद्वयान्वय ऐतरेये द्रष्टव्यः । **एवे**ति शब्दातिक्रमव्यवच्छेदक एवकारः ऐतरेयैकवाक्यतया । किं तु विकल्पः । भौतिकत्वं चाजन्यसत्त्वं च । **उद्गमे**ति भाष्यं

वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः ॥ २२ ॥

अन्नादिभिर्विशेष्यते मनःप्रभृति सम्यक् कार्यक्षमं भवति । तथा दर्शनादुपादानाच्च । अतो वैशेष्यादेव हेतोरन्नमयत्वादिवादः ।

ननु कथमेतदवगम्यते । वैशेष्याद् गौणो वाद इत्युच्यते । अथात्मनेऽन्नाद्य-

---

भाष्यप्रकाशः ।

वक्तुम् । अतः स्तुतित्वेनैतदनुवादपरा भविष्यति । एतदनुवादेनात्र ब्रह्मणः प्रयोजकत्वबोधनेऽप्युपपत्तेः नच श्रुतित्वाविशेषे कथं तस्या एवान्यथानयनमिति शङ्क्यम् । उपपादकस्य त्रेधा विधानस्य या श्रुतिस्तस्या बाधात् । ऐतरेयोक्तानादरेऽपीदमेव बीजम् । शेषं स्फुटम् ॥ २१ ॥

वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः ॥ २२ ॥ सिद्धान्तसूत्रं व्याकुर्वन्ति **अन्नादिभि-रित्यादि** । यादृगन्नमश्नाति तादृगेवाशितुर्मनो भवतीति दर्शनं तथादर्शनं, पञ्चदशाहानि माशीरित्यारभ्य, साऽन्नेनोपसमाहिता प्राज्वालीदित्यन्तेन पोषणादेव कार्यक्षमत्वोपपादनमुपपादनम्, ताभ्यां तथेति, वाक्प्राणस्थल उपपादनाभावेऽपि समानन्यायात् तेजोमयत्वापोमयत्व-वादो बोध्यः । अतो विशेषणं विशेषस्तस्य भावो वैशेष्यं तस्मादेव तथेत्यर्थः । अनुपपादितस्थले शङ्कते **नन्वित्यादि** । समादधते **अथेत्यादि** । श्रुतिस्तूद्गीथब्राह्मणस्था । अथात्मनेऽन्नाद्य-

रश्मिः ।

विवरीतुमाहुः **न चेत्यादि** । **नेति** । किं तु साक्षाद्ब्रह्मत्वम् । **स्येति** 'एतस्माज्जायते प्राणः' इति श्रुतिः । **अक्षरादिति** द्वितीयमुण्डके 'अक्षरात्परतः परः' इति तत्पूर्वश्रुतेरक्षरात्परं स्तोतुम् । **तदन्विति** । एतस्मादिति पदेन पूर्वश्रुत्यनुवादपरा । ननु तथापि मनसो भौतिकत्वं कथमिति चेत्तत्राहुः **एतदिति** । अक्षरात्परतः परस्यैतस्मात्पदेनानुवादेनात्र श्रुतौ । एतस्मादिति पञ्चम्याः प्रयोजकत्वार्थपरत्वेऽपि क्षतिविरहात् ब्रह्मणः प्रयोजकत्वबोधनेप्युपपत्तेर्न भौतिकत्वमित्युक्तभौतिकत्वाभावो न । छान्दोग्ये सदेवेत्यत्र सतस्तेजस्तेजस आपः अद्भ्योन्नमित्यन्नमयं मनोन्नमयमिति भौममिति । **उपपादकेति** भाष्यं विवरीतुमाहुः **न चेति** । **तस्या एव** मुण्डकश्रुतेरेव । एवकारस्त्रेधाविधायकश्रुतिव्यव-च्छेदकः । उपपादकापेक्षयानुपपादकमुण्डकवाक्ययुक्त इति भावः । **इदमेवेति** त्रेधाऽविधानमेव । अनुपपादकत्वं वा । **बीजं** कारणम् ॥ २१ ॥

वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः ॥ २२ ॥ तथादर्शनादित्यादिभाष्यं विवृण्वन्ति स्म **यादृगित्यादि** । **माशीरिति** माशनं कार्षीः । **साऽन्नेनेति** साऽतिशिष्टा कलान्नेन मनोरूपेणोप-समाहिता दीप्तेत्यर्थः । **पोषेति** । एवकारः प्रत्यक्षसंवादात् । **कार्येति** छान्दोग्ये कार्यक्षमत्वं वेदानुभवक्षमत्वं तस्योपपादनम् । **तथेति** अन्नादिभिर्मनःप्रभृतिर्विशेष्यत इत्यर्थः । 'अन्नमय५हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागि'त्यन्नादयो मनःप्रभृतयश्च । **उपपादनेति** 'एव५हि सौम्य ते षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टाऽभूत् सान्नेनोपसमाहिता प्राज्वलीत्तयैतर्हि वेदाननुभव-स्यन्नमय५हि सौम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति तद्धास्य विजिज्ञाविति विजिज्ञावि'ति श्रुतौ स्थलद्वय **उपपादनाभावेपी**त्यर्थः । **तेज इत्यादि** । अम्मयत्वेति वक्तव्ये आपोमयत्वेति श्रुत्यनुवादकं पदम् । **अत इत्यादि** भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **अत इत्यादिना** । **एवकारः** स्वभावं व्यवच्छिनत्ति । न स्वभावादित्यर्थः । **अनुपेति** वाक्प्राणस्थले । मनस्तूपपादितम् 'एव५हि सोम्य' इत्याद्युक्तश्रुतौ ।

मागायदित्यत्र प्राण एव सर्वस्यान्नस्यात्ता निर्दिष्टः । स कथं तत्परिणामकार्यं स्यात् । वागादयश्च तत्रान्नार्थमनुप्रविष्टाः । सृष्टौ प्रथमतो भिन्नतया निर्देशात् । अतो न भौतिकानि मनःप्रभृतीनि, किंतु तत्त्वान्तराणीति सिद्धम् । तद्वाद इति वीप्सा अध्यायसमाप्तिसूचिका ॥ २२ ॥

इति द्वितीयाध्याये चतुर्थपादे दशमं मांसादिभौममित्यधिकरणम् ॥ १० ॥

इति श्रीवेदव्यासमतवर्तिश्रीवल्लभाचार्यविरचिते ब्रह्मसूत्राणुभाष्ये द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥ २ ॥ ४ ॥

भाष्यप्रकाशः ।

मागायद्यत्किंचान्नमद्यतेऽनेनैव तदद्यते इह प्रतितिष्ठतीति । अर्थस्तु यथा वागादिभिरात्मार्थमागानं कृतं तथा मुख्यः प्राणोऽपि त्रिषु पवमानेषु देवार्थं गानं कृत्वा, अथानन्तरमवशिष्टेषु नवसु स्तोत्रेष्वात्मन आत्मार्थम् । अन्नाद्यम्, अन्नं च तदाद्यं च आगायत् । तस्येदं निदर्शनम् । यत्कि-

रश्मिः ।

अतो न संशयास्पदं यतः संशयोत्तरं या शङ्का स्यादित्यर्थः । श्रौतो वादो न गौणो भवितुमर्हति उपपादितत्वात् । अनुपपादितस्तु वादो गौणो भवति । यथाऽजामेकां लोहितकृष्णरूपामित्यत्र । कल्पनोपदेशसूत्रे स्पष्टम् । अथेत्यादीति । ननूच्यत इत्यादीति कुतो नोक्तमिति चेन्न प्रतिज्ञाशब्दत्वेन समाधानत्वाभावात् । यथा वागित्यादि । अयमर्थः । देवासुरस्पर्धानन्तरं देवैरुक्ता वाक् कथेत्यगायत् । 'तत्र यो वाचि भोगस्तं देवेभ्य आगायद्यत्कल्याणं वदति तदात्मन' इति श्रुतेस्तथेत्यर्थः । श्रुत्यर्थस्तु वाचि निमित्तभूतायां भोगः सुखविशेषः संघातस्य यत्कल्याणमित्यस्यार्थः । यत्कल्याणं शोभनं वदति । यथा शास्त्रं निर्वर्तयति तदात्मने स्वार्थमेव । तद्ध्यसाधारणं वाग्देवतायाः कर्म यत्सम्यग्वर्णोच्चारणमिति । अग्रे आगानार्थं प्राणादीनुक्त्वा मुख्यः प्राण आगानार्थमुक्तः । अथ हैनमासन्यं प्राणमूचुः त्वं न उद्गायेति तथेति तेभ्य एष प्राण उदगायदिति । देवार्थं गानम् 'असतो मा सद्गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्माऽमृतं गमय' इति श्रुतेषु त्रिषु पवमानेषु यथा प्रस्तोतोद्गाता च समासौ पवमानैरुक्तैस्त्रिभिः । स्तोत्रैश्च जपमात्मयजमानकामांश्च कुरुतः । तथा मुख्यः प्रसिद्धप्राणव्यतिरिक्तः प्राणोऽपि कृत्वेत्यर्थः । आदिना प्राणचक्षुःश्रोत्रमनांसि । अथेत्यादि । भाष्यस्था व्याक्रियते । आकृष्टपवमानगानकरणानन्तरमथेत्यस्यार्थः । नवस्विति । यद्यपि तेष्वात्मनेऽन्नाद्यमगायदित्यत्र श्रुतौ संख्या न लभ्यते । तथापि स्वप्रयुज्यमानापेक्षया श्रौतान्येव स्तोत्राण्यत्र प्राणविषये ते होचुः । क नु सोभूद्यो न इत्थमसक्तेत्याद्युक्तानि नवसंख्याकानि ज्यायांसि हीत्यभिप्रेत्य संख्यामाहुः नवस्विति । स्तोत्रेष्विति प्रगीतमन्त्रसाध्या स्तुतिः स्तोत्रं तेषु 'तेष्वात्मनेऽन्नाद्यमागायत्' इत्युद्गीथब्राह्मणश्रुतेरात्मन इत्यादि भवति । श्रुतौ तेष्वित्यस्य स्तोत्रेष्वित्यर्थः । किंच । 'तस्मादु तेषु वरं वृणीष्व यं कामं कामयेत तम्' इति श्रुतेः । स्तोत्रेषु कामा अपि तद्वाचकैः शब्दैः प्रयोक्तव्याः । इति प्रगीतमन्त्रसाध्यत्वं स्तुतौ । सामप्राकरणिकत्वात् । सामप्राकरणिकत्वं तु मुख्यप्राणस्य सामनामकत्वात् । एष उ एव सामेति श्रुतेः । एष प्राणः । मन्त्रत्वं तु ब्राह्मणान्तर्गतमन्त्रत्वमात्मार्थगानमेभिर्मन्त्रैः क्रियत इति 'प्रयोगकरणः शब्दो मन्त्रः' इति मन्त्रलक्षणसमन्वयः । तदाद्यमिति अन्नमाद्यं यस्य पयसस्तदन्नाद्य-

भाष्यप्रकाशः ।

अन्नं लोके प्राणिभिरद्यते तदन्नम् । अनेनैव प्राणेनाद्यते तस्मात् स्वार्थमेवैतदागानमिति । ननु कथमेतन्निश्चेयं यत् प्राणेनैवाद्यते इति । प्राणवद्वागादीनामप्यन्नकृतोपकारदर्शनादित्यत आह **इह प्रतितिष्ठतीति** । अन्नं इह प्राण एव प्रतिष्ठितम् । अतः प्राणद्वारक एव तेषामुपकार इति । **अन्नमत्र न पृथिवी,** किन्त्वदनीयमात्रम् । तथाच योऽदनीयमात्रस्यात्ता स कथमदनीया नामपां परिणाम-कार्यं स्यात् । किंचैतरेये वागादयोऽन्नार्थं मुखादिस्थानेषु प्रविष्टा उक्ताः सृष्टौ प्रथमतो भिन्नतया च निर्दिष्टाः । अतः कथमदनीयपरिणामभूताः स्युः । तस्मात् तत्त्वान्तराणीत्येव निश्चय इत्यर्थः ।

अन्ये तु संज्ञामूर्तिसूत्रमारभ्य त्रिसूत्रमेकमधिकरणमङ्गीकृत्य प्रथमसूत्रे नामरूपकरणं परमेश्वरादेवेति व्याख्याय, मांसादिसूत्रे यथाश्रुतमेव पुरीषादित्रयस्य भौमत्वं मूत्रादित्रयस्याऽऽप्यत्वमस्थ्यादित्रयस्य तैजसत्वमङ्गीकुर्वन्तः सिद्धान्तकोटावेव निक्षिपन्ति ॥

रश्मिः ।

मन्नूपम् । अदनीयानामपामिति वक्ष्यमाणत्वात् । **प्राणेनेति** । एवकारः प्राणाग्निहोत्रोपनिषदेवकारः । **स्वार्थमेवेति** प्राणार्थम् । एवकारो वागादि व्यवच्छिनत्ति । **एवमन्नेऽपि** । **अन्नकृतेति** अयं पञ्चदशाहानीत्यादिभिरुक्तोऽन्नकृतोपकारस्तस्य दर्शनात् । **प्राण एवेति** । न तु वागादावित्येवकारो वागादिव्यवच्छेदकः । **अत** इति । प्राणे प्रतिष्ठितत्वात् प्राणद्वारकः । इन्द्रियाणां प्राणपदवाच्यत्वात्तदधीनस्थितिकत्वाच्च तथा । एवकारः प्राणाग्निहोत्रोपनिषदा । तेषां वागादीनामन्नकृतोपकारः । स कथमित्यादि भाष्यं विवरीतुमाहुः **अन्नमत्रेति** । पृथिवी वा अन्नमिति श्रुतिप्राप्तं निषेधन्ति स्म **न पृथिवीति** । भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **तथा चेत्यादिना** । योदनीयमात्रस्य अत्ता कथमिति पदच्छेदः । **वागादयश्चेत्यादि** भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **किंचेत्यादि** । यद्यप्युद्गीथब्राह्मण एव 'ते देवा अब्रुवन् एतावद्वा इद९सर्वं यदन्नं तदात्मने आगासीदनु नोस्मिन्नन्न आभजस्वेति ते वै भाभिसंविशतेति तथेति त९ समन्तं परिण्यविशन्त तस्माद्यदनेनान्नमत्ति तेनैतास्तृप्यन्ति' इति वागादयोऽन्नार्थं प्रविष्टाः । **सृष्टावित्यादि** भाष्यं विवृण्वन्ति स्म **सृष्टाविति** । पुराणे सृष्टौ प्रथमतो भिन्नतया निर्देशोपि वर्तते तथापि सर्वथा श्रौतत्वायैतरेय उपात्तः । यद्यपि ब्राह्मणावतरणेऽश्वमेधब्राह्मणयोर्येत उद्भवस्तस्योद्भावकस्योपास्यप्राणस्य स्वरूपनिरूपणार्थमुद्गीथब्राह्मणमारभ्यत इति कारणसृष्टिरप्यस्ति । परं विस्पष्टं नेत्यैतरेय उपात्तः । श्रुत्यर्थस्तु—प्रकृता वागादयो देवाः प्राणं प्रत्यब्रुवन् इद९ सर्वमेतावद्वै प्रसिद्धं यदन्नं ततोधिकमस्ति तत्पुनस्त्वमात्मने आत्मार्थमागासीरागानं कृतवानसि वयं चान्नमन्तरेण स्थातुं नोत्सहामहे अतोनु पश्चान्नोस्मानस्मिन्नन्न आत्मार्थे तवान्ने आभजस्वाभाजस्व । णिचो लोपच्छान्दसः । भागिनः कुर्विति तैरुक्तः प्राणस्ते यूयं यद्यन्नार्थिनो वै तर्हि मा मामभिसंविशत । समन्तत आभिमुख्येनाविशत इत्यब्रवीदिति शेषः । राज्ञा प्राणेनानुज्ञातास्ते देवास्तथास्त्वित्यङ्गीकृत्य तं प्राणं परिवेष्ट्य समन्तं समन्तान्न्यविशन्त नितरामविशन्त प्राणं परिवेष्ट्य निविष्टवन्तो यस्मात्तस्माल्लोको यदन्नेन प्राणेनात्ति तेनैव प्राणान्नेनैता वागादयस्तृप्यन्ति । **स्वातन्त्र्येणेति** । **इत्येवेति** अन्यभाष्योक्तयुक्तियुक्तत्वादेवकारो मांसादिभौमत्वव्यवच्छेदकः । **तद्वाद** इति वीप्सेत्यादिभाष्यार्थस्त्वेवम् । तद्वाद इत्यस्यान्नमयत्वादिवादोर्थः । वीप्सायां तु द्वितीयस्य पुनरुक्तयापादकतया ज्ञानकर्ममार्गभेदेन तद्वादाविति न पुनरुक्तिदोषः । अभिधया संमतिर्वाच्या व्यञ्जनयाध्यायसमाप्तिसूचिका **वीप्सेति** द्विरुक्तिः प्रक्रियास्थात् 'वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासंमतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु' इति सूत्रात्संमतौ वीप्सेति । **अन्य** इति शंकराचार्यादयः । **एवेति** प्रकृतिं व्यवच्छिनत्ति । **निक्षिपन्तीति** ।

भाष्यप्रकाशः ।

अथ प्रसङ्गाद् द्वितीयस्कन्धसुबोधिन्युक्तदिशा सृष्टिप्रक्रिया निगद्यते । तत्र, 'सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं, तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' इत्यादिजातीयकेषु वाक्येषु सृष्टिप्राक्काले केवलस्य ब्रह्मण एवोक्तरूपाया इच्छायाः सृष्टिकारणत्वेन बोधनाद् ब्रह्मैव स्वेच्छया पूर्वं नानाभवति । तत उच्चनीचनानानेकभावेन भवति । नचाग्रपदेन कालस्योक्तत्वादेवकारो नान्ययोगव्यवच्छेदक इति वाच्यम्, विकल्पासहत्वात् । तथाहि । किमत्र कालसत्ता विधीयत उतानूद्यते, अथवा कालविशिष्टब्रह्मसत्तैव बोध्यते ।

तत्र नाद्यः । वाक्यभेदप्रसङ्गात् । नेतरः । एतेषां सृष्ट्यादिवृत्तान्तबोधकत्वेनैतदपेक्षयाऽन्येषां पुरोवादत्वस्याशक्यवचनतयाऽत्रानुवादत्वस्याशक्यवचनत्वात् । न तृतीयः । अप्रामाणिकगौरवप्रसङ्गात् । अन्यथा एकमेवेत्यवधारणान्तरविरोधापातात् ।

नचावधारणान्तरस्य मुख्यान्यसत्तानिवारकत्वान्न विरोध इति वाच्यम् । तथा सति

रश्मिः ।

अत्रोदासीना वयमिति भावः । वैशेष्यसूत्रं तु वैशेष्याद्विशेषभावाद्भूयस्त्वरूपादबादित्रिवृत्करणेन त्रिरूपेष्येकस्मिंस्तत्र तत्रान्नादिवादो भूयस्त्वव्यवहारार्थमिति युयुजुरिति ।

इति दशमं मांसादिभौममित्यधिकरणम् ॥ १० ॥

प्रथमपादे युक्त्या श्रुतिविप्रतिषेधपरिहारः । द्वितीये पादे वेदबोधकत्वाभावेऽपि तैरपि स्वातन्त्र्येण कश्चन पुरुषार्थः सेत्स्यतीत्याशङ्क्य बाह्याबाह्यमतान्येकीकृत्य निराकरोति । भ्रान्तेस्तुल्यत्वात् । ततः सम्यग्वेदार्थविचारायैव वैदिकपदार्थानां क्रमस्वरूपविचारः पादद्वयेनेत्यारम्भे भाष्य उक्तत्वादविरोधे सतः कारणत्वम् । 'असदिति चेन्न प्रतिषेधमात्रत्वात्' इत्यादौ सत एव कारणत्वोक्तेः स्मृतायाः सृष्टिप्रक्रियाया उपेक्षानर्हत्वात्प्रसङ्गात् संगतेरित्यर्थः । भगवदाज्ञयाऽस्मिन्मतेऽवस्थितिः कर्तव्येति सुबोधिन्या द्वितीयनवमाध्यायमाहुः **द्वितीये**ति । अन्तिमपादद्वयेन वैदिकपदार्थानां क्रमस्वरूपयोर्विचारात्**सृष्टिप्रक्रिया**। अत्र 'आत्ममायामृते राजन्परस्यानुभवात्मनः । न घटेतार्थसंबन्धः स्वप्नद्रष्टुरिवाञ्जसा' इति प्रथमश्लोके परस्य सच्चिद्घनितानन्दस्यार्थस्य देहस्य संबन्धार्थमनुभवात्मन इति विशेषणमुक्तं तेन चिदंशो देहसंबन्धार्थः । आनन्दांशस्तु साकार इति स साकारार्थः । अवशिष्टः सदंशः स द्वितीयपादेऽसदधिकरणेऽस्तीत्याशयेनाहुः **तत्र सदे**वेति । त्रिषु व्यस्तेषु समस्ते चेत्यर्थः । **केवलस्ये**ति सत इत्यर्थः । समस्तस्य 'यतो वाच' इति श्रुतिविषयत्वेन यथार्थतया ज्ञातत्वात् । सच्चिदानन्दस्य 'सत्यं ज्ञानमनन्तं यत् ब्रह्म ज्योतिः सनातनम्' इतिवाक्येन लोकत्वात् । व्यस्तचिदानन्दयोरुक्तदिशा कार्यान्तरार्थत्वात् । ननूपलक्षणं कृतम् 'सत्यं परं धीमहि' इत्यत्र 'सत्यव्रतं सत्यपरम्' इत्यत्र चेति चेन्न । समस्तपक्षाश्रयणात् । अतो देवकीवाक्यात्सदेव । 'सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहम्' इति देवकीवाक्यम् । ननु श्रुतिवाक्यादानन्दः कुतो नेति चेन्न । 'देवकी ब्रह्मविद्या या या वेदैरुपगीयते' इति कृष्णोपनिषच्छ्रुतेः सकलश्रुतिवाक्यसारत्वात् । 'साकारब्रह्मवादैकस्थापकः' इत्याचार्यनाम्नः सूक्ष्मग्रन्थो मूलम् । मधुराष्टकम् । अत एवकारः । **उक्ते**ति 'बहु स्यां प्रजायेय इति' इत्युक्तरूपायाः । **ब्रह्मै**वेति परमतः सेतून्मानेति तृतीयाध्यायसूत्राभ्यामेवकारः । तत्र ब्रह्मणः परमाशङ्क्य निषेधात् । **वाक्यभे**देति । ब्रह्मासीदग्रपदोक्तः काल आसीदिति । एकतिङ् वाक्यम् । **एत**दिति । ब्रह्मणः प्रथमभूतवेदापेक्षया । **अ**वेति सदेवेत्यवधारणम् । **मुख्ये**ति 'एके मुख्यान्यकेवलाः' इति कोशादेक-

भाष्यप्रकाशः ।

समाप्त्यधिकराद्दित्यस्य तत एव सिद्धेर्न्यूनद्वितीयसत्ताया उपगतत्वाच्चाऽद्वितीयपदव्याकोपस्य दुर्निवारत्वापत्तेः । नच 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत् किंचन मिषत्'इत्यत्रेवात्र मिषद्द्वितीयनिषेध एवास्त्विवति वाच्यम् । तदापि येनाश्रुतं श्रुतं भवतीत्यादिप्रतिज्ञाया मृत्पिण्डादिदृष्टान्तानामीक्षणविषयस्योत्तमपुरुषस्य, सोऽनुवीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्यदित्यनुवीक्षणस्य च विरोधापत्तेर्दुर्निवारत्वात् । अतस्तत्र कालोक्तिः सृष्ट्युत्तरव्यवहारे सर्वाधारतया प्रतीयमानस्य कालस्योपरञ्जनेन शिष्यस्य पूर्वकालवृत्तान्तबोधनार्थैव । अन्यथा शिष्यस्य सृष्टिकालवर्त्तित्वात् कालसत्तामवधारयतः पूर्ववृत्तान्तबोधाभावेऽनुशासनवैयर्थ्यप्रसङ्गात् । नतु कालस्य ब्रह्मणः पृथक्सत्ता बोधनार्था । उक्तदोषप्रसङ्गात् । तस्मात् सृष्टेः पूर्वं केवलं ब्रह्मैवेति निश्चयः । तत् सर्वभवनसमर्थमतो धर्मरूपेण भवद् इच्छारूपेणापि भवति । नच निमित्तान्तराभावे सर्वदा भवतीति शङ्कनीयम् । आपादनहेतुभूतस्य कालस्याभावात् । जाते तु पुनः काले तस्यैव नियामकत्वान्न सर्वदा भविष्यति । कालश्च श्रुताविच्छादिविशेषणत्वेनोक्त इतीच्छादिभिः सहैवाविर्भवति सहैव च तिरोभवतीति भगवद्धर्मास्त्रैकालिकाऽबाधविषयत्वात् कालवत् सर्वेऽपि नित्याः । नच सदेव सौम्येदमग्र इत्यत्र व्युत्पादितं कालोक्तेर्बोधनार्थत्वमिह ग्रहीतुं शक्यम् । तन्नियामकस्याऽद्वितीयादिपदस्येहाभावात् । नापि, सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधीति

रश्मिः ।

मेवेत्यनयोः शब्दयोर्मुख्यमेवेत्यर्थान्मुख्यादन्ये ये एतद्वाक्येतरवाक्यप्रतिपादितास्तेषां सत्ताया निवारकत्वात् । **द्वितीयेति** । 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इत्यत्र । **मिषदिति** व्यापारं कुर्वत् । **उत्तमेति** प्रजायेयेत्युत्तमपुरुषस्य । **विरोधेति** कालविशिष्टस्य विशेषणत्वेन नीचभावात्प्रशब्दार्थेन ग्रहणाद्विरोधापत्तिरीक्षणविषयस्योत्तमपुरुषस्य । **एवेति** एवकारस्तु कालश्चेष्टा सदंशस्य क्रियाशक्तिः सात्राग्रपदार्थ इति पक्षव्यवच्छेदकः । अग्रपदार्थे काले सदेवात्र तु सत्यग्रपदार्थ इति सप्तमीविरोध इति । यद्वा अग्रे कालशब्दे सदेवार्थः । वाच्यत्वं सप्तम्यर्थः । **पूर्वेति** कालो हि जगदाधार इत्याधारं विना तथा । अधिष्ठानस्य कारणत्वमिति केचित् । **उक्तेति** अप्रामाणिकगौरवादि**दोषप्रसङ्गात्** । **ब्रह्मैवेति** एवकारेण कालविशिष्टेति विशेषणं व्यवच्छिद्यते । **धर्मेति** सत्यत्वादिधर्मरूपेण वृक्षरूपेण वा वेदार्थो वृक्ष इति 'अथातो धर्मजिज्ञासा' इत्यत्रापि सः । वेदान्तदर्शितरूपं कया......चित्क्रीडया पुराणे अश्वत्थरूपं शापेन जातमिति कथा तद्गीतायाम् 'ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्' इत्युक्तधर्मरूपेण । **भवदिति** इच्छाविशिष्टमिति बोध्यम् । इच्छापि सर्वभवनसमर्थरूपमेव धर्मरूपेण भवदिति सुबोधिन्याः । अपिनेश्वरस्तत्स्वरूपं सर्वभवनसमर्थरूपमेव । **इच्छेति** विशेषेच्छारूपेण । **सर्वदेति** तथा च स्थितिप्रलयभङ्ग इति भावः । **आपादनेति** यदि सृष्टिकालः स्यात् सर्वदा तदा सर्वदा भवेदिति वाक्यस्यापादनहेतुभूतस्य । **तस्यैवेति** । एवकारेण कर्मस्वभावौ व्यवच्छिद्येते इच्छा वा व्यवच्छिद्यते । सामान्यत्वात् सृष्टीच्छा नोक्ता । कारणत्वांशे गौरवात् । अन्यदाहुः **कालश्चेति** । **श्रुताविति** 'सोकामयत बहु स्यां प्रजायेय इति' 'स तपोतप्यत स तपस्तप्त्वा इदꣳ सर्वमसृजत यदिदं किंच' इति श्रुतौ । **इच्छादीति** कामः, प्रजननम्, तपः, सृष्टिश्चादिशब्दार्थाः । तद्विशेषणत्वेन भूतानद्यतनकालिकः कामः इच्छा । इष्टकालिकं प्रजननम् । भूतानद्यतनकालिकं तपः । भूतानद्यतनकालिका सृष्टिरित्येवं विशेषणत्वेनैव । एवकारो विशेष्यत्वव्यवच्छेदकः । न च वैपरीत्ये एवकारो व्यर्थ इति वाच्यम् । श्रुतौ विशेषणत्वेनैवोक्तो न तु विशेष्यत्वेनेत्यर्थात् । **आविरिति** असृजतेत्यनेनोक्ता आविर्भवति । **भगवदि**त्यादि स्रष्टृत्वादयः । **अद्वितीयेति** ।

भाष्यप्रकाशः ।

श्रुत्या तस्य पाश्चात्यत्वं शङ्क्यम् । कालावयवानामेव तत्रोक्तत्वात् । तैर्विशिष्टस्तु कालो भगवच्चेष्टारूपो 'योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धोश्चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् । निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयान्'इति वाक्यात् । अतोऽवयवविभागरहितस्य तस्य कार्यापेक्षया पूर्वरूपत्वात् तेनैव सहेच्छादीनामपि जातत्वात् तान् सर्वान् स्वांशान् सदैकरूपानेव भगवान् स्थापयतीति ते सर्वेऽप्यविकृता एवास्तिकवादिभिरङ्गीक्रियन्ते । एवमिच्छारूपः सन् भेदरूपया तया सच्चिदानन्दानपि धर्मत्वेन भिनत्ति । ते च धर्मरूपेण स्वयं भिद्यमानाः स्वाश्रयमपि धर्मित्वेन भिन्दन्ति । तदा स भगवान् सर्वतःपाणिपादान्तो भवति, साकारतां चापद्यते । एवं सच्चि-

रश्मिः ।

तस्येति कालस्य जन्यत्वम् । एवेति अवयविनि शक्त्यभावादेवकारोऽवयवव्यवच्छेदकः । उक्तेति निमेषपदेनोक्तत्वात् । तैरित्यवयवैः । तेनैवेति कालेन । जन्यमात्रं कालोपाधिरिति प्रवादादेवकारः । युक्तं चैतत् । उपाधिभिः सह तेषामिच्छादीनां जातत्वं जीववत् । इच्छादयः पूर्वोक्ताः । एकरूपानिति । तत्र काम इच्छा 'प्रकाशाश्रयवद्वा' इति सूत्रेणैकरूपा भगवत्त्वात् । प्रजननमिच्छाकारप्रविष्टमिति तथा । तपो भगवद्रूपं द्वितीयनवमाध्यायसुबोधिन्याः । सृष्टिश्च भगवद्रूपा 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इति श्रुतेः । यद्यपि सृष्टिः सदैकरूपेत्येतावता चारितार्थ्येपि कारणसृष्टिकार्यसृष्टिभेदाय चतुष्टयमुक्तम् । एवकारो व्यवहितयुक्त्यानेकरूपव्यवच्छेदकः । भगवानिति इच्छारूपः । इच्छादयस्तदंशभूतास्तान् सदैकरूपान् स्थापयन्तीति सुबोधिन्याः । ननु भगवतः कारणत्वं 'जन्माद्यस्य यतः' इति सूत्रात् । नेच्छादय इति चेन्न । इच्छापि सर्वभवनसमर्थरूपमेव धर्मरूपेण भवदिति सुबोधिन्याः, इच्छापि अपिना भगवान्स त्वकारक इति कर्तृत्वाभावात्सर्वभवनसमर्थरूपमिच्छैव न तु भगवान्धर्मरूपेण भवेदित्यर्थात् । जन्मादिसूत्रं तु शेषषष्ठ्यन्तब्रह्मजिज्ञासां प्रतिज्ञायेति न दोषः । कर्तृकारकत्वाद्यभावात् शेषे षष्ठीति । अत एवाहुः एवमिच्छारूप इति । एतावत्पर्यन्तं महतः स्रष्टा निरूपितः । अधुना महत्स्रष्टुरनन्तरमिच्छावादादिच्छयाण्डसंस्थितं वक्तुमुपक्रमः एवमिति । कारकत्वाभावादेवमुक्तप्रकारेणेच्छारूपः सन्नित्यर्थः । भेदेति । सविषयत्वाद्भेदेन विषयेण रूप्यते व्यवह्रियत इति तथा । आकारस्त्वेकोऽहं बहु स्यामित्येव । भिनत्तीति सच्चिदानन्दा धर्मा इत्येवं भिनत्ति । स्वरूपस्यागम्यत्वादेव त्वतलन्तत्वाभावः । भिन्दन्तीति आश्रयो धर्मीत्येवं भिन्दन्ति । तदेति यथेच्छम् । भेदकाले स पुरुषोत्तमः । सर्वत इति अन्तस्य भेदं विनाऽसंभवात् । साकारतामिति । ननु तर्हि महत्स्रष्टुः साकारत्वं नास्तीत्यायातम् । तथा च 'साकारब्रह्मवादैकस्थापकः' इत्यस्य विरोध इति चेदसत्यम् । अधोक्षजत्वेन साकारत्वादिविचाराप्रसक्तेरिदमित्थतया । कारणगुणाः कार्यगुणानारभन्त इति विराजः स स्वराजः साकारस्य कारणे साकारत्वमिति लौकिको हेतुः । ब्रह्मस्वरूपस्य वक्ष्यमाणत्वेन तस्य भक्तेच्छया साकारत्वेन भक्तान्प्रति साकारत्वात् । भाष्ये 'अचलत्वं चापेक्ष्य' इति सूत्रस्य लीलाविष्करणानाविष्करणे अपि भक्तेच्छयेत्युक्तमाभासे । तथाच गोपालतापिनीये 'स्वरूपं द्विविधं चैव सगुणं निर्गुणं तथा' इति स्वरूपद्वैविध्यान्न साकारता भक्तेच्छामात्रगम्या । स्वेच्छयापि साकारतादर्शनात् । अत एव पञ्चरात्रे ज्ञानपादे 'साकारं च निराकारम्' इति विरुद्धधर्माश्रयत्वमुक्तम् । अन्तस्तद्धर्माधिकरणे 'यदेकमव्यक्तमनन्तरूपम्' इति साकारम् । अवयव्यनङ्गीकारात् 'अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तः' 'आकाशस्तल्लिङ्गात्' इति तमःपरत्वलिङ्गेनाव्यक्तमनन्त-

भाष्यप्रकाशः।

दानन्दरूपेण भिन्नोऽपि तयेच्छया मिलितोभिन्न इवाखण्डो भवति। तदपेक्षया कार्यरूपस्याल्पत्वात्। तानि त्रीण्यपि रूपाणि पूर्णशब्देनोच्यन्ते।

'पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते' इति। अर्थस्तु—अदः परोक्षं ज्ञानैकघनम् अक्षरं ब्रह्म पूर्णं निरन्तरमाकाशवद् व्यापि। इदं परिदृश्यमानं सद्रूपं क्षरं ब्रह्म पूर्णं पूर्ववत्। पूर्णात् पूर्णमतति व्याप्नोति तादृशं तदुभयव्यापकं पूर्णमुत् पूर्णानन्दं ब्रह्म अच्यते, अञ्चु गतिपूजनयोः, अच इत्येक इति धातुपाठादचधातुः पूजार्थकः, पूज्यते, पूर्वोक्ताभ्यां सच्चिद्रूपाभ्यां क्षराक्षराभ्यां सेव्यते। एवं ज्ञानादेः फलमाह। पूर्णस्यानुपदोक्तस्य पूर्णं ज्ञानादिधर्ममादाय तत्प्रसादेन प्राप्य पूर्णमेवावशिष्यते तत्सायुज्येन तदभिन्नो भवतीति। पूर्णत्वादेव सद्रूपस्य प्रत्येकपर्यवसायित्वम्। एवं धर्मरूपेण शक्तिरूपेण धर्मिरूपेण च नानाभूय पश्चात् कार्यरूपेण नाना भवतीति बहु स्यामित्यस्य कार्यम्। एवं च बृहदारण्यकोक्तं व्युच्चरणं तैत्तिरीयाद्युक्ताकाशादिसंभूतिश्च तत एव। प्रजायेयेत्यस्य तु जन-

रश्मिः।

रूपं ब्रह्मैवाकाशवत्। न तु 'तत्तु समन्वयात्' इत्यत्र निमित्तत्वस्य साकारत्वात्साकारत्वम्। **भिन्नोपीति** धर्मिणः। अपिनाऽभिन्नः। कार्यात्मना भेद इति महतः सष्टुर्भिन्नोप्यण्डसंस्थः सर्वभूतस्थतृतीयसहितः 'कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्षणं पटतन्तुवत्' इति सप्तमस्कन्धात्कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्षणे च प्रतीतसाकारतेच्छया मिलितः 'अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्' इति गीतायाः अण्डस्थितविषयत्वान्मिलिते। 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इति बृहदारण्यकदोषस्याप्यप्राप्तेर्गीतैकादशाध्यायोक्तसर्वव्यापकगुरौ लोकेऽप्रतिमप्रभावरूपे 'तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा। अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा' इत्यत्रैकेन शरीरेण मिलितोऽभिन्न इव भवति। 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत्' इति श्रुतिः। भिन्नोपस्थितावभिन्न इति खण्डोपस्थितावखण्डो भवति। महत्स्रष्टृमात्रं तु सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधीत्यखण्डमपि। **अल्पत्वादिति**। सखण्डत्वमिति शेषः। कारणाभावेन कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्षणाभावात्। अनेन तृतीयं सर्वभूतस्थमुक्तम्। **ज्ञानैकेति** पुरुषाश्मवज्ज्ञानमेवैकं मुख्यं त्रिषु तस्य घनं दृढं नपुंसकत्वं छान्दसं निबिडम्। 'तदश्मसारं हृदयम्'। 'आत्मैवेदमग्र आसीत्पुरुषविधः'। **पूर्ववदिति** निरन्तरमाकाशवद्व्यापि। **तदुभयेति** क्षराक्षरव्यापकम्। **ज्ञानादेरिति** ज्ञानं शाब्दम्। माहात्म्यज्ञानजभक्तिश्च। अक्षरज्ञानानन्तरं कर्म च। **पूर्णमेवेति** कार्यस्य कारणापत्तिर्युक्तेत्येवकारः। घटादेः कपालाद्यापत्तिर्दृश्यत इति। ननु सदेव सोम्येति श्रुतिमुपक्रम्य विचारः प्रवृत्तः। श्रुतौ तु क्षराक्षरपुरुषोत्तमा उक्ता इति प्रत्येकं सद्रूपस्य पर्यवसायित्वं कथमित्याशङ्क्य तानि त्रीण्यपीत्यादिग्रन्थतात्पर्यमाहुः **पूर्णत्वादेवेति**। एवकारेण सत्त्वं व्यवच्छिद्यते। तस्य सन्मात्रवृत्तित्वेन निरन्तराकाशवद्व्यापित्वाभावात्। **शक्तीति** सर्वतः पाणिपादान्तत्वादिः शक्तिः तद्रूपेण। **बहु स्यामिति** ईक्षणस्य। **कार्यमिति** नानाभवनं कार्यं पूर्वोक्तेक्षणस्य। **बृहदिति** तत्रैव द्रष्टव्यम्। **तैत्तिरीयेति**। 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः' इत्यादितैत्तिरीयोक्ता। **आदिना** भागवतं ग्राह्यम्। यथा तृतीयस्कन्धपञ्चमे—'कालमायांशयोगेन' इत्यादिना। **तत इति** सत एव। एवकारस्तु चिदा-

१. केवलाम्।

भाष्यप्रकाशः।

जगत उच्चनीचभावः कार्यम्। अन्यथा बहुभवनस्य पूर्वाकारादेव प्राप्तत्वात् तेनैव जनन-बाहुल्यस्यार्थबलादेव प्राप्तेः को वा प्रकर्षपदार्थः स्यात्। पुरुषविधब्राह्मणे ब्रह्मक्षत्रादिरूपत्व-विवृतिरपि विरुध्येत। उच्चनीचभावस्याकस्मिकत्वं च स्यात्। अत उच्चनीचभाव एव प्रशब्दार्थः। स च धर्मभेदेन भवतीति भूम्न आनन्दरूपस्य सर्वोत्कृष्टत्वं, ततो नीचभावश्चिद्रूपस्याक्षरस्य, ततोऽपि सद्रूपस्य क्षरस्य। अत एव अक्षरात् परतः पर इति। 'द्वाविमौ पुरुषौ लोके,' 'यस्मात् क्षरमतीतोऽहम्'इत्यादिश्रुतिस्मृतयो ब्रह्मणः परत्वं प्रतिपादयन्ति। एवं त्रिरूपः सन् शक्तित्रय-रूपेणाविर्भवति। तत्र सदंशस्य क्रियारूपा शक्तिः। चिदंशस्य व्यामोहिका माया। आन-न्दरूपस्य जगत्कारणभूता माया। एतत्त्रितयरूपा शक्तिः सच्चिदानन्दरूपस्य भावत्वतलादि-

रश्मिः।

नन्दयोर्व्यवस्थायाः आरम्भ एव कृतत्वेन तयोर्व्यवच्छेदकः। पूर्वेति एकोऽहं बहु स्यामितीच्छाकारा-देव। एवकारोऽन्यव्यवच्छेदकः। तेनैवेत्यादि पूर्वाकारेणैव न त्वन्येन। जननेति। एकत्व-विरुद्धं बहुत्वं जनननिष्ठं न त्वस्मच्छब्दार्थनिष्ठमिति तथा। जननं तु स्यां भवेयं उत्पद्ये इत्यर्थात्। तथा चैकत्वावच्छिन्नास्मत्पदार्थनिष्ठो बहुत्वावच्छिन्नोत्पत्त्यनुकूलो व्यापारोऽधीष्ट इत्यर्थः। इच्छा-प्रकरणादधीष्टे लिङ्। तदाहुरर्थेति एवकारोध्याहारव्यवच्छेदको जननस्य। क इति उच्चनीच-भावातिरिक्तः क इति प्रश्नः। ब्रह्मेति। ब्रह्मक्षत्रादिरूपत्वविवृतिस्तु ब्रह्मैव इदमग्र आसीदि-त्यादिविव्रियमाणमुक्त्वा 'तान्येतानि देवक्षत्राणीन्द्रो वरुणः सोमो रुद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इति' इत्यादिः। एवेति। प्रजायेयेतीच्छया उत्कर्षापकर्षरूपेण जात इति सुबोधिन्या एवकारः। ननु 'सदेव सौम्येदम्' इत्युपक्रमात्सृष्टावपि सदेव मुख्यमितरौ वेत्याकाङ्क्षायां सृष्टौ भिन्नप्रकारमाहुः स चेति। उच्चनीचभावः धर्माणां सच्चिदानन्दानां भेदेन भवति। न तु धर्मिभेदेन तत्र भेदा-भावात् 'न यत्र माया' इति वाक्यात्। अतस्तत्र सृष्टौ तु भेदादानन्द उत्कृष्ट इत्याहुः धर्मेति। धर्मभेदेन भवति इति हेतोः सृष्टिव्यावृत्तस्य भूम्नो धर्मरूपानन्दस्य सर्वेषु भेदेषूत्कृष्टत्वम्। क्षरस्येति। तेनाक्षरस्योपक्रान्तस्य सतः सकाशात् सतः सर्वोत्कृष्टत्वं न हीयते। श्रुतीति श्रुतिर्मुण्डके। ननु द्वितीयस्कन्धे 'आत्ममायामृते' इति पद्ये त्रिष्वनुभवात्मन इत्यनेन मायासंब-न्धाच्छरीरसंबन्धाच्च चिदात्मन इत्युक्तम्। सदानन्दयोस्तु तदभावान्नोपक्रमः। तत्र सत्सत्तामङ्गी-कृत्यात्रोपक्रम आनन्दस्तु न विचारित इति चेन्न। तस्य हिरण्यगर्भदेवताकत्वेनानन्दस्य जन्यधर्म-त्वात्। 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्' इत्यत्र ब्रह्मण इति भेदषष्ठ्या निर्देशात्। ईश्वरे तु 'किमासनं ते गरुडासनाय किं भूषणं कौस्तुभभूषणाय। लक्ष्मीकलत्राय किमस्ति देयं वागीश किं ते वचनीयमस्ति' इत्युक्तम्। एवं मधुराष्टके सद्रूपत्वमुक्तम्। एवमिति। इच्छया त्रिरूपः सच्चिदानन्दधर्मरूपः। शक्तित्रयेति कार्यरूपं शक्तित्रयं बोध्यम्। इच्छानन्तरं जातत्वात्। कारणकोटौ तु तस्य माया द्विविधेत्युक्त्या शक्तिद्वयम्। इमाः शक्तयोग्रे वाच्याः। व्यष्टावुक्त्वा समष्टावाहुः एतत्त्रितयेति। तथा च सदंशक्रियाशक्तिः 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्' इति श्रुतेः। नन्वग्रे चेष्टावाचके सन्न तु सति चेष्टेति चेन्न। अग्रस्य सदिति सुपांशेन त्वग्र इति सप्तम्यन्तमित्यङ्गीकारात्। चिदंशस्य वेदरूपस्य व्यामोहिका माया। 'तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः' इति वाक्यात्। ब्रह्म वेदम्। आनन्दरूपस्य जगत्कारणभूता माया। 'कृष्णात्मिका जगत्कर्त्री मूलप्रकृतिरुक्मिणी'

भाष्यप्रकाशः ।

वाच्या । अत एव सदंशभूतेष्वष्टाविंशतितत्त्वेषु तत्त्वमिति व्यपदेशः । एवं यदा आनन्द उत्कृष्टो जातस्तदेतरौ तं सेवमानौ जातौ । ततश्च तयोर्धर्मौ ज्ञानक्रिये भगवच्छक्तिरूपे जाते । तदा स आनन्दो ज्ञानक्रियाशक्तिमान् जातः । इत्येकस्वरूप उच्चनीचभावः । अथापरः सदंशस्तु क्रियाशक्तेर्गतत्वादंशेनाव्यक्ततामापद्यते प्रकृतिरूपो भवति । पश्चान्मूलभूतक्रियांशाभिः क्रियाभिर्यथायथं श्रौतेन पौराणेन वा प्रकारेणाभिव्यज्यते । चिदंशस्तु ज्ञानधर्मस्यानन्दे गतत्वादंशेन पुरुषो जीवसमष्टिरूपो मुख्यजीवो भवति । तदा चिदंशस्य शक्तिर्माया तं व्यामोहयति । तदा तया व्यामोहितो व्याकुलः सन् सदानन्दकृतसृष्टौ य आसन्य-

रश्मिः ।

इति गोपालतापिनीयात् । मायापदं तु श्वेताश्वतरे—'अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः' 'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्' इति श्रुतेः । **अन्यो** जीवः [नन्वानन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः, आनन्दरूपममृतं यद्विभाति, आनन्दमयोभ्यासात् । को ह्येवान्यात्कः प्राण्याद्यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् । दुःखाभावः सुखं चैव पुरुषार्थद्वयं मतमिति सुखं स्तूयतेऽतः कथमानन्दो जन्य इति चेन्न । 'अजायमानो बहुधा विजायते' इति श्रुत्या भविष्यतीति ।] नन्वानन्दस्य जन्यत्वात्केन प्रकारेण सर्वोत्कृष्टत्वमिति चेत्तत्राहुः **एवमित्यादि** । धर्मभेदेनोच्चनीचभावे करणस्य भेदरूपमायाघटितत्वेन मायायाश्च तमोरूपत्वेनानन्दे तु उत्कृष्टे उत्कृष्टत्वप्रकारकतामसबुद्धेरानन्दविशेष्यकत्वोत्कृष्टत्वप्रकारकत्वात् । **जाताविति** तथैवानुभवात् । 'सुखाय कर्माणि करोति जन्तुः' इति वाक्याच्च । सेवायामप्येवम् । मनुष्याधिकारात् । **ततश्चेति** आनन्दविरहात् । **तयोरिति** सच्चितोर्धर्मौ ज्ञानं वेदान्तोक्तं क्रिया वेदोक्ता च कारणीयौ कार्येपि स्तः तौ प्रवर्तकानन्दाभावादनभिव्यक्तौ स्वकारणे लीनाविति ज्ञानक्रिये भगवच्छक्तिरूपे जाते । **स इत्यादि** स उत्कृष्टः गुणरूपोप्यानन्दः ज्ञानगुणवानस्य समवायिसमवेतत्वसंबन्धेन । एकं रूपं रसात्पृथगित्यत्र रूपे एकत्वपृथक्त्ववत् । क्रिया कर्मणापि सन्निष्ठोक्तसंबन्धेनानन्दरूपगुणनिष्ठा । इत्यानन्दो ज्ञानक्रियाशक्तिमान्जात इत्यर्थः । उक्तक्रमे सतश्चिदनन्तरमुक्तत्वेऽपि सूचीकटाहन्यायेनाहुः **सदंशस्त्विति** । **गतत्वादिति** अनभिव्यक्तत्वात् । **अंशेनेति** विकृतिरूपेण । **प्रकृतीति** तदुक्तं 'धर्मो यस्यां मदात्मकः' इति वाक्येन । **क्रियाभिरिति** प्रयाजानुयाजादिरूपाभिः । **पौराणेनेति** । एकोनविंशाध्याय एकादशश्लोक्तेन लौकिक्यपि ग्राह्या । सच्चिदानन्दब्रह्माग्रे इति प्रसिद्धम् । तदेवाग्रे यज्ञरूपमुक्त्वा ज्ञानरूपं वेदान्तशास्त्रभेदेनाहुः **चिदंश** इति । आनन्दांशस्तु कवीनां 'तदेव ब्रह्म परमं कवीनाम्' इति श्रुतेः । **ज्ञानेति** चितो ज्ञानरूपधर्मस्य प्रवर्तकानन्दाभावेनानभिव्यक्तस्य स्वकारणानन्दे **गतत्वात्** । **अंशेनेति** मूलांशेन । पुरुषः पुरमुषतीति पुरुषः । उष दाहे । स्वराट् । **जीवेति** । 'यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा' इति श्रुतेः । मुख्यत्वं द्वितीयरूपत्वम् । जीवमूलत्वमिति यावत् । तृतीयं सर्वभूतस्थम् । **मायेति** व्यामोहिका । तदुक्तम् । 'विराट् जीवस्तु भोगभुक्' । **तमंशम्** । 'यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् । परोपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते' ॥ इति समाधिभाषायाः । **सदानन्देति** सच्चिदानन्देषु । स्वेच्छया सदानन्दः कृष्णः । 'कृषिर्भूवाचकः' इति पञ्चरात्रशास्त्रात् । **चिदंशः शब्दः** । अतश्चिदंशशब्दप्रतिपाद्यसदानन्दरूपार्थसृष्टौ य इति प्रसिद्धः आसन्यः आस्ये भवः । केन रूपेण प्रसिद्ध इत्यत आहुः **सूत्रेति** । सूत्रात्मत्वेन

भाष्यप्रकाशः ।

रूपः सूत्रात्मा दशविधः प्राणस्तमवलम्ब्य तिष्ठति । ततो जीव इत्युच्यते प्राणधारणप्रयत्नवत्त्वात् । बोधरूपोऽप्ययम् । आनन्दस्य धर्मस्य पृथग्भूतत्वात्स्वरूपात्मकस्य च तिरोहितत्वादानन्दार्थं तथा व्यामोहितस्तत्संबन्धादानन्दो भविष्यतीति बुद्ध्या तया संबध्यते । आनन्दांशस्तु प्राज्ञरूपोऽन्तर्यामिसमष्टिरूपो भवति । अतः परं सतः प्रपञ्च उच्यते । तत्र क्रमो नानाविधः । मुण्डके, 'एतस्माज्जायते प्राणः' इति प्राणमनइन्द्रियाणामुत्पत्त्यनन्तरं खादिभूतोत्पत्तिः । प्रश्ने, प्राणः प्राणाच्छ्रद्धा भूतानि इन्द्रियं मनोऽन्नमिति । बृहदारण्यके, प्राणा लोका देवा भूतानीति । ऐतरेये, लोका लोकपाला इत्यादि । महोपनिषदि तु दशेन्द्रियाणि मनस्तेजोऽहंकारः प्राणा बुद्धिस्तन्मात्रा महाभूतानीति । तत्र तेजो महान् प्राणाः प्राणसमुदायः । तैत्तिरीयादौ चाकाशादिक्रमेण सूक्ष्माणि महान्ति च भूतानि समुत्पादयति । पञ्चतन्मात्रा भूतशब्देनोच्यन्ते । अथ पञ्चमहाभूतानि भूतशब्देनोच्यन्ते इति मैत्रायणीयश्रुतावुभयोरपि भूतपदेन संग्रहात् । एवमन्येऽपि प्रकारा निबन्धे दर्शिताः । अतो भूतानामेवैकविधः क्रमो, न प्राणेन्द्रियादीनाम् । आत्मनां तु व्युच्चरणं पश्चात् । कदाचिद्देहविशिष्टा

रश्मिः ।

प्रसिद्धः । ननु प्राणो वायुः सूत्रं बहिः कार्पासम् । अन्तस्तु को वेद । ईश्वरस्तु वेत्ति । 'अन्तःसूत्रं धृतं येन' इति श्रुतेः । परंतु बहिःसाम्याद्द्रव्यान्तरम् 'प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्' इति श्रुतेरिति चेन्न । ऊर्णनाभदृष्टान्तस्य द्वितीयस्कन्धनवमाध्याये उक्तत्वात्तदनुरोधेन प्राणेषु समानस्य नाभिस्थत्वेन सूत्रमात्मनि यस्य तादृशः संग्रहात् । सुबोधिन्यां तु सूत्रात्मक इति क उक्तः । नाभिकमलदण्डे सूत्राणि प्रजापतौ चेति कारणे तदावश्यकत्वात् । मूलस्य समानवायुत्वेनान्तःसूत्रस्य वायुत्वेन द्रव्यान्तरत्वाभावात् । एकरसत्वात् । किंचान्तर्यामिब्राह्मणे 'वायुर्वै गौतम तत्सूत्रम्' इति श्रुतेः सूत्रात्मा प्राणः । **तमवेति** । जीव प्राणधारणइति धातुपाठात् । शुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः 'तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः' 'विज्ञानघनः' इत्यादीनां श्रुतीनामयमेव विषय इत्याहुः **बोधेति** 'शब्द इति चेन्नातः प्रभवात्' इति सूत्रे चितः सृष्टिः । त्रिषु सदादिषु प्रकटेन व्यवहारः । अतः सदानन्दसृष्टिविरोधो न । अपिशब्देनोपक्रान्तसद्रूपः । **अयमिति** समष्टिरूपः । निर्धर्मकत्वान्निराकारत्वमाहुः **आनन्दस्येति** । सच्चिदानन्दसृष्टित्वादानन्दधर्मत्वम् । **स्वरूपेति** । तत एव । आनन्दांशस्तु पूर्वमेव तिरोहितो येन जीवभाव इत्युक्तेस्तिरोहितत्वम् । **आनन्दार्थमिति** विषयानन्दार्थम् । ननु मायासंबन्धस्य भावित्वात्पूर्वं कुतस्तया व्यामोहित इति चेन्न । तयेत्यनेन तदपाश्रया माया भूतपूर्वा गृह्यत इति कार्यकरणत्वसंबन्धात् मायासंबन्धाद्विषयानन्दः भगवदानन्दो यद्यपि तथापि व्यामोहो विषयानन्दप्रवृत्तौ हेतुः । **संबध्यत** इति 'यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् । परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ।' इति वाक्यात् । एवं कार्यरूपाश्चिदंशांशा ज्ञेयाः । आनन्दस्य स्वरूपलक्षणघटकत्वात्तद्विशेषस्वरूपमाहुः **आनन्दांशस्त्विति** । सर्वोत्कृष्टानन्दस्य विशेषः सुषुप्तिसाक्षी प्राज्ञस्तद्रूपोन्तर्यामिणामन्तर्यामिब्राह्मणप्रसिद्धानां पृथिव्याद्यन्तराणां समष्टिरूपो भवति । **पदेनेति** भूतपदेन । **अन्येपीति** 'कदाचित्पुनरन्यथा' इति निबन्धात् । 'यथाग्नेः क्षुद्रा' इति श्रुतेराहुः **आत्मनामिति** ।

भाष्यप्रकाशः ।

एवेन्द्रियाधिष्ठातारः, कदाचिदिन्द्रियानन्तरमित्येवं कारणसृष्टिप्रक्रिया दर्शिता । विशिष्य तु द्वितीयस्कन्धसुबोधिनीतत्तत्प्रकाशान्मत्कृताद्वावगन्तव्या ॥ २२ ॥

इति दशमं मांसादिभौममित्यधिकरणम् ॥ १० ॥

इति श्रीमद्वल्लभाचार्यचरणनखचन्द्रनिरस्तहृदयध्वान्तस्य श्रीपीताम्बरात्मजस्य पुरुषोत्तमस्य कृतौ भाष्यप्रकाशे द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥ २ ॥ ४ ॥

समाप्तोयं द्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥

रश्मिः ।

मुण्डक आत्मनोवतारा इति माध्वाः । इन्द्रियानन्तरमिति 'सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोक्षिशिरोमुखम्' इति श्रुत्युक्तेन्द्रियानन्तरं देहविशिष्टा इत्यर्थः ॥ २२ ॥

इति मांसादिभौममित्यधिकरणम् ॥ १० ॥

इति श्रीविट्ठलेश्वरैश्वर्यनिरस्तसमस्तान्तरायेण श्रीगोविन्दरायपौत्रेण संपूर्णवेत्ता विट्ठलरायभ्रात्रीयेण गोकुलोत्सवात्मजगोपेश्वरेण कृते भाष्यप्रकाशरश्मौ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः पादः संपूर्णतामगमत् ॥ २ ॥ ४ ॥

एतावतो ग्रन्थस्य श्लोकानां संख्या १४५२५ सार्धचतुर्दशसहस्रपञ्चविंशतिः इति ॥